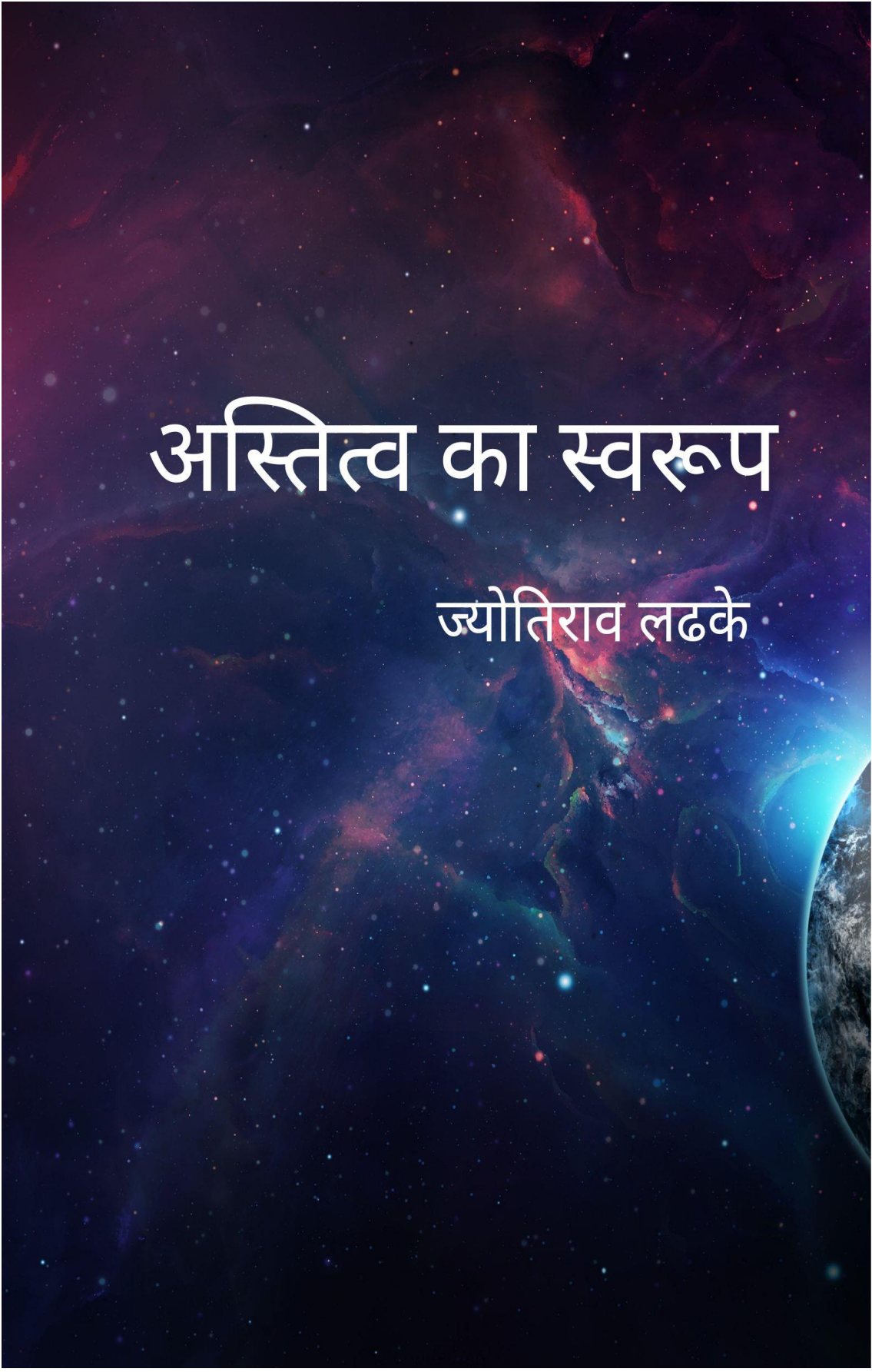


A cosmic background image featuring a deep space scene with various nebulae in shades of red, orange, and blue, interspersed with numerous stars of different magnitudes. The overall tone is dark and mysterious.

अस्तित्व का स्वरूप

ज्योतिराव लढके

प्रस्तावना

हमारे चारों ओर कुछ अस्तित्व में है। हम स्वयं भी इस अस्तित्व का एक हिस्सा हैं। हमारे दिमाग का स्वरूप कुछ ऐसा है कि इस अस्तित्व के बारे में जानने की, हममें उत्सुकता जागती है। लेकिन हम यह भी जानते हैं कि कुछ बातें ऐसी हैं जिनका उत्तर हमें कभी नहीं मिलेगा। जैसे इस अस्तित्व में जो विद्यमान है, वह सारी चीजें कहां से आईं ? कैसे आईं ? किस तरह आईं ? आदि। भले ही कुछ लोग ऐसे प्रश्नों के पीछे सारा जीवन खपा देते हैं। लेकिन विज्ञान ऐसे प्रश्नों में नहीं उलझता। वह तो बस उसका स्वरूप जानने में रुचि रखता है। प्रकृति के नये-नये रहस्य उसके सामने खुल रहे हैं। बात केवल उत्सुकता की नहीं है। मनुष्य इस ज्ञान का उपयोग मानवता की भलाई के लिए करना चाहता है।

जहां तक सृष्टि का सवाल है, इसके कुछ रहस्य उसे ज्ञात हुए हैं, तो कुछ का अस्तित्व है, केवल इतना ही उसे ज्ञात हुआ है। लेकिन उनका निश्चित स्वरूप अभी भी उसके लिए एक अजुबा है। जैसे डार्क मैटर, डार्क एनर्जी आदि। वह धीरे-धीरे उनके बारे में जान ही लेगा। प्रकृति के अपने नियम हैं। मनुष्य को उन्हें ही जानना हैं।

वैसे तो पुरातन समय से ही, मनुष्य इस सृष्टि के मूल में कोई अपरिवर्तनशील, चिरस्थायी तत्व होने की कल्पना पाले हुए है और उसकी खोज में जुटा हुआ है। लेकिन ऐसा कोई तत्व, मानसिक रूप से छोड़कर, प्रत्यक्ष में नहीं मिला। विज्ञान ने उसे एक ही न बदलने वाली बात से परिचित कराया और वह है निर्वात में प्रकाश या और विस्तृत ढंग से कहें तो विद्युत चुंबकीय तरंगों की गति। बाकी तो हर चीज परिवर्तनशील है, गति में है। और भी कुछ स्थिरांकों का पता चला है लेकिन उनकी विशिष्ट कीमतें ही क्यों हैं, हम नहीं जानते। ऐसा माना जाता है कि उन कीमतों में थोड़ा भी विचलन हुआ तो सारी सृष्टि ही ढह जाएगी।

अस्तित्व को जानने का साधन हमारी ज्ञानेन्द्रियां हैं । लेकिन उनके सहारे हमें वास्तवता का पूरा ज्ञान होगा ही यह आवश्यक नहीं। इसके लिए मनुष्य ने कई सहायक उपकरण बनाए हैं। तो वास्तवता के संदर्भ में उसकी दृष्टि विस्तृत होती गयी। पहले ऐसा माना जाता था कि सभी तारे एक समान हैं। लेकिन अभी तो तारों को कई वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। लेकिन यहाँ यह बात ध्यान में रखनी होगी कि हमें इस सारी प्रकृति, सृष्टि, ब्रह्माण्ड को माया या असत्य कहने से बचना होगा। ऐसा मानकर हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे।

ज्ञान की दिशा में बढ़ते समय उसने अंक संकेत, गणना पद्धति और गणित की भिन्न-भिन्न शाखाओं को जन्म दिया।

मूलतः अस्तित्व दो रूपों में विद्यमान है। एक कण या उनसे बने पदार्थ और दूसरा रूप विकिरणों का, जो तरंग रूप में होते हैं। हम कण और तरंग दोनों की विशेषताएं जानते हैं। कण का अस्तित्व अवकाश में एक ही बिंदुस्थान पर हो सकता है जबकि तरंग एक बिंदु से निकलने के बाद चारों तरफ फैलती है, तो एक ही तरंग का अस्तित्व कई स्थानों पर हो सकता है। अतः हमारी समझ यह है कि कण, कण है और तरंग, तरंग। एक ही तत्व में ये दोनों गुण एकसाथ नहीं हो सकते। जब एक ही व्यक्ति एक ही क्षण में दो जगह होने की बात कहीं जाती है तो हम उसे चमत्कार कहते हैं। लेकिन क्वांटम यांत्रिकी के अनुसार प्रत्येक वस्तु के साथ दोनों गुणधर्म संलग्न रहते ही हैं। उनके ऊर्जा स्तर के अनुसार इनमें से एक का प्रभुत्व रहता है। मूलभूत कण और विकिरण इनकी एक दूसरे पर अन्योन्य क्रियाएं ही अस्तित्व हैं।

क्वांटम यांत्रिकी ने हमें इसके प्रति भी आश्चर्य किया है कि अनिश्चितता का तत्व अस्तित्व में ही अंतर्भूत है। हमें जो वास्तवता है उसे स्वीकार करना है, बिना मायुस हुए। इसी कारण प्रकृति विकल्प प्रस्तुत करती है। उनमें से उचित चुनाव कर हम अस्तित्व के किसी रूप पर नियंत्रण स्थापित करते हैं। ऐसा करते समय हम प्रकृति के किसी नियम की अवमानना नहीं करते। उसे उचित सम्मान ही देते हैं। उलटा किसी चमत्कार की बात करते समय बात उलटी होती है।

आयाम, वस्तुमान ये पदार्थ के लिए व्यक्तिगत अविचल बातें मानी जाती थीं। लेकिन सापेक्षता ने सिद्ध किया कि ये परामितके अविचल नहीं, तो पदार्थ की गति के अनुसार बदलते हैं। समय का प्रवाह भी निरपेक्ष नहीं। अवकाश का निरपेक्ष दर्जा भी नहीं रहा। अवकाश और उसमें विद्यमान पदार्थ एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

परम शून्य को नकारते हुए विज्ञान कहता है कि उसमें भिन्न-भिन्न बलों के क्षेत्रों का अस्तित्व रहता ही है। ऊर्जा की उचित उपलब्धता शून्य में मूलभूत कणों को उत्पन्न कर सकती है। कण और ऊर्जा एक दूसरे में रूपान्तरित हो सकते हैं।

हमारी सूर्यमाला के निरीक्षण के आधार अंतरिक्ष के पिंडों की उत्पत्ति और उनके व्यवहार के विषय में हमने कुछ नियम अपेक्षित किये थे। लेकिन बाह्य ग्रहों की खोज के बाद उनकी स्थिति इन नियमों के साथ पूरी तरह तालमेल नहीं दिखाती।

फिर अस्तित्व का सजीव रूप सामने आता है। एक ओर तो कहा जाता है कि निर्जीव से सजीव पैदा हो ही नहीं सकते तो दूसरी ओर ऐसा माना जाता है कि निर्जीव ही उत्क्रांत होते-होते (यथोचित परिस्थिति उपलब्ध होते ही) सजीव में रूपांतरित हो जाते हैं। लेकिन हम अभी भी निश्चित तौर पर नहीं जानते कि ऐसे परिवर्तन के लिए कौनसी परिस्थितियां और घटक आवश्यक हैं और पर्याप्त भी।

ऐसे कई मुद्दे हैं जिन्हें जानना मनोरंजक होगा। तो आगे बढ़ें ?

लेखक

अनुक्रमणिका

भाग-एक

गणना 15

- लिपियां
- ब्राह्मी लिपि
- अंक संकेत
- अंक पद्धति
- सिंधु सभ्यता
- वैदिक पद्धति
- शून्य
- दशमान पद्धति
- बीट्स और बाइट्स
- मापन
- एककों का मानकीकरण(लम्बाई, वस्तुमान, समय)
- मूलभूत स्थिरांक
- गणन यंत्र
- दूरियों का मापन
- राशियां और मापके

काल मापन 42

- सूक्ष्मतम स्तर
- कालमापन के साधन
- पुरातात्विक कालगणना
- रेडियो कार्बन डेटिंग
- कालगणना के एकक
- राशिचक्र
- नक्षत्रकाल
- वसन्त संपात, स्थानीय समय माप, युतिकाल, विष्टंभ, अवष्टंभ

- कैलेंडर

गणित के आधार 55

- भारत
- ग्रीस : पायथागोरस
- युक्लिड
- अयुक्लिडीयन भूमिती
- झेनो
- आधुनिक गणित (न्यूटन, देकार्ट)
- विच्छेदक, विधायक प्रणालियाँ
- कलनशास्त्र, संभाव्यता सिद्धांत
- महान भारतीय गणितज्ञ
- वैदिक गणित

भाग-दो

मूलद्रव्य 68

- अँव्हागैड्रो
- बोल्टमन स्थिरांक
- जे.जे. थॉमसन
- रुदरफोर्ड
- निल्स भोर
- परमाणु का आकार
- आवर्त सारणी
- अणुकेंद्र और अणुओं के आकार
- अणु ऊर्जा

मूलभूत कणिकाएँ 97

- भौतिकी का मानक मॉडल
- मूलभूत कणिकाओं का वर्गीकरण

- कणिकाओं के भिन्न तरह के आवेश
- ऊर्जा
- नाभिक के घटक
- इलेक्ट्रॉन
- मूलभूत कण का स्वरूप
- अँन्टी मॅटर- प्रतिकण
- सममिति
- न्यूट्रिनो
- मूलभूत कणों का स्पीन

विद्युत और चुंबकत्व 120

प्रकृति के मूलभूत बल 123

- प्रबल नाभिकीय बल
- क्षीण नाभिकीय बल
- गुरुत्वाकर्षण
- अन्योन्यक्रिया का क्रियातंत्र
- बलों का एकीकरण

प्रारण 134

- तारों का झिलमिलाना
- ग्रहों का स्थिर प्रकाश
- वर्णक्रमपट
- बिनतारी संदेशवहन
- रेडिओ तरंगें
- किरणोत्सर्जन
- वैश्विक किरणें

प्रकाश 151

- कण-तरंग-द्वंद्व
- प्रकाश का संचारण
- प्रकाश की गति

- तापमान और प्रकाश
- रमण प्रभाव
- फोटॉन

पदार्थ के कुछ विशेष गुणधर्म 164

- निरपेक्ष शून्य तापमान
- ब्लॉक बॉडी
- हिलीयम की अतिद्रावकता
- ध्वनि
- ऊर्जा, उष्मीय ऊर्जा
- अतिसंवाहकता
- पृष्ठ तनाव
- प्लाज्मा अवस्था
- सापेक्ष आर्द्रता
- एन्ट्रॉपी
- धातु
- भौतिकी के अनुत्तरित प्रश्न

ज्ञात-अज्ञात 182

- हिग्ज बोसॉन
- कृष्ण पदार्थ (डार्क मैटर)
- डार्क एनर्जी
- कृष्ण विवर: अँक्रिशन डिस्क ,मुक्ति वेग ,घटना क्षितिज ,क्ष्वाझ्शचाईल्ड त्रिज्या
- कृष्ण विवर के प्रकार , कृष्ण विवर का भविष्य , ,स्टिफन हॉकिन्स
- न्यूट्रॉन तारा और कृष्ण विवर कुछ विशेष विवर ,श्वेत विवर ,
- क्वासार्स

भाग-तीन

अंतरिक्ष 226

- उपग्रह की कक्षाएं,
- अंतरिक्ष में दूरबीनें
- इसरो

ब्रह्माण्ड 245

- प्राचीन सोच (एरिस्टार्कस, पायथागोरस, अरिस्टॉटल, टॉलेमी, थेल्स)
- कोपर्निकस, टायको ब्राहे, गैलिलिओ, केपलर
- महाविस्फोट सिद्धान्त
- कॉस्मिक स्फिति या फुलाव
- ब्रह्माण्डीय मायक्रोवेव्ह पार्श्व
- ब्रह्माण्ड की प्रतिकृतियाँ
- ब्रह्माण्ड का विस्तार
- ब्रह्माण्ड का भविष्य
- ब्रह्माण्ड की नपाई

अंतरिक्ष के पिंड 278

- उल्कापिंड
- धूमकेतु
- उडन तश्तरी
- विशिष्ट लघुग्रह
- बाह्य ग्रह, सौर परिवार के ग्रह
- हमारा चंद्रमा, पृथ्वी के और उपग्रह
- ग्रहण
- ग्रहोत्पत्ती
- ग्रहों का परिभ्रमण (केपलर के तीन नियम)
- सौर परिवार के ग्रह और उनकी विशेषताएं
- उपग्रह, वलय

- क्यूडपर बेल्ट, ऊर्ट बादल
- बाह्य पिंडों का विचित्र संसार

धधकते अंतरिक्ष पिंड 328

- वायु और धूल के महाबादल
- मंदाकिनी का आकार ग्रहण
- तारे का जन्म
- तारों का अन्वेषण
- आकाशगंगाएं
- हमारी आकाशगंगा
- सूर्य
- गतिमान तारकाविश्व
- हबल का नियम
- प्रसारी ब्रह्माण्ड (अज्ञात द्रव्यमान, ब्रह्माण्ड की आयु)
- तारों की वार्धक्यावस्था (चंद्रशेखर सीमा)
- लाल दानव तारा
- श्वेत वामन तारा
- अतिनव तारा या सुपरनोव्हा
- पल्सर / न्यूट्रॉन तारा
- बर्स्टर्स

पृथ्वी 407

- परामितके
- पृथ्वी की सांख्यिकी
- पृथ्वी का परिवलन, परिक्रमण
- भूकम्प
- परांचन
- अक्षांदोलन
- अक्षांश-रेखांश
- राहु-केतु

- कॉरिऑलिज
- मॅग्नेटोस्फियर
- ध्रुवतारा
- मिलानकोविहच के हिमयुग

भाग-चार

क्वांटम जगत 430

- जगत की निर्धार्यता
- कृष्णिका विकिरण
- मॅक्स प्लैंक
- अभिक्रिया
- क्वांटम
- प्लैंक स्थिरांक
- मापन प्रक्रिया
- हाइन्सेनबर्ग अनिश्चितता सिद्धान्त
- आभासी कण
- टनेल इफेक्ट
- शून्य
- संक्षेप में क्वांटम यांत्रिकी
- इतिहास में झांके
- एडविन श्रोडिंजर
- समांतर विश्व कल्पना
- ब्रोग्ली की वस्तु तरंगें
- कण - क्षेत्र - तरंग
- क्वांटम एन्टॅगलमेंट
- कण - क्षेत्र - तरंग
- क्वांटम यांत्रिकी-अध्यात्म

- श्रद्धा-अश्रद्धा

सापेक्षता 471

- गैलिलिओ
- न्यूटन का गतिशास्त्र
- आइन्स्टाइन
- गुरुत्वाकर्षण और ग्रैविटोन
- गुरुत्वाकर्षण और त्वरण की समतुल्यता
- गुरुत्वाकर्षण और ज्यामिति
- गुरुत्व तरंगें
- संदर्भ चौखटें
- प्रकाश और उसकी गति
- वर्णपट के अनुसार खगोलशास्त्र
- देश और काल
- काल (मंदत्व, काल का सापेक्षत्व)
- पिंड की गति और आयाम
- वस्तुमान
- मर्यादित या विशिष्ट सापेक्षता
- व्यापक सापेक्षतावाद

भाग-पांच

सजीव 537

- उत्पत्ति
- सजीव-निर्जीव: बीच की कड़ी
- सजीवता के रूप
- डार्विन का उत्क्रांतिवाद
- प्राकृतिक चुनाव
- मानव उत्क्रांति के चार टप्पे

- उत्क्रांति के अन्य सिद्धान्त
- डार्विन विरोधी सिद्धान्त
- डायनासोर और पक्षियों की उत्पत्ति
- आनुवंशिकता
- मानव के व्यक्तिगत पहचान मानक
- सजीव की आयु
- बायो सिग्नेचर
- अस्तित्व में जीवसृष्टि

भाग-छह

वैज्ञानिक विषय 553

शब्दकोश 564

भाग १

- गणना
- कालमापन
- गणित के आधार

१. गणना

बहुत प्राचीन काल में, हाथों की उंगलियों से संख्या की जानकारी दी जाती थी। इसलिए दस का आधार अस्तित्व में आया।

ऐसा अनुमान है कि आज से कोई पचास हजार साल पहले (पाषाण युग) खड़ी या आड़ी रेखाओं वाले संख्यांक, चित्रलिपि के पहले ही अस्तित्व में आ गये होंगे।

नव पाषाण युग का आरंभ आज से दस हजार वर्ष पूर्व हुआ, ऐसा माना जाता है। इसी दरम्यान कृषि कर्म की शुरुआत हुई।

आदमी ने जब वस्तुओं का संग्रह करना शुरू किया तो उसकी गणना करने के लिए, ईसा पूर्व ७५०० में ही गोल और अंडाकृति बिल्लों (टोकन) का उपयोग शुरू हुआ। गोल बिल्ले पशु धन और अनाज गिनने के लिए उपयोग में लाए जाते थे।

(हिसाब लिखने का आरंभ ' सुमेरिया' में होने का उल्लेख इतिहास में मिलता है।)

लिपियां

ताम्रयुग

ताम्रयुग का आरंभ छह हजार साल पहले हुआ। उत्पादन बढ़ा। नदी घाटी सभ्यताओं ने जन्म लिया। मानव समाज, कबिलाई प्रथा से राजप्रथा में पहुँचा।

अब मानव को एक विकसित लिपि और अंक पद्धति की आवश्यकता अनुभव हुई। अभिलेख लिखे जाने लगे।

उस समय की सभी लिपियां भावचित्रों और अक्षर संकेतों का मिश्रण थीं।(सूर्य का चिन्ह न केवल 'सूर्य' बल्कि 'ताप' या 'धूप' का भी द्योतक बन गया।) इस प्रकार बहुत सारे भाव-संकेत अस्तित्व में आए।

अभी किसी वर्णमालात्मक लिपि ने जन्म नहीं लिया था। उस समय की लिपियों में सैकड़ों चिन्ह थे।

- लोहे का आविष्कार हुआ आज से तीन हजार साल पहले।
- ई. पूर्व १००० के आसपास पश्चिम एशिया के देशों में वर्णमालात्मक लिपियों ने जन्म लिया।

- पिछले करीब ढाई-तीन हजार वर्षों से संसार के सभी सभ्य देशों में वर्णमालात्मक लिपियों का उपयोग होता है। अपवाद हैं चीन और जापान की लिपियाँ। चीन की लिपि अब भी भावचित्रमूलक है। जापानी लिपि भावचित्रों और अक्षर-संकेतों का मिश्रण है।

ब्राह्मी लिपि

भारत की ब्राह्मी लिपि वर्णमालात्मक थी। ई. पू. सातवीं-आठवीं सदी में यह लिपि अस्तित्व में आ चुकी थी। लेकिन अशोक के अभिलेख (ई.पू. तीसरी सदी) ही सबसे प्राचीन, उपलब्ध ब्राह्मी अभिलेख हैं। ब्राह्मी लिपि मूलतः संस्कृत और प्राकृत भाषाओं को लिपिबद्ध करने के लिए अस्तित्व में आयी थी। लेकिन बाद में अन्य भाषा परिवारों ने भी इसे अपनाया। वास्तव में, उर्दू भाषा की अरबी-फारसी लिपि के अलावा भारत की सभी वर्तमान लिपियाँ ब्राह्मी लिपि से ही विकसित हुई हैं। सिंहली लिपि का विकास भी उसीसे माना जाता है। छठी सदी की कुटिल लिपि, ब्राह्मी लिपि का ही विकसित रूप था जिससे बनी तिब्बती लिपि। दक्षिण पूर्व एशिया की कई लिपियों का स्रोत भी इसे ही माना जाता है।

अंक संकेत

प्रायः सभी प्राचीन सभ्यताओं की अंक पद्धतियों में १,२,३ के लिए इतनी ही खड़ी या आड़ी लकीरें देखने मिलती हैं। प्राचीन ब्राह्मी लेखों में १,२,३ के लिए क्रमशः इतनी ही लकीरें हैं। हमारे आज के १,२,३ अंक संकेत उन्हीं आड़ी लकीरों से बने हैं।

पूर्णांक की निर्मिति, ग्रीक गणितज्ञ पायथागोरस ने की ऐसा कहा जाता है। लेकिन उस समय अंक संकेतों की खोज नहीं हुई थी। ग्रीक लोग अंक प्रदर्शित करने, अल्फा-बिटा आदि मूलाक्षरों का उपयोग करते थे। संख्या सहजता से प्रदर्शित करना ग्रीकों के लिए संभव नहीं हुआ। यह पद्धति बड़ी बोदी स्वरूप की थी। उसमें हो सके उतने सुधार आर्किमिडिज़ ने किये।

आज लगभग पूरे संसार में जिन अंक संकेतों को स्वीकार किया गया है, वे हैं 1,2,3,4,5,6,7,8,9,0। आम लोगों की धारणा यह है कि ये अंग्रेज़ी अंक हैं। वास्तव में अंक-संकेतों की अंग्रेज़ी प्रणाली, ऐसी कोई चीज नहीं है। जिस लिपि में अंग्रेज़ी लिखी जाती है वह रोमन लिपि है। रोमन अंक-संकेत हैं- i,ii,...आदि जो अभी भी जीवित हैं।

उपरोक्त आंतरराष्ट्रीय स्वीकृत अंक मूलतः भारतीय हैं और सारी दुनिया की यात्रा करते हुए, मामूली बदल के साथ और अंग्रेजों के साथ भारत में लौट आए हैं। वे मूलतः इन ब्राह्मी अंकों से विकसित हुए हैं—

ये भारतीय संकेत प्रथमतः प्रतिहार शासक मिहिरभोज की ग्वालियर प्रशस्ति में उपयोग में लाए गये (वर्ष ८७०) संकेत हैं।

अंक पद्धति

प्राचीन सुमेर-बेबिलोन की अंक पद्धति ६० पर आधारित थी। उन्होंने वृत् की परिधि को ३६० हिस्सों में बांटा था। हम आज भी वृत् को ३६० डिग्रियों में, एक डिग्री को साठ मिनटों में और एक मिनट को ६० सेकंड में बांटते हैं। लेकिन यह अज्ञात है कि किस कारण उन्होंने गणना के लिए साठ को आधार बनाया।

मय-सभ्यता की अंक-पद्धति २० पर आधारित थी। मनुष्य की कुल २० उंगलियां होती हैं। उनकी काल गणना बहुत विकसित थी। लेकिन स्पेनी उपनिवेशवादियों ने सोलहवीं सदी में इस सभ्यता के पुरावशेषों को बड़ी निर्दयतापूर्वक नष्ट कर डाला।

पुरानी अंक पद्धतियां

ये पद्धतियां वैज्ञानिक नहीं थीं। अन्य देशों की तरह ही हमारे देश में भी, प्राचीन काल में, वर्तमान अंक-पद्धति से भिन्न अंक-पद्धतियां अस्तित्व में थीं। अशोक के तथा अन्य अभिलेखों में इनके दर्शन होते हैं। वैदिक, जैन, बौद्ध आदि स्वतंत्र गणन पद्धतियां थीं, भले ही उनमें कुछ समानताएं थीं।

लेकिन आधुनिक अंक-पद्धति का जन्म भारत में हुआ। हम नहीं जानते कि किस महान मस्तिष्क ने इस नई अंक-पद्धति को जन्म दिया। ईसा की छठी सदी के अभिलेख में पहली बार हमें इस नई अंक-पद्धति के दर्शन होते हैं। लेकिन साहित्यिक प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि ईसा की आरंभिक सदियों में, भारत में इस नई अंक-पद्धति का जन्म हो चुका था।

शून्य पर आधारित दशमलव स्थानमान अंक-पद्धति का आविष्कार, वर्णमालात्मक लिपियों के अस्तित्व में आने के बाद हुआ। यह ब्राह्मी अंक-संकेतों पर आधारित है।

सिंधु सभ्यता

वर्ष १९२१ में, पहली बार सिंधु सभ्यता के दो नगरो-मोहनजोदारो और हडप्पा-की खोज हुई। अभी ये स्थल पाकिस्तान में हैं। विभाजन के बाद सिंधु-सभ्यता के सौ से अधिक नए स्थल खोजे गये। इनमें रोपड़(पंजाब), कालिबंगा(राजस्थान), लोथल(काठियावाड़) प्रमुख हैं।

यह सभ्यता ताम्रयुग की सभ्यता है। इस सभ्यता के विभिन्न स्थलों से बहुत सारे पुरावशेष मिले हैं। लेकिन उनमें लोहे की कोई वस्तु नहीं मिली।

पुरावशेषों के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि इस सभ्यता का उदय ई.पू. २७०० के आसपास हुआ था और ह्रास ई.पू. १७०० के आसपास। उदय का समय और भी पीछे जा सकता है।

अवशेषों में लगभग २००० मुहरें मिली हैं। ये चीनी मिट्टी, हाथीदांत या शैल खड़ी की बनी हुई हैं। उनपर पेड़-पौधों, पशु-पक्षी तथा मानव की आकृतियां हैं। इसके साथ-साथ लिपि-संकेत भी मिले हैं। पिछले पचास सालों के प्रयत्नों के बावजूद इस सभ्यता की लिपि को पढ़ा नहीं जा सका। इतना पता चला है कि सिंधु लिपि दायी ओर से बायीं ओर लिखी जाती थी। यह भी पता नहीं चला कि वे कौन सी भाषा बोलते थे। लिपि-संकेतों में कहीं-कहीं खड़ी लकीरें देखने मिलती हैं। कुछ पुराविदों के अनुसार ये खड़ी रेखाएं सिंधु सभ्यता के अंक संकेत हैं। लेकिन आज इसे अनुमान ही मानना होगा। अधिक से अधिक तेरा खड़ी रेखाएं खोजी गई हैं।

सिंधु सभ्यता नगरी सभ्यता थी और उसके सुमेर-बाबिलोन के साथ व्यापारी संबंध थे। ऐसी विकसित सभ्यता को लिपि, अंक संकेत तथा माप-तौल के साधनों की आवश्यकता होती ही है। सिंधु सभ्यता के विभिन्न स्थलों से बहुत सारे छोटे बांट मिले हैं। अधिकांश बांट आयताकार हैं। कुछ बेलनाकार भी हैं। सबसे छोटे बांट का वजन 0.८७ग्राम है। इन बांटों के अनुपात हैं- १:२:४:८:१६:३२:६४:१६०:३२०:६४०:१६००:३२००:८०००। इनमें १३.७९ ग्राम भार के बांट सर्वाधिक मिले हैं। ये १६ के अनुपात वाले बांट हैं। अर्थात् इस नाप-तौल में १६ का विशेष महत्व था। सिंधु सभ्यता के लोग तराजू और बांट का उपयोग करते थे। उत्खनन में तराजू के पलड़े भी मिले हैं। ऐसा लगता है कि उनकी माप-तौल प्रणाली १६ की इकाई पर आधारित थी। भारत में मेट्रिक प्रणाली के प्रचलन के पहले माप-तौल में १६ का बड़ा प्रचलन रहा। हो सकता है इसका सीधा संबंध सिंधु सभ्यता से रहा हो। अतः यह भी हो सकता है कि उनकी अंक-पद्धति भी संभवतः १६ पर ही आधारित हो।

वैदिक पद्धति

ऋग्वैदिक काल में मापन के लिए तराजू तथा बांटो का उपयोग नहीं होता था। उस समय खारी और द्रोण जैसे बर्तननुमा माप होते थे। अर्थात् गणना का आधार आयतन था, वजन नहीं। (इतना निश्चित कि सिंधु सभ्यता के लोग, बाद के वैदिक आर्यों से ज्ञान-विज्ञान में आगे थे।)

ऐसा माना जाता है कि ई.पू. १५०० के आसपास आर्य, इस देश में आए। (यहाँ हम इस विवाद में नहीं पड़ना चाहते कि आर्य भारत में बाहर से आए या यहीं के मूल निवासी थे। उस समय समाज घुमन्तु अवस्था में ही था और स्थलांतर होते-होते ही मानव समाज सारी दुनिया में फैला। तो वे अगर नजदीकी किसी क्षेत्र से यहाँ अगर पहुंचे होंगे तो इसमें अपमानजनक बात क्या होगी?)

लेकिन ई.पू. १५०० के दरम्यान आर्यों को लिपि का ज्ञान नहीं था। वेद लिपिबद्ध नहीं थे। उन्हें कंठस्थ किया जाता था, इसी कारण उन्हें 'श्रुति' कहते हैं। उस दरम्यान का समाज या कहीं आर्य समाज कबिलाई अवस्था में था। नगरों या बड़े राज्यों की स्थापना नहीं हुई थी। उनकी भले ही अपनी लिपि न हो लेकिन अंक संकेत तो जरूर रहे होंगे। संख्यात्मक गणना (संख्या-संज्ञाओं) का उल्लेख वैदिक साहित्य में भी मिलता है। संस्कृत भाषा के एक, द्वि, त्रि, चतुः, पंच, षट्, सप्त, अष्ट आदि शब्द बहुत पुराने हैं। (लगभग इसी प्रकार की संख्या-संज्ञाएं, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं में मिलती हैं। इसी से सिद्ध होता है कि यूनानी, पारसी, भारतीय आर्य तथा पश्चिमी एशिया के समाज, भाषा की दृष्टि से एक दूसरे के भाई-बंधु थे। इसी आधार पर भाषा परिवारों की पहचान की जाती है।

लेकिन यह स्पष्ट है कि उस समय भी गणना पद्धति दस पर आधारित थी या दशमलव थी और उसका आधार हमारे हाथों की दस उंगलियों के सहारे की जाने वाली गणना थी। लेकिन यह दशगुणोत्तर पद्धति, वर्तमान दशमलव पद्धति से अलग थी।

ऋग्वेद में गणना की सबसे बड़ी इकाई अयुत (१०,०००) है। आगे यजुर्वेद में है -
नियुत (१,००,०००), प्रयुत (१०,००,०००), अर्बुद (१,००,००,०००), न्यर्बुद (१०,००,००,०००),
समुद्र (१,००,००,००,०००), मध्य (१०,००,००,००,०००), अन्त (१,००,००,००,००,०००),
परार्ध (१०,००,००,००,००,०००)।

वेदों में विकसित अंक-पद्धति नहीं है। प्राथमिक दर्जे से अधिक गणित की, ऋग्वैदिक समाज को आवश्यकता भी नहीं थी।

ईसा पूर्व छठीं सदी तक दक्षिण की गोदावरी नदी तक सोलह जनपद राज्य अस्तित्व में आ चुके थे। अब उन्हें लिपि, विकसित अंक-पद्धति तथा सिक्कों की आवश्यकता अनुभव होने लगी। ब्राह्मी लिपि, ईसा पूर्व सातवीं-आठवीं सदी में अस्तित्व में आ चुकी थी। लगभग उसी दरम्यान सिक्कों का प्रचलन हुआ। लगभग इसी समय सूत्रों के रूप में वेदांग साहित्य रचा गया। वेदांग के अंतर्गत शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद तथा ज्योतिषशास्त्र का अंतर्भाव होता है। कृषि कर्म के लिए सही समय की जानकारी आवश्यक होती थी। सही समय अर्थात् शुभ मुहूर्त। इसलिए कालगणना अर्थात् पंचांग का विकास हुआ। वेदांग-ज्योतिष काल गणना की सबसे पुरानी पुस्तक है। इसका एक श्लोक है -

यथा शिखा मरायुणां नागानां मणयो यथा । तद्वद्वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ॥

(जिस प्रकार मोरों की शिखाएं और नागों की मणियाँ सबसे ऊंचे स्थानों पर होती हैं उसी प्रकार वेदांग शास्त्रों में गणित का स्थान सर्वोपरि है।)

यहाँ गणित का अर्थ कालगणना या ज्योतिष है। प्राचीन भारत में ज्योतिष के अंतर्गत ही गणित का विकास हुआ और गणित की जो जानकारी मिलती है, वह ज्योतिष ग्रंथों में ही मिलती है। बाद के गणितज्ञ आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर, भास्कराचार्य इनके ग्रंथ आज की दृष्टि से शुद्ध गणितीय ग्रंथ नहीं हैं। वे मूलतः ज्योतिषीय ग्रंथ ही हैं। प्राचीन भारत में विद्यार्थियों को पढ़ाए जाने वाले विषयों के अंतर्गत गणित (अंकगणित) का अंतर्भाव था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का आधार संख्या-गणनाशास्त्र ही है।

ऋग्वेद में गणना की सबसे बड़ी इकाई अयुत(दस हजार) तो यजुर्वेद में परार्ध(१०^{१२}) है। चूंकि गणना का आधार दस था इसलिए दस गुणोत्तर या शत गुणोत्तर संख्या-संज्ञाओं को बढ़ते जाने में कोई दिक्कत नहीं थी। रामायण, महाभारत में ऐसी महाबृहत् संख्या-संज्ञाएं मिलती हैं। रावण का एक गुप्तचर राम की सेना की संख्या की जानकारी देते हुए कोटि, शंख, महाशंख, वृंद, महावृंद, पद्म, महापद्म, खर्व, महाखर्व, समुद्र, महौघ इन शत गुणोत्तर संज्ञाओं के क्रम की गिनती करता है। महौघ का अर्थ है १०^{५५}। मनुष्य और वानर के इस धरती पर अवतरण से आज तक क्या इतने जीव पैदा हुए ? और हम इसे तत्कालीन वास्तवता मान लें, चूंकि वह रामायण में दी है इसलिए? (गुणाकर मुले)

बौद्ध और जैन ग्रंथों में भी ऐसी महाबृहद् संख्या-संज्ञाएं मिलती हैं। जैसे बौद्ध ग्रंथ ललित-विस्तार (ईसा दूसरी सदी) में सबसे बड़ी संख्या तल्लक्षणा(१०^{५३}) तो पाली ग्रंथ -कच्चायन व्याकरण में - असंख्य-१०^{१४०}। बुद्ध या महावीर का समकालीन कोई अभिलेख अभी तक नहीं मिला है।

हैं।

पहली बार अशोक के अभिलेखों में अंक-संकेतों के दर्शन होते हैं वह भी शून्य विरहित।
शुरू में अंक संकेतों की संख्या अधिक थी। अशोक के अधिकतर अभिलेख ब्राह्मी लिपि में

शून्य

- गणित में शून्य तथा स्थानमान का अन्योन्य साधारण महत्व है।
 - विद्वानों के अनुसार 'शून्य' एक अवधारणा भी है और एक अंक भी। शून्य की अवधारणा, शून्य अंक से काफी पुरानी है। इसे इस तरह प्रस्तुत किया जाता है- यह कथन कि मेरे पास पेन नहीं है - यह सत्य का कथन है। लेकिन यही बात अगर इन शब्दों में कहीं जाए कि मेरे पास शून्य पेन हैं तो शून्य यह एक अवधारणा बन जाती है। इसके स्थान पर अगर कहा जाए कि मेरे पास होनेवाले पेनों की संख्या शून्य है, तो यहाँ शून्य यह संख्या हो गई।
 - ईसा से लगभग डेढ़ हजार वर्ष पूर्व बेबिलोनिया के गणित में साठ पर आधारित स्थानमान पद्धति थी। लेकिन वह कुछ अस्पष्ट ही थी। उसमें शून्य का उपयोग नहीं था।
 - सिकंदर के बाद के काल (सेल्यूकी काल) में शून्य का संकेत अस्तित्व में आया था, लेकिन उसका उपयोग केवल ज्योतिषीय अभिलेखों में ही मिलता है। संख्या के अंत में कभी नहीं।
 - मध्य अमेरिका की मय सभ्यता में (ईसा ३५० के दरम्यान) शून्य तो दिखाई देता है। लेकिन गणितीय गणना में वह नदारद है।
 - चीनी लिपि में शून्य के लिए कोई संकेत नहीं है। लेकिन वहीं, दंड अंक पद्धति नाम की एक अंक पद्धति प्रचलन में थी। इसमें खड़े-आड़े दण्डों का उपयोग होता था। इसमें शून्य का भी संकेत था।
- भारत में-
- ऋग्वेद के द्वितीय मंडल के ऋषि गृत्समद को शून्य की खोज का श्रेय दिया जाता है। लेकिन वैदिक काल में शून्य की धारणा ने जन्म नहीं लिया था। ऋग्वेद में शून्य शब्द नहीं मिलता। मिलता है 'खे' शब्द। जिसका अर्थ है 'सुराख' या 'छेद'। बाद में शून्य शब्द मिलता तो है लेकिन 'रिक्त या खाली स्थान' इस अर्थ में। कुछ अन्य प्राचीन ग्रंथों में इन्हीं अर्थों में इसका उपयोग किया जाता था और बिंदु के आकार में किया जाता था।

- आर्यभट्ट प्रथम : अधिकांश विद्वान इन्हें शून्य तथा स्थानमान की खोज का श्रेय देते हैं। वह इस कारण कि ईसा वर्ष ४९९ में लिखी उनकी खगोलीय पुस्तक आर्यभट्टीय में 'शून्य' तथा 'स्थानमान का उल्लेख है। इसमें आर्यभट्ट ने दशमिक स्थानमान की व्याख्या इस प्रकार दी है - स्थानम् . स्थानम् दस गुणम् (स्थान से अगले स्थान का मान दस गुना।)
- लेकिन वर्ष १८८९ में गणित के बहुमुल्य ग्रंथ" बखशाली ' की एक पांडुलिपि (कुछ ७० पन्ने) बखशाली गांव के निकट मिली थी। यह भोजपत्र पर लिखी हुई है और बहुत ही जीर्ण अवस्था में है। इसकी भाषा के आधार पर शुरू में तो विद्वानों ने इसका समय ईसा पूर्व से लेकर तो ईसा ३०० के दरम्यान का बताया था। लेकिन कार्बन डेटिंग तंत्र से अंततः इसका समय निश्चित किया गया। ऑक्सफ़र्ड विद्यापीठ में गणित के प्राध्यापक मार्क ड्यू सॉटॉय के अनुसार शून्य की निर्मिति तीसरी सदी की है। वर्गमूल निकालने के बखशाली सूत्र में शून्य, ऋणात्मक संख्याओं आदि का उल्लेख मिलता है। बखशाली हस्तलिखित में जो बिंदु उपयोग में लाए गये हैं, वे शून्य के निर्देशक हैं। उपरोक्त हस्तलिखित सन १९०२ से ब्रिटेन के ब्रिडलियन वाचनालय में रखा हुआ है। अब बखशाली गाँव पाकिस्तान में है।
- छंदशास्त्र के आचार्य पिंगल के छंदसूत्र में शून्य का उपयोग अभाव या घटाने की क्रिया के लिए किया गया है। लेकिन कुछ विद्वानों का दावा है कि छंदसूत्र भले ही छंदों के नियम बनाने के लिए था। लेकिन छंदों के नियमों को यदि गणितीय दृष्टि से देखें तो एक तरह से वे द्वी अंकीय (Binary) गणित का कार्य करते हैं तो दूसरी दृष्टि से उनमें दो अंकों के घन समीकरण और चतुर्घाती समीकरण के हल दिखते हैं। अतः इसके साथ शून्य की खोज को जोड़ा जा सकता है। तो यह समय ईसा पूर्व २०० वर्ष हो जाता है।
- वैसे भारत में शून्य(अंक सहित) का सर्वप्रथम लिखित प्रमाण ईसा ४५८ के एक जैन ग्रंथ (लोकविभाग) में मिलता है। पाश्चात्य विद्वान इसे भी शून्य की खोज की प्रथम तिथि मानते हैं।
- मध्यप्रदेश के ग्वालियर के एक मंदिर की दीवार पर (नवीं सदी) शून्य का चिन्ह खुदा हुआ मिला था। बालाघाट जिले के राघोली में शैलवंशी राजा जयवर्धन (द्वितीय) के एक दानपत्र में (आठवीं सदी) पहली बार शून्य का संकेत देखने मिलता है। नई अंक पद्धति में लिखी गई संख्या '३०' में शून्य, लघुवृत्त के रूप में देखने को मिलता है।
- संक्षेप में शून्य प्रचलन में आने का समय तीसरी सदी लिया जा सकता है।

दशमान पद्धति

यह शून्य सहित केवल दस अंक संकेतों पर आधारित दशमलव स्थानमान अंक पद्धति है। यह अंक-पद्धति, मानव प्रतिभा की महान उपलब्धि है। इस अंक-पद्धति की खोज भारत में हुई। अंक संकेतों के साथ यह भारत की, विश्व संस्कृति को सबसे बड़ी देन है।

- शून्य : शून्य स्पष्टतः भौतिक अभाव का द्योतक है। लेकिन इस अंक-पद्धति में यही शून्य एक विलक्षण रूप धारण कर लेता है।
- अनंत : शून्य की तरह 'अनंत' का भी कोई भौतिक अस्तित्व नहीं है।
- फिर भी 'शून्य' और 'अनंत' गणित की बुनियादी धारणाएं हैं।
- ब्रह्माण्ड के परिमाणों को व्यक्त करने वाली, यह अंक-पद्धति है।
- जैन ग्रंथ अनुयोगद्वार-सूत्र में 'अंकस्थान' शब्द आया है। यह शब्द अंक-संकेतों के स्थानमान का पर्यायवाची है।
- इस नई पद्धति की खोज ईसा की शुरु की सदियों में हो चुकी थी लेकिन उसे भारत में ही स्थापित होने आगे की लगभग सात-आठ सदियाँ लगीं। इस दरम्यान दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में भारतीयों ने अपने उपनिवेश, राजवंशों के साथ स्थापित कर लिए थे। स्वाभाविक तौर पर उनके साथ संस्कृत और पाली भाषाएं तथा भारतीय ब्राह्मी लिपि, छठी-सातवीं सदी में ही वहां पहुंच गयी थी। साथ में भारतीय अंक-पद्धति भी। रोम के साथ भी दक्षिण भारत का व्यापार ईसा की पांचवीं सदी तक चल रहा था। पश्चिमी एशिया के देशों में इस्लाम के उदय के पहले ही भारतीय अंक-पद्धति पहुंच चुकी थी। इस्लाम की स्थापना के सौ वर्षों के अंदर ही अरबों का साम्राज्य स्पेन से लेकर तो सिंध तक फैल गया था।
- ईसा की नवीं सदी के पूर्वार्द्ध में बगदाद में एक बहुत बड़े गणितज्ञ हुए जिनका नाम 'इब्न मूसा अल ख्वारिज्मी' था। उन्होंने ज्योतिषशास्त्र और गणित पर ग्रंथ लिखे, लेकिन गणित के ग्रंथ अधिक प्रसिद्ध हुए। उन्होंने अपने अंकगणित के ग्रंथ में (गुबार) भारतीय अंकों तथा अंक पद्धति का उपयोग किया। इस अरबी ग्रंथ का ११२६ ई. के दरम्यान लैटिन भाषा में भी अनुवाद हुआ। इस अनुवादित पुस्तक के नाम का अर्थ है, हिंद के अंकों पर ख्वारिज्मी की पुस्तक। ख्वारिज्मी ने इन भारतीय अंकों को 'गुबार अंक' कहा है। इसी पुस्तक के माध्यम से यूरोपीय गणितज्ञों को भारतीय अंक-पद्धति और अंकगणित की जानकारी मिली। कई अरबी विद्वानों ने इन अंक-संकेतों को 'हिंदिशा' (हिंद के अंक) कहा है। समय के साथ गुबार अंक स्पेन पहुंचे। अल ख्वारिज्मी के कारण ही यूरोपीय गणित को 'अलगोरिज्म' तथा 'अलजेब्रा' ये शब्द मिले। अर्थात् गणित की कई विधियों,

शब्दों और आधुनिक अंक-पद्धति के लिए यूरोप, अरबों का ऋणी है और अपरोक्ष रूप से भारतीय अंक-पद्धति का। ईसा की दसवीं सदी से, यूरोप के लोगों को अरबों के माध्यम से यूनानी एवं भारतीय ज्ञान-विज्ञान की जानकारी मिलने लगी (रोमन साम्राज्य के पतन के बाद यूरोप में ज्ञान-विज्ञान की अवनति शुरू हुई थी)। इसलिए लगभग ५०० से लेकर तो आगे के १००० ईसा वर्षों तक के काल को यूरोप के अंधकार का युग कहा जाता है।) यूरोप ने उसे अपना लिया। चूंकि ये अरबों से मिले थे अतः वे अब भी इन्हें अरबी अंक कहते हैं। जबकि ये वास्तव में भारतीय अंक-संकेत हैं। गणित के इतिहासकार अल्फ्रेड हूपर तथा फ्लोरियन काजोरी ने साफ कहा है “ अरबों ने ही सबसे पहले, स्पेन में भारतीय अंक-पद्धति का प्रचार किया।”

बीट्स और बाइट्स

- संगणकों के चिप्स के इलेक्ट्रॉनिक किट्स को बिजली देने पर वे या तो ऑन(१) या ऑफ़(०) ऐसी दो स्थितियाँ दर्शाती हैं। इन दो स्थितियों पर आधारित यह मापन पद्धति है।
- दशमान पद्धति में दस अंक होते हैं ०,१,२,३,४,५,६,७,८,९।
- लेकिन उपरोक्त पद्धति में ० और १ ये दो ही अंक होने के कारण इसे द्विमान (बायनरी) पद्धति कहते हैं। इस पद्धति में बीट (bit) अर्थात् बायनरी डिजिट यह जानकारी के लिए उपयोग में लाया जाने वाला सबसे छोटा मापक है। केवल दो ही अंकों का उपयोग करते हुए अगली बड़ी संख्याएं कैसी दिखाई जाए ? उसके लिए अंकों का स्थानमूल्य उपयोग में लाया जाता है। दशमान पद्धति में १५ लिखते समय, दशम स्थान के एक का मूल्य १० होता है | तो वही १५ में शतम स्थान के एक का मूल्य सौ होता है।
- इसी तरह द्विमान पद्धति में भी स्थानमूल्य १,२,४,८,१६ ऐसा सीधे हाथ से बायीं तरफ जाते समय दोगुना होता जाता है। इस पद्धति में पांच के लिए १०१ अर्थात् $४+०+१$ या फिर १९ के लिए १००११ अर्थात् $१६+०+०+२+१$ ।
- शुरू की संगणक चिप्स आठ बिट्स पर काम करने वाली होती थीं। इस कारण आठ बिट्स का मापन रूढ़ होने लगा और उसका नामकरण हो गया ‘बाइट’ (Byte) अर्थात् बायनरी टर्म। अब तो १६,३२,६४ बिट्स पर काम करनेवाले संगणक आए हैं। संगणक की स्मृति क्षमता बढ़ती गयी वैसे एक किलोबाइट(KB)=१०२४ बाइट्स, एक मेगाबाइट(MB)=१०२४ किलोबाइट्स, एक गिगाबाइट(GB)=१०२४ मेगाबाइट्स आदि माप सामने आए।

- b-बिट, B-बाइट ऐसे संकेत उपयोग में लाए जाते हैं।

मापन

दैनंदिन जीवन में हमें कई भौतिक वस्तुओं का मापन करने की आवश्यकता होती है। लेकिन पहले मापन संबंधी कोई नियम नहीं थे। कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था। राजा अपने मन से मापन के एककों की घोषणा करते थे। उदा.- वर्ष ११२० में, इंग्लैंड के राजा ने घोषणा की थी कि यार्ड यह लंबाई के मापन का एकक होगा। एक यार्ड लंबाई याने राजा के नाक के सिरे से, उसके फैले हुए हाथ के सिरे तक का अंतर, तो फ्रांस के लुई-१४ इस राजा के पाव की लम्बाई याने एक फीट अंतर। परिणामतः अलग-अलग स्थानों के एककों में कोई वस्तुनिष्ठ संबंध नहीं होता था। लेकिन जब दुनिया करीब आने लगी तथा लेनदेन बढ़ने लगा तो बड़ी दिक्कतें आने लगीं। फिर यह विचार सामने आया कि मापनों के एककों में कोई प्राकृतिक तत्व होना चाहिए।

पहले, भौतिक राशियाँ अलग-अलग एककों में गिनी जाती थीं। जैसे इंच, फीट, वीत, हाथ, वार, गज आदि (लंबाई), सेर, मन आदि (वजन)। साल १८३० में जर्मन वैज्ञानिक कार्ल फ्रेडरिक गाऊस ने कल्पना रखी कि जागतिक स्तर पर एकात्मता तथा सुसूत्रता आने के लिए, कोई भी एकक यह लम्बाई, वस्तुमान तथा समय इन भौतिक राशियों के एककों से बनाएं जाएं।

मापन के लिए दो बातें आवश्यक हैं। विशिष्ट बात का एकक तथा उसकी कीमत। जैसे दो गाँवों के बीच की दूरी दस किलोमीटर है। यहाँ किलोमीटर यह दूरी का एकक, तो दस यह उसकी कीमत।

फिर फ्रांस में राज्यक्रांति हुई इसके बाद ' फ्रेंच अँकेडमी ऑफ सायंसेज ' की स्थापना हुई। इसके अंतर्गत सन १७९० में फ्रांसीसी सरकार ने एक समिति का गठन किया जिसके अँन्तोनी लॅव्हेँझिए, लॅप्लास लिजांड्रे, आदि वैज्ञानिक सदस्य थे। इस समिति ने मेट्रिक मापन पद्धति का विकास किया और ३० मार्च १७९१ इस दिन से इसका उपयोग शुरू हुआ। लेकिन उसका पूरी तरह क्रियान्वयन वर्ष १७९९ तक ही हो सका। आज आम तौर पर सारी दुनिया ने इसे अपनाया है। लेकिन अमेरिका आदि कुछ देशों में अभी भी फीट-पौंड ये ब्रिटिश एकक प्रचार में हैं। उनका मेट्रिक पद्धति के साथ संबंध इस प्रकार है -

एक फीट=0.३०४८ मीटर, एक मीटर=३.२८१ फीट। एक पौंड=0.४५३६ किलोग्रॅम, एक किलोग्राम=२.२०५ पौंड।

अभी एस्.आय. एकक पद्धति प्रचलन में है। यह सुधारित मेट्रिक पद्धति ही है। इसे वर्ष १९४८ में सुझाया गया तथा उसका १९६० से उपयोग शुरू हुआ। इसमें सात भौतिक राशियों के एकक मूलभूत माने जाते हैं। वे हैं-

१) लम्बाई (मीटर), २) वस्तुमान (किलोग्राम), ३) काल (समय-सेकंड), ४) तापमान (केल्विन), ५) विद्युतधारा (अम्पियर), ६) किसी वस्तु का मोल, ७) प्रकाश की तीव्रता (कैंडला)। इनसे ही सभी भौतिक राशियाँ और उनके मूल्य प्राप्त किए जाते हैं।

फ्रेंच क्रान्ति के बाद जो विधान समिति बनाई गयी थी, उसने निर्णय लिया था कि एककों की परिभाषाएं तर्कशुद्धता तथा प्राकृतिक घटनाएँ इनके आधार पर होनी चाहिए। मापन की मेट्रिक पद्धति यह फ्रेंच क्रांति के बाद दुनिया को मिली बहुत बड़ी देन है। बाद में इन एककों की कीमतें अधिकाधिक परिष्कृत की जाती रहीं।

एककों का मानकीकरण

वर्ष १९४६ में, २५ देशों के प्रतिनिधि एकत्र आए और उन्होंने "इंटरनेशनल ऑर्गेनाइजेशन फॉर दी स्टैंडर्डायज़ेशन " अर्थात् ISO स्थापित की। उसका कार्य १९४७ में आरंभ हुआ। ISO यह संज्ञा अंग्रेज़ी के आद्य अक्षरों नहीं बनी तो ग्रीक भाषा के 'आयसोस' अर्थात् समान, इस शब्द से बनी है।

जून १९४७ में ' इंडियन स्टैंडर्ड इन्स्टिट्यूट (ISI) ' यह संस्था एक सोसाइटी के रूप में बनाई गई। डॉ. लालचंद वर्मन उसके प्रथम संचालक बने। संस्था ने बनाया प्रथम मानक यह अपने राष्ट्रीय ध्वज का था। एक एप्रिल १९८७ को, संसद से, इस संस्था को 'ब्यूरो ऑफ इंडियन स्टैंडर्ड' ऐसा उच्च दर्जा मिला।

लम्बाई (अंतर)

किसी भी रेखा के दो भिन्न बिंदुओं को जोड़ने वाली एक और एक ही (सीधी) रेखा होती है। रेखा यह अनंत बिंदुओं का संच है, तो किसी भी दो बिंदुओं के बीच के हिस्से को 'रेखा खंड' कहते हैं। अर्थात् रेखा खंड के दो सिरे होते हैं। इन दो बिंदुओं के बीच का अंतर यानी उस रेखा खंड की लम्बाई। लम्बाई यह एक मूलभूत भौतिक राशि है। इसके लिए पहले भिन्न-भिन्न एकक थे। एप्रिल १९५७ से मीटर पद्धति भारत में मान्य हो गयी।

ऐतिहासिक दृष्टि से मानकीकृत किया गया प्रथम एकक है ' मीटर '। शुरू में मीटर की व्याख्या इस तरह की गई- पृथ्वी के दक्षिणोत्तर परिधि के चतुर्थ हिस्से का एक करोड़वां हिस्सा। इसके लिए बार्सिलोना और डंकर्क इन दो शहरों के ऊपर से गुजरने वाले रेखावृत्त का चाप ध्यानपूर्वक गिना गया। इस व्यायाम के लिए १७९२ से लेकर तो वर्ष १७९८, इतना लम्बा समय लगा।

बाद में वर्ष १८७९ में एक मीटर सटीक लम्बाई वाली प्लैटिनम धातु की पट्टी बनाई गई और उसे 'इंटरनेशनल ब्यूरो ऑफ वेट्स अँड मेज़र्स' संस्था के कार्यालय में शून्य अंश सेल्शियस तापमान पर रखा गया। लेकिन फिर ध्यान में आया कि इस पट्टी की लम्बाई और दक्षिणोत्तर रेखावृत्त के एक चौथाई हिस्से की लम्बाई का एक करोड़वां हिस्सा, इनमें (1.८×10^{-4}) मीटर का अंतर है। अंततः एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में इस पट्टी की लम्बाई को ही एक मीटर के तौर पर मान्यता दी गयी।

इसके बाद सन् १९६० में मीटर की नए ढंग से व्याख्या की गयी - क्रिप्टॉन इस वायुरूप मूलद्रव्य के छह समस्थ (Isotops) हैं। इनमें से क्रिप्टॉन-८६ में ३६ इलेक्ट्रॉन्स अणुकेंद्र के गिर्द घूमते रहते हैं। किसी भी अणु में इलेक्ट्रॉन्स कुछ विशिष्ट कक्षाओं में ही भ्रमण कर सकते हैं। प्रत्येक कक्षा का आकार, स्थिति तथा विस्तार, कुछ विशिष्ट अंकों के समूह द्वारा निर्देशित किया जाता है। उन्हें क्वांटम क्रमांक कहा जाता है। अणु को बाहरी ऊर्जा प्राप्त हुई तो इलेक्ट्रॉन्स बाहर की कक्षा में छलांग लगाते हैं। लेकिन वे वहां अधिक समय तक टिक नहीं सकते। वे अत्यंत अल्प समय में अपनी मूल कक्षा में लौट आते हैं और साथ-साथ अपने पास की अतिरिक्त ऊर्जा उत्सर्जित करते हैं। वही हमें रेखा के स्वरूप में, वर्णपट में देखने मिलती हैं। अणुओं की कक्षाएं दर्शाने के लिए s,p,d,f आदि अंग्रेजी अक्षरों का उपयोग किया जाता है। मुख्य कक्षाओं में भी कई दुय्यम कक्षाएं हो सकती हैं। वे कक्षाएं इन अक्षरों से संलग्न रहनेवाले अंकों द्वारा दर्शाई जाती हैं। क्रिप्टॉन-८६ मूलद्रव्य की ऐसी कई कक्षाओं में से $(2p^{10})$ और $(4d^9)$ ऐसी दो विशिष्ट कक्षाएं हैं। $(4d^9)$ इस बाह्य कक्षा से इलेक्ट्रॉन ने $(2p^{10})$ इस अंतर कक्षा में छलांग लगाई तो जो ऊर्जा मुक्त होती है वह नारंगी प्रकाश रेखा के रूप में हम देख सकते हैं। इस विशिष्ट प्रकार की तरंग-लम्बाई का उपयोग, मीटर की प्रमाणित व्याख्या करने के लिए किया गया है -

क्रिप्टॉन-८६ मूलद्रव्य के अणु में $(4d^9)$ इस कक्षा से $(2p^{10})$ इस कक्षा में इलेक्ट्रॉन ने छलांग लगाने के दौरान उत्सर्जित होने वाली प्रकाश तरंग की १६५०७८३.७३ तरंगें, अर्थात् एक मीटर। क्रिप्टॉन-८६ से उत्सर्जित हुई तरंग की इस विशिष्ट तरंग-लम्बाई में किसी भी बाह्य कारण से बदल नहीं होता।

वस्तुमान और वजन

वस्तुमान यह पदार्थ के जडत्व का निदर्शक है। पदार्थ की स्थिति या गति बदलने के लिए उस पदार्थ पर बाह्य बल लगाना पड़ता है। पदार्थ की प्रवृत्ति यही रहती है कि अपनी स्थिति या गति कायम रखे। इस कारण वह बाह्य बल को प्रतिरोध करता है। पदार्थ की ओर से बाह्य बल को होने वाला यह विरोध, यही जडत्व का मापन है। जितना वस्तुमान अधिक उतना बाह्य बल को होने वाला प्रतिरोध अधिक।

- पदार्थ अंतर्गत कणसंचय को 'वस्तुमान' कहते हैं।
- यह भी एक भौतिक राशि है।
- भारत में एक अक्टूबर १९५५ से वस्तुमान गिनने के लिए ग्रॅम, किलोग्रॅम, मेट्रिक टन आदि एकके उपयोग में लायी जाने लगीं।

समझ लो एक ही आयाम के दो घन हैं। एक अल्युमिनियम का तो दूसरा लोहे का। लोहे के अणुकेन्द्र में अल्युमिनियम के अणुकेंद्र से अधिक प्रोटॉन और न्यूट्रॉन कण होते हैं। इस कारण लोहे के अणु का वस्तुमान अधिक होता है। अणुओं की संख्या समान होने पर भी लोहे का वस्तुमान अधिक होता है।

भार या वजन--

पदार्थ का वजन = वस्तुमान $\times$ गुरुत्वाकर्षणीय त्वरण

गुरुत्वाकर्षणीय त्वरण सब जगह समान नहीं होता। वह अक्षांश तथा भूपृष्ठ से ऊँचाई के अनुसार बदलता है। अंतरिक्षयान में तो पदार्थ का वजन शून्य होता है। (वस्तुमान बाह्य परिस्थिति के अनुसार बदलता नहीं।) चंद्र पर हमारा वजन पृथ्वी की तुलना में छठा हिस्सा होगा चूंकि चांद का गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी के $1/6$ ही है। इस तरह पदार्थ का वजन पूरी तरह गुरुत्वाकर्षण पर निर्भर है। हम वस्तुमान इस शास्त्रीय परिभाषा के शब्द के स्थान पर ' वजन ' या ' भार ' शब्द उपयोग में लाते हैं। लेकिन दोनों में जो फर्क है उसे हमें ध्यान में लेना चाहिए।

(किसी वस्तु का ' भार ' पृथ्वी से ऊपर कुछ दूरी पर या पृथ्वी के अंदर की तुलना में, पृथ्वी की सतह पर अधिकतम होता है ।)

(वजन यानी जितने बल से पृथ्वी, वस्तु को अपनी ओर खींच रही है।)

- पिंडों का जमीन पर गिरना।
समझो ' A ' और ' B ' दो पिंड हैं। दोनों एक दूसरे को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। उनके बीच समझो 'x' यह परिणामी बल है। अब समझो ' A ' का द्रव्यमान दोगुना कर

दिया तो हम मूल द्रव्य मान जैसे ही दो पिंड समझ सकते हैं। हरेक को 'B' पिंड मूल बल से ही आकर्षित करेगा। इस प्रकार पिंड 'A' एवं 'B' के मध्य कार्य करने वाला बल मूल बल से दोगुना हो जाएगा। अब समझो 'B' को तिगुना वस्तुमान वाला कर दिया तो अंतिम बल और तीन गुना बढ़ जाएगा।

- उसी तरह दोगुना भार वाले पिंड पर लगने वाला गुरुत्वाकर्षण बल दोगुना होगा परंतु उसमें द्रव्यमान (जडत्व) भी दो गुना होगा। न्यूटन के नियम के अनुसार दोनों प्रभाव एक दूसरे को निरस्त कर देंगे। इस कारण सभी स्थितियों में त्वरण एक जैसा ही होगा और सारे पिंड एक ही गति से, ऊपर से जमीन पर गिरेंगे।

वस्तुमान का एकक

फ्रेंच पद्धति में वस्तुमान के मापन के लिए ' ग्रॅम ' यह एकक चुना गया था। चार अंश सेल्सियस तापमान के एक घन सेंटीमीटर शुद्ध पानी का वस्तुमान, ऐसी एक ग्रॅम की व्याख्या थी। इसका कारण है ४ डिग्री सेल्सियस तापमान पर पानी का घनत्व सर्वाधिक होता है।

वर्ष १८७९ में एक किलोग्राम वस्तुमान वाला प्लैटिनम का एक घन बनाया गया। १८८९ की आन्तर्राष्ट्रीय परिषद् ने पानी का संदर्भ हटाकर इसे एक किलोग्राम के रूप में मान्यता दी।

जागतिक मापन मानक , ' इंटरनेशनल ब्यूरो ऑफ वेट्स अँड मेझर्स" इस संस्था द्वारा निश्चित किए जाते हैं। भारत १९५७ से इस संस्था का सदस्य है। यह संस्था पॅरिस में है। वहां एक शीशी में प्लैटिनम-इरीडियम का एक सिलेंडर रखा हुआ है। इस सिलेंडर का वस्तुमान एक किलोग्राम है ऐसा १८८९ से माना जाता था। उसे किलोग्राम का अंतर्राष्ट्रीय रूप माना जाता था।

भारत में नॅशनल फिजिकल लॅबोरेटरी में ऐसा ही एक वजन NPK 57 रखा हुआ है। वह इस अंतर्राष्ट्रीय सिलेंडर जैसा ही है। उसे एक किलो माना जाता है। लेकिन इन सिलेंडरों पर बाहरी वातावरण का परिणाम होकर उसमें बदल हुआ हो तो? ऐसी आशंका हमेशा व्यक्त की जाती रही। अगर उसपर धूल बैठी तो वजन अधिक होगा। साफ करने पर वजन कम होगा। अर्थात् किलोग्राम वजन का प्रमाणन सटीक नहीं रहेगा।

अतः प्राकृतिक स्थिरांक के आधार पर मूलभूत एककों की व्यवस्था की जाए, ऐसा सुझाव वैज्ञानिकों द्वारा दिया जाने लगा। अतः सोलह नवम्बर २०१८ को इस मुद्दे पर एक बैठक हुई। उसमें साठ देशों ने मान्य किया कि किलोग्राम की व्याख्या का आधार प्लैंक स्थिरांक माना जाए।

समय (कालावधि)

* खालिडियन संस्कृति ने एक दिन के चौबीस घंटे, एक घंटे में साठ मिनट तथा एक मिनट में साठ सेकंड इस तरह कालमापन को विभाजित किया था। आज भी दुनिया पूरी तरह उसीका अनुसरण कर रही है।

* पृथ्वी हमेशा चौबीस घंटों में अपना एक परिवलन पूरा करती है, ऐसा हम मानते हैं। लेकिन यह वास्तवता नहीं है। प्रतिदिन निर्मित होनेवाले ज्वारभाटे के घर्षण के कारण पृथ्वी की परिवलन गति धीमी होती जा रही है।

इस बदल को ध्यान में न लेते हुए, मध्यरात्रि से अगली मध्यरात्रि तक की कालावधि को चौबीस घंटे माना जाता है। * ग्रीनविच स्थान पर मापन किए गये इस कालावधि को ' जागतिक काल ' (Universal Time) ऐसा नाम है।

* तारों के संदर्भ में विशिष्ट स्थान पर गिने गये समय को UTO (Universal Time Observed) ऐसी संज्ञा दी गई है।

* ध्रुवों की हलचल के कारण उपरोक्त कालावधि में दुरुस्ती कर मिले सुधारित कालावधि को UT। ऐसा दिखाया जाता है।

* आणविक घड़ी के आधार पर निश्चित किए गये कालमापन को UTC या 'कोऑर्डिनेटेड युनिवर्सल टाइम' कहते हैं ।

फिलहाल प्रति सौ वर्षों में पृथ्वी का परिवलन समय दो मिली सेकंड से कम हो रहा है। आणविक समय और पृथ्वी का परिवलन समय इनका फर्क जमा होता जाएगा। लेकिन यह फर्क 0.९ सेकंड से अधिक न हो इसलिए UTC में 'लीप' 'सेकंड' मिलाया जाता है। वर्ष १९७२ से २००५ तक UTC में २३ लीप सेकंड मिलाए गए थे। (पृथ्वी परिवलन का औसत सेकंड और आणविक सेकंड इनका संबंध सर्वप्रथम वर्ष १९०० में प्रस्थापित किया गया था। इस कारण आजतक यह कालावधि फर्क दो मिली सेकंड हो गया है। कालमापन में सातत्य कायम रखने की दृष्टि से इसका पृथ्वी परिवलन के साथ होनेवाला सम्बन्ध समाप्त करना आवश्यक था। इस दृष्टि से वर्ष १९५६ में कदम उठाए गये।

सेकंड की नई व्याख्या निश्चित की गयी-

“ सिझीम अणु, शून्य चुंबकीय क्षेत्र में होने पर उसके ९१९२६३१७७० कंपन संख्याओं को लगने वाला समय एक सेकंड होगा। ”

(इस व्याख्या के अनुसार वर्ष १९०० का १/३१५५६९२५.९७४ हिस्सा, एक सेकंड इतना आ रहा था। इसका अर्थ हुआ तब आप्तिक सेकंड और पृथ्वी परिवलन का औसत सेकंड इनकी कीमतें समान थीं।)

या

अब सेकंड की व्याख्या है सिज़ियम-१३३ के अणु में से, एक विशिष्ट मात्रा की ऊर्जा का उत्सर्जन होने के लिए लगने वाला समय।

अब सभी एककों की परिभाषाएं मापन के केवल एक ही आधार से जोड़ी गयी हैं और वह है सिज़ियम-१३३ मूलद्रव्य के अणु से बाहर आनेवाली प्रकाश तरंगों की बारंबारता।

अब मीटर की परिभाषा होगी-

“सेकंड के २९,९७,९२,५४८ वे हिस्से में प्रकाश ने निर्वात देश में पार किया हुआ अंतर “

(१) अब सेकंड का कालावधि एक हजार कोट्यांश, इतनी सूक्ष्मता तक गिना जा सकता है ।

२) आइन्स्टाइन के विशेष सापेक्षता सिद्धांत के अनुसार निर्वात प्रदेश में प्रकाश की गति किसी भी तरह से गिनने पर समान रहती है।)

एक दूसरे से अलग-अलग लगने वाले ये परिमाण, निसर्ग नियमों के अनुसार एक दूसरे से जुड़े हैं। हम सभी स्थिरांकों की कीमतें एक दूसरे से जोड़ सकते हैं। ऐसी एकक पद्धति को ‘ प्राकृतिक एकक पद्धति ‘ कहते हैं। वैश्विक स्थिरांक इस तरह एककों का एकत्रीकरण करते हैं।

अब क्वांटम सिद्धांत का प्लैंक स्थिरांक, प्रकाश तरंगों की तरंग लम्बाई और प्रकाश तरंगों की ऊर्जा इनके बीच का संबंध दर्शाता है। उसी तरह विशिष्ट सापेक्षतावाद ऊर्जा और वस्तुमान इनके बीच का संबंध दिखाता है। अर्थात् हम वस्तुमान का एकक किसी प्रकाश कण की तरंग लम्बाई के साथ जोड़ सकते हैं। तो अब किलोग्राम की व्याख्या यह वस्तु रूपी एकक पर निर्भर नहीं होगी तो वह केवल एक वैश्विक स्थिरांक पर निर्भर होगी। लेकिन इसके लिए प्लैंक स्थिरांक की कीमत अति सूक्ष्मता से प्राप्त की हुई होनी चाहिए। किबल बैलन्स नाम के उपकरण द्वारा इसकी कीमत निश्चित की गयी - 6.626069×10^{-34} ज्यूल या किलोग्राम/सेकंड/चौरस मीटर। इसमें सेकंड और मीटर की व्याख्याएं आ गयी हैं। इस आधार पर अब ‘ किलोग्राम ‘ पुनर्व्याख्या की गयी और २० मई २०१९ को उसे मान्य किया गया (२० मई को जागतिक मापनशास्त्र दिन मनाया जाता है।)

पहले एक किलोग्राम का अर्थ था एक किलो $\pm 15-20$ मायक्रोग्राम। यही मान्य था। अब नयी व्याख्या के अनुसार-

एक किलोग्राम वजन = एक किलोग्राम $\pm$ एक नैनोग्राम

प्रत्यक्ष व्यवहार में इस अंतर से कोई फर्क नहीं पड़ेगा लेकिन अत्यंत सूक्ष्म मापन में इसे ध्यान में लेना आवश्यक है।

एक बार सेकंड एकक निश्चित होने पर १) प्रकाश की गति २) प्लैंक स्थिरांक ३) बोल्ट्ज़मन स्थिरांक ४) इलेक्ट्रॉन का भार ५) अँव्हेगैड्राज स्थिरांक ६) प्रकाश दीप्ती गुणकारीता इन छह प्राकृतिक स्थिरांकों की सहायता से बचे हुए मीटर, किलोग्राम, केल्विन, अँम्पियर, मोल, कैंडेला ये छह एकक सहज निश्चित किए जा सकेंगे। वैश्विक स्थिरांक देश, काल पर निर्भर न होने से उन्हें अधिकाधिक सूक्ष्मता से गिना जा सकता है।

मूलभूत स्थिरांक

भौतिकशास्त्र की अधिकतर गणनाओं में, लिए गए निरीक्षणों की मात्राओं के साथ एक या एक से अधिक ऐसी राशियों का अंतर्भाव रहता है जिन्हें भौतिक स्थिरांक कहा जाता है। जैसे निर्वात में प्रकाश की गति, गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक, प्लैंक स्थिरांक, इलेक्ट्रॉन का विद्युत भार आदि। दोनों के आधार पर विचाराधीन बात की अपेक्षित कीमत निकाली जाती है। इस प्रक्रिया में उपलब्ध दत्त सामग्री (Data) और उस स्थिति में भौतिकशास्त्र का कौनसा सिद्धांत लागू होता है, यह महत्वपूर्ण है।

ऐसे स्थिरांकों की संख्या काफी है। यह उचित ही है कि इनको वर्गीकृत किया जाए। J.M.LEVY-LEBLOND, इन्होंने इन स्थिरांकों को तीन वर्गों में विभाजित किया है। उनकी सार्वभौमिकता की प्रायिकता के आधार पर वे इस प्रकार हैं-

अ) विशिष्ट वस्तुओं के गुणधर्म, जिन्हें पदार्थ के मूलभूत घटकों के तौर पर लिया जा सकता है। इसमें भिन्न-भिन्न मूलभूत कणों के गुणधर्मों को व्यक्त करने वाली संख्याएं जैसे इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन के वस्तुमान, विद्युत भार आदि।

आ) भौतिक सिद्धांतों के वर्गों की विशेषताएं (Characteristic of classes of physical phenomena)। जैसे दो कणों के बीच की अन्योन्य क्रिया का मूलभूत बल जो इन दो कणों के बीच की विशिष्ट अन्योन्य क्रिया का माध्यम बनता है। जैसे गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक (G), फाइन स्ट्रक्चर स्थिरांक (α)। न्यूटन सिद्धांत में (G) यह निश्चित

करता है कि विशिष्ट दूरी पर स्थित दो कणों के बीच गुरुत्वाकर्षण बल कितना शक्तिशाली होगा।

इ) वैश्विक स्थिरांक ये वे स्थिरांक हैं जो वैश्विक भौतिक नियमों के साथ जुड़े हैं, जो तत्त्वतः सभी तरह की अन्योन्यक्रियाओं पर लागू होते हैं। उदाहरण- निर्वात में प्रकाश की गति (c), प्लैंक स्थिरांक (h)। आइन्स्टाइन ने यह दिखा दिया था कि (C) यह वह संभवनीय अधिकतम वेग है जिससे कोई वस्तु गति कर सकती है। जब अवकाश और काल का एकदूसरे के साथ एकत्रीकरण किया जाता है तो वहां (C) उपस्थित होता है। उसी तरह जहाँ भी क्वांटम यांत्रिकी चित्र में आएगी, वहां प्लैंक स्थिरांक उपस्थित होता है। ज्यूल्स स्थिरांक (J) : जहाँ औष्णिक ऊर्जा तथा यांत्रिक ऊर्जा को एकदूसरे के साथ जोड़ा जाता है। बोल्ट्ज़मन स्थिरांक(K) : जहां तापमान और बड़ी संख्या के कणों की एकत्र गत्यात्मक ऊर्जा को एकदूसरे के साथ जोड़ा जाता है।

उपरोक्त वर्गीकरण का आधार इतना कठोर भी नहीं है। उसमें बदलाव किया जा सकता है। भौतिकी में नए क्षेत्रों के उदय के साथ नए स्थिरांक अवतरित हो सकते हैं तथा कुछ पुराने अपना औचित्य खो सकते हैं।

कुछ स्थिरांक	सिम्बॉल	वर्ग	कीमत	अनिश्चितता(ppm)
निर्वात में प्रकाश गति	(C)	क	$2.99792458 \pm 0.12 \times 10^{10}$ cm/second	0.008
प्लैंक स्थिरांक(h/2π))	h	क	$6.62606896 \pm 57 \times 10^{-27}$ earg sec	9.8
अवॉगैड्रो नंबर	N _A	क	$6.022045 \pm 31 \times 10^{23}$ per mole	9.1
बोल्ट्ज़मन स्थिरांक	K	क	$1.3806582 \pm 48 \times 10^{-16}$ erg °/k	32
गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक	G	आ	6.672×10^{-8} cm ³ gm ⁻¹ sec ⁻²	619

इलेक्ट्रॉन चार्ज	e	आ	$4.803282 \pm 18 \times 10^{-10} \text{ esu}$	2.9
इलेक्ट्रॉन वस्तुमान	m_e	आ,अ	$9.109384 \pm 46 \times 10^{-28} \text{ gms}$	9.1
प्रोटॉन वस्तुमान	m_p	अ	$1.6726 \pm 12 \times 10^{-24} \text{ gms}$	-
फाइन स्ट्रक्चर स्थिरांक	α	अ	$1/137.03598 \pm 11$	0.72

(plank's constant listed here is the constant introduced in the text divided by 2 π)

फाइन स्ट्रक्चर स्थिरांक = इलेक्ट्रॉन पर स्थित विद्युत भार का वर्ग / (2 π पर्मिटिविटी स्थिरांक x प्लैंक स्थिरांक x प्रकाश गति)

$$\text{इलेक्ट्रॉन पर विद्युत भार} = 4.8 \times 10^{-10} \text{ कूलम्ब}$$

$$\text{पर्मिटिविटी स्थिरांक} = 1 \times 10^{-12} \text{ (MKS एकक में कीमत)}$$

$$\text{प्रकाश की गति} = 3.0 \times 10^8 \text{ मीटर/सेकंड}$$

$$\text{प्लैंक स्थिरांक} = 6.6 \times 10^{-34} \text{ जूल सेकंड}$$

फाइन स्ट्रक्चर स्थिरांक = $1/137$ (यह केवल एक संख्या है | इसके साथ कोई एकक नहीं है |

वर्ष 1916 में आर्नोल्ड समरफील्ड ने यह स्थिरांक भौतिकी में अंतर्भूत किया। समय के साथ इस स्थिरांक की कीमत बदलती जाती है, ऐसी वैज्ञानिकों को आशंका है। उपरोक्त सूत्र के अनुसार इसमें विद्युत चुंबकीय क्षेत्र (विद्युत भार), सापेक्षता सिद्धांत (प्रकाश की गति), क्वांटम यांत्रिकी (प्लैंक स्थिरांक) का अंतर्भाव है। अगर इस स्थिरांक की कीमत बदलती होगी तो उपरोक्त तीनों में से किसी एक या सभी की कीमतेँ बदलनी चाहिए। फिर विश्व विषयक हमारी समझ ही बदलनी होगी। 137 यह अविभाज्य संख्या (Prime Number) है। उसका स्थिरांक के रूप में प्रादुर्भाव क्यों हुआ यह एक रहस्य है। ब्रह्माण्ड में सर्वाधिक स्थिर बात फाइन स्ट्रक्चर स्थिरांक को माना जाता है। यह प्लैंक एकक में व्यक्त मूलभूत विद्युत आवेश के वर्ग की कीमत है। यह वस्तु का क्षेत्र (Matter Field) और विद्युत चुंबकीय क्षेत्र इनके बीच होने वाली अन्योन्यक्रिया को व्यक्त करता है।

हमारे जैसे सामान्य पाठकों के लिए इससे गहराई में जाना संभव नहीं है।

इसकी अधुनातन सटीक कीमत निकाली गयी है = $1 / 137.04$

विमारहित स्थिरांक / परामितके

मूलभूत भौतिकशास्त्र में कुछ परामितके ऐसे हैं जिनकी कीमतें, कमसे कम आज के ज्ञान के स्तर पर तो, भौतिकशास्त्र के प्राथमिक सिद्धांत के आधार पर गणना द्वारा निकालना संभव नहीं। उनका प्रत्यक्ष मापन ही करना पड़ता है। ये, मूलभूत कण भौतिकशास्त्र तथा उसके सामान्य विस्तार के मानकीकृत प्रारूप के विमरहित (Dimensionless) परामितके हैं। इनकी संख्या अठारह है। इनमें मूलभूत कण, मूलभूत कणों के बीच उपस्थित संबंध वाले युग्मक(Coupling) स्थिरांक हैं। इसके अतिरिक्त भी एक स्थिरांक है जो एक नये कण 'अॅक्सिओन' की संभावना की ओर अंगुली निर्देश करता है। तत्त्वतः प्रकृति के अन्य सभी स्थिरांक इनके आधार पर, भौतिकशास्त्र के मूलभूत नियमों को उपयोग में लाकर, गणना से निकाले जा सकते हैं। लेकिन हम यहाँ अधिक विस्तार में नहीं जाएंगे।

गणन यंत्र

अंकगणित में अंकों की बाजीगरी को आसान बनाने के लिए काफी पहले से गणन यंत्र बनाए जाते रहे हैं।

इसका आरंभ ई.पू. ३००० और ई.पू. २७०० के दरम्यान 'अॅबॅकस' के रूप में मेसोपोटामिया(आज का इराक) में हुआ ऐसा माना जाता था। इसमें खार्चों में बिठाए हुए पत्थर आगे-पीछे सरकाकर हिसाब किया जाता था। कुछ इतिहासकार अॅबॅकस का उत्पत्ति स्थल चीन को मानते हैं।

फिर इसमें कहने लायक सुधार किया जॉन नेपियर ने, सत्रह सदी के आरंभ में। इन्होंने 'लॉगॅरिथम' की पद्धति इजाद की। इसे तो आजकल सेकंडरी स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे भी जानते हैं।

इसी दरम्यान विल्यम ऑघट्रेड ने 'स्लाइड रूल' यह यांत्रिक गणन पट्टी बनाई। इसका आधार लॉगॅरिथम पद्धति ही है।

फिर उन्नीसवीं सदी में 'बॅबेज' नाम के ब्रिटिश वैज्ञानिक ने खगोलिकी की गणनाएं करने के लिए गणन यंत्रों की रूपरेखाएं तैयार की थी और उन्हें नाम दिया था 'डिफरेन्स इंजिन'।

तथा ' अँनॅलेटिकल इन्जिन | अँनॅलेटिकल इन्जिन की रूपरेखा आधुनिक संगणक जैसी ही थी | लेकिन काफी प्रयत्नों के बावजूद वे अपनी इन कल्पनाओं को मूर्त रूप नहीं दे पाए |

बाद में आया आधुनिक ' कैलक्युलेटर ' इससे सभी परिचित हैं | फिर पधारे ' संगणक ' | ७ अगस्त १९४४ को पहले कैलक्युलेटर के नाम से जो खड़ा हुआ वह एक ५१ फीट लम्बी, ८ फीट ऊँची और पांच टन वजन की एक विशाल मशीन थी | लेकिन सुधार होते-होते यह गणनयंत्र आज हर किसीके हाथ में है |

• चार्ल्स बाबेज

वर्ष 1821 में चार्ल्स बॅबेज इस ब्रिटिश वैज्ञानिक को, खगोलिकी में गणना करते समय एक कल्पना सुझी | कल्पना थी स्वयंचलित यंत्र की | उन्होंने एक रूपरेखा बनायी | उसे नाम दिया ' डिफरेन्स इंजन ' | नाम के अनुसार ही दो संख्याओं का फर्क यह इस यंत्र का आधार था | बार-बार जोड़ और घटाने की क्रिया द्वारा गुना करने की और भाग देने की पद्धति इसमें सुझायी गयी थी | गियर के माध्यम से चक्र घुमाकर इसमें संख्याओं की गिनती की जानी थी |

लेकिन आगे 1834 में उपरोक्त कल्पना को बाजू रखकर वह उससे प्रगत ऐसे ' अँनॅलेटिकल इंजन ' इस संकल्पना पर काम करने लगे | मोटे तौर पर इसका स्वरूप एक तरह से आज के संगणक जैसा ही था | इसमें संख्याओं को संग्रहित करने के लिए मेमोरी तथा गणितीय क्रियाओं के लिए अर्थमैटिकल और लॉजिकल युनिट था | इसमें प्रोग्रॅमिंग करने की सुविधा भी थी | उन्होंने इन यंत्रों की रूपरेखा तो तैयार की लेकिन लाख कोशिशों के बावजूद वे उसे प्रत्यक्ष में नहीं उतार सके |

लेकिन वैज्ञानिक उस रूपरेखा के अनुसार काम पर लग गये और सत्रह वर्षों के कठिन परिश्रम के बाद, बॅबेज की रूपरेखा के अनुसार प्रत्यक्ष कार्यरत होनेवाला यंत्र बनाने में 2002 में सफल हो गये | आज यह यंत्र लंदन विज्ञान संग्रहालय में देखने के लिए उपलब्ध है | इसकी लम्बाई लगभग सवा तीन मीटर, उंचाई दो मीटर और वजन पांच टन है | उनकी रूपरेखा का अँनॅलेटिकल इंजन तो अभी तक नहीं बन पाया लेकिन प्रयत्न जारी है |

पाश्चिमात्य वैज्ञानिकों ने केवल अतीत की गौरवगाथा गाने के स्थान पर उस रूपरेखा को कड़ी मेहनत के बाद प्रत्यक्ष में उतारा | भारत में ऐसे प्रयत्न क्यों नहीं होते? (बर्कले के अकेले कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से संबंधित अनुसन्धानों तथा अनुसंधानकर्ताओं ने आजतक कुल 20 नोबेल पुरस्कार प्राप्त किये हैं | इनमें भौतिकी से संबंधित आठ पुरस्कार हैं)

दूरियों का मापन

परमाण्विक स्तर: भौतिकी में अणु की त्रिज्या 'अँगस्ट्रॉम' युनिट में बतायी जाती है। उसका लघु रूप है A^0 ।

अंतरिक्ष की दूरियां-

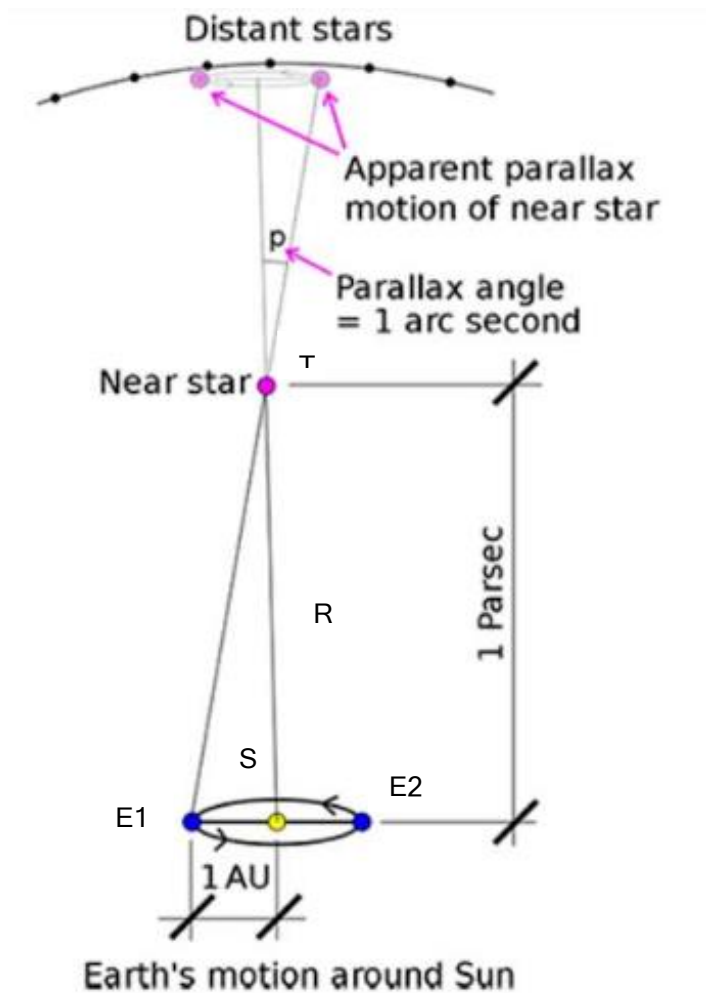
ईसा १८३८ में, पहली बार आकाशगंगा के एक तारे, सिग्नस ६१-हंस की दूरी जानना संभव हुआ। यह तारा हमसे ग्यारह प्रकाशवर्ष यानी करीब १,००,००० अरब कि.मी. दूर है। इसके बाद लम्बन विधि (पॅरॅलैक्स) से आकाशगंगा के अनेक करीबी तारों की दूरियां जानी गयीं। परंतु लम्बन विधि से सभी तारों की दूरियां जानना संभव नहीं है। इस विधि से करीब १०० प्रकाशवर्ष तक की ही दूरियां जानी जा सकती हैं। आकाशगंगा के परे की अनेक मंदाकिनियां हमसे लाखों-करोड़ों प्रकाशवर्ष दूर हैं। इनकी दूरियां जानने के लिए अब कई विधियां खोजी गई हैं।

पॅरॅलैक्स या पराशय

पृथ्वी के सूर्य के गिर्द होनेवाले भ्रमण के कारण एक वर्ष की अवधि में, तारों की दिशाओं में जो विचलन होता है उसे 'पराशय' कहते हैं। इसके आधार पर तारों की सूर्य से दूरी त्रिकोणमिती के सहारे निकाली जाती है। जिस तारे का पराशय एक कोनीय सेकंड है वह सूर्य से एक 'पार्सेक' अंतर पर है, ऐसा माना जाता है। पार्सेक यह लघु रूपांतर है, पॅरॅलैक्स सेकंड का।

तारे का पार्सेक में अंतर = $1 / \text{पॅरॅलैक्स की कोनीय सेकंड में कीमत}$ । अर्थात् जिस तारे का पॅरॅलैक्स 0.५ सेकंड होगा वह तारा सूर्य से २ पार्सेक दूरी पर होगा।---१ पार्सेक = ३.२६ प्रकाशवर्ष। रात के समय कोरी आंखों से दिखने वाले तारे, सूर्य से ५०० पार्सेक से अधिक दूरी पर नहीं हैं। बड़े मापक -किलो पार्सेक = 10^3 पार्सेक, मेगा पार्सेक = 10^6 पार्सेक, गिगा पार्सेक = 10^9 पार्सेक। अपनी आकाशगंगा का व्यास ३०.६७५ किलो पार्सेक है। आज ज्ञात विश्व का आकारमान ४.२ गिगा पार्सेक है।

खगोलीय अंतर मापन के अन्य छोटे एकक - अ) सूर्य और पृथ्वी इनके बीच की औसत दूरी १५ करोड़ कि.मी. है। यह अंतर ज्योतिषीय या खगोलीय दूरी का 'एकक' है। आ) प्रकाश ने एक वर्ष की अवधि में, निर्वात में पार किया अंतर यह एक प्रकाशवर्ष कहलाता है। वह है 9.46×10^{12} कि.मी.।



जर्मनी के फ्रेडरिक विल्यम बेसेल ने खगोलशास्त्र में दूरियाँ नापने की पराशय(Parallax) पद्धति को पूर्णत्व प्रदान कर, तारों की दूरियाँ मापन करने में सटीकता लायी। इस पद्धति का उपयोग कर उन्होंने लगभग पचास हजार तारों के अन्तरों का सटीकता के साथ मापन किया।

निरीक्षक का स्थान बदला तो दूर की वस्तु का स्थान भी बदला हुआ दिखता है। स्थान में होने वाले इस बदल को 'पराशय' कहते हैं। वस्तु जितनी पास उतना पराशय अधिक। खगोलशास्त्र में, आकाश में स्थित पिंडों का दो अलग-अलग स्थानों से निरीक्षण कर पराशय का मापन किया जाता है और त्रिकोणमिती के सहारे पिंड की दूरी निकाली जाती है।

पृथ्वी सूर्य के चारों ओर दीर्घवलयकार कक्षा में भ्रमण करती है। पृथ्वी के इस भ्रमण से तारों के निरीक्षण प्रभावित होते हैं। किसी तारे का साल भर निरीक्षण करने से ऐसा आभास होता है कि वह तारा भी, लघु दीर्घवलय पर भ्रमण कर रहा है। इस प्रकार को "पराशय" ऐसा नाम है।

तारा जितना अधिक दूर होगा, उसका दीर्घवलयकृति भासमान विचलन उतना ही छोटा होगा। इस दीर्घवलय का जितनी सटीकता से मापन किया जा सकेगा, उतनी ही सटीकता से तारे की दूरी नापी जा सकेगी।

'S' सूर्य है, 'T' तारा है। उसका सूर्य से अंतर 'R' है। E_1 और E_2 ये पृथ्वी की सूर्य के संदर्भ में, छह मास के अंतर से स्थितियाँ हैं। E_1TS और E_2TS ये पराशय कोन हैं। यह कोन अधिकतर कोनीय सेकंड (Arc Second) में गिना जाता है। इस पद्धति में, तारे का, प्रकाशवर्ष में अंतर, निम्न सूत्र से प्राप्त होता है।

$$\text{तारे की दूरी} = 3.26 \text{ प्रकाशवर्ष} / \text{पराशय (कोनीय सेकंड)}$$

व्याध तारे का पराशय है .3८ कोनीय सेकंड, गणना के बाद दूरी आएगी = ८.६ प्रकाशवर्ष

समुद्री यात्रा में अंतर मापन

पृथ्वी गोल के ३६० अंश मानकर इस एक अंश का $1/60$ वां हिस्सा अर्थात् एक मिनट की आर्क, यह होगा एक 'नॉटिकल माइल'। पृथ्वी की पूरी प्रदक्षिणा के होंगे २१६०० नॉटिकल माइल्स। लेकिन यह अंतर हमें ज्ञात जमीन पर की दूरी मापन की इकाई से बड़ा है अर्थात् २४८५७ मील या ४०००३ कि.मी. है। नॉटिकल माइल में पृथ्वी की वक्रता अंतर्भूत रहती है। नॉटिकल माइल अंतर की गणना करता है। 'नॉट' (Knot) यह नॉटिकल माइल / घंटा, गति का मापन करता है (लगभग १.१५ जमीनी माइल)। एक नॉटिकल माइल = लैटिट्यूड का एक मिनट।

राशियाँ और मापके

भौतिक राशियाँ (physical quantities) और मानक मापके (Standard Unit)

१) आधारभूत राशियाँ | सात हैं : (Basic Quantities)

लम्बाई -मीटर-m

द्रव्यमान- किलोग्राम-kg

समय---सेकंड-s

विद्युतधारा-अम्पीयर-A

ताप या तापमान-केल्विन-K

ज्योति तीव्रता-कैन्डेला-Cd

पदार्थ का परिमाण-मोल-mol

२) व्युत्पन्न राशियाँ : Derived Quantities (| क्षेत्रफल आदि)

मात्रकों की पद्धतियाँ (Systems of units)

अ) ब्रिटिश पद्धति-(fps) सेकंड-पौंड-फुट

आ) सेकंड-ग्राम-सेंटीमीटर (cgs)

इ) मेट्रिक पद्धति मीटर-किलोग्राम-सेकंड (mks)

इ) पेरिस के निकट एक स्थान पर अक्टूबर १९६० में ग्यारहवें माप - तौल सम्मेलन: (General conference of weights & measurements) लम्बी परिचर्चा के बाद मानकों की एक नयी अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति का आविर्भाव हुआ(International System of units)| इसके फ्रांसीसी नामकरण के कारण इसे s-k-g-m -SI (System International) मात्रक के तौर पर जाना जाता है।

= दाब (pressure)=बल(Nuton)/क्षेत्रफल वर्गमीटर| इसे पास्कल- (Pascal) -Pa कहते हैं।

गैसीय दाब के मापन का एक मात्रक ' ऐटमॉस्फियर ' भी है। समुद्र की सतह पर वायुमंडलीय दाब एक ऐटमॉस्फियर होता है = १ atm | इसे सामान्य दाब(Normal Pressur) कहा जाता है।

हॉर्सपावर

रेल इंजन, स्कूटर, मोटर, आटा चक्की आदि की शक्ति, हॉर्सपावर में नापी जाती है। यह इसकी इकाई है। इसे भांप के इंजन के आविष्कारक, प्रख्यात वैज्ञानिक जेम्स वॉट ने ईजाद किया है। यह एक रोचक संयोग ही है कि बाद में, आंतरराष्ट्रीय मानक पद्धति में जेम्स वॉट के नाम पर ही शक्ति की इकाई को 'वॉट ' नाम दिया गया।

एक बार जेम्स वॉट (१७३६-१८१९) कोयले की खदानों में टट्टुओं द्वारा खींचे जाने वाले कोयले का कुछ लेखा-जोखा तैयार कर रहे थे। वे यह हिसाब लगाना चाह रहे थे कि औसतन एक घोड़े से कितनी शक्ति मिल सकती है या एक घोड़ा कितना काम कर सकता है। अध्ययन के बाद उन्होंने पाया कि औसतन एक टट्टू २२००० फूट-पौंड काम प्रति मिनट करता है। फिर उन्होंने इस कार्य का डेढ़ गुना अर्थात् ३३००० फुट-पौंड प्रति मिनट को, एक घोड़े द्वारा किया जाने वाला औसत कार्य मानते हुए, इकाई के रूप में पेश किया और नाम दिया हॉर्सपावर। इस

प्रकार एक हॉर्सपावर का अर्थ हुआ ३३००० फुट-पौंड प्रति मिनट। एक हॉर्सपावर == ७४६ वाट भी होता है।

--

२. काल मापन

सूक्ष्मतम स्तर

एक ही संदर्भ चौखट से देखने पर, हमें समझ में आने वाला या अनुभूत होने वाला काल या समय, स्थूल स्तर पर अखंड है। अर्थात् किसी भी एक संदर्भ चौखट में होने वाली दो घटनाओं के बीच की कालावधि को, काल के अक्ष पर देखने पर तार्किक दृष्टि से हम प्रत्येक बिंदु तक पहुंच सकते हैं। लेकिन काल का यह विखण्डन किस सूक्ष्म स्तर तक संभव है ? दशमान पद्धति का सहारा लेकर, गणित का उपयोग कर, संख्या के अक्ष या रेखा पर हम किसी भी छोटे परिमाण तक पहुंच सकते हैं। लेकिन कालअक्ष पर, प्रायोगिक दृष्टि से यह संभव नहीं, आज तो ऐसा ही माना जाता है।

मापन योग्य लम्बाई का संभवनीय सूक्ष्मतम मान है ' प्लैंक की लम्बाई ' (Plank's Length) अर्थात् 1.616229×10^{-39} मीटर।

लम्बाई का यह सूक्ष्मतम मान, पार करने के लिए प्रकाश को लगने वाला समय अर्थात् (Plank Time) का फिलहाल तो मूल्य है 9.39116×10^{-48} सेकंड। हमारा कोई भी उपकरण इस स्तर के मापन के लिए सक्षम नहीं है। एक प्रयोग के अनुसार, साधारण दो साल पहले, वैज्ञानिकों ने हैड्रोजन अणु के सहारे, झेप्टो सेकंड(zepto second - 10^{-27} से.), इस स्तर तक समय का मापन करने की क्षमता हासिल की है। यह सेकंड का एक हजार अरबवां हिस्सा है। लेकिन कम से कम आज तो इस संदर्भ की अधिकतर बातें, गृहितकों की नींव पर खड़ी, उलझन भरे गणितीय संरचनाओं में बंद हैं। उनका स्थूल दुनिया के साथ समायोजन करने के लिए मनुष्य के हाथ में तर्क-वितर्क से अधिक कुछ नहीं है।

आज का विज्ञान, सूक्ष्म स्तर के काल को अर्थात् मूल कण के स्तर पर, समय को पूंज भौतिकी की रूढ़ संकल्पनाओं के चष्मे से देखता है।

काल का सूक्ष्म मापन— 1000 फेमटो सेकंड = 1 पिको सेकंड

1000 पिको सेकंड = 1 नानो सेकंड

1000 नानो सेकंड = 1 माइक्रो सेकंड

काल मापन के साधन

- १) ईसा पूर्व ३००० के दरम्यान, मेसोपोटामियन और इजिप्शियन संस्कृतियों में, काल मापन के लिए सूर्य की परछाई का उपयोग किया जाता था।
- २) ईसा पूर्व १५०० : पानी की घड़ी। ईसा पूर्व आठवीं सदी : रेत की घड़ी।
ऊपर के बर्तन का पानी या रेत एक छोटे छेद से नीचे के बर्तन में गिरने के लिए लगने वाले समय के आधार पर कालमापन।
- ३) चौदहवीं सदी के शुरू में, यांत्रिक घड़ियाँ आईं। इसके भी अलग-अलग रूप थे।
- ४) पंधरवीं सदी के मध्य में स्प्रिंग की ऊर्जा पर चलनेवाली घड़ियाँ बनीं।
- ५) लंबक के आंदोलन की कालावधि, केवल लंबक की लम्बाई पर निर्भर होती है। उसके आंदोलन की कालावधि में बदल नहीं होता। इस कारण सटीक कालमापन के लिए लंबक का उपयोग हो सकता है, ऐसा सुझाव १६३७ साल में गैलिलियो ने दिया था। प्रत्यक्ष में ऐसी प्रथम घड़ी, गैलिलियो की मृत्यु के चौदह वर्षों बाद अर्थात् वर्ष १६५६ में क्रिस्तियन हायजेन्स इस डच वैज्ञानिक ने बनायी।
- ६) बाद में सन् १८४० में स्कॉटलंड ब्रेन ने ऐसी लंबक घड़ी को बिजली देकर, विद्युत पर चलने वाली पहली घड़ी बनाई।
- ७) फिर भी वर्ष १९३० तक पारंपारिक ढंग की घड़ियाँ ही दुनिया को समय बताती रहीं।

पुरातात्विक काल गणना

- १) इटली के लिओनार्डो दा विन्ची ने पंधरहवीं सदी में जीवाश्म देखें और वे प्राचीन सजीवों के अवशेष हैं यह पहचाना।
- २) सत्रहवीं सदी में डेनमार्क के संशोधक निकोलस स्टेनो ने ' वालुकाश्म ' (सेडीमेंटरी रॉक्स) देखें और ये कालानुक्रमे आड़े स्तरों के अनुसार फैले हैं, पुरानी सतहें नीचे तो नई ऊपर इस तरह उनका अस्तित्व हैं, यह निष्कर्ष निकाला।
- ३) अठारहवीं सदी के अंत में इन पत्थरों की सतहों का वैज्ञानिक आधार पर अध्ययन शुरू हुआ। इन सतहों में जीवाश्म भी मिलने लगे थे। फिर पथरीली सतहें और जीवाश्म इनका संबंध ध्यान में लेकर, इंग्लैंड के विलियम स्मिथ ने भूगर्भीय कालमापन के लिए आधार का काम देने वाली पद्धति सुझाई। यह, सम्पूर्ण उत्क्रांति सिद्धांत के लिए आधार बनी। बीसवीं सदी के शुरू में पथरीली स्तरों की आयु समझना संभव हुआ। उस कारण, उस स्तर में मिलने वाले जीवाश्म के

आधार पर, उस प्रजाति का सजीव कब पैदा हुआ होगा, यह समझने लगा। अंत में इंग्लैंड के ही आर्थर होल्स ने १९१३ में भूगर्भीय कालगणना की पूरी रूपरेखा ही प्रस्तुत की।

इस कालगणना के अनुसार पृथ्वी का साडेचार अरब सालों का संपूर्ण इतिहास ही ज्ञात हुआ। संपूर्ण काल को चार युगों में बांटा गया है। प्रत्येक युग को भी आगे, महाकल्प(इरा), कल्प(पीरिएड), उपकल्प(इपॉक) ऐसे तीन हिस्सों में विभाजित किया गया। अबतक तीन युग हो चुके हैं। फ़ैनेरिज़ाईक इस चतुर्थ युग के चौवन करोड़ साल हुए हैं।

यह वनस्पति और प्राणियों से युक्त युग है। यह भी पुराजीव(पॅलिओज़ाइक), मध्यजीव(मेसोज़ाइक) और नवजीवन(सेनोज़ाइक) इन तीन महाकल्पों में विभाजित है। पुराजीव महाकल्प यह जलीय वनस्पति और पानी में ही विकसित अपृष्ठवंशीय प्राणियों का युग है। इस महाकल्प के अंत में जीवन पृथ्वी पर आया। मध्यजीव महाकल्प में सरीसृप, प्राणी और विशाल वनस्पतियों की भरमार थी। पिछले साडे छह करोड़ साल के नवजीवन काल के दरम्यान सस्तन प्राणी पैदा हुए। संपूर्ण भूगर्भीय कालमापन से अगर तुलना की जाए तो मनुष्य को जन्म लिए चौबीस घंटे काल में मानो एक सेकंड हुआ है।

रेडियो कार्बन डेटिंग

पृथ्वी के गर्भ से प्राप्त पुरातात्विक वस्तुओं से मानव जाति के इतिहास संबंधित काफी जानकारी प्राप्त होती रहती है। लेकिन इन प्राचीन वस्तुओं का समय निश्चित करना आवश्यक है। वर्ष १९४० में विलार्ड लिबी महोदय ने, इसके लिए एक विशेष तंत्र विकसित किया। इसी तंत्र को ' रेडिओ कार्बन डेटिंग ' नाम दिया गया है। लेकिन इससे पुरातत्व विज्ञान में, एक क्रांति का सूत्रपात हुआ। इस खोज के लिए वर्ष १९६० में लिबी को नोबेल पुरस्कार भी दिया गया।

कार्बन १४, कार्बन का एक विशिष्ट समस्थ है। लेकिन यह किरणोत्सर्गी है। किरणोत्सर्गी द्रव्य का लगातार क्षय होते रहता है और कालांतर में उससे अन्य मूलद्रव्य या उसके संयुक्त तैयार होते हैं। ऐसे मूलद्रव्य के मूल वस्तुमान का क्षय होकर उसमें से आधा वस्तुमान बचा रहने के लिए जो समय लगता है उसे उस द्रव्य की ' अर्ध आयु ' कहते हैं। कार्बन १४ की अर्ध आयु ५७३० वर्ष है। अर्थात् ५७३० सालों बाद उसका आधा वस्तुमान बचा रहेगा। ११४६० वर्षों बाद मूल कार्बन १४ का, चौथा हिस्सा बचेगा। वातावरण में विद्यमान कार्बन डाय ऑक्साइड के साथ होनेवाले आदान-प्रदान के कारण वातावरण में तथा सजीवों के शरीरों में पाए जाने वाले कार्बन

में, कार्बन¹², कार्बन ¹⁴ का प्रमाण समान रहता है। लेकिन जब सजीव मृत होता है उसके बाद C¹² तो कायम रहता है, लेकिन C¹⁴ घटने लगता है। उनके अनुपात का उपयोग, पुराने जमाने की वस्तुओं का जीवनकाल निश्चित करने के लिए किया जाता है। इस पद्धति से साठ-सत्तर हजार साल पुरानी वस्तुओं की आयु, सटीकता से निश्चित की जा सकती है।

पृथ्वी के वातावरण पर वैश्विक किरण लगातार आघात करते हैं। उस कारण वातावरण के अणुओं से न्यूट्रॉन कण अलग होते हैं। ये अनगिनत गतिमान कण वातावरण के नैट्रोजन से टकराते हैं। इस प्रक्रिया से कार्बन ¹⁴ की उत्पत्ति होती है। नाइट्रोजन ¹⁴ + न्यूट्रॉन = कार्बन ¹⁴ + प्रोटॉन | वातावरण के साधारण कार्बन के साथ यह कार्बन ¹⁴ सहजता से मिल जाता है तथा हवा और अन्न के माध्यम से वह प्रत्येक प्राणी के शरीर में पहुंच जाता है। प्राणी की मृत्यु होने पर कार्बन ¹⁴ की आपूर्ति बंद हो जाती है। लेकिन मृत शरीर में साधारण कार्बन और कार्बन ¹⁴ इनका प्रमाण धीरे-धीरे बदलने लगता है। शरीर में कितना कार्बन ¹⁴ बचा है इसका पता करते ही कार्बनयुक्त चीज या सजीव की मृत्यु कितने समय पूर्व हुई, यह ज्ञात हो जाता है। कई परीक्षणों में इस पद्धति की सटीकता सिद्ध हुई है।

रेडियम के क्षय होने की गति काफी कम होने से इसी पद्धति से अरबों वर्षों तक की आयु निश्चित करना संभव है। ऐसा माना जाता है कि पृथ्वी पर विद्यमान सीसा, यह यूरेनियम के समस्थ U²³⁸ तथा U²³⁵ और थोरियम²³² इनका नाश होने के बाद बचा है। इसके आधार पर पृथ्वी की आयु 4.5 अरब वर्ष निकाली गयी है। पृथ्वी की सबसे पुरातन शिला की आयु 3.8 अरब वर्ष निकली है। अर्थात् पृथ्वी का कवच ठोस होने का कालावधि 0.7 अरब वर्ष आता है।

काल गणना के एकक

मनुष्य ने सूर्य और चंद्र को कालगणना के दो प्राकृतिक संदर्भ बिंदुओं के रूप में अपना लिया। दिन, मास और वर्ष कालमापन की इकाइयाँ मानी गयी हैं। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक, एक पूर्ण चंद्रमा से दोबारा पूर्ण चंद्र उगने तक और एक ऋतु-प्रारंभ से उसी ऋतु के दोबारा प्रारंभ होने तक की समयावधि को उपरोक्त कालमापन की इकाइयाँ माना गया हैं। इन तीन इकाइयों का आपसी संबंध पूर्णांक में बिठाया नहीं जा सकता। इसलिए उनमें तालमेल बिठाने के हिसाब से भिन्न-भिन्न समुदायों ने गणना के अपने पैमाने विकसित किए या यों कहों अपने-अपने पंचांग बनाएं। लेकिन उन सभीमें ऋतुवर्ष को प्राधान्य मिला।

दुनिया के देशों में संवत्सरोत्तमक गणना, कहा और कब शुरू हुई इसकी निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है। लेकिन यह इतिहास उपलब्ध है कि ईसा से २८०० वर्ष पूर्व, मिश्र में तीन ऋतुओं और बारह महिनों में समय मापन करने का प्रचलन था। ऐसा भी माना जाता है कि संवत्सर गणना की शुरुआत ईसा पूर्व २६३० में चीन में हुई। बाद में जगह-जगह राजाओं ने अपने से जुड़े संवत्सर शुरू किए।

भारत में चैत्रादि मास गणना आरंभ होने का समय ईसा पूर्व ४००० से लेकर ईसा पूर्व २००० माना जाता है। आर्यों ने रविमार्ग के भागों की कल्पना करके उन्हें 'नक्षत्र' नाम दिया। उस समय के उनके मास चंद्रमास थे और इस कारण उन्हें अधिक मास का ज्ञान था।

यत् संवत्सर तस्य त्रयोदशो मासो विष्टपम् । यथा वा ऋषभस्य विष्टपम् ॥

ऋक संहिता से—चकाणासं परिणहं पृथिव्याः --यह पृथ्वी गोल होने के ज्ञान को सूचित तो करता है लेकिन इस काल में इस ज्ञान को गणित का स्पर्श नहीं था। सूर्य-चंद्र से संबंधित निरीक्षणों के साथ, गणित का जोड़ ईसा पूर्व १५०० और ईसा पूर्व ११०० के दरम्यान की बात है।

दिन और रात मिलकर एक पूर्ण दिन बनता है। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक। यह कालगणना की प्राकृतिक इकाई मानी गयी है। इससे बड़ी इकाई मास है। मास का आधार चंद्र है, एक पूर्णिमा से दूसरी पूर्णिमा तक या एक अमावस्या से दूसरी अमावस्या तक। तीस दिन का एक मास समझा जाता है । लेकिन चंद्र की पृथ्वी के गिर्द चक्कर लगाने की निश्चित अवधि २९ दिवस, १२ घंटे, ४४ मिनट और २.८ सेकंड है, पूरे ३० दिन नहीं। मास से बड़ी इकाई वर्ष है। सूर्य की पूरी प्रदक्षिणा करने में पृथ्वी को जो समय लगता है वह एक वर्ष है। हम ३६५ दिनों का एक वर्ष मानते हैं। लेकिन प्रत्यक्ष में यह अवधि ३६५.२४२१९ दिनों की है। इस फर्क के कारण प्राकृतिक अवधि और हमारी गणनाओं के अनुसार आने वाली अवधि इनमें संतुलन के लिए, उनमें कुछ समय घटाना-बढ़ाना आवश्यक होता है। यह काम पंचांग संभालते हैं और वर्ष के साथ मासों का और मासों के साथ दिनों का तालमेल बिठाते हैं।

मुस्लिम वर्ष केवल चंद्र वर्ष है, तो ईसाइयों का सूर्य वर्ष है और उसके ३६५ दिन हैं।

भारतीय पंचांग सौर-चांद्र पंचांग है। इसमें ज्योतिष-गणित के लिए चंद्र का आधार लिया तो वर्ष की गणना के लिए ऋतुवर्ष का और मास-संक्रांति के लिए भी सूर्य का ही।

बाद में रविमार्ग का राशियों और नक्षत्रों में विभाजन मिलता है। विद्वानों के अनुसार राशियों की कल्पना में बेबिलोन का योगदान है, तो नक्षत्रों में भारत का। राशिचक्र की ज्योतिष

गणना के लिए आधार सूर्य है तो नक्षत्रचक्र का चंद्र। भारतीय मासों के नाम नक्षत्रों के आधार पर बने हैं। भारत में भी ऋतुवर्ष की दृष्टि से रविमार्ग को बारह विभागों में बांटा गया था। लेकिन उनका राशि नामकरण होना ईसा वर्ष ४०० के दरम्यान की बात है।

राशिचक्र

प्राचीन ग्रीक लोगों ने आयनिक वृत्त के बराबर बारह हिस्से करते हुए उन्हें राशि नाम दिया। यह राशिचक्र अभी तो जगन्मान्य है। एक साल के समय के दरम्यान अर्थात् बारह महिनों में सूर्य आयनिक वृत्त पर एक प्रदक्षिणा पूरी करता है। अर्थात् सामान्य तौर पर प्रत्येक महिने में सूर्य का एक राशि में से संक्रमण होता है।

लेकिन प्राचीन भारतीयों के धार्मिक कार्यक्रम और यज्ञ-याग में सूर्य से अधिक महत्व चंद्र को है। चंद्र लगभग सत्ताइस दिनों में पृथ्वी की एक प्रदक्षिणा पूरी करता है। इस कारण प्राचीन भारतीयों ने उस पथ के सत्ताइस हिस्से कर प्रत्येक हिस्से को नक्षत्र यह नाम दिया। अर्थात् चंद्र रोज एक नक्षत्र से होते हुए संक्रमण करता है। ३६० अंश के २७ हिस्से करने पर १३ अंश २० मिनट आते हैं। आकाश के प्रत्येक नक्षत्र का आकार उतना ही है। राशि और नक्षत्र इनको एक दूसरे के साथ जोड़ना हो तो सच्चा दो नक्षत्रों के बराबर एक राशि ऐसा हिसाब होगा, चूंकि एक राशि ३० अंश की होगी।

लेकिन नक्षत्रचक्र आयनिक वृत्त के साथ मेल नहीं खाता। भारतीय लोग राशिचक्र स्थिर मानते हैं। वे राशिचक्र के लिए, वसंत संपात बिंदु का आयनिक वृत्त पर होनेवाला चलन ध्यान में नहीं लेते। इस कारण इस पद्धति को निरयन (निः+अयन) कहते हैं। और शायद इसी कारण निरयन पंचांग ऋतुओं के साथ मेल नहीं खाता। (पाश्चात्य पद्धति में मेष राशि का प्रारंभ अर्थात् वसंत संपात यह आयनिक वृत्त पर होने वाला बिंदु, मापन के लिए प्रारंभ बिंदु माना जाता है। लेकिन पृथ्वी के परांचन गति के कारण वसंत संपात बिंदु स्थिर नहीं रहता। वह प्रति वर्ष लगभग ५० कोणीय सेकंड्स पीछे सरकता है।

दो हजार साल पहले कभी तो, वसंत संपात बिंदु, आकाश में प्रत्यक्ष दिखने वाली मेष राशि के आरंभ स्थान पर था। अब वह मीन राशि के उत्तरा-भाद्रपदा नक्षत्र में आकर स्थिर हुआ है। इसका अर्थ है कि आकाश में प्रत्यक्ष दिखने वाली मेषादि राशि के आकार और पाश्चात्य जिसे मेषादि राशि के तौर पर पहचानते हैं, उनके आकार एक दूसरे से मेल नहीं खाते। उस वसंत

संपात बिंदु से तीस-तीस अंश पर आयनिक वृत्त के बारह हिस्से कर, उस-उस हिस्से में समाविष्ट तारों को, पाश्चात्य लोग मेष, वृषभ आदि नामों से जानते हैं।

वसंत संपात बिंदु का आयनिक वृत्त पर होनेवाला चलन ध्यान में लेकर जो राशियाँ और उनकी अंशात्मक दूरियाँ निश्चित होती हैं उसे हमारे यहाँ ' सायन '(स+अयन) पद्धति कहा जाता है।

नक्षत्र काल

नक्षत्र काल का अर्थ है, नक्षत्र के आधार पर गिना हुआ समय। कोई विशिष्ट तारा एक बार याम्योत्तर(Meridian) वृत्त पर आने के बाद दोबारा उसी स्थान पर आने के लिए जितना समय लगता है, उसे नक्षत्र दिन कहते हैं। व्यवहार में इसके लिए संदर्भ के तौर पर वसंत संपात बिंदु का उपयोग किया जाता है।

नक्षत्र काल और सौर काल इनमें प्रतिदिन चार मिनट का फर्क है। इसका कारण है चुना हुआ संदर्भ बिंदु। सौर काल के लिए सूर्य को संदर्भ बिंदु लिया जाता है तो नक्षत्र काल के लिए तारा या वसंत संपात बिंदु। कोई भी तारा सूर्य की तुलना में काफी दूर होता है। इस कारण पृथ्वी का स्वांगभ्रमण पूरा होने पर, अपने याम्योत्तर वृत्त पर उस विशिष्ट तारे का आगमन प्रथम होता है। उसके बाद पृथ्वी और थोड़े अंश से घूमने पर सूर्य याम्योत्तर वृत्त पर आता है। यह ज्यादा कोन घूमने के लिए पृथ्वी जो समय लेती है वह है ३.९४ मिनट। २३ सितम्बर को सूर्य शरद संपात बिंदु पर होता है तब दोनों आधारों पर लगाई हुई घड़ियाँ एक दूसरे से जुड़ती हैं।

वसंत संपात --

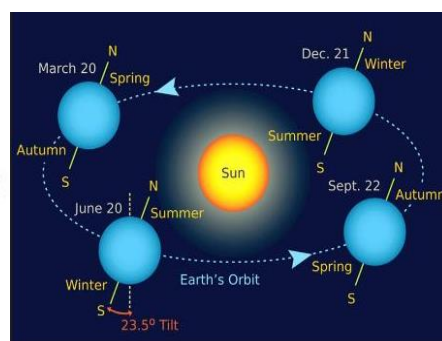
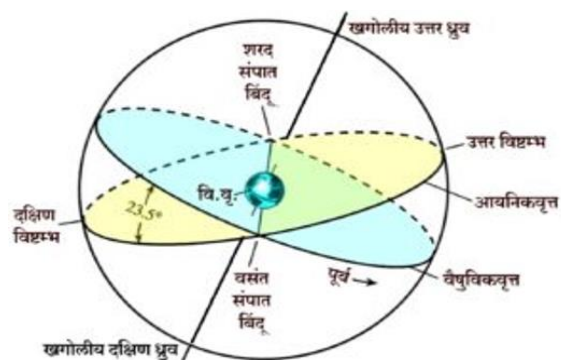
नक्षत्र चक्र का आरंभ बिंदु कौनसा माने, यह हमारे भारतीय पंचांगों में झमेले का मुद्दा है। वास्तव में नक्षत्रचक्र का आरंभ वसंत संपात बिंदु के पास ही होना चाहिए। लेकिन पृथ्वी के परांचन गति के कारण यह बिंदु स्थिर नहीं है। फिर भी सरकार मान्य भारतीय सौर पंचांग में उसे ही आरंभ बिंदु मानकर उस दिन ही चैत्र शुद्ध प्रथमा या गुड़ीपाडवा मनाया जाता है। लेकिन इसके प्रति सर्वसम्मति नहीं है। भारतीयों के राशिचक्र का आरंभ बिंदु और वसंत संपात बिंदु इनके बीच अब लगभग २३ अंश और ४५ मिनट का अंतर आ चुका है।

आकाश में वैषुविक वृत्त और आयनिक वृत्त के दो छेदन बिंदु हैं। उनमें से एक में २१ मार्च को सूर्य प्रवेश करता है और उसकी उत्तरायण यात्रा आरंभ होती है। इसी दिन वसंत ऋतु शुरू होता है। वसंत संपात बिंदु को ही राशिचक्र का आरंभ बिंदु मानते हैं। सायन मेष राशि इसी बिंदु

से आरंभ होती है। पृथ्वी के परांचन गति के कारण वसंत संपात बिंदु प्रति वर्ष लगभग ५०.२ कोनीय सेकंड से पीछे रहता है। पाश्चात्य लोग वसंत संपात बिंदु कहीं भी रहे, फिर भी वहीं से राशिचक्र का आरंभ करते हैं और उसके आगे के प्रत्येक तीस अंश के हिस्से को मेष, वृषभ आदि नाम देते हैं। अर्थात् आकाश में प्रत्यक्ष दिखने वाली (हमारी) राशियाँ और पाश्चात्य राशियां इनका मेल नहीं बैठता।

“हम भारतीय स्थिर राशियाँ का पुरस्कार करते हैं। इस कारण अपनी राशियों के आकार कायम रहते हैं तो पाश्चात्य राशियों के बदलते रहते हैं। “

* २१ जून को सूर्य की उत्तर क्रांति महत्तम अर्थात् २३.५ अंश होती है। २२ सितम्बर को वह शून्य होती है। उस दिन सूर्य बराबर विषुववृत्त पर होता है। फिर वापसी यात्रा में इन्हीं सहनिर्देशांकों की पुनरावृत्ति होती है। उत्तर गोलार्ध का विचार करने पर : जिस दिन सूर्य की उत्तरक्रांति, हम जिस गाँव में रहते हैं उसके अक्षांश इतनी होगी, उस दिन दोपहर बारह बजे सूर्य बराबर हमारे सिर पर होगा। हमारी परछाई नहीं होगी। उदाहरणार्थ, मुंबई का अक्षांश उन्नीस अंश उत्तर है। सूर्य की उत्तरक्रांति जिस दिन उन्नीस होगी, उस दिन मुंबई में दोपहर बारह बजे सूर्य सिर पर होगा। साल में ऐसे दो दिन होंगे। एक उत्तरक्रांति बढ़ते समय और दूसरा कम होते समय। अन्य किसी भी दिन नहीं।



(गुगल के सौजन्य से)

विष्टम्भ और अवष्टम्भ

पृथ्वी के संदर्भ में—

सूर्य इक्कीस मार्च के दिन से, वसंत संपात बिंदु से अपनी उत्तर की ओर की यात्रा शुरू करता है और वास्तव अर्थ में उत्तरायण शुरू होता है। इस दिन रात और दिन समान होते हैं। बाद

में दिनमान बढ़ते जाता है और रातमान कम। बाइस जून को सूर्य विषुववृत्त के अधिकतम उत्तर में होता है। वह दिन सबसे बड़ा होता है। इस अति उत्तर की ओर के बिंदु को ही विष्टम्भ(Summer Solstais) कहते हैं। इस बिंदु के पास सूर्य मामूली सा रुके जैसा लगता है और फिर उसकी वापसी यात्रा शुरू होती है। अब दिनमान कम होने लगता है और रातमान बढ़ने लगता है। बाइस सितम्बर को सूर्य शरद संपात बिंदु के पास पहुँचता है। दिन-रात समान होते हैं। इस दिन सूर्य विषुववृत्त को लांघकर दक्षिण की ओर सरकने लगता है। दक्षिणायन का आरंभ होता है। दिनमान और कम होता जाएगा, रातमान बढ़ते जाएंगे। बाइस दिसम्बर को सूर्य विषुववृत्त के महत्तम दक्षिण में होता है। दिन सबसे छोटा होगा। इस अति दक्षिणी बिंदु को अवष्टम्भ(Winter Solastail) कहते हैं। सूर्य की फिर वापसी यात्रा शुरू।

युतिकाल

सूर्य के गिर्द भ्रमण करने वाले ग्रहों की कक्षाएं भिन्न-भिन्न हैं। अर्थात् प्रत्येक ग्रह की उसकी भ्रमण कक्षा में गति भी अलग-अलग होगी। बुध सूर्य को सबसे करीब है अतः उसकी गति सबसे अधिक होगी। (गतियां: बुध-४८ कि.मीटर/सेकंड, पृथ्वी-२९.८ कि.मी./से., मंगल-२४ कि.मी./से., गुरु-१३.१ कि.मी./से., शनि-९.६ कि.मी./से. आदि) । युति अर्थात् सूर्य, पृथ्वी और विशिष्ट ग्रह एक सीधी रेखा में आना। ऐसा दोबारा होने के लिए जितना समय लगेगा वह 'युतिकाल' होगा।

प्रमाण समय और स्थानीय समय

स्थानीय समय = प्रमाण समय+/- रेखांशों का अंतर x चार मिनट

लंडन के ग्रीनविच से गुजरने वाले रेखांश को संदर्भ रेखांश के तौर पर सभी देशों ने मान्य किया है। 'ग्रीनविच ' मध्यम समय को पूरी दुनिया में संदर्भ काल के तौर पर माना जाता है। लेकिन इसका अन्य देशों में कालमापन के लिए कोई उपयोग नहीं। प्रत्येक देश को अपने कालमापन के लिए एक सुविधाजनक रेखांश चुनना पड़ता है और उसके अनुसार अपने देश की सभी घड़ियाँ नियंत्रित करनी पड़ती है। इस रेखांश के अनुसार दर्शाए समय को ही, प्रमाण समय कहते हैं। भारत में ८२.५ अंश पूर्व रेखांश संदर्भ के तौर पर चुना है। यह लगभग प्रयाग से होते हुए जाता है। भारत की किसी भी घड़ी ने दर्शाया समय, यह वास्तव में प्रयाग का समय होता है

| इस कारण कोलकाता में भले ही सूर्य मुंबई से पहले उगता हो लेकिन दोनों स्थानों पर घड़ियाँ एक ही समय दिखाएंगी। भारतीय प्रमाण समय और और ग्रीनविच प्रमाण समय इनमें साडे पांच घंटे का अंतर है। भारत में साडे पांच बजेंगे तो ग्रीनविच की घड़ी रात के बारह बताएंगी ।

स्थानीय समय माप

प्रयाग का रेखांश ८२.५ अंश पूर्व तो मुंबई का है ७२ अंश और ५० मिनट। दोनों में अंतर है ९ अंश ४० मिनट। एक अंश के ४ मिनट (३६० अंश स्वांगभ्रमण==२४ घंटे, एक घंटे में पृथ्वी १५ अंश से घूमती है। अतः एक रेखांश को लांघने ४ मिनट लगेंगे)। मुंबई प्रयाग के पश्चिम में ९.४ रेखांश अंतर पर है। समय का फर्क होगा $९.४ \times ४ = ३८$ मिनट और ४० सेकंड। इस कारण प्रयाग में सूर्योदय होने के इतने समय बाद मुंबई में सूर्योदय होगा। स्थान प्रयाग के पश्चिम में होगा तो समय का अंतर घटाना चाहिए और पूर्व में होगा तो मिलाना पड़ेगा।

नक्षत्रों के नाम

अश्वनी, भरणी , कृतिका , रोहिणी , मृगशिरा , आर्द्रा , पुनर्वसु , पुष्य , आश्लेषा , मघा , पूर्वाफाल्गुनी , उत्तराफाल्गुनी , हस्त , चित्रा , स्वाति , विशाखा , अनुराधा , जेष्ठा , मूल , पूर्वाषाढा , उत्तराषाढा , श्रवण , धनिष्ठा , शतभिषा , पूर्वाभाद्रपद , उत्तराभाद्रपद , रेवती।

कैलेन्डर

अंग्रेजी महिनों के नामों का, खगोल विज्ञान से दूर-दूर तक का संबंध नहीं। सभी नाम रोमन हैं। प्राचीन समय में, रोमन दस महिनों का एक साल मानते थे। इस साल में ३०४ दिन होते थे और साल का आरंभ मार्च से होता था। ई.पू. ७०० के दरम्यान रोमन सम्राट नुमा पोम्पिलस ने साल का विभाजन बारह महिनों में किया। ग्यारहवें महिने को जनवरी और बारहवें को फरवरी नाम दिया। काफी पहले से रोमन साम्राज्य में जो कैलेंडर उपयोग में था वह चंद्रमास पर आधारित था। साल के दिन होते थे ३५५। लेकिन ऋतुचक्र, सौर वर्ष पर निर्भर है और आदमी के जीवन की गतिविधियां ऋतुचक्र पर। रोमनों को पता था कि साल में ३६५ दिन होते हैं। अतः भारतीयों की तरह ही चांद्र और सौर वर्षों का अंतर मिटाने की दृष्टि से प्रत्येक तीन वर्षों के अंतराल से, साल में एक महिना अधिक जोड़ा जाता था। जिस साल तेरह महिने लिए जाते थे

उसे ' पूर्ण वर्ष ' कहा जाता था। लेकिन पूर्ण वर्ष कौनसा लिया जाए इसका कोई मापदंड नहीं था। यह निर्णय उस समय के धर्माचार्य और राजनैतिक नेता अपनी सुविधा के अनुसार करते थे। रोमन साम्राज्य का विस्तार काफी बड़ा था। अतः कहीं साल में बारह महीने लिए जाते थे तो कहीं तेरह। सारी गड़बड़। अतः ज्युलियस सीज़र ने वर्ष ई.पू. ४६ में, कैलेंडर में भारी सुधार किए। इसे ही ज्युलियन कैलेंडर नाम दिया गया। मुख्य बात यह थी कि चांद्रमास पर आधारित कालमापन रद्द किया गया। ई.पू. एक जनवरी पैतालीस को सारे रोमन साम्राज्य में ज्युलियन कैलेंडर अमल में आया। ई.पू. वर्ष चवालीस में ज्युलियस सीज़र की हत्या हुई। उसके सम्मान में, साल के सातवें महीने को उसका नाम दिया गया ' जुलाई '।

ज्युलियन कैलेंडर में १२८ सालों में एक दिन अधिक जुड़ जाता है। ऐसी स्थिति में पोप ग्रेगरी-१३ ने, ज्युलियन कैलेंडर में कुछ सुधार सुझाए ताकि ख्रिश्चन धार्मिक त्यौहारों का ऋतुचक्र से अलगाव न हो। यह ग्रेगोरियन कैलेंडर आज दुनिया में उपयोग में लाया जाता है। इस कैलेंडर के अनुसार वर्ष में औसतन ३६५.२४२५ दिन आते हैं। फिर भी ०.०००३ दिन का फर्क रहता ही है, लेकिन यह नगण्य है।

कैलेंडर के विकास में तथा उसे वैज्ञानिक स्वरूप देने, उसे युक्तिसंगत बनाने में ज्युलियस सीज़र का काफी योगदान रहा है। यद्यपि उसके बनाए कैलेंडर में भी परिवर्तन, संशोधन, और सुधार की और गंजाइश थी जो पोप ग्रेगरी-१३ ने किए। ग्रेगरी का जन्म ईसा वर्ष १५०२ में रोम में हुआ था। वे आरंभ से ही नक्षत्रों और खगोलशास्त्र में गहन रुचि रखते थे। उन्होंने नक्षत्रीय गणनाओं के पश्चात यह दिखा दिया कि पृथ्वी को सूर्य की परिक्रमा करने ३६५ दिन और ६ घंटे लगते हैं। पोप ग्रेगरी ने अपने कैलेंडर की शुरुआत येशु के जन्मदिन एक जनवरी सन् एक से की। उनके कैलेंडर में साधारण वर्षों में ३६५ दिन तो लीप वर्ष में ३६६ दिन होते हैं। ग्रेगरी के सुझाव पर ही फरवरी माह में एक दिन बढ़ाने के लिए संबंधित वर्ष की संख्या को चार की संख्या से विभाजित होना अनिवार्य किया गया। इस प्रकार प्रत्येक चतुर्थ वर्ष लीप वर्ष होता है। ब्रिटिश साम्राज्य में ग्रेगरी की मृत्यु के १६७ वर्ष बाद इस कैलेंडर का चलन शुरू हुआ। वर्तमान कैलेंडर को ग्रेगोरियन कैलेंडर के नाम से जाना जाता है।

ज्युलियन दिनांक-

ई.पू. १-१-४७१३ इस दिनांक के पूर्व के इतिहास की किसी भी संस्कृति में नोंद नहीं है। अतः इ.स. १५८२ में फ्रेंच वैज्ञानिक ने इस दिनांक को निश्चित किया और उसे अपने पिता ज्युलियस सीझर कैलेंडर का नाम दिया। इसका ज्युलियस सीझर सम्राट और उसके कैलेंडर से कोई लेना-देना नहीं है। फिलहाल सभी प्रकार के खगोलीय गणितों के लिए ज्युलियन दिवस क्रमांक का ही उपयोग किया जाता है चूंकि यहाँ गणित में लीप वर्ष का विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

संदर्भ बिंदु के अनुसार भिन्न-भिन्न वर्ष---

मानो हम सूर्य से देख रहे हैं । पृथ्वी जिस विशिष्ट नक्षत्र समूह के पार्श्व में दिख रही हो, तो सूर्य के गिर्द भ्रमण पूरा करते हुए वह उसी बिंदु पर आने में जितना समय लगता है उसे ' नाक्षत्र वर्ष ' नाम है। इसमें ३६५.२५६४ दिन होते हैं (३६५ दिन ६ घंटे ९ मिनट और ९.५ सेकंड)। इसका उपयोग केवल खगोलशास्त्र में किया जाता है। प्रकाशवर्ष यह एकक इसी पर आधारित है ।

साल के कुल दिन गिनने के अन्य प्रकार को ' संपातीय वर्ष ' कहते हैं। पृथ्वी से देखने पर सूर्य एकबार संपात बिंदु के पास (वसंत या शरद) आने पर, दोबारा उसी बिंदु पर आने के लिए, उसे जो समय लगता है, वहीं 'संपातीय वर्ष' है। लेकिन पृथ्वी की परांचन गति के कारण संपात बिंदु प्रति वर्ष पचास कोनीय सेकंड से पीछे सरकते हैं। इस कारण संपात वर्ष, नाक्षत्र वर्ष से छोटा है। इसमें कुल ३६५.२४२२ दिन होते हैं(३६५ दिन ५ घंटे ४८ मिनट और ४६ सेकंड)। संपातीय वर्ष का ऋतुचक्र से संबंध होने के कारण दैनन्दिन व्यवहार और ज्योतिषशास्त्र के लिए संपातीय वर्ष का ही अधिक उपयोग होता है। इसे ही सौर वर्ष भी कहते हैं। ग्रेगोरियन कैलेंडर का वर्ष भी सांपातिक वर्ष ही है (मध्यम अवधि है ३६५ दिवस ५ घंटे ४९ मिनट और १२ सेकंड अर्थात् ३६५.२४२५ दिवस)। सांपातिक वर्ष की अवधि नाक्षत्र वर्ष से लगभग २० मिनट कम है।

नाक्षत्र वर्ष की अवधि एक सदी में ०.०१ सेकंड से बढ़ती है तो सांपातिक वर्ष ०.५३ सेकंड से छोटा होता है। (एक अनुमान के अनुसार साडे छह करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी का एक दिन २१ घंटे का था। अर्थात् प्रति सौ वर्षों में पृथ्वी के एक दिन में एक मिली सेकंड की वृद्धि हो रही है। ऐसा होने का मुख्य कारण है ग्रहों का एकदूसरे पर होनेवाला परिणाम। अन्य भी कई क्षुल्लक कारण हो सकते हैं।

चंद्र की कक्षा और क्रान्तिवृत्त (पृथ्वी की कक्षा) ये एक दूसरे को राहु और केतु नामक दो काल्पनिक बिंदुओं पर छेदते हैं। इनमें से एक बिंदु (मान लो केतु) सापेक्ष होने वाली पृथ्वी प्रदक्षिणा की कालावधि को 'ग्रहण वर्ष ' कहते हैं । यह ३४६ दिन १४ घंटे ५२ मिनट और ५१ सेकंड अर्थात् ३४६.६२००५ मध्यम सौर दिन का होता है।

अमावस्या से लेकर तो दूसरी अमावस्या तक एक महिना मानकर, बारह चांद्रमास पूर्ण होने को जितना समय लगता है वह ' चांद्रवर्ष ' है। यह ३५४ दिन का होता है।

क्रान्तिवृत्त के उपसूर्यबिंदु (सूर्य से न्यूनतम अंतरवाले) को संदर्भ मानकर आनेवाले वर्ष को 'परिवर्ष ' कहते हैं । इसके ३६५ दिन, ६ घंटे, १३ मिनट, ५३ सेकंड होते हैं।

धार्मिक कार्यों के लिए दुनिया में अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग वर्षों को माना जाता है। ख्रिश्चन लोग चर्च कैलेंडर का उपयोग करते हैं। यह अंशतः सूर्य तो अंशतः चांद्रवर्ष है इस कारण इनके कुछ त्यौहारों की तारीखों में फर्क नहीं होता तो ईस्टर जैसे त्यौहारों की तारीखें स्थिर नहीं रहतीं। इस्लामी वर्ष का आधार चंद्र है।

३. गणित के आधार

प्रारंभिक गणित --

गणित यह विशिष्ट पद्धति की भाषा है। उसमें तर्कशुद्धता है। केवल ज्ञानेन्द्रियों के कारण वस्तुस्थिति का ज्ञान होता ही है, ऐसा नहीं। इसके लिए सहायक उपकरणों की सहायता ली जाती है, वास्तवता तक पहुँचने के लिए। गणित उनमें से एक है। गणना के बाद आता है गणित।

कहा जाता है कि गणित में पूर्णाकों की निर्मिति पायथागोरस ने की। लेकिन केवल पूर्णाकों से गणित की अभिवृद्धि होना संभव नहीं था। हिंदुओं ने पूर्णाकों के साथ अपूर्णाकों को स्थापित किया। इतना ही नहीं तो करणी संख्या का भी अनुसंधान किया। $\sqrt{2}$ संख्या दो पूर्णाकों का गुणोत्तर नहीं है। भूमिति के एकदम सादे चौरस के कर्ण का प्रश्न, १, २, ३ -आदि पूर्णांक हल नहीं कर सकते। चौरस का कर्ण निकालना आसान है लेकिन उसकी लम्बाई हमेशा निश्चित संख्या से दिखाना असंभव है। इस असंभवता में ही करणी संख्या का उद्गम है। $\sqrt{2}$ इस करणी संख्या की कीमत हम किसी भी दशमलव स्थान तक निकाल सकते हैं। वेदकालीन ऋषियों ने इसकी कीमत पांच दशमलव तक निकाली थी।

ललित विस्तार इस बौद्ध ग्रंथ में गणितज्ञ अर्जुन और बोधिसत्व इनके बीच के संवाद से कुछ गणितीय प्रक्रियाओं के संकेत मिलते हैं। गणितीय प्रक्रियाएं जो प्राचीन समय में उपलब्ध थीं - १) संचालन (योग, जोड़ना, +), २) व्यकलन (घटाना, -), ३) गुणन (गुना करना, X) ४) भाग (भाग देना, /), ५) वर्ग करना, ६) वर्गमूल, ७) घन निकालना, ८) घनमूल आदि।

वास्तव में भूमिति तथा अंकगणित इनमें भारतीयों ने की प्रगति का श्रेय यज्ञसंस्था को तथा यज्ञकुंड के आकार को दिया जाता है। भारत में गणित का जन्म वेदकाल में तो हुआ लेकिन उसमें आगे का विकास ग्रीस तथा रोम में हुआ। भारत में वेदकालीन प्रगत हुई भूमिति, क्षेत्र मापन उद्देश्य के लिए मर्यादित थी। ग्रीक भूमितीकारों ने प्रदान की हुई पद्धति हिंदु भूमिति में नहीं मिलती। यूरोपीय भूमिति को पूर्णत्व तक पहुँचाया ग्रीक गणितियों ने - १) ईसा पूर्व : १) झेनो (४९५-४३५) २) युडॉक्ज़स (४०८-३५५) ३) पायथागोरस (जन्म ५६०) ४) युक्लिड (३३०-२७५) ५) अपोलोनियस (२५०-२००) ६) आर्किमिडिज़ (२८७-२१२)।

ग्रीस-

पायथागोरस सिद्धान्त :

पायथागोरस का जन्म ग्रीक व्यापारी केंद्र सामोस द्वीप में हुआ था। इनके सिद्धान्त के अनुसार किसी भी काटकोन त्रिभुज की दो भुजाओं के वर्गों का योग, उसकी तीसरी भुजा, कर्ण के वर्ग के बराबर होता है।

लेकिन यह दावा किया जाता है कि यह सिद्धान्त बोधायन सूत्र में है, जिसका उपयोग यज्ञों की वेदियों के स्वरूप और आकार निर्धारण में होता था।

ऐसा कहा जाता है कि पायथागोरस ही प्रथम वैज्ञानिक थे जिन्होंने अनुमान लगाया था कि विभिन्न ग्रह सूर्य परिक्रमा करते हैं।

लेकिन बाद में ग्रीक संस्कृति का हास होता गया। आर्किमिडिज़ के बाद लगभग दो हजार वर्षों तक नाम लेने लायक कोई गणिती यूरोप में नहीं हुआ।

ग्रीस का योगदान -

इतिहास में मनुष्य के चिंतन का सारा क्षेत्र दर्शन में अंतर्भूत था। दर्शन में एक ही तरह के निष्कर्ष निकलेंगे, यह जरूरी नहीं। उसमें अलग-अलग विचारधाराएं उदित हुईं। लेकिन प्रत्येक मुद्दे को कठोरता पर कसने की आदत लगी वह भूमिति के अध्ययन से। इसी कारण यह कहा जाता है कि युक्लिडीय भूमिति यह तर्कशास्त्र की जननी है।

युक्लिड

विज्ञान के इतिहास पर जबरदस्त प्रभाव डालने वाला आद्य ग्रंथ इस रूप में युक्लिड के 'एलिमेन्ट्स' ग्रंथ का नाम लिया जाता है। युक्लिड यह ईसा पूर्व तीसरी सदी में हो गया। युक्लिड ग्रीक गणितज्ञ था। एलिमेन्ट्स के तेरह खंड हैं। इस ग्रंथ में तबतक ग्रीक गणितज्ञों ने निर्माण किया हुआ सारा गणितीय ज्ञान तो संकलित है ही। इतना ही नहीं तो वह गणिती सिद्धान्तों के पांच गृहितकों के आधार पर की हुई सूत्रबद्ध और तर्कशुद्ध प्रस्तुति है। इस ग्रंथ में दिये लगभग सभी सिद्धान्तों की सिद्धता के लिए केवल गृहितके और इससे पूर्ण सिद्ध हुए विधान, इन्हींका सहारा लिया गया है, अतः वे पूर्णतया विश्वासार्ह हैं। युक्लिड की अपनी कई सिद्धताएं तथा अन्योक्ति मिलाकर ४६५ गणिती सिद्धान्तों का इसमें अंतर्भाव है।

एलिमेन्ट्स के पांचवे, समांतर रेखाओं के गृहितक को उस समय के गणितगृहितकों का उपयोग कर सिद्ध किया जा सकेगा, ऐसा विद्वानों को विश्वास था। ऐसे प्रयत्न युक्लिड के

समय से लेकर तो उन्नीसवीं सदी तक किए गये। लेकिन सफलता नहीं मिली। (इन प्रयत्नों में से ही क्रांतिकारी अयुक्लिडीयन भूमिति की खोज हुई।) अंत में युजेनिओ बेल्ट्रामी इस इटालियन गणितज्ञ को उन्नीसवीं सदी में इसमें सफलता मिली। युक्लिड ने उस विधान को गृहितक के रूप में दिया हुआ स्थान ही उचित था, यह पक्का हुआ।

एलिमेन्टस् की कुछ विधाने, बिना सिद्धता के उपयोग में लाए गये हैं। १८९९ में डेव्हिड हिलबर्ट इस जर्मन गणितज्ञ ने पांच के स्थान पर बीस गृहितकों का उपयोग कर इस ग्रंथ के सभी सिद्धान्तों की पुनर्रचना की। लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि पुनर्रचना करते समय युक्लिड के ३६५ विधानों में से एक भी गलत नहीं निकला। इसी कारण युक्लिड को भूमिति का जनक माना जाता है।

युक्लिड ने मूलभूत स्वरूप की कुल दस स्वयंसिद्ध बातें मानी हैं -

- १) दो बिंदु एक सीधी रेखा निश्चित करते हैं।
- २) सीधी रेखा, दोनों दिशाओं में चाहे जितनी बढ़ायी जा सकती है।
- ३) अगर केंद्रबिंदु दिया हो तो किसी भी त्रिज्या का वृत्त निकाला जा सकता है।
- ४) सभी काटकोन एकदूसरे के बराबर होते हैं।
- ५) कोई एक सीधी रेखा ' ल ' है। ' व ' यह इस रेखा के बाहर का बिंदु है। रेखा ' ल ' तथा बिंदु ' व ' से जानेवाला एक प्रतल है। इस प्रतल में, ' व ' बिंदु से होती हुई ' ल ' रेखा को न छेदने वाली केवल एक ही रेखा निकाली जा सकती है या समांतर रेखा निकाली जा सकती है।

इसके अतिरिक्त समांतर रेखा की एक और व्याख्या दी गयी है - “ एक ही प्रतल में एक दूसरी को न छेदने वाली रेखाएं।” इसके आधार पर समांतर रेखाओं का अस्तित्व गृहित माना गया है।

- ६) एक ही पद के साथ समान होने वाले पद एकदूसरे के साथ भी समान होते हैं।
- ७) तुल्य पदों में कोई भी पद मिलाने पर आने वाले नये पद, एकदूसरे के बराबर होते हैं।
- ८) तुल्य पदों में से कोई भी पद घटाने पर आने वाले पद, एकदूसरे के बराबर होते हैं।
- ९) एकदूसरे पर रखने के बाद एकरूप दिखने वाली आकृतियां समान होती हैं।

अयुक्लिडियन भूमिति -

उन्नीसवीं सदी में जर्मन गणितज्ञ कार्ल गाउस ने युक्लिड के पांचवें गृहितक पर अनुसंधान हाथ में लिया। उस गृहितक को सिद्ध करने के लिए, त्रिकोण के तीन कोनों का योग 180° होता है, यह सिद्ध करना काफी था। अपने शोध में गाउस ने उलटी पद्धति को उपयोग में लाकर तीन कोनों का योग 180° से कम या ज्यादा अगर मान लिया तो विसंगति मिलती है, यह बताने के प्रयास शुरू किए। लेकिन जब त्रिकोण के तीन कोनों का योग 180° से कम माना और अपना तर्क आगे बढ़ाया तो उसे किसी विसंगति के स्थान पर सुसंगत ऐसी नई ज्यामिति ही हाथ लगी। पृष्ठभाग सपाट न होने पर अगर अन्तर्वक्र हो तो इस भूमिति के अनुसार उस पर निकाले त्रिकोण के तीन कोनों का योग 180° से कम हो सकता है। गाउस ने अपना यह शोध गुप्त ही रखा।

जल्दी ही हंगेरियन गणितज्ञ जोहान बोल्याई ने स्वतंत्र रूप में इसी भूमिति की खोज की। इतना ही नहीं तो १८२९ में रूसी गणितज्ञ निकोलाई लोबोचेव्स्की ने भी यही भूमिति स्वतंत्र ढंग से खोजी।

इस अयुक्लिडीयन भूमिति का नया प्रकार, एक अलग भूमिति जर्मनी के गेऑर्ग रिमान ने १८५४ में खोजी। इसमें बहिर्वक्र पृष्ठभाग पर त्रिकोण के तीनों कोनों का योग 180° से अधिक होता है।

दो हजार सालों तक केवल युक्लिड की भूमिति का बोलबाला था। इस कारण शुरू में उपरोक्त भूमितियों की उपेक्षा होती रही। लेकिन रिमान की भूमिति का, व्यापक सापेक्षता सिद्धान्त में उपयोग किया गया और उनका महत्व बहुत बढ़ गया। इसी कारण इस पार्श्व के साथ इनका उल्लेख महत्वपूर्ण है।

भिन्न-भिन्न भूमितियों की विशेषताएं -

सपाट भूमिति

१) एकविधता (Homogeneous)

सभी दिशाओं में दिखने वाला दृश्य समान होना। हम आकाशगंगा से किसी और दीर्घिका पर जाने के बाद भी सभी दिशाओं में दिखने वाला अवकाश सामान्य तौर पर समान होगा।

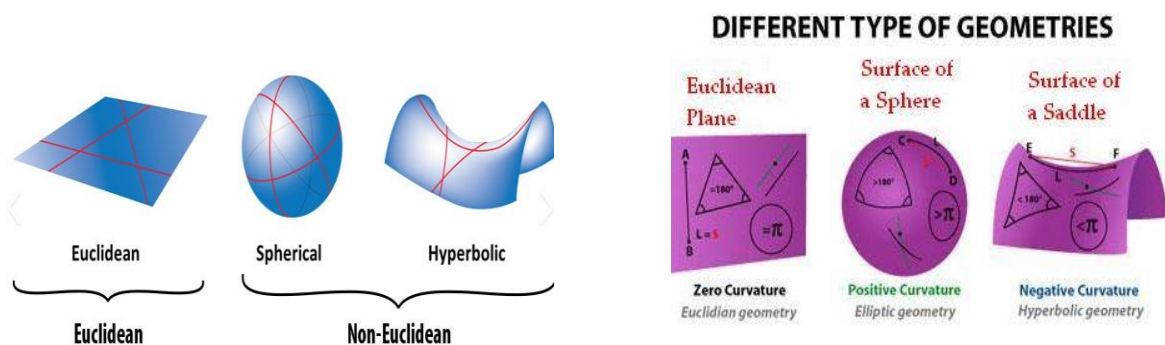
२) एकदैशिकता :

भौतिक गुणधर्म सभी दिशाओं में समान होते हैं। उदा. निर्वात प्रदेश में, सभी दिशाओं में प्रकाश की गति समान होती है।

युक्लिडीयन ज्यामिति में पदार्थ का स्थान बदला या उसका परिवर्तन किया तो भी उस पदार्थ का अवकाशीय स्वरूप और आकार नहीं बदलता। इस गुणधर्म को एकरूप भूमिति ऐसा नाम है। उदा. युक्लिडीयन अवकाश में सर्वत्र, वलय की परिधि और व्यास इनका 'पाय' (π) यह गुणोत्तर कायम रहता है।

अपास्तीय और गोलीय भूमिति में, युक्लिड प्रणित भूमिति की एकविधता तथा एकरूपता होती है। लेकिन इस भूमिति की एक अंगभूत प्रमाण त्रिज्या होती है (Intrinsic Scale Length)। युक्लिड भूमिति के लिए यह शून्य होती है। अपास्तेय और गोलीय भूमिति के लिए यह त्रिज्या बहुत बड़ी होगी, तो ये दो भूमितियां और युक्लिड भूमिति इनके बीच का अंतर ध्यान में नहीं आएगा। इसी कारण अपास्तेय और गोलीय अवकाश बहुत विशाल हो तो, उसपर विद्यमान निरीक्षक को लगेगा कि वह युक्लिड प्रणित अर्थात् सपाट अवकाश में रह रहा है। हम जिस अवकाश में रह रहे हैं, उसकी भूमिति सपाट, अपास्तीय या गोलीय है इसका हमें ठीक ढंग से अंदाजा नहीं है, चूंकि विश्व की अंगभूत प्रमाण त्रिज्या प्रचंड है। अतः हमारा अवकाश, युक्लिडीयन भूमिति का पालन करता है, ऐसा हम समझते हैं।

अपास्तेय अवकाश का महत्वपूर्ण गुणधर्म है कि वह खुला (Open) और अनंत (Infinite) है। इससे उलट, गोलीय अवकाश बंद (Closed) और मर्यादित (Finite) होता है।



(गूगल के सौजन्य से)

ग्रीक तत्ववेत्ता झेनो (ईसा पूर्व पांचवीं सदी) -

झेनो के समय, कालखंड का या फिर रेखाखंड का सातत्य (Continuity) यह कलनशास्त्र की कल्पना विकसित नहीं हुई थी। उसी तरह गणितीय अनंत का (Infinity) का स्वरूप भी स्पष्ट नहीं था। सातत्य यह संकल्पना सत्रहवीं सदी में विकसित हुई और गणितीय अनंत का स्वरूप उन्नीसवीं सदी में उभरा। तबतक कई विरोधाभास पैदा होते रहे।

झेनो के उपरोक्त विरोधाभासों में अन्तर और काल ये १,२,३,---ऐसे अनंत, क्रमवार और अविभाज्य बिंदुओं से बने हैं ऐसा माना गया है। इस गलत आधार पर निकाले निष्कर्षों के कारण विरोधाभास थे। प्रगत गणित ने इन सारे विरोधाभासों के लिए उत्तर दिए हैं। फिर भी इन विरोधाभासों का, अनंत जैसी गणितीय संकल्पनाओं को जन्म देने के कारण भारी महत्व है।

- झेनो ने प्रस्तुत किए नौ विरोधाभास उपलब्ध हैं।
- झेनो के युक्तिवाद में जो गलती थी उसे पकड़ने लगभग दो हजार वर्ष लगे।
- अनंत संख्याओं का योग हमेशा अनंत ही होगा यह आवश्यक नहीं। जैसे-

$$100 + 10 + 1 + 0.1 \text{ -----अनंत पद} = 111.111\text{----} \quad |$$

इस विषय पर अन्यत्र चर्चा हो चुकी है, इस कारण यहीं विराम लेंगे ।

आधुनिक गणित -

आधुनिक गणित का जन्म सत्रहवीं सदी में हुआ। फ्रांस में जितने गणितज्ञ हुए उतने किसी और देश में नहीं। इस दरम्यान गणित की नई-नई शाखाएं निर्माण हुईं, जिनपर आधुनिक विज्ञान खड़ा है। उनमें से कुछ का ही, केवल उल्लेख यहाँ संभव है।

आधुनिक गणित के विकास का श्रेय गणितज्ञ देकार्त तथा आंग्ल गणितज्ञ न्यूटन को जाता है। देकार्त को बीजभूमिति का जनक माना जाता है। उन्होंने कार्टेशियन दिशांक पद्धति का आविष्कार किया। यही वह समय था जब विज्ञान के क्षेत्र में, नये युग का आरंभ गैलिलिओ द्वारा किया गया। एक बिंदु की आकाश में स्थिति दिखाने के लिए डेकार्त ने एक परिमाणात्मक पद्धति अपनायी। दिशांकों की कार्टेशियन पद्धति-

हम किसी भी बिंदु को प्रस्थान बिंदु समझकर वस्तुओं के ज्यामितीय गुणधर्मों को व्यक्त कर सकते हैं। इस तरह दिशांकों की प्रणाली में प्रस्थान बिंदु के चयन के संदर्भ में सभी बिंदुओं की समानता का कारण अवकाश का वह गुणधर्म है जिसे समांगता(Homogeneity) कहते हैं।

इसके अनुसार अवकाश में सभी दिशाएँ एक समान हैं। इसे ही अवकाश की समदैशिकता(Isotropy) कहते हैं।

गणित की दो विरोधी विचार प्रणालियाँ—

१) विच्छेदक : पुरातन प्रतिनिधी - झेनो ।

आधुनिक प्रतिनिधी - क्रॉनेकर (१८३०-९१) , ब्रुवेर (जन्म -१८८१ ।

अखंडता और अनंतत्व के टिप्पणीकार। झेनो के चार कूट प्रश्नों में अखंडता और अनंतत्व के बीज हैं।

२) विधायक : पुरातन प्रतिनिधी - युडॉक्झस(जन्म- ईसापूर्व ४०८) ,

: आधुनिक प्रतिनिधि - वायरटॉस-(१८१५-१८९७), डेडिकंट(१८३१-१९१७), काटोर (१८४५-१९१८) ।

हर बार संपूर्ण और परिपूर्ण उत्तर प्राप्त करना चाहिए, यह आवश्यक नहीं। उसके करीब-करीब, उत्तर आने से काम चल जाएगा। अर्थात् इसमें सीमा की कल्पना के बीज हैं।

कलनशास्त्र—

परिबल (Momentum) अर्थात् पदार्थ का वस्तुमान गुना उसका वेग। पदार्थ का चलन शुरू रहता है तब वस्तुमान में कोई विकार नहीं होता, वह स्थिर रहता है यह हमारे सामान्य व्यवहार में हमारा अनुभव है। न्यूटन के समय जो गतियां संभवनीय थीं उनमें भी यही अनुभव था।

लेकिन कल्पना कीजिए कोई बिंदु सीधी रेखा में चल रहा है। वह अगर निश्चित समय में निश्चित दूरी पार करता हो तो हम कह सकते हैं कि उसका वेग स्थिर है। एक सेकंड में अगर वह ' स ' अंतर पार करता होगा, तो उसका वेग 'स' होगा। लेकिन आमतौर पर बिंदु का वेग स्थिर नहीं रहता। स्टेशन से निकलते समय गाड़ी की गति शून्य होती है, फिर धीरे-धीरे बढ़ती है। अगले स्टेशन में प्रवेश करते समय वेग धीरे-धीरे कम होते हुए शून्य हो जाता है। अर्थात् गाड़ी का वेग स्थिर नहीं है। क्षण - क्षण में वह बदलता है। जैसा, परिबल के उपरोक्त गणना में वेग लेना है तो कौन सा लें।

' ट ' सेकंड में ' स ' अंतर पार किया हो तो s / T यह औसत वेग होगा। या s / T गति से शुरू से बिंदु निकला तो वह T सेकंड में s अंतर पार करेगा।

अब मानो ' T_0 ' सेकंड में ' s_0 ' अंतर से बिंदु आगे बढ़ता है तो उसका $T-T_0$ समयावधि में औसत वेग $s-s_0 / T-T_0$ होगा। यह औसत कीमत अधिकतम सटीक आने के लिए $T-T_0$ अवधि को छोटे से छोटा करना होगा । तो विशिष्ट क्षण में मिलने वाली गति होगी $s-s_0 / T-$

ट₀| यही कीमत कलनशास्त्र में ds / dt इस रूप में दिखाई जाती है| अंतर के बदल का दर यानि वेग तो वेग के बदल का दर याने प्रवेग (Acceleration)|

इस तरह क्षण-क्षण बदलती गति से चलने वाले बिंदु ने पार किया हुआ सटीक अंतर निकालने के संदर्भ में सोचते समय न्यूटन द्वारा समाकलन शास्त्र (Integral Calculus) की खोज हुई| वैसे तो न्यूटन तथा लाइब्निज, दोनों ने स्वतंत्र रूप से ' कैलक्युलस ' इस गणित की शाखा की खोज की थी जो अधिकांशतः आधुनिक विज्ञान का आधार है|

संभाव्यता सिद्धान्त -

अनिश्चित परिस्थिति में निर्णय लेते समय ' संभाव्यता (Probability) सिद्धान्त की महत्वपूर्ण भूमिका होती है|

जेरोलामो कार्डानो यह एक इटालियन गणितज्ञ था| लेकिन वह जुआ खेलने का शौकीन था| उसने जुए में प्रतिस्पर्धी को हराने, गणितीय आधार पर कुछ अटकलें बनाई थीं| उनके आधार पर वह कई बार जितता था| इस तरह उसने सोलहवीं सदी में ही संभाव्यता सिद्धान्त की प्राथमिक कल्पना विकसित की थी| उसने सन् १५६० में ताश के पत्तों और गोटी के खेलों में संभाव्यता पर आधारित चालों पर एक किताब लिखी थी लेकिन वह उसकी मृत्यु के ८७ वर्षों बाद प्रसिद्ध हुई|

संभाव्यता की आधुनिक कल्पना की शुरुआत १६५४ में हुई, ऐसा माना जाता है| ब्रिश्चियन हायजेन इस डच गणितज्ञ ने लैटिन भाषा में 'ऑन द रिझनिंग इन गेम ऑफ चान्स ' (अंग्रेज़ी अनुवाद) किताब प्रकाशित की| यह १६५७ में प्रकाशित हुई| इस पुस्तक में जुए से संबंधित समस्याओं में संभाव्यता पर गणितीय विवेचन था| इसके बाद संभाव्यता के गणितीय विकास में तेजी आयी| अर्थात् इस शास्त्र का अस्तित्व में आने का इतिहास, जुए से जुड़ा हुआ है|

समुदाय में प्रत्येक व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व होता है| अर्थात् समुदाय या समूह बहुजिनसी (Heterogenous) होता है| इस कारण विशिष्ट गुणधर्मों वाले व्यक्तियों का हिसाब पूर्णांकों में करना होगा| तथा उनका वर्गीकरण भी अलग-अलग करना होगा| ऐसी स्थिति में इन आधारों पर निकाले तर्क, निष्कर्ष तथा अनुमान क्या पूरे समुदाय पर लगाये जा सकेंगे| इसी विचारों से सांख्यिकीशास्त्र और संभाव्यशास्त्र इनका उदय हुआ| यह इसका तार्किक आधार भी है| इस शास्त्र का आधार रखने वाले गणितज्ञ थे लाप्लास (१७४९ -१८२७)|

महान भारतीय गणितज्ञ

आर्यभट्ट (सन् ४९९):-

- २३ वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने अपने आर्यभटीय ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ छोटा है, लेकिन इतने में ही उन्होंने उस समय तक ज्ञात गणित और ज्योतिष से संबंधित सारी बातों को लिख दिया था।
- वृत्त की परिधि और व्यास के अनुपात(π) का एक बेहतर मान प्रस्तुत करके उसे 'आसन्न मान' कहा -३.१८५९२५६।
- आज संसार में आर्यभट्ट की त्रिकोणमिती की विधि का उपयोग होता है।
- पृथ्वी के अक्षभ्रमण का प्रतिपादन करनेवाले वे पहले भारतीय गणितज्ञ-ज्योतिषी थे। वह यूरोप में अंधकार का युग था। यूनानी विज्ञान का अवसान पहले ही हो चुका था।
- उन्होंने प्रथम घात के अनिधार्य समीकरण पहली बार हल किये।

ब्रह्मगुप्त (सन् ५९७-६६८):- महान बीजगणितज्ञ तथा खगोलशास्त्री : उपलब्धि-

- अनिधार्य वर्ग समीकरण का हल प्रस्तुत करना(इसे यूरोप में सत्रहवीं सदी में खोजा गया)।
- चक्रीय चतुर्भुज का क्षेत्रफल मालूम करना।
- उनके अनुसार शून्य को किसी भी संख्या से भाग देने से आने वाला फल शून्य ही होगा।
- उन्होंने शून्य से संबंधित गुणधर्म प्रस्तुत किए।
- ब्रह्मगुप्त बीजगणित को ' कुट्टक ' कहते थे।

वे मारवाड़ के भिनमोल गांव के निवासी थे। यह गांव अबू से लगभग ६४ कि.मी. दूर है। उन्होंने चार ग्रंथ लिखे। उनमें सबसे प्रसिद्ध है ' ब्रह्म-स्फुट-सिद्धान्त '। उनके ग्रंथों का सन् ७७२-७३ में अरबी में अनुवाद हुआ। गणित की कई भारतीय विधियां पहले अरबी जगत में पहुँचीं और बाद में यूरोप में।

महावीराचार्य (लगभग ८५० ई.) : जैनाचार्य-

दीर्घवृत्त का विवेचन करने वाले वे प्रथम भारतीय गणितज्ञ थे। इन्होंने गणितशास्त्र को ज्योतिषशास्त्र से अलग किया। 'गणित सार संग्रह' इनकी रचना है।

भास्कराचार्य (सन् १११४-११९३) -

इनका जन्म महाराष्ट्र में जलगाँव जिले के पाटन गांव में हुआ था।

उनके 'सिद्धान्त शिरोमणि' इस ग्रंथ के चार भाग हैं। इनमें से दो भाग 'लीलावती' और 'बीजगणित' गणित से संबंधित हैं तो 'ग्रहगोलाध्याय' और 'गोलाध्याय' ये खगोलशास्त्र से संबंधित हैं। लीलावती का कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है। यह ग्रंथ उन्होंने तीस वर्ष की आयु में लिखा था। उनकी लीलावती और बीजगणित पुस्तकें अभी हाल तक संस्कृत पाठशालाओं में पढ़ाई जाती थीं। लीलावती में २७८ श्लोक हैं। आयु के ६९ वर्ष में उन्होंने 'करण कुतुहल' यह ग्रंथ लिखा।

- उन्होंने शून्य और अनंत के गणित का अच्छा विवेचन किया है। उनके कृतित्व में, आगे जाकर यूरोप में विकसित हुए 'कलन गणित' (Calculus) का भी कुछ आभास मिलता है।
- उन्होंने अपरिमेय (Irrational) संख्याओं के लिए जोड़, घटाना, गुना, भाग देना, वर्ग तथा वर्गमूल इन छह प्रकार की क्रियाओं का स्पष्टीकरण दिया है।
- किसी संख्या को शून्य से भाग देने पर आनेवाली राशि को उन्होंने 'खहर राशि' नाम दिया है। अनंत की कल्पना की ओर ले जाने वाली यह पूर्व कल्पना थी।
- बीजगणित में अव्यक्तों के लिए 'क्ष', 'य' ऐसे अक्षर उपयोग में लाने की पद्धति उन्होंने ही शुरू की।
- गोल के पृष्ठभाग का क्षेत्रफल तथा गोल का घनफल निकालने के सूत्र, आधुनिक समाकलन (Integration) पद्धति के अनुसार उन्होंने दिए।
- पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण शक्ति का उल्लेख उन्होंने 'आकृष्ट शक्ति' ऐसा किया।

नीलकंठ (सोलहवीं सदी) -

रामानुजन (१८८७-१९२०) :

रामानुजन तो गणितज्ञों के गणितज्ञ थे। आज भी देश-विदेश के कई गणितज्ञ उनके द्वारा खोजे गये सैकड़ों सूत्रों, प्रमेयों और अनुमानों पर अनुसंधान कर रहे हैं।

प्राचीन भारत में विज्ञान का चरमोत्कर्ष ईसा की आरंभिक छह-सात सदियों में हुआ। आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त जैसे चोटी के गणितज्ञ-ज्योतिषी, नागार्जुन जैसे रसायन तज्ञ, चरक

संहिता तथा सुश्रुत संहिता जैसे आयुर्वेद के उत्कृष्ट ग्रंथ, इसी युग की देन हैं। शून्य की धारणा पर आधारित दाशमिक स्थानमान अंक पद्धति, जो विज्ञान के क्षेत्र में, भारत की संसार को सबसे बड़ी देन है, ईसा की आरंभिक सदियों में ही खोजी गयी थी। लेकिन साथ-साथ पुराणों की रचना वाले इस युग में पुराणपंथियों द्वारा स्वतंत्र वैज्ञानिक चिंतन पर जबरदस्त प्रहार शुरू हुए। आर्यभट्ट ने भारत में पहली बार भू-भ्रमण का सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। ग्रहणों के सही वैज्ञानिक कारण बताए थे -----। मगर पुरोहितों के हितों को धक्का न लगे इसलिए अपनायी गयी अवैज्ञानिक सोच के प्रभाव के कारण, आर्यभट्ट के सही सिद्धान्तों को प्रोत्साहन नहीं मिला। श्रुति-स्मृति की अवैज्ञानिक मान्यताओं के विरुद्ध आवाज़ उठाना असंभव हो गया। संपूर्ण जगत को माया करार देनेवाले दर्शन के बाद (ईसा की आठवीं सदी) तो भौतिकीय अनुसंधान की सारी प्रेरणाएं ही समाप्त हो गयीं।

वैदिक गणित :

आजकल इसकी बड़ी चर्चा है। इसपर, विज्ञान विषयों पर काफी कुछ लिखने वाले गुणाकर मुळे जी की टिप्पणी साभार प्रस्तुत करना अनुचित न होगा। (लोकमत समाचार, नागपुर -१-११-२००९) -

“यह सारा मामला पुरी के शंकराचार्य स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ की मृत्यु के बाद १९६५ में प्रकाशित पुस्तक ‘ वैदिक गणित (या वेदों से प्राप्त १६ सरल सूत्र) से शुरू हुआ। दावा किया गया कि इन (केवल १६) सूत्रों से गणित के सभी सवालों के हल मिल जाते हैं। वास्तव में ये सोलह सूत्र किसी भी वेद या उनके परिशिष्ट में उपलब्ध नहीं हैं। इनकी भाषा ही वैदिक नहीं है। सूत्र, जोड़, घटाना, गुणन, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल जैसे प्राथमिक गणित के सवालों को हल करने के लिए युक्तियाँ प्रस्तुत करते हैं। इन युक्तियों के लिए स्वामीजी ने कुछ सूत्र स्वयं गढ़े हैं और कुछ प्राचीन ग्रंथों से उठाए हैं। जैसे ‘उर्ध्वतिर्यग्भ्याम ‘ सूत्र उन्होंने भास्कराचार्य की लीलावती पुस्तक पर गणेश दैवज्ञ (ईसा १५०७) की टीका से उठाया है।

वैदिक गणित जैसी कोई चीज नहीं है। आधुनिक गणित पूर्णतः तर्कशास्त्र पर आधारित है। वैदिक समाज को आज चौथी कक्षा तक पढ़ाए जाने वाले अंकगणित से अधिक की आवश्यकता ही नहीं थी। आज सारे संसार में प्रचलित, शून्य पर आधारित दाशमिक स्थानमान अंक पद्धति की महान खोज, भारत में ईसा की आरंभिक दो-तीन सदियों में हुई थी, वैदिककाल में नहीं।”

(गुणाकर मुळे)

(वैदिक गणित { शुल्ब सूत्र } का समय ईसा पूर्व ८०० से लेकर तो ईसा पूर्व ५०० तक माना जाता है। इसके बाद तथाकथित वैदिक गणित का प्रभाव अपेक्षाकृत कम दिखता है। इसके बाद भारत में जैन गणित का प्रमुख काल माना जाता है।)

हमें, हमारी जो वास्तविक उपलब्धियां हैं उनपर गर्व करना चाहिए, न कि यह दावा करना चाहिए कि दुनिया का सारा ज्ञान हमारे पास ही था, वह भी हजारों साल पहले। बाकी सारी दुनिया ने केवल उसे चुराया। वास्तव में ज्ञान, विज्ञान, गणित का एक प्रवाह है। जब कोई नयी खोज होती है तो वह आसमान से नहीं टपकती। सीढ़ी-दर-सीढ़ी चढ़कर ही वहां तक पहुँचा जा सकता है। अतः यह कहना कि क्वांटम यांत्रिकी तो हमारे पास हजारों साल पहले से ही थी, दुनिया के लिए केवल हंसी की ही बात होगी। विदेशी हमारा ज्ञान चुरा रहे थे तब हम क्या कर रहे थे ? क्या यह वास्तविकता नहीं है कि जो ब्राह्मी लिपि, कई अन्य लिपियों की जननी है, उसे हममें से कोई नहीं पढ़ सका। उसका हमसे परिचय करवाया एक अंग्रेज़ ने। जिसका जो सृजन है उसका श्रेय इमानदारी से उसे देना चाहिए।

भाग २

- मूलद्रव्य
- मूलभूत काणिकाएं
- विद्युत और चुंबकत्व
- प्रकृति के मूलभूत बल
- प्रारण
- प्रकाश
- पदार्थ के कुछ विशेष गुणधर्म
- ज्ञात-अज्ञात

१. मूलद्रव्य

पदार्थ हमें सतत रूप में दिखाई देता है।

- इसा पूर्व चवथी सदी में हुए प्लेटो के अनुसार पदार्थ सतत या लगातार (Continuous) होते हैं। प्लेटो की कल्पनाओं ने अगली २० सदियों तक राज किया।
- प्लेटो के शिष्य अरिस्टॉटल का विश्वास था कि ब्रह्माण्ड में उपस्थित समस्त पदार्थ पृथ्वी, वायु, अग्नि एवं जल, इन चार मूलभूत तत्वों से बना हुआ है। ये तत्व दो बलों से प्रभावित होते हैं। १) गुरुत्व - अपनी ओर आकर्षित करने की प्रवृत्ति। पृथ्वी और जल में निमग्न करने की प्रवृत्ति। २) प्रोत्थान (Levity) - विकर्षित करने की या ऊपर उठने की प्रवृत्ति, वायु और अग्नि में। पदार्थ शाश्वत है अर्थात् पदार्थ को अनंत तक, छोटे से छोटे टुकड़े में विभाजित किया जा सकता है। पदार्थ का ऐसा कोई कण नहीं हो सकता जिसे आगे विभाजित न किया जा सके।
- लेकिन ग्रीक लेन्सिपस और डेमोक्रेटस इन्होंने अनुमान व्यक्त किया था कि सभी पदार्थ परमाणु से बने हैं और परमाणुओं के बीच अंतर होता है अर्थात् वे सतत नहीं हैं या कणीय हैं। अटम शब्द लैटिन (Atomos) से लिया गया है। इसका अर्थ होता है ‘ व्यक्तिगत ’।
- सत्रहवीं सदी में भौतिक वस्तु की संरचना संबंधित, वैज्ञानिक आधार पर चिंतन शुरू हुआ। अनुसंधान में परिमाणात्मक पद्धति का अंतर्भाव हुआ तथा वास्तवता का गणितीय सूत्रों में प्रस्तुतिकरण होने लगा। हम अस्तित्व के मध्य स्तर पर हैं। एक ओर बृहत् ब्रह्माण्ड है। इस ब्रह्माण्ड को देखने की दृष्टि गैलिलिओ की दूरबीन ने दी। तो गैलिलियो के ब्रह्माण्ड दर्शन के ५० वर्ष बाद हॉलंड के लेबेनहूक ने सूक्ष्मदर्शी उपकरण द्वारा, पानी की बुंद में सूक्ष्म जगत का दर्शन करवाया। गैलिलियो प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने यह बताया कि प्रकृति के नियमों को गणित की भाषा में व्यक्त किया जा सकता है। गैलिलियो के बाद आए ख्रिश्चियन हायजिन को भौतिकशास्त्र में सर्वप्रथम फॉर्मूले का उपयोग करने का श्रेय दिया जाता है।
- वर्ष 1827 में स्कॉटिश बोटनिस्ट रॉबर्ट ब्राउन के प्रयोग ने, पानी में छोटे पराग कणों का झिग-झँग गति करना दिखाया। इसे ‘ ब्राउनियन गति ’ कहा जाता है। इसका कारण स्पष्ट हुआ, इन कणों का पानी के अणुओं के साथ मनमाने ढंग से (Random) टकराना।

वर्ष १९०५ में आइन्स्टाइन ने, ब्राउन गति का डाटा उपयोग में लाते हुए, परमाणु का आकार निश्चित करने का प्रयत्न किया। अपेक्षित आयाम (साइज़) उससे काफी मिलता-जुलता मिला जो आज हैड्रोजन परमाणु का अर्थात् सबसे छोटे परमाणु का आयाम माना जाता है। आइन्स्टाइन द्वारा यह बताया गया कि किसी द्रव्य में तैरते हुए निलंबित धूल के छोटे-छोटे कणों की अनियमित और यादृच्छिक गति को, धूल के कणों के साथ तरल परमाणुओं की टक्कर के प्रभाव के रूप में स्पष्ट किया जा सकता है - जिसे ब्राउनीयन गति कहा जाता है।

- **मूलद्रव्य** : किसी वस्तु का इतना सीधा-सरल रूप, जिसका रासायनिक प्रक्रिया से किसी भी अन्य रूप में विघटन नहीं किया जा सकता, वह वस्तु मूलद्रव्य है। साथ ही उसके सारे अणु एकसमान होते हैं। जैसे पानी का विघटन करके हमें हैड्रोजन और ऑक्सीजन प्राप्त होते हैं। लेकिन हैड्रोजन, ऑक्सीजन का विघटन नहीं हो सकता। अतः पानी मूलद्रव्य नहीं तो संयुक्त पदार्थ है लेकिन हैड्रोजन, ऑक्सीजन ये मूलद्रव्य हैं। मूलद्रव्य को रोमन लिपि के अक्षरों से दर्शाया जाता है -जैसे हैड्रोजन (H), निकल(Ni) आदि।
- **परमाणु** : ऐसे मूलद्रव्य का छोटे से छोटा हिस्सा, अर्थात् जिसका विभाजन नहीं हो सकता ऐसा कण और जो मूलद्रव्य के सारे भौतिक-रासायनिक गुणधर्म अपने में कायम रखता है।
- **मूलद्रव्य के अणु** : एकाधिक परमाणु मिलकर अणु बनते हैं। जैसे $H + H = H_2$
- मूलद्रव्य के अणु का आकार 60 से लेकर 600 पिकोमीटर ($1 \text{ पिकोमीटर} = 10^{-12} \text{ मीटर}$) होता है। सामान्य व्यक्ति के सिर के आम मोटाई के बाल में लगभग 5 लाख अणु बैठेंगे।
- परमाणु के आकार की अपेक्षा प्रकाश की तरंगदृश्य बड़ी होती है, इसलिए सामान्य रूप में हम परमाणुओं के घटकों को देखने की आशा नहीं कर सकते। हमें अपेक्षाकृत काफी छोटी तरंगदृश्य वाली कोई वस्तु उपयोग में लानी होगी। (इंसानी आखें २० मायक्रोमीटर से छोटी चीज देखने में असमर्थ हैं। प्रकाश मायक्रोस्कोप अधिकतम हजार गुना बड़ा प्रतिबिंब बना सकते हैं।)
- अगली कड़ी है इंग्लिश रसायनविद् जॉन डाल्टन (१७६६-१८४४) : मूलद्रव्य के परमाणविक वस्तुमान (Atomic weight) की सुस्पष्ट परिभाषा : मूलद्रव्य के एक परमाणु के वस्तुमान का हैड्रोजन के एक परमाणु के वस्तुमान के साथ अनुपात। यह किसी मूलद्रव्य का अन्यो के वस्तुमान के साथ संबंध स्पष्ट करता है।

- अव्हेगॅड्रो : अणु यह परमाणुओं के योग द्वारा निर्मित होते हैं $|(2\text{H}_2 + \text{O}_2 = 2\text{H}_2\text{O})$
मोल : रासायनिक वस्तु की वह मात्रा, जिसका भार, वस्तुमान ईकाई में (ग्रॅम)
 संख्यात्मक दृष्टि से उसके अणुभार इतना होता है, उसे ' मोल ' कहा जाता है।
- वायुरूप पदार्थ के लिए, सामान्य स्थिति में (0°C और एक वातावरण का दबाव) इस भार की वायु द्वारा (मोल) व्याप्त आयतन २२.४ लीटर्स होगा।
- किसी भी वायु की मोल इतनी मात्रा में अणुओं की संख्या समान होती है। अर्थात् किसी वायु का ' मोल ' इतनी मात्रा में और उपरोक्त सामान्य स्थिति में आयतन स्थिर रहेगा।

अव्हेगॅड्रो के सिद्धांत का महत्वपूर्ण पहलू यह है कि, उसने पुरानी धारणा कि वायु और द्रव्य वस्तु सातत्यपूर्ण माध्यम है, को हटा दिया और भौतिक वस्तु के कणीय स्वरूप को स्थापित किया। “ भौतिक वस्तु की संरचना विवक्त होती है। “

किसी मोल इतनी मात्रा में अंतर्भूत अणुओं की संख्या समझिए N_A है । इसी ही बाद में 'अव्हेगॅड्रो स्थिरांक या क्रमांक 'कहा गया।

$N_A = 6.022 \times 10^{23}$ अणु / मोल। एक घन सें.मी. पानी उसके मोल के $1/18$ है अतः

$$\begin{aligned} \text{इसके अणुओं की संख्या} &= 6.022 \times 10^{23} / 18 \\ &= 3.34 \times 10^{22} \end{aligned}$$

अ. स्थिरांक : अणु का आकार, उसका वस्तुमान और औसत अलगाव प्राप्त करने में सहायक है अर्थात् हम अदृश्य जगत का दृश्य चित्र खींच सकते हैं। यह किसी संयुक्त के निश्चित वस्तुमान में अंतर्भूत अणुओं की संख्या प्रदर्शित करता है। एक लिटर हैड्रोजन वायु का एक लिटर क्लोरीन के साथ होनेवाली रासायनिक क्रिया से एक लिटर हैड्रोजन क्लोराइड वायु तैयार होता है। इसीसे १८११ में इटालियन वैज्ञानिक अँमेदियो अव्हेगॅड्रो ने ऐसा प्रतिपादन किया कि समान आकारवाले सभी वायुओं में अंतर्भूत अणुओं की संख्या समान होती है। वायु के नियमों के अनुसार वायु का आकारमान यह वायु पर का दबाव और उसका तापमान इनपर निर्भर होता है। इस सूत्र के अनुसार एक अणुभार इतने वस्तुमानवाले वायु का आकारमान सामान्य तापमान और सामान्य दबाव अंतर्गत २२.४ लिटर होगा। कोई भी वायु लेने पर २२.४ लिटर वायु के अंतर्गत अणुओं की संख्या समान होनी चाहिए। ऑक्सीजन का अणुभार ३२ है । अर्थात् ३२ ग्रॅम ऑक्सीजन २२.४ लिटर इतना आकारमान व्याप्त करता है। एक अणुभार इतने वस्तुमान का कोई

भी वायु लिया तो भी उसमें अंतर्भूत अणुओं की संख्या समान होनी चाहिए और उसका आकमान २२.४ लिटर ही होना चाहिए।

अव्हेगॅड्रो स्थिरांक के रूप में आगे पहचाने जाने वाली, एक अणुभार इतने वस्तुमान के अणुओं की यह संख्या मोटे तौर पर छह पर तेइस शून्य इतनी होती है। इस स्थिरांक के द्वारा एक अणुभार इतने वस्तुमान अंतर्गत अणुओं की संख्या का पता चलने के कारण किसी भी संयुक्त के अणु का वस्तुमान निकालना संभव हुआ। इसके लिए उस-उस संयुक्त के अणुभार को अव्हेगॅड्रो स्थिरांक ने भाग देना होगा।

- **बोल्ट्ज़मन स्थिरांक** : (K) : यह एक और महत्वपूर्ण स्थिरांक है। यह हमें उपरोक्त सूक्ष्म कणों की व्यक्तिगत ऊर्जा और गति की कल्पना देता है। $E = \frac{3}{2} KT$ इस सूत्र के अनुसार अणु, परमाणु जैसे लघु कणों की ऊर्जा उनके अनपेक्ष (Absolute) तापमान के अनुपात में होती है। K की कीमत निकाली गई है $1.38 \times 10^{-23} \text{ J} / \text{T}$ । तापमान यह मापन के लिए आसान और मूर्त राशि है। अकल्पनीय सूक्ष्म और अदृश्य कणों के आचरण की, अर्थात् सूक्ष्म जगत की, औसत गत्यात्मक ऊर्जा। तापमान बृहत् स्तर पर गिना जानेवाला परामितक है। उसके सहारे सूक्ष्म जगत् के आचरण और परामितक तक पहुंच हो सकती है।

अर्थात् यह स्थिरांक सूक्ष्म जगत के स्वभाव को बृहत् जगत के साथ जोड़ता है।

- **जे. जे. थॉमसन** : इन्होंने इलेक्ट्रॉन की खोज की। इस परमाणु प्रतिकृति में धन विद्युतधारी भौतिक वस्तु और इलेक्ट्रॉन दोनों की, स्थिर अवस्था में वितरित होने की कल्पना थी।
- **रुदरफोर्ड** : १९११ में रुदरफोर्ड की ग्रह सदृश प्रतिकृति बनी। परमाणु में धन विद्युतधारी नाभिकेंद्र की कल्पना स्थापित हुई। इसी नाभिक में परमाणु का अधिकतर द्रव्यमान केंद्रित रहता है। इस नाभिक की त्रिज्या 10^{-12} - 10^{-13} से.मी.होगी। इलेक्ट्रॉन्स इससे 10^{-8} से.मी. पर नाभि का चक्कर लगा रहे होंगे। यह परमाणु की ग्रहीय प्रतिकृति है। इस प्रतिकृति में इलेक्ट्रॉन सीधी रेखा में समान गति से भ्रमण करने के स्थान पर कक्षीय परिक्रमा में रत है, अतः उनकी गति प्रवेग युक्त होगी। लेकिन मैक्सवेल के परंपरागत विद्युत चुंबकीय सिद्धांत के अनुसार कोई भी विद्युत आवेश जब प्रवेगयुक्त गति में

होगा तो विद्युत चुंबकीय तरंगों की उत्पत्ति होगी। अतः इस प्रतिकृति में वि.चुं.तरंगों के उत्सर्जन के कारण इलेक्ट्रॉन से ऊर्जा उत्सर्जित होगी, उसकी ऊर्जा कम होती जाएगी। इलेक्ट्रॉन की कक्षा छोटी होती जाएगी और लगातार आवृत्ति बढ़ती जाएगी। अंततः इलेक्ट्रॉन नाभिक में जा मिलेगा। परमाणु अस्थिर होगा। लेकिन परमाणु तो स्थिर है।

दूसरी बात यानी अणुओं को उष्मा मिली तो वे विशिष्ट तरंग लम्बाई वाला प्रकाश उत्सर्जित करते हैं। इस कारण उनका रेखाओं के स्वरूप का वर्णपट प्राप्त होता है। रुदरफोर्ड के प्रारूप के अनुसार इलेक्ट्रॉन के लगातार ऊर्जा उत्सर्जन के कारण मूलद्रव्य का वर्णपट रेखाओं के स्वरूप का नहीं तो अखंड रूप में मिलना चाहिए। लेकिन पट्ट विवक्त रेखाओं का एक संच होता है। प्रत्येक परमाणु का अपना संच। उसका विशिष्ट परिचय पत्र।

➤ **निल्स भोर** : इन खामियों को दूर करने के लिए १९१३ में डेनमार्क के भौतिकशास्त्री निल्स भोर ने नया प्रारूप प्रस्तुत किया। इसके लिए, उसी दरम्यान प्रस्तुत हो रहे क्वांटम यांत्रिकी के सिद्धान्तों का आधार लिया। बोहर के अणु प्रारूप के अनुसार-

- १) इलेक्ट्रॉन्स अणु केंद्रक के गिर्द निश्चित कक्षाओं में ही घूमते हैं। वे दो कक्षाओं के बीच के प्रदेश में किसी भी स्थिति में नहीं जा सकते।
- २) उसी तरह प्रत्येक कक्षा के इलेक्ट्रॉन्स की ऊर्जा भी निश्चित होती है। इन कक्षाओं में रहते हुए इलेक्ट्रॉन्स ऊर्जा उत्सर्जन नहीं करते। फोटॉन का शोषण या उत्सर्जन तभी होता है जब इलेक्ट्रॉन्स, क्वांटम ढंग का स्थानान्तरण एक स्थायी कक्षा से दूसरी में करता है। बोहर ने इन्हें नाम दिया “ स्थायी कक्षाएं ”। कक्षा में रहते इलेक्ट्रॉन की ऊर्जा भी कम नहीं होती।
- ३) हर कक्षा की इलेक्ट्रॉन्स को अपने में समा लेने की क्षमता भी स्थिर होती है।
- ४) लेकिन जब अणु को बाहर से ऊर्जा दी जाती है तब कोई इलेक्ट्रॉन अपनी कक्षा छोड़कर बाहरी कक्षा में छलांग लगाता है। अर्थात् यह होने के लिए अणु को बाहर से दी जाने वाली ऊर्जा एक निश्चित मात्रा में ही होना आवश्यक है। इस बाहरी कक्षा में गए इलेक्ट्रॉन की स्वाभाविक प्रवृत्ति अपने पूर्व अवस्था में लौटने की होती है। जब यह बाहर गया इलेक्ट्रॉन फिर अपनी मूल कक्षा में आता है तब अणु के द्वारा पहले शोषित की गयी विशिष्ट ऊर्जा, एक विशिष्ट तरंग लम्बाई के प्रकाश

के रूप में उत्सर्जित हो जाती है। वर्णपट में दिखने वाली प्रकाश रेखाएं ये इसी विशिष्ट तरंगलम्बाई की होती हैं।

इसी खोज के लिए निल्स भोर को १९२२ का नोबेल पुरस्कार दिया गया। इस मॉडल में आगे स्कोडिंजर, हिएन्सनबर्ग, बोर्न और डिरेक इन्होंने कुछ सुधार किए। अब इस मॉडल को 'क्वांटम मॉडल ऑफ एटम' कहा जाता है।

- परमाणु में अधिकतर खाली अवकाश होता है।
- न्यूक्लियस में समान विद्युतभार वाले प्रोटॉन्स में विकर्षण क्यों नहीं होता? इसके लिए हिडेकी युकावा इस जापानी वैज्ञानिक ने १९३५ में एक नये 'प्रबल बल' को कारण बताया। नोबेल पुरस्कार पाने वाले ये प्रथम जापानी वैज्ञानिक थे। यह न्यूक्लियर बल 'पिऑन' नामक कणों के आभासी आदान-प्रदान के कारण होता है।

प्रत्येक परमाणु और न्यूक्लियस की विशिष्ट रचना और ऊर्जा स्तर का ढांचा (Energy level profile) होता है। अर्थात् ऊर्जा की भिन्न-भिन्न लेकिन विशिष्ट अवस्थाएं जिन्हें 'क्वांटम अवस्थाएं' कहा जाता है। जब परमाणु या नाभिक एक ऊर्जा अवस्था से दूसरी अवस्था में अंतरण करता है तो दोनों अवस्थाओं की ऊर्जाओं में जो फर्क होता है उतनी ऊर्जा का फोटॉन या तो शोषित कर लिया जाता है या उत्सर्जित। इस उत्सर्जित या अवशोषित विकिरण, वह मूलतः जिस अवस्था से आया है उस अवस्था की जानकारी रखता है और उसके अनुसार विशिष्ट वर्णपट प्रस्तुत करता है। इस तरह वर्णपट यह परमाणु या न्यूक्लियस जहाँ से आए हैं उसका मानो पहचान पत्र है। सोडियम से पैदा हुआ पीला वर्णपट और पारे से पैदा हुआ सफेद वर्णपट ये उनके अपने विशिष्ट वर्णपट हैं। गॅमा किरणों का वर्णपट यह न्यूक्लियर स्तर पर हुए ऊर्जा अंतरण का निदर्शक है तो क्ष किरणों का निदर्शक है, परमाणु के अंतर्गत इलेक्ट्रॉन के बीच हुए ऊर्जा अंतरण। अति नील और दृश्य वर्णपट बाह्य कारण से होने वाले ऊर्जा अंतरण का।

वर्णपटों का अध्ययन जिसमें होता है उस विज्ञान को स्पेक्ट्रोस्कोपी कहते हैं-अवशोषण और उत्सर्जन स्पेक्ट्रोस्कोपी।

प्रोटॉन की खोज

१९०६ में इलेक्ट्रॉन की खोज के लिए थॉमसन को नोबेल पुरस्कार दिया गया था।

लेकिन फिर सवाल उठा कि ऋणभारित इलेक्ट्रॉन अगर अणु/ परमाणु का हिस्सा है और वे तो विद्युत रहित होते हैं तो कोई तो धन विद्युतभारित कण उनका हिस्सा होना ही चाहिए। विल्यम प्राउट नाम के ब्रिटिश वैज्ञानिक ने १८९८ में यह दिखा दिया था कि किसी भी मूलद्रव्य के अणु का वजन यह हैड्रोजन के अणु के वजन के गुना में होता है। अर्थात् हैड्रोजन अणु यह सभी अणुओं में मूलकण होना चाहिए। बाद में प्राउट के तत्व में कुछ विसंगति पायी गयी। फिर भी हैड्रोजन का अणु यह सबसे छोटा मूलकण यह बात महत्वपूर्ण रही। उसके बाद प्रोटॉन की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया यूजीन गोल्डस्टाइन इस जर्मन वैज्ञानिक ने। वह इसी विचार के साथ आगे बढ़ा कि अगर अणु में ऋणविद्युधारी इलेक्ट्रॉन है तो धन विद्युतभारित कण भी होना चाहिए। लेकिन वे किसी ठोस नतीजे पर नहीं पहुंच सके।

लेकिन थॉमसन के सहकारी के रूप में काम शुरू करनेवाले अर्नेस्ट रूदरफोर्ड ने हार नहीं मानी और अंततः परमाणु के धन विद्युतधारी कण प्रोटॉन की खोज कर ही डाली। उनका जन्म स्विट्ज़रलैंड में हुआ था। प्रोटॉन यह ग्रीक शब्द है। उसका अर्थ है प्रथम। अर्थात् छोटा और प्रथम केंद्रक वह प्रोटॉन।

- १९३२ में न्यूट्रॉन की खोज हुई। नाभिकेंद्र में प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों की खोज हुई। न्यूट्रॉन पर कोई विद्युतभार नहीं होता।

रूदरफोर्ड

रूदरफोर्ड एक विलक्षण वैज्ञानिक थे। उन्होंने अपने जीवन में भिन्न-भिन्न विषयों पर २२ शोध किये --।

- १) सेकंड के एक लाख वे हिस्से में चालू-बंद होनेवाला टायमर स्वीच बनाया। यह उनके खोजी जीवन की शुरुआत थी।
- २) इसके एक साल के अंदर ही किरणोत्सर्गी पदार्थ में से निकालने वाली दो तरह की किरणें ढूंढ निकालीं और उन्हें 'अल्फा किरणें' और 'बीटा किरणें' नाम दिया। किरणोत्सर्गी पदार्थ

की अल्फा किरणों के रासायनिक अनुसंधान के लिए, उन्हें १९०८ में नोबेल पुरस्कार दिया गया।

- ३) रेडॉन मूलद्रव्य की खोज की।
- ४) पृथ्वी में विद्यमान किरणोत्सर्गी मूलद्रव्यों के विघटन के आधार पर पृथ्वी की आयु निकाली।
- ५) उन्होंने ही यह प्रस्तुत किया कि थॉमसन की अणु विषयक कल्पना के अनुसार अणु कोई ठोस पदार्थ नहीं तो अणु के अंदर के धन विद्युतधारी और ऋण विद्युतधारी कण एकत्र नहीं होते तो धन विद्युतधारी कण केंद्र में होते हैं और इलेक्ट्रॉन्स उनके चारों ओर चक्कर काटते हैं।
- ६) ध्वनि तरंगें किसी सतह से टकराकर परावर्तित होती हैं। यह बात और ध्वनि की गति इनके आधार पर पनडुब्बी कितनी दूर है, यह जानने का तंत्रज्ञान उन्होंने मित्र राष्ट्रों को दिया। फिर भी वे शांति के पुरस्कर्ता थे।
- ७) ऐसा कहा जाता है कि, मध्य युग में, यूरोप में रसायन विज्ञान का आरंभ एक मूलद्रव्य से दूसरा मूलद्रव्य बनाने की जादूगरी करने के लिए हुआ। इस अर्थ में रूदरफोर्ड ये प्रथम जादूगर ठहरते हैं। चूंकि उन्होंने अणु में फेरबदल करके नैट्रोजन से ऑक्सीजन बनाकर दिखाया। एक ही अणु के भिन्न-भिन्न भार वाले रूप (Isotop) होते हैं। यह उन्होंने तीन गुना वजन वाला हैड्रोजन(Tritium) और अलग वजन वाला हिलियम निर्माण कर बता दिया।

लेकिन ऐसे विलक्षण वैज्ञानिक की मृत्यु मात्र एक अंधविश्वास के कारण हुई, ऐसा कहा जाता है। आयु के एक पड़ाव पर उन्हें हर्निया हुआ। अचानक शस्त्रक्रिया की आवश्यकता आन पड़ी। उस समय के रिवाज के अनुसार पेशेंट सन्माननीय हो तो उसके इतने ही सन्माननीय डॉक्टर ने उसका इलाज करना चाहिए। ऐसा सन्माननीय डॉक्टर उनके पास पहुँचने तक बहुत देर हो चुकी थी। मात्र उसके बाद रूदरफोर्ड को राजघराने के सदस्यों, न्यूटन, थॉमसन इनके बाजू दफनाया गया। 104 क्रमांक के मूलद्रव्य को उनका नाम देकर उन्हें अमर कर दिया गया। (साप्ताहिक सकाळ-१-८-२००९ : प्रोटॉनचा शोध -डॉ.प्रबोध चौबे - के सौजन्य से)

- एक मूलद्रव्य के नाभिकेंद्र में प्रोटॉनों की संख्या तो स्थिर रहती है लेकिन न्यूट्रॉनों की अलग-अलग रह सकती है । इसी कारण मूलद्रव्य के समस्थ (Isotop) होते हैं।

- नाभिकेंद्र का स्थिरावस्था वस्तुमान हमेशा उसके घटक कणों के कुल, स्थिरावस्था वस्तुमान से कम होता है। यह जो कमी है उसे ' वस्तुमान दोष ' कहा जाता है।
- १९३८ में ऑटो हॉन और फ्रॉन स्ट्रासमन इन्होंने जर्मनी में खोज की थी कि यूरेनियम के नाभिक पर न्यूट्रॉनों की बौछार करने पर वह नाभिकेंद्र विभाजित होता है। इस विखंडन के साथ भारी ऊर्जा मुक्त होती है। एक ग्रॅम यूरेनियम २३५ से 2.2×10^{10} बिजली इकाइयाँ = २.५ टन कोयला।

Nuclear Fission Energy—नाभिकीय विखंडन ऊर्जा | Nuclear Fusion Energy—
नाभिकीय संगलन ऊर्जा |

आइन्स्टाइन सूत्र $-E = mc^2$ | 1 ग्रॅम भौतिक वस्तु = 9×10^{13} ज्यूल्स
(ज्यूल यह ऊर्जा इकाई है)

(E = ऊर्जा, m = वस्तु का द्रव्यमान, c = प्रकाश की निर्वात में गति)

- इलेक्ट्रॉन से जो उपरोक्त ढंग का विकिरण होगा उसकी आवृत्ति (Frequency), इलेक्ट्रॉन के चक्कर काटने की आवृत्ति के बराबर होगी। सारी क्रिया को केवल 10^{-8} सेकंड लगने चाहिए। विकिरण की आवृत्ति का निर्धारण इलेक्ट्रॉन की गति से नहीं तो उसकी गति में हो रहे फर्क से हो रहा है।
- यह भोर ने ही खोज निकाला कि परमाणु में ऊर्जा के क्रमिक स्तर होते हैं।
- परमाणु किसी भी मात्रा में ऊर्जा धारण नहीं कर सकता। परमाणु की ऊर्जा में जब परिवर्तन होता है वह सातत्यपूर्ण ढंग से नहीं होता। वह विवक्त स्तरों में होता है।
- परमाणु में इलेक्ट्रॉन का न्यूनतम ऊर्जा स्तर बना रहता है। इसे ' बुनियादी स्तर ' कहा गया है।
- नाभिकेंद्र से इलेक्ट्रॉन की दूरी एक न्यूनतम परिमाण है जिसे इलेक्ट्रॉन कभी पार नहीं कर सकता।
- परमाणु के भीतरी अंतराल में भिन्न-भिन्न ऊर्जा स्तरवाले इलेक्ट्रॉन फैले हुए हैं। वे विशिष्ट अंतर की कक्षाओं में नाभिक की परिक्रमा करते हैं। नाभिक से जितनी दूरी अधिक उतना ऊर्जा स्तर उंचा।

- हर ऊर्जा स्तर पर परमाणु स्थिर रूप में बना रहता है। जब वह प्रकाश या ऊर्जा का क्वांटम उत्सर्जित करता है तो संबंधित निम्न ऊर्जा स्तर पर एक छलांग में पहुंच जाता है। केवल एक स्तर से दूसरे स्तर पर कुदान की लम्बाई ही उत्सर्जित क्वांटम का परिमाण निश्चित करती है।
- अतः अब यह साफ होना चाहिए कि परमाणु जो ऊर्जा उत्सर्जित करता है वह एक निश्चित परिमाण में होती है। यह परिमाण ऊर्जा सिद्धी के चरणों के बदलाव के रूप में संभव है। इसी कारण परमाणु का रंगपट्ट लगातार के स्थान पर विवक्त होता है। दो स्तरों के बीच मंडराना प्रकृति को मान्य नहीं।
- भोर की अन्य प्रमुख क्वांटम संख्याएं - १) स्वयं कक्षा का अपने प्रतल में घुमाव यह भी क्वांटम स्वरूप का ही है। २) फिर प्रतल का अपने अक्ष के गिर्द घूमना। ३) इलेक्ट्रॉन का स्वयं अपने अक्ष के गिर्द घूमना या स्पीन।
- इलेक्ट्रॉन एक ऊर्जा स्तर से जब भिन ऊर्जा स्तर पर छलांग लगाता है तो वह ऊर्जा क्वांटम स्वरूप की होती है। क्वांटम कुदान में आरंभ है और अंत लेकिन बीच का हिस्सा या स्वयं कुदान पारंपरिक यांत्रिकी के शब्दों में अवर्णनीय है। क्वांटम की अवधारणा ही है कि न्यूनतम परिमाण जिसका आगे विभाजन संभव नहीं।
- दो पड़ोसी ऊर्जा स्तरों का फर्क क्रमशः कम होते जाता है और इलेक्ट्रॉन की कक्षाएं एकदूसरे के समीप आते जाती हैं। एक स्तर से समीप के ऊर्जा स्तर पर कुदान क्रमशः छोटी हो रही है। रंगपट्ट का निरीक्षण करने पर ऐसा दिखेगा कि शुरू में स्पष्ट अलग-अलग दर्ज हो रहीं रेखाएं एकदूसरे के समीप आ रहीं हैं। मानो रंगपट्ट का यह हिस्सा आगे क्रमशः सातत्यपूर्ण रूप धारण कर रहा हो। मानो परमाणु लगातार, प्रकाश की सभी आवृत्तियों की किरणें या क्वांटम उत्सर्जित कर रहा हो। यहाँ विवक्तता धीरे से सातत्य में रूपान्तरित हो रही हो। क्वांटम नियम शनैः-शनैः पारंपरिक नियमों को जगह दे रहे हैं। जैसे-जैसे हम नाभिकेंद्र से दूर इलेक्ट्रॉन कक्षाओं की ओर या परमाणु की बाह्य परिधि की ओर बढ़ते हैं अभिजात्य नियमों की प्रयोजनीयता बढ़ती जाती है।

परमाणु का आकार

- हमारी दुनिया में पदार्थों के आकारमानों का निर्धारण गुरुत्वाकर्षण द्वारा होता है।

- इलेक्ट्रॉन्स अपनी कक्षा में 10^{-8} से.मी. आकार के प्रदेश में होते हैं। परमाणु के आकारमान का स्तर यही है।
- अगर वह नाभिकेंद्र में जा गिरेगा तो 10^{-12} – 10^{-13} सें.मी. आकार के प्रदेश (नाभिकेंद्र का आकार) में पहुँचेगा (स्थानिकृत होगा)। दोनों का अनुपात 10^{-5} है। उतने ही गुना उसकी गति बढेगी, अर्थात् 10^5 गुना। स्थिर विद्युत आकर्षण ऐसे किसी इलेक्ट्रॉन को बद्ध नहीं रख सकेगा। वह उड जाएगा। अतः इलेक्ट्रॉन का नाभिकेंद्र में जा मिलना असंभव है।
- अतः यह निष्कर्ष निकाला गया कि नाभिकेंद्र के गिर्द घूमने की जो कक्षा है उस अंतर की कुछ न्यूनतम मर्यादा होनी चाहिए। यही वह अंतर है जो परमाणु आकार निश्चित करता है।
- भोर को अंदाजा था कि निम्न दो बातों में कोई निश्चित संबंध होना चाहिए -१) भौतिक कार्य की न्यूनतम कीमत का अस्तित्व।
२) परमाणु में इलेक्ट्रॉन अंतरण के बीच उसकी नाभिक से न्यूनतम संभवनीय दूरी या परमाणु के न्यूनतम आकारमान का अस्तित्व।

अन्य मूलद्रव्यों के परमाणु में प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन्स की संख्या बढती जाती है। नए इलेक्ट्रॉन कोशों की निर्मिती, परमाणु के आकार में वृद्धि नहीं करवाती। प्रोटानों की संख्या में वृद्धि के कारण धन विद्युत आवेश में वृद्धि होती है। इस कारण सबसे अंदरूनी कोष से लेकर तो सबसे बाहरी कोष तक उनका संकोच होता है। इस कारण इलेक्ट्रॉन्स की कक्षाएं नाभिक के समीप आकर देश में खचाखच भर जाती हैं और परमाणु का आकार वही रहता है।

- सूक्ष्म कणों को विश्लेषित करने में पारंपरिक संकल्पनाएं हमारी कोई मदद नहीं करतीं। फिर पारंपरिक दृष्टि से हम सोच सकते हैं कि क्या इलेक्ट्रॉन्स की कक्षाओं का अस्तित्व है। इस स्तर पर अनिश्चितता सिद्धांत के अनुसार इलेक्ट्रॉन की गति में अनिश्चितता की मात्रा होगी तो हमें पारंपरिक कक्षा की संकल्पना त्यागनी होगी। केवल संभावना की संकल्पना बचेगी, नाभिक से इच्छित अंतर पर इलेक्ट्रॉन होने की।
- वैसे ही एक कक्षा से दूसरी कक्षा में छलांग लगाते समय क्या इलेक्ट्रॉन को चयन की स्वतंत्रता रहती है? यह प्रश्न है।

मूलद्रव्यों की आवर्त सारणी

वर्ष १८७१ में रशियन वैज्ञानिक डिमित्री मेंडेलिफ, इन्होंने एक खोजी निबन्ध प्रसिद्ध किया। उसका नाम था ' मूलद्रव्यों के आवर्ती गुणधर्म '। मूलद्रव्यों के आवर्त सारणी की मानो वह प्रस्तावना थी। सारे मूलद्रव्य उनके वस्तुमान की चढ़ती श्रेणी में रखे तो कुछ निश्चित संख्या के बाद मूलद्रव्यों के गुणधर्मों का आवर्तन होता है, यह बात उनके ध्यान में आयी। (हेनरी मॉसली इस अंग्रेज़ खोजी ने उस समय ज्ञात सारे मूलद्रव्यों के क्ष किरण वर्णपटों के किये अध्ययन में यह बात सामने आयी थी कि क्ष किरणों की कंपन संख्या यह मूलद्रव्य के अणुभार के साथ नहीं तो अणु के केंद्रक के विद्युतभार अर्थात् अणुक्रमांक के साथ जुड़ी होती है।) बाद में मेंडेलिफ ने मूलद्रव्यों को प्राधान्य दिया (कछ अपवाद छोड़ दिये थे), मूलद्रव्यों के अणुभार के स्थान पर, अणुक्रमांक को और उनके अनुसार रचना की, तो तब तक ज्ञात सभी मूलद्रव्य उनके भौतिक-रासायनिक गुणधर्मों के अनुसार आवर्त सारणी में सटीक बैठे। मूलद्रव्य का अणुक्रमांक उस मूलद्रव्य के अणुकेंद्र में उपस्थित प्रोटॉनों की संख्या दिखाता है। आज भी मामूली बदलाव के साथ यही आवर्त सारणी आधुनिक सारणी के तौर पर प्रचलन में है। उस समय ९२ में से केवल ६३ मूलद्रव्य ही ज्ञात थे। लेकिन मेंडेलिफ ने अज्ञात मूलद्रव्यों के गुणधर्मों का अनुमान पहले ही प्रस्तुत कर दिया था।

प्रकृति में पाया जाने वाला सबसे भारी मूलद्रव्य यूरेनियम है। इसका अणुक्रमांक ९२ है। १९४१ तक इतने ही मूलद्रव्य ज्ञात थे। इनमें से चार को छोड़कर सभी कुछ न कुछ परिमाण में धरती में मिलते हैं। लेकिन इसके बाद के नहीं। इन्हें कृत्रिम ढंग से ही बनाया जा सकता है और वह भी बहुत ही अल्पावधि के लिए। प्राकृतिक रूप से पाया जानेवाला, सबसे आखरी में खोजा गया मूलद्रव्य ' प्रोमिथियम ' है। इसे १९४५ में खोजा गया, जिससे आवर्त सारणी पूरी हुई। लेकिन इसका स्थान ५६ साल तक खाली ही रहा। इसका अणुक्रमांक ६१ है। आधुनिक सारणी में ११८ मूलद्रव्यों का समावेश है।

वास्तव में १९३४ से ही यूरेनियम के बाद के भारी मूलद्रव्य बनाने में वैज्ञानिक जुट गये थे। इसके लिए वे हलके मूलद्रव्यों के परमाणुओं का संगलन करने की प्रक्रिया का उपयोग कर रहे थे। वैसे तो दुनिया की कई प्रयोगशालाएं इस काम में जुटी थीं/हैं। लेकिन प्रमुख सफलता निम्न तीन प्रयोगशालाओं को ही मिली - १) लॉरेन्स बर्कले लेबॉरेटरी कैलिफोर्निया, अमेरिका २)

जॉइंट इन्स्टीट्यूट फॉर न्यूक्लीय रिसर्च दुबना, रशिया ३) भारी आयन अनुसंधान प्रयोगशाला डर्मस्टैंड, जर्मनी।

आवर्त सारणी में बिस्मत (८३ क्रमांक) तक स्थिर मूलद्रव्य हैं। लेकिन ८४ से ८९ तक के मूलद्रव्य अस्थिर हैं। फिर थोरियम(९०) और यूरेनियम स्थिर हैं। इस आधार पर वैज्ञानिकों का अनुमान था कि ११० से ११४ परमाणु क्रमांक वाले मूलद्रव्य भारी होने पर भी स्थिर होने चाहिए। इस कारण वैज्ञानिकों में ११० मूलद्रव्य तक पहुँचने की बड़ी ललक थी। जर्मनी की ही उपरोक्त प्रयोगशाला में दस साल के अथक परिश्रम के उपरांत वर्ष १९९४ में (जो आवर्त सारणी बनने की १२५ वीं वर्षगांठ भी थी।) पीटर आर्मबुस्टर इनके नेतृत्व १२ वैज्ञानिकों के एक गुट ने मूलद्रव्य ११० का एक परमाणु बनाने में सफलता प्राप्त की (९ नवम्बर १९९४: स्थानीय समय ४.३९ पी.एम.)। बिस्मत ८३ और कोबाल्ट २७ इनके संगलन से यह संभव हुआ। टीम में छह उसी जर्मन प्रयोगशाला के, तीन रूस के ड्यूमा केंद्र से, दो बाटिस्लावा यूनिवर्सिटी स्लोवाकिया तथा एक फिनलैंड से था। इस मूलद्रव्य का यह पहला परमाणु भले ही एक सेकंड का एक हजारवां भाग इतने समय ही बना रहा, लेकिन यह तो शुरुआत थी।

यूरेनियम के बाद के कुछ मूलद्रव्य और उनकी खोज के वर्ष -

९३-नेप्ट्यूनियम + ९४ -प्लूटोनियम (१९४०) | ९५ -अमेरिसियम+९६- क्यूरियम (१९४४)
| ९७-बर्केलियम(१९४७) | ९८- कैलिफोर्नियम (१९५०)----१०१- मेंडेलेव्हियम ----१०८-
हेलिलम (१९८४) | १०९-मेल्टनेरियम (१९८२) | ११०-डर्मस्टैटियम (Ds)| 111-
रॉन्टजेनियम(Rg) | ११२-कोपर्निसियम(Cn)-----११७ (Created) | ११८-
Oganesson (Og)(Synthesied) | आधुनिक आवर्त सारणी में ११८ मूलद्रव्यों का समावेश है। किसी भी हालत में नाभिक में १२० से अधिक प्रोटॉन नहीं रह सकते, ऐसा वैज्ञानिकों का कहना है।

ऑर्गेनेसन यह नाम सोवियत(रूसी) वैज्ञानिक युरी ऑर्गेनेसियन(जन्म १९३३) के सम्मान में, इस मूलद्रव्य को प्राप्त करने या अलग करने में उनके योगदान के लिए दिया गया। वे दुनिया के दूसरे वैज्ञानिक बने जिनके जीवन के दरम्यान यह सम्मान मिला। प्रथम व्यक्ति है Gienn Seaborg।

ऑर्गनेसन में इलेक्ट्रॉन गति है 0.86 C और प्रथम कक्षा होगी $0.448 \times 10^{-12} \text{ मी. त्रिज्या की।}$

$$(\lambda = e^2 / 4\pi \epsilon_0 c h = 137)$$

सारणी में कुल ७ आड़ी पंक्तियाँ होती हैं जिन्हें आवर्त(Period)कहते हैं। सारणी के स्तंभों को गुट (Groups) ऐसा नाम है। इनकी संख्या ९ है। प्रत्येक गुट में 'अ' और 'ब' ऐसे दो उपगट हैं। सारणी में मूलद्रव्य का जो स्थान होता है, उससे उसके गुणधर्मों का अंदाजा लगाया जा सकता है।

- सारणी की पंक्तियों में बाएं से दायाँ तरफ जाते समय मूलद्रव्यों के गुणधर्मों जो फर्क होता है उसकी तुलना में स्तंभ से नीचे उतरते समय अधिक बदल होता है। (कुछ गुटों के मूलद्रव्यों के गुणधर्म काफी समान होते हैं)। उस कारण ऐसे गुटों को अल्कली धातु, अल्कालाइन धातु, नोबल वायु आदि कहा जाता है।
- मूलद्रव्य की अंतिम कक्षा में जो इलेक्ट्रॉन्स होते हैं, उन्हें 'व्हॅलन्सी इलेक्ट्रॉन्स' कहा जाता है। मूलद्रव्य के रासायनिक गुणधर्म व्हॅलन्सी इलेक्ट्रॉन्स पर निर्भर होते हैं। एक गुट के मूलद्रव्यों के व्हॅलन्सी इलेक्ट्रॉन्स की संख्या समान होती है।
- एक ही गुट के मूलद्रव्यों के संदर्भ में जब हम ऊपर से नीचे की ओर आते हैं तो आण्विक त्रिज्या में वृद्धि होती है। अर्थात् इलेक्ट्रॉन्स की अणुकेंद्र से दूरी बढ़ती जाती है। बाह्य इलेक्ट्रॉन्स के अणुकेंद्र के साथ बंधन की दृढ़ता कम होती जाती है। इस कारण उन्हें सहजता से बाहर निकाला जा सकता है। अर्थात् ऐसे मूलद्रव्यों के आयनीकरण के लिए कम ऊर्जा लगती है। व्हॅलन्सी इलेक्ट्रॉन्स की अणुकेंद्र से दूरी बढ़ने के कारण ऊपर से नीचे की ओर 'इलेक्ट्रोनिगेटिविटी' कम होती जाती है। अणु में परमाणु बद्ध होता है तब उसकी इलेक्ट्रॉन आकर्षित करने की क्षमता को 'इलेक्ट्रोनिगेटिविटी' कहते हैं।
- पंक्ति में जब बाएँ से दायाँ ओर जाते हैं तो अणु की त्रिज्या सामान्यतः कम होती है। इसका कारण है प्रत्येक अगले मूलद्रव्य में एक प्रोटॉन और एक इलेक्ट्रॉन की वृद्धि होती है। इस कारण इलेक्ट्रॉन अणुकेंद्र के पास जाता है। परिणामतः आयनीकरण के लिए अधिक ऊर्जा लगती है चूंकि इलेक्ट्रॉन का बंधन अधिक दृढ़ होता है।
- सारणी में ऐसे कुछ हिस्से हैं जिनमें स्तंभ या गुट की अपेक्षा आवर्त के मूलद्रव्य के गुणधर्म समान होते हैं। या उनमें विशिष्ट ढंग से ही गुणधर्म में बदल होता है। उदा.

लॅथेनाइड्स और ऑक्टीनाइड्स श्रृंखलाएं। ये श्रेणियां, ६ और ७ पंक्तियों में ठीक ढंग से अंतर्भूत नहीं की जा सकतीं। इस कारण उन्हें सारणी में अलग बताते हैं।

नाभिकों में प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों की संख्या -

नाभिक में जैसे-जैसे प्रोटॉनों की संख्या बढ़ती है, उसका आकार बढ़ता है। नाभिकीय बल के अल्प दायरे के कारण सभी कणों के बीच नाभिकीय आकर्षण का संबंध बना नहीं रह सकता। लेकिन विद्युत विकर्षण का दायरा काफी विस्तृत होने के कारण वह संबंध सभी कणों के बीच बना ही रहता है और नाभिक के बढ़ते आकार के साथ विद्युत विकर्षण का प्रभाव बढ़ता ही जाता है। इनका संतुलन रखने के लिए अर्थात् प्रबल नाभिकीय बल का प्रभुत्व बनाए रखने के लिए, जो नाभिक के स्थायित्व के लिए आवश्यक है, न्यूट्रॉनों की संख्या में प्रोटॉनों से अधिक वृद्धि होती है। न्यूट्रॉन विद्युत बल के लिए कोई योगदान नहीं देते लेकिन नाभिक बल के लिए निश्चित देते हैं, ताकि विद्युत विकर्षण बल से प्रभावी, नाभिक बल रहे। इस प्रक्रिया में बड़े नाभिकों में न्यूट्रॉनों की संख्या प्रोटॉनों की संख्या के अनुपात में तेजी से बढ़ने पर ही वे टूटने से बच सकते हैं। और यह विशेषतः कैल्शियम से भारी मूलद्रव्यों के लिए होता है।

लेकिन न्यूट्रॉनों की संख्या बढ़ने को भी मर्यादा है। प्रोटॉन-न्यूट्रॉनों का अनुपात 2 : 3 से अधिक नहीं हो सकता। इसके बढ़ते ही नाभिक का विखंडन अलग ढंग से होता है जिसे हम रेडियो सक्रिय विकिरण कहते हैं। इसमें अल्फा, बीटा, गॅमा किरणें निकलती हैं।

परमाणु में विद्युत बल प्रभावशाली भूमिका अदा करता है ।

लेकिन नाभिक के अंदर प्रबल अन्योन्यक्रिया का ही प्रभुत्व रहता है। यह धन विद्युत भारित प्रोटॉनों को एकदूसरे से जोड़े रखता है । अन्यथा समान विद्युतधारी प्रोटॉन विकर्षण के कारण उड़ जाएंगे और नाभिक का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। विकर्षण का कुलंबीय बल, नाभिक को मानो एक दबाई हुई, सिकुड़ी स्प्रिंग जैसा बनाकर रखता है। थोड़ा धक्का लगा कि स्प्रिंग अपनी सामान्य अवस्था प्राप्त करने को उद्यत। यह धक्का बाहरी न्यूट्रॉनों की बौछार से मिल सकता है। नाभिक दो हिस्सों में विभक्त हो जाता है। यह संभव है, जिस नाभिक में प्रोटॉन-न्यूट्रॉनों की संख्या 250 से अधिक होती है। अणुबम के विस्फोट या अणुभट्टी में होनेवाली नाभिकीय विखंडन श्रृंखला प्रक्रिया यही है।

समस्थानीय (Isotope)

- सारी सृष्टि मूलद्रव्यों से बनी है।
- सृष्टि में कुछ मूलद्रव्यों का प्रमाण बहुत अधिक है तो कुछ का अत्यल्प।
- कुछ मूलद्रव्य तो सृष्टि में स्वतंत्र रूप से मिलते ही नहीं।
- सबसे सरल और क्रमांक एक का मूलद्रव्य है हैड्रोजन। इसके अणु में केवल एक प्रोटॉन होता है और एक ही इलेक्ट्रॉन इसके चारों ओर घूमता है।
- लेकिन बाद के मूलद्रव्यों में मूलभूत कणों की संख्या में वृद्धि देखने में आती है।
- प्रोटॉन के अतिरिक्त न्यूट्रॉन्स का अस्तित्व प्रकर्षत्व से बढ़ते जाता है।
- अणुकेंद्र में कितने प्रोटॉन्स है इससे अणुकेंद्र पर कितना विद्युतभार इसका पता चलता है। जितने प्रोटॉन्स उतने इलेक्ट्रॉन्स अणुकेंद्र के गिर्द भ्रमण करते हैं। इसी कारण अणु पर कुल विद्युतभार शून्य होता है।
- लगभग प्रथम बीस मूलद्रव्यों तक या कैल्शियम तक प्रोटॉन संख्या = न्यूट्रॉन्स संख्या। लेकिन आगे न्यूट्रॉनों की संख्या बढ़ती जाती है।
- लेकिन अणु का वस्तुमान, उसमें कुल कितने प्रोटॉन्स+न्यूट्रॉन्स हैं, उस संख्या से दिखाया जाता है। उदा. यूरेनियम के अणु में ९२ प्रोटॉन्स तो १४६ न्यूट्रॉन्स होते हैं। यूरेनियम का वस्तुमान $92 + 146 = 238$, दिखाया जाता है। लेकिन यह यूरेनियम का एक प्रकार हुआ। इसके अतिरिक्त यूरेनियम २३४ और यूरेनियम २३५ ये और दो प्रकार हैं। उनके अणुकेंद्र में क्रमशः 142 और १४३ न्यूट्रॉन्स होते हैं। प्रोटॉनों की संख्या उतनीही ९२ रहती है। आवर्त सारणी में मूलद्रव्य का स्थान प्रोटॉनों की संख्या पर निर्भर है। इस कारण उपरोक्त तीनों प्रकार सारणी में एक ही स्थान में रहेंगे। इसी कारण इन तीनों प्रकारों को समस्थानीय या आयसोटोप कहते हैं।
- प्रोटॉनों की अणुकेंद्र में जो संख्या होती है वह मूलद्रव्य का अणुक्रमांक है।
- तो प्रोटॉन्स और न्यूट्रॉन्स की कुल संख्या यह मूलद्रव्य का वस्तुमान क्रमांक होता है।
- सभी समस्थानीय रासायनिक दृष्टि से समान होते हैं। लेकिन उनके अन्य गुणधर्मों में फर्क हो सकता है। उदाहरण : यूरेनियम २३५ यह तीनों में सबसे आसानी से विखण्डनीय है।

- यही बात अन्य मूलद्रव्यों के लिए भी सत्य है। अधिकतर मूलद्रव्यों के समस्थानीय होते हैं। लेकिन समस्थानियों की संख्या के बारे में कोई नियम नहीं है। ऑक्सीजन के तीन तो प्लुटोनियम के पंधराह, पारे के सात समस्थानीय हैं। हैड्रोजन के तीन-१) हैड्रोजन एक प्रोटॉन(H) २) ड्यूटेरियम-एक प्रोटॉन + एक न्यूट्रॉन (2H) ३) ट्रिटियम - एक प्रोटॉन + दो न्यूट्रॉन्स (3H)।
- लेकिन प्रकृति में मिलने वाले कई मूलद्रव्यों के समस्थानीय किरणोत्सर्गी हैं।
- समस्थानियों की कुल संख्या दो सौ के लगभग है।

मूलद्रव्यों के लिए संख्या की मर्यादा

इनकी की अधिकतम संख्या १३७ हो सकती है। इस मर्यादा का कारण है ब्रह्माण्ड में गति की महत्तम मर्यादा, जो निर्वात में प्रकाश की गति है। इलेक्ट्रॉन जब नाभिक के चारों ओर चक्कर लगाता है तो उसकी संभावित अधिकतम गति उपरोक्त प्रकाश गति से अधिक नहीं हो सकती। जैसे-जैसे इलेक्ट्रॉन की नाभिक के गिर्द परिभ्रमण की गति बढ़ती है वैसी-वैसी भोर कक्षा की त्रिज्या कम होती जाती है।

(यह ज्ञात है कि भोर कक्षा की लम्बाई यह डी. ब्रोग्ली की तरंग लम्बाई के बराबर होती है। अतः गति में वृद्धि के साथ ब्रोग्ली की तरंग लम्बाई कम होगी। लेकिन ब्रोग्ली की तरंग लम्बाई का हिसाब लगाते समय हमें इलेक्ट्रॉन के सापेक्षकीय वस्तुमान में हुई वृद्धि भी ध्यान में लेनी होगी ।)

कई गणनाओं के बाद हमें जो नाभिक का आवेश मिलता है जिसपर भोर इलेक्ट्रॉन की, भोर कक्षा में गति, प्रकाश की निर्वात में गति इतनी हो जाएगी, वह है $137.036 = Z = 1 / \alpha$ । यहाँ α यह फाईन स्ट्रक्चर स्थिरांक है।

इस तरह अगर हमारे पास ऐसा नाभिक है जिसका आवेश १३७ (Z) है तो प्रथम, भोर कक्षा के इलेक्ट्रॉन की गति, प्रकाश की निर्वात में गति से किंचित कम होगी। लेकिन १३८ नाभिक आवेश वाला मूलद्रव्य संभव ही नहीं होगा, चूँकि अब प्रथम कक्षा के इलेक्ट्रॉन की गति प्रकाश गति से अधिक होगी। यह असंभव है। अतः रासायनिक मूलद्रव्य जिसका Z, 137 है, यह

तत्त्वतः आवर्त सारणी में मूलद्रव्य की अंतिम मर्यादा होगी। इसे Feynmanium नाम दिया गया है।

मूलद्रव्यों की खोज

किसी पदार्थ में विशिष्ट मूलद्रव्य का अस्तित्व है या नहीं यह ढूँढने की दो पद्धतियाँ प्रचलित थीं--

- १) रासायनिक विश्लेषण पद्धति : इसमें पदार्थ के नमूने की भिन्न-भिन्न रसायनों के साथ होने वाली क्रियाएं जांची जाती थीं। उससे उस पदार्थ में विद्यमान मूलद्रव्य का अंदाजा लगता था।
- २) वर्णपट का पृथक्करण : इस पद्धति में पदार्थ के नमूने में से विशिष्ट विद्युत चुंबकीय तरंगें उत्सर्जित कर मूलद्रव्य अपना अस्तित्व प्रकट करता था।
दोनों में दोष यह था कि जांच के दौरान बड़े परिमाण में पदार्थ का नमूना नष्ट होता था।
- ३) अब ' न्यूट्रॉन ऑक्टिवेशन ऑनॅलेसिस ' पद्धति उपयोग में लायी जाती है :- इसमें पदार्थ के नमूने पर न्यूट्रॉन कणों की बौछार करने से उसके अणुकेंद्र, न्यूट्रॉन कण अवशोषित कर लेते हैं और उनका विविध समस्थानिकों में रूपान्तर होता है। उनमें से कई किरणोत्सर्गी होते हैं। जैसे 65 अणुभार वाले तांबे पर न्यूट्रॉनों की बौछार करने पर 66 अणुभार वाला तांबा पैदा होता है जो किरणोत्सर्गी है। उसका अस्तित्व चट से ध्यान में आता है, चूंकि उसका अर्ध-जीवन काल केवल ५.१ मिनट है। उसका ३० अणुक्रमांक और 66 अणुभार वाले ज़िंक में रूपान्तर होता है। इसी पद्धति का उपयोग हवाई अड्डों पर यात्रियों के सामान की जांच करने के लिए किया जाता है। सामान में अगर विस्फोटक हो तो तुरंत पता चलता है। पुराने पेंटिंग की नकल पहचानने के लिए भी यह पद्धति उपयोग में लायी जाती है।

अस्थिर परमाणु : रेडियो सक्रिय परमाणु

- रेडिओ सक्रिय मूलद्रव्यों से जो विकिरण होता है, वह विद्युतभारित होता है। न्यूझीलैंड के वैज्ञानिक रूदरफोर्ड ने इसकी खोज की थी। इस प्रक्रिया पर उच्च तापमान, अति उच्च दाब, रासायनिक पदार्थों की उपस्थिति इनका कोई परिणाम नहीं होता। इस विकिरण के लिए किसी बाहरी उत्प्रेरक की आवश्यकता नहीं होती। तीन तरह की किरणें निकलती हैं -
- १) धन विद्युतधारी अल्फा किरणें : ये हिलियम के नाभिक होते हैं। परमाणु से बाहर आते हैं तो उनकी गति 10-20 हजार कि.मी./सेकंड होती है।
 - २) अधिक गति वाली बीटा किरणें : ये इलेक्ट्रॉन्स बाहर आने की प्रक्रिया है। ये इलेक्ट्रॉन्स भी परमाणु के नाभिकेंद्र से ही आते हैं। जिनसे बीटा किरणें बाहर आती हैं वे मूलद्रव्य अतः स्थायी रूप से दूसरे मूलद्रव्य के परमाणुओं में रूपान्तरित हो जाते हैं। जैसे यूरेनियम से सीसा। अर्थात् मूलद्रव्य का क्षय होता है। यहाँ न्यूट्रॉन का रूपान्तर प्रोटॉन में होता है। साथ में प्रति न्यूट्रिनो कण भी उत्सर्जित होता है। अणु क्रमांक प्रोटॉन की संख्या पर निर्भर है। यहाँ प्रोटॉन की संख्या में एक से वृद्धि होती है। अर्थात् पैदा होने वाले मूलद्रव्य का अणु क्रमांक एक से बढ़ता है।
 - ३) फोटॉन्स : नाभिक एक ऊर्जा स्तर से दूसरे ऊर्जा स्तर में फोटॉन्स के उत्सर्जन के साथ पहुंच सकते हैं। इन्हें गॅमा किरणें कहते हैं। यह अति उच्च ऊर्जाधारी विकिरण है।

अस्थिर नाभिक एकाएक क्षय को प्राप्त नहीं होता। यह प्रक्रिया कुछ मूलद्रव्यों के लिए हजारों-लाखों वर्षों तक जारी रह सकती है। विखंडन का शाखीय अनुपात होता है। अर्थात् यहाँ भी सांख्यिकी के संयोग के नियम उपस्थित हैं।

मूलद्रव्यों की रासायनिक सक्रियता

पृथ्वी पर मिलने वाले कुल ९२ मूलद्रव्यों में से कुछ रासायनिक दृष्टि से पूरी तरह उदासीन हैं (निऑन, ऑरेगॉन, क्रिप्टॉन आदि वायु)। वे एकदम निष्क्रिय हैं। वे किसी रासायनिक क्रिया में हिस्सा नहीं लेते।

इससे उलट सोडियम, पोटेशियम जैसे मूलद्रव्य रासायनिक दृष्टि से बड़े सक्रिय हैं।

अणुकेंद्र के गिर्द इलेक्ट्रॉन कण गोलाकार कक्षाओं में भ्रमण करते हैं। प्रत्येक कक्षा में इलेक्ट्रॉन्स की संख्या भी निश्चित होती है। प्रथम कक्षा में दो, दूसरी में आठ, तीसरी में आठ, चौथी और पांचवीं में अठारह प्रत्येकी, अगली में बत्तीस ऐसी यह व्यवस्था है। इसके बाद की कक्षाओं में इलेक्ट्रॉन्स कम होते जाते हैं। प्रत्येक कक्षा में कई उपकक्षाएं होती हैं। ($N = 2n^2$; $N =$ विशिष्ट कक्षा में इलेक्ट्रॉन्स की संख्या, $n =$ कक्षा क्रमांक)। जिन मूलद्रव्यों की सबसे बाह्य कक्षा में ८ इलेक्ट्रॉन्स होते हैं, वे मूलद्रव्य स्थिर होते हैं। निऑन, अर्गॉन आदि की बाह्य कक्षा में ८ इलेक्ट्रॉन्स पाये जाते हैं। हिलियम की एक अकेली कक्षा में दो इलेक्ट्रॉन्स होते हैं। यह स्थिर मूलद्रव्य है।

मान लो, सबसे बाहरी कक्षा में ८ इलेक्ट्रॉन्स के समावेश के बाद भी कुछ इलेक्ट्रॉन्स बच गये तो वे इससे आगे अपनी एक कक्षा बना लेते हैं। ये कक्षा इलेक्ट्रॉन्स की संख्या की दृष्टि से अपूर्ण होती है। और इन इलेक्ट्रॉन्स पर अणुकेंद्र का, तौलनिक दृष्टि से बंधन हल्का रहता है। ये इलेक्ट्रॉन्स अपनी अणुकेंद्र की पकड़ से छुटकर अन्य अणु के साथ बद्ध हो सकते हैं। अर्थात् जिन मूलद्रव्यों की बाह्य कक्षा में ८ से कम इलेक्ट्रॉन्स से होंगे तो वे रासायनिक दृष्टि से अधिक क्रियाशील होंगे। उदाहरणार्थ सोडियम की कक्षाओं में २,८,१ संख्या में इलेक्ट्रॉन्स होते हैं। तो पोटेशियम में २,८,८,१। इनकी बाह्य कक्षा में १ ही इलेक्ट्रॉन है। अतः वे अधिक सक्रिय हैं। बाह्य कक्षा के इलेक्ट्रॉन्स को ही 'व्हॅलन्सी इलेक्ट्रॉन' कहते हैं। अंदरूनी कक्षाएं मानो बाह्य कक्षा के एक अकेले इलेक्ट्रॉन को धनविद्युतधारी अणुकेंद्र से अलग करती हैं। बाह्य कक्षा और अणुकेंद्र इनके बीच जितनी अधिक कक्षाएं होंगी उतना दुराव अधिक और व्हॅलन्सी इलेक्ट्रॉन का हस्तांतरण आसान। इसी कारण पोटेशियम, सोडियम से अधिक क्रियाशील है। पोटेशियम में एक कक्षा अधिक है। बाह्य कक्षा का इलेक्ट्रॉन अलग हो जाना याने आयनीकरण।

एक और मूलद्रव्य है सीझीयम। इसमें २,८,१८,१८,८,१ ऐसी इलेक्ट्रॉन्स की रचना है। यह सर्वाधिक क्रियाशील लेकिन स्थिर मूलद्रव्य है। कुछ किरणोत्सर्गी द्रव्यों में बाह्य कक्षा और अणुकेंद्र इनमें अधिक कक्षाएं तो मिलती हैं लेकिन वे स्थिर नहीं हैं।

अब मान लो मूलद्रव्य की बाह्य कक्षा में आठ इलेक्ट्रॉन्स की संख्या पूरी होने के लिए एक, दो ही इलेक्ट्रॉन्स की कमी है। ऐसे मूलद्रव्य उनकी भरपाई करने के लिए उत्सुक रहते हैं। इस कारण रासायनिक दृष्टि से वे क्रियाशील हैं। खास तौर पर जिस मूलद्रव्य के बाह्य कक्षा में

७ इलेक्ट्रॉन्स होते हैं वे अधिक सक्रिय पाए जाते हैं। उदा. क्लोरीन २,८,७ इलेक्ट्रॉन्स तो ब्रोमीन में २,८,१८,७ संख्या में। लेकिन यहाँ आंतरिक कक्षाएं जितनी कम उतनी सक्रियता अधिक। उदा. २, ७ इलेक्ट्रॉनों की रचना वाला फ्लोरीन मूलद्रव्य है। यह सबसे क्रियाशील है।

व्हॅलन्सी इलेक्ट्रॉन दोनों मूलद्रव्य साझा करते हैं ताकि उनकी बाह्य कक्षाएं संपूर्ण बनी रहें और दोनों मूलद्रव्यों के बीच जो साझेदारी होती है उसे व्हॅलन्सी बॉन्ड कहते हैं।

अणुकेंद्र और अणुओं के आकार

- $10^{-8}\text{cm} = 1 \text{ अँगस्ट्रॉम}$ | $10^{-13}\text{cm} = 1 \text{ फर्मी}$ |
- हैड्रोजन परमाणु : इलेक्ट्रॉन की कक्षा = 0.25 अँगस्ट्रॉम |
- अणुकेंद्र में उपस्थित प्रोटॉन और न्यूट्रॉन लगभग एक ही आकार और वस्तुमान के होते हैं।
- आमतौर पर विभिन्न कण और उसके व्यास का स्तर मी. में इस प्रकार है - १)
इलेक्ट्रॉन- 10^{-18} से कम २) प्रोटॉन/न्यूट्रॉन- 10^{-15}
३) अणुकेंद्र- 10^{-14} ४) अणु- 10^{-10}

मान लो, किसी विशिष्ट अणु का व्यास 9×10^{-10} मीटर है। तो उसका अणुकेंद्र लगभग 9×10^{-15} मी. व्यास का होगा। प्रोटॉन कण का व्यास 8×10^{-16} मी. | अणु, अणुकेंद्र, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन गोलाकृति हैं ऐसा माना जाता है। तो-

प्रोटॉन का आयतन होगा- 2.1×10^{-45} घनमीटर, अणुकेंद्र का होगा -1.1×10^{-43} घ.मी., और अणु का 1.1×10^{-28} घ. मी.।

प्रोटॉन का आयतन / अणुकेंद्र का आयतन = $2.1 \times 10^{-45} / 1.1 \times 10^{-43} = 1.9 \times 10^{-2} = 1.9\%$

अर्थात् एक प्रोटॉन अणुकेंद्र में 2 % स्थान व्याप्त करता है। लेकिन वहां कई प्रोटॉन और न्यूट्रॉन होते हैं। अर्थात् अणुकेंद्र का अधिकतर स्थान ये कण व्याप्त कर लेते हैं। लेकिन अणुकेंद्र और अणु इनके आयतनों की तुलना करने पर --

$1.1 \times 10^{-43} / 1.1 \times 10^{-27} = 10^{-15}$ | अर्थात् इलेक्ट्रॉन्स को छोड़ दे तो अणु में अधिकतर स्थान रिक्त होता है।

- अॅटॉमिक मास युनीट : मूलकणों का वस्तुमान इस एकक में गिना जाता है और इसे u इस अंग्रेजी अक्षर से दर्शाया जाता है। कार्बन- 12 इस मूलद्रव्य के एक अणु का यह वस्तुमान है और इसकी कीमत है $1.660540 \times 10^{-27} \text{ kg}$ इस एकक में -
 १) इलेक्ट्रॉन का वस्तुमान- 0.0005486९ (u), प्रोटॉन का वस्तुमान- $1.007276(u)$,
 न्यूट्रॉन का वस्तुमान $-1.008665(u)$
 अर्थात् प्रोटॉन का वस्तुमान = 1838.68 इलेक्ट्रॉन्स का वस्तुमान।
- सारा विश्व प्रोटॉन, इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन इन तीन कणों की निर्मिती है।
- प्रोटॉन, न्यूट्रॉन इनकी अन्तर रचना है । क्वार्कस् उनके घटक हैं।
- इलेक्ट्रॉन इस कण की अन्तररचना नहीं होती। उसे बिंदुवत् माना जाता है।
- इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन ये स्थिर कण हैं। न्यूट्रॉन यह अस्थिर है। उसका अर्ध-जीवनकाल 10.3 मिनट है। लेकिन अणुकेंद्र में न्यूट्रॉन स्थिर रहता है।
- इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन इन कणों का विद्युतभार होता है। अतः वे विद्युत और चुंबकीय क्षेत्रों से प्रभावित होते हैं। लेकिन न्यूट्रॉन पर विद्युतभार नहीं होता इस कारण वह उपरोक्त क्षेत्रों से प्रभावित नहीं होता। इसी कारण इसकी खोज काफी बाद याने 1932 में (जेम्स चॅडविक द्वारा) हो सकी।
- ऊर्जा की परमाणविक इकाई : इलेक्ट्रॉन व्होल्ट : यह ऊर्जा का वह परिमाण है जो एक व्होल्ट विभावान्तर से गुजरते हुये इलेक्ट्रॉन को इकाई प्रवेग प्रदान करता है।
- इलेक्ट्रॉन का विद्युतभार = 4.8×10^{-10} इकाई ।

अणुऊर्जा

यूरेनियम

- मार्टिन हेन्निच क्लैपेरोथ इस जर्मन वैज्ञानिक ने वर्ष 1789 में पिचब्लेन्ड इस खनिज में यूरेनियम की खोज की।
 वास्तव में उन्हें जो मिला था, वह यूरेनियम डाय ऑक्साइड यह संयुग था।
- वर्ष 1842 में युजेन पेलिग्रो यह फ्रेंच वैज्ञानिक शुद्ध यूरेनियम प्राप्त करने में सफल रहे।
- वर्ष 1896 में हेनरी बैक्वेरेल इन्होंने सिद्ध किया कि यूरेनियम किरणोत्सर्गी है।

- वर्ष 1938 दिसम्बर में ऑटो हान और स्ट्रासमन इस जर्मन वैज्ञानिक द्वयी ने न्यूट्रॉन कणों की बौछार कर, यूरेनियम अणु का विभाजन किया तो पता चला कि इस प्रक्रिया में ऊर्जा निर्मित होती है।
- दो दिसम्बर 1942 को एन्निको फर्मी ने यूरेनियम का उपयोग कर प्रथम अणुभट्टी की रचना की।
- छह अगस्त 1945 को यूरेनियम-235, इस मूलद्रव्य का उपयोग कर बनाएं गये अणुबॉम्ब ने जपान का हिरोशिमा शहर पूरी तरह जमीनदोस्त कर डाला।
- अब तक पूरी दुनिया में 450 के लगभग अणुभट्टियां कार्यरत हो चुकी थीं। इनमें से 104 अकेले अमेरिका में हैं। सभीका आधार यूरेनियम ही है। लेकिन कुछ हादसों के बाद जर्मनी ने अपने सभी अणु बिजली उत्पादन केंद्र बंद कर दिये।
- 2001 में पूरी दुनिया में 35767 टन, प्राकृतिक यूरेनियम का उत्पादन हुआ।
- वर्ष 1781 में हर्षेल ने जिस नये ग्रह की खोज की थी उसे यूरेनस नाम दिया गया था। उसीसे 1789 में खोजे गये नये मूलद्रव्य को यूरेनियम नाम दिया गया।
- आवर्त सारणी में अंतर्भूत मूलद्रव्यों में पृथ्वी पर स्वतंत्र रूप से प्राप्त होनेवाला, यूरेनियम यह अंतिम मूलद्रव्य है। आगे के मूलद्रव्य कृत्रिम ढंग से बनाएं जाते हैं।
- यूरेनियम के अणुकेन्द्र 92 प्रोटॉन, 146 न्यूट्रॉन्स होते हैं। 92 इलेक्ट्रॉन्स विभिन्न कक्षाओं में केंद्र का चक्कर लगाते रहते हैं।
- इसका गलन बिंदु 1135 अंश सेल्सियस तो उत्कलन बिंदु 4131 है। यह बहुत घना है। इसकी घनता 18.95 ग्रॅम /घ.से. है।
- खदान से प्राप्त यूरेनियम में प्रमुखता से यूरेनियम-238, 99.2745 % या 2.7 मि.ग्रॅ./ कि.ग्रॅ., यूरेनियम-235-0.72 % तो यूरेनियम-234-0.0055 % होता है। सागर के पानी में 3.2 मायक्रोग्रॅम /लीटर होता है।
- इसके कुल अठारह समस्थानीय हैं। लेकिन अणु ऊर्जा और अणु बॉम्ब की दृष्टि से यूरेनियम-235 महत्वपूर्ण है।
- यूरेनियम 238 पर न्यूट्रॉन की बौछार करने से यूरेनियम-239 बनता है। वैसे यूरेनियम 238 का आसानी से विभाजन नहीं होता। लगभग 23 मिनट अर्ध जीवनवाले इस समस्थानीय से बीटा कण उत्सर्जित होकर उसका रूपान्तर नेप्च्यूनियम-239 मूलद्रव्य में होता है। इसका अर्ध-जीवन है 2.4 दिन। उसमें से फिर बीटा कण उत्सर्जित होकर

प्लुटोनियम-239 मूलद्रव्य बनता है। इसे ही अणुभट्टी तथा अणुबम के लिए उपयोग में लाते हैं।

- यूरेनियम-238 यही सबसे स्थिर मूलद्रव्य है। इसका अर्धजीवन 4.468 अरब वर्ष है।
- अणुभट्टी में यूरेनियम-235 और यूरेनियम-238 इनके मिश्रणवाली सलाखें इंधन के रूप में उपयोग में लायी जाती हैं। इनमें उपरोक्त मूलद्रव्यों का अनुपात क्रमशः 1 : 30 होता है।
- विभाजन की प्रक्रिया में मुक्त होते हैं न्यूट्रॉन्स। शृंखला प्रक्रिया में सातत्य रहे इसलिए न्यूट्रॉनों की गति पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। उसके लिए भारी पानी या ग्रेफाइट जैसे पदार्थों का उपयोग किया जाता है। इन्हें मॉडरेटर कहते हैं।
- पैदा होने वाली ऊर्जा को बाहर से नियंत्रित किया जाए इसलिए बोरॉन, कॅडमियम जैसे पदार्थों की सलाखों का उपयोग होता है। ये न्यूट्रॉनों को सोख लेते हैं। इन सलाखों को अंदर-बाहर कर, न्यूट्रॉन शोषण को नियंत्रित किया जाता है। उसीके अनुसार अणुकेंद्र के विभाजन की गति नियंत्रित होती है और उसीके अनुसार गर्मी पैदा होती है। इसका उपयोग आगे क्रमशः बाष्प निर्माण और विद्युत-जनित्र चलाने के लिए किया जाता है।
- प्रकृति में यूरेनियम-235 यही एकमेव विभाजनक्षम मूलद्रव्य अस्तित्व में है। लेकिन उसकी उपलब्धता बहुत कम है। प्लुटोनियम-239, यूरेनियम-233 ये विभाजनक्षम मूलद्रव्य भी अणुभट्टी में उपयोग में लाये जा सकते हैं। थोरियम-232 इस मूलद्रव्य का यूरेनियम-232 इस विभाजनक्षम मूलद्रव्य में रूपान्तर होता है। जिनसे विभाजनक्षम मूलद्रव्यों की निर्मिति होती है। उन्हें 'जननक्षम मूलद्रव्य' कहते हैं। जैसे यूरेनियम-238 या थोरियम-232।
- ब्रिडर रिअॅक्टर : इस रिअॅक्टर में इंधन के रूप में विभाजनक्षम मूलद्रव्य के तौरपर प्लुटोनियम-239 और जननक्षम मूलद्रव्य के तौरपर यूरेनियम-238 का एकसाथ उपयोग किया जाता है। इस अणुभट्टी में प्लुटोनियम-239 के ज्वलन के कारण उत्पन्न न्यूट्रॉन्स की गति कम नहीं की जाती। ये गतिमान न्यूट्रॉन्स यूरेनियम-238 इस जननक्षम मूलद्रव्य का रूपान्तर प्लुटोनियम-239 इस विभाजनक्षम मूलद्रव्य में सहज कर सकते हैं। अर्थात् यहाँ मूल प्लुटोनियम-239 से अधिकाधिक मात्रा में यह मूलद्रव्य बनता है।
- भारी जल : हैड्रोजन मूलद्रव्य के तीन समस्थ हैं। प्रकृति में प्रचूर मात्रा में उपलब्ध हैड्रोजन-1 के अणुकेंद्र में एक प्रोटॉन और कक्षा में एक इलेक्ट्रॉन होता है। दूसरे प्रकार

ड्यूटेरियम के केंद्र में एक प्रोटॉन, एक न्यूट्रॉन और कक्षा में घूमन्तू एक इलेक्ट्रॉन होता है। तो तिसरे ट्रिटियम में एक प्रोटॉन, दो न्यूट्रॉन और वही एक इलेक्ट्रॉन होता है।

ड्यूटेरियम को भारी हैड्रोजन और इससे तैयार होनेवाले पानी को भारी पानी (HeavyWater) कहते हैं। इन तीनों प्रकार के पानी के गुणधर्मों में कुछ अंतर है। जैसे हल्के पानी का उत्कलन बिंदु 100 डिग्री सेल्सियस है तो भारी पानी का 101.42।

- अणुभट्टी में प्रति क्षण असंख्य गतिमान न्यूट्रॉन्स पैदा होते हैं। अणुभट्टी के उचित नियंत्रण के लिए इन कणों की गति कम करनी होती है। भारी पानी का, अणुभट्टी में उपयोग इसी काम के लिए किया जाता है। लेकिन इसके लिए इसकी बड़े पैमाने पर आवश्यकता होती है। उदा. 300 मेगावाट विद्युत उत्पादन करने वाली अणुभट्टी के लिए, कमसे कम 200 टन भारी पानी लगता है। लेकिन उसका उत्पादन खर्च भी बहुत है। उपरोक्त पानी की कीमत ही करोड़ों डॉलर्स होगी।
- भविष्य में ड्यूटेरियम के संयोग से हिलियम निर्मिती का तंत्र विकसित होने पर एक पौंड भारी पानी में रहे ड्यूटेरियम के संयोग से जो ऊर्जा उत्पादन होगा वह 60 लाख पौंड पथरिले कोयले से उत्पादित बिजली के बराबर होगा। सामान्य हैड्रोजन का इस प्रक्रिया के लिए उपयोग नहीं हो सकता।

ड्यूटेरियम + ड्यूटेरियम = हिलियम + एक न्यूट्रॉन + 3.2 दशलक्ष इलेक्ट्रॉन वोल्ट ऊर्जा।

ड्यूटेरियम + ट्रिटियम = हिलियम + एक न्यूट्रॉन + 17.6 दशलक्ष इ. वोल्ट ऊर्जा।

- अणु संगलन : अणु संगलन की प्रक्रिया अणु विच्छेदन के एकदम विरोधी है। अणु विच्छेदन में अणुकेंद्र विभाजित होकर उस वस्तु का नाश होता है और उसका रूपान्तर ऊर्जा में होता है। तो अणु संगलन में दो अलग-अलग अणुकेंद्र एकदूसरे के साथ संगलित होते हैं। कुछ वस्तु का नाश होकर उसका रूपान्तर ऊर्जा में होता है। लेकिन यह संगलन करवाने के लिए मात्र कई लाख सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। वह केवल अणुबम के विस्फोट से ही प्राप्त किया जा सकता है। आजकल इसके लिए लेसर किरणों का उपयोग किया जाता है।
- प्लूटोनियम : १) 1941 तक यह मूलद्रव्य ज्ञात ही नहीं था।
२) स्वतंत्र रूप से, यह प्रकृति में, नहीं मिलता। लेकिन यह अणुभट्टी में सहजता से बनता है।

- 3) इसके अभी तक 15 समस्थानीय ज्ञात हैं। यह अति जहरीला द्रव्य है।
 - 4) 5 से 10 किलोग्रॅम प्लूटोनियम से अतिशय कार्यक्षम अणुबम बनाया जा सकता है।
 - 5) लेकिन इसका विधायक उपयोग भी पर्याप्त हो रहा है। जैसे अवकाश यान को ऊर्जा पूर्ति के लिए। इसके लिए 2.5 से.मी. लम्बा प्लूटोनियम का टुकड़ा काफी है। इस टुकड़े के गिर्द, इरिडियम नामक धातु का कवच होता है। प्लूटोनियम से उत्सर्जित ऊर्जा के कारण इरिडियम का तापमान 2400 डिग्री सेंटीग्रेड तक बढ़ता है और इससे विद्युत ऊर्जा निर्मित की जाती है।
- ऊर्जा निर्मिती के लिए, इसे पेसमेकर में भी उपयोग करते हैं।

अणुकेंद्र विच्छेदन

अणु विच्छेदन प्रक्रिया में प्रमुख भूमिका न्यूट्रॉन कणों की ही है। यूरेनियम के अणुओं पर न्यूट्रॉन कणों की बौछार करने पर कोई न्यूट्रॉन कण अणुकेंद्र में घुसता है और उसी क्षण अणु विच्छेदन प्रक्रिया आरंभ होती है। एक अणुकेंद्र के पीछे दूसरा अणुकेंद्र विभाजित होने में 10^{-8} सेकंड इतना समय लगता है तो अणुस्फोट 10^{-6} सेकंड में हो जाता है। इस दरम्यान यूरेनियम के 2×10^{24} अणुओं का विद्वंस हो जाता है। जिस तरह कुल्हाड़ी के घाव से लकड़ी के दो टुकड़े होते हैं उसी तरह यूरेनियम का अणुकेंद्र विभाजित हो जाता है। उसीके साथ कई दशलक्ष एकक ऊर्जा मुक्त होती है और वे दो टुकड़े भारी गति से दूर फेंके जाते हैं। इस प्रक्रिया में उसके साथ ही और दो-तीन नये न्यूट्रॉन्स पैदा होते हैं। वे और अणुओं का विच्छेदन करते हैं। साथ-साथ और न्यूट्रॉन्स पैदा होते हैं। इस तरह यह श्रृंखला चल पड़ती है।

यूरेनियम के अणुकेंद्र का विभाजन होने पर क्रिप्टॉन, बेरियम जैसे अणुकेंद्र बाहर फेंके जाते हैं। दो-तीन न्यूट्रॉन कण भी उत्पन्न होते हैं। अतः यूरेनियम अणुकेंद्र की कुल ऊर्जा से उपरोक्त कणों की ऊर्जा घटा देने से हमें एक यूरेनियम अणुकेंद्र से मुक्त हुई ऊर्जा मिलेगी। जो होती है -3.2×10^{-11} ज्यूल्स।

एक कि.ग्रॅम में साधारण तौर पर 2.5×10^{24} अणु होते हैं। अर्थात् 1 Kg यूरेनियम से मुक्त हुई ऊर्जा होगी

$3.2 \times 10^{-11} \times 2.5 \times 10^{24} = 8 \times 10^{13}$ ज्यूल्स| मानो यह ऊर्जा एक मायक्रो सेकंड में पैदा हुई तो पैदा हुई शक्ति होगी

$$= 8 \times 10^{13} / 10^{-6} = 8 \times 10^{16} \text{ कि.वॉट} |$$

हिरोशिमा पर गिराया गया बम

- छह अगस्त 1945, सुबह सवा आठ बजे|
- वजन -4100 Kg| भूपृष्ठ से 564 मीटर उंचाई पर इसका विस्फोट किया गया|(जमीन पर हुए विस्फोट से तबाही कम होती|)
- शहर जमीनदोस्त हो गया| 3 लाख आबादी में से एक लाख चालीस हजार नागरिक मारे गये|
- उत्पन्न हुआ बादल आकाश में 15000 मीटर उंचाई तक पहुँचा|
- इसका सांकेतिक नाम था ' लिटिल बॉय ' | लम्बाई-3 मीटर, व्यास-71 से.मी.| इसमें 64 Kg यूरेनियम-235 का उपयोग किया गया था| बम की विध्वंसक क्षमता 15 किलो टन ' टीएनटी ' इतनी होनी चाहिए|
- अणुबम के विस्फोट से निम्न चार प्रकार के परिणाम उत्पन्न होते हैं|
 - 1) प्रघाति तरंग तथा तुफान| इस कारण सभी खड़ी चीजें जमीनदोस्त हो जाती हैं|
 - 2) उष्णीय प्रारण: विस्फोट के साथ उठने वाली ज्वालाएं सभी कुछ राख में बदल देती हैं|
 - 3) तात्कालिक प्रारण - विस्फोट के बाद जो महाप्रचंड बादल बनता है उसमें से कई किरणोत्सर्गी द्रव्यों का वर्षाव होता है, जो विस्फोट से भी घातक होता है|
 - 4) अवशिष्ट प्रारण (Radiation) : जिन किरणोत्सर्गी द्रव्यों का अर्ध-जीवन कई वर्ष होता है, वे मूलद्रव्य भूमि में मिल जाते हैं और अन्न, पानी आदि के माध्यम से कई पीढ़ियों को बाधित करते रहते हैं|
- ऐसा कहा जाता है कि सोवियत संघ ने 100 मेगाटनवाला बम बना लिया था| अर्थात् उसका कभी परीक्षण नहीं हुआ|

नागसाकी का बम

- 9 अगस्त 1945, सुबह ग्यारह बजे। सांकेतिक नाम ' फॅट मॅन ' । शक्ति 21 किलोटन थी।
- यूरेनियम 235 के स्थान पर प्लूटोनियम 239 उपयोग में लाया गया था। इसकी स्फोटक क्षमता अधिक होती है। यह अणुभट्टी में आसानी से तैयार होता है।
- इस बम का परीक्षण, प्रथम 16 जुलाई 1945 को किया गया था। यह परीक्षण ' ट्रिनिटी टेस्ट ' के तौर पर प्रसिद्ध है। इस परीक्षण के दरम्यान 30 मीटर उँची लोहे की मीनार एकदम पिघल गयी थी।
- इसकी लम्बाई 3.25 मीटर, व्यास 1.52 मीटर और वजन 4630 Kg था।
- इसका विस्फोट भूपृष्ठ से 564 मीटर उँचाई पर किया गया था।
- तुरंत 40000 लोग मर गए और हजारों बाद में।
- ऐसा माना जाता है कि इसके 20 कि. विस्फोटक मूलद्रव्य में से केवल 1.3 किलो का ही विभाजन हुआ था।
- अण्वस्त्र विस्फोट से जो भिन्न-भिन्न किरणोत्सर्गी द्रव्य पैदा होते हैं उनकी संख्या 200 तक होती है। ये अल्फा, बीटा. गॅमा किरणें उत्सर्जित करते हैं। उनका लगातार नाश होते रहता है। विस्फोट के बाद किरणोत्सर्गी द्रव्यों का भूपृष्ठ पर वर्षाव होता है उसे ही ' रेडिओ अॅक्टिव्ह फॉलआउट ' कहते हैं। वह या तो स्थानीय किस्म का होता है या अन्य प्रकार है ' वर्ल्डवाइड फॉलआउट '।

हैड्रोजन बम

- इसकी निर्मिती 1952 में की गयी थी।
- 1954 में बिकिनी द्वीप पर हैड्रोजन बम का प्रायोगिक विस्फोट किया गया था। उसके बाद हुआ किरणोत्सर्गी वर्षाव 7000 चौरस मील तक फैल गया था।
- लेकिन लगभग 57 से अधिक मेगाटन शक्ति के हैड्रोजन बम (TSAR BOMBA) का प्रायोगिक विस्फोट सोवियत संघ ने, ' नोव्हाया झेमल्या ' (आर्टिक सर्कल के पास) इस दूरदराज के स्थान पर 30 अक्टूबर 1961 को किया था। यह जमीन से 4000 मीटर ऊपर किया गया था। यह बम हिरोशिमा पर डाले बम से 3000 गुना और 1954 में अमेरिका द्वारा किये गये विस्फोट से तीन गुना शक्तिशाली था। यह मनुष्य द्वारा किया गया सबसे शक्तिशाली विस्फोट था।

PERIODIC TABLE OF THE ELEMENTS

- सबसे अधिक ज्वालाग्राही मूलद्रव्य-हैड्रोजन। जब इसका हवा में ज्वलन होता है तब २००० डिग्री से. तक तापमान हो सकता है।
- सबसे विस्फोटक मूलद्रव्य-अँन्टिमनी।
- सबसे खतरनाक मूलद्रव्य-प्लूटोनियम।
- सबसे भारी मूलद्रव्य-----यूरेनियम।(प्रत्येक परमाणु में ९२ प्रोटॉन + १४६ न्यूट्रॉन)
- प्राकृतिक रूप से प्राप्त सबसे घन मूलद्रव्य-ऑस्मियम(७६)। प्रति आयतन घनत्व-२२.५९ ग्रॅम/ से.मी.^३।
- सबसे अधिक रेडिओ अँक्टिव्ह मूलद्रव्य-पोलोनियम-क्षय के दरम्यान मुक्त होने वाली ऊर्जा का दर-१४० वॉट /ग्रॅम।
- सबसे अभिक्रियाशील मूलद्रव्य-सेसियम(५५)
- सबसे मजबूत(Strongest) मूलद्रव्य -टंगस्टन-इसकी तनन(Tensile) शक्ति 142,000 पौंड/ प्रति चौरस इंच है। यह पदार्थ की तनाव के प्रति प्रतिरोध क्षमता का माप है। अर्थात् उसपर लगाये गये खींचाव या दबाव के प्रति प्रतिरोध।
- लोहे के परमाणु सभी मूलद्रव्यों में सबसे स्थिर परमाणु है।

२. मूलभूत कणिकाएं

ब्रह्माण्ड : महाबृहद् -स्थूल -सूक्ष्म

- आज की मान्यता : भौतिक तत्वों के कई गुणधर्मों का निर्धारण, सूक्ष्मतम स्तरों पर, एकदूसरे को प्रभावित करने वाली घटनाएं ही करती हैं।
- प्रायोगिक खोजबीन के लिए हमारी घुसपैठ 10^{-15} से.मी. तक ही है। आगे केवल तर्क और चिंतन ही है।
- यह कहना उचित नहीं कि सूक्ष्म और बृहत् स्तर पर प्रकृति के नियम भिन्न-भिन्न हैं। लेकिन इन स्तरों के अनुसार प्रकृति की अभिव्यक्ति अलग-अलग अवश्य है।
- मूलभूत भौतिक प्रवर्ग : १) मूलभूत कणिकाएं २) अनोन्यक्रिया के वाहक बलक्षेत्र ३) काल - अंतराल की मान्यताएं। मूलभूत कणिकाएं ब्रह्माण्ड रचना की मूलभूत इंटें हैं।
- तीन तरह के कण : १) इलेक्ट्रॉन्स -अविभक्त २) प्रोटॉन-स्थिर-इसके घटक हैं ३) न्यूट्रॉन-स्वतंत्र रूप से आयु 1000 सेकंड।
- इन कणों के विभिन्न टकराओं के फलस्वरूप सैकड़ों अल्पजीवी कण पैदा होते हैं। 1978 में ज्ञात ऐसे कणों की संख्या 350 के करीब थी। वे या तो कॉस्मिक किरणों में पाये जाते हैं या फिर प्रवेगकों में उत्पन्न होते हैं।
- अस्तित्व का एक अन्य रूप : विकिरण : फोटॉन जैसे कणों से, जिनका स्थिरावस्था द्रव्यमान शून्य होता है।

पदार्थ

महर्षि कणाद ने ' परमाणु ' की चर्चा की है ।

पदार्थ : अवस्थाएं ----घन रूप, द्रव रूप, वायु रूप तथा प्लाज्मा: सभी परमाणुओं का विघटन, न्यूक्लि + इलेक्ट्रॉन्स का मानो सूप (क्रमशः बढ़ते तापमान के साथ) । आगे न्यूक्लि, प्रोटॉन + न्यूट्रॉन में विभाजित -ये आगे क्वार्क्स में विभाजित।

उप परमाणु कण : प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, इलेक्ट्रॉन आदि ।

प्राथमिक कण (Elementay, Fundamental Particle) : जो आगे किसी लघुकणों से नहीं बने हैं। १) लेप्टॉन २) क्वार्कस् (हैड्रान बनते हैं)।

भौतिकी का मानक मॉडल(Standard Model of physics)

इसके अनुसार 17 प्राथमिक कण हैं। ये परमाणुओं की रचना तथा उनके बीच अन्योन्यक्रियाओं का नियंत्रण करते हैं। इन्हें तीन विस्तृत वर्गों में विभाजित किया गया है। १) क्वार्कस् २) लेप्टॉन -इनसे पदार्थ या पदार्थ कण गठित होते हैं। पदार्थ अर्थात् जो अवकाश व्याप्त करता तथा जिसे वस्तुमान होता है। ३) बोसॉन -बल कण -ये बलों का निर्माण करते हैं।

मूलभूत बल-१) विद्युत चुंबकीय बल २) सशक्त बल ३) क्षीण बल ४) गुरुत्वाकर्षण बल। अन्य बल इनसे ही पैदा होते हैं।

बोसॉन्स : १) स्केलर बोसॉन - हिग्स बोसॉन या गॉड कण।

२) वेक्टर बोसॉन्स अ) फोटॉन-विद्युत चुंबकीय बल का निर्माण करता है। वह केवल प्रकाश गति इतनी गति पर ही रह सकता है। उसका कोई विद्युत भार नहीं होता।

ब) W बोसॉन - यह क्षीण न्यूक्लियर अन्योन्यक्रिया का वाहक। यह न्यूक्लिय और इलेक्ट्रॉन्स को बांधता है।

क) ग्लुऑन - सशक्त न्यूक्लियर बल का वाहक। यह प्रोटॉन्स-न्यूट्रॉन्स को बांधे रखता है।

ड) ग्रैविटॉन : गुरुत्वाकर्षण के लिए जिम्मेदार।

भिन्न आधारों पर मूलभूत कणिकाओं का वर्गीकरण

परमाणु की अन्तर्रचना के घटक : अ) न्यूक्लियॉन्स (नाभिक) आ) इलेक्ट्रॉन्स (नाभिक का चक्कर काटते हैं)

१) विद्युत आवेश -प्रोटॉन्स (+), इलेक्ट्रॉन्स (--)। विद्युत आवेश रहित -न्यूट्रॉन, फोटॉन, न्यूट्रिनो तथा कुछ मेसॉन्स।

२) गति : a) कणिकाएं जो महत्तम गति की मर्यादा तक हलचल कर सकती हैं। ब्रह्माण्ड में महत्तम वेग, प्रकाश का निर्वात में वेग है। वेग जैसा इस गति के करीब पहुंचता है वैसा-वैसा पदार्थ का द्रव्यमान बढ़ता है।

b) जो केवल प्रकाश गति पर ही हलचल कर सकती हैं अन्यथा लुप्त हो जाती हैं। उदा. फोटॉन, न्यूट्रिनो। इन कणों का विरामावस्था द्रव्यमान लगभग शून्य होता है। हमें अनुभव होने वाला प्रकाश का दबाव, चलते फोटॉन के परिवल के कारण है।

४) प्रतिकर्णों का अस्तित्व : अ) होते हैं। उदा. इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रिनो आदि। आ) प्रतिकर्ण नहीं होते। उदा. फोटॉन आदि। प्रतिकर्ण का विद्युत आवेश कण के आवेश के विरुद्ध होता है। बाकी गुण समान होते हैं। कण और प्रतिकर्ण एकदूसरे के संपर्क में आते ही केवल फोटॉन या मेसॉन का बादल उत्पन्न होता है।

५) स्थिरता की दृष्टि से :

अ) स्थायी अस्तित्व वाले। इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन।

आ) अस्थायी अस्तित्व वाले a) तुलनात्मक दृष्टि से मध्यम आयु वाला न्यूट्रॉन-1000 सेकंड। b) बहुत अल्प आयु-सेकंड का दस लाखवाँ भाग आदि। c) अनुनाद (Resonance) आयु- 10^{-22} से.से कम। अब इनकी संख्या भी 50 से कम नहीं है। (Tuning Fork कंपित स्थिति में है। उसके कंपन की एक आवृत्ति है। इससे कोई अन्य ध्वनि तरंग टकरा रही है। इस तरंग की भी कंपन आवृत्ति होगी। दोनों आवृत्तियाँ समान होती हैं तो परिणाम Tuning Fork से उच्च आयाम(Amplitude) वाली ध्वनि। इसे अनुनाद कहते हैं।) यहाँ विशिष्ट आवृत्ति पर मेसॉन्स में एकांक तीव्र वृद्धि होती है।

* कण का औसत जीवनकाल जितना अधिक होगा उसका वस्तुमान उतना स्थिर होगा।
६) परिवर्तन के आधार पर : पृथ्वी, सूर्य के चारों ओर, एक विशिष्ट कक्षा में चक्कर लगाती है। अतः उसका कक्षीय परिबल होगा। इसके अतिरिक्त वह अपने अक्ष के गिर्द भी घूमती है। परिणामतः उसका कोणीय परिबल (Angular Momentum) होगा। उसी तरह इलेक्ट्रॉन भी अपने अक्ष के गिर्द घूमता है। इलेक्ट्रॉन के इस कोणीय परिबल को स्पीन कहा गया है। बाद में यह स्पष्ट हो गया कि प्राथमिक कणों के गुणधर्मों में यह एक बहुत ही मूलभूत विशेषता है। आगे यह कणों के वर्गीकरण का भी आधार बना।

१) फर्मिऑन्स (स्पिन - $\frac{1}{2}$) : अ) क्वार्क-प्रोटॉन आदि के घटक ;आ) लेप्टॉन -इलेक्ट्रॉन आदि। परमाणुओं की रचना फर्मिऑन्स द्वारा ही हुई है।

इन्हें यह नाम इटालियन भौतिकशास्त्री एनरिको फर्मी के नाम पर दिया गया है।

२) बोसॉन्स (स्पिन -0 या पूर्णांक) : गेज कण या अन्योन्यक्रिया वाहक कण। इस गुट के कणों का कार्य है भिन्न-भिन्न कणों के बीच बलों का प्रेषण करना । यह नाम भारतीय वैज्ञानिक सत्येन्द्रनाथ बोस की स्मृति में दिया गया है।

फर्मिऑन्स

१) लेप्टॉन्स : अ) शुरू में ज्ञात संख्या छह थी, अब बारह। इलेक्ट्रॉन, म्युऑन, ताऊ कण और उनसे संबंधित न्यूट्रिनोज। म्युऑन और ताऊ कण छोड़, बाकी कण हल्के। ताऊ कण सबसे भारी (द्रव्यमान प्रोटॉन से दुगुना)। इनकी आपसमें अन्योन्यक्रिया करने की क्षमता कम। ये कणिकाएं जिनमें हिस्सा लेती हैं वे मूलभूत क्रियाबल हैं-

- क्षीण अन्योन्यक्रिया * विद्युत चुंबकीय अन्योन्यक्रिया * (इनपर सशक्त बल का परिणाम नहीं होता) * जहांतक गुरुत्वाकर्षण बल का संबंध है वह सूक्ष्म कणिकाओं के स्तर पर नगण्य है।
- इनके और सूक्ष्म स्तर पर कोई घटक नहीं है।

2) क्वार्कस्: ये आम लेप्टॉन्स की तुलना भारी हैं। इनसे उत्पन्न कणिकाएं हैं ' हैड्रॉन्स ' जिनकी संख्या सैकड़ों में है। मेसॉन्स के माध्यम से न्यूक्लिऑन्स एक दूसरे के साथ अन्योन्यक्रिया करते हैं। इनकी क्षमता लेप्टॉन्स की तुलना में बहुत अधिक है। ये कणिकाएं जिनमें हिस्सा लेती हैं वे मूलभूत बल हैं--* :

अ) प्रबल अन्योन्यक्रिया आ) विद्युत चुंबकीय बल इ) क्षीण नाभिक अन्योन्यक्रिया।

हैड्रॉन्स : * आपस में बलशाली अन्योन्यक्रिया करने वाले भारी कण। * प्रोटॉन छोड़कर बाकी सभी अल्पजीवी। * जिन हैड्रॉन्स का स्पिन पूर्णांक में होता है उन्हें ' मेसॉन्स ' नाम दिया गया है। अर्धपूर्णांक स्पिन वाले हैड्रॉन्स ' बेरिऑन्स ' कहलाते हैं।

कणिकाओं के भिन्न तरह के आवेश

- सन् 1937 तक हम केवल एक ही ढंग के आवेश से परिचित थे और वह था विद्युत आवेश। कण : १) आवेशधारी -अ) ऋण विद्युतधारी -इलेक्ट्रॉन आ) धन विद्युतधारी - पॉजिट्रॉन। २) आवेशरहित -न्यूट्रॉन्स, फोटॉन्स।
 - इलेक्ट्रॉन-पॉजिट्रॉन, इनके गुणधर्मों के आधार पर जब इन्हें कण-प्रतिकण समझा जाने लगा तो यह सोच स्वाभाविक थी कि न्यूट्रॉन जैसे आवेशरहित कण का कोई प्रतिकण नहीं होना चाहिए। लेकिन जब न्यूट्रॉन का प्रतिकण खोज निकाला गया तो एक और आवेश ' बेरिऑन आवेश ' की कल्पना प्रस्तुत हुई।
 - अ) बेरिऑन आवेशधारी कण -इनके प्रतिकण होते हैं। कण का बेरिऑन आवेश धनात्मक। प्रतिकण का ऋणात्मक। न्यूट्रॉन का + 1।
आ) बेरिऑन आवेशरहित कण-फोटॉन(स्थिरावस्था द्रव्यमान शून्य), लेप्टॉन तथा कुछ मेसॉन्स (स्थिरावस्था द्रव्यमान शून्य नहीं)
- फोटॉन्स, कण-प्रतिकण के प्रति समान क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं।
- भिन्न ढंग के आवेशों की कल्पनाओं का इतिहास—
- १) 1937 तक ज्ञात-विद्युत आवेश २) 1949 में बेरिऑन आवेश की कल्पना का अंतर्भाव ३) 1953 में लेप्टॉन आवेश अंतर्भूत।

ऊर्जा

- भौतिकशास्त्र में ' ऊर्जा ' का अर्थ है, काम करने की क्षमता।
- केवल वही पिंड जो गति में है, काम करने की क्षमता रखता है।
- ऐसी कोई ऊर्जा नहीं हो सकती जो भौतिक वस्तु से सम्बद्ध न हो।
- फोटॉन की ओर अंगुलीनिर्देश करके केवल ऊर्जा के अस्तित्व का दावा किया जाता है। लेकिन अंततः आइन्स्टाइन ने इसे कण ही कहा है।(इलेक्ट्रॉन+पॉजिट्रॉन लुप्त होकर फोटॉन बनता है अर्थात् ऊर्जा।)
- हमें जो अनुभूति होती है, वह प्रत्यक्ष ऊर्जा की नहीं, ऊर्जा में हो रहे परिवर्तन की।

- वस्तुमान और ऊर्जा भौतिक वस्तु की अनुपम ढंग से संबंधित स्वभाव विशेषताएं हैं। पिंड का द्रव्यमान उसकी ऊर्जा का समानुपातिक होता है। या पिंड की जड़ता उतने ही शक्ति संग्रह से सतत संबंध रखती है।
- अब ऊर्जा के अविनाशी होने का स्थान, ऊर्जा और द्रव्यमान के एकिकृत अविनाशी होने के नियम ने ले लिया है।
- आइन्स्टाइन : एक ग्राम वस्तु में स्थिरावस्था ऊर्जा होगी 9×10^{13} ज्यूल्स(J)।
- $E = m$ (अस्तित्व ऊर्जा) + $\frac{1}{2} mv^2$ (गतीज ऊर्जा) | $E = m \times c^2$
(आइन्स्टाइन)

नाभिक के घटक

नाभिक में पाये जाने वाले कण प्रोटॉन और न्यूट्रॉन हैं। इन्हें न्यूक्लिऑन्स कहते हैं। ये जुड़वे भाइयों की तरह हैं। न्यूट्रॉन, प्रोटॉन से मामूली भारी है। अर्थात् न्यूट्रॉन, प्रोटॉन से अधिक ऊर्जायुक्त है (आइन्स्टाइन सूत्र)। न्यूट्रॉन को पूरी तरह नष्ट होते हुए नहीं देखा जाता। अधिक से अधिक, वह प्रोटॉन में रूपान्तरित होते हुए दिखता है। नाभिकेंद्र में वे एकदूसरे में रूपान्तरित होते हुए दिखते हैं। रूपान्तरण लगातार होता रहता है। प्रोटॉन धन पिऑन उत्सर्जित करेगा और न्यूट्रॉन में रूपान्तरित होगा। न्यूट्रॉन अपनी बारी में उपरोक्त मुक्त हुआ पिऑन पकड़ लेगा और प्रोटॉन में रूपान्तरित होगा। पिऑन प्रकाश की तीव्र गति से अपनी यात्रा शुरू करता है। अतः उपरोक्त रूपांतरण के लिए 10^{-23} सेकंड समय काफी होता है।

अगर दो उच्च ऊर्जाधारी फोटॉन्स का टकराव आयोजित किया जा सका तो दोनों लुप्त होंगे और उनके स्थान पर हमें मिलेंगे प्राथमिक कण। ये मेसॉन्स, प्रोटॉन्स, प्रतिप्रोटॉन किसी भी ढंग के हो सकते हैं। शर्त है टकराव में लिप्त कणों की ऊर्जा इतनी होनी चाहिए कि $E = mc^2$ ।

क्वार्कस्

1964 में एम्. गेल मान और जी. झ्वेइग द्वारा यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया कि सृष्टि के मूल में क्वार्कस् कण हैं। गेल मान ने उपरोक्त नाम सुझाया। अनुमान किया गया है कि इनका आकार अधिक से अधिक 10^{-16} से.मी. होना चाहिए। अर्थात् न्यूक्लिऑन से 1000 गुना छोटे। शुरू में इन्हें दो तरह का माना गया ' अप ' और ' डाउन ' । उनपर विद्युतभार

क्रमशः इलेक्ट्रॉन के दो तृतीयांश और एक तृतीयांश होना चाहिए, ऐसा वैज्ञानिकों का दावा है। दो 'अप' और एक 'डाउन' ऐसे तीन क्वार्क एकत्र आने पर निर्मित होगा प्रोटॉन तो दो डाउन और एक अप के संयुक्त होने से पैदा होगा न्यूट्रॉन। अभी तक क्वार्क की प्रत्यक्ष खोज संभव नहीं हो सकी। लेकिन प्रयोगों के बाद 1979 में इनका अस्तित्व मान्य किया गया। इनके प्रतिकण होते हैं। क्वार्क + प्रतिक्वार्क = मेसॉन। ये हैड्रॉन के घटक हैं। शुरू में इनकी संख्या छह मानी गयी थी लेकिन इनके प्रतिकण मिलाकर अब बारह हो गयी है।

हमारे ब्रह्माण्ड में छह तरह के क्वार्क हैं। लेकिन अन्य चार, प्रथम दो अर्थात् अप और डाउन की अधिक वस्तुमान वाली प्रतिकृतियां हैं। अर्थात् वे अस्थिर हैं। उनका हल्के प्रतिरूपों में क्षय होता है। अर्थात् अंतिम रूप में बचते हैं केवल अप और डाउन। ये क्वार्क तीन मूलभूत बलों के माध्यम से आपसमें अन्योन्यक्रिया करते हैं। विद्युत चुंबकत्व का प्रयत्न होगा समान आवेश वाले क्वार्क को विकर्षित करे तो सशक्त बल उन्हें जोड़े रखेगा। क्वार्क ये फर्मिऑन्स होने से, पावली एक्स्क्लूजन तत्व के अनुसार एकदम समान अवस्था में नहीं हो सकते।

क्वार्क के बीच होने वाली परस्पर क्रिया को विवेचित करनेवाले सिद्धान्त को 'क्वांटम क्रोमो गतिशास्त्र' नाम दिया गया है। यह प्रबल अन्योन्यक्रिया का विवेचन करने वाला सिद्धान्त है। क्वार्क के बीच अन्योन्यक्रिया अन्य कणों की तरह ही तिसरे कण के लेनदेन के माध्यम से ही होती है। इस तिसरे कण को ग्लुऑन कहते हैं। ग्लुऑन विद्युत चुंबकीय या क्षीण अन्योन्यक्रिया में हिस्सा नहीं लेते। इनका भी स्थिरावस्था वस्तुमान शून्य है।

छह क्वार्क इस प्रकार हैं—अप, डाउन, स्ट्रेंज, चार्म, टॉप, बॉटम + इनके प्रतिक्वार्क। इन छह जोड़ियों के आधार पर सभी ज्ञात मूलभूत कणों की अन्तर्रचना को विश्लेषित किया जा सकता है। इनके संमिश्रण से अलग-अलग कण बनते हैं। क्वार्क + प्रतिक्वार्क = मेसॉन (पियॉन, केऑन आदि)।

बेरिऑन क्रमांक :-

बेरिऑन यह तीन या अधिक लेकिन विषम संख्या में क्वार्क से बनते हैं। सभी क्वार्क का बेरिऑन क्रमांक $1/3$ है। सभी प्रतिक्वार्क का $-1/3$ है। प्रोटॉन-न्यूट्रॉन इनका बेरिऑन क्रमांक 1 है।

क्वार्क कलर आवेश : --

यह एक और क्वांटम आवेश है। नामकरण ; हरा, लाल, नीला। प्रोटॉन और न्यूट्रॉन को बनने के लिए तीन भिन्न कलर के क्वार्कस् चाहिए। प्रतिक्वार्कस् के प्रति-कलर हैं।

अविनाशित्व का नियम :

यह नियम क्वार्कस् के निम्न क्वांटम क्रमांक/परामितकों / गुणधर्मों पर भी लागू होता है :--

- १) ऊर्जा २) रेखीय आवेग (Linear Momentum) ३) चक्रीय आवेग (Angular Momentum) ४) विद्युत आवेश ५) कलर आवेश (Colour Charge) ६) बेरिऑन क्रमांक। अर्थात् क्वार्कस् अन्योन्यक्रिया के दरम्यान, क्रिया के पूर्व इन क्रमांकों का जोड़ और क्रिया के उपरांत आने वाला जोड़, दोनों समान होना चाहिए।

पिऑन या पाय मेसॉन

- जब दो भ्रमणरत न्यूक्लिऑन्स एकदूसरे से टकराते हैं तो पाय मेसॉन्स उत्पन्न होते हैं। इनके मार्फत ही न्यूक्लिऑन्स एकदूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं। इसी कारण बलशाली नाभिकीय बल क्षेत्र को मेसॉन क्षेत्र भी कहते हैं। यह बलशाली नाभिकीय क्षेत्र का क्वांटम है। पिऑन इलेक्ट्रॉन से 273 गुना भारी है। इसकी भविष्यवाणी जपानी वैज्ञानिक युकावा ने की थी। ये प्रकाश के तौलनिक गति से हलचल करते हैं। लेकिन प्रत्यक्ष प्रकाश गति से नहीं चूँकि यह स्थिरावस्था द्रव्यमानधारी कण हैं। यह एक ओर तो स्थिरावस्था द्रव्यमान के कारण भौतिक वस्तु है तो दूसरी ओर अन्योन्यक्रिया का वाहक होने से ' क्षेत्र ' का प्रतिनिधि भी है। इसे 1947 में, कॉस्मिक किरण क्षेत्र के वैज्ञानिक पॉवेल द्वारा पकड़ा गया था। विद्युत आवेशधारी पिऑन का सरासरी जीवनकाल 2×10^{-8} सेकंड तो तटस्थ पिऑन का केवल 8×10^{-17} सेकंड है। जब हम नाभिकीय केंद्र में पहुँचते हैं तो न्यूक्लियनों को एकदूसरे के साथ बांधे रखने वाले नाभिकीय क्षेत्र का माध्यम पिऑन ही है। इस दुनिया में एक कणिका से दो पिऑन भी उत्पन्न होते हैं और तीन भी। ऐसी आश्चर्यजनक दुनिया से पारंपरिक भौतिकी परिचित नहीं है। इस दुनिया की कई गतिविधियों की कारणमीमांसा हमारे लिए अज्ञात है।

इलेक्ट्रॉन

- इलेक्ट्रॉन्स ये फर्मिऑन्स होने से उसका स्पिन अर्धपूर्णक होगा और वे पौली तत्व का पालन करेंगे।
- इलेक्ट्रॉन का वस्तुमान 9.10904×10^{-28} ग्रॅम्स है। हैड्रोजन परमाणु में, इलेक्ट्रॉन की नाभिकेंद्र के चारों ओर घूमने की कक्षा की त्रिज्या लगभग 0.25×10^{-8} से.मी. होती है। यही हैड्रोजन परमाणु का आकारमान तय करती है। हैड्रोजन परमाणु में या परमाणु के निम्नतम स्तर पर इलेक्ट्रॉन ऊर्जा 13.6 eV होती है। $1 \text{ eV} = 1.6 \times 10^{-12} \text{ Erg} = 1.6 \times 10^{-19} \text{ ज्यूल्स}$ | इलेक्ट्रॉन की त्रिज्या- 10^{-13} से.मी.। इलेक्ट्रॉन की ऊर्जा, उसके नाभिक से औसत अंतर के व्युत्क्रमानुपात में होती है। इलेक्ट्रॉन की स्थिरावस्था ऊर्जा होती है- $0.510998946000 \text{ MeV}$ |
- इलेक्ट्रॉन आवेश = $e = 4.803 \times 10^{-10}$ स्थिर विद्युत इकाइयां esu | $1 \text{ volt} = 1/300 \text{ esu}$ |
- हल्के मूलद्रव्यों में इलेक्ट्रॉन्स की गति हजारों कि.मी. / सेकंड तो भारी मूलद्रव्यों में लाखों कि.मी. / सेकंड तक पहुँच जाती है।

मूलभूत कण का स्वरूप

हम जिसे विवेचित कर रहे हैं उसके लिए 'कण' यह एकदम सटीक शब्द नहीं है। फोटॉन्स, इलेक्ट्रॉन्स, प्रोटॉन्स, नाभिक, परमाणु ये वास्तव में तरंगें या क्वांटम क्षेत्रों में विचलन हैं। यही वास्तवता है। वे काफी कुछ बादल जैसे होते हैं। उनके लिए 'क्वांटा' यह अधिक उपयुक्त संज्ञा है। वे क्षेत्र ऊर्जा के अंतराल में फैली वास्तवताएं हैं। क्वांटम की उत्पत्ति यह उच्च तरह से जुड़े हुए वास्तव में विशिष्ट बिंदु और क्षण पर हो रही घटना है। उसी तरह क्वांटम का नष्ट होना भी। लेकिन क्वांटा स्वयं वस्तुएं भी हैं जिनसे सारा ब्रह्माण्ड बना है।

- नाभिक में प्रोटॉन कोई गणितीय बिंदु या वस्तु बिंदु नहीं है। अवकाश में उसका विस्तार है। इस तरह हम न उसे बिंदु कह सकते हैं, न गेंद। प्राथमिक कणों का प्रत्यक्ष आकार मापने का कोई रास्ता नहीं है। यह इस कारण है कि इन कणों का तरंग गुणधर्म उन्हें अंतराल में अस्पष्ट बना देता है। हम उनकी एक ढंग के बादलों के रूप में कल्पना कर सकते हैं। लेकिन उनके अंदर क्या चल रहा है, यह अज्ञात है। देश और काल का, हमारी समझ का जो पारंपरिक दायरा है वह इन कणों के आचरण को समझने अपर्याप्त है।

- ब्रह्माण्ड की कोई भी वस्तु हम लें। चाहे लाख-लाख प्रजातियों में से हो या रेत का कण । कोई भी दो चीजें सभी दृष्टियों से एकदम एक जैसी नहीं मिलेगी। लेकिन इन वस्तुओं का जो आधार है -सूक्ष्म मूलभूत कण -उस सूक्ष्म स्तर की विशेषता है की एक गुट के सभी कण बिलकुल एक जैसे होते हैं। जैसे सभी इलेक्ट्रॉन्स। इस दृष्टि से यह विश्व बहुत सरल है या अति उच्च मानकीकृत है। लेकिन जहांतक इस विश्व के नियामक नियमों का संबंध है वे हमारी रोजमर्रा की दुनिया के नियमों से भिन्न हैं। इस दृष्टि से यह विश्व अधिक जटिल है। कमसे कम उस स्तर तक तो जहांतक हमारी सोचने-समझने की पहुँच है। भविष्य में क्या सामने आयेगा यह हम कह नहीं सकते।

तंतु स्वरूप की कल्पना (One Dimentional Curve)

1974 में फ्रेंच भौतिकविद् जोएल शेरक और जॉन स्कावाईज़ इन्होंने सुझाया कि प्राथमिक कण ये बिंदु नहीं तो एकल आयामी वक्र है। इन्हें तंतु (String) नाम दिया गया है। इनकी मोटाई शून्य होती है। लम्बाई परिस्थितिनुरूप कम-ज्यादा हो सकती है। उनकी लम्बाई की विशेषता प्रदर्शित करने वाली संख्या 10^{-33} से.मी.या प्लैंक लम्बाई है। सूर्यमाला की तुलना में परमाणु जितना छोटा, यह लम्बाई परमाणु की तुलना में उतनी ही छोटी। तंतु दो तरह के हो सकते हैं, मुक्त तंतु (Open String)। इस वक्र के दो सिरे होंगे। दूसरा बद्ध(Closed String)। यह पाश (Loop) में है। इस आधार पर कणिका के आचरण का स्पष्टीकरण और उनके गुणधर्म होंगे-

- १) वे कंपन स्वरूप हलचल के रूप में भ्रमण करते हैं। उनके कंपनों का स्वरूप ही तय करेगा कि वह कौनसी कणिका का रूप धारण करेगा।
- २) एक ही तंतु दो में विभक्त हो सकता है या दो एकत्र आने पर एक बन सकते हैं। यह आधारभूत अन्योन्यक्रिया ही आगे भिन्न-भिन्न प्राथमिक बलों का रूप धारण कर लेती है।

इस सिद्धान्त में अंतराल के लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई इन तीन आयामों के अतिरिक्त और छह आयामों की कल्पना की गयी है, जो अति सूक्ष्म हैं।

परमकण

अंतर के सूक्ष्मतर स्तर पर याने 10^{-33} से.मी.स्तर पर या ऊर्जा के अति उच्च स्तर पर क्वार्क, लेप्टॉन की स्वतंत्र पहचान लुप्त हो जाती है। यहाँ सभी कण एक परम कण में रूपान्तरित हो जाते हैं। इसीकी अधिक अंतर के स्तर पर भिन्न-भिन्न अवस्थाएं होंगी, जिन्हें हम इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन आदि कहते हैं। इस सूक्ष्म कण की अलग-अलग स्तर पर, आचरण की दृष्टि से कई-कई संभावनाएं हो सकती हैं। उसे एक निश्चिती के रूप में घटाया नहीं जा सकता।

आभासी कण

पदार्थ-कणों के बीच विनिमयित बल वाहक कणों को वर्चुअल या आभासी कण कहा जाता है चूंकि वास्तविक कणों के विपरीत, इन कणों का किसी भी कण संसूचक के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से पता नहीं लगाया जा सकता। बहरहाल हम उनके अस्तित्व के बारे में जानते हैं। क्योंकि वे मापन करने योग्य प्रभाव उत्पन्न करते हैं। वे, पदार्थ कणों के बीच बलों को जन्म देते हैं। 0, 1, 2 प्रचक्रण वाले कण भी कुछ परिस्थितियों में वास्तविक कणों की भांति ही अस्तित्व में होते हैं। उस समय उनका प्रत्यक्ष रूप से पता लगाया जा सकता है। उस समय वे हमें इस प्रकार दिखायी पड़ते हैं जिसे कोई भी पारंपरिक भौतिकविद् तरंग कहेगा, जैसी प्रकाश की तरंगें या गुरुत्वीय तरंगें। वे कभी-कभी उस समय उत्सर्जित की जा सकती हैं जब पदार्थ कण, आभासी बल वाहक कणों का विनिमय करके एकदूसरे के साथ अन्योन्यक्रिया करते हैं। उदा. दो इलेक्ट्रॉनों के बीच विद्युत प्रतिकर्षी बल, आभासी फोटॉन के विनिमय के कारण होता है, जिसका पता प्रत्यक्ष रूप से कभी नहीं लगाया जा सकता। परन्तु यदि एक इलेक्ट्रॉन दूसरे इलेक्ट्रॉन के करीब से गुजरता है तो वास्तविक फोटॉन निकल सकते हैं जिसका पता प्रकाश तरंगों के रूप में लगाया जा सकता है।

पाउली का अपवर्जन सिद्धान्त (Pauli's Exclusion Principle)

ऑस्ट्रियन शास्त्रज्ञ वुल्फगॉंग पाउली ने 1925 में इस तत्व को प्रस्तुत किया था और उसके लिए उन्हें 1945 का नोबेल पुरस्कार भी मिला था। एस्कलूजन का अर्थ है प्रतिबंध। सभी वस्तुओं की स्थिरता के कारण को व्यक्त करने वाला यह तत्व है।

इस तत्व के अनुसार अणु में दो इलेक्ट्रॉन कणों की अवस्था समान नहीं हो सकती। इलेक्ट्रॉन की अवस्था दर्शानेवाले चार क्वांटम नंबर्स हैं। १) प्रिन्सिपल क्वांटम नंबर(n) : यह दर्शाता है कि इलेक्ट्रॉन अणुकेंद्र से किस ऊर्जा स्तर पर है। २) ऑर्बिटल क्वांटम नंबर : (l) इलेक्ट्रॉन किस भ्रमण कक्षा में है। एक भ्रमणकक्षा की कई उपकक्षाएं होती हैं। उन्हें ' सब ऑर्बिटल ' कहते हैं। ३) मैग्नेटिक क्वांटम नंबर (m): इलेक्ट्रॉन के भ्रमण के कारण केंद्र के पास निर्माण होनेवाला चुंबकीय क्षेत्र कैसा है। ४) स्पिन क्वांटम नंबर (s) : इलेक्ट्रॉन का परिवलन किस दिशा में है।

हम उदा. के लिए दो इलेक्ट्रॉन्स वाला सबसे सरल हिलीयम का अणु लेंगे। हिलीयम अणुकेंद्र के गिर्द दो इलेक्ट्रॉन्स चक्कर लगाते हैं। ये दो इलेक्ट्रॉन्स एक ही भ्रमण कक्षा में रह सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि उनके तीन क्वांटम नंबर्स समान होंगे। लेकिन चौथा, स्पिन क्वांटम नंबर समान नहीं हो सकता। इन दोनों इलेक्ट्रॉनों का परिवलन विरुद्ध दिशाओं में होगा। इस तत्व के कारण ही अणु के सारे इलेक्ट्रॉन्स प्रथम स्थायी अवस्था में नहीं जा मिलते। अपनी-अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते रहते हैं और आगंतुक इलेक्ट्रॉन को अपनी कक्षा में आने के लिए प्रतिबंध करते हैं। इस कारण वस्तु की दृढ़ता बनी रहती है।

- एक ही संचयन (Assembly) में दो समान कण एक ही दशा में अस्तित्व में नहीं रह सकते। अर्थात् अनिश्चितता के सिद्धान्त द्वारा प्रस्तुत सीमाओं के अंतर्गत वे दोनों कण न तो एक सी स्थिति में हो सकते हैं और न ही उनका वेग समान हो सकता है। अपवर्जन सिद्धान्त इसलिए बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि यह इस तथ्य को स्पष्ट करता है 0,1,2 स्पिनवाले कणों के द्वारा उत्पन्न बलों के प्रभाव में पदार्थ-कण ध्वस्त होकर एक अत्यंत उच्च घनत्व की दशा में संचयित क्यों नहीं हो जाते ? यदि पदार्थ कणों की स्थितियाँ लगभग एक सी हैं तो उनके वेग निश्चित रूप से भिन्न होने चाहिए। जिसका अर्थ यह है कि वे उसी स्थिति में लम्बे समय तक नहीं ठहरेंगे। यदि विश्व बिना अपवर्जन तत्व के उत्पन्न कर दिया जाता तो क्वार्क पृथक और सुनिश्चित हैड्रॉन्स का निर्माण नहीं करते। और न ही उनका इलेक्ट्रॉन्स के साथ संयोग होकर विशिष्ट-विशिष्ट परमाणुओं का निर्माण होता। वे सब ध्वस्त हो जाते और उनका मोटे तौर पर एकसा गाढ़ा सुप बन जाता। न दुनिया की यह विविधता होती।

- बोसॉन कण अपवर्जन सिद्धान्त का पालन नहीं करते। इसी कारण वे एक ही अवस्था में एकत्र आ सकते हैं और सुदृढ बल उत्पन्न कर सकते हैं। (बहरहाल यदि बलवाहक कणों का द्रव्यमान अधिक होगा तो लम्बी दूरी पर उनका आदान-प्रदान तथा प्रत्यक्ष उन्हें उत्पन्न करना भी कठिन होगा। अतः उनके द्वारा वहन किये जाने वाले बलों की शक्ति बहुत कम होगी। दूसरी ओर यदि बलवाहक कणों का अपना कोई द्रव्यमान नहीं है तो बलों की शक्ति अधिक होगी।)
- सारे फर्मिऑन्स अर्थात् जिनका क्वांटम नंबर $1/2$, $3/2$ आदि है ऐसे कण पाऊली अपवर्जन सिद्धान्त का पालन करते हैं। इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन ये सारे कण फर्मिऑन्स हैं।
- श्वेत बटु तारा और न्यूट्रॉन तारा इनमें यह तत्व प्रकर्षत्व से व्यक्त होता है।
- प्रत्येक मूलद्रव्य के अणु में इलेक्ट्रॉन्स, अणुकेंद्र के चारों ओर कुछ विशिष्ट कक्षाओं में ही भ्रमण कर सकते हैं। प्रत्येक कक्षा में इलेक्ट्रॉन की गति भिन्न-भिन्न होती है। अर्थात् उसके साथ संलग्न तरंग की लम्बाई भी भिन्न-भिन्न होगी। इलेक्ट्रॉन, अणुकेंद्र के गिर्द उसी कक्षा में भ्रमण कर सकता है, जिस कक्षा का परीघ उसके साथ संलग्न होने वाली तरंग लम्बाई के गुना में हो।
- सामान्य अणु में, इलेक्ट्रॉन की भ्रमण कक्षा उसके साथ संलग्न एक तरंग लम्बाई इतनी होती है। ऊर्जा यह तरंगलम्बाई के व्यस्त प्रमाण में होती है। तरंग लम्बाई जितनी कम उतनी ऊर्जा अधिक। तरंग लम्बाई कम होने का अर्थ है, इलेक्ट्रॉन की स्थिति में अधिक अनिश्चितता आना। वह 50% कण जैसा और 50% तरंग जैसा व्यवहार करने लगता है। इलेक्ट्रॉन की इस अनिश्चित अवस्था को ' फजी स्टेट ' कहते हैं। पौली तत्व के अनुसार ' फजी ' अवस्था में एक ही इलेक्ट्रॉन हो सकता है। इलेक्ट्रॉन की यह अपकृष्ण (Degenerated) अवस्था है। ऐसी अवस्था में नये इलेक्ट्रॉन के लिये थोड़ा भी स्थान नहीं बचता।

अँटीमॅटर - प्रतिकण

- पहले वस्तु(Matter) की व्याख्या यह की जाती थी कि जो जगह(देश-Space) व्याप्त करता है तथा जिसका द्रव्यमान है।

- लेकिन अति उच्च क्षमता के विद्युत चुंबकीय क्षेत्र में इलेक्ट्रॉन कण लगभग प्रकाश की गति प्राप्त कर गतिमान होता है। अर्थात् ऐसे समय उसे सापेक्षता के नियम लागू करना आवश्यक हो जाता है।
- उसी समय इलेक्ट्रॉन यह मूल कण है तो वह क्वांटम यांत्रिकी के नियमों का भी पालन करेगा।
- वर्ष 1928 में वैज्ञानिक पॉल डिरॅक ने सर्वप्रथम अति गतिमान इलेक्ट्रॉन के लिये उपरोक्त दोनों सिद्धान्तों का एकत्र उपयोग किया। उन्हें जो सूत्र मिलें उनमें एक ऐसे नये कण का अस्तित्व सूचित हो रहा था जिसका वस्तुमान तो बिल्कुल इलेक्ट्रॉन इतना ही होगा लेकिन उस कण पर इलेक्ट्रॉन के ऋण विद्युत भार इतना ही लेकिन धन विद्युत भार होगा। इस कण को ' पॉजिट्रॉन ' नाम दिया गया। प्रति-कण का यह प्रथम उदाहरण था। इसके लिए हम ' प्रति-वस्तु ' शब्द का उपयोग कर सकते हैं। (पोजिट्रॉन को एण्टी इलेक्ट्रॉन कह सकते हैं।) बाद में 1932 में कार्ल अँडर्सन ने ' क्लाउड चेंबर ' इस उपकरण की सहायता से पॉजिट्रॉन का अस्तित्व सिद्ध किया । जिससे डिरॅक के सिद्धान्त की पुष्टि हुई और 1933 में उन्हें नोबेल पुरस्कार मिला।
- आगे ऐसा देखने में आया कि प्रत्येक मूलभूत कण का प्रतिमूलकण होता है जैसे प्रोटॉन का प्रतिप्रोटॉन, आदि।
- मूलकण और प्रतिमूलकण इनका वस्तुमान समान होता है लेकिन- * कभी विद्युत भार विरुद्ध होता है । * तो कभी चुंबकीय ध्रुव विरुद्ध होता है (उदा. न्यूट्रॉन और प्रतिन्यूट्रॉन)। * कभी परिवर्तन विरुद्ध दिशा में होता है (फोटॉन और प्रतिफोटॉन) आदि।
- कण-प्रतिकण एकदूसरे के दर्पण प्रतिबिंब होते हैं सिवाय इसके कि उनके क्वांटम क्रमांक एकदम विरोधी चिन्ह के होते हैं।
- वस्तु और प्रतिवस्तु केवल क्षीण नाभिक बल के प्रभाव में ही भिन्न-भिन्न व्यवहार करते हैं। अन्य बलों के प्रभाव में नहीं। इसका कारण ज्ञात नहीं।
- प्रतिकणों की खोज के कारण अब प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, इलेक्ट्रॉन, फोटॉन जैसे प्रत्यक्ष व्यवहार में मिलने वाले मूलकणों को ही मॅटर कहा जाता है।
- यथोचित परिमाण में ऊर्जा उपलब्ध हो तो किसी भी क्षण मॅटर और अँटीमॅटर पैदा किए जा सकते हैं। विल्सन चेंबर में अधिक ऊर्जा वाला गॅमा किरण शिसे की चद्दर से

गुजरते समय लुप्त हो जाता है और पॉजिट्रॉन-इलेक्ट्रॉन का युग्म अवतरित होता है। लेकिन प्रयोगशाला में पैदा की गयी कोई भी प्रतिवस्तु तुरन्त नष्ट होती है। प्रयोगशाला में प्रतिहैड्रोजन तैयार करने में वैज्ञानिकों को सफलता तो मिली है लेकिन उसका अस्तित्व अति क्षणिक ही रहा है। अगर हमने ठान ही लिया तो वैज्ञानिकों का कहना है कि एक मिलीग्राम प्रतिवस्तु को पैदा करने का व्यय 100 अरब डॉलर्स होगा। इतने पर भी उसे स्थायित्व प्रदान करना मनुष्य क्षमता के बाहर की बात है।

- उसी तरह मॅटर और अँटीमॅटर इनके एकत्र आने पर दोनों का विनाश होता है और ऊर्जा तथा तुरन्त नष्ट होने वाले कुछ मूलकण उत्पन्न होते हैं।
- अगर विश्व उत्पत्ति के समय वस्तु और प्रतिवस्तु इनका अनुपात समसमान होगा तो आज विश्व में प्रतिवस्तु की तुलना में वस्तु का प्रमाण इतना अधिक क्यों है? यह एक अनसुलझा सवाल है। लेकिन विश्व में प्रतिवस्तु की तुलना में वस्तु का प्रमाण अत्यधिक है इसी कारण विश्व का अस्तित्व बना हुआ है। हो सकता है, दोनों का अस्तित्व अवकाश-काल के भिन्न-भिन्न मापतंत्रों (Frameworks of references) में बना रहा। लेकिन ऐसे किसी प्रतिविश्व का अस्तित्व खोजने में मनुष्य सफल नहीं हुआ है। उपरोक्त उल्लेखित अवकाश-काल के भिन्न मापतन्त्र हो सकता है, एकदूसरे को छेदते हों और यह छेदन बिंदु ही तो कही महाविस्फोट बिंदु नहीं है ?

सममिति

C सममिति :- सभी विद्युतभार युक्त कण ये युग्म में ही पाये जाते हैं (धनात्मक + ऋणात्मक विद्युत आवेश के साथ)। अन्यथा वे विद्युत आवेश रहित होंगे। इसे ही विद्युत आवेश सममिति कहते हैं।

“ कणों और प्रतिकणों के नियम एक से ही होते हैं ”

p सममिति :- विद्युत आवेश से रहित कण उनके दर्पण प्रतिबिंब (प्रतिकणों) के साथ Coincide होते हैं। यह 'p' सममिति हुई।

(सीधे हाथ की दिशा में घूर्णन करने वाले किसी कण का दर्पण प्रतिबिंब बाए हाथ की दिशा में घूर्णन करने वाला होता है।)

“ किसी भी स्थिति तथा उसके दर्पण प्रतिबिंब के लिए नियम एक समान होते हैं “

T सममिति :- यदि सभी कणों की तथा प्रतिकणों की दिशा विपरीत कर दे, तो समस्त ब्रह्माण्ड प्रणाली घूम-फिर कर वहीं पहुंच जाएगी, जैसी की आद्य अवस्था में थी ।

“ समय की आगे और पीछे की दिशाओं में नियम एक समान होते हैं “

C-P सममिति या संयुक्त सममिति :- न्यूट्रिनो का दर्पण प्रतिबिंब प्रति न्यूट्रिनो है।

1956 तक माना जाता था कि भौतिकी के नियम C,P और T तीनों सममितियों का पालन करते हैं। 1956 में त्सुंग दाओ ली तथा चेन निंग यांग इन दो अमेरिकी भौतिकविदों ने सुझाव दिया और सिद्ध भी कर दिया कि क्षीण नाभिकीय बल वस्तुतः P सममिति का अनुपालन नहीं करता। अर्थात् क्षीण बल से जिस तरह ब्रह्माण्ड का विकास होगा उससे बिल्कुल भिन्न तरीके से ब्रह्माण्ड के दर्पण प्रतिबिंब का विकास कराएगा। उनके एक सहकर्मी चियेन शियुंग वू ने प्रायोगिक तौर पर इसकी वैधता प्रदर्शित कर दी।

यह भी पाया गया कि क्षीण बल C सममिति का भी पालन नहीं करते। अर्थात् इसके कारण प्रतिकणों से निर्मित कोई प्रति ब्रह्माण्ड, हमारे ब्रह्माण्ड से बिल्कुल अलग ढंग का होगा।

फिर भी यह प्रतीत होता था कि क्षीण बल संयुक्त सममिति C-P का पालन करते थे। अर्थात्, ब्रह्माण्ड उसी प्रकार से विकसित होगा जैसा की इसका दर्पण प्रतिबिंब, बशर्ते, इसके अलावा प्रत्येक कण की अपने प्रतिकण से अदला-बदली हो जाए । लेकिन 1964 में जे.डब्लु. क्रोनीन तथा वॉल फिच नामक दो अमेरिकी भौतिकविदों ने यह खोजा कि K-मेसॉन नामक कुछ विशिष्ट कणों के क्षय में संयुक्त सममिति C-P का भी अनुपालन नहीं होता । इन्हें 1980 में नोबेल पुरस्कार मिला।

एक और गणितीय प्रमेय के अनुसार, उस प्रत्येक सिद्धान्त को, जो क्वांटम यांत्रिकी तथा सापेक्षता सिद्धान्त का पालन करता है (CPT) संयुक्त सममिति का निश्चित रूप से अनुपालन करना चाहिए। अर्थात् ब्रह्माण्ड को एकसा ही व्यवहार करना पड़ेगा, चाहे कोई कणों के स्थानों

पर प्रतिकर्णों को स्थापित कर दे, दर्पण प्रतिबिंब ले ले, तथा समय दिशा उलटी कर दे। परंतु क्रोनिन ने तथा फिच ने यह दिखाया कि यदि कोई कणों के स्थान पर प्रतिकर्णों को स्थापित कर दे और दर्पण प्रतिबिंबों को ले ले, परंतु काल की दिशा उलटी न करें, तब ब्रह्माण्ड उसी तरह व्यवहार नहीं करता।

यदि कोई काल की दिशा विपरीत कर देता है तो भौतिकी के नियम भी बदल जाने चाहिए- वे सममिति T का अनुपालन नहीं करते। प्रारंभिक ब्रह्माण्ड निश्चित रूप से सममिति T का अनुपालन नहीं करता है। जो-जो काल आगे बढ़ता है ब्रह्माण्ड का विस्तार होते जाता है। यदि काल उलट चलने लगे तो ब्रह्माण्ड का संकुचन होगा। और चूंकि ऐसे बल हैं जो T सममिति का अनुपालन नहीं करते अतः इसका अर्थ यह हुआ कि ज्यों-ज्यों ब्रह्माण्ड का विस्तार होता है, ये बल इलेक्ट्रॉन्स को प्रतिक्वार्कस् में बदलने की अपेक्षा अधिकाधिक प्रति इलेक्ट्रॉन्स को क्वार्कों में बदल सकते हैं। फिर जैसे ही ब्रह्माण्ड का विस्तार हुआ और वह ठंडा हुआ, प्रतिक्वार्कों ने क्वार्कों का विनाश कर दिया। लेकिन चूंकि प्रतिक्वार्कों की अपेक्षा क्वार्कस् अधिक संख्या में होंगे इसलिए वे थोड़ी अधिक मात्रा में बचें रहें होंगे। यही बचें हुए वे क्वार्कस् हैं, जिनसे पदार्थ, दुनिया, हम बने हैं।

- महाएकीकरण सिद्धान्त अत्यधिक ऊर्जा पर क्वार्कों को प्रति इलेक्ट्रॉनों में बदल जाने की अनुमति देता है। इतना ही नहीं तो वहाँ प्रतिक्वार्क इलेक्ट्रॉनों में भी बदल सकते हैं। इलेक्ट्रॉन्स, प्रतिइलेक्ट्रॉन्स, प्रतिक्वार्कों तथा क्वार्कों में बदल जाते हैं। ब्रह्माण्ड की आदि अवस्था में ऐसा समय था जबकि इसका तापमान अधिक था कि कण-ऊर्जा इन रूपान्तरणों के घटित होने के लिए पर्याप्त रही होगी।

न्यूट्रिनो

- यह सबसे छोटा कण है और वे मुक्त अवस्था में होते हैं।
- रेडिओ सक्रिय क्षय में बिटा किरणें अर्थात् इलेक्ट्रॉन्स नाभिक से बाहर आते हैं। नाभिक में इलेक्ट्रॉन्स नहीं होते। तो ये नाभिक में उपस्थित न्यूट्रॉन्स से आते हैं। लेकिन मूलकण और उत्पन्न कणों की एकत्रित ऊर्जा इनमें 9×10^5 eV का फर्क दर्ज किया गया है। ऊर्जा के अविनाशी होने के नियमानुसार ऐसा नहीं होना चाहिए।

- इसपर 1930 में स्विस् वैज्ञानिक वोल्फगंग पाउली ने कल्पना प्रस्तुत की कि इलेक्ट्रॉन के साथ एक और कण उत्सर्जित होना चाहिए। और ऊर्जा फर्क इतनी ऊर्जा वह अपने साथ ले जाता होगा।
- आगे इस कण को ' न्यूट्रिनो ' यह इटालियन नाम इटालियन भौतिकविद् एनरिको फर्मी ने 1934 में सुझाया और उसके लिए सैद्धान्तिक आधार रखा। | इस शब्द का इटालियन भाषा में अर्थ है लघु न्यूट्रॉन।
- इसकी खोज 1956 में अमरीकी वैज्ञानिक कोवान और रिईनीस इन्होंने संभव बनायी। इसके लिए उनकी टीम को 1995 में नोबेल पुरस्कार भी दिया गया।
- अधुनातन दत्त सामग्री के अनुसार अदृश्य द्रव्यमान तारकापुंजों के इर्दगिर्द प्रभामंडल (corona) के रूप में विद्यमान है और यह न्यूट्रिनो द्वारा गठित है। भले ही न्यूट्रिनो का द्रव्यमान हमारी दृष्टि में नगण्य हो, लेकिन ऐसा लगता है कि ब्रह्माण्ड के वर्तमान द्रव्यमान में न्यूट्रिनो का बहुत बड़ा हिस्सा है।
- गुप्त द्रव्यमान का न्यूट्रिनो विषयक सिद्धान्त बुडापेस्ट विद्यापीठ के डी.माक्स और एस्. सलाई इन्होंने प्रस्तुत किया था। लेकिन इस सिद्धान्त के लिए यह आवश्यक है कि इस कण को स्थिरावस्था वस्तुमान हो। अगर यह वस्तुमान वास्तवता है तो वे पूरे ब्रह्माण्ड के अन्तराल में, सम मात्रा में फैले नहीं रह सकते। आपसी गुरुत्वाकर्षण के कारण उनके पुंज बनेंगे। सभी स्थिरावस्था द्रव्यमान वाले कणों के बारे में ऐसा ही होता है, भले ही उनसे ग्रह-तारों की निर्मिती न होती हो। अंतराल में उनके बादल बन सकते हैं और वे प्रभामंडल के रूप में तारकापुंज के गिर्द रह सकते हैं।
- शुरू में ऐसा समझा जाता था की उसका स्थिरावस्था द्रव्यमान शून्य है। लेकिन अब भिन्न-भिन्न गणनाओं के आधार पर उसका द्रव्यमान 10^{-32} ग्रॅ. आता है। इलेक्ट्रॉन के द्रव्यमान से 30,000 गुना कम। इससे पहले इलेक्ट्रॉन को सबसे कम स्थिरावस्था द्रव्यमान वाला कण समझा जाता था। अगर न्यूट्रिनो को वस्तुमान है तो शून्य स्थिरावस्था वस्तुमान वाला कण बचेगा केवल फोटॉन।
- हमारी दुनिया में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो न्यूट्रिनो के लिए अडंगे का काम करे। वे सभी वस्तुओं से आरपार हो सकते हैं। न्यूट्रिनो को रोका नहीं जा सकता। वह या तो लगभग प्रकाश गति इतनी गति से यात्रा करेगा या लुप्त हो जाएगा। (अगर उसका द्रव्यमान है तो वह प्रत्यक्ष प्रकाश गति प्राप्त नहीं कर सकता)। अतः उसके

स्थिरावस्था द्रव्यमान का मापन संभव नहीं। इसके भार का अनुमान सर्वप्रथम लागर और मौफात इन्होंने 1952 में लगाया था और बताया था कि यह इलेक्ट्रॉन भार से 0.05% से भी कम है। इसका भार निश्चित करने के लिए जर्मनी की Karlsruhe Institute में उपकरण लगाया जा रहा है जिसका भार 200 मे. टन है। इसकी लागत 6 करोड़ यूरो है। इसके साथ 7 देश, 20 संस्थान और 200 वैज्ञानिक जुड़े हैं। इसपर प्रयोग करने के लिए प्रचंड आकार की और भी प्रयोगशालाएं बनायी जा रही हैं। भारत में भी तमिलनाडु के थेमी जिले में पोर्टीपुरम इलाके में प्रयोगशाला स्थापित की जा रही है।

- ब्रह्माण्ड में सबसे अधिक फैले कणों में न्यूट्रिनो एक है। ऐसा समझा जाता है कि इन कणों का द्रव्यमान अन्य सभी कणों के कुल द्रव्यमान से दस गुना होना चाहिए। वैसे अंतराल के प्रति घन से. मी. में न्यूट्रिनो की संख्या औसतन 450 होनी चाहिए। ब्रह्माण्ड में उनकी कुल संख्या फोटॉन की कुल संख्या से थोड़ी ही कम होगी लेकिन प्रोटॉन-इलेक्ट्रॉन इनकी संख्या से 10,000 लाख गुना अधिक होगी।
- न्यूट्रिनो का कोई विद्युतभार नहीं होता। यह केवल क्षीण अन्योन्यक्रिया और गुरुत्वाकर्षण इनमें हिस्सा लेता है। क्षीण अन्योन्यक्रिया का दायरा बहुत ही अल्प है। यह वस्तुतः किसी भी भौतिक वस्तु के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया नहीं करता, ऐसा समझ सकते हैं।
- अधिकतर ब्रह्माण्डीय न्यूट्रिनोज किसी तारे या पिंड द्वारा उत्सर्जित कण नहीं हैं। वे प्रोटॉन, इलेक्ट्रॉन आदि के साथ कोई अंदाज़न 15 अरब साल पहले उत्पन्न कण हैं। ऐसा अनुमान है कि न्यूट्रिनो की उत्पत्ति महाविस्फोट के 10^{-14} सेकंड बाद ही होनी चाहिए।
- क्षीण नाभिक बल का वाहक कण W^{--} भारी होने से जल्दी ही इसका क्षय हो जाता है। इस क्षय में अगर इलेक्ट्रॉन और न्यूट्रिनो मिलता है तो हम उसे V_e इलेक्ट्रॉन-न्यूट्रिनो कहेंगे। अगर म्यूऑन और न्यूट्रिनो मिलता है तो म्यूऑन-न्यूट्रिनो कहेंगे आदि। V_e , V_m , V_t इनके द्रव्यमान अलग-अलग होते हैं। 1956 में खोजा गया न्यूट्रिनो V_e था 1960 V_m खोजा गया और उसके लिए 1988 में Leon M. Laderman, Melvin Schwartz और Jack Steinberger इन्हें नोबेल पुरस्कार दिया गया। ताऊ न्यूट्रिनो का पता वर्ष 2000 में चला।

- न्यूट्रिनो पर विद्युतभार न होने से, इलेक्ट्रॉन-पॉजिट्रॉन की तरह कण-प्रतिकण की जोड़ी नहीं मिलती। लेकिन प्रत्येक कण का प्रतिकण तो मिलता ही है। तो क्या न्यूट्रिनो अपना ही प्रतिकण है?
- न्यूट्रिनो-प्रतिन्यूट्रिनो के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार के न्यूट्रिनो का भी दावा किया गया है। लेकिन एक विचार यह भी है कि न्यूट्रिनो यह शुद्ध कण नहीं है या उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है। वह अन्य-अन्य स्थितियों में दोलायमान (Oscillate) होता रहता है और भिन्न कण बन जाता है।
- द्रव्यमान शून्य या शून्य के करीब होकर भी वह स्वांग परिभ्रमण करता है।
- न्यूट्रिनो अपना Flavour बदल लेते हैं। V_e यह V_m और V_t में बदल जाते हैं।
- बीटा क्षय: कार्बन¹⁴(6प्रोटॉन+8न्यूट्रॉन) = नैट्रोजन¹⁴(7प्रोटॉन+7न्यूट्रॉन) + इलेक्ट्रॉन + प्रति न्यूट्रिनो।

$$: \text{कार्बन}^{10}(6\text{प्रोटॉन}+4\text{न्यूट्रॉन}) = \text{बोरॉन}^{10}(5\text{प्रोटॉन}+5\text{न्यूट्रॉन}) + \text{न्यूट्रिनो} + \text{पॉजिट्रॉन} |$$

इस क्षय में लेप्टॉन कण या उसका प्रतिकण + न्यूट्रिनो मिलता है।

मूलभूत कणिका का स्पिन

स्पिन का अर्थ है गिरकी या परिवलन। लेकिन हमारे जीवन में हम जिसे गिरकी के रूप में जानते हैं, उसमें और इस स्पिन में बड़ा अंतर है। हम 360° में से एक गिरकी लेने पर अपनी पूर्वस्थिति में आते हैं। लेकिन सभी मूलकणों के संदर्भ में यह बात सत नहीं है। हम मूलकणों को दो वर्गों में बांट सकते हैं।

- १) फर्मिऑन्स : प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि। दुनिया की सारी चीजें इन्हीं से बनी हैं।
- २) बोसॉन्स : फर्मिऑन के बीच अन्योन्यक्रिया को करवाने वाले कण। उदा. विद्युत चुंबकीय बलों का वाहक कण फोटॉन। आदि।

उपरोक्त दोनों में जो अंतर है वह यह कि फर्मिऑन का स्पिन अपूर्णाक में होता है- ($\frac{1}{2}h$, $\frac{3}{2}h$ आदि) तो बोसॉन्स का स्पिन पूर्णाक - 0, 1, 2 आदि।

हम हमारे आम जीवन में जिसे स्पिन के तौर पर पहचानते हैं उसके परिप्रेक्ष्य में अपूर्णाक में स्पिन या एक से ज्यादा पूर्णाक में स्पिन समझने में हमें दिक्कत होती है। मूलकण का कितनी बार परिवर्तन करने के या होने के बाद वह अपनी मूल स्थिति प्राप्त करता है, इसपर उसका स्पिन निर्भर होता है। इसका स्पष्टीकरण हॉकिंग्स ने इस प्रकार दिया—

“ पत्तों की गड़ड़ी में से इक्का सामने रखिए। वह 360° से घूमने के बाद अपनी मूल स्थिति प्राप्त करेगा। अर्थात् इक्के के लिए स्पिन की कीमत 1 होगी। अब रानी का पत्ता सामने रखिए। पत्ते पर राजा/रानी का चित्र दोहरा होता है। रानी का पत्ता केवल 180° से घूमने पर ही अपनी मूल स्थिति प्राप्त कर लेगा। अर्थात् रानी के पत्ते के लिए स्पिन की कीमत 2 होगी। अर्थात् जितने स्पिन अधिक उतने कम कोन में से वस्तु घूमने के बाद, वह अपनी मूल स्थिति प्राप्त करेगी। इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन आदि मूल कणों का स्पिन $1/2$ है। अर्थात् ये कण दो बार 360° में से घूमने के बाद अपनी मूल स्थिति प्राप्त करेंगे। उलट फोटॉन, गैव्हिटॉन आदि कणों का स्पिन एक है। इसका अर्थ हुआ उनको अपनी मूल स्थिति प्राप्त करने के लिए, 360° से एक ही बार घूमना काफी होगा।”

संक्षेप में, बोसॉन कण अपनी मूल स्थिति 360° में से स्वांग भ्रमण करने के बाद प्राप्त करते हैं। लेकिन फर्मिऑन्स यह विचित्र कण हैं। 360° में से घूमने के बाद भी वे अपने मूल स्थिति में नहीं लौटते। मूल स्थिति में आने के लिए उन्हें और एक पूरा स्वांग भ्रमण करना है।

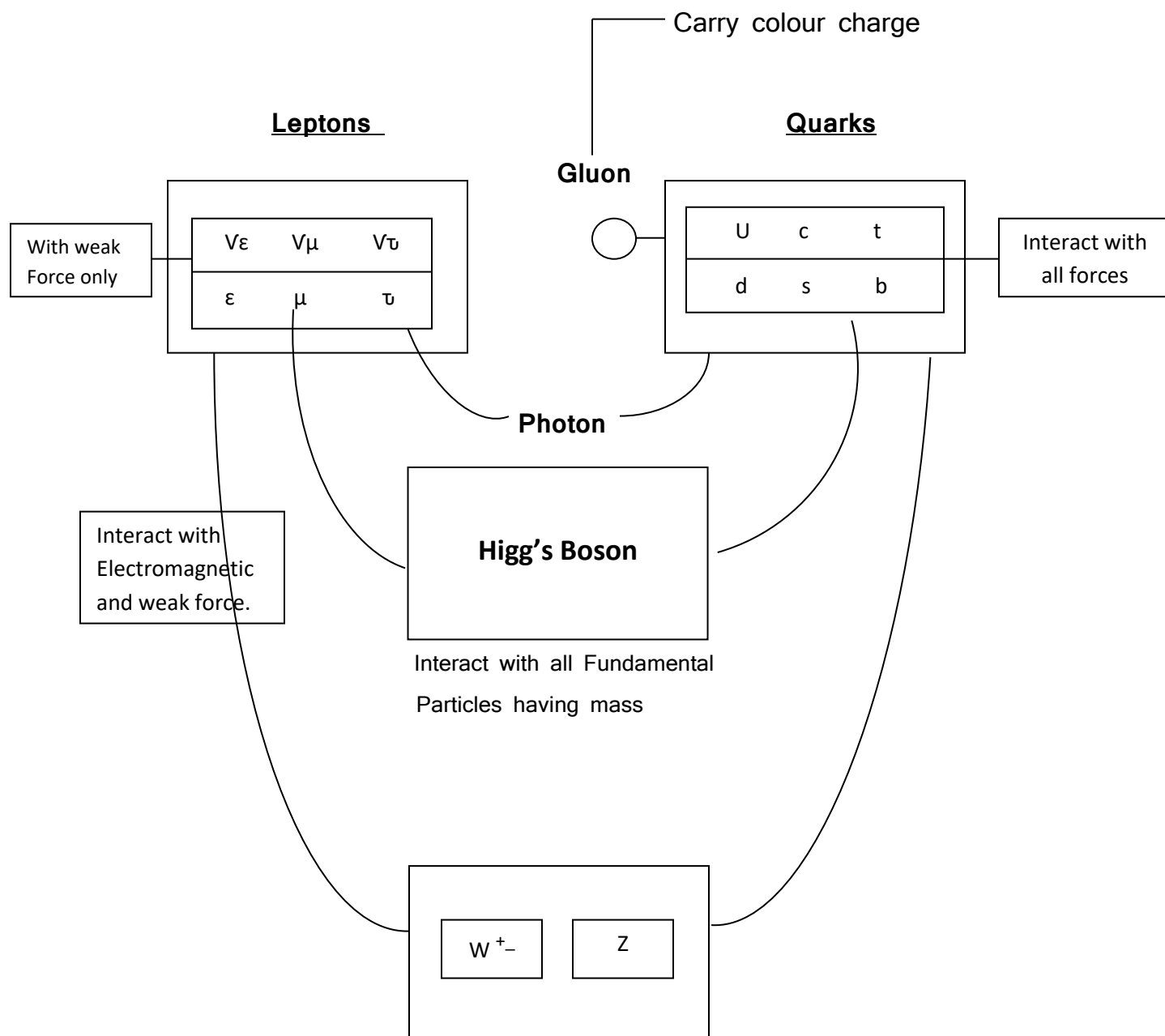
- स्वांग भ्रमण का नियम सभी कणों पर लागू है।
- स्वांग भ्रमण की दिशा बदली नहीं जा सकती। वह जिस अक्ष के गिर्द स्वांग भ्रमण करता है, उस अक्ष की दिशा बदली जा सकती है।
- लेकिन क्वांटम यांत्रिकी हमें बताती है कि मूलभूत कणों का कोई सुनिश्चित अक्ष नहीं होता।
- स्वांग भ्रमण के मापन का एकक $\hbar = h/2\pi$ ($\hbar$ —प्लैंक स्थिरांक)

आभासी कण -

- इनका जीवनकाल बहुत ही अल्प होता है।
- इसका वास्तविक कणों के समान द्रव्यमान नहीं होता।

- अनिश्चितता सिद्धान्त के अनुसार इसका द्रव्यमान कितना भी हो सकता है।

mass →	$\approx 2.3 \text{ MeV}/c^2$	$\approx 1.275 \text{ GeV}/c^2$	$\approx 173.07 \text{ GeV}/c^2$	0	$\approx 126 \text{ GeV}/c^2$
charge →	$2/3$	$2/3$	$2/3$	0	0
spin →	$1/2$	$1/2$	$1/2$	1	0
	u up	c charm	t top	g gluon	H Higgs boson
QUARKS	$\approx 4.8 \text{ MeV}/c^2$ $-1/3$ $1/2$	$\approx 95 \text{ MeV}/c^2$ $-1/3$ $1/2$	$\approx 4.18 \text{ GeV}/c^2$ $-1/3$ $1/2$	0 0 1	
	d down	s strange	b bottom	γ photon	
	$0.511 \text{ MeV}/c^2$ -1 $1/2$	$105.7 \text{ MeV}/c^2$ -1 $1/2$	$1.777 \text{ GeV}/c^2$ -1 $1/2$	$91.2 \text{ GeV}/c^2$ 0 1	
	e electron	μ muon	τ tau	Z Z boson	
LEPTONS	$< 2.2 \text{ eV}/c^2$ 0 $1/2$	$< 0.17 \text{ MeV}/c^2$ 0 $1/2$	$< 15.5 \text{ MeV}/c^2$ 0 $1/2$	$80.4 \text{ GeV}/c^2$ ± 1 1	
	ν_e electron neutrino	ν_μ muon neutrino	ν_τ tau neutrino	W W boson	GAUGE BOSONS



Feynman's Diagram

३. विद्युत और चुंबकत्व

- शुरू में विद्युत बल और चुंबकीय बल एकदूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र माने जाते थे।
- बलरेखाओं की अवधारणा, क्षेत्र संकल्पना पर आधारित है। विद्युत आवेश से शुरू होने वाली ये बलरेखाएं सभी दिशाओं में फैलती हैं। हर बिंदु पर विद्युत बल की क्रिया की दिशा ये रेखाएं व्यक्त करती हैं। लेकिन चुंबक के लिए ये बंद स्वरूप की होती हैं। ऐसा गृहित लिया जाता है कि वे उत्तर ध्रुव से शुरू होकर दक्षिण ध्रुव में जा मिलती हैं।
- क्षेत्र तीव्रता, यह बल की वह मात्रा है जिससे इकाई आवेश पर बल कार्य करता है।
- आवेश वह बल है, जिससे क्षेत्र, पिंड पर कार्य करता है। या यही आवेश, पिंडों की क्षेत्र उत्पन्न करने की क्षमता का मापन भी है।
- कुलम्ब ने चुंबकों के बीच की अन्योन्यक्रिया पर अनुसन्धान के दरम्यान पाया कि इसके नियम भी, दो बिंदु आवेशों की अन्योन्यक्रिया जैसे ही हैं।

स्थिर विद्युत, विद्युत धारा और चुंबकत्व

- 1820 में कोपेनहेगन में ख्रिश्चियन आरस्ट्रेड ने प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया कि विद्युत और चुंबकीय बलों में आपसी संबंध है। --जब विद्युत परिपथ (Circuit) बंद या खोला जाता है, पास रखी चुंबक सुई में कंपन होता है।
- फ्रेंच वैज्ञानिक अँम्पियर ने पाया कि विद्युत और चुंबकीय बलों की आपसी क्रिया-प्रतिक्रिया तभी होती है जब विद्युत का रूप प्रवाहित धारा का होता है। स्थिर रूप की विद्युत (Static Electricity) यह परिणाम उत्पन्न नहीं करती, जबकि दोनों ढंग की विद्युत, विद्युत क्षेत्र उत्पन्न करती हैं तो हिलता विद्युत आवेश, चुंबक क्षेत्र उत्पन्न करता है।
- बाद में विद्युत और चुंबकत्व एकदूसरे के साथ इतने घुलमिल गये कि एक नयी विज्ञानशाखा 'विद्युत चुंबकत्व' अस्तित्व में आयी।
- स्थिर विद्युत आवेश(Charge) जो स्थिर विद्युत प्रणाली का एकक(यूनिट) है और विद्युत चुंबकीय प्रणाली का एकक इनका अनुपात स्थिर है। इस विद्युत चुंबकीय स्थिरांक का आयाम गति है तथा कीमत प्रकाश की निर्वात में गति के बराबर है ।

चुंबक बल और विद्युत बल में अंतर

- विद्युत आकर्षण/ विकर्षण बल, गुरुत्वाकर्षण बल की तरह केंद्रीकृत स्वरूप का है तो गतिमान कण पर कार्य कर रहे चुंबक बल की दिशा, कण की हिलने की दिशा के लम्ब दिशा में होती है।
- स्थिर विद्युत आवेश विद्युत क्षेत्र उत्पन्न करते हैं तो गतिशील आवेश चुंबकीय क्षेत्र को समय के साथ बदलता चुंबक क्षेत्र अपने गिर्द विद्युत निर्मिति करता है।
- विद्युत चुंबकीय प्रेरण (इंडक्शन) की खोज 1831 में हुई। विद्युत चुंबकीय सिद्धान्त के मूलभूत संकल्पनाओं का प्रणेता फॅरेडे को ही माना जाता है। ‘ Electro Magnetic Induction ‘ यह नाम फॅरेडे ने ही सुझाया था।
- वस्तुतः इन दो क्षेत्रों की स्वतंत्र सत्ताएं मानने के स्थान पर उन्हें एक ही सत्ता की भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियाँ मानना अधिक तर्कसंगत होगा।
- आंदोलित विद्युत आवेश, या जिनकी गति में समय के साथ परिवर्तन होता है, या जो त्वरण के प्रभावांतर्गत है, विद्युत चुंबकीय तरंगें प्रसृत करते हैं। यहाँ त्वरण (Acceleration) उनकी उत्पत्ति के लिए आवश्यक शर्त है। विद्युत चुंबकीय क्षेत्र, उसकी गति में एकाएक परिवर्तन होने पर भी (न केवल आंदोलित अवस्था में) विद्युत चुंबकीय तरंगें उत्पन्न करता है।
- मैक्सवेल सिद्धान्त जिसकी पुष्टि हर्ट्ज़ द्वारा की गयी : प्रत्यावर्ति विद्युत प्रवाह, विद्युत चुंबकीय तरंगों का प्रेरण(Induction) करता है।
- बलरेखाओं की कल्पना फॅरेडे ने रखी।
- लेकिन इन कल्पनाओं को परिमाणात्मक रूप में प्रस्तुत मैक्सवेल ने किया। उन्होंने विद्युत चुंबकीय क्षेत्र के समीकरणों की प्रणाली प्रस्तुत की। विद्युत चुंबकत्व के नियमों को गणितीय सूत्र के रूप में सूत्रबद्ध किया। लेकिन दोनों का प्रयत्न तथा उन्होंने दिया स्पष्टीकरण यांत्रिक स्वरूप का ही था। पूरे अंतराल को एक काल्पनिक ‘ ईथर ‘ नामक माध्यम द्वारा व्यापने तथा विद्युत चुंबकीय संवृत्ति को इसके यांत्रिक अंतरण तथा यांत्रिक तनावों के रूप में घटाने का प्रयत्न । आगे भले ही ईथर की कल्पना गलत सिद्ध हुई। फिर भी उससे मैक्सवेल के गणितीय प्रस्तुति की कीमत कम नहीं हुई।

- मैक्सवेल ने अपनी समीकरणों के आधार पर यह घोषित कर दिया कि प्रकाश यह विद्युत चुंबकीय तरंगें हैं। उन्होंने सैद्धान्तिक रूप से यह भी सिद्ध किया कि विद्युत चुंबकीय अन्योन्यक्रिया का संप्रेषण सान्त गति से होता है जो प्रकाश की निर्वात में गति है। (यही प्रकृति में संभवनीय महत्तम गति है।)
- सूक्ष्म स्तर पर—
अणुओं के क्रियाकलापों और रासायनिक बलों के अंतर्गत मुख्यतः स्थिर विद्युत अन्योन्यक्रिया उत्तरदायी है। यहाँ चुंबकीय बलों की खास भूमिका नहीं होती।
- प्रकृति में सभी सजीव घटक भी विद्युत चुंबकीय तरंगें उत्सर्जित करते हैं। वनस्पति और प्राणियों के शरीर कोषों के विघटन से संबंधित रासायनिक प्रक्रियाएं, अल्ट्राव्हायोलेट विकिरण के स्रोत के रूप में कार्य करती हैं। इन किरणों की खोज सोवियत वैज्ञानिक गुर्विच (Gurvich) ने की थी। इन्हें 'मेटोजेनेटिक' किरणें कहा जाता है।
- स्विडः सर्वाधिक संवेदी उपकरण : सुपर कंडक्टिंग क्वांटम इंटरफिअरिंग डिवाइस -
अत्यंत सूक्ष्म चुंबकीय क्षेत्र का मापन इस उपकरण के द्वारा किया जा सकता है। इसे -
268.8° से. या 4.2 केल्विन तापमान पर रखना आवश्यक है। इसमें क्वांटम यांत्रिकी के तत्वों का उपयोग किया गया है। वह बाह्य चुंबकीय क्षेत्रों के लिए संवेदनशील है। आज उपलब्ध सभी साधनों में यह सबसे संवेदनशील साधन है। चुंबकीय क्षेत्र का मापन 'टेस्ला' इस एकक में किया जाता है। चुंबकीय क्षेत्र रेखाएं जितनी एकदूसरे के करीब उतना चुंबकीय क्षेत्र शक्तिशाली होता है। न्यूट्रॉन चुंबकीय क्षेत्र की शक्ति 10 टेस्ला तो पृथ्वी के पृष्ठभाग पर विद्यमान चुंबक क्षेत्र केवल 10^{-4} टेस्ला होता है। इस उपकरण से 10^{-15} टेस्ला इतने सूक्ष्म चुंबकीय क्षेत्र का मापन किया जा सकता है।
- क्वांटम यांत्रिकी के अनुसार चुंबकीय क्षेत्र सलग नहीं होता तो पुंजात्मक होता है। चुंबकीय क्षेत्र के पुंजों को 'फ्लक्सॉन' यह नाम दिया गया है।

४. प्रकृति के मूलभूत बल

मनुष्य बहुत पहले से जानता है कि सृष्टि की सभी वस्तुएं एकदूसरे पर प्रभाव डालती हैं। लेकिन सदियों तक यह विवाद का विषय रहा -

- कि क्या एकदूसरे से दूरी पर स्थित पिंड, एकदूसरे पर प्रभाव डाल सकते हैं?
- क्या यह प्रभाव बिना किसी माध्यम के, खाली अंतराल से होते हुए अपना कार्य करता है?
- क्या इस प्रभाव के वाहक के तौर पर किसी माध्यम की आवश्यकता है ?
- क्या यह प्रभाव तत्क्षण होता है या सीमित गति से ?
- इतिहास में एपिक्युरस का ऐसा विचार था कि किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं।
- तो लम्बी दूरी के प्रभाव (Long Range Interaction) की कल्पना को सर्वप्रथम 'कोटेश (Cotes-जो केंब्रिज में न्यूटन के सहकारी थे) ने प्रस्तुत किया, ऐसा माना जाता है।
- भौतिक वस्तु की खंडित रवेदार (Grainy) रचना का अर्थ है, भौतिक वस्तु में सातत्य नहीं है।

शुरू का 'विद्युत चुंबकीय तरंग यात्रा' का सिद्धान्त यह प्रतिपादित करता है कि तरंग, माध्यम के आंदोलन रूपी हलचल द्वारा आगे बढ़ती है। माध्यम का हर बिंदु आंदोलित होता है। यह प्रभाव केवल लगकर स्थित कण या बिंदु पर अंतरित होता है। प्रभाव, लम्बी दूरी के स्थान पर, करीबी बिंदु पर अंतरित होता है। (अर्थात् माध्यम की आवश्यकता है ।) वह भी समय के सान्त अंतराल में। जब आइन्स्टाइन द्वारा यह प्रतिपादित किया गया कि महत्तम गति प्रकाश की है, तो अत्यल्प दायरे में अंतरण का सिद्धान्त तो स्थापित हुआ। एककालिकता का कोई भौतिक अर्थ नहीं रहा।

शुरू में माध्यम के रूप में ईथर की कल्पना की गयी लेकिन वह बाद में अवास्तविक सिद्ध हुई।

- तो फिर माध्यम के स्थान पर 'क्षेत्र' की कल्पना की गयी। क्षेत्र को बलरेखाओं द्वारा दिखाया जाता था। न्यूटन की गतिकी में "क्षेत्र भौतिक वस्तु का एक रूप है जिसकी अभीलाक्षणिकता सातत्य है और जो शून्य विराम द्रव्यमान से युक्त है "

चार बल

१९२०-३० तक केवल दो ही मूलभूत बल ज्ञात थे। गुरुत्वाकर्षण और विद्युत चुंबकीय बल। लेकिन १९७० आते-आते इनकी संख्या चार हो गयी। प्रबल और क्षीण अन्योन्यक्रियाओं का अन्तर्भाव हुआ। हम दावे के साथ नहीं कह सकते कि केवल इन्हीं चार बलों का अस्तित्व प्रकृति में है। हो सकता है, भविष्य में इस संख्या में वृद्धि हो। (अब ऐसा दावा किया जाने लगा है कि हंगेरीयन वैज्ञानिकों का प्रकृति के पांचवें बल के साथ सामना हुआ है। इसके वाहक बोसॉन को ' X_{17} ' नाम दिया गया है चूंकि इसका द्रव्यमान 17 इलेक्ट्रॉन वोल्ट है। लेकिन इसकी अधिकृत घोषणा नहीं हुई है ।)

लेकिन हम इतना कह सकते हैं कि सारी दुनिया मूलभूत कणों से बनी हुई है। इन कणों के बीच अन्योन्यक्रियाओं के नियम अंततः ' प्राकृतिक बलों ' का निर्धारण करते हैं।

प्रबल नाभिकीय बल

स्थिर अणु में उसके घटक मूलद्रव्यों के परमाणु लगातार अपने इलेक्ट्रॉन्स की अदलाबदली करते रहते हैं। परिणामतः वे एकत्र बंधे रहते हैं । इसेही ' विनिमय बल ' कहते हैं। (विद्युत बल का कारण नाभिक के चारों ओर इलेक्ट्रॉन्स का घूमना है)

- प्रोटॉन कोई गणितीय बिंदु नहीं है। वह अंतराल में फैला हुआ है। उसका प्रभाव क्षेत्र 10^{-13} सें.मी. से भी कम होता है।
- सवाल पैदा हुआ कि अणुकेंद्र में समान विद्युत भार वाले प्रोटॉन एकदूसरे को विकर्षित क्यों नहीं करते? एकत्र रहते कैसे हैं?
- १९३४ में युकावा ने इनको एकत्र रखने वाले 'प्रबल नाभिकीय बल' का अनुमान प्रस्तुत किया था। यहाँ प्रोटॉन-प्रोटॉन, प्रोटॉन-न्यूट्रॉन, न्यूट्रॉन-न्यूट्रॉन इनके बीच मेसॉन नामक कण के आदान-प्रदान का परिणाम ही प्रबल अन्योन्यक्रिया है। बाद में इसें ही पिऑन कहा गया ।
- अब ज्ञात प्राथमिक कणों की संख्या 300 के ऊपर हो गयी है। वैज्ञानिक एल्. ओकून ने उन्हें नाम दिया है हैड्रॉन। वे बहुत ही अल्पजीवी होते हैं। अधिकतर प्रबल अन्योन्यक्रिया में

हिस्सा लेते हैं। हैड्रॉन का गठन और छोटे घटक क्वार्कस् द्वारा होता है यह बात 1964 में गेल मान द्वारा सुझायी गयी। क्वार्कस् के आधार पर रचे गये प्रबल अन्योन्यक्रिया के तंत्र को ' क्वांटम क्रोमोडायनामिक्स 'नाम दिया गया है।

- हेइन्सेनबर्ग ऊर्जा अनिश्चितता का संबंध सूत्र :- $\Delta t \propto h / m_{\pi} c^2$ (प्लैंक स्थिरांक /पायमेसॉन या पियॉन का द्रव्यमान $\times$ प्रकाशगति²)
(पारंपरिक अर्थ में ऊर्जा के अविनाशी होने के नियम का उलंघन न हो इसलिए पियॉन के उस कार्यकाल को लेंगे जिसमें ऊर्जा अनिश्चित रूप में कार्यरत रहती है ।)

$$\Delta t = 10^{-23} \text{ सेकंड (पिऑन का कार्यकाल)}$$

- पिऑन और फोटॉन में अंतर : - फोटॉन अपनी ऊर्जा बदलते रहते हैं। वे अपनी ऊर्जा अन्य कणों में वितरित कर, पूरी तरह लुप्त भी होते हैं। लेकिन वे कभी लघु फोटॉन में रूपान्तरित नहीं होते।

पिऑन : नाभिक में तो इनका व्यवहार स्थिर स्वरूप का होता है लेकिन मुक्तावस्था में उनका क्षय होता है और अन्य कण पैदा होते हैं।

- जो न्यूक्ली को इकट्ठा बनाए रखता है वह बल बहुत सशक्त है, उस बल की तुलना में जो इलेक्ट्रॉन्स को न्यूक्लिय के साथ जोड़े रखता है। इसी कारण परमाणु को तोड़ने की अपेक्षा न्यूक्लिय को तोड़ना बहुत कठिन है।

क्षीण नाभिकीय बल

१९६७ से पहले तक इस बल को अच्छी तरह नहीं समझा गया था। इम्पीरियल कॉलेज लन्दन के अब्दुस्सलाम तथा हार्वर्ड के स्टीवेन वाइनबर्ग, दोनों ने क्षीण अन्योन्यक्रिया को विद्युत चुंबकीय बल के साथ एकीकृत किया जा सकता है, यह दिखा दिया। यह उसी तरह है जैसा सौ साल पहले मैक्सवेल ने विद्युत और चुंबकत्व को एकीकृत कर दिया था। क्षीण बल के वाहक के रूप में उन्होंने एक स्पिन वाले तीन कणों को अपने सिद्धान्त द्वारा प्रस्तुत किया -- W^+ , W^- , Z^0 । इनमें से प्रत्येक का द्रव्यमान लगभग 100 GeV या एक अरब इलेक्ट्रॉन वोल्ट होता है। इससे भी काफी अधिक ऊर्जाओं पर तीनों नये कण तथा फोटॉन सभी एक तरह का व्यवहार करेंगे। पर कम ऊर्जाओं पर, जो अधिकांश सामान्य स्थितियों में पायी जाती हैं, कणों के बीच यह सममिति टूट जाती है तथा ये कण अधिक द्रव्यमान प्राप्त कर लेते हैं। इस कारण उनके

बल का प्रभाव क्षेत्र अत्यधिक कम दूरी तक सीमित हो जाता है। उच्च ऊर्जा पर यह बल दृढ़ हो जाता है। (उच्च ऊर्जा पर प्रबल नाभिकीय बल की शक्ति बहुत कम हो जाती होगी। विद्युत चुंबकीय बल दृढ़ होता है।)

किसी अत्यधिक ऊर्जा पर, जिसे महाएकीकरण ऊर्जा कहा जाए, इन सभी तीनों बलों की शक्ति एकसी होगी और इसलिए ये किसी एक अकेले बल के विभिन्न स्वरूप हो सकते हैं। महाएकीकरण ऊर्जा का मान बहुत अच्छी तरह तो ज्ञात नहीं। परंतु संभवतः यह कम से कम 246 GeV होगा। 10^{16} GeV ऊर्जा स्तर पर चारों बलों का एकीकरण होना चाहिए।

ये तीनों बल या तो कम दूरियों तक प्रभावी रहते हैं। तथा कभी आकर्षी तो कभी प्रतिकर्षी हो जाते हैं। अतः उनमें एकदूसरे को निरस्त करने की प्रवृत्ति होती है।

पदार्थ कणों के बीच विनियमित बल-वाहक कणों को वर्चुअल या आभासी कहा जाता है। उनका अस्तित्व प्रेक्षित नहीं किया जा सकता लेकिन प्रभाव दर्ज किया जा सकता है।

- क्षीण नाभिकीय बल की निम्न प्रक्रियाओं में भूमिका होती है -
 - १) मूलद्रव्य का रेडिओअक्टिव क्षय २) क्वार्क की खोज के बाद यह भी सामने आया कि एक फ्लेवरवाले क्वार्क का दूसरे फ्लेवरवाले क्वार्क में रूपान्तर के लिए यह बल उत्तरदायी है। इसमें W और Z इन बोसॉन कणों का आदान-प्रदान होता है।
 - २) यह बल तारों और सूर्य में नाभिकीय संगलन संभव बनाता है, चूंकि यह संभव बनाता है हैड्रोजन के समस्थ ड्यूटेरियम के उत्पन्न होने को और उनके संगलित होने को।
 - ३) परमाणु के नाभिक के अंदर प्रोटॉन और न्यूट्रॉन के अतिरिक्त और भी अतिसूक्ष्म कणों की खोज हुई है। इनमें कई कण नाभिक के भीतर एकाएक जन्म लेते हैं, क्षणांश के लिए नाभिक के भीतर ही यात्रा करते हैं और अन्य कणों में रूपान्तरित हो जाते हैं। इसके लिए यही बल कारण है।
- किरणोत्सर्जन में कई बार न्यूट्रॉन का प्रोटॉन में रूपान्तर होकर इलेक्ट्रॉन और न्यूट्रिनो ऐसे दो कण उत्सर्जित होते हैं।
- इसका प्रभाव क्षेत्र 10^{-16} सें.मी.के अंदर होता है।
- लेकिन गुरुत्व की तुलना में यह बल काफी सशक्त है।

- इस बल के वाहक बोसॉन कणों का वस्तुमान है। अन्य वाहकों का वस्तुमान शून्य होता है।

गुरुत्वाकर्षण

- यह द्रव्यमान वाले किसी भी दो वस्तुओं की एकदूसरे को आकर्षित करने की प्रवृत्ति है। यह स्थिर वस्तुमान वाले और केवल ऊर्जाधारी जैसे फोटॉन दोनों पर प्रभाव डालता है।
- गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव की मर्यादा लगातार विस्तारित होते हुए अनंत तक हो सकती है।
- यह सदैव आकर्षी होता है। यह इस बात की ओर इंगित करता है कि इसके सभी प्रभाव संयुक्त रूप से जुड़ जाते हैं। इसी कारण पदार्थ कणों की पर्याप्त रूप में अधिक मात्रा के लिए गुरुत्व बल अन्य सभी बलों पर अपना प्रभुत्व रख सकता है। इसी कारण यह बल ही ब्रह्माण्ड के क्रमिक विकास को सुनिश्चित करता है।
- मूलतः गुरुत्व क्षेत्र की मध्यस्थता से दो वस्तुओं में होने वाली अन्योन्यक्रिया यह गुरुत्वाकर्षण है। अन्योन्यक्रिया की विशेषता होती है ऊर्जा। यह स्थितिजन्य ऊर्जा है जो कार्य कर सकती है। अर्थात् इन वस्तुओं को गत्यात्मक अवस्था में लाकर ही वह गतिजन्य ऊर्जा में रूपांतरित हो जाती है।
- गुरुत्व क्षेत्र अपने आपमें, गुरुत्व तरंगों के रूप में ऊर्जायुक्त हो सकता है। यह भी गतिजन्य ऊर्जा ही होगी चूंकि यहाँ तरंग का या गुरुत्व क्षेत्र का रूप गत्यात्मक है। लेकिन क्षेत्र यह उसमें अंतर्भूत ऊर्जा से अधिक है। गुरुत्व क्षेत्र का अपना, ऊर्जा के साथ-साथ आवेग और कोणीय आवेग भी होता है।
- सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त में गुरुत्व को बल नहीं समझा जाता तो वस्तु के द्रव्यमान के कारण अंतराल-काल ने धारण की हुई वक्रता माना जाता है। सो, इसे बल न मानने के कारण ऐसा मानना होगा कि वह न आकर्षित करता है न प्रतिसारित।
(लेकिन वायु को भी वस्तुमान है अर्थात् गुरुत्व है। तब ग्रह के आकार का पिंड गुरुत्व के कारण गोल आकार ग्रहण कर लेता है)
- गुरुत्व बल का वाहक कण ' ग्रेविटॉन ' का द्रव्यमान 6×10^{-32} इलेक्ट्रॉन वोल्ट से कम होना चाहिए।

महाविस्फोट और बलों का विलगीकरण

लगभग 13.77 अरब साल पहले महाविस्फोट होकर ब्रह्माण्ड का जन्म हुआ ऐसा माना जाता है। विश्व के जन्म के क्षण, चारों बलों की क्षेत्र एकात्मता थी। लेकिन विश्वजन्म के बाद 10^{-43} सेकंड उलटते-उलटते ही प्रथम गुरुत्वाकर्षण बल अलग हुआ। विश्व की आयु 10^{-34} सेकंड थी तब सशक्त बल अलग हुआ। अन्त में आयु के 10^{-12} से. के समय सभी चारों बल एकदूसरे से अलग हुये। आज सारे ब्रह्माण्ड में गुरुत्वाकर्षण, सशक्त नाभिकीय बल, क्षीण नाभिकीय बल, और विद्युत चुंबकीय बल ऐसे चार स्वतंत्र बल कार्यरत हैं ।

थेअरी ऑफ एव्हरीथिंग-

चार प्राकृतिक बल अगर मूलतः एकत्र थे तो उनमें वह एकता अब भी स्थापित होनी चाहिए। विद्युत चुंबकीय, गुरुत्वाकर्षण, सशक्त तथा क्षीण बल इन चारों की एकात्मता साध्य करने के लिए आइन्स्टाइन ने 30 वर्षों तक मेहनत की। लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। उन्होंने इसे “ युनिफाइड फिल्ड थेअरी “ नाम दिया था। अब इसे ‘ थेअरी ऑफ एव्हरीथिंग ‘ के अंतर्गत प्राप्त करने का प्रयास जारी है।

१९२० के दशक में क्वांटम यांत्रिकी के सिद्धान्तों की खोज हुई। सूक्ष्म जगत के राज धीरे-धीरे खुलने लगे। क्वांटम यांत्रिकी ने ही यह उद्धृत किया कि बोसॉन नाम के वर्ग के कणों के आदान-प्रदान से बलों की निर्मिति होती है। लेकिन यह भी स्पष्ट हुआ कि क्वांटम यांत्रिकी के नियम केवल सूक्ष्म जगत के लिए ही मर्यादित हैं।

उलट आइन्स्टाइन का सापेक्षता सिद्धान्त सारे विशाल जगत को स्पष्ट करता है। उसी तरह गुरुत्वीय बल की संकल्पना भी क्वांटम मेकॅनिक्स के बलों की संकल्पना से भिन्न है। अवकाश-काल में आने वाले वक्रता के कारण गुरुत्व बल निष्पन्न होता है। पदार्थ का वस्तुमान जितना अधिक उतनी उसके आजुबाजू के अवकाश-काल की वक्रता अधिक। इस कारण निष्पन्न होने वाला गुरुत्व बल भी अधिक। ऐसी सापेक्षता की मीमांसा है।

लेकिन दोनों एक दूसरे के साथ जुड़ती नहीं। अर्थात् दोनों का एकीकरण बड़ा कठिन है। दूसरी ओर मूलकणों का द्वैती रूप सापेक्षता को मान्य नहीं। ऐसी स्थिति से बाहर आने के लिए

एक नया सिद्धान्त सामने आया। यह ' सुपर स्ट्रिंग थेअरी ' नाम से विख्यात है। थेअरी ऑफ एव्हरीथिंग और सुपर स्ट्रिंग थेअरी एक ही है।

उसी तरह विद्युत चुंबकीय, प्रबल, क्षीण इन तीनों की एकात्मता करनेवाली ' ग्रैंड युनिफिकेशन थेअरी ' है।

लेकिन क्वांटम यांत्रिकी और सापेक्षता इनको एक करनेवाला ' क्वांटम ग्रॅविटी सिद्धान्त ' अभी अपने पूर्णत्व तक नहीं पहुँचा।

सुपर स्ट्रिंग थेअरी के अनुसार -

ऊर्जा के अत्यंत सूक्ष्म स्वरूप में होने वाले तंतु (String) दस मिती (Dimention) वाले विश्व में सातत्य से स्पंदन करते रहते हैं। ये सूक्ष्म तंतू एक ही समय, अलग-अलग फ्रिक्वेंसियों में आंदोलित होते रहते हैं। प्रत्येक आंदोलन एक मूलकण प्रदर्शित करता है। सूक्ष्मतंतुओं के आंदोलन के कारण अवकाश-काल में वक्रता पैदा हो सकती है। सूक्ष्मतंतु १० मितियों में आंदोलित होते रहने पर भी छह मितियाँ हमारे लिए अदृश्य हैं। जब महाविस्फोट हुआ और विश्व का जन्म हुआ तब दस मितियों का अस्तित्व था। लेकिन उसमें स्थिरता नहीं थी। जल्दी ही मितियों के दो हिस्से हुए, चार और छह। उनमें से छह मितियाँ आत्यंतिक सूक्ष्म जगत में रह गईं। अन्य चारों का फुलाव हुआ। इस सिद्धान्त के आधार पर चार बलों की एकात्मता निम्न तरीके से साधी जाएगी --

अन्योन्यक्रिया का क्रियातंत्र

शुरू में अन्योन्यक्रिया के लिए मध्यस्थ माध्यम आवश्यक जान पड़ता था। फिर उसका स्थान क्षेत्र की अवधारणा ने लिया। अब माना जाता है कि दो कणों के बीच होने वाली अन्योन्यक्रिया यह तीसरे कण के आदान-प्रदान के माध्यम से होती है। यह तीसरा कण अन्योन्यक्रिया का वाहक है। यह पारस्परिक क्रिया जो बल उत्पन्न करेगी उसका स्वरूप क्वांटम का होगा। पहले क्रियातंत्र का स्वरूप एक आवेश से दूसरे आवेश तक किसी प्रकार की अखंड रेखाएं थीं। अब उसका स्थान क्वांटम (कण) ने ले लिया है। अर्थात् अन्योन्यक्रिया के सातत्य स्वरूप का स्थान विवक्तता ने ले लिया है। यहां हमने मध्यस्थ कण का उत्सर्जित होना कहा है।

लेकिन इस उत्सर्जन से पूर्व इन मध्यस्थ कणों का स्रोत में कहीं अस्तित्व नहीं था। वे उत्सर्जन के क्षण ही पैदा होते हैं।

- हर व्यतिक्रिया (Interaction) की विशेषता उसके प्रभावक्षेत्र की त्रिज्या है। अर्थात् दूरी, जहाँतक उसका प्रभाव अनुभव होता है। यह दूरी जितनी अधिक होगी उतना ही वाहक कण का वस्तुमान कम होगा। विद्युत चुंबकीय बल का प्रभावक्षेत्र अनंत माना जाता है। उसके वाहक कण फोटॉन का स्थिरावस्था वस्तुमान शून्य है। जबकि क्षीण अन्योन्यक्रिया का प्रभावक्षेत्र 10^{-16} cm है अर्थात् इसका वाहक बोसॉन, प्रोटॉन से लगभग 100 गुना भारी होना चाहिए। अतः उसका प्रत्यक्ष अवलोकन CERN के 540 GeV टकराव आयोजक में ही हो सका।
- फोटॉन विद्युत भार की दृष्टि से तटस्थ है। निर्बल नाभिकीय बल का सदीश बोसॉन यह विद्युतधारी होना चाहिए चूंकि रेडियो सक्रियता की क्रिया में विद्युत आवेश का अंतरण होता है।
- पारस्परिक क्रिया की तीव्रता का परिमाणात्मक निर्देशन स्थिरांक की सहायता से किया जाता है। उसे युग्मक स्थिरांक (Coupling Constant) कहते हैं। वे इस बढ़ते परिमाण में हैं—१) गुरुत्व बल २) क्षीण बल ३) विद्युत चुंबकीय बल ४) प्रबल अन्योन्यक्रिया।
- एकदूसरे पर क्रिया करनेवाले कण जब उच्च ऊर्जाधारी होते हैं तब मध्यस्थ सदीश बोसॉन और फोटॉन के निर्माण की संभावनाएं एकदूसरे से तुलना होने लायक हो जाती हैं। ये एक ही अन्योन्यक्रिया की दो संभाव्य अभिव्यक्तियाँ होनी चाहिए। लेकिन ऐसा क्या है, जिस कारण शुरु में एकीकृत सार्वभौमिक बल एक ओर तो क्षीण अन्योन्यक्रिया, जिसके प्रभाव का दायरा बहुत ही सीमित है, का रूप ले लेता है तो दूसरी ओर तत्त्वतः अनंत दायरे वाले प्रभावक्षेत्र के विद्युत चुंबकीय बल का रूप ले लेता है। यह जानने की उत्सुकता अभी भी बनी हुई है।

• बलों का एकीकरण

प्रबल अन्योन्यक्रिया का अन्य बलों के साथ एकीकरण :

महाएकीकरण सिद्धान्त

उच्च ऊर्जा के अर्थात् 10^{15} – 10^{16} GeV के स्तर पर या अत्यल्प अंतर के स्तर पर (10^{-28} cm), तीनों बलों में (गुरुत्व बल छोड़कर) कोई फर्क नहीं किया जा सकेगा। निम्न

ऊर्जा स्तर पर, एक ही मूलभूत अन्योन्यक्रिया के निर्बल, विद्युत चुंबकीय और प्रबल अन्योन्यक्रिया ऐसे भिन्न-भिन्न प्रकटीकरण होंगे। उपरोक्त ऊर्जा की तुलना में, मनुष्य द्वारा बनाये गये सबसे बड़े प्रवेगक, प्रोटॉन-प्रति प्रोटॉन टकराव आयोजक में केवल 540 GeV ऊर्जा स्तर प्राप्त किया जा सकता है। महाएकीकरण सिद्धान्त प्रोटॉन क्षय का अनुमान करता है लेकिन इसके लिए अभी तक कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ है।

- ऊर्जा के 10^{19} GeV स्तर पर गुरुत्वाकर्षण बल भी उसीमें एकीकृत हो जाएगा ऐसा अनुमान है। अर्थात् चारों बलों का एकीकरण संभव होना चाहिए। इस सिद्धान्त का आधार है, नई खोज, परम सममिति (Super Symmetry)। यह बोसॉन और फर्मिऑन कणों को एकीकृत करती है। पूर्णांक स्पिन वाले कण और अर्ध पूर्णांक स्पिन वाले कणों का एकीकरण। किसी भी प्रक्रिया में इन दोनों गुटों के क्षेत्रों का योगदान सममित (Symmetric) होता है। अतः उन्हें एकदूसरे के साथ मिलाया जा सकता है। इसे ही परम सममिति कहा गया है

- गेज क्षेत्र -

भिन्न-भिन्न अन्योन्यक्रियाओं के मध्यस्थ की भूमिका निभाने वाले कणों में जो साम्य है, उस आधार पर बलों के एकीकरण के प्रयास किये जाते रहे। हर्मन वेईल (Herman Weyl) इन्होंने बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में सर्वप्रथम गुरुत्वाकर्षण और विद्युत चुंबकीय बल, इनका एकीकरण करने का असफल प्रयास किया था। इसके लिए उन्होंने जिस तत्व का उपयोग किया उसे ' गेज सिद्धान्त ' (Gauge Principle) कहा। अधुनातन अवधारणा के अनुसार गेज क्षेत्र सभी तरह की पारस्परिक क्रियाओं में मध्यस्थता की भूमिका अदा करते हैं। इन क्षेत्रों के क्वांटा 'गेज कणिकाएँ' हैं। यह प्राथमिक कणिकाओं का ही एक वर्ग है। इन कणिकाओं का मुख्य कार्य अन्य कणों के बीच बलों का आदान-प्रदान है। प्रबल, विद्युत चुंबकीय, निर्बल और गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र इस गुट के निम्न कणिकाओं से संबंधित हैं—

१) ग्लुऑन्स २) फोटॉन्स ३) मध्यस्थ W^+ , W^- , Z^0 बोसॉन्स तथा ४) ग्रॅविटॉन्स ।

गेज क्षेत्रों के गुणधर्म क्वार्क या इलेक्ट्रॉन जैसे, सारे भौतिक को निर्माण करने वाले कणों के क्षेत्रों के गुणधर्मों से मूलतः भिन्न होते हैं।

Fundamental Force Particles

Force	Particles Experiencing	Force Carrier Particle	Range	Relative Strength*
Gravity acts between objects with mass	all particles with mass	graviton (not yet observed)	infinity	much weaker ↓ much stronger
Weak Force governs particle decay	quarks and leptons	W^+, W^-, Z^0 (W and Z)	short range	
Electromagnetism acts between electrically charged particles	electrically charged	γ (photon)	infinity	
Strong Force** binds quarks together	quarks and gluons	g (gluon)	short range	

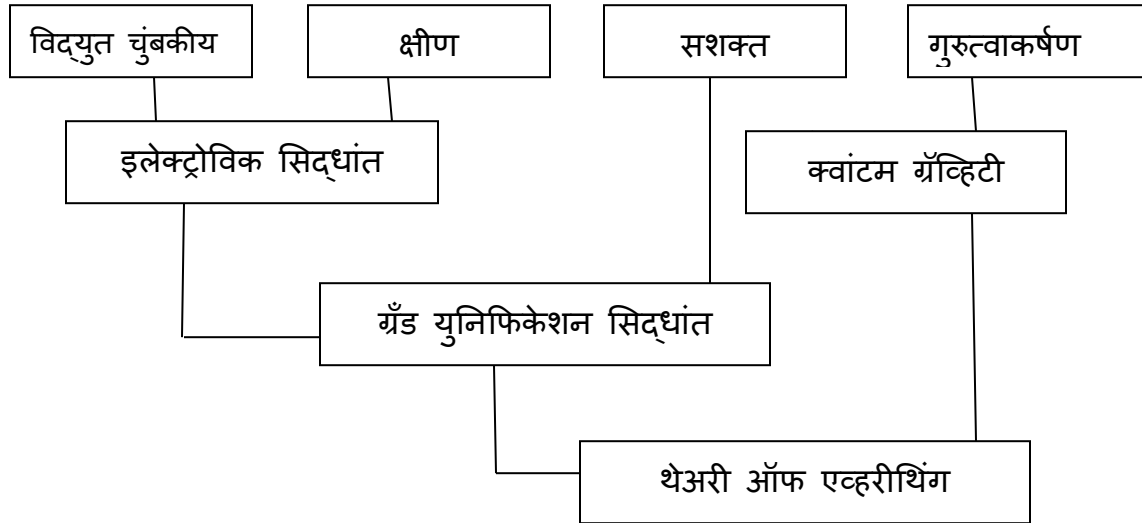
Fundamental Forces

Strong	Force which holds nucleus together	Strength 1	Range (m) 10^{-15} (diameter of a medium sized nucleus)	Particle gluons. π (nucleons)
Electro-magnetic		Strength $\frac{1}{137}$	Range (m) Infinite	Particle photon mass = 0 spin = 1
Weak	neutrino interaction induces beta decay	Strength 10^{-6}	Range (m) 10^{-18} (0.1% of the diameter of a proton)	Particle Intermediate vector bosons W^+, W^-, Z^0 . mass > 80 GeV spin = 1
Gravity		Strength 6×10^{-39}	Range (m) Infinite	Particle graviton ? mass = 0 spin = 2

Table 1. Properties of the four fundamental interactions.

	Gravitation	Electromagnetic	Weak	Strong
Acts on	particles with mass and energy	particles with charge	quarks and leptons (decay)	quarks
Exchange particle	graviton (not yet observed)	photon, γ	W^+ , W^- and Z^0	gluons, g , and mesons
Exchange particle mass	massless	massless	$M_{W^+} = 80 \text{ GeV} c^{-2}$, $M_Z = 91 \text{ GeV} c^{-2}$	gluons are massless
Relative strength	negligible, predicted about 10^{-41}	$\frac{1}{137}$	10^{-6}	1
Range	∞ decreasing $\propto \frac{1}{r^2}$	∞ decreasing $\propto \frac{1}{r^2}$	10^{-18} decreasing $\propto \frac{1}{r}$	10^{-15} increasing $\propto r$

सुपर स्ट्रिंग सिद्धांत के आधार पर चार बलों की एकात्मता इस तरह साधी जाएगी-



इनमें इलेक्ट्रोविक यह विद्युत चुंबकीय बल और क्षीण नाभिकीय बल इनकी एकात्मता साध्य करने वाला सिद्धान्त सिद्ध हुआ है।

५ .प्रारण (Radiation)

ब्रह्माण्ड विषयक उत्सुकता

ब्रह्माण्ड की ओर मनुष्य काफी पहले से ही देख रहा है, कुतुहलवश। इन टिमटिमाते बिंदुओं के अलौकिक सौंदर्य ने उसे मोह भी लिया और उसमें जुजुप्सा भी जगाई कि यह सारा प्रपंच है क्या ? शुरू में उसके अवलोकन का दायरा बहुत सीमित था। सिर्फ उसकी नंगी आंखों की क्षमता इतना। लेकिन उसके कल्पना शक्ति की छलांग तो इससे कई गुना बड़ी और गतिमान थी। इसी कारण लगभग सभी प्राचीन सभ्यताओं में उपरोक्त उत्सुकता के उत्तर ढूँढने के प्रयास रूप में, मिथकों को हम पाते हैं। जहाँ कुछ चिंतकों ने, मनुष्य के लिए अनाकलनीय इस प्रपंच के चालक के रूप में ' ईश्वर ' इस संकल्पना को गढ़ लिया तो कुछ चिंतकों ने इस संकल्पना को ही अनावश्यक माना। ऋग्वेद का ही एक ऋषि कहता है कि शायद परमात्मा भी नहीं जानता कि यह सृष्टि किससे उत्पन्न हुई और किसलिए हुई?

जैसा कि ऊपर लिखा गया है, शुरू में केवल ब्रह्माण्ड से पहुँचने वाली प्रकाश किरणें ही ज्ञान का स्रोत थीं। बीसवीं सदी के मध्य से दृश्य प्रकाश के अतिरिक्त अन्य विद्युत चुंबकीय विकिरण भी (जो मनुष्य की आंखों के लिए दृश्य नहीं हैं) हमारी ज्ञानवृद्धि में, सहायक के रूप में, सेवा में उपस्थित हुए । लेकिन इसमें दिक्कत यह है कि विकिरणों का कुछ हिस्सा पृथ्वी के वातावरण द्वारा या तो अंतरिक्ष में परावर्तित कर दिया जाता है या वातावरण द्वारा सोख लिया जाता है। इस दिक्कत को दूर करने के लिए मनुष्य ने एप्रिल 1990 में एक दूरबीन ही अंतरिक्ष में स्थापित कर दी। आज तो करोड़ों / अरबों कि.मी. दूर के आकाशीय पिंड की इच्छित जानकारी प्राप्त करने, कई उपकरण बन रहे हैं।

कोई कह सकता है, उत्सुकतावश खगोलीय अनुसंधान तो अपनी जगह ठीक है। लेकिन मनुष्य जीवन से इन अंतरिक्ष पिंडों का क्या संबंध है ? इसकी क्या उपयोगिता है ? बहुत भारी उपयोगिता और संबंध है। बहुत संक्षिप्त में एक ही उदा. काफी होगा। तारों के बिना, मनुष्य की समुद्र-यात्राएं कैसी संभव होतीं ? और इन यात्राओं के सिवाय क्या मानव संस्कृति के विकास की कल्पना की जा सकती है ?

तारों की झिलमिलाहट -

हम जब भी आकाश की ओर देखते हैं तो हमें तारें झिलमिलाते हुए दिखते हैं। वे तरह-तरह के रंगों की आभाएं छिटकाते हैं। तारा जितना ही क्षितिज के निकट होता है, उसका झिलमिलाना भी उतना ही तेज होता है। इस झिलमिलाने का कारण वातावरण की उपस्थिति है। तारे से निकली किरण वातावरण से होते हुए ही हमारी आंखों तक पहुंचती है। वातावरण में हमेशा ही हवा की अपेक्षाकृत ठंडी और गर्म धाराएं और परतें होती हैं। तापमान के अनुसार उनका घनत्व भी अलग-अलग होता है। प्रकाश एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में प्रवेश करते समय, प्रकाश किरणें अपवर्तित होती हैं। उनकी प्रसरण की दिशा बदल जाती है। इस कारण धरती की सतह से ऊपर वे कहीं संकेंद्रित हो जाती हैं तो कहीं विरल। अर्थात् कभी उनका प्रकाश तेज हो जाता है तो कभी धीमा। हमारी आंखों तक पहुँचने वाली किरणें लगातार अपनी दिशाएं थोड़ी-अधिक बदलती रहती हैं। वे इधर-उधर नाचती हुई दिखती हैं। यही झिलमिलाना है। चूंकि भिन्न रंगों की किरणों का या भिन्न तरंग-लम्बाई वाली तरंगों का अपवर्तन भिन्न होता है, इसलिए अलग-अलग रंग एकसाथ तेज या क्षीण नहीं होते। इसके अतिरिक्त भी प्रकाश के और जटिल प्रभावों का योगदान हो सकता है।

ग्रहों का स्थिर प्रकाश :-

ग्रह, तारों की तुलना में हमसे कम दूरी पर हैं। अतः वे तारों की तरह बिंदुवत् न दिखते हुए, आयाम के साथ छोटी चकती के रूप में दिखते हैं। वातावरण के भिन्न घनत्व के स्तरों के या तत्सम कारणों से प्रकाश किरणों में जो विचलन होता है और जो प्रतिबिंब बनते हैं वे इन चकतियों के घेरे में ही आ जाते हैं। इस कारण परिणामी बिंब अस्थिर के स्थान पर स्थिर होता है।

तारा - मंडल :-

ये इतिहास के दरम्यान मनष्यों द्वारा भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से, तारों के बनाये काल्पनिक गुट हैं। उनमें भिन्न-भिन्न आकृतियों की कल्पना की गयी है। लेकिन 1929 में आन्तर्राष्ट्रीय खगोल युनियन ने, तारामंडलों को, उन्हें एकदूसरे से अलग करने वाले काल्पनिक विभाजकों के आधार पर, मान्यता प्रदान की है।

वर्णक्रमपट

काफी पहले से मनुष्यों को इतना पता था कि पदार्थ गर्म होने पर उससे प्रकाश निकलता है। प्रकाश का रंग और वस्तु के तापमान में रिश्ता है। सफेद प्रकाश छोड़ने वाली वस्तु वास्तव में स्पेक्ट्रम के सभी रंग छोड़ती है जो अंततः सफेद प्रकाश का आभास देते हैं। प्रिज़म से प्राप्त सप्तरंगी प्रकाश के पट्टे को ही न्यूटन ने नाम दिया था स्पेक्ट्रम(Spectrum)। वैसे स्पेक्ट्रम का अर्थ होता है भूत। (शुरू में, बारिश के बाद सुबह या श्याम में आकाश में दिखने वाले इंद्रधनुष को अलौकिक घटना ही माना जाता था।)

अगर प्रकाश के मार्ग में कोई वस्तु आई तो वह वस्तु प्रकाश का कुछ हिस्सा सोख लेती है। लेकिन वही भाग सोख लेगी जो वह गर्म होने पर छोड़ती है। ऐसी चीजें वर्णपट में रंगों के बीच काली लकीरें बना देती हैं। इससे उलट अगर उसी चीज के गर्म होने से प्रकाश निकल रहा हो तो वह खास रंग की लकीरों के रूप में दिखेगा। 1868 में सूर्यग्रहण के ऐसे ही स्पेक्ट्रोस्कोपी अध्ययन से सूर्य पर हिलियम मूलद्रव्य होने का पता चला था। उसके 26 साल बाद यह तत्व पृथ्वी पर खोजा गया।

तारों और दीर्घिकाओं से संबंधित सभी जानकारी प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन है प्रकाश किरणों का वर्णपट। 1859 में वैज्ञानिक गुस्ताव्ह किर्चोफ, इन्होंने वर्णपट से संबंधित नियम प्रस्तुत किये।

अति तेजस्वी घन या द्रव पदार्थ सभी तरह की प्रकाश तरंगें उत्सर्जित करता है और परिणामतः सलग रंगों का वर्णपट उत्पन्न होता है। अब बात उच्च तापमान वाले वायु की। यहाँ विशिष्ट ढंग की रंगीन रेखाएं वर्णपट में उभरती हैं। उसी तरह प्रकाश की एकदम सफेद किरण, तुलना में, कम तापमान के वायु में से गुजरी, तो कुछ तरंगें वह सोख लेता है और उन्हें प्रदर्शित करने वाली काली रेखाएं वर्णपट में पैदा होती हैं।

प्रत्येक मूलद्रव्य या संयुग जब वायुरूप अवस्था में होता है तो अपना खुद का एक विशिष्ट वर्णपट पैदा करता है। उसमें दिखने वाली विविध रंगों की रेखाओं की तरंग-लम्बाई अन्य किसी भी मूलद्रव्य या संयुग द्वारा दोहराई नहीं जाती। उलट यह वर्णपट उस मूलद्रव्य या संयुग का पहचान-पत्र बन जाता है।

उसी तरह वर्णपट में उभरने वाली काली रेखाएं भी उस-उस मूलद्रव्य की वैशिष्ट्यपूर्ण रेखाएं होती हैं। उदा. सोडियम यह मूलद्रव्य तप्तावस्था होता है तो वर्णपट में पीले रंग की दो रेखाएं पैदा करता है और तौलनिक दृष्टि से कम तापमान पर उसमें से शुभ्र किरण गुजरा तो उन्हीं दो रेखाओं को वह सोख लेता है। संबंधित दो काली रेखाएं वर्णपट में उपस्थित होती हैं।

सूर्य के वर्णपट में कई काली रेखाएं दिखती हैं। उन्हें ' फ्राउनहोफर रेखाएं ' कहा जाता है। सूर्य के बाहरी भाग में जो तप्त वायु होते हैं उन्होंने सोख लीं प्रकाश लहरों, काली रेखाओं के रूप में सूर्य के वर्णपट में दिखती हैं। उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य के बाह्य हिस्सों में फॉस्फोरस, लोहा, मॅग्नेशियम जैसे 35 मूलद्रव्यों का अस्तित्व है। ऐसी ही काली रेखाएं तारों के वर्णपटों में भी मिलती हैं।

स्पेक्ट्रम की संकल्पना के बाद वैज्ञानिकों ने इसका अध्ययन करने के लिए उपकरण (Spectrometer) बनाये। यह उपकरण प्रकाश का विश्लेषण कर, बता सकता है कि संबंधित वस्तु का तापमान कितना होना चाहिए। धूप के स्पेक्ट्रोस्कोपी विश्लेषण से ही पता चला था कि सूर्य की सतह का तापमान अंदाजन 6000 डिग्री सें. के दायरे में है।

आधुनिक काल में तारों और सभी ढंग के आकाशीय पिंडों के विषय की सारी जानकारी प्राप्त होने का माध्यम, उनसे हम तक पहुँचने वाले भिन्न-भिन्न विकिरणों का विश्लेषण ही है। तारों के विकिरण को वर्णक्रमपटों में वियोजित कर इनके अध्ययन की शुरुआत तो 1859 में ही हो गयी थी। वर्णक्रमपट की काली और रंगीन रेखाओं से तारों के अनेक भौतिक गुणधर्मों के विषय में जानकारी प्राप्त हो जाती है। लाखों तारों के वर्णक्रमपट प्राप्त किये गये हैं। इनका वर्गीकरण किया गया है छह वर्गों में (B,A,F,G,K,M) और दस उपवर्गों में (0 से 9)।

अधिकांश खगोलीय पिंडों में चलने वाली भौतिक प्रक्रियाओं का अध्ययन सिर्फ बाह्य सतही अभिव्यक्तियों के आधार पर ही संभव है और केवल निरीक्षणों के आधार पर ही।

पारंपरिक दूरबीन के माध्यम से किये गये प्रकाशिकीय प्रेक्षण में कठिनाई है। पृथ्वी आकाशगंगा की तश्तरी में है और हमें उसे बिंधते हुए देखना है। वहाँ की धूल और बहुत सारे वायुमेघ, तश्तरी से होते हुए पार देखने में, अंतरिक्ष से आती हुई किरणों को हमसे ओझल रखते हैं। केवल मंदाकिनीय समतल (Galactic Plane) की लम्ब दिशा में लिये गये निरीक्षण ही

विकिरण का न्यूनतम शोषण होने के कारण उपयोगी है | पराबैंगनी (Ultraviolet) विकिरण तो पूरी तरह हमारा वातावरण ही सोख लेता है।

आकाशगंगा की तश्तरी का निरीक्षण करने के लिए से.मी. और मि.मी. परास (Range) की रेडिओ तरंगें उपयोग में लायी जाती हैं। वे धूल और वायु में अवशोषित नहीं होतीं। अतः वे परिणामकारक हतियार के तौर पर उपयोग में लायी जा सकती हैं। साथ में हमें यह भी ध्यान में रखना है कि आकाशगंगा का अन्तरिक्षी माध्यम, चुंबकीय क्षेत्र भी अपने में समाये हुए हो सकता है। यह अन्तरिक्ष में बढ़ते रेडिओ तरंगों को प्रभावित कर सकता है।

फाऊनहॉफर रेखाएं :-

शुरू-शुरू में कांच के लेन्स तो उपलब्ध थे। लेकिन उनमें जो प्रतिमा मिलती थी उसकी छाया रंगीन होती थी। लेकिन जोसेफ व्हॉन फ्राउनहॉफर नामक व्यक्ति ने, सर्वप्रथम, कांच के ऐसे लेन्स बनाए जिसमें प्रतिमा साफ नजर आती थी। फाऊनहॉफर का जन्म छह मार्च 1787 के दिन बव्हेरिया प्रान्त के एक गांव में एक गरीब परिवार में हुआ था। एक बार जोसेफ ने सूर्य की किरणों को कांच की प्रिज्म में छोड़ने के बाद देखा कि वर्णपट में इंद्रधनुष्य के सात रंगों के अलावा दोनों ओर कुछ काली रेखाएं दिखाई दे रही हैं। उन्होंने इन रेखाओं की गिनती की। इतना ही नहीं तो गणितीय सूत्र के सहारे उनकी तरंग-लम्बाई भी नापी। आज रंगपट में दिखाई देने वाली काली रेखाओं को “ फ्राऊनहॉफर रेखाएं ” इस नाम से ही जाना जाता है। इन रेखाओं की खोज और उससे संबंधित अनुसंधानों के लिए जोसेफ ने अपने आपको पूरी तरह समर्पित किया। लेकिन अधिक परिश्रम के कारण उन्हें क्षयरोग की बीमारी हो गयी और केवल 39 साल की आयु में 7-6-1826 को उनकी मृत्यु हो गयी। फिर भी प्रकाश विकिरण सिद्धान्त के जनक के रूप में वे अपनी स्मृति छोड़ गये।

उपरोक्त काली धारियाँ इसलिए आती हैं कि आकाशीय पिंड में विद्यमान कुछ विशेष रासायनिक तत्व अपने स्वभाव के अनुकूल कुछ विकिरण तरंगों को सोख लेते हैं। उनसे संबंधित वर्णरेखाओं की अनुपस्थिति ही काली धारियों के रूप में हम देखते हैं।

प्रारण

- प्रारण या रेडिएशन अर्थात् आगे बढ़ने वाली या चलमान ऊर्जा। वैज्ञानिक परिभाषा के अनुसार किसी वस्तु के, ऊर्जा से युक्त कणों / तरंगों का किसी माध्यम से अथवा अंतरिक्ष से प्रसारण होना, प्रारण है।
- वैसे तो प्रारण कई प्रकार का होता है। लेकिन मनुष्य का संबंध मुख्य रूप से विद्युत चुंबकीय तथा किरणोत्सर्गी प्रारण से आता है। स्टोव्ह, बल्ब आदि से जो प्रारण निकलता है वह विद्युत चुंबकीय प्रारण है। जबकि किरणोत्सर्गी प्रारण किरणोत्सर्गी पदार्थ या परमाणु प्रक्रियाओं में निकलता है।
- प्रारण के दो प्रकार होते हैं - एक आयोडाइज्ड और दूसरा नॉन-आयोडाइज्ड।
- प्रारणों में कुछ तरंग रूप में होती हैं जैसे ध्वनि, रेडियो सिग्नल्स तो कुछ सूक्ष्म कणों के रूप में होते हैं। ये कण परमाणु से बहुत अधिक गति से बाहर आते हैं। उदा. अंतरिक्ष से आती हुई कॉस्मिक किरणें। किरणोत्सर्गी पदार्थ, कण और तरंगों के मिश्रित रूप में उत्सर्जन करता है।
- दो लहरों के बीच में जो अंतर होता है उसे तरंग-लम्बाई कहते हैं। यह 'अॅमस्ट्रॉग' इस इकाई में दर्शायी जाती है।
 $1\text{अॅमस्ट्रॉग} = 10^{-10}$ मीटर।
- किसी एक बिंदु से प्रति सेकंड गुजरने वाली लहरों की संख्या को उस लहर की आवृत्ति कहते हैं।
- जब एक ही या मिलती-जुलती तरंग-लम्बाई की बहुत सारी तरंगों को एकसाथ पुंज किया जाता है तो उसे वर्णपट कहते हैं।
- किसी भी प्रारण के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है।
- हर्टिजियन तरंगें :- लम्बी तरंगों का उपयोग रेडियो, टेलिविज़न और रडार आदि में किया जाता है।
- विद्युत चुंबकीय वर्णपट को कभी-कभी 'मॅक्सवेल इंद्रधनुष' कहा जाता है। यह महान वैज्ञानिक मॅक्सवेल के इस वर्णपट के संदर्भ में किये गये उनके मूलभूत योगदान को सम्मान देने के लिए है।

- प्रत्येक परमाणु और उसके अणुकेंद्र का विशिष्ट स्वरूप (Unique Structure) तथा विशिष्ट ऊर्जा स्तर की रूपरेखा (Profile) होती है। अर्थात् विशिष्ट विवक्त ऊर्जा स्तर का संच होता है। इन्हें ' क्वांटम अवस्थाएं ' कहा जाता है। जब परमाणु या न्यूक्लियस एक ऊर्जा स्तर से अन्य ऊर्जा स्तर में संक्रमण करता है, तो दोनों स्तरों की ऊर्जा में जो फर्क होता है उतनी ऊर्जा का फोटॉन या तो उत्सर्जित होता है या शोषित किया जाता है। इस तरह यह अतिरिक्त ऊर्जा प्रारण, यह जानकारी रखता है कि वह किस मूल स्थिति से उत्सर्जित या शोषित हुआ है। वह उसके अनुसार वर्णपट पैदा करता है। इस तरह स्पेक्ट्रा यह मूल ऊर्जा स्तरों की पहचान बन जाता है।

विद्युत चुंबकीय प्रारण -ऊर्जा की उच्चता, आवृत्ति की अधिकता, तरंग-लम्बाई की अल्पता से आरंभ करते हुए क्रमशः-

- गॅमा किरणें -तरंग लम्बाई- 0.1nm और कम -

निर्मिती : रेडिओ अक्टिव न्यूक्लियस की ऊर्जा में बदलाव या आण्विक ऊर्जा स्तर में संक्रमण के दरम्यान।

परिणाम : फ्लोरोसन्स (प्रतिदीप्ति) : यह वह परिघटना है जिसमें पदार्थ एक आवृत्ति का प्रारण शोषित करता है और अन्य आवृत्ति का प्रारण उत्सर्जित करता है।

कई किरणोत्सर्गी द्रव्य गॅमा किरणें उत्सर्जित करते हैं। अणुभट्टियों में ये उत्पन्न होती हैं। वैश्विक किरणों में बड़े पैमाने पर होती हैं। लेकिन शिसा गॅमा किरणें शोषित कर लेता है।

- क्ष किरणें :-- तरंग-लम्बाई 0.3 से 100 अं. | इनके फोटॉन की ऊर्जा- 0.1 से 30 KeV या 10^{-20} से 3×10^{-18} ज्यूल्स होती है। ऊर्जा का यह स्तर ध्यान में लेते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि सबसे तेजस्वी क्ष किरण तारा, सूर्य सब तरंगों के रूप में जितनी ऊर्जा उत्सर्जित करता है उससे दस हजार गुना ऊर्जा उत्सर्जित करेगा ।

उत्पत्ति :--a) किसी अवरोध द्वारा, तेज गति के इलेक्ट्रॉन्स की गति एकाएक कम होना। 2) परमाणु के आंतरिक इलेक्ट्रॉन्स का संक्रमण (Transition)।

क्ष किरणें अणुओं का आयनीकरण करती हैं अर्थात् इनके आघात से अणुओं से इलेक्ट्रॉन्स उत्सर्जित होते हैं। अणुकेंद्र के करीबी कक्षाओं में गतिमान इलेक्ट्रॉन्स ने ऊर्जा अवशोषित करने पर क्ष किरणें उत्सर्जित होती हैं। उसी तरह तांबा, टंगस्टन आदि धातुओं पर उच्च गतिमान इलेक्ट्रॉनों के आघात से क्ष किरणें उत्पन्न होती हैं।

- पराबैंगनी विकिरण :--(Ultraviolet Radiation) -तरंग लम्बाई--100 से 3800 अँ।
उत्पत्ति : १)परमाणु या अणु में बाह्य इलेक्ट्रॉन्स का संक्रमण। २) उत्तेजित परमाणु के इलेक्ट्रॉन्स की ऊर्जा में परिवर्तन के दरम्यान।
परिणाम :-फोटो इलेक्ट्रिक परिणाम।
- दृश्य पट्ट :- तरंग लम्बाई :3800 से 7000अँ।(380 नॅनो मी.-780 नॅ.मी.) बैंगनी, नीला, अस्मानी, हरा, पीला, नारंगी, लाल।
कंपन संख्या : 8×10^{14} --- 4×10^{14} Hzts (तरंगों की कंपन संख्या हर्ट्ज़ इस एकक में भी मापी जाती है । हर्ट्ज़ का अर्थ है प्रति सेकंद विद्युत चुंबकीय तरंगों का होने वाला आवर्तन। कंपन संख्या X तरंग-लम्बाई = प्रकाश या विद्युत चुंबकीय तरंगों की गति। लेकिन ऊर्जा, यह कंपन संख्या के अनुपात में होती है।)
मनुष्य की आँख 560 नॅनो मीटर तरंग लम्बाई के आसपास सर्वाधिक संवेदनशील होती है।
हम रंगपट्ट के दृश्य प्रारण के माध्यम से परमाणु को नहीं देख सकते, चूंकि इसके अंतर्गत आने वाली तरंगों की तरंग लम्बाई, परमाणु के आकार से हजारों गुना अधिक होती है। हां, इसके लिए इलेक्ट्रॉनिक सूक्ष्मदर्शी उपयोगी माध्यम होगा। यह सर्वाधिक सूक्ष्म वस्तु होगी जिसे हम देख सकते हैं।
परमाणु के अंदर ९९.९९९ % अंतराल खाली है, तो क्या इस खाली अंतराल से होते हुए फोटॉन यात्रा करते हैं? (पारदर्शी वस्तु से पार होते समय) नहीं, वे सामान्य तौर पर शोषित किए जाते हैं, और अन्य ऊर्जा स्तर के फोटॉन के रूप में उत्सर्जित होते हैं। क्ष किरण जैसे उच्च ऊर्जाधारी, लघुतम तरंगलम्बाई वाले कुछ फोटॉन, उपरोक्त ढंग से खाली अंतराल से यात्रा कर भी सकते हैं। लेकिन अधिकतर शोषित और उत्सर्जित होते ही, यात्रा करते हैं।
- अवरक्त विकिरण :--(Infra Red) 7000 से 10,00,000 अँ।
अणुओं के घूर्णनात्मक (Rotational)और कंपनों (Vibration)की ऊर्जा में बदलाव तथा तप्त वस्तु से उत्सर्जित होती हैं।
परिणाम औष्णिक।

कोई भी पिंड, यदि उसका तापमान परम शून्य से (--270 डिग्री से.)अधिक है तो वह तापीय विकिरण अवश्य उत्सर्जित करेगा।

अवरक्त किरण खगोलशास्त्र(Infrared Astronomy) : तारों से आने वाली ऊर्जा के कारण अवकाश में स्थित धुलीकण तप्त होते हैं । कोई भी तप्त वस्तु ऊष्मीय ऊर्जा, अवरक्त किरणों के रूप में उत्सर्जित करती हैं। धुलीकणों के मेघ से बाहर आ रहे अवरक्त किरणों के मापन से यह पता लगाया जा सकता है कि तारे से मेघ को कितनी ऊर्जा प्राप्त हो रही है। लेकिन पृथ्वी के वातावरण में उपस्थित बाष्प इन किरणों को अवशोषित कर लेता है। इस कारण वातावरण के पार कार्य करने वाली वेधशाला ही बाहर से आ रहे अवरक्त किरणों को व्यवस्थित ग्रहण कर सकती है। ब्रह्माण्ड से हमारी तरफ आ रहे कम ऊर्जा वाले या अधिक तरंग-लम्बाई वाले किरण, हम तक नहीं पहुंच पाते। वे या तो वातावरण में ही शोषित हो जाते हैं या वातावरण में उपर-उपर ही परावर्तित हो जाते हैं।

(गैमा किरणें भी पृथ्वी के वातावरण में अवशोषित हो जाती हैं।)

- रेडिओ तरंगें :--तरंग-लम्बाई--10,00,000 अं. से ऊपर।
उत्पत्ति : रेडिओ अँटिनाज के साथ जुड़े विशेष परिपथ में इलेक्ट्रॉन्स के कंपनों के कारण या दोलायमान(Oscillating) इलेक्ट्रॉनों के कारण।
उपयोग ; दूरदर्शन और रेडियो आदि में। इस वर्ग की मायक्रोवेव्हज ' रडार ' आदि संपर्क तंत्रों में उपयोग की जाती हैं।
- लेसर किरणों में सभी तरंगों का आयाम, लम्बाई तथा स्पंदन संख्या सटीक, समान होती हैं और वे सभी एक विशिष्ट दिशा में ही यात्रा करती हैं। इसी कारण इन्हें प्रखर शक्ति प्राप्त होती है।
लेसर किरणों का उपयोग कर त्रिमिती निर्माण करने के तन्त्र को ' होलोग्राफी ' और बने प्रतिमा को ' होलोग्राम ' कहते हैं।
- दृश्य और अवरक्त किरणें जीवन के लिए विशेष घातक नहीं होतीं । रेडिओ तरंगों में मायक्रोवेव्ह तथा उपरोक्त उल्लेखित अन्य तरंगें अत्यंत घातक होती हैं।
- किरणोत्सर्गी किरणें घातक होती हैं।

तरंगें और कंपन (Oscillations)

- हमारे चारों ओर की दुनिया तरंगों से व्याप्त है।

आइन्स्टाइन ने एक सुंदर उदा. दिया है -

कोई अफवाह एक शहर से दूर के दूसरे शहर तक आसानी से और बहुत जल्दी पहुँच जाती है, जबकि इसे फैलाने में हिस्सा लेने वाला कोई व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा नहीं करता। प्रत्येक अपने स्थान पर बना रहता है। उसी तरह पानी में उठने वाली तरंग अपने उत्पत्ति स्थान से चारों ओर दूर तक पहुँच जाती है जबकि पानी का एक कतरा भी अपना स्थान नहीं छोड़ता।

- सभी तरंगों के मूल में कंपन है। (Oscillations or Vibrations)

कंपन यह हलचल है जो अपने आपको दोहराती है। हार्मोनिक कंपनों को मुक्त कंपन भी कहते हैं। ये कंपन ऐसे होते हैं जो समय के नियमित अंतराल के बाद अपने आपको दोहराते हैं। मुक्त कंपन यह एक आदर्श स्थिति है जो केवल शुद्ध निर्वात में ही हो सकती है। वास्तव में किसी भी ढंग का, उपस्थित प्रतिरोधी बल, समय के साथ कंपन का हास करते-करते शून्यावस्था तक पहुँचा देता है। ऐसे कंपनों को अवमंदित(Damped) कंपन या दोलन कहते हैं। कंपन लुप्त न हो इसलिए उसे अगर नियमित अंतराल के बाद बाहरी बल द्वारा ऊर्जा दी जाती है तो उसे प्रणोदित (Forced) दोलन कहते हैं।

विद्युत चुंबकीय तरंग के आगे बढ़ने में -जब विद्युत भार (Charge) कंपन करता है तो उस बिंदु से प्रत्यावर्ति विद्युत और चुंबकीय क्षेत्र का अस्तित्व बाहरी दिशा में बढ़ता है। इसे ही हम विद्युत चुंबकीय तरंग कहते हैं। यहाँ कंपन की अवस्था में होने वाले विद्युत और चुंबकीय क्षेत्र, ऊर्जा तथा जानकारी का वहन करते हैं। विद्युत चुंबकीय तरंगें(बिना किसी अवमंदित्व के) लम्बी दूरी की यात्राएं करती हैं। अतः उनका उपयोग संदेशवहन के लिए किया जाता है।

जबरन पैदा किये गये कंपन में जब कंपन पैदा करने वाले बल की बारंबारता व्हायब्रेटर के प्राकृतिक कंपन के बराबर हो जाती है तो कंपनों का आयाम (Amplitude) महत्तम हो जाता है और कंपनयुक्त प्रणाली अनुनाद (Resonance) में है, ऐसा कहा जाता है। अनुनाद ये किसी भी स्ट्रक्चर में पैदा हो सकता है, चूंकि हर स्ट्रक्चर की अपनी एक या एक से अधिक प्राकृतिक

आवृत्तियाँ होती ही हैं और परिणामस्वरूप पैदा होनेवाले कंपन, स्ट्रक्चर का विद्वहंस कर सकते हैं। इसके लिए जो उदा. दिया जाता है वह है 1940 में वाशिंगटन के नये बने पुल का ढह जाना है। जिसका कारण था सैनिक टुकड़ी के कदमताल के कारण पुल के साथ पैदा हुआ रेज़ोनन्स।

प्रत्येक वस्तु में कंपन निर्माण होते हैं। किसी विशिष्ट वस्तु में प्रति सेकंड जिस विशिष्ट संख्या में, सहज ढंग से, कंपन होते हैं, उसे वस्तु की प्राकृतिक कंपन संख्या कहते हैं। इसके अतिरिक्त किसी भी वस्तु में बाह्य बल की सहायता से कंपन पैदा किये जा सकते हैं। जब वस्तु पर लगाये गये बाह्य बल की सहायता से उत्पन्न हुई कंपन संख्या, उस वस्तु के प्राकृतिक कंपन संख्या इतनी ही हुई, तो उस वस्तु के कंपनों का आयाम उच्चतम हो जाता है। इस प्रकार को संस्पंदन या अनुनाद कहते हैं।

बिनतारी संदेशवहन

- 1789 में जर्मनी के वैज्ञानिक हाइन्निश हर्ट्ज़ ने विद्युतभारित कणों को आंदोलित करके, उसके द्वारा रेडियो लहरें पैदा की थीं।
- इसके बाद फ्रेंच संशोधक एदुआर्द लॉज ने रेडियो तरंगों का विद्युत तरंगों में रूपान्तर करने वाला ‘ कोहिअरर “ यह उपकरण बनाया।
- रेडियो तरंगें दीवारों के पार जा सकती हैं। वे प्रकाशगति से यात्रा करती हैं। उन्हें आगे बढ़ने के लिए किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं होती।
- उन्नीसवीं सदी के मध्य में अमेरिका के सॅम्युएल मोर्स ने संदेश प्रक्षेपण के लिए ‘ मोर्स कोड ‘ बनाकर तारायंत्रों के मार्फत संदेशवहन की सुविधा उपलब्ध कराई थी। इसके लिए तारों का जाल यूरोप-अमेरिका में फैलने लगा। वर्ष 1858 में अटलांटिक महासागर में केबल डालकर अमेरिका और यूरोप के इन तारों के जालों को जोड़ भी दिया गया। लेकिन तीन महीने में ही केवल टूट गयी और बड़ी हानी हुई।
- 1894 में ब्रिटेन के ऑलिव्हर लॉज ने दोनों तंत्रों का एकत्र उपयोग कर, एक बटन दबाकर 50 मीटर दूरी पर रखी घंटी बजाई।

ऐसा ही एक प्रयोग 1895 में जगदीशचंद्र बोस महोदय ने किया और दूर रखी बंदूक में भरे विस्फोटक का हलका विस्फोट किया।

- उपरोक्त गुणधर्म ध्यान लेकर और इस क्षेत्र में हुए पूर्व शोध सामने रखकर इटली के बोलेना नामक स्थान में 1894 में ही गुग्लियेल्लो मार्कोनी ने प्रयोग शुरू किये। कई दिनों के मेहनत के बाद अंततः इंग्लैण्ड के दक्षिण कॉर्नवाल से अटलांटिक महासागर के पार अमेरिका के न्यू फाउंडलैंड को मोर्स कोड के संदेश भेजने में सफलता प्राप्त की। यह घटना 12 दिसम्बर 1901 की है। इसके लिए मार्कोनी को 1909 में नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ।
- १९१२ के टायटैनिक जहाज की दुर्घटना में सात सौ यात्रियों के प्राण बचे थे। उसका सबसे बड़ा श्रेय बिनतारी संदेश प्रक्षेपण को दिया जाता है।
- वैसे इंटरनेशनल टेलीफोन कॉल पहली बार एक जुलाई 1881 को की गयी थी।

रेडिओ तरंगें

- आकाश में आयनित (Ionised) हवा का आवरण है। मार्कोनी की तरंगों को इस आवरण ने रोका और पृथ्वी की ओर लौटाया। एक तरह उसने परावर्तक रेडिओ दर्पण का काम किया। एक स्थान से भेजा हुआ संदेश दूसरे स्थान पहुँचा, जहाँ उसे ग्रहण कर लिया गया।
- कम लम्बाई वाली रेडिओ तरंग, आयनावरण को भेदकर पार निकल जाती है या बाहर से आने वाली पृथ्वी तक पहुँचती है। वातावरण 1 / 10 से.मी. से लेकर तो 10 मीटर तक की लम्बाई वाली रेडिओ तरंगों को अपने पार होने देता है।
- बहुत कम लम्बाईवाली तरंगें अगर शक्तिशाली न हो तो आयनावरण उन्हें सोख लेता है।
- बहुत अधिक या बहुत कम लम्बाईवाली तरंगें अगर पृथ्वी की ओर आ रही हो तो पृथ्वी की तरफ या फिर अन्तरिक्ष से आ रही हों तो अंतरिक्ष की ओर लौटा दी जाती हैं।

रेडिओ खगोलशास्त्र

1936 में रेबर इस वैज्ञानिक ने पहला रेडिओ दूरदर्शक बनाया और 1944 तक आकाशगंगा से आने वाली एक मीटर लम्बाई वाली तरंगों की सहायता से उसने अपनी आकाशगंगा का प्रथम रेडिओ नक्शा बनाया।

कई आकाशीय पिंडों से पृथ्वी की तरफ रेडिओ तरंगें आती रहती हैं। विद्युत चुंबकीय वर्णपट में रेडिओ तरंगों का स्थान अवरक्त किरणों के बाद है। ऐसी ये दीर्घ लम्बाई वाली रेडिओ

तरंगों की सहायता से ब्रह्माण्ड का अध्ययन करने के तंत्र को ही 'रेडिओ खगोलशास्त्र' यह नाम मिला।

खगोलीय वस्तु ने प्रक्षेपित किये इलेक्ट्रॉन कण चारों ओर के क्षीण चुंबकीय क्षेत्र में से जब गुजरते हैं तो उनमें त्वरण पैदा होता है। और उस कारण दीर्घ लम्बाई वाली रेडिओ तरंगें पैदा होती हैं। अंतरिक्ष से हमारी ओर आने वाली रेडिओ तरंगों की लम्बाई एक से.मी. से लेकर तो 100 मीटर तक हो सकती है। 400 से 1500 मेगाहर्ट्ज स्पंदन संख्या की मर्यादा में रेडिओ तरंगों पर काफी अनुसंधान हुआ है। लेकिन तकनीकी कारणों से एक से.मी. से एक मीटर तक की रेडिओ तरंगों को ग्रहण करने के लिए उपकरण विकसित किये जाते हैं।

रेडिओ भौतिकशास्त्र

- रेडिओ भौतिकशास्त्र का आरंभ 1937 में ही हुआ था। तब 9.4 मीटर व्यास का रेडिओ अँटिना खड़ा किया गया था।
- 1942 में ' हे (Hey) ' ने सूर्य से आने वाली रेडिओ तरंगों की खोज की थी।
- 1944 में ' वॉन डरसल्सट ' ने भविष्यवाणी की, कि अंतरिक्ष में फैला हैड्रोजन 21 से.मी. तरंगलम्बाई वाली रेडिओ तरंगें उत्सर्जित करेगा। इन तरंगों को वर्ष 1951 में पकड़ा गया। (अंतरिक्ष में 'क्ष' किरणों का स्रोत 1962 में खोजा गया।
- दुनिया की सबसे बड़ी और भारत की पहली ' जायंट मीटरवेव रेडिओ दूरबीन ' पुना जिले में नारायणगाँव के पास खोदड नामक स्थान पर 20-4-1992 से कार्यरत है। यह वास्तव में तीस दूरबीनों का समूह है। प्रत्येक का व्यास 45 मीटर है। यह मुख्य रूप से कम ऊर्जा वाली तरंगों के अध्ययन हेतु बनायी गयी है। इसमें पचास मेगा हर्ट्ज़ से लेकर 1420 मे.ह. इस परास (Range) की तरंगों का अध्ययन किया जाता है।

21 से.मी. तरंग लम्बाईवाली रेडिओ लहरें

हैड्रोजन वायु दृश्य किरणों के साथ-साथ अदृश्य विद्युत चुंबकीय तरंगें भी उत्सर्जित करता है। उनमें से कुछ अतिनील, कुछ अवरक्त तो कुछ रेडिओ तरंगों के विभागों में होती हैं। हैड्रोजन वायु ने उत्सर्जित की हुई 21 से.मी. तरंगलम्बाई वाली लहरें रेडिओ विभाग में आती हैं।

21 से.मी. तरंगलम्बाई अर्थात् एक अरब 42 करोड़ कंपन संख्या। यह लहर आकाशगंगा के सारे अवरोध आसानी से लांघकर पृथ्वी तक पहुँचती है। अर्थात् उसे ग्रहण करने के लिए रेडिओ दूरबीन की आवश्यकता होती है। ताप और दृश्य विकिरण अगर छोड़ दिये तो विद्युत चुंबकीय तरंगों में केवल यही तरंगें पृथ्वी तक पहुँचती हैं।

हैड्रोजन अणु में एक इलेक्ट्रॉन, एक प्रोटॉन के गिर्द भ्रमण करता है। साथ-साथ प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन अपने अक्ष के गिर्द भी परिवलन करते हैं। इलेक्ट्रॉन कण प्रोटॉन की दिशा में या विरुद्ध दिशा में भी परिवलन कर सकता है। दोनों के परिवलन की दिशाएं जब विरुद्ध होती हैं तब हैड्रोजन अणु की ऊर्जा, जब दोनों के परिवलन की दिशाएँ एक होती हैं, उस समय की ऊर्जा से थोड़ी कम होती है। इसका परिणाम यह होता है कि न्यूनतम ऊर्जा स्तर में दो उपस्तर पैदा होते हैं। दोनों में अंतर सूक्ष्म ही होता है। हैड्रोजन वायु से 21 से.मी. तरंगलम्बाई की तरंग उत्सर्जित होने के लिए यही फर्क उत्तरदायी है।

हैड्रोजन अणु अंतरिक्ष में संचार करते समय कभी-कभी बाह्य ऊर्जा के कारण उसमें के एक दिशा में परिवलन करनेवाले प्रोटॉन, इलेक्ट्रॉन विरुद्ध दिशाओं में परिवलन करने लगते हैं। लेकिन हैड्रोजन अणु अधिक समय तक इस अवस्था में नहीं रह सकता। अपने पास की अतिरिक्त ऊर्जा 21 से.मी. तरंगलम्बाई वाली तरंग के रूप में उत्सर्जित कर वह फिर अपनी मूल अवस्था में लौट आता है।

कभी-कभी हैड्रोजन वायु 21 से.मी. तरंगलम्बाई की तरंग अवशोषित कर लेता है तब उसके वर्णपट में अवशोषण रेखाएं (Absorption Lines) दिखती हैं।

अन्य ऊर्जा, आमतौर पर उष्मीय उत्सर्ग वाली होती है। जबकि उपरोक्त ऊर्जा का उद्गम शीतल स्थिति में है। अंतरिक्ष के ठंडे क्षेत्रों से आने वाली उपरोक्त तरंग। एक हैड्रोजन परमाणु का विचार किया तो यह घटना बहुत दुर्लभ हो सकती है। लेकिन ब्रह्माण्ड के स्तर पर हैड्रोजन के मुक्त परमाणुओं की प्रचंड उपलब्धता के कारण ऐसी तरंगें हमारी पकड़ में आती हैं।

(जब कार्बन को तप्त होनेतक गर्म किया जाता है और उससे जो वर्णपट मिलता है वह ' उत्सर्जन वर्णपट ' (Emmission Spectrum) है।)

किरणोत्सर्जन (Radio activity)

- 1896 में फ्रेंच भौतिकशास्त्री एंटोइनी हेनरी बैक्वेरेल ने किरणोत्सर्जन की खोज की जब उन्होंने x किरणों जैसा विकिरण यूरेनियम क्षार से आते हुए देखा। यह खोज अचानक ही हुई। वास्तव में बैक्वेरेल की रुचि फ्लोरोसन्स सिद्धान्त के अनुसंधान में थी। इसमें पदार्थ एक बारंबारता का विकिरण शोषित कर लेता है और अन्य आवृत्ति का विकिरण उत्सर्जित करता है। लेकिन इस अनुसंधान के दरम्यान उन्होंने एक नये ढंग का विकिरण पाया और उसे नाम दिया ' रेडियो ऑक्टिविटी ' ।
- लेकिन इसकी कारणमीमांसा रुदरफोर्ड ने दी। उनके अनुसार यह विकिरण अस्थिर मूलद्रव्यों के त्वरित और लगातार विखंडन के कारण होता है।
- स्वभाविक रेडियो ऑक्टिविटी की खोज के बाद भौतिकशास्त्रियों की रुचि इसमें पैदा हुई कि क्या आम क्रियाहीन न्यूक्लियस का कृत्रिम ढंग से विघटन किया जा सकता है ? 1934 ज्यूलिएट और क्यूरी ने यह बात कर दिखाई। उच्च ऊर्जायुक्त कणों की कुछ न्यूक्लियसों पर बौछार करके उन्हें कृत्रिम ढंग से रेडियो ऑक्टिव बनाया । नाभिक के इस Induced Transmutation को Nuclear Reaction नाम दिया गया।
- रेडियोधर्मिता को एक परमाणविक परिघटना कहा जाता है। विकिरण की क्षमता अणुओं के विन्यास और यूरेनियम जैसे रेडियोधर्मी मूलद्रव्यों की पारस्परिक क्रिया में नहीं, बल्कि यूरेनियम की आंतरिक संरचना में निहित होती है।
- किरणोत्सर्गी प्रारण -

इसमें मुख्य रूप से गॅमा, बीटा, अल्फा इन किरणों का अंतर्भाव होता है। प्रचंड परिमाण में मुक्त हुए न्यूट्रॉन, किरणोत्सर्गी प्रारण का ही एक प्रकार हैं जो अणुबॉम विस्फोट के बाद उत्पन्न होते हैं। स्फोट के बाद विभिन्न प्रकार के, कम से कम 200 किरणोत्सर्गी द्रव्य पैदा होते हैं। इन सबसे अल्फा, बीटा, गॅमा किरणें उत्सर्जित होती हैं जो मनुष्य के लिए अति घातक होती हैं।

कई, तौलनिक दृष्टि से भारी मूलद्रव्य अपने अणुकेंद्र से अल्फा, बीटा, और गॅमा जैसे किरणों का उत्सर्जन करते हैं। लेकिन उसके बाद उनका अपना मूल अस्तित्व का रूप बदल जाता है। इस बदलाव के कारण उनका वस्तुमान कम होने लगता है ।और इस श्रृंखला के अंत में जो बचता है वह होता है मूलद्रव्य सीसा। इनमें कुछ का जीवनकाल बहुत ही अल्प होता है तो

कुछ का लाखों साल। मूल वस्तुमान का आधा वस्तुमान होने के लिए जो समय लगता है उसे उस मूलद्रव्य का ' अर्धजीवन काल ' कहा जाता है।

अल्फा किरण याने हिलीयम मूलद्रव्य का अणुकेंद्र या अल्फा कण। इसमें दो प्रोटॉन और दो न्यूट्रॉन एकदूसरे के साथ बद्ध रहते हैं। अर्थात् अल्फा कण धन विद्युतभारित कण होता है। वे भारी होने से हवा में चार से.मी. से अधिक अन्तर पार नहीं कर सकते और बाद में हवा में अवशोषित हो जाते हैं। लेकिन ये मनुष्य के लिए खतरनाक तो है ही।

बीटा किरण अर्थात् इलेक्ट्रॉन्स कणों का प्रवाह। ये भी 100 से.मी. अंतर पार करने के बाद हवा में अवशोषित हो जाते हैं। मनुष्य के शरीर में वे एक मि.मी. तक अंदर घूंस सकते हैं। मनुष्य ने अपने शरीर पर पतले पत्रों का आवरण ले लिया तो उपरोक्त दोनों किरणों को शरीर तक पहुँचने से रोका जा सकता है।

गॅमा किरण अर्थात् फोटॉन कणों का प्रवाह या विद्युत चुंबकीय तरंगें, लेकिन विलक्षण परिमाण में ऊर्जायुक्त। वे हवा में हजारों कि.मी. का अंतर पार कर सकती हैं। शरीर पर लिया कोई आवरण उन्हें रोक नहीं सकता। उनपर कोई विद्युतभार नहीं होता। लेकिन सजीवों के लिए अत्यंत घातक।

किरणोत्सर्जन केवल प्राकृतिक परिणाम है ऐसा नहीं। न्यूट्रॉन का शस्त्र जैसा उपयोग कर कई मूलद्रव्यों को किरणोत्सर्गी बनाया जा सकता है। अणुस्फोट में ऊर्जा के साथ अनगिनत न्यूट्रॉन मुक्त होते हैं और वे जिस किसी भी पदार्थ से टकराते हैं उसे किरणोत्सर्गी बना देते हैं। यूरेनियम, थोरियम, रेडियम ये प्राकृतिक किरणोत्सर्गी मूलद्रव्य हैं, तो अल्युमिनियम, नायट्रोजन, लीथियम आदि मूलतः किरणोत्सर्गी नहीं हैं लेकिन उन्हें किरणोत्सर्गी बनाया जा सकता है।

किरणोत्सर्गी द्रव्यों को ढूँढने के लिए कई उपकरण बनाये गये हैं। वैद्यकीय क्षेत्र में इनका बड़े पैमाने पर उपयोग होता है।

वैश्विक किरणें (Cosmic Rays)

- 1896 बॅक्वेरल ने किरणोत्सर्जन की खोज की।
- वातावरण में भी किरणोत्सर्ग पाया जाता है।

- बीसवीं सदी के आरंभ में ऐसा माना जाता था कि इसका स्रोत जमीन के नीचे की चट्टानों में विद्यमान किरणोत्सर्गी मूलद्रव्यों में हो सकता है।
- थिओडोर वोल्व इंस जर्मन वैज्ञानिक ने इस किरणोत्सर्ग का मापन करने के लिए अति संवेदनशील तथा आसान उपकरण ' इलेक्ट्रोमीटर ' बनाया और 1909 में कई स्थानों पर जाकर वहाँ के वातावरण में किरणोत्सर्ग का मापन किया। उसी प्रकार भिन्न-भिन्न उंचाइयों पर भी मापन किया। किरणोत्सर्ग का स्रोत अगर पृथ्वी के स्तरों में होता, तो अधिकाधिक उंचाई पर यह स्तर कम होना अपेक्षित था। लेकिन प्रत्यक्ष परिणाम ऐसा नहीं मिला।
- 1911 में व्हिक्टर हेस इस आस्ट्रियन वैज्ञानिक ने बलून के सहारे काफी उंचाई पर जाकर किरणोत्सर्ग का मापन किया। कई उड़ानों की गयीं। अंतिम उड़ान 5300 मीटर उंचाई तक पहुँची। यहाँ अपेक्षा से उलट परिणाम मिला। यहाँका किरणोत्सर्ग का स्तर जमीन पर के स्तर से तीन गुना था। अर्थात् इसका स्रोत अंतरिक्ष में कहीं होना चाहिए। हेस ने बताया कि इस का मूल अंतरिक्ष से आने वाले विकिरणों में होना चाहिए। इस विकिरण को ' वैश्विक किरणें ' नाम दिया गया। अर्थात् पृथ्वी पर अंतरिक्ष से उच्च ऊर्जायुक्त कई कण आते रहते हैं। | उन्हें ही वैश्विक किरणें कहते हैं। वैश्विक किरणों में अधिकतर अति गतिमान प्रोटॉन(90%) और अल्फा कण(10) इनका ही अंतर्भाव होता है। इलेक्ट्रॉन्स बहुत अल्प होते हैं। पृथ्वी के वातावरण पर रातदिन वैश्विक किरणों का वर्षाव होते रहता है। ये गतिमान कण वातावरण से टकराएँ कि दुर्लभ कणों का वर्षाव पैदा करते हैं। इसे ' कॉस्मिक रे शॉवर्स ' कहते हैं।
- तारका समूहों के टकराव और विलिनीकरण के दरम्यान सबसे अधिक ऊर्जावाली प्रक्रिया होती है। उसमें उच्च ऊर्जायुक्त क्ष किरणें, गॅमा किरणें आदि की निर्मिति होती है। इस दरम्यान कणों का त्वरण बहुत बढ़कर अति उच्च ऊर्जा पैदा होती है। वे समूह 10^{19} इलेक्ट्रॉन वोल्टस् इतनी ऊर्जा वाले वैश्विक किरणों का भंडार है।
- इनके हमले में मानव कोशिकाएं तुरन्त नष्ट हो जाएगी।

७. प्रकाश

प्रकाश के गुणधर्म :

- १) प्रकाश सीधी रेखा में आगे बढ़ता है।
- २) परावर्तन (दर्पण)।
- ३) अपवर्तन (Refraction) : प्रकाश, एक माध्यम से भिन्न घनत्व वाले अन्य माध्यम में प्रवेश करता है तो उसकी प्रेषण की दिशा में बदलाव आ जाता है।
- ४) विवर्तन(Diffraction) : जब कभी प्रकाश के मार्ग में कोई बाधा आती है या वह किसी सूक्ष्म छेद से पार होता है तो उसका आसानी से वक्र हो जाता है।
- ५) व्यतिकरण (Interference) : प्रकाश शलाकाओं का एक दूसरे पर होने वाला परिणाम।

कण और तरंग का द्वंद्व

कण : कण एक साथ किन्हीं दो स्थानों पर उपस्थित नहीं रह सकता।

तरंग : पानी की सतह पर लहरें उठती हैं। तरंगों की दुनिया में केवल ये सतही तरंग ही हैं जिनकी हलचल प्रत्यक्ष देखी जा सकती हैं। ऐसा लगता है, तरंग के साथ पानी भी स्वयं आगे बढ़ रहा है। लेकिन पानी तरंग के साथ आगे नहीं बढ़ता। हम जानते हैं कागज की नाव के खेल में जहाज केवल ऊपर-नीचे होता है, आगे नहीं बढ़ता। समुद्र में उतनी शक्तिशाली लहर हो तो वह एक ही क्षण कई जहाजों को उलट सकती है। अर्थात् एक ही क्षण तरंग की उपस्थिति कई बिंदु-स्थानों पर होती है।

अर्थात् क्लासिकल सोच के अनुसार यह सोचना उचित ही था कि कण और तरंग दो भिन्न बातें हैं। या तो वह कण होगा या तरंग।

पानी की सतह पर जब तरंग आगे बढ़ती है तो उसकी रचना में भिन्न-भिन्न स्थानों पर पानी के भिन्न-भिन्न कण हिस्सा लेते हैं। तरंग स्वयं विशिष्ट वेग से आगे बढ़ती है। पानी के कतरे दबाव अनुभव करते हैं। इस कारण हलचल होती है। तरंग, वेग और दबाव को आगे बढ़ाती है। लेकिन पानी के कतरे प्रत्यक्षतः अपना स्थान नहीं छोड़ते।

प्रकाश का संचरण

- प्रकाश सीधी रेखा में आगे बढ़ता है इस आधार पर शुरू में उसे कण माना गया। गैसण्डी और न्यूटन को, प्रकाश से संबंधित जिस सिद्धान्त के प्रणेता माना जाता है, उसे शास्त्रीय भाषा में ' कणिका सिद्धान्त ' (Corpuscular Theory : a flux of particle) कहते हैं।
- प्रकाश तरंग प्रक्रिया (Wave Theory) : प्रकाश यह तरंग प्रक्रिया है या तरंगों का प्रवाह है, यह सिद्धान्त क्रिश्चियन हायजेन(1629-1695) ने विकसित किया। साथ ही हूक (Hooke) ने। लेकिन इस सिद्धान्त की त्रुटि यह थी कि लगभग 150 वर्षों तक प्रकाश का सबसे सरल गुणधर्म, सीधी रेखा में यात्रा, का वह स्पष्टीकरण नहीं दे सकता था।
- फिर न्यूटन ने प्रश्न उपस्थित किया कि अगर वह तरंग है तो कोई माध्यम होना चाहिए। हायजेन ने सुझाया ' ईथर '। लेकिन यह कल्पना आगे गलत सिद्ध हुई। फिर भी हायजेन इस आधार पर अपने सिद्धान्त को त्यागने तैयार नहीं थे कि अगर प्रकाश किरणें, कणों की शलाका है तो एकदूसरे को छेदते समय, वे एकदूसरे के साथ परस्पर क्रिया कैसे करते हैं (Diffraction & Interference)। लेकिन ब्रिटिश वैज्ञानिक थॉमस यंग तथा फ्रेंच वैज्ञानिक ऑगस्टीन जीन फ्रेस्नेल इन्होंने तथा अन्य कड़्यों ने इस सिद्धान्त के आधार पर कई बातों को स्पष्ट कर, तरंग सिद्धान्त को मजबूती प्रदान की।
- प्रकाश तरंगें अनुप्रस्थ(Transverse) या आड़े दोलन वाली तरंगें हैं। वे रबर की स्थितिस्थापक रस्सी(Elastic String) में उत्पन्न लहरों जैसी होती हैं। 1816 में फ्रेस्नेल और आरागो ने विशेष प्रयोगों के माध्यम से यह सिद्ध किया कि प्रकाश तरंगों का कंपन संप्रेषण की दिशा की लंब दिशा में या उससे 90 डिग्री का कोन किए होता है।
- विरोधाभासी स्थिति—

अगर हम तरंग सिद्धान्त को उचित मानते हैं तो प्रकाश की गति पानी के माध्यम की तुलना में हवा में अधिक होनी चाहिए। अगर कणिका सिद्धान्त को वैध मानते हैं तो स्थिति एकदम उलटी होनी चाहिए।

अठरावीं तथा उन्नीसवीं सदी :

- # चुंबकत्व - कार्ल गाऊस ने चुंबकत्व के नियम प्रस्तुत किये।
- # विद्युत - चार्ल्स कुलंब ने विद्युत भार के नियम प्रस्तुत किये।
- # बदलते विद्युत क्षेत्र से चुंबकीय क्षेत्र निर्माण किया—ओरस्टेड।
- # बदलते चुंबकीय क्षेत्र से विद्युत की निर्मिती —फैरेडे।
- # प्रकाश किरणें ये विद्युत चुंबकीय तरंगें ही हैं—संभावना व्यक्त की —मैक्सवेल।

आगे यही बात सिद्ध की जर्मनी के वैज्ञानिक हाइनरिक हर्ट्ज़ ने |(यही आगे बिनतारी संदेशवहन का आधार बनी)|

1905 में आइन्स्टाइन ने फिर एक बार बताया कि प्रकाश की इकाई एक कण है।

इसे ही बाद में रसायन-भौतिकशास्त्री लेविस ने 1926 में 'फोटॉन' नाम दिया। यह विद्युत चुंबकीय विकिरण का 'क्वांटम' है। अक्सर क्वांटम के लिए फोटॉन और फोटॉन के लिए क्वांटम शब्द उपयोग में लाया जाता है।

प्लैंक सिद्धान्त के अनुसार, उत्सर्जित क्वांटमों की संख्या का पता प्रकाश की मात्रा से चलता है। मोमबत्ती एक सेकंड में 10 खरब क्वांटम उत्सर्जित करती है ऐसा अनुमान है।

क्वांटम के आकार का निर्धारण तरंगदैर्घ्य से होता है।

प्रकाश के तरंग और क्वांटम दोनों सिद्धान्त एकदम मान्य हैं।

- तरंग लम्बाई जितनी कम, आवृत्ति उतनी अधिक। अर्थात् ऊर्जा भी उतनी ही अधिक।
- आवेशधारी कण जब प्रवेगजन्य गति करता है तब उससे विद्युत चुंबकीय तरंगों का उत्सर्जन होना ही चाहिए। उसकी आवृत्ति प्रवेग की मात्रा पर निर्भर होगी। आधुनिक प्रवेगक ऐसे आवेशधारी कण(जैसे इलेक्ट्रॉन्स) उत्पन्न करने में सक्षम हैं जो प्रकाशगति की 99% गति से हलचल कर सकते हैं। ऐसे तेज इलेक्ट्रॉन्स की किरण जब किसी अवरोध द्वारा एकाएक रोक दी जाए तो वे उनकी ऊर्जा, उच्च आवृत्ति के विद्युत चुंबकीय विकिरण के रूप में उत्सर्जित करते हैं। इस विकिरण की आवृत्ति, लक्ष पर पहुँचने वाले इलेक्ट्रॉन्स की ऊर्जा पर निर्भर होती है।
- कोई भी दोलित(Oscillating) विद्युत भार अपने आंदोलन की आवृत्ति इतनी ही आवृत्ति वाली विद्युत चुंबकीय तरंगें उत्सर्जित करता है।
- हम कह सकते हैं कि प्रकाश के उत्सर्जन और अवशोषण में (परमाणु द्वारा) प्रकाश इस तरह व्यवहार करता है मानो वह कणों का प्रवाह है जबकि उसका संप्रेषण तरंग रूप में होता है।
- आइन्स्टाइन ने पारंपरिक कल्पनाओं पर प्रहार करते हुए स्थापित किया कि -
 - 1) विद्युत चुंबकीय क्षेत्र का स्वरूप सातत्यपूर्ण नहीं। 2) उसकी रचना व्यक्तिगत क्वांटमों से होती है। 3) एकबार उत्पन्न होने के बाद प्रकाश के क्वांटम व्यक्तिगत कणों के रूप में बने रहते हैं।

- फोटॉन का स्थिरावस्था वस्तुमान नहीं होता लेकिन गति के कारण उसमें ऊर्जा है। आइन्स्टाइन के सूत्रानुसार $E=mc^2$ समतुल्य वस्तुमान होगा लेकिन वह अत्यंत अल्प होगा। फिर भी कहीं-कहीं ऐसा दिखता है फोटॉन को द्रव्यमान होना चाहिए भले ही वह कितना भी कम हो। जैसे ' गुरुत्वीय लेन्सिंग ', कृष्णविवर के जबरदस्त गुरुत्व क्षेत्र का उसको आकर्षित करना। द्रव्यमान ही द्रव्यमान को आकर्षित करता है।
- समुद्र की लहर किनारे से टकराती है तो हम अनुभव करते हैं कि उसकी ऊर्जा उसके आयाम(Amplitude) पर निर्भर है, न कि तरंगों की आवृत्ति पर। लेकिन विद्युत चुंबकीय तरंगों के बारे में यही बात सत्य है।
- यह भी ज्ञात हुआ है कि जब फोटॉन की आवृत्ति अधिक होती है तो प्रकाश के क्वांटा गुणधर्म प्रभावी (Dominent) होते हैं। अन्यथा तरंग गुणधर्म प्रभावी होते हैं।
- आवृत्ति या तरंग-लम्बाई क्वांटा की ऊर्जा या क्वांटमों का आकार प्रदर्शित करती है। प्रकाश की प्रखरता(Intensity) यह क्वांटा की संख्या पर निर्भर है।
- ध्वनि तरंग निर्वात में यात्रा नहीं कर सकती। उन्हें यांत्रिक तरंगों के तौर पर पहचाना जाता है। लेकिन विद्युत चुंबकीय तरंगों के लिए किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं। उलट कोई माध्यम उसकी गति कम करता है।
- आइन्स्टाइन की कल्पना के अनुसार हर क्वांटम, तरंग लिये है अर्थात् दोलन आवृत्ति(Oscillation Frequency) लिये है। साथ-साथ कण स्वभाव लिये भी। अर्थात् आकाशीय मर्यादाएं(Spatial Boundaries) हैं। सामान्य तर्क के लिए ऐसी कल्पना विरोधाभासी है। लेकिन हमारे पास उसके दोनों स्वभावों को मान्य करने के अलावा और कोई चारा नहीं है। ऐसा कोई प्रयोग उपलब्ध नहीं है जिसमें प्रकाश या इलेक्ट्रॉन के कणिका-तरंग दोनों गुणधर्मों को एकसाथ दिखाया जा सके। हम एक समय केवल एक ही गुणधर्म अनुभव कर सकते हैं। लेकिन जब हम पारंपरिक भौतिकी की ठोस जमीन छोड़कर तरंग और कणीय चित्रों के एकीकरण के बिंदु पर पहुँचते हैं तो त्वरित अवतरित हो जाता है ' प्लँक स्थिरांक '।
- न्यूट्रिनो और फोटॉन्स : दोनों में कुछ समानताएं हैं। दोनों का द्रव्यमान लगभग शून्य के बराबर है या आसपास है। दोनों पर कोई विद्युत आवेश नहीं है। लेकिन फोटॉन पदार्थ के साथ विद्युत चुंबकीय बल के माध्यम से तो न्यूट्रिनो केवल क्षीण नाभिकीय बल के माध्यम से अन्योन्यक्रिया करता है।

- क्रोनॉन : यह सैद्धान्तिक स्तर पर समय का अविभाजित रहने वाला हिस्सा (या कण) माना गया है या कहो समय का क्वांटम। यह सूचित किया गया है कि जिस तरह ऊर्जा का अस्तित्व केवल सूक्ष्म पैकेट्स या क्वांटा में हो सकता है, उसी तरह समय का स्वरूप भी क्वांटल होना चाहिए, समय का एकक(Unit)। अर्थात् यहाँ समय को सातत्यपूर्ण(Continuous)नहीं माना गया है।

प्रकाश की गति

गति = अंतर / समय। गति यह किसी बिंदु का संदर्भ लेकर होती है तो अंतर भी उसी बिंदु से लेना होगा। और उपरोक्त तीनों में एक अगर स्थिरांक है तो अन्य दो राशियाँ चल या सापेक्ष ही होनी चाहिए। प्रकाश की गति यह स्थिरांक है, गति के एकक में।

- ईसा पूर्व 300 : युक्लिड : प्रकाश सीधी रेखा में यात्रा करता है।
- अरिस्टॉटल : प्रकाश की गति अनंत है।
- ग्यारहवीं सदी : अरेबिक वैज्ञानिक अल्हिस्सीना : प्रकाश की गति प्रचंड है लेकिन अनंत नहीं।
- सत्रहवीं सदी : डेकार्ट : प्रकाश यह कणों का प्रवाह है, गति अनंत है।
- गैलिलियो ने सर्वप्रथम प्रकाशगति मापन की पद्धति प्रतिपादित की।
- डैनिश खगोलशास्त्री ऑल्फ रोमेर ने सर्वप्रथम इसकी गति गिनने में सफलता प्राप्त की। उसका मूल्य था 21500 कि.मी./से.।
- आज पूरी तरह स्थापित बातें
 - १) प्रकाश की गति निर्वात में अत्यंत नित्य होती है।
 - २) यही सभी विद्युत चुंबकीय तरंगों की गति है। ३) बाद में यह स्थिरांक सभी शून्य स्थिरावस्था वस्तुमान वाले कणों की गति के रूप में स्विकृत हुआ। यह सार्वभौमिक भौतिक स्थिरांक (Universal Physical Constant) है। इतने मूलभूत महत्व का स्थिरांक भौतिकी में शायद ही कोई और हो। कई शाखाओं में इसका उपयोग, प्रकृति की एकता की कल्पना की स्थापना के लिए किया जाता है।
- सभी कणों की गति की यह महत्तम मर्यादा है। इससे अधिक गति प्राप्त नहीं की जा सकती।

- अत्याधुनिक मूल्य : १) संयुक्त राज्य :299,792.4574 +/- 0.0011 कि.मी./से.। २) ब्रिटिश: 299,792.4590 +/- 0.0008 कि.मी./से.।
- टेकिऑन्स : कल्पित(Hypothetical) कण जो प्रकाश गति से अधिक गति पर भ्रमण करता है।

तापमान और प्रकाश

उन्नीसवीं सदी में विद्युत लालटेन बाजार में आए। वैज्ञानिकों में उत्सुकता थी कि उष्ण पिंड किस तरह प्रकाश और उष्मा का उत्सर्जन करते हैं ताकि बाज़ार की दृष्टि से कोई मानकीकरण किया जा सके।

क्लासिकल यांत्रिकी के अनुसार जिस मात्रा में आप तापमान बढ़ाएंगे उसीके अनुसार उत्सर्जन बढ़ता है।

लेकिन समझ में कहीं तो कमी थी। लोहे को लगातार गर्म करते रहने पर उसका रंग लगातार बदलता है। अर्थात् उसके द्वारा किया जा रहा उत्सर्जन तरंग-पट्ट के उस-उस विशिष्ट बैंड के अनुसार हो रहा है और वह लगातार बदल रहा है। बढ़ते तापमान के अनुसार उत्सर्जित होने वाली तरंगें दृश्यपट्ट के नीले रंग की ओर जा रही हैं। एक बिंदु ऐसा आना चाहिए कि वे दृश्यपट्ट के बाहर की तरंगें उत्सर्जित करें। तब लोहे की वस्तु अदृश्य होनी चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं होता।

प्लैंक ने उत्सर्जन के अनुसंधान पर पांच वर्ष खर्च किये। लेकिन क्लासिकल भौतिकी के आधार पर उन्हें कोई स्पष्टीकरण नहीं मिला। बाद में उन्होंने अपने विचारों की दिशा ही बदल दी और कहा कि विद्युत चुंबकीय उत्सर्जन, लगातार या सलग नहीं होता। वह बंडलों के रूप में होता है, जैसे कि वर्षा की बुंदें होती हैं।

तापमान और विद्युत चुंबकीय विकिरण

पदार्थ का तापमान जब निरपेक्ष(Absolute) शून्य से अधिक होता है तो वह किसी न किसी रूप में विद्युत चुंबकीय विकिरण उत्सर्जित करता ही है। भिन्न-भिन्न परास के विकिरण इस प्रकार हैं—

किरणें	रेडिओ तरंग	मायक्रोवेव्ह	इन्फ्रारेड	दृश्य बँड	अल्ट्रावायलेट	क्ष किरणें	गॅमा किरणें
तरंग लम्बाई	10 cm	1mm	0.1mm	800nm	400nm	10nm	0.1nm
तापमान	-273 ⁰	-270 ⁰ c	-243 ⁰ c	27 ⁰ -5000	9727 ⁰	3लाख्स-१करोड़ ⁰ c	30करोड़ ⁰ c

- मनुष्य के लिए सामान्य कामकाज करते समय 70 से 75 डिग्री फॅरनहाइट तापमान सुविधाजनक होता है।
- पृथ्वी पर नौद किया गया उच्चतम तापमान 54⁰ C (Death Vally) है।
- नाभिक विस्फोट 3.5 करोड़⁰C तापमान उत्पन्न करता है।
- एक लाख करोड़ तापमान पर केवल इलेक्ट्रॉन्स ही शेष रह जाते हैं। प्रोटॉन्स और न्यूट्रॉन्स, क्वार्कस् और ग्लुऑन में बदल जाते हैं।
- उच्चतम तापमान : 1.41×10^{32} डिग्री सेंटीग्रेड। इस तापमान पर जो विकिरण उत्सर्जित होगा उसकी तरंगलम्बाई होगी

1616×10^{-26} - नॅनोमीटर -प्लैंक लम्बाई-न्यूनतम संभवनीय । उपरोक्त तापमान को ‘ प्लैंक तापमान ’ भी कहा जाता है। यह हमारे सिद्धान्तों का अंतिम छोर है। इसके पार वे काम नहीं करेंगे। तापमान अगर इसके ऊपर चला गया तो क्या होगा, हमें नहीं पता।

रमण प्रभाव

सन् 1921 की बात है। भारतीय शोधकर्ता चंद्रशेखर व्यंकट रमण लंदन से भारत लौट रहे थे। वे भूमध्य सागर से होते हुए जहाज यात्रा कर रहे थे। इस समय समुद्र के नीले रंग के विषय में उनके मन में विचार उभरे। समुद्र नीला दिखने का कारण क्या है? तब तक ऐसा माना जाता था कि यह पानी की सतह से होने वाला आकाश के नीले रंग का परावर्तन है। लेकिन रमण के मन में विचार आया कि वास्तव कारण यह नहीं हो सकता। समुद्र में कोई नीला रंग घुला हुआ नहीं है। समुद्र का जल अंजुली में लिया तो नीला नहीं दिखता। फिर अगर यह आकाश के नीले रंग का प्रतिबिंब होता तो फिर नदी, कुएं, तालाब इनका पानी भी नीला दिखना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं है। इस दरम्यान प्रकाश के बिखरने पर ही उनका शोध चल रहा था।

बिखरे हुए प्रकाश का रंग या तरंग लम्बाई यह मूल प्रकाश इतनी ही होनी चाहिए, यह लॉर्ड रॉले इस इंग्लिश वैज्ञानिक के सिद्धान्त के अनुसार अपेक्षित था।

लेकिन बिखरने के बाद मूल प्रकाश से अलग तरंगलम्बाई का प्रकाश पैदा होना, यही 'रमण प्रभाव' है।

बिखरे हुए प्रकाश की तरंगलम्बाई यह जिन अणुओं द्वारा वह बिखेरा जाता है, उनके अनुसार अलग-अलग होती है। इस कारण ऐसे बिखरे हुए प्रकाश के मापन द्वारा अनजान पदार्थ के अणुओं को पहचाना जा सकता है।

एक वर्णीय प्रकाश की किरण के फोटॉन जब तरल या ठोस वस्तु से गुजरते हैं और उनके अणुओं से टकराते हैं तो इस टकराव के फलस्वरूप वे या तो ऊर्जा का कुछ अंश खो देते हैं या फिर पा लेते हैं। दोनों स्थितियाँ, प्रकाश के वर्ण में या तरंगलम्बाई में बदलाव लाती हैं। एकवर्णीय प्रकाश की किरणों में, सबसे अधिक ऊर्जा बैंगनी रंग के प्रकाश में होती है। बैंगनी रंग के बाद नंबर आता है क्रमशः नीले, आसमानी, हरे, पीले, नारंगी या लाल वर्ण का। अर्थात् लाल वर्ण के फोटॉन में ऊर्जा सबसे कम होती है। एकवर्णीय प्रकाश ठोस वस्तु से गुजरते हुए जिस परिमाण में ऊर्जा खोता या पाता है, उस हिसाब से उसका वर्ण परिवर्तित हो जाता है। यदि मूल वर्ण ज्ञात हो तो एक निश्चित द्रव्य में से गुजरने के बाद, परिवर्तित होकर एक निश्चित वर्ण ही आएगा।

पारदर्शक माध्यम से प्रकाश गुजरते हुए, माध्यम के अणु या रेणु में प्रकाश की ऊर्जा कुछ प्रमाण में शोषित हो जाती है। इस शोषित ऊर्जा की अणु/रेणु में आंतरक्रिया होती है। अणु/रेणु के ऊर्जा स्तर में बदलाव होता है। ये बदल कायम स्वरूप के न हो तो शोषित ऊर्जा वापस उत्सर्जित की जाती है। विकिरित प्रकाश यह भी ऊर्जा उत्सर्जन का ही एक प्रकार है। विकिरित प्रकाश की तरंगलम्बाई, मूल प्रकाश की तुलना में कम या ज्यादा हो सकती है। उसके अनुसार विकिरित प्रकाश के वर्णपट में मूल प्रकाश की रेखाओं के पहले या बाद में अति क्षीण रेखाएं देखी जाती हैं। इन क्षीण रेखाओं के स्थानों और उनकी दीप्ति(Intensity) से अणु/रेणु के ऊर्जा स्तर के संबंध में जानकारी मिलती है। अणु में परमाणुओं के बंध किस प्रकार के हैं यह भी पता चलता है। अणु की संरचना का आकलन हो सकता है। पदार्थ पर प्रकाश किरण डालने से पदार्थ की संरचना तथा गुणधर्म के अनुसार विकिरण(Diffraction) होता है।

इस खोज का भौतिक विज्ञान में, आधारभूत सिद्धान्त के रूप में उपयोग किया जाता है।

सर सी.व्ही.रमण ने यह खोज कोलकता में अपने सहयोगी के.एस्.कृष्णन, के.आर.रामनाथन तथा अन्यो के साथ की थी।

सर रमण का जन्म 7 नवम्बर 1888 को तमिलनाडु के तिरुचिरापल्ली में हुआ था। 1929 में उन्हें 'सर' उपाधि से सम्मानित किया गया। 1930 में ' रमण प्रभाव ' के लिए नोबेल पुरस्कार मिला। 1954 में ' भारत रत्न ' से विभूषित किया गया। 1957 में उन्हें लेनिन शांति पुरस्कार से भी नवाजा गया। वे नोबेल पुरस्कार पाने वाले भारत के ही नहीं तो एशिया के प्रथम व्यक्ति थे।

भारत में जब राष्ट्रीय विज्ञान दिन मनाने की कल्पना सामने आयी तो सरकार ने, उस समय के विज्ञान तथा तंत्रज्ञान विभाग के सचिव डॉ. वसंतराव गोवारीकर से कहा कि वे उचित दिन का सुझाव दे। डॉ. गोवारीकर ने किसी वैज्ञानिक के जन्म/मृत्यु दिन के स्थान पर, भारत को प्रथम नोबेल पुरस्कार प्राप्त करा देने वाली खोज, जिस दिन दुनिया के सामने रखी गयी थी उस दिन अर्थात् 28 फरवरी को चुना। ' रमण प्रभाव ' को 28 फरवरी 1928 को घोषित किया गया था। भारत सरकार ने नॅशनल कौन्सिल फॉर सायन्स और टेक्नोलॉजी, कम्युनिकेशन इस संस्था के मार्फत घोषित किया कि 1986 से प्रति वर्ष राष्ट्रीय विज्ञान दिवस मनाया जाएगा। 28 फरवरी 1987 को प्रथम राष्ट्रीय विज्ञान दिवस मनाया गया।

समुद्र का पानी नीला :

सूर्य प्रकाश का किरण पानी में से गुजरते समय वह पानी के अणुओं से टकराता है। तब उसमें के अधिक तरंग लम्बाई वाले रंग(लाल से हरे तक) अणुओं में अंशतः अवशोषित हो जाते हैं। तो कम तरंग लम्बाई वाले (नीला, अस्मानी, जामूनी) विकिरण के रूप में अंशतः परावर्तित होते हैं। समुद्र की गहराई बहुत अधिक होने से प्रकाश किरणें गहराई तक यात्रा करते हैं और पानी के अणुओं से बारबार टकराते हैं। परिणाम यह होता है कि नीला, जामूनी रंग पूरी तरह परावर्तित होते हैं तो अन्य रंग पूरी तरह अवशोषित हो जाते हैं। हमारी आंखें नीले रंग के प्रति अधिक संवेदनशील होने के कारण वही हमें दिखता है। नदी, तालाब की गहराई कम होने के

कारण वहाँ हमें यह परिणाम नहीं दिखता। इसी कारण समुद्र किनारे के पानी में भी यह परिणाम नहीं मिलता।

काले बादल : बादल का मतलब पानी ही, या पानी की भाँप। वर्षा ऋतु में पानी से संपृक्त बादलों में पानी की बूंदों का आकार काफी बड़ा होता है। उनमें सूर्यकिरणें अवशोषित हो जाती हैं। अगर उपरोक्त बूंदों का आकार तरंगलम्बाई की तुलना में काफी बड़ा हो तो सारे रंग सम प्रमाण में विकिरित होते हैं और आकाश सफेद दिखता है। बर्फवृष्टि भी इसी कारण सफेद दिखती है। अन्यथा सूर्यकिरणें इसमें से गुजरते समय उनका इन पानी की बूंदों पर से विकिरण होता है। उनमें से नीचे आने वाला प्रकाश अधिकाधिक क्षीण होते जाता है। बादल की उंचाई अगर बहुत अधिक हो तो प्रकाश पृथ्वी तक पहुँचता ही नहीं। और ऐसे बादल हमें काले दिखते हैं। लेकिन काले बादलों के किनारों से विकिरण होकर बाहर आने वाले किरण सभी दिशाओं में बिखेरते हैं। उनमें से कुछ नीचे आते हैं। इस कारण काले बादलों का किनारा रूपहला दिखता है।

आकाश का रंग : वातावरण से होते हुए आते समय प्रकाश तरंगों की, धुलीकण और वायु के अणुओं से टक्कर होती है। इस दरम्यान कुछ तरंगें वातावरण में अवशोषित हो जाती हैं तो कुछ, ऊर्जा में बिना कोई बदल हुए उनकी दिशा बदल जाती है। इसे हम विकिरण (Scattering) कहते हैं। वातावरण में अधिक उंचाई पर अणु या धूलीकण बहुत ही सूक्ष्म (नैनोमीटर) होते हैं। ऐसे कणों से विकिरित हुई तरंगों की प्रखरता तरंगलम्बाई के चतुर्थ घात के व्यस्त प्रमाण में होती है। इस कारण विकिरित तरंगों में जामूनी तथा नीली तरंगें अन्य रंगों की तुलना में काफी प्रखर होती हैं। हमारी आंखें जामुनी रंग की तुलना में नीले रंग के प्रति अधिक संवेदनशील होने के कारण विकिरित होकर आने वाला प्रकाश और आकाश भी हमें नीला दिखता है। इसे ' रँले विकिरण ' ऐसा कहते हैं।

वातावरण के निचले स्तरों में उपस्थित बर्फ के कण, पानी की बूंदें इनका आकार सामान्य तौर पर तरंगलम्बाई इतना ही होता है। उनसे विकिरित हो रहे तरंग की प्रखरता तरंगलम्बाई के व्यस्त प्रमाण में होती है। विकिरित तरंगों में नीली तरंगें सबसे प्रखर होती हैं। लेकिन अन्य रंग भी प्रखर ही होते हैं। विकिरित प्रकाश के पीले, हरे रंग के कारण आकाश हल्का नीला या राखाडी दिखता है। इसे ' मिए विकिरण ' कहते हैं।

सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सूर्य क्षितिज के पास होता है। प्रकाश तरंगों को हम तक पहुँचने के लिए काफी दूरी तय करनी पड़ती है। इस यात्रा में नीले रंग की तरंगों का पहले ही विकिरण होता है। हम तक पहुँचने वाली किरणों में लाल तथा पीले तरंगों का प्रमाण काफी अधिक होता है। इस कारण हमें क्षितिज तथा आजुबाजु का आकाश लाल, पीला, नारंगी दिखता है।

इंद्रधनुष :

वातावरण से होते हुए आ रहे प्रकाश के सातों रंग एक ही गति से यात्रा करते हैं। लेकिन अन्य पदार्थों से गुजरते समय प्रत्येक रंग की गति अलग-अलग होती है। शास्त्रीय भाषा में इसे कहते हैं प्रत्येक रंग का ' अपवर्तनांक ' अलग-अलग है। परिणामतः अन्य पदार्थों से होते हुए आ रहे प्रकाश का पृथक्करण होता है और हमें सात रंग दिखते हैं। जल बिंदु पर गिरने वाला सूर्य किरण उसके अंदर प्रवेश करते समय, उसका पृथक्करण होता है। पृथक्करण हुए ये सात रंग बूंद के अंतर्पृष्ठभाग से परावर्तित होकर हमारी ओर आते हैं। बूंद पर तो सभी दिशाओं से किरण आते हैं। और बूंद के अंदर अपवर्तन, अपस्करण होकर उलट दिशा में भिन्न-भिन्न कोन करते हुए विचलित होकर बाहर आते हैं। लेकिन आपाती किरणों के साथ $40-42^\circ$ का विचलन कोन (Angle of deviation) करते हुए बाहर आने वाले किरण अधिक प्रखर होते हैं। इस कारण लाल रंग सबसे ऊपर तो जामुनी सबसे नीचे होने वाला प्रथम दर्जे का इंद्रधनुष हमें दिखता है।

बूंद के अंदरूनी हिस्से में दो बार परावर्तन होकर 50° डिग्री विचलन कोन से हम तक पहुँचने वाले किरणों का दोयम दर्जे का इंद्रधनुष कभी-कभी दिखता है। यहाँ रंगों का क्रम विरुद्ध होता है। तिहरे या चतुर्थ दर्जे की कमानें बहुत धुंधली होने से हम देख नहीं सकते। हमारी आंख से, शिरोबिंदु होने वाली और अक्ष के साथ $40-42^\circ$ अंश के दीर्घ गोलाकार परीघ पर रहें सारे बिंदुओं के कारण तैयार होने वाले सप्त रंगी रिंगन का क्षितिज के ऊपर बना अर्धगोलाकार हिस्सा ही हम देख सकते हैं।

अरोरा(ध्रुवीय प्रकाश) :

सूर्य पर होने वाले तुफानों के विद्युत भारित कण बहुत तेजी से पृथ्वी की ओर आते हैं। इन्हें ही * 'सौर पवन' कहते हैं। पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र के कारण यह सौर पवन केवल पृथ्वी के चुंबकीय ध्रुवों के आसपास ही वातावरण में प्रवेश कर सकते हैं। वातावरण में प्रवेश के बाद उनकी वातावरण के अणुओं से टक्कर होती है। ये अणु उत्तेजित होकर प्रकाश उत्सर्जित करते हैं। प्राणवायु के कारण हरा, नत्रवायु के कारण नीला आदि। इस प्रकाश की प्रखरता, भारित कणों की संख्या, और उनकी ऊर्जा इन बातों पर निर्भर होती है। अर्थात् इसके लिए सौर पवन का बहना, अणुओं के साथ उनका टकराव, उससे अणुओं का उत्तेजित होना तथा प्रकाश उत्सर्जित करना ये कारण हैं।

फोटॉन

- इसमें कण और तरंग दोनों के गुणधर्म एकत्र देखने मिलते हैं—१) वस्तुमान, संवेग, आघात ये हैं कण के गुणधर्म।
२) व्यतिकरण(Interference), विवर्तन (Diffraction), ध्रुवीकरण(Polarisation) ये हैं तरंग के गुणधर्म।
फोटॉन में वस्तुमान नहीं लेकिन संवेग है। वास्तव में संवेग वस्तुमान पर निर्भर होता है। वस्तुमान न होने वाले फोटॉन को संवेग होना और उसका इतर कणों पर आघात होना यह प्रकृति का एक आश्चर्य है। फोटॉन के इसी गुणधर्म के कारण उसे “ शक्तिपुंज “ कहा जाता है।
- फोटॉन -इलेक्ट्रॉन की टक्कर : इसमें फोटॉन अपनी ऊर्जा में से अंशतः ऊर्जा इलेक्ट्रॉन में संक्रमित करता है। इलेक्ट्रॉन की ऊर्जा बढ़ती है। इसे कॉम्पटन परिणाम कहते हैं।_इससे उलट अधिक ऊर्जाधारी इलेक्ट्रॉन की अगर फोटॉन से टक्कर_हुई तो इलेक्ट्रॉन अपनी ऊर्जा फोटॉन में संक्रमित करता है और फोटॉन की ऊर्जा बढ़ती है। फोटॉन परमाणु से टकराव के बाद उसे उत्तेजित अवस्था में पहुँचाते हैं या कहिये परमाणु के इलेक्ट्रॉन्स को दोलित(Oscillate) करते हैं। कुछ समय के उपरांत, उत्तेजित परमाणु फिर फोटॉन उत्सर्जित करते हैं।
- प्रकाश अर्थात् फोटॉन कणों का प्रवाह, फोटॉन विद्युत चुंबकीय तरंगों के वाहक। इसीके कारण इस बल का प्रत्यय आता है। विद्युत चुंबकीय तरंगों का वर्णपट याने अलग-अलग

कंपन संख्याओं के फोटॉनों का प्रत्यक्ष परिणाम और वह हमें वर्णपट की रेखाओं के रूप में देखने मिलता है।

- फोटॉन का वस्तुमान किसी भी हालत में 10^{-47} ग्रॅम से अधिक नहीं हो सकता। वह इलेक्ट्रॉन से 10^{-20} गुना हल्का है ही। ब्रह्माण्ड में फोटॉन्स की संख्या प्रोटॉन्स-इलेक्ट्रॉन्स की संख्या से एक अरब गुना होनी चाहिए। मुक्त फोटॉन की ऊर्जा = $E = hq$ (h =प्लैंक स्थिरांक, q = आवृत्ति)।
- फोटॉन उत्पत्ति की स्थितियाँ -
 - ^ जब विद्युत आवेशधारी कणों की गति में कमी होती है।
 - ^ जब उनके विद्युत आवेश में परिवर्तन होता है।
- फोटॉन का इलेक्ट्रॉन द्वारा शोषित होना : फोटॉन अपनी कुछ ऊर्जा इलेक्ट्रॉन को अंतरित कर सकता है, लेकिन कभी १०० % नहीं। वह कभी इलेक्ट्रॉन में शोषित नहीं हो सकता।

८ . पदार्थों के कुछ विशेष गुणधर्म

निरपेक्ष शून्य तापमान (Absolute Zero Temp.)-

सन् १७८७ में फ्रेंच वैज्ञानिक चार्ल्स के ध्यान में आया कि वायु का तापमान शून्य अंश के नीचे एक अंश से कम किया तो उसका आयतन $1 / 273$ इस गुणोत्तर से कम होता है। इससे उलट तापमान शून्य के ऊपर एक अंश से बढ़ाया तो वह इसी गुणोत्तर से बढ़ जाता है। फिर सवाल खड़ा हुआ कि क्या इसी क्रम में अगर तापमान कम करते-करते शून्य से नीचे 273 अंश से कम किया तो ? क्या वायु का आयतन शून्य हो जाएगा अर्थात् वह अदृश्य हो जाएगा ? लेकिन यह अजीब बात होगी।

इसपर सन् १८६० में लॉर्ड केल्विन ने सूचित किया कि - 273 अंश सेल्सियस पर वायु का आयतन तो शून्य होना संभव नहीं, लेकिन उस तापमान पर वायु की गतिज न्य ऊर्जा शून्य हो सकती है। इस तापमान पर वायु के कणों की गति शून्य होगी। या फिर वायु, एक अंश से ठंडा किया तो उसकी औसत गतिज न्य ऊर्जा $1 / 273$ इस गुणोत्तर से कम होगी। अर्थात् -273 अंश सेल्सियस तापमान पर वायु के अणुओं की औसत गतिज न्य ऊर्जा शून्य होगी। लेकिन ऐसा देखा गया है कि इस तापमान पर भी कुछ पदार्थ अपनी ऊर्जा कुछ परिमाण में बचाए रखते हैं। इस विशिष्ट ऊर्जा को ' झीरो पॉइंट एनर्जी ' कहा गया है।

साफ है -273 अंश सेल्सियस यही, किसी भी पदार्थ का न्यूनतम तापमान हो सकता है। आधुनिक उपकरणों के आधार पर यह कीमत -273.16 अंश सेल्सियस निश्चित की गयी है। मात्र किसी भी ढंग से इस तापमान को प्राप्त करना अब तक संभव नहीं हुआ है। अब इस न्यूनतम तापमान के आधार पर तापमान का एक नया परिमाण निश्चित किया गया है। इसे तापमान का केल्विन परिमाण कहा जाता है। इसमें -273.16 अंश सेल्सियस यानि शून्य अंश केल्विन। अर्थात् शून्य डिग्री सेल्सियस यानि 273.16 डिग्री केल्विन।

(तापमान मापन की दो पद्धतियां सर्व ज्ञात हैं, ' सेल्सियस ' और ' फॅरनहाइट '। पहले सेल्सियस को ही ' सेंटीग्रेड ' कहा जाता था। सेल्सियस मापन में पानी का हिमांक बिंदु शून्य और उत्कलन बिंदु 100° माना जाता है। तो फॅरनहाइट पद्धति में वे क्रमशः 32 और 212 अंश हैं। इनमें से फॅरनहाइट पद्धति इंग्लैंड, अमेरिका में उपयोग में लायी जाती है। बाकी दुनिया में सेल्सियस पद्धति है।)

ब्लैक बॉडी

काली सतह के सभी पदार्थों पर किसी भी रूप में पड़ी ऊर्जा तुरन्त सोख ली जाती है। कृष्णवर्णी पृष्ठभाग वाले पदार्थ को ' ब्लैक बॉडी ' के तौर पर जाना जाता है।

किसी भी पदार्थ पर प्रकाश के किरण पड़ने पर तीन बातें होती हैं। प्रकाश ऊर्जा का कुछ हिस्सा परावर्तित होता है, कुछ हिस्सा पदार्थ से होते हुए संक्रमित होता है और कुछ हिस्सा पदार्थ द्वारा शोषित कर लिया जाता है। चमकिली सतह से ऊर्जा का बहुत बड़ा हिस्सा परावर्तित होता है। उसकी तुलना में शोषण और संक्रमण अत्यल्प होता है। पारदर्शक पदार्थ से लगभग सारी ऊर्जा संक्रमित होती है। परावर्तन और शोषण अत्यल्प होता है। पदार्थ कृष्ण वर्णीय होगा तो अधिकतर ऊर्जा अवशोषित हो जाती है। थोड़ी ऊर्जा संक्रमित और परावर्तित होती है।

समझो किसी कृष्णवर्णी पदार्थ ने, उसपर गिरी पूरी ऊर्जा अवशोषित कर ली तो परावर्तन और संक्रमण शून्य होगा। ऐसे वैशिष्ट्यपूर्ण कृष्णवर्णी पदार्थ को ' परिपूर्ण कृष्णवर्णी पदार्थ ' या ' परफेक्ट ब्लैक बॉडी ' कहते हैं। लेकिन प्रकृति में ऐसे पदार्थ का आदर्श रूप नहीं मिलता। कृष्णवर्णी पदार्थ जिस तरह उष्णता का अधिकतर शोषण करता है, उसी तरह ऐसे पदार्थ को गर्म किया तो वह अधिक से अधिक ऊर्जा उत्सर्जित करता है। कृष्णवर्णी पदार्थ का तापमान दुगुना किया तो उत्सर्जित होने वाली ऊर्जा का प्रमाण १६ गुना बढ़ जाता है। अर्थात् कृष्णवर्णी पदार्थ से उत्सर्जित होने वाली ऊर्जा का प्रमाण तापमान के चतुर्थ घात के अनुपात में बदलता है। यह कृष्णवर्णी पदार्थ का विशेष गुणधर्म है।

हिलीयम की अतिद्रावकता

- अति न्यूनतम तापमान पर कुछ धातु 'अतिसंवाहकता' या 'सुपरकंडक्टिविटी' दर्शाते हैं, जहां विद्युत्प्ररोध शून्य होता है। वैसे ही -
- हिलीयम यह वायु अति न्यूनतम तापमान पर अतिद्रावकता या सुपरफ्लुइडिटी दर्शाता है। हिलीयम का तापमान कम करते हुए चलें तो 4.2° केल्विन या -268.6° सेल्सियस पर वह वायुरूप अवस्था से द्रवरूप अवस्था में जाता है। और कम तापमान, 2.19° केल्विन पर हिलीयम अतिद्रावकता का गुणधर्म धारण कर लेता है। किसी भी अन्य पदार्थ का तापमान जब कम किया जाता है तो वह क्रमशः वायुरूप से द्रवरूप और आगे घनरूप में

अवस्थांतरित हो जाता है। लेकिन हिलीयम की विशेषता यह है कि उसका तापमान लगभग निरपेक्ष शून्य तक ले जाने पर भी वह घनरूप अवस्था में नहीं आता। 2.19° केल्विन तक सामान्य गुणधर्म दिखाने वाले हिलीयम को, हिलीयम-1 तथा उस तापमान के नीचे अतिद्रावकता वाले हिलीयम को हिलीयम-2 नाम दिया गया है। जिस तापमान पर हिलीयम यह गुणधर्म धारण कर लेता है उसे 'लॅम्डा तापमान' नाम दिया गया है।

- प्रवाही पदार्थों में विविध स्तरों पर जो घर्षण होता है उसे 'व्हिस्कॉसिटी' कहते हैं। खाने के तेल की व्हिस्कॉसिटी अधिक, उसकी तुलना में पानी की कम। इस कारण पृष्ठभाग पर डाला हुआ पानी सहजता से फैल जाता है या प्रवाही होता है। तौलनिक दृष्टि से तेल की गतिविधि धीमी रहती है। हिलीयम का अतिद्राव में रूपान्तर होने के बाद उसकी व्हिस्कॉसिटी पूरी तरह नष्ट होती है। अतिद्रावी हिलीयम कांचनलिका में रखा तो वह नलिका के अंदरूनी सतह से उर्ध्वगामी होता है, ऊपर प्रवाही होते हुए नली से बाहर आ जाता है। मान लो नलिका को जोर से परिवलन प्रदान किया गया तो अंदर के हिलीयम में किसी भी ढंग की हलचल नहीं होगी। अन्य द्रव मात्र, नलिका के साथ परिवलन करेंगे।

ध्वनि

- ध्वनि को माध्यम की आवश्यकता है।
- ध्वनि तरंगों को 'अनुतरंग' या (Longitudinal) तरंग कहते हैं। माध्यम से गुजरते समय माध्यम का आवर्ति आकुंचन-प्रसरण होता है।
- ध्वनि तरंग की गति तापमान, माध्यम का प्रकार, भूपृष्ठ से उंचाई आदि बातों पर निर्भर होती है। शुष्क हवा में, शून्य अंश सेल्सियस तापमान पर, समुद्र की सतह पर ध्वनि की गति होती है $= 331.3 + (0.6 \times \text{तापमान})$ मीटर / सेकंड। हम जैसा-जैसा ऊपर जाते हैं वैसा-वैसा माध्यम हल्का या छितरा होते जाता है और तापमान भी कम होता है। समुद्र सतह पर, 15° से. पर है-340 मी./से.।
- घन/द्रव पदार्थ में ध्वनि की गति इस सूत्र से निकाली जाती है—स्थितिस्थापकता गुणधर्म (Elasticity) / जडत्व (घनता, जैसे पानी की घनता 1000 कि.ग्रं./घन मीटर)। ध्वनि की गति माध्यम की घनता के अनुपात में बढ़ती है। भिन्न पदार्थों में गति--
- हिलीयम ९६५ मी. / सेकंड
- पानी १५३० ----;;-----

- सामान्य लकड़ी २००० मी. / से.
- सोना ३२४० मी. / से.
- स्टील ५९४० मी. / से.
- मानवी श्रवणशक्ति की मर्यादाएं २० से लेकर तो २०,००० हर्ट्ज़ हैं। इससे कम आवृत्ति की आवाज ' इन्फ्रासोनिक ' तो अधिक आवृत्ति की ' अल्ट्रासोनिक ' कहलाती है। हाथी, डॉल्फिन जैसे प्राणी इन्फ्रासोनिक तो बिल्ली, कुत्ता, चमगादड़ जैसे अल्ट्रासोनिक वर्ग में आते हैं। अधिक आवृत्ति वाला ध्वनि ' उच्च तारत्व ' (High Pitch) का होता है और कम दूरी तय कर सकता है। ध्वनितरंगों की आवृत्ति की बराबरी वाले कंपन उत्पन्न होने पर अनुनाद (रेजोनेंस) होकर ध्वनिवर्धन (ध्वनि में शक्ति वृद्धि) होती है।
- क्वार्ट्ज़ स्फटिक की सहायता से चाहे जिस आंदोलन वाला श्राव्यातीत ध्वनि पैदा किया जा सकता है। अब तो प्रति सेकंड एक अरब से अधिक आंदोलनों वाला ध्वनी पैदा किया जा सकता है। क्वार्ट्ज़ के स्फटिक से प्रत्यावर्ति विद्युत प्रवाह (A.c.current) बहते समय श्राव्यातीत ध्वनि पैदा होता है। स्वास्थ्य संबंधित उपयोग के लिए एक से दस करोड़ आंदोलनों वाला श्राव्यातीत ध्वनि उपयोग में लाया जाता है।
- अवश्राव्य ध्वनि: एक विशिष्ट तरह की ध्वनि के कारण ही पशु-पक्षियों को प्राकृतिक आपत्तियों का पता लगता है, ऐसा तर्क है। ध्वनि के इस प्रकार को अवश्राव्य (Infra Sound) ध्वनि कहते हैं। मनुष्य इसे नहीं सुन सकता चूंकि इनकी कंपन संख्या 20 से कम होती है। यह ध्वनि बिना किसी अवरोध के हजारों कि.मी.अंतर पार कर सकता है। भूकम्प, ज्वालामुखी, सुनामी, समुद्री तरंगें, विस्फोट जैसे अनेक प्राकृतिक कारणों से यह ध्वनि उत्पन्न होता है। हाथी 14 हर्ट्ज़ कंपनसंख्या वाली अवश्राव्य ध्वनि लहरें पैदा कर सकते हैं। दस कि.मी.दूरी के परिसर में वे आपस में संपर्क रखते हैं। भूत आदि से जुड़े कई अनुभव और प्रसंगों की कारणमीमांसा अवश्राव्य ध्वनि के सहारे की जा सकती है।
- मनुष्य के कान के लिए, ध्वनि का स्वरमान (Pitch), उसकी आवृत्ति निश्चित करती है। उच्च आवृत्ति, उच्च pitch।
- अपने मष्तिष्क की स्मृति में, ध्वनि की अनुभूति 0.1 सेकंड रहती है। अर्थात् प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनाई देने के लिए साद और प्रतिध्वनि इनमें 0.1 सेकंड का अंतर होना चाहिए।

अन्यथा दोनों एकदूसरे में मिलकर जो परिणाम मिलता है उसे हम ' ध्वनि का घूमना ' कहते हैं। जैसे छोटे कमरे में।

- **स्वनातीत गति : (Supersonic Speed) :-** वस्तु की गति, ध्वनि की गति से अधिक हुई तो उस गति को 'स्वनातीत' गति कहते हैं। स्वनातीत गति ' माख ' क्रमांक से दर्शायी जाती है। माख क्रमांक अर्थात् हवाई जहाज की गति तथा ध्वनि की गति इनका गुणोत्तर। कॉर्कॉर्ड यह यात्रियों की यात्रा के लिए बनाया गया प्रसिद्ध स्वनातीत विमान है। यह दो माख गति से अर्थात् ध्वनि की गति से, दुगुनी गति से यात्रा करता है। ध्वनि की गति से अधिक गति से यात्रा करने वाला हवाई जहाज प्रघाति तरंगें पैदा करता है। इस कारण यह विमान अगर घरों के करीब से गुजरा तो खिड़कियों के कांच आदि टूट सकते हैं। (35000 फिट उंचाई पर ध्वनि की गति 1060 कि.मी.प्रति घंटा होती है)।
- **सोनार : साउंड नेव्हिगेशन अँड रेंजिंग :-** पानी के नीचे की वस्तुओं की खोज करने के लिए रडार या दृश्य किरणों का कोई उपयोग नहीं। उसके लिए ध्वनि तरंगें ही सर्वोत्तम हैं। खारे पानी में ध्वनि की गति प्रति घंटा 5500 कि.मी. या प्रति सेकंड 1533 मीटर होती है। सोनार यंत्रणा, रडार के समान ही कार्य करती है। ध्वनि का स्पंद पैदा कर उसे प्रक्षेपित किया जाता है। पानी के नीचे की वस्तु से टकराकर परावर्तित हुई ध्वनि तरंगें ग्रहण की जाती हैं। उससे वस्तु का स्थान तथा गति को समझा जा सकता है। इस यंत्रणा में 5000 से 50000 हर्ट्ज़ कंपन संख्या की ध्वनि तरंगें उपयोग में लायी जाती हैं। 1912 में अटलांटिक महासागर में डूबे टायटैनिक यात्री जहाज की खोज इसी तंत्र का उपयोग कर की गई। यह यंत्रणा प्रमुखता से युद्ध तंत्र में उपयोग में लायी जाती है।
- **भूपृष्ठ के नीचे के पानी, खनिज, तेल आदि के भंडार खोजने के लिए ध्वनि तरंगों का उपयोग किया जाता है।** ध्वनि की गति हवा की तुलना में घन या द्रव माध्यम में कई गुना होती है। परावर्तन, अपवर्तन आदि गुणधर्मों, नियमों के संबंध में प्रकाश किरणें तथा ध्वनि तरंगें इनमें काफी समानता हैं। एक माध्यम से दूसरे माध्यम में प्रवेश करते समय, प्रकाश के समान ही ध्वनि तरंगें भी परावर्तित तथा अपवर्तित होती हैं।

ध्वनि की तीव्रता

- कंपन यह सभी प्रकार के ध्वनि का स्रोत है।
- हम जिस ध्वनि का श्रवण कर सकते हैं वह ध्वनि हवा में प्रति सेकंड 300 मीटर गति से यात्रा कर सकता है।
- डेसिबल इस एकक में ध्वनि की तीव्रता मापी जाती है। विशिष्ट मर्यादा से अधिक तीव्रता का ध्वनि अगर कान से लगातार टकराता रहा, तो कान की क्षमता कम हो सकती है। 85 डेसिबल ध्वनि का स्तर हमारे श्रवण इंद्रिय के लिए सुरक्षित माना जाता है। कान के अंतर्भाग में 23,500 से अधिक सूक्ष्म पेशियां होती हैं। रास्ते के उच्चतम शोर का स्तर 95 डेसिबल तो लोकल की खडखडाहट का 110 होता है।
- डॉप्लर परिणाम :-

ख्रिश्चन डॉप्लर इस ऑस्ट्रियन वैज्ञानिक ने 1842 में खोज निकाले इस परिणाम की काफी चर्चा अन्यत्र हो चुकी है।

ध्वनि का स्रोत स्थिर हो तो उससे निकालने वाली ध्वनि तरंगें चारों दिशाओं में फैलती हैं। ऐसे समय तरंगशीर्ष (Crest) या तरंगपाद (Trurf) इनके बीच का अंतर समान होता है। दो तरंगशीर्षों के बीच का अंतर याने तरंगलम्बाई और एक विशिष्ट स्थान को एक सेकंड में पार करने वाले तरंगशीर्षों की कुल संख्या अर्थात् तरंग की कंपन संख्या। तरंग की लम्बाई और कंपन संख्या इनका गुना ध्वनि की गति देता है। ध्वनि तरंगों के कारण माध्यम में एकांतर से उच्च नीच दबाव की श्रृंखला पैदा होती है। उसी तरह ध्वनि की दिशा में ही माध्यम के कणों का आंदोलन होता है। ऐसी तरंगों के 'अनुतरंग' कहते हैं। ध्वनि की तीव्रता (Pitch) कंपन संख्या (Frequency) पर निर्भर होती है। आवाज़ की तीक्ष्णता या मृदुता कंपन के आयाम (Amplitude) पर निर्भर होती है।

- अगर ध्वनि का स्रोत गतिमान हो तो एक तरंगशीर्ष पैदा होने के बाद स्रोत आगे सरका होता है। इस कारण स्रोत की गति की दिशा में तरंगशीर्षों की भीड़ हो जाती है। यह भीड़ याने कंपन संख्या में वृद्धि। परिणामतः ध्वनि की तीव्रता अधिक। अर्थात् ध्वनि का स्रोत अगर हमारी दिशा में आ रहा हो तो ध्वनि की तीव्रता हमें बढी हुई लगती है। इससे उलट ध्वनि का स्रोत दूर जाते समय तरंगशीर्षों के बीच का अंतर बढते जाता है तथा कंपन

संख्या कम होकर ध्वनि की तीव्रता कम हो रही है, ऐसा हमें भास होता है। ध्वनि तरंगों की भासमान उच्च या नीच कंपनसंख्या निम्न सूत्र द्वारा प्रदर्शित की जाती है—

ध्वनि का स्रोत आपकी ओर आ रहा हो तो -

$$\text{भासमान कंपनसंख्या} = (\text{ध्वनि की गति} / \{\text{ध्वनि की गति} - \text{स्रोत की गति}\}) \times \text{वास्तव कंपन संख्या}$$

ध्वनि का स्रोत दूर जा रहा हो तो -

$$\text{भासमान कंपन संख्या} = (\text{ध्वनि की गति} / \{\text{ध्वनि की गति} + \text{स्रोत की गति}\}) \times \text{वास्तव कंपन संख्या}$$

ऊर्जा

एक गेंद जमीन पर पड़ी हुई है। समय के साथ कोई बदलाव नहीं होता। कोई हलचल नहीं है। यह विन्यास(Confugaration) स्थिर (Static) है।

अब यही गेंद जमीन पर ही है लेकिन परिवलनरत है। यहाँ यह गृहित लिया गया है कि परिवलन को विरोध करने वाला या उसकी गति कम करने वाला घर्षण, हवा का प्रतिरोध जैसा कोई विरोधी बल नहीं है। इस कारण उसका कायम गति से परिवलन चल रहा है। इसकी किसी भी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं। लेकिन वह गतिहीन नहीं है। यह स्थिर नहीं तो अचर, अचल, अप्रगामी (Stationary) है।

स्थितिजन्य ऊर्जा : यह ऊर्जा उस अन्योन्यक्रिया से जुड़ी होती है जो गति पैदा कर सकती है। जब हम कहते हैं कि दो चीजें एकदूसरे पर अन्योन्यक्रिया कर रहे हैं तो उसका अर्थ है उन्हें एकदूसरे से दूर करने या एक दूसरे की ओर ठेलने के लिए ऊर्जा लगती है। जब इससे उलट क्रिया होती है तो ऊर्जा मुक्त होती है। जब हम उंचाई से किसी वस्तु को नीचे डालते हैं तो उंचाई के कारण वस्तु में संग्रहित स्थितिजन्य ऊर्जा, गतिजन्य ऊर्जा में रूपान्तरित होती है। इसे ही हम कहते हैं, ऊर्जा मुक्त हुई। कुल ऊर्जा संरक्षित रहती है। स्थितिजन्य ऊर्जा में कमी होती है तो गतिजन्य में वृद्धि। या फिर इससे उलटा। ऊपर फेंके गये पत्थर की गति कम होती लेकिन उसमें संग्रहित हो रही स्थितिजन्य ऊर्जा में वृद्धि। दोनों बातों के समय या सामान्यीकरण करें

तो अन्योन्य क्रिया के समय गति में बदल होता है या प्रवेग अस्तित्व में आता है। यह ऊर्जा उन पदार्थों की सापेक्ष स्थिति से जुड़ी होती है जो एकदूसरे के साथ अन्योन्यक्रियारत हैं। ब्रह्माण्ड में हर वस्तु की दर्शनीय ऊर्जा बदल जाती है, जब आप संदर्भ चौखट बदल देते हैं। अर्थात् ऊर्जा यह वस्तु का निरपेक्ष (Absolute) गुणधर्म नहीं है।

गतिजन्य ऊर्जा : यह वस्तु की हलचल से संबंधित ऊर्जा है।

#उष्मा यह भी एक ढंग से गतिजन्य ऊर्जा का ही एक अन्य रूप है। जब संख्या में बहुत सारे कण बेतरतीब ढंग से गति करते हैं तो यह ऊर्जा, उष्मा के रूप में सामने आती है। उष्मा विकिरण के रूप में उत्सर्जित होती है।

प्रकृति में ' स्थितिज ऊर्जा '(Potential Energy)जितनी न्यूनतम होगी उतना वह गठन (Structure) अधिक स्थायी होता है। हम पृथ्वी की सतह पर अधिक स्थिर, सुरक्षित अनुभव करते हैं। यहाँ स्थितिजन्य ऊर्जा शून्य होती है ।

किसी वस्तु में गतिज ऊर्जा उसके रेखीय वेग अथवा कोणीय वेग अथवा दोनों के कारण हो सकती है। गतिज ऊर्जा का मान उस वस्तु को विरामावस्था से गति में लाने के लिए किये गये कार्य के बराबर होता है।

परिबल (momentum of force) = वस्तु से लंबरूप अंतर X बल । इस विशिष्ट बल के कारण वस्तु में परिवलन (Rotation) पैदा होता है। चलते समय हम हाथ इसलिए हिलाते हैं ताकि कंधे से कमर तक शरीर स्थिर रहे। और ऊर्जा कायम रखने के लिए ही चलते समय, हमारे हाथ अपने आप आगे-पीछे होते हैं। शरीर, दाये-बाये परिवलनशील न होते हुए हम सीधे चल सकते हैं। नल या दरवाजा खोलते समय हम परिबल का ही उपयोग करते हैं।

परिवलनशील पिंड पर केंद्रोत्सारी बल : परिवलनशील केंद्र के पास केंद्रोत्सारी बल शून्य होता है, तो अक्ष के लम्बरूप विषुववृत्त पर यह अधिकतम होता है। उदा. पृथ्वी के परिवलन के कारण उत्पन्न होने वाला केंद्रोत्सारी बल विषुववृत्त पर उच्चतम तो भौगोलिक उत्तर/दक्षिण ध्रुवों पर न्यूनतम या शून्य होता है। विषुववृत्त से ध्रुवों की तरफ जाते समय वह कम होते जाता है।

उष्मीय ऊर्जा (Thermal Energy)

उष्मा गतिकी (Thermo Dynamics)

प्रथम नियम :

- उष्मीय ऊर्जा की बात करते समय स्वाभाविक रूप से किसी प्रणाली के कार्य, उष्मा और ऊर्जा का अध्ययन उसमें शामिल होगा।
- उष्मा का प्रवाह : उष्मा यह उष्मीय ऊर्जा का एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में अंतरण है।
- तापमान : यह अणु और परमाणुओं की गतिज ऊर्जा का औसत है। प्रणाली का तापमान यह उसकी ऊर्जा के अनुपात में होता है। तापमान यह सांख्यिकीय (Statistical) गुणधर्म है। लेकिन तापमान यह बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित कणों के लिए ही व्यक्त किया जा सकता है। अति निम्न तापमान पर या निरपेक्ष शून्य के लगभग तापमान पर कणों की प्रणाली उस अवस्था में रूपांतरित हो जाती है जिसे “ बोस-आइन्स्टाइन कन्डेन्सेट “ कहा जाता है। यह निम्नतम ऊर्जा अवस्था है। लेकिन फिर भी शून्य ऊर्जा अवस्था नहीं है। लेकिन इसे सैद्धांतिक (Hypothetical) अवस्था ही कहा जाएगा। चूंकि यह वर्णन केवल ‘आदर्श वायु’ के लिए ही कुछ गृहितकों के नीचे और कुछ अंदाज़ तक वैध है। वास्तविक जगत में उसकी वैधता नहीं भी हो सकती।
- उष्मीय ऊर्जा : अणु और परमाणुओं की कुल गतिज ऊर्जा (गतिज ऊर्जा = $\frac{1}{2} mv^2$)
उष्मीय ऊर्जा अधिक तप्त पदार्थ से कम उष्ण पदार्थ की ओर प्रवाहित होती है। उच्च तापमान से निम्न तापमान की ओर।

प्रथम नियम :-

हम ऊर्जा को न उत्पन्न कर सकते हैं, न उसे नष्ट कर सकते हैं।

सिर्फ उसका रूपांतर होता है। (यह ऊर्जा के अविनाशित्व का ही नियम है।)

द्वितीय नियम :

- जिस उष्मा गतीय प्रक्रिया में बाहरी हस्तक्षेप नहीं होता और उसे पर्याप्त समय उपलब्ध होता है उसे तत्क्षण प्रक्रिया (spontaneous Process) कहते हैं।

- तत्क्षण प्रक्रिया के दरम्यान प्रणाली तथा आजुबाजु का परिसर इनमें हो रहा ' एन्ट्रॉपी ' बदल धनात्मक होता हैं।

अतिसंवाहकता

अतिसंवाहकता की खोज 1911 में हुई थी। कुछ पदार्थों को एक विशिष्ट तापमान के नीचे ठंडा करने पर उसका विद्युत प्रवाह के प्रति प्रतिरोध शून्य होता है और वे चुंबकीय क्षेत्र को बाहर कर देते हैं। ऐसे पदार्थों को अतिसंवाहक कहते हैं और ऐसे गुणधर्म को अतिसंवाहकत्व। अतिसंवाहकता की खोज के बाद से बिल्कुल 1987 तक अर्थात् लगभग 75 सालों तक ऐसे गुणधर्म -248° सेंटीग्रेड से भी अधिक ठंडे किए हुए कुछ पदार्थों में दिखाई देते थे। लेकिन 1987 में बेडनॉर्ज़ और म्युलर ने तांबे के ऑक्साइड पर आधारित कुछ संयुक्तों में यह गुणधर्म -234° से. तापमान पर दिखा दिये। और कुछ दिनों में यह मर्यादा -128° से. तक पहुंची। अब प्रतिक्षा है, दैनंदिन जीवन में पाये जाने वाले तापमान पर यह गुणधर्म बताने वाले पदार्थों की।

वास्तव में अतिसंवाहकता संकल्पना 1970 के दरम्यान स्पष्ट हुई। वह ' बीसीएस् ' सिद्धान्त अर्थात् बार्डीन, कूपर, श्रफिर सिद्धान्त के तौर पर। इस सिद्धान्त का सबसे सफल पुंजभौतिकी पर आधारित स्पष्टीकरण उन्होंने दिया था। इसके लिए उन्हें 1972 में नोबेल पुरस्कार दिया गया।

पृष्ठ तनाव (Surface Tension)

किसी बर्तन में जो पानी होता है, उसके अंतर्गत हिस्से में जो पानी अणु होते हैं, उनपर सभी दिशाओं से समान बल कार्य करता है। इस कारण वे अणु संतुलन की अवस्था में होते हैं। जो अणु पृष्ठभाग (सतह) पर होते हैं उनपर नीचे की ओर से, तो जो बाजू में होते हैं उनपर केवल अंदर की ओर से ही बल कार्य करते हैं। उनपर न उर्ध्व दिशा से, न बाहर की दिशा से कोई बल कार्य करता है। परिणामतः पानी की सतह, एक तने हुए रबर के प्रतल जैसी अवस्था में रहती है। पृष्ठ तनाव या Surface Tension यही है। इस तनाव का प्रतल की दिशा में मापन किया जाता है। पानी की सतह पर यह प्रति सेंटीमीटर 72 डाइन होता है। इनेगिने पदार्थों में यह पृष्ठ तनाव पानी से अधिक होता है। अपवाद है पारे का। पारे का पृष्ठ तनाव प्रति सें. मी. 480 डाइन होता है। बढ़ते तापमान के साथ यह कम होता है।

उदा. कपड़े धोने के लिए हम साबुन या डिटर्जेंट उपयोग में लाते हैं। यह पानी का पृष्ठ तनाव कम करता है। इस कारण छेदों में तथा अस्वच्छ हिस्से में पानी शिघ्रता से शोषित हो जाता है, जो गंदगी की सफाई करता है।

साबून के पानी के गुब्बारे :- प्रमुख बात यह है कि शुद्ध पानी का बुलबुला कभी फुलता नहीं। साबून या डिटर्जेंट उसमें मिलाना पड़ता है। ऐसे पदार्थों को ' सरफेक्टेंट ' कहते हैं। ' सरफेस अॅक्टिव्ह एजेंट ' इसका वह संक्षिप्त रूप है। पानी में साबुन मिलाकर गुबारा तैयार किया कि पानी का एक बहुत पतला प्रतल तैयार होता है। साबुन के कारण पानी का पृष्ठ तनाव एक तिहाई इतना कम होता है। गुब्बारे का आकार बढ़ने पर साबुन के अणुओं का केंद्रीकरण (Concentration) कम होता है और पानी का पृष्ठ तनाव बढ़ता है। उसी समय ये अणु पानी का बाष्पीकरण कम करते हैं। इस कारण गुब्बारा अधिक समय तक स्थिर रहता है। साबुन के अणु, गुब्बारे को मजबूती नहीं लेकिन स्थिरता देते हैं। पानी के पृष्ठ तनाव के कारण ही गुब्बारे का आकार गोल होता है। चूंकि उपलब्ध घनफल के लिए गोल सतह सबसे कम होती है। गुब्बारे में दिखने वाले विविध रंग, प्रकाश किरणों का परावर्तन(Reflection), अपवर्तन(Refraction) तथा व्यतिकरण (Interference) इनके एकत्र परिणाम के कारण होते हैं।

- पृष्ठ तनाव, सतह के क्षेत्र को न्यूनतम कर देता है। इसी कारण गुरुत्व रहित क्षेत्र या निर्वात में द्रव की बुंद गोल (Spherical) आकार ग्रहण कर लेती है।

प्लाज्मा अवस्था

हमें पदार्थों की घनरूप, द्रवरूप, वायुरूप ये तीन अवस्थाएं ज्ञात हैं। घनरूप पदार्थ के अणु एकदूसरे के साथ पूरी तरह जकड़े हुए होते हैं। द्रवरूप पदार्थ के अणुओं में आकर्षण बहुत कम होता है तो वायुरूप अवस्थाओं में यह आकर्षण लगभग शून्य होता है। एक विशिष्ट तापमान के बाद घनरूप पदार्थ द्रवरूप में बदल जाता है और एक उच्च तापमान पर द्रव, वायुरूप अवस्था में पहुँच जाता है। दो हजार सेल्सियस तापमान के अन्दर ये अवस्थाएं देखने मिलती हैं। लेकिन अति उच्च तापमान पर पदार्थ एक ऐसी अवस्था में पहुँचता है, जहाँ प्रोटॉन, इलेक्ट्रॉन आयन्स ऐसे विद्युतधारी कणों की अव्यवस्थित भरमार रहती है। इसे प्लाज्मा अवस्था कहते हैं। यह विद्युत प्रवाह का अच्छा संचालक होता है।

सादे वायु के अणुओं पर विद्युतभार नहीं होता। लेकिन विद्युत विमोचन की सहायता से उनका विद्युतभारित आयन में रूपान्तर हो सकता है। यहां इलेक्ट्रॉन्स मुक्त होते हैं। यह प्रक्रिया अति उच्च तापमान पर भी होती है। जहांका तापमान लाखों सेल्सियस होता है, वहां पदार्थ केवल प्लाज्मा अवस्था में ही रह सकता है। उच्च तापमान के कारण प्लाज्मा को किसी बर्तन में संभालना असंभव है। चुंबकीय क्षेत्र का उपयोग करते हुए इसे बंदिस्त किया जा सकता है। इसे 'मैग्नेटिक बॉटलिंग' कहते हैं। इसमें विशिष्ट क्रम में चुंबकों की रचना की जाती है। चुंबकीय क्षेत्र के कारण विद्युतभारित कण अपने मार्ग से विचलित होते हैं। इस तत्व का यहां उपयोग किया जाता है। एक दंडगोलाकार बर्तन में प्लाज्मा पैदा किया जाता है। चुंबकों ने बर्तन में पैदा किये विद्युत क्षेत्र के कारण एक विशिष्ट क्षेत्र में सारा प्लाज्मा एकत्र बना रहता है।

सापेक्ष आर्द्रता

आर्द्रता का अर्थ है हवा में बाष्प की उपस्थिति। इस बाष्प का प्रमाण यह नमी का मापदंड है। हवा के कुल आयतन में बाष्प के कमाल प्रमाण से, हवा की नमी या आर्द्रता निश्चित होती है। यह प्रमाण निरपेक्ष आर्द्रता है। लेकिन हवा के तापमान के अनुसार, उसमें अधिक से अधिक कितना बाष्प समा सकता है, यह निश्चित होता है। जितना तापमान अधिक उतना अधिक बाष्प उसमें समाएगा। इस अधिकतम नमी की तुलना में, प्रत्यक्ष में हवा में कितनी नमी है इसका मापन यह सापेक्ष आर्द्रता है। कमाल आर्द्रता से (100%) अधिक नमी हवा में समा नहीं सकती क्योंकि इसके आगे बाष्प का रूपान्तर पानी में होकर वर्षा शुरू हो जाती है। अर्थात् वर्षा होने के लिए 100% आर्द्रता का स्तर पहुँचना ही चाहिए यह आवश्यक नहीं।

आमतौर पर 45% आर्द्रता सर्वाधिक आरामदायक होने की बात देखी गयी है। आर्द्रता जितनी अधिक उतनी वातावरण में अधिक घुटन अनुभव होती है। पसीना आने पर भी वह हवा में शोषित नहीं हो सकता। (शरीर की उष्मा पसीने के रूप में ही बाहर आती है)

30⁰ तापमान पर हवा में प्रति घनमीटर, अधिक से अधिक 30 ग्रॅम बाष्प समा सकता है। सागर किनारे सापेक्ष आर्द्रता अधिक होती है।

एन्ट्रॉपी

एकपेशीय प्राणियों से आरंभ होकर, उत्क्रांती के तत्वानुसार अत्यंत जटिल बहुपेशीय प्राणी प्रकृति में विकसित हुए हैं। इसी तरह किसी भी प्रणाली में एक स्तर से अधिक जटिल प्रणाली अस्तित्व में आती है, तो हम उसे विकास कहते हैं।

हमारा प्रयत्न यही रहता है कि अव्यवस्था में से व्यवस्था स्थापित करें। प्रकृति भी ऐसी ही सुव्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न करती है।

सन् 1824 के दरम्यान उष्मा गतिकी का दूसरा सिद्धान्त सामने आया - कोई भी कार्य करते समय, उपयोग में लायी जाने वाली ऊर्जा पूरी तरह उपयोग में नहीं आती या लायी जा सकती। इस तरह व्यर्थ जाने वाली ऊर्जा को ' एन्ट्रॉपी ' या 'अवक्रम का माप' (Measurement of Disorder) कहते हैं। इस दुनिया की एन्ट्रॉपी व्यर्थ जा रही है ऐसा यह दूसरा नियम कहता है | यह प्रश्न मन में उठता है कि ब्रह्माण्ड में अधिकतर अस्तित्व के रूपों में संतुलन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है तो फिर एन्ट्रॉपी के बारे में ही क्यों, कि वह हमेशा बढ़ती ही है।

इस गुत्थी का उत्तर प्रो. अलन गुथ, जिन्होंने 'ब्रह्माण्डीय इन्फ्लेशन' का सिद्धान्त प्रस्तुत किया था, ने दिया की कुल स्थितिजन्य एन्ट्रॉपी अनंत है।

- एन्ट्रॉपी इस संकल्पना का उपयोग आजकल उष्मा गतिकी के क्षेत्र के बाहर भी किया जाने लगा है। वह ' बढ़ने वाली अव्यवस्था ' या ' कम होने वाली कार्यक्षमता ' इस अर्थ में। यहां एन्ट्रॉपी का अर्थ लिया जाता है उपयुक्त ऊर्जा की होने वाली हानी। अर्थात् आपको प्रथम अव्यवस्था की व्याख्या करनी होगी। उष्मा गतिकी के नियम के अनुसार ही किसी बंद प्रणाली में(जिसमें बाहर से ऊर्जा नहीं पहुँच सकती या पहुँचायी जा सकती ऐसी प्रणाली) एन्ट्रॉपी कभी कम नहीं होती, उलट वह बढ़ती ही जाती है। अर्थात् उपयुक्त ऊर्जा कम होती जाएगी और व्यवस्था में अव्यवस्था का अनुपात बढ़ता रहेगा और एक क्षण ऐसा आएगा जब पूरी व्यवस्था ही निष्क्रिय स्थिति में पहुँच जाएगी। इस दृष्टि से एन्ट्रॉपी को अव्यवस्था(Disorder) तथा यादृच्छिकता(Randomness) के मापन का मापक भी माना जाता है। उपयुक्त ऊर्जा का, एन्ट्रॉपी के कारण क्षय होता है, तो इस संकल्पना का उपयोग हमें इस क्षय को रोकने के लिए करना चाहिए।

- उष्मा और उसकी सहायता से किया जाने वाला कार्य बराबर-बराबर नहीं हैं। यांत्रिक कार्य तो पूरी तरह उष्मा में रूपांतरित किया जा सकता है लेकिन उष्मा को पूरी तरह यांत्रिक कार्य में बदला नहीं जा सकता। यहाँ कार्यकुशलता या 'कार्य क्षमता' यह घटक अवतरित होता है। उदा. उष्मा इंजन। ‘
- विश्व में जो कुछ हो रहा है वह उष्मा की एक विशिष्ट प्रणाली के कारण हो रहा है। इसमें उष्मा का प्रवाह उच्च तापमान से निम्न तापमान की ओर होता है। यह एक व्यवस्था है। जिस पदार्थ या वस्तु समूह का हमें एकत्रित अध्ययन करना है उसे ‘ प्रणाली ‘ या ‘ संहति (System) कहते हैं। उदा. मनुष्य का शरीर यह एक प्रणाली ही है। विश्व में ऐसी अनगिनत प्रणालियाँ हैं। विश्व खुद एक प्रणाली है। जब हम मनुष्य के शरीर को एक प्रणाली के तौर पर लेते हैं तो स्वस्थ शरीर को हम व्यवस्था कहेंगे। लेकिन शुरू में सुव्यवस्थित प्रणाली में समय के साथ अव्यवस्था उत्पन्न होती है और वह बढ़ती जाती है। इसे प्रकृति का नियम माना जाता है जो प्रत्येक प्रणाली को लागू है। विश्व की एन्ट्रॉपी में भी वृद्धि होती जाएगी और एक समय ऐसा आएगा की सारी वस्तुएं, उष्मा संतुलन की अवस्था में पहुँच जाएगी। ऐसे विश्व में कोई कार्य सम्पन्न नहीं हो पाएगा। इसे ही विश्व का ‘ उष्मीय मृत्यु ‘ नाम दिया गया है। वैज्ञानिकों के अनुसार अनुमानतः यह स्थिति 10^{14} सालों बाद आ सकती है।
- जब हम प्रक्रिया की बात करते हैं तो वह दो प्रकार की होती है—१) प्रतिक्रमी : जो प्रक्रिया उलट-सुलट दो दिशाओं में समान रूप से कार्यरत हो सकती है। उदा. घर्षणरहित माध्यम में आंदोलन करने वाला लंबक। २) अप्रतिक्रमी : हाथ से गिरने के कारण कांच के गिलास का टूटना। चूँकि टूटा हुआ गिलास अपनी पूर्व स्थिति में पहुँचकर जुड़ नहीं सकता। विश्व में कोई भी क्रिया 100% प्रतिक्रमी नहीं मिलेगी। अर्थात् प्रत्येक प्रक्रिया में अपव्यय या एन्ट्रॉपी वृद्धिगत होती रहेगी। उष्मा गतिकी के दूसरे नियम के अनुसार किसी भी वस्तु की एन्ट्रॉपी बढ़नी चाहिए। मानवीय तत्व (Entropic Principle) भी कहता है कि एन्ट्रॉपी कम होती रहने वाली दुनिया में मानव जीवन असंभव होगा।
- समय और एन्ट्रॉपी : -- शुरू में सुव्यवस्थित प्रणाली में समय के साथ अव्यवस्था पैदा होती रहती है। अर्थात् प्रणाली की एन्ट्रॉपी बढ़ती जाती है। कोई भी प्रक्रिया जैसी की वैसी विरुद्ध दिशा में घटित नहीं हो सकती। इसी कारण काल प्रवाह एक दिशा में अर्थात् भूत

से भविष्य की ओर बढ़ता है। इस तरह एन्ट्रॉपी के कारण काल प्रवाह की दिशा निश्चित होती है।

- मानो ये प्रक्रियाएं उलट दिशा में हुई होती जैसे ठंडा पदार्थ अपने आप गर्म होता आदि तो हम इसे अघटित घटना कहते चूंकि यहाँ एन्ट्रॉपी बढ़ने के स्थान पर घटती दिखाई देती।

संक्षेप में :-

- एन्ट्रॉपी यह प्रणाली की 'बेतरतीबी' या 'अव्यवस्था' का माप है। (लेकिन अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर जाने में ऊर्जा लगती है।)
- प्रकृति सर्वाधिक संभावित अवस्था की ओर क्रमण करती है।
- घन अवस्था की एन्ट्रॉपी न्यूनतम, तो वायुरूप अवस्था की महत्तम होती है।
- पुरानी प्रणाली या अवस्था पुनर्स्थापित नहीं हो सकती।
- प्रणाली की एन्ट्रॉपी अधिक परिवेश की एन्ट्रॉपी एकत्र लेने पर वह केवल बढ़ ही सकती है या अधिक से अधिक कायम रह सकती है, कभी घट नहीं सकती।
- जब गर्म सलाक से ठंडी सलाक की ओर उष्णता जा रही है तो यहाँ एन्ट्रॉपी में हो रहा बदल, ठंडी सलाक के लिए धनात्मक है तो गर्म सलाक के लिए ऋणात्मक। लेकिन महत्वपूर्ण है कुल एन्ट्रॉपी का बदल, पूर्व की ओर पश्चात की। यह धनात्मक होना चाहिए।
- संतुलन की अवस्था में होने वाली प्रणाली के अणुओं में समान औसत ऊर्जा होती है। फिर भी किसी एक क्षण, इसकी संभावना बहुत कम है कि प्रत्येक अणु की ऊर्जा एकदम समान हो, बजाय इसके कि उनमें आपस में ऊर्जा वितरण होता रहे।
- अगर निरपेक्ष शून्य तापमान पर कोई उष्मीय, गतिज (Thermodynamic System) प्रणाली है तो उसकी ऊर्जा और एन्ट्रॉपी दोनों न्यूनतम होंगी।
- ब्रह्माण्ड की एन्ट्रॉपी लगातार बढ़ रही है। सूर्य से ऊर्जा उत्सर्जित हो रही है। उसी तरह पूरे ब्रह्माण्ड में एक दिन, ऊर्जा समान रूप से फैल जाएगी (उष्मा का सतत अंतरण होने से)। तब ब्रह्माण्ड की एन्ट्रॉपी महत्तम हो जाएगी। सारी प्रणालियाँ स्तब्ध हो जाएगी। इसे ही ब्रह्माण्ड की 'उष्मा मृत्यु' कहा जाता है।
- केन्द्रिभूत ऊर्जा संग्रह से, कम केन्द्रिभूत ऊर्जा संग्रह की ओर प्रवाह होगा।
- एन्ट्रॉपी वृद्धि यह एकदिशा प्रवाह है।
- अगर हम ग्रह के, सूर्य के गिर्द, घूमने का व्हिडीओ देख रहे हैं और बाद में उसी व्हिडीओ को उलटी दिशा में घूमाना शुरू किया तो हमें घटनाएँ उलटे क्रम होती हुई दिखेंगी।

वैज्ञानिकों के अनुसार, जहाँतक हमें ज्ञात है, ब्रह्माण्ड के सारे नियम समय की दृष्टि से उलटक्रमीय (reversible) हैं। इसके लिए अपवाद है केवल एन्ट्रॉपी के नियम का।

- निम्न एन्ट्रॉपीधारी ऊर्जा, अधिक एन्ट्रॉपीधारी ऊर्जा से अधिक कार्य कर सकती है। जैसे गॅसोलिन से अधिक कार्य होता है, उसकी तुलना में कि ब्रेक लगाने के कारण पैदा होने वाली उष्मा से।
- ऐसा भी माना जाता है कि एन्ट्रॉपी वृद्धि का एकदिशा क्रमण और समय का एकदिशा क्रमण में संबंध है।

धातु

- वर्धनशीलता (Maleability) : यह गुणधर्म सबसे अधिक सोने में होता है। सोने पर लगातार आघात करने से 0.00001 मि.मी. मोटाई का पत्रा बनाया जा सकता है। उसमें से प्रकाश किरण आरपार हो सकते हैं।
- तंतुक्षमता (Ductility) : एक औंस (28.35 ग्रॅम) सोने से 80 कि.मी. लम्बी तार निकाली जा सकती है। अन्य किसी भी धातु में इतनी तंतुक्षमता नहीं है।
- सबसे हल्का धातु : लिथियम यह सबसे हल्का धातु है या घनरूप मूलद्रव्यों में सबसे हल्का मूलद्रव्य है। इसे 1817 में शुद्ध रूप में अलग किया गया था।
- सबसे कम उत्कलन बिंदुवाला धातु : पारद (Mercury) का उत्कलन बिंदु -39 डिग्री सें. है।
- लोहे की विशेषता : विशेषतः IRON 56 की प्रति नाभिक बंध ऊर्जा सभी मूलद्रव्यों में सर्वाधिक है। इस बिंदु के ऊपर संगलन और अधिक ऊर्जा मुक्त नहीं कर सकता अतः आगे संगलन क्रिया शुरू नहीं रहती और पिंड सुपरनोवा के रूप में तत्क्षण ढह जाता है। इसके बाद लोहे से अधिक द्रव्यमान वाले मूलद्रव्य फिर आगे संगलन द्वारा ही तैयार होते हैं।

भौतिकशास्त्र के अनुत्तरित प्रश्न

- १) चार मूलभूत बलों की एकात्मता स्थापित करने की संभावना।
- २) व्यापक सापेक्षता सिद्धान्त तथा क्वांटम यांत्रिकी इन दो भिन्न क्षेत्रों की एकात्मता की संभावना।

- 3) महाविस्फोट के पूर्व, अस्तित्व की अवस्था क्या थी, इसका तर्कशुद्ध उत्तर और महाविस्फोट होने का कारण।
- 4) क्वांटम सिद्धान्त में विश्लेषित कल्पनाओं के परिपेक्ष्य में अंतिम सत्य का स्वरूप क्या है?
- 5) सुपरस्ट्रिंग सिद्धान्त, ग्यारह मितियों का उपयोग कर प्रकृति का रहस्य उद्घृत करने का प्रयत्न कर रहा है। ये ग्यारह मितियां क्या हैं और इनकी आवश्यकता क्यों है? उनके प्रकटीकरण की स्थितियाँ।
- 6) प्रकाश से अधिक गति क्या संभव है ? सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार इससे अधिक गति संभव नहीं।
- 7) चुंबक के उत्तर और दक्षिण ऐसे दो ध्रुव होते हैं। केवल उत्तर या दक्षिण ऐसे स्वतंत्र ध्रुव नहीं मिलते। ऐसे स्वतंत्र पोल को 'मोनोपोल' कहते हैं। क्या वे अस्तित्व में हो सकते हैं? क्वांटम यांत्रिकी इनके अस्तित्व को बताती है।
- 8) क्या प्रोटॉन कणों का हास होता है? कई मूलकणों का हास होता है। केवल प्रोटॉन कण को स्थिर माना जाता है और उसका स्थिर जीवनकाल 10^{32} वर्ष माना जाता है।
- 9) क्या टैक्सियॉन कणों का अस्तित्व है? प्रकाश की गति इनके गति की न्यूनतम मर्यादा है।
- 10) दर्शनीय विश्व में प्रति-पदार्थ से अधिक पदार्थ का अस्तित्व क्यों है?
- 11) डार्क एनर्जी का स्वरूप क्या है? विश्व में 74% डार्क एनर्जी अर्थात् अज्ञात ऊर्जा होने की बात, कई निरीक्षणों के आधार पर स्थापित हुई है, लेकिन उसका स्वरूप अज्ञात है।
- 12) डार्क मैटर का स्वरूप क्या है? विश्व में डार्क मैटर 22% है यह सिद्ध हुआ है, लेकिन उसका स्वरूप एक रहस्य है।
- 13) प्रकाश की गति, गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक, निरपेक्ष तापमान इस तरह के कई स्थिरांक प्रकृति में पाये जाते हैं। लेकिन आज उनकी जो कीमतें मिलती हैं, क्या वे स्थिर हैं? या बदलती जाती हैं, इस विषय में अनिश्चितता है। खास तौर पर गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक के विषय में संदेह व्यक्त किया गया है। आज उसकी कीमत 6.67×10^{-11} MKS एकक ली जाती है।
- 14) क्या हमारे विश्व जैसे ही कई समांतर विश्वों का अस्तित्व हो सकता है?
- 15) क्या क्वार्क कणों की भी अंतर्गचना हो सकती है?

- १६) क्या वैश्विक स्थिरांक (Cosmological Constant) का अस्तित्व है? यह गुरुत्वाकर्षण के विरोधी परिणाम पैदा करता है। अर्थात् अति दूर अंतरों पर स्थित दीर्घिकाओं में अपकर्षण पैदा होता है। ऐसे स्थिरांक के विषय में आज कुछ नहीं कह सकते।
- १७) क्या ब्रह्माण्ड में हमारे जैसे जीव और उन्नत संस्कृतियाँ हो सकती हैं?
- १८) क्वासार्स का निश्चित स्वरूप क्या है, जो महाप्रचंड परिमाण में ऊर्जा उत्सर्जित करते हैं। उनके केंद्र में वैसे ही महादानवी कृष्ण विवर हो सकते हैं, ऐसा माना जाता है।
- १९) हमारे ब्रह्माण्ड का भविष्य क्या है? क्या उसका ऐसा ही प्रसरण होता रहेगा या फिर उसका आकुंचन होते हुए वह एक बिंदु में सिमट जाएगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।
- २०) सिंग्युलैरिटी का निश्चित स्वरूप क्या है?

चेतना से संबंधित प्रश्न—

- १) चेतना काम कैसे करती है?
- २) सपना क्यों दिखाई देता है?
- ३) क्या अलौकिक शक्तियाँ या भूतों का अस्तित्व है?
- ४) किस निश्चित तंत्र के द्वारा अजैव पदार्थ, सजीव में परिणत हो जाते हैं।
- ५) हमारे रक्तगट भिन्न-भिन्न क्यों हैं?
- ६) पृथ्वी पर निश्चित कितने तरह के जीव हैं?
- ७) मृत्यु के बाद क्या?

हमारे निरीक्षण, सिद्धान्त, कल्पनाएँ, जो ब्रह्माण्ड हमें दिखता है उसपर आधारित हैं। हमें नहीं मालूम उसके पार क्या है?

९. ज्ञात --अज्ञात

हिग्स बोसॉन

ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु पदार्थ से बनी है और पदार्थ परमाणुओं, अणुओं से गठित हुआ है। वस्तुमान वह भौतिक गुण है, जिससे इन कणों को ठोस रूप मिलता है। अगर मास या वस्तुमान नहीं है तो वह कण प्रकाश की गति से भागता रहेगा और कभी दूसरे कणों से मिलकर ठोस आकार में नहीं आ सकेगा। वस्तुमान जब गुरुत्वाकर्षण से गुजरता है तो भार की शक्ल में मापा जाता है। लेकिन भार अपने आपमें वस्तुमान नहीं है क्योंकि गुरुत्वाकर्षण कम-ज्यादा होने से वह बदल जाता है। वस्तुमान स्थिर रहता है। (जैसे पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण चंद्रमा की तुलना में अधिक है, जो वस्तु के द्रव्यमान के प्रमाण में ही रहता है।)

जब वैज्ञानिक पदार्थ के अंदर पहुँचते गये वैसे-वैसे उन्हें एक के बाद एक सूक्ष्म स्तर मिलते गये और हर स्तर पर अधिक सूक्ष्म कण मिलते गये। भौतिकी में इन तमाम सूक्ष्म कणों को एक व्यवस्था में रखने की कोशिश की गयी। अति सूक्ष्म कणों को वैज्ञानिक, दो श्रेणियों में बांटते हैं, स्थिर और अस्थिर कण। स्थिर कणों की उम्र बड़ी लम्बी होती है। अस्थिर कणों की ज्यादा लम्बी नहीं होती। वे अन्य कणों में बदल जाते हैं। हिग्स बोसॉन को अस्थिर कण माना जाता है।

भौतिकशास्त्र की सैद्धांतिकी कहती है कि जिस वक्त ब्रह्माण्ड का जन्म हुआ उस क्षण इसमें मौजूद सभी कण द्रव्यमान रहित थे। अर्थात् केवल ऊर्जा रूप, जो प्रकाश गति से चलते थे। ब्रह्माण्ड उत्पत्ति के खरबवे सेकंड के भीतर एक ऐसा सर्वव्यापी और अदृश्य वातावरण पैदा हो गया जिसने इन कणों में वस्तुमान पैदा कर दिया। सबसे बड़ा प्रश्न सामने आया कि द्रव्यमान आता कहाँसे है? इसके समाधान के लिए वर्ष १९६५ में ब्रिटिश वैज्ञानिक पीटर हिग्स ने ' हिग्स बोसॉन ' की कल्पना पेश की। भारतीय वैज्ञानिक सत्येन्द्रनाथ बोस ने 'बोसॉन' श्रेणी के कणों का जिक्र किया था और एक सदी पहले आइन्स्टाइन के साथ ऐसे कणों की प्रकृति के विषय में दुनिया को बताया था। ऐसे कणों के वर्ग को 'बोसॉन' नाम उनकी स्मृति में ही दिया गया है। हिग्स सिद्धांत में यह एक ऐसा कण था जिसका एक क्षेत्र है जो ब्रह्माण्ड में हर कहीं उपस्थित है। इसे ' हिग्स क्षेत्र ' कहा गया है। जब कोई दूसरा कण इस क्षेत्र से गुजरता है तो प्रतिरोध का

सामना करता है जैसे कोई वस्तु पानी या हवा से गुजरते हुए करती है। जितना अधिक प्रतिरोध उतना अधिक द्रव्यमान। बाद में इन कणों के अस्तित्व की चर्चा अन्य छह वैज्ञानिकों के साथ हिग्स ने आगे बढ़ाई। इस दिशा में बेल्जियम के रॉबर्ट ब्रॉट और फ्रैंकोइस एंगलार्ट ने भी काम किया। (महाप्रयोग के समय हिग्स की आयु ८३ वर्ष थी तो एंगलार्ट की ७९ वर्ष। ब्रॉट का एक वर्ष पहले ही निधन हो गया था।)

कणों का स्टैंडर्ड मॉडल, हिग्स बोसॉन संकल्पना से मजबूत हो जाता था। लेकिन उसका प्रयोगात्मक सबूत आवश्यक था। ऐसा माना जाता है कि सृष्टि की उत्पत्ति के पीछे जो मूलभूत कण और प्राकृतिक बल हैं, उनमें से केवल हिग्स बोसॉन ही था, जो वैज्ञानिकों के हाथ नहीं लगा था, भले ही वे पचास सालों से उसके पीछे व्यस्त थे। लेकिन यह कण लगभग प्रकाश की गति रखता है अतः उसे पकड़ पाना मुश्किल था। वह वस्तुमानधारी अन्य कणों के साथ अन्योन्य क्रिया करता है। इस कारण दो अत्यंत गतिमान कणों की टकराहट में उसकी उत्पत्ति होगी ऐसा वैज्ञानिकों का अनुमान था। लेकिन इसके लिए प्रचंड ऊर्जा चाहिए। वैज्ञानिकों ने सरकारों को मनाया। फिर फ्रांस और स्विट्ज़रलैंड की सीमा पर जमीन में ३०० फीट नीचे २७ कि.मी. लम्बाईवाली गोल सुरंग बनाई गई जिसकी चौड़ाई ३.८ मीटर है। इसे नाम दिया गया 'लार्ज हैड्रॉन कोलाइडर'। इस कोलाइडर में प्रोटॉनों को दो विपरीत दिशाओं में प्रकाश गति के ९९.९९ % गति से दौड़ाकर एक दूसरे से टकराया गया। टकराव के बाद वैसी स्थिति पैदा हुई जैसी सृष्टि उत्पत्ति से ठीक पहले अर्थात् बिग बैंग के समय थी। प्रोटॉन कणों ने एक सेकंड में २७ कि.मी. लम्बी सुरंग के ११००० से भी अधिक चक्कर काटे। टकराने की ६० करोड़ से भी अधिक घटनाएँ हुईं। द्रव हिलियम का उपयोग मैग्नेट को ठंडा करने के लिए किया गया। तापमान था अँबसोल्यूट शून्य से केवल ३.५ फॉरेनहीट डिग्री ऊपर। प्रोटॉनों की टकराव के दरम्यान सूर्य के तापमान से एक लाख गुना तापमान अपेक्षित था। प्रोटॉनों को ७ ट्रिलियन इलेक्ट्रान वोल्ट तक ऊर्जा प्रदान की गयी। मशीन का पूरा नियंत्रण जर्मन वैज्ञानिक डॉ.इवान्स के हाथ में था। टक्कर से जो ऊर्जा उत्पन्न हुई उससे कई भिन्न-भिन्न कण अस्तित्व में आए और तभी ऐसे संकेत भी मिले कि हिग्स बोसॉन भी पैदा हुआ है। अस्तित्व में आते ही वह लुप्त हो गया। उसने पीछे छोड़े निशान बचे रहे। सारी विदा एकत्र की गई। इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने उसकी खोज की घोषणा ४ जुलाई २०१२ को की। लेकिन यह भी स्वीकार किया कि आगे भी काफी सारे प्रयोग करने होंगे।

इस प्रयोग ने इतनी सनसनी फैलाई कि हैड्रान कोलाइडर शुरू होते ही दुनिया समाप्त होने की बात कही जा रही थी। आशंका यह थी कि टकराव के दौरान कोई कृष्ण विवर बन जाएगा जो दुनिया को निगल लेगा। इसपर कइयों ने अदालत का दरवाजा भी खटखटाया। उदा. दो अमेरिकन नागरिक श्री वॉल्टर ली वेगनर और श्री लुईस सैको। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

महाप्रयोग

लार्ज हैड्रॉन कोलाइडर की परिकल्पना १९८० में की गई थी। वर्ष १९९६ में इस परियोजना को मंजूरी मिली। तब इसकी लागत २.६ अरब यूरो होने का अनुमान था। लेकिन इसे पूरा होते-होते, लागत चार गुना बढ़ गयी। कई समस्याएं आईं। इस कारण काम पूरा होने में दो साल की देरी हुई।

यह परियोजना ' यूरोपीय काउंसिल फॉर न्यूक्लीयर रिसर्च ' के नियंत्रण में है। सर्न (CERN) की इस महाप्रयोग के साथ यूरोपीय संघ के २० देश और गैरसदस्यीय छह देश जुड़े हैं। वैसे इसमें शामिल हैं १०० देशों के ८००० वैज्ञानिक।

इस परियोजना से निम्न दस भारतीय संस्थान जुड़े हैं—अलिगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, जम्मू विश्वविद्यालय, भूवनेश्वर स्थित इन्स्टीट्यूट ऑफ फिजिक्स, पंजाब विश्वविद्यालय, गौहाटी विश्वविद्यालय, राजस्थान तथा कोलकता स्थित साहा इन्स्टीट्यूट ऑफ न्यूक्लियर फिजिक्स, वेरिणबल एनर्जी सायक्लॉन सेंटर, बोस इन्स्टीट्यूट, आयआयटी मुंबई, परमाणु अनुसंधान विभाग और विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग।

सर्न हार्डवेयर के सबसे प्रमुख घटकों में आठ हजार टन वजन का चुंबक शामिल है जो कि एफिल टॉवर से भी भारी है। इसका निर्माण भारतीय योगदान से हुआ है। इसके साथ ही इस प्रयोग में उपयोग की जा रही लाखों चीपों का निर्माण चंदीगढ़ में हुआ है। चुंबक को सहारा देनेवाला हैड्रॉलिक स्टैंड भी भारत में बना। उसका शीतलीकरण उपकरण विश्व के सबसे बड़े फ्रीज जैसा है। सर्न के महत्वपूर्ण विभिन्न हार्डवेयर और सॉफ्टवेयरों का निर्माण या तो भारतीय कंपनियों के सहयोग से या पूरी तरह भारतीय कंपनियों द्वारा किया गया है।

सर्न के प्रवक्ता पावलो गिउबेलिनो के अनुसार भारत इस परियोजना का ऐतिहासिक जनक जैसा है।

हिग्स बोसॉन -

खोजे गये कण का भार १२५ गिगा इलेक्ट्रॉन वोल्ट के बराबर है। इसमें 0.६ GEV की कमी या अधिकता हो सकती है। (लो.समाचार,नागपुर-लोकसंग-२१-९-२०१४)। सर्न की ओर से जारी बयान में कहा गया कि हमने अब तक मिले सभी बोसॉन कणों में सबसे भारी बोसॉन कण ढूँढ निकाला है। इस बात के ठोस सबूत है कि वहां कुछ है जिसका द्रव्यमान प्रोटॉन के द्रव्यमान से १३० गुना ज्यादा है। इस तरह यह मौजूद सर्वाधिक बड़ा ज्ञात कण है। हिग्स क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाला अगर कोई कण है तो वह है हिग्स बोसॉन। भौतिकी के नियमोंनुसार धरती पर हर चीज को द्रव्यमान प्रदान करने वाला यही कण है। अर्थात् इसकी ब्रह्माण्ड की रचना में महत्वपूर्ण भूमिका है।

- १) हिग्स क्षेत्र यह बल प्रकार नहीं है। वह कणों में त्वरण उत्पन्न नहीं करता या ऊर्जा का संक्रमण भी नहीं करता। वह केवल कणों को वस्तुमान प्राप्त करा देता है। यदि उतनी ही ऊर्जा किसी कणों के समूह में प्रवाहित कर दी जाए, तो भारी कणों की गति धीमी होगी, हलके कणों की उनसे तेज होगी। इसका इकलौता अपवाद है ' फोटॉन '। हिग्स क्षेत्र के भीतर भी फोटॉन का द्रव्यमान शून्य ही रहता है। या हम ऐसा भी कह सकते हैं कि जिन कणों का वस्तुमान नहीं होता वे हिग्स क्षेत्र के साथ अन्योन्यक्रिया नहीं करते।
- २) हिग्स बोसॉन है तो कण, लेकिन स्थिर कण नहीं है। वह किसी मध्यस्थ जैसा है।
- ३) जब हिग्स बोसॉन कण का अस्तित्व सिद्ध होना था तब इस कण को लेकर वैज्ञानिक बहुत परेशान थे। इस कण की संकल्पना के संबंध में किताब लिखते समय लेखक, वैज्ञानिक लेडरमन ने झुंझलाहट में इस कण का उल्लेख ' गॉड डैम पार्टिकल ' ऐसा किया। प्रसार माध्यमों ने इसमें से ' गॉड पार्टिकल ' हिस्सा उठाया और वही इसके नाम के तौर पर चल निकला।

कृष्ण पदार्थ (डार्क मैटर)

फ्रिट्ज़ ड़िवकी नाम के स्विस् खगोल वैज्ञानिक वर्ष १९३० में अमेरिका में 'अरुंधती केश ' नामक महामंडाकिनी में से 'कोमा' इस तारका समूह के संदर्भ में अनुसंधान कर रहे थे। इस समूह में लगभग १००० दीर्घिकाएं हैं। गुरुत्वाकर्षण के कारण यह समूह एकत्र बंधा हुआ है। फ्रिट्ज़ ने इस समूह के बाहरी हिस्से की आठ दीर्घिकाएं चुनीं और उनकी गति की गणना की। ये

दीर्घिकाएं प्रति सेकंड एक हजार कि.मी. इस गति से समूह के गिर्द घूमती हुई पायी गईं। समूह के सभी दीर्घिकाओं के एकत्रित वस्तुमान के आधार पर इन दीर्घिकाओं की गति ८० कि.मी.प्रति सेकंड ही अपेक्षित थी। समूह का अस्तित्व बने रहने के लिए उनकी गतियां कम होनी चाहिए थीं। अन्यथा दीर्घिकाएं समूह से छूटकर उड़ जातीं। इन्हें इस उच्च गति पर, इससे रोकने वाला कोई वस्तुमान होना चाहिए। अतः गणना के आधार पर इस समूह का प्रत्यक्ष वस्तुमान यह दीर्घिकाओं के रूप में दिखने वाले वस्तुमान के ४०० गुना आ रहा था। अर्थात् इन दीर्घिकाओं में न दिखने वाला वस्तुमान या पदार्थ बड़े पैमाने पर अस्तित्व में था। झिक्की ने इस पदार्थ को ' डार्क मैटर ' नाम दिया और अपने निष्कर्ष १९३३ में ' हेल्वेटिका फिजिका अक्ट ' इस शोध पत्रिका में और बाद में उनमें कुछ सुधार कर, वर्ष १९३७ में ' दी अस्ट्रोफिजिकल जर्नल ' इन शोधपत्रिकाओं में प्रकाशित किए। ऐसे ही परिणाम आगे भी कन्या समूह के दीर्घिकाओं के शोध में भी प्राप्त हुए।

अपनी आकाशगंगा के केंद्र से दूर विद्यमान तारों की गतियां न्यूटन के नियम के अनुसार, तारे की दूरी केंद्र से जितनी अधिक, उतनी उसकी गति कम, इस तरह होनी चाहिए। प्रत्यक्ष में आकाशगंगा की परिधी के पास के तारों की गतियां बढ़ी हुई दिखती हैं। आकाशगंगा के बाहर की किसी वस्तु ने, जिसे हम देख नहीं सकते, परिधी के पास के तारों की गति बढ़ानी चाहिए।

लेकिन कृष्ण पदार्थ के अस्तित्व का ठोस प्रमाण वर्ष १९६० के दरम्यान व्हेरा रुबीन और केन्ट फोर्ड इस वदयी ने अमेरिका में किए अनुसंधान से मिला। इन्होंने वर्णक्रममापक के आधार से देवयानी दीर्घिका के परिसर में स्थित हैड्रोजन के बादलों पर शोध किया। ये बादल दीर्घिका के चारों तरफ चक्कर लगा रहे हैं। ऐसा अपेक्षित था कि इन बादलों की गति दीर्घिका से उनके अंतर के अनुसार कम होती जाएगी। प्रत्यक्ष में उनकी गति में कोई बदलाव नहीं पाया गया। दीर्घिका में बड़े पैमाने पर कोई अदृश्य पदार्थ उपस्थित हो तो ही यह संभव था। इस दीर्घिका में दिख रहे पदार्थ के वस्तुमान से कम से कम पांच से दस गुना वस्तुमान का अज्ञात पदार्थ होना चाहिए, ऐसा, गणना के बाद स्पष्ट हुआ। वर्ष १९७० में ये निष्कर्ष ' दी एस्ट्रोफिजिकल जर्नल ' में छपे। अब इसे कृष्ण पदार्थ के अस्तित्व का स्पष्ट सबूत माना जाता है।

अगस्त २००६ में हबल टेलिस्कोप की सहायता से खगोलशास्त्रीयों ने कृष्ण द्रव्य के एक छल्ले की खोज की है। जिस आकाशगंगा में इसे ढूंढा गया है वह हमसे पांच अरब प्रकाशवर्ष दूर

हैं। इस छल्ले का व्यास २६ लाख प्रकाशवर्ष है । इस टीम के प्रमुख जेम्स ने कहा कि धूल, वायु और तप्त तारों के अतिरिक्त किसी अन्य द्रव्य को पहली बार ही चिन्हित किया गया है।

लेकिन वैज्ञानिकों ने ऐसी भी एक गॅलेक्सी का पता लगाया है जिसमें केवल गॅस और तारे ही हैं। इसका आकार हमारी आकाशगंगा इतना ही है। लेकिन इसमें आकाशगंगा की तुलना में २५० गुना कम तारे हैं। इसमें वायु भी बहुत विरल है। यह पृथ्वी से ६.५ करोड़ प्रकाशवर्ष दूर है। इतना ही नहीं इसमें कृष्ण द्रव्य का भी अभाव दिखता है। ऐसी मंदाकिनी की खोज पहली बार हुई है। अतः वैज्ञानिक भी आश्चर्यचकित हैं। इस मंदाकिनी को नाम दिया गया है NGC१०५२-डफ-२।

अब यह स्वीकृत तथ्य है कि ब्रह्माण्ड में ऐसे कुछ तत्व हैं जिनका अस्तित्व हम प्रत्यक्ष नहीं देख सकते। उनका अस्तित्व केवल उनके गुरुत्वाकर्षण प्रभाव के माध्यम से ही जाना जा सकता है। लेकिन इतना निश्चित कि वे सामान्य बेरियॉन कणों से बने काले बादल नहीं हैं। हम बेरियॉन कणों द्वारा गठित बादलों को इस आधार पर पहचान सकते हैं कि जब उनसे होते हुए कोई विकिरण पार होता है तो बादल उसे जज्ब कर लेता है। यह द्रव्य, हमें अस्तित्व के जो रूप ज्ञात हैं उनसे एकदम भिन्न होगा। या फिर विश्व के विद्यमान अस्तित्व को ज्ञात करने के जो माध्यम हमारे पास हैं उनके लिए, यह वस्तु अजनबी या फिर असंवेदनशील होनी चाहिए।

लेकिन इसके निश्चित स्वरूप के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। सैद्धांतिक स्तर पर इसकी, न्यूनतम अन्योन्यक्रिया करने वाले वस्तुमानधारी कणों के रूप में कल्पना की गयी है। इन्हें Neutralions नाम दिया गया है। वे जब आपस में आपसी क्रिया करते हैं तो उष्मा, गॅमा किरणें, न्यूट्रिऑन्स तथा प्रतिकण (जैसे पॉजिट्रॉन) पैदा करते हैं और स्वयं लुप्त हो जाते हैं, ऐसी कल्पना की गयी है।

इनके स्वरूप के विषय में कई तर्क किए गये हैं। निरीक्षण के द्वारा पता न चलने वाला वस्तुमान हो सकता है -

अ) १) कृष्णवर्णी दीर्घिकाएं (Dark Galaxies)

२) ब्राउन ड्वार्फ तारे

३) अनगिनत कृष्ण विवर

४) धुलीकण, प्रस्तर इन रूपों में

वस्तुएं

आ) न्यूट्रिनो कण - शुरू में ऐसा समझा जाता था कि न्यूट्रिनो को वस्तुमान नहीं होता। लेकिन अब यह स्थापित हो चुका है कि उनका बिलकुल सूक्ष्म वस्तुमान है। उनकी संख्या अन्य कणों की तुलना में अरबों गुना है।

इ) भौतिकी के लिए अज्ञात लेकिन ज्ञात मूलकणों से एकदम भिन्न गुणधर्मिता के मूलकण, जिन्हें ऑक्सिऑन्स नाम दिया गया है।-----आदि

संक्षेप में-

यह पदार्थ (एंटी-मैटर) नहीं है। पदार्थ के साथ अन्योन्यक्रिया करके गॅमा किरणों का उत्सर्जन नहीं करता। यह कृष्ण विवर भी नहीं है चूंकि यह सभी ओर फैला हुआ है। यह किसी भी ज्ञात कण के साथ अन्योन्यक्रिया नहीं करता। यह बेरियॉन कणों से बना नहीं हो सकता। यह प्रकाश उत्सर्जित नहीं करता। इतना ही नहीं तो विद्युत चुंबकीय विकिरण के साथ कोई अन्योन्यक्रिया नहीं करता। सभी ज्ञान के लिए, तो स्रोत ये विकिरण ही है। अतः इसके स्वरूप का पता लगाना कठिन है। केवल गुरुत्व बल के साथ अन्योन्यक्रिया करता है। इस कारण 'गुरुत्व लेन्सिंग' प्रभाव पैदा कर सकता है। इसकी गति प्रकाशगति से कम ही होनी चाहिए। कई ज्ञात कणों को गुप्त द्रव्यमान के लिए उत्तरदायी माना गया। और भी कल्पनाएँ की गयीं लेकिन सभी नकारी भी गयीं।

डार्क एनर्जी

वर्ष १९९८ में अति दूर के नवतारों का निरीक्षण करते समय वैज्ञानिकों के ध्यान में आया कि विश्व के विस्तार की गति बढ़ती जा रही है। अर्थात् अति दूर की दीर्घिकाओं को कोई तो अज्ञात शक्ति एकदूसरे से, वेग से दूर ले जा रही है। अर्थात् यह शक्ति गुरुत्वाकर्षण के विरोध में कार्य कर रही है। जिस ऊर्जा के कारण विश्व के प्रसरण की गति समय के साथ बढ़ती जा

रही है उस ऊर्जा को वैज्ञानिकों ने ' डार्क एनर्जी ' नाम दिया है। यहाँ डार्क का अर्थ अज्ञात लेना चाहिए चूंकि इस ऊर्जा के स्वरूप का निश्चित अंदाज़ा नहीं आया है।

(हम सबके सामान्य ज्ञान के अनुसार कोई बल काल प्रवाह के साथ कमजोर होता है। लेकिन महाविस्फोट के बाद भी उसका बल न केवल जिन्दा है बल्कि ब्रह्माण्ड विस्तार में कार्यरत भी है। इसी कारण कहा जाता है कि ब्रह्माण्ड विस्तार होने का कहीं अन्त नहीं। ब्रह्माण्ड मंदाकिनियां, तारे, ग्रह आदि से बना है और ऐसा लगता है, वे एकदूसरे से दूर भाग रहे हैं। लेकिन फिर भी वे रहस्यमय अंतराल में खोने के स्थान पर ब्रह्माण्ड में बने हुए हैं। ऐसा क्या है, या कौनसा अज्ञात बल है जो यह सब कर रहा है, इसे ही 'डार्क एनर्जी' कहा गया है।)

एक तो यह अज्ञात ऊर्जा सर्वव्यापी है और पारगम्य (Permeate) है। दूसरी बात यह है कि वह तीव्र स्वरूप का ऋणात्मक दबाव पैदा करती है जिसका परिणाम गुरुत्वाकर्षण विरोधी बल के रूप में होता है। इस ऊर्जा के कारण वैश्विक स्थिरांक के अनुसार ऋण दबाव उत्पन्न होता है। लेकिन किसी भी रूप में इसके किसी सिद्धांत का परिपूर्ण रूप सामने नहीं आया है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है ब्रह्माण्ड के घडन में इसका प्रतिशत ७३ होगा तो उसका भविष्य पूरी तरह डार्क एनर्जी पर निर्भर होगा। इसके प्रति भी कई कल्पनाएं की गयी हैं।

जब गुरुत्वाकर्षण किसी वस्तु के साथ अन्योन्यक्रिया करता है तब कुछ कार्य करता है। गुरुत्वीय स्थितिजन्य ऊर्जा का रूपान्तर ऊर्जा के किसी अन्य रूप में होता है, जैसे उष्मा या दबाव। यह हमें ज्ञात सामान्य वस्तु के बाबत होता है। जैसे तारा अपने ही गुरुत्व के कारण आकुंचित होता है, तो उसका अंतर्भाग तप्त होंता है। लेकिन डार्क ऊर्जा का ' ऋणात्मक दबाव होता है। उसका ऋणात्मक दबाव ऊर्जा घनता के व्युत्क्रमानुपाती होता है। अर्थात् विस्तार के कारण ऊर्जा घनता कम होने से ऋणात्मक दबाव विरल नहीं होता। जब वस्तु का ऋणात्मक दबाव होता है तो गुरुत्व उसे संकोचित नहीं तो विस्तारित करता है। फिर भी गुरुत्व कार्य तो करता है। गुरुत्वीय स्थितिजन्य ऊर्जा किसी अन्य रूप में परावर्तित हो जाती है। लेकिन यह अन्य रूप क्या हो सकता है? अधिक डार्क ऊर्जा का अर्थ, उसकी विस्तारित ब्रह्माण्ड में घनता कम नहीं होती उलट उसकी भरपाई हो जाती है।

संक्षेप में -

----डार्क मैटर यह पिंडों को आकर्षित करनेवाला बल है ।

----डार्क एनर्जी यह पिंडों को विकर्षित करनेवाला बल है ।

बेरिऑनिक द्रव्य : इसका दबाव होता है। वह स्वयं के साथ तथा प्रकाश के साथ अन्योन्यक्रिया करता है।

डार्क द्रव्य : इसका दबाव नहीं होता। इसका दबाव शून्य या कमसे कम ध्यान देने लायक नहीं होता। यह न बेरिऑन्स के साथ, न स्वयं के साथ, न प्रकाश के साथ, किसी के भी साथ अन्योन्य क्रिया नहीं करता।

डार्क ऊर्जा : इसका भारी ऋणात्मक दबाव होता है।

(वैसे तो क्वांटम यांत्रिकी में भी 'व्हैक्यूम एनर्जी' नामक संकल्पना है । व्हैक्यूम यानी निर्वात प्रदेश । वास्तव में वहां कोई निर्वात नहीं होता तो, लगातार हलचल (Fluctuations) शुरू रहती है । उसमें से लगातार आभासी मूलभूत कणों की उत्पत्ति और लय होता रहता है । आइन्स्टाइन के सूत्र $E = mc^2$ इस सूत्र के अनुसार यह निर्वात ऊर्जा, गुरुत्वाकर्षण प्रभाव पैदा कर सकती है । यह आभासी कणों में अंतर्भूत ऊर्जा ही डार्क ऊर्जा हो ?

आइन्स्टाइन ने बताया था कि खाली स्थानों की भी अपनी एक ऊर्जा होती है । शायद उनके द्वारा कल्पना किया हुआ कॉस्मोलॉजिकल स्थिरांक डार्क ऊर्जा हो ।

यह कोई ऐसी ऊर्जा(गतिशील तरलता) या क्षेत्र हो, जिसके बारे में हमें ज्ञान न हो।

सुपरनोवा विस्फोटों का निरीक्षण करते समय ऐसा ध्यान में आया कि दूर के भूतकाल में डार्क ऊर्जा अपर्याप्त थी । अन्यथा तारे और मंदाकिनियों का बनना संभव नहीं हो पाता । जब मंदाकिनियां एकदूसरे के करीब थीं तब गुरुत्वाकर्षण प्रबल था । अर्थात् डार्क मैटर का प्रभुत्व था । जैसे-जैसे प्रवेगयुक्त गति के साथ ब्रह्माण्ड का विस्तार हुआ वैसे-वैसे डार्क एनर्जी का प्रभुत्व बढ़ता गया । मंदाकिनियां एकदूसरे से दूर होती गयीं । एक अनुमान के अनुसार पांच अरब साल पहले उपरोक्त दोनों संतुलन में थे । सात अरब साल पहले डार्क एनर्जी का प्रभुत्व

स्थापित हुआ जो अभी भी कायम है | अगर ऐसा न होता तो गुरुत्व के कारण ब्रह्माण्ड का आकुंचन हुआ होता |

वर्ष १९८० में ब्रह्माण्ड से संबंधित अध्ययन के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिक जेम्स वाट्सन क्रोनिन के अनुसार—ब्रह्माण्ड का निर्माण ७३ % कॉस्मिक ऊर्जा, २३% डार्क मैटर, बचे हुए ४% में सामान्य तत्व(अणु, परमाणु) इनसे हुआ है| अति अर्वाचीन अनुमान के अनुसार ब्रह्माण्ड में निम्न प्रतिशत में भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं -

सामान्य पदार्थ ४.९%, डार्क मैटर २६.८%, डार्क एनर्जी ६८.३%)

कृष्ण विवर

कृष्ण तारा

१) कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रो. जॉन मिशेल ने २७-11-१७८३ को लन्दन की रॉयल सोसाइटी की वैज्ञानिक शोधपत्रिका में एक लेख लिखा था | इसमें यह प्रतिपादन था कि एक ऐसा तारा, जो पर्याप्त रूप से सघन तथा भारी हो, का गुरुत्व इतना प्रबल होगा कि वह प्रकाश किरणों को भी बाहर नहीं निकलने देगा | वे, तारे के गुरुत्व बल द्वारा, उसके पृष्ठभाग से उत्सर्जित होने से पहले ही, वापस खींच लिये जाएंगे | प्रकाश हम तक न पहुंच पाने के कारण हम तारे को नहीं देख पाएंगे | लेकिन तारे के गुरुत्वाकर्षण को अनुभव कर सकेंगे, चूंकि यह अपने आसपास के पिंडों पर अपने गुरुत्व का प्रभाव डालता रहेगा |

२) कुछ ऐसा ही विचार सन् १७९६ में स्वतंत्र रूप से फ्रांसीसी वैज्ञानिक मार्कस लाप्लास ने भी व्यक्त किया था | लाप्लास की पुस्तक है 'विश्व की कार्य प्रणाली '(The System Of The World) |

३) आज यह सर्वमान्य है कि प्रकाश कण तथा तरंग दोनों रूपों में वास्तव है | कण स्वरूप की कल्पना करने पर गुरुत्व प्रभाव समझा जा सकता है, वैसा ही जैसा अन्य वस्तुओं पर होता है | लेकिन तरंग रूप से यह स्पष्ट नहीं होता कि प्रकाश गुरुत्व बल से किस प्रकार से प्रभावित होगा | उसी तरह अब भी सर्वमान्य है कि प्रकाश की गति एक परिपूर्ण स्थिरांक है, सभी दिशाओं में स्थिर है | अतः प्रकाश कण की तुलना अन्य किसी

वस्तु से नहीं की जा सकती | कोई वस्तु ऊपर फेंकने पर उसकी गति कम होते-होते शून्य हो जाएगी और वह लौटकर पृथ्वी पर आ गिरेगी | लेकिन ऊपर की दिशा में निकला प्रकाश, स्थिर गति से ऊपर ही ऊपर जाता रहेगा |

४) मिशेल ने ऐसे तारे को ' कृष्ण तारा ' (Dark Star) कहा | (मिशेल को भूकंप मापन शास्त्र का पिता भी कहा जाता है | जहां तक खगोलशास्त्र का संबंध है, तारों की वास्तव दूरी का अनुमान, द्वैती तारों के अस्तित्व की संभावना और गुरुत्वाकर्षण बल मापन ये उनकी इस शास्त्र को देन है |)

५) मिशेल के अनुसार सूर्य इतनी ही घनत्व वाला लेकिन जिसका व्यास सूर्य से ५०० गुना है, ऐसे तारे का मुक्ति वेग प्रकाश गति से अधिक होगा | M वस्तुमान के तारे के लिए मुक्ति वेग ($\sqrt{M}$) के समप्रमाण में लेकिन परिधी के व्यस्त प्रमाण में या त्रिज्या के व्यस्त प्रमाण में होता है | तारे की त्रिज्या जितनी कम उतनी सतह केंद्र से करीब और सतह पर गुरुत्वाकर्षण अधिक | सूर्य इतने वस्तुमान वाले तारे के लिए यह विशिष्ट त्रिज्या जहां मुक्ति वेग, प्रकाश गति इतना हो जाएगा, 3 कि.मी. होगी।

६) लेकिन यह ध्यानपूर्वक समझना होगा कि कृष्णतारा यह भले ही कृष्ण विवर की आदि कल्पना मानी जा सकती है लेकिन दोनों कल्पनाएँ एक नहीं हैं | तारे के राक्षसी वस्तुमान के कारण उत्पन्न गुरुत्वाकर्षण, प्रकाश किरणों को भी जकड़कर रखेगा इतना ही कृष्णतारे की कल्पना के पीछे पार्श्व था। अंतर्गत इंधन की समाप्ति के बाद अपने ही गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में तारा बिंदुवत् रूप धारण करने की ओर अर्थात् अकल्पनीय घनता की ओर अग्रेसर होगा, इस कल्पना की उस समय दूर-दूर तक भनक भी नहीं थी |

कृष्ण विवर -

ब्रह्माण्ड में ऐसे भी तारों का अस्तित्व है जो सूर्य से दर्जनों गुना बड़े हैं। ऐसे किसी तारे का, उसके इंधन समाप्ति के पश्चात जब केन्दिभूत पतन (Collapses) होता है तो संकुचन और संगलन क्रिया के अंतर्गत वह न्यूट्रॉन तारे से भी छोटे आकार को प्राप्त होता है। जैसे-जैसे तारे का व्यास कम होता रहेगा वैसे-वैसे गुरुत्व बल में वृद्धि होती रहेगी। तारे का वस्तुमान

जितना अधिक उतना उसका गुरुत्व बल भी अधिक। ऐसे तारे की अंतिम अवस्था एक अत्यधिक सघन पिंड के रूप में होती है। इसकी अत्यधिक सघनता के कारण उसका गुरुत्वाकर्षण इतना कल्पनातीत होता है कि वह अपने इर्द-गिर्द का सारा भौतिक द्रव्य लगातार निगलता ही रहता है। इतना ही नहीं तो प्रकाश की किरणें भी उसकी पकड़ से छूट नहीं सकतीं। वे भी उसमें शोषित हो जाती हैं। ऐसे खगोल पिंडों को नोबेल पुरस्कार विजेता भौतिकविद् जॉन व्हिलर ने २९-१२-१९६७ को ' ब्लैक होल ' नाम दिया था। उसे हम ' कृष्ण विवर ' नाम से संबोधित करेंगे। अस्सी के दशक में ही, चंद्रशेखर सुब्रमण्यम ने ' कृष्ण विवर का गणितीय सिद्धान्त ' नाम की पुस्तक लिखी थी।

उपरोक्त तारे का आकार जब न्यूट्रॉन तारे के आकार की तुलना में दो तिहाई हो जाता है तो समझो पिंड ' कृष्ण विवर ' की अवस्था को प्राप्त हुआ है। सूर्य से १० गुना बड़े तारे से बने कृष्ण विवर का व्यास ६०-६५ कि.मी. से अधिक नहीं होगा।

गुरुत्व निःपात की तरफ तारा जैसे-जैसे सरकता है वैसी-वसी उसकी सतह निरीक्षक से दूर होती जाती है और तारे से आ रहे प्रकाश के वर्णपट में ताम्रसृति देखने मिलती है। इसे ही गुरुत्वीय ताम्रसृति कहते हैं। क्षण-क्षण से तारा धुंधला होने लगता है और कुछ समय में वह अदृश्य हो जाता है।

वर्ष १९५८ से १९६७ के बीच कृष्ण विवर के लिए अलग-अलग नाम उपयोग में लाये जाते थे। सोवियत यूनियन में इसके लिए (Frozen Star-जमा हुआ तारा) शब्द उपयोग में लाया जाता था। यूरोप-अमेरिका के लिए वह 'Collapsed Star' था। कभी-कभी उसे 'Collapser' भी कहते थे। लेकिन इनमें से कोई भी नाम उसकी वास्तवता व्यक्त नहीं करता था।

अभी तो तारकीय अवशेषों जैसे श्वेत वामन तारे, न्यूट्रॉन तारे, ब्लैक होल्स आदि को 'Compact Objects ' कहते हैं।

कृष्ण विवर गुरुत्वीय त्रिज्या -

सन् १९१५ में ही श्वार्जचाईल्ड ने कृष्ण विवर का अस्तित्व सूचित किया था। उन्हें ही ' कृष्ण विवर ' इस क्रांतिकारी संकल्पना का उद्गामी माना जाता है। आइन्स्टाइन के व्यापक सापेक्षता सिद्धांत के बाद जर्मन वैज्ञानिक कार्ल श्वार्जचाईल्ड ने तारे के परिसर में गुरुत्वाकर्षण

के कारण उत्पन्न होने वाले अवकाश और काल इनकी वक्रता का उचित उत्तर ढूँढ निकाला और अपना प्रबंध आइन्स्टाइन के पास भेजा। अपने सिद्धांत के आधार पर प्रस्तुत इस प्रबंध के लिए उन्हें खुशी तो हुई लेकिन उसके परिणाम उन्हें अति विचित्र लगे। तारे को, गुरुत्वीय निःपात के बाद बिंदुवत अवस्था प्राप्त होती है और उस बिंदु का घनत्व अनंत होता है यह निष्कर्ष आइन्स्टाइन मानने को तैयार नहीं थे। ऐसी किसी अवस्था का अस्तित्व हो ही नहीं सकता, इसे सिद्ध करने में उन्होंने काफी समय खर्च किया। उनके अनुसार यह अवस्था वस्तु को विश्व से काट डालेगी।

आइन्स्टाइन ही क्यों, कई वैज्ञानिक यह बात मानने को तैयार नहीं थे जिनमें चंद्रशेखर के गुरु एडिंग्टन भी थे ।

श्वार्ज़शचाईल्ड सिंग्युल्यारिटी-

सन् १९५८ तक गुरुत्व निःपात के कारण बिंदुवत तारों के लिए 'श्वार्ज़शचाईल्ड सिंग्युल्यारिटी ' यही संबोधन उपयोग में लाया जाता था। इस जगह गुरुत्वाकर्षण लगभग अनंत होता है। इस बिंदु के पास पारंपरिक भौतिकी के नियम काम नहीं आते। सिंग्युल्यारिटी के गिर्द के विशिष्ट त्रिज्या के गोल से प्रकाश किरण बाहर निकलना संभव नहीं।

लेकिन यही समस्या का अन्त नहीं। तारा बिंदुवत अवस्था में पहुँचने से पहले ही उसका क्वांटम विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश हो जाता है। हम जिस सिद्धांत के आधार पर यहाँ तक पहुँचे, इस क्षेत्र में केवल उसीका राज नहीं है। अति सूक्ष्म वस्तु के लिए आइन्स्टाइन के सिद्धांत नहीं हैं। दोनों सिद्धान्तों का एकत्रीकरण होने पर ही पूरे ब्रह्माण्ड के अस्तित्व की व्यवस्थित व्याख्या हो सकेगी। लेकिन --

यह अभी तक पूरी तरह संभव नहीं हुआ है।

श्वार्ज़शचाईल्ड त्रिज्या

श्वार्ज़शचाईल्ड ने, कोई ' M ' वस्तुमानवाला पिंड जब कृष्ण विवर बनेगा तो उसके प्रभाव की मर्यादा की त्रिज्या कितनी होगी, इसका गणितीय सूत्र प्रस्तुत किया। गुरुत्वीय त्रिज्या को ही ' श्वार्ज़शचाईल्ड त्रिज्या ' कहते हैं । कृष्ण विवर के केंद्र से जिस अंतर तक प्रत्यक्ष कृष्ण विवर की

कोई भी जानकारी प्राप्त नहीं होती उस दूरी को 'श्वार्ज़्शचाईल्ड त्रिज्या' कहते हैं। या कहो यह कृष्ण विवर की हद्द है।

$R = 2 G \times M \div C \times C$ (R = गुरुत्वीय त्रिज्या, G = गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक, C = प्रकाश की गति)

सात लाख कि.मी. व्यास वाले सूर्य के लिए यह त्रिज्या तीन कि.मी. होगी।

घटना क्षितिज (Event Horizone)-

कृष्ण विवर द्वारा विकिरण उत्सर्जन की संभावना को खारिज करने के बाद भी अंततः वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उसके गुरुत्वाकर्षण की भी कोई मर्यादा होनी चाहिए।

सापेक्षता के विशेष सिद्धांत के अनुसार अति शक्तिशाली गुरुत्व क्षेत्र में समय का प्रवाह धीमा हो जाता है। अतः एक ऐसा संतुलन बिंदु हो सकता है जिससे न तो किरण बाहर आएगी न अंदर शोषित की जाएगी। मानो प्रकाश आगे बढ़ने के स्थान पर स्थिर हो गया हो या उसकी गति अति मंद हो गयी हो। इसे ' घटना क्षितिज (Event Horizone)' नाम दिया गया है। इस घटना क्षितिज पर प्रतिमाएं मानो हमेशा के लिए कमाधिक स्थिर हो गयी हों, तो कोई घटना हमेशा घटती ही दिखेगी मानो वह जम गयी हो।

तारे की ऐसी स्थिति जिसमें प्रकाश बाहर नहीं निकल सकता, उसकी इस मर्यादा की त्रिज्या ' क्रांतिक त्रिज्या ' कहलाती है । ऐसी स्थिति में 'घटना क्षितिज' यह उपरोक्त बात के लिए परिसीमा है। घटना क्षितिज यह दिक्-काल क्षेत्र की परिसीमा है। यहाँ से अंदर गिरी वस्तु शिघ्र ही अनंत घनत्व तथा काल की समाप्ति के क्षेत्र में पहुंच जाएगी। मानो यह कृष्ण विवर के चारों ओर एक झिल्ली है। श्वार्ज़्शचाईल्ड त्रिज्या के अंदर भी वह तारा अस्तित्व में होगा ही। हां हमारे लिए वह दृश्य नहीं है। वास्तव में इस तुलना के आधार पर वुल्फगांग रिन्डलर इस वैज्ञानिक ने श्वार्ज़्शचाईल्ड त्रिज्या, इस मर्यादा के लिए ' Event Horizone ' यह नया शब्द सुझाया ।

मुक्तिवेग--

आजकल हमारे अंतरिक्ष यान पृथ्वी के गुरुत्व बल को पार कर अंतरिक्ष में पहुंच जाते हैं। इसके लिए अंतरिक्ष यान को एक विशिष्ट गति प्राप्त करनी होती है। अगर वह इस गति को

प्राप्त नहीं कर सका तो गति कम होते-होते एक बिंदु पर शून्य हो जाएगी और यान अपनी यात्रा वापस पृथ्वी की ओर शुरू कर देगा और अंततः पृथ्वी पर गिर जाएगा। यह विशिष्ट न्यूनतम गति कितनी हो इसका हिसाब न्यूटन गतिकी के आधार पर किया जा सकता है। किसी वस्तु को, किसी ग्रह, तारे या किसी भी पिंड के गुरुत्वाकर्षण से पार होने के लिए जो गति प्राप्त करना आवश्यक है उस गति को उस ग्रह के प्रति आवश्यक 'मुक्तिवेग' नाम दिया गया है। उसे निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

$$V_F = \sqrt{(2G \times M) / R} \quad \{ G = \text{गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक, } M = \text{संबंधित ग्रह या पिंड का किलोग्राम में वस्तुमान, } R = \text{उस ग्रह की त्रिज्या} \}$$

अ) अर्थात् पिंड का वस्तुमान अधिक उतना उसकी पकड़ से छुटने के लिए आवश्यक मुक्तिवेग अधिक।

आ) अब मान लो, एक ही द्रव्यमान के दो ग्रह हैं लेकिन उनकी त्रिज्याएं भिन्न हैं। जिसकी त्रिज्या कम होगी उसके लिए मुक्तिवेग अधिक होगा या जो जितना सघन उसके लिए मुक्तिवेग उतना ही अधिक। जब किसी तारे की त्रिज्या घटती जाएगी या पिंड की घनता बढ़ती जाएगी उतना उसके लिए मुक्तिवेग भी बढ़ता जाएगा। एक स्तर पर यह मुक्तिवेग प्रकाश की गति बराबर भी हो सकता है या उससे अधिक भी लेकिन अधिक तो संभव नहीं चूंकि यह गति की महत्तम मर्यादा है। अतः इसके बाद प्रकाश भी उस पिंड के गुरुत्वाकर्षण को भेदकर बाहर नहीं आ सकेगा। ऐसे तारे या पिंड को ही 'कृष्ण विवर' कहा जाता है।

अँक्रिशन डिस्क--

कृष्ण विवर अपने आजुबाजू का सारा वायु और धुलीकण अपने में खींच लेता है। वायु के अनगिनत कण उसके चारों ओर प्रचंड गति से चक्कर लगाने लगेंगे और कृष्ण विवर के चारों ओर वायु कणों की बड़ी तश्तरी पैदा होगी। इस तश्तरी को 'अँक्रिशन डिस्क' नाम दिया गया है। तश्तरी के रूप में भ्रमण करते वायु कणों में अत्यधिक घर्षण उत्पन्न होने से वे अति तप्त होंगे। इस कारण अँक्रिशन डिस्क अति तेजस्वी दिखने लगेगी। इसी कारण क्वासार्स इतने तेजस्वी हैं, ऐसा माना जाता है। इतनी दूरी पर होने पर भी, धूंधले क्यों न हो, हम उन्हें देख सकते हैं।

ऑक्रिशन डिस्क का अंदरूनी हिस्सा बड़ा तप्त होता है। उसमें से मुख्यतः क्ष किरणें बाहर आती हैं। डिस्क के बाहरी हिस्से की तरफ तापमान कम होते जाता है। इन तापमानों के अनुसार अति नील, दृश्य, तथा एकदम बाहरी हिस्से से अवरक्त किरणें उत्सर्जित होती हैं। दृश्य किरणें उत्सर्जित करनेवाला, डिस्क का हिस्सा एक प्रकाशवर्ष इतना चौड़ा होना चाहिए। लेकिन 3C273 में वह केवल एक प्रकाश माह इतना छोटा है।

किसी पिंड का करीबी कण पर होने वाला परिणाम यह है कि कण की गति बढ़ती है। उससे जुड़ी तरंग की लम्बाई भी बढ़ती है।

कृष्ण विवर का भयंकर गुरुत्वाकर्षण बल भारी ज्वारीय(Tidal) बल भी उत्पन्न करता है।

ऑक्रिशन तश्तरी तब बनती है जब द्रव्य(अधिकतर वायु रूप में) विवर के बलशाली गुरुत्व के कारण उसमें गिरते जाता है। कोनीय संवेग अविनाशी होने के कारण गिरते द्रव्य के छोटे चक्रीय प्रवाह प्रवर्धित होते हैं। अभिकेंद्रिय बल द्रव्य को अरीय(Rdial) दिशा में फैलाता है। इससे चौड़ी तश्तरी जैसी, चपटी, पतली, गोल या दीर्घगोलाकार रचना आकार लेती है। ज्वारीय तथा उपरोक्त बल मिलकर उसे परिवलनरत करते हैं।

फव्वारे :-

जैसे-जैसे द्रव्यराशि कृष्ण विवर में गिरेगी, वह कृष्ण विवर को भी उसी दिशा में घूमा देगी और इस प्रकार से कुछ-कुछ पृथ्वी जैसा ही, चुंबकीय क्षेत्र विकसित होगा। इस गिरती हुई द्रव्यराशि के कारण, कृष्ण विवर के निकट बहुत ही उच्च ऊर्जायुक्त कण उत्पन्न हो जाएंगे। चुंबकीय क्षेत्र इतना प्रबल होगा कि वह इन कणों को, कृष्ण विवर के घूर्णन के अक्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक पार्श्व में अर्थात् उसके उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव की दिशा में, बाहर की ओर तेज धार के रूप में उत्क्षिप्त करने के लिए, उनको संकेंद्रित कर सकता है। उन्हें ही हम फव्वारों के रूप में देखते हैं।

कृष्ण विवर की विशेषताएँ--

सर्वप्रथम तो यह ध्यान में रखना होगा कि यह सारी गणितीय कसरत है। फिर भी इसके आधार पर हम इस विस्मयकारी खगोलीय पिंड की विशेषताओं के विषय में कल्पना कर सकते हैं।

कृष्ण विवर के करीबी क्षेत्र में अवकाश-काल--

बाह्य विश्व में अवकाश स्थिर होता है। हम उसमें कहीं भी, किसी भी दिशा में आ-जा सकते हैं। लेकिन काल प्रवाहमान है और वह भी एक ही दिशा में अर्थात् भूतकाल से वर्तमान और आगे भविष्य की ओर।

लेकिन कृष्ण विवर के ' इव्हेंट होरायज़ॉन ' के अंदर अवकाश और काल के गुणधर्म एकदम विरोधी हो जाते हैं। कालप्रवाह स्तब्ध हो जाता है अर्थात् रुक जाता है और अवकाश सिंग्युल्यारिटी की दिशा में और केवल उसी दिशा में प्रवाहमान हो जाता है। उसे काल के गुणधर्म प्राप्त होते हैं। अर्थात् इस मर्यादा में हम अवकाश की सभी दिशाओं में संचार नहीं कर सकेंगे, लेकिन काल में कहीं भी घूम सकेंगे, अर्थात् वर्तमान से भूतकाल में भी। लेकिन अवकाश स्वयं ही सिंग्युल्यारिटी की दिशा में प्रचंड गति से अग्रसर होने के कारण हम भी जल्दी ही उस बिंदु में विलीन हो जाएंगे। समझो हमारे यान के पीछे एक यान आ रहा है लेकिन वह घटना क्षितिज से बाहर है तो हम उसे कोई संदेश नहीं भेज सकेंगे। हां, वह हमें भेज सकेगा।

कृष्ण विवर का सान्निध्य और प्रकाश का संचरण -

आइन्स्टाइन के सापेक्ष सिद्धान्त के अनुसार :

- १) वस्तु के अस्तित्व के कारण, उसके परिसर के अवकाश-काल में आने वाली वक्रता ही गुरुत्वाकर्षण है।
- २) वस्तु के चारों ओर का अवकाश-काल जितना अधिक वक्र उतना गुरुत्वाकर्षण अधिक या इससे उलटा भी उतना ही सत्य।
- ३) वस्तु का वस्तुमान और त्रिज्या इनका गुना जितना अधिक उतनी अवकाश-काल की वक्रता अधिक। ऐसे में-

कृष्ण विवर से काफी दूरी पर अवकाश-काल सपाट (Flat) होता है। इस कारण प्रकाश किरण विचलित न होते हुए सीधी रेखा में मार्गस्थ होगी। सूरज से दस से बीस गुना वस्तुमान वाले कृष्ण विवर से कुछ हजार कि.मी. दूरी पर अवकाश-काल सपाट होंगे।

प्रकाश शलाका कृष्णविवर के करीब से गुजर रही होगी तो उसका मार्ग विचलित होगा। दूरी जितनी कम होगी उतना विचलन का कोण बड़ा होगा। कृष्णविवर का वस्तुमान सूर्य दस गुना हो तो श्वार्ज़चाईल्ड त्रिज्या ३० कि.मी. होगी। इसके डेढ़ गुना अंतर से गुजरने वाली शलाका उस विवर के गिर्द वलयाकार मार्ग से चक्कर काटने लगेगी। कृष्ण विवर बनने की दिशा में बढ़ते तारे का आकार छोटा-छोटा होता जाएगा। उसका वस्तुमान कम-अधिककम आयतन में सिमटता रहेगा। साथ में गुरुत्वाकर्षण की तीव्रता भी बढ़ती रहेगी। अवकाश-काल अधिकाधिक वक्र होता जाएगा। तारे से बाहर निकलता प्रकाश अधिकाधिक वक्र होता जाएगा और वह तारे की सतह के समानांतर वापस घूमने लगेगा। (जैसे उपग्रह घूमते हैं)।

कृष्ण विवर के प्रकार-

लघु कृष्ण विवर--

यदि ऐसा कोई कण हो जिसकी ऊर्जा 10^{19} GeV है, जिसे ' प्लैंक ऊर्जा ' कहते हैं, से भी अधिक हो तो, उसकी द्रव्यराशि इतनी संघनित हो जाएगी कि उसका शेष ब्रह्माण्ड से संबंध टूट जाएगा और यह एक छोटा सा कृष्ण विवर बन जाएगा। निःसंदेह प्लैंक ऊर्जा, लगभग 100 GeV के स्तर की ऊर्जा से जो वर्तमान में हमारी प्रयोगशालाओं में उत्पन्न की जा सकने वाली महत्तम ऊर्जा है, बहुत अधिक है।

सूक्ष्म कृष्ण विवर --

निःपात अवस्था की ओर जाने वाले तारे के गर्भ में न्यूट्रॉन कणों का गोल बनने के बाद, उसमें उत्पन्न होनेवाले अंतर्गत दबाव पर प्रभुत्व स्थापित करने इतना अगर गुरुत्वाकर्षण बल प्रबल होगा तो ही कृष्ण विवर अस्तित्व आने की संभावना है। लेकिन उसके लिए तारे का वस्तुमान सूर्य के वस्तुमान से तीन गुना से अधिक होना चाहिए, ऐसा शुरू में माना जाता था।

कृष्ण विवर की कल्पना सापेक्षता सिद्धांत पर आधारित है। पदार्थ का वस्तुमान चाहे जितना कम हो लेकिन उसके साथ गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र संलग्न रहता ही है। अरबों टन वस्तुमान

वाले पदार्थ का आकार प्रचंड बाह्य दबाव डालने से अधिकाधिक छोटा होता गया तो सैद्धान्तिक दृष्टि से उसके आसपास गुरुत्वाकर्षण बल अधिकाधिक प्रखर होता जाएगा | अन्त में गुरुत्वाकर्षण बल इतना अधिक होगा कि अति सूक्ष्म बने उस पदार्थ के पृष्ठ भाग का मुक्ति वेग प्रकाश-गति से अधिक होगा| अर्थात् उसका सूक्ष्म कृष्ण विवर में रूपांतर हो चुका होगा| गणना के अनुसार, ऐसा हो सकता है कि एक अरब टन वस्तुमान वाले पदार्थ का रूपांतर अगर कृष्ण विवर में किया जा सका तो उसकी त्रिज्या 10^{-13} से.मी. होगी अर्थात् प्रोटॉन / न्यूट्रॉन इतने आकार की| संभव है ऐसा कृष्ण विवर ब्रह्माण्ड में कहीं अस्तित्व हो|

अपने ही वस्तुमान के प्रभाव में कम वस्तुमान वाले पदार्थ का रूपांतर कृष्ण विवर में होना संभव नहीं| लेकिन किसी कारण से अति प्रचंड दबाव पैदा हुआ तो सूक्ष्म कृष्ण विवर या मिनी ब्लैक होल की निर्मिति संभव है| विश्व उत्पत्ति के समय ऐसा राक्षसी बल उत्पन्न हुआ था, ऐसा निश्चित अनुमान है| सन् १९७१ में स्टिफन हॉकिन्स ने ऐसे सूक्ष्म विवर की कल्पना प्रस्तुत की|

मृत तारे से बना कृष्ण विवर और सूक्ष्म कृष्ण विवर इनकी विशेषताओं में निश्चित ही स्वरूप का भेद होगा| मृत तारे से बने कृष्ण विवर का गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र लाखों कि.मी. तक फैला होता है| तारा मृत होने के पहले अगर कोई ग्रह उसकी परिक्रमा कर रहा हो तो कृष्ण विवर बनने के बाद भी वह अपनी परिक्रमा जारी रखेगा| इससे उलटा सूक्ष्म कृष्ण विवर से कुछ मीटर के दूरी पर ही उसके गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव शून्य होगा|

सभी कृष्ण विवरों से कुछ ही अंतर तक अवकाश-काल की वक्रता अनंत होती है| पितृ तारे का वस्तुमान कितना ही क्यों न हो, उससे बने विवर की प्रवृत्ति एक बिंदु में सिमटने की होती है| इस विवर के अवकाश-काल की वक्रता उसके बिंदुवत अवस्था की दिशा में बढ़ती जाती है| लेकिन सूक्ष्म विवर से संबंधित तरंगों का, ज्वार-भाटे का (Tidal Force) का बल प्रचंड होना चाहिए| एकदम छोटे अंतर पर ही सपाट अवकाश-काल का रूपांतर अत्यंत वक्र अवकाश-काल में होता है, मानो पदार्थ को विखंडित करने वाले अति प्रचंड ज्वार-भाटे के बल जैसा| क्वांटम यांत्रिकी की दृष्टि से निर्वात प्रदेश यह प्रत्यक्ष निर्वात न होकर, कणों और प्रतिकणों से व्याप्त होता है| सूक्ष्म विवर के पास उपरोक्त ज्वार-भाटे का बल इतना प्रचंड होता है कि वह इन कणों को एकदूसरे से अलग करता है| आभासी या भ्रामक कणों का रूपांतर वास्तव कणों में होता है| अर्थात् वहां से कण-प्रतिकण के युग्म बड़े पैमाने पर उत्सर्जित होने चाहिए|

कल्पना किजिये सभी दिशाओं को घेरने वाले विदुत भार के अडंगे (Potential barrier) वाली जगह में एक विदुत भारित कण अटका हुआ है। कम ऊर्जा के कारण वह विदुत दबाव की तटबंदी लांघ नहीं सकता। लेकिन ऐसा असंभव नहीं कि विशिष्ट स्थिति में इस तटबंदी में छोटी सुरंग बनाकर वह बाहर निकल आए। इसे क्वांटम यांत्रिकी में ' Tunnel Effect ' कहकर पहचाना जाता है। हॉकिन्स का दावा है कि उपरोक्त कण-प्रतिकण के युग्म प्रत्यक्ष सूक्ष्म विवर के अंदर उत्पन्न हुए तो भी वे उपरोक्त ढंग से ही उसकी गिरफ्त से बाहर आ सकते हैं। क्योंकि कृष्ण विवर का गुरुत्वाकर्षण कितना भी अधिक हो वह उपरोक्त विदुत भार की तटबंदी जैसा ही है। बड़े विवर का गुरुत्वाकर्षण का क्षेत्र काफी दूर तक फैला रहता है अतः उसमें से कण के लिए बाहर निकलना संभव नहीं लेकिन सूक्ष्म विवर की यह तटबंदी बहुत संकरी रहती है। इसमें तो यह संभावना बनी रहती है। इस कारण सूक्ष्म विवर के घटना क्षितिज के अंदर पैदा होने वाले कण और प्रतिकण बाहर आ सकते हैं। या ऐसा भी कहा जा सकता है कि सूक्ष्म कृष्ण विवर, सूक्ष्म श्वेत विवर बन जाता है। इसमें से ऊर्जा उत्सर्जन की दर, दस हजार मेगावाट तक भी हो सकती है।

स्टिफन हॉकिन्स के अनुमान के अनुसार एक घन प्रकाशवर्ष अवकाश में ३०० सूक्ष्म कृष्ण विवर होने चाहिए। उलट मृत तारों से बने कृष्ण विवरों के बीच की औसतन दूरी ४० प्रकाशवर्ष होनी चाहिए।

सूक्ष्म कृष्ण विवरों से उत्सर्जित हो रहे गॅमा किरणें, ऐसे पिंड को ढूँढने का एक मार्ग हो सकता है। ऐसे स्रोत अंतरिक्ष में मिले भी हैं। लेकिन उन्हें सूक्ष्म कृष्ण विवर के अस्तित्व का निश्चित सबूत नहीं माना जा सकता। अभी तो यह केवल एक कल्पना ही है।

कम राशि वाले आद्य कृष्ण विवर -

जब पदार्थ अति बड़े बाह्य दबाव से बृहत् घनत्व की सीमा तक सम्पीड़ित (Compressed) हो जाए तो सूर्य से कम द्रव्यमान वाले कृष्ण विवर भी बन सकते हैं। अर्थात् वे गुरुत्व निःपात से बने नहीं होंगे। महाविस्फोट के समय ऐसे कृष्ण विवर बने हो सकते हैं। इन्हें Premordial Black Hole नाम दिया गया है। ये बहुत ही कम द्रव्यराशि वाले कृष्णविवर होंगे। ये ब्रह्माण्ड की बिल्कुल प्रारंभिक अवस्था में अनियमितताओं के निःपात द्वारा बने होंगे। वे अंतरिक्ष में कहीं भी तैरते हो सकते हैं। उन्हें ढूँढना महा कठिन काम है। अभी तक ऐसा कोई

विवर पकड़ में नहीं आया है। ऐसे कृष्ण विवरों का तापमान भी काफी अधिक होगा तथा वे विकिरण भी काफी तीव्र गति से उत्सर्जित कर रहे होंगे। एक अरब टन प्रारंभिक द्रव्यराशि वाले आद्य विवर का जीवन काल, मोटे तौर पर ब्रह्माण्ड की आयु के बराबर होगा। थोड़े अधिक द्रव्यराशि वाले कृष्ण विवरों से आज भी एक्स और गॅमा किरणों का भारी उत्सर्जन हो रहा होगा। वास्तव में उन्हें कृष्ण विवरों के स्थान पर 'श्वेत तप्त विवर' कहना अधिक उचित होगा।

बड़े कृष्ण विवरों में भी कुछ Premordial हो सकते हैं लेकिन उन्हें अलग से पहचानने का कोई रास्ता नहीं है।

भिन्न-भिन्न उद्गम वाले कृष्ण विवर

'फिजिकल रिव्यू लेटर्स और ऐस्ट्रोफिजिकल जर्नल लेटर्स' में दो रिपोर्ट्स प्रकाशित हुई हैं। रिपोर्ट तयार करने वाला एक गुप लिगो (लेजर इंटरफेरोमीटर ग्रॅविटेशनल वेव्ह ऑब्ज़र्वेटरी) से तो दूसरा विर्गोकोलंबोरेशन से है। दोनों मिलकर इस अनुसन्धान से १५०० वैज्ञानिक जुड़े हैं। रिपोर्ट के को ऑथर, स्टारवरोस कात्सानेवास, यूरोपियन ग्रॅविटेशनल ऑब्ज़र्वेटरी में खगोल वैज्ञानिक है।

उनके अनुसार -

स्टेलर वर्ग के कृष्ण विवर का निर्माण तब होता है जब कोई पुराना तारा, जो आकार में सूरज से ३-१० गुना के बराबर होता है, मृत होता है। इस तरह की घटना आम बात है। अतः ऐसे बने विवर अंतरिक्ष में भटकते होना चाहिए। तारे से बने ऐसे जो भी कृष्ण विवर मिले हैं, उनका द्रव्यमान टोलमन-ओपनहेईमर-होलकाफ मर्यादा अर्थात् सूर्य द्रव्यमान से २.४ गुना से अधिक ही पाया गया है। लेकिन अंतरिक्ष के पार्श्व में उन्हें ढूँढना बड़ा मुश्किल काम है। ४-२-२२ को अंतरिक्ष दूरबीन विज्ञान इंस्टिट्यूट बाल्टीमोर, मेरीलैंड के खगोलशास्त्रियों ने एक कृष्ण विवर की हबल अंतरिक्ष दूरबीन के माध्यम से तथा गुरुत्वीय मायक्रोलेंसिंग तकनीक का उपयोग करते हुए प्रतिमा ली है। यह ऐसा ही कृष्ण विवर होना चाहिए। उसे नाम दिया गया है—MOH-11-191/OGLE-11-046 |

मौजूदा जानकारी के अनुसार किसी तारे के गुरुत्वीय विखंडन से सूर्य के भार की तुलना में ६०-१२० गुना वज़नी कृष्ण विवर का निर्माण नहीं हो सकता। तारे के विखंडन के तुरंत बाद

होने वाला सुपरनोवा विस्फोट उसके टुकड़े-टुकड़े कर देता हैं। अब तक सूरज की तुलना में १०० से १००० गुना द्रव्यमान वाले कृष्ण विवर नहीं मिले हैं।

नये ढंग का कृष्ण विवर-

यूरोपीयन सदरन वेधशाला के चिली स्थित व्हेरी लार्ज टेलिस्कोप का उपयोग कर, एक अलग ढंग का कृष्ण विवर पहली ही बार, छह सालों के अवलोकनों के बाद ढूँढ निकाला गया है। इसका भार सूर्य से केवल नौ गुना ज्यादा है। इसके साथ एक बहुत ही चमकिला नीला तारा है, जो सूर्य से २५ गुना बड़ा है। दोनों एकदूसरे का चक्कर लगाते हुए एक द्विज तंत्र बनाते हैं। यह सुसुप्त विवर हमारी आकाशगंगा के ही टेरेंटुला नेब्युला इलाके के विशाल मैगलैनिक् बादल-मंदाकिनी में खोजा है। वैज्ञानिक इसे भूसे के ढेर में सुई खोजना बोल रहे हैं। तेजी से और चमकिली एक्स रे विकिरणों के दिखने से पता चलता है कि विवर, अपने आसपास का पदार्थ कितनी तेजी से निगल रहा है। लेकिन इस विवर से निकलने वाली एक्स रे किरणें बहुत ही क्षीण हैं। वैज्ञानिकों का अंदाजा है कि सूर्य से २० गुना भारी तारे का कुछ पदार्थ अंतरिक्ष में उड़ गया होगा। बचा हुआ बिना तारकीय विस्फोट के ही कृष्ण विवर में रूपान्तरित हो गया होगा। यह पृथ्वी से एक लाख साठ हजार प्रकाश वर्ष दूर है। यह खोज 'नेचर अस्ट्रॉनॉमी' में प्रकाशित हुई। इस अध्ययन के प्रमुख और एमस्टरडैम युनिवर्सिटी में खगोलशास्त्र के रिसर्च फेलो तोमर शेनार तो लेख के सहलेखक करीम अल बादरी हैं।

(लोकमत समाचार : २२-७-२२)

रिसर्च की को ऑथर मिशाएला,पडोवा विश्वविद्यालय में खगोल भौतिकी की वैज्ञानिक है। उनके अनुसार-

GW१९०५२१ नाम के कृष्ण विवर की खोज २१-०५-२०१९ को हुई थी। इतने अधिक द्रव्यमान के स्तर वाला यह पहला कृष्ण विवर है जिसके बारे में प्रमाण मिला है। इस खोज से इस विचार को समर्थन मिला है कि विशालकाय कृष्ण विवर का निर्माण मध्य आकार वाले विवरों के बार-बार आपस में जुड़ने से हो सकता है। यह विवर, सूरज से ८५ और ६५ गुना बड़े कृष्ण विवरों के सात अरब साल पूर्व आपस में जुड़ने से हुआ था। जब ये टकराएं होंगे तो ८

सूरज के वजन इतनी ऊर्जा निकली होगी। इसे बिग बैंग के बाद की सबसे बड़ी घटना कहा जाता है। वैज्ञानिकों ने उस घटना से निकलीं गुरुत्व तरंगों को दर्ज किया है।

बहुत भारी द्रव्यमान वाले कृष्ण विवर अधिकतर गैलेक्सियों के केंद्र में पाए जाते हैं। उनका भार करोड़ों अरबों सौर भार के बराबर होता है।

बाल विरहित कृष्ण विवर--

सूर्य के समान हर तारे का अपना चुंबकीय क्षेत्र होना ही चाहिए। वह लाखों कि.मी. तक फैला होता है। वही तारा जब कृष्ण विवर बन जाता है तो उसकी चुंबकीय बल रेखाओं का क्या होता है ?

व्हिटली गिन्ज़बर्ग इस रूसी वैज्ञानिक ने इसपर गहराई से अनुसंधान किया। यह बात उनके ध्यान आयी कि प्रखर गुरुत्वाकर्षण कारण केवल वस्तु ही नहीं तो उसका चुंबकीय क्षेत्र भी कृष्ण विवर निगल लेता है। कृष्ण विवर की निर्मिती के बाद उसके बाह्य अवकाश में एक भी चुंबकीय रेखा का अस्तित्व नहीं रहता, कृष्ण विवर का चुंबकीय क्षेत्र शून्य होता है।

शरीर पर बाल त्वचा के बाहर होते हैं। इस अर्थ से कृष्ण विवर के बाहर झांकने वाली किसी भी वस्तु को हम कृष्ण विवर के बाल के रूप में समझ सकते हैं। चुंबकीय बलरेखाएं भी चुंबक के बाहर ही होती हैं। लेकिन कृष्ण विवर के बाहर कोई बलरेखा नहीं होती। इस अर्थ में कृष्ण विवर को चुंबकीय रेखाओं के रूप में बाल नहीं होते ऐसा कहा जाने लगा।

कृष्ण विवर एक परिपूर्ण गोलाकृति--

सामान्यतः तारे परिवलन करते हैं और केन्द्रोत्सारी बल के कारण उनके विषुववृत्त पर उभार पैदा होता है। पृथ्वी के विषुववृत्त पर ऐसा ही उभार है। पृथ्वी का विषुववृत्तीय व्यास, ध्रुवीय व्यास से ४० कि.मी. अधिक है। यह केन्द्रोत्सारी बल का ही परिणाम है कि तारे और ग्रहों की परिपूर्ण गोलाकृति नहीं होती। इससे उलट कृष्ण विवर की परिपूर्ण गोलाकृति होती है। कृष्ण विवर की यह आदर्श परिपूर्ण गोलाकृति ध्यान में लेकर ही जॉन व्हिलर इन्होंने यह सिद्धांत प्रस्तुत किया कि “ Black hole has no hair “ और अल्प समय में यह वाक्य लोकप्रिय हो गया।

सूचना विलय गर्त-

कृष्ण विवर के वर्णन से यह बात साफ हो जाती है कि यह पहले की पूरी जानकारी डकार लेने वाला पिंड है। इसी कारण इसे “ सूचना विलय गर्त (Information Sink) “ के तौर पर भी जाना जाता है।

महाकाय कृष्ण विवर --

वर्ष १९४३ में ही कार्ल सेफर्ट नाम के खगोल वैज्ञानिक ने अमाप ऊर्जा उत्सर्जित करने वाली दीर्घिकाओं के केंद्रों का पता लगाया था। अति तप्त और धन / ऋण अयनों में रूपांतरित वायु, प्रकाशतुल्य गति से चलायमान होगा तो ही ऐसे उत्सर्जन की संभावना है। छोटे क्षेत्र से अति प्रचंड ऊर्जा उत्सर्जन। वैसे ये केंद्र तारों से अलग नहीं दिखते थे। १९६०-१९७० के दरम्यान दीर्घगोलाकृति केंद्रों से अति प्रखर रेडियो तरंगों का उत्सर्जन तथा उन केंद्रों से हजारों प्रकाशवर्ष दूरी तक अति तेज गति वाले तप्त वायु के उड़ने वाले फव्वारों को देखा गया था। इतनी ऊर्जा का स्रोत न्यूक्लियर फ्यूजन नहीं हो सकता । इस प्रक्रिया से वस्तु का ऊर्जा में रूपान्तर होने की कार्यक्षमता 0.७ % ही होती है। उलट जब कोई वस्तु कृष्ण विवर की तरफ आकृष्ट होती है तो ३३% वस्तु ऊर्जा में बदल जाती है। दीर्घिकाओं के केंद्रस्थान में तारों की भीड़ पायी जाती है। अगर केंद्र में कृष्ण विवर हो तो उसकी दिशा में तारों की गति बढ़ती जाती है । अगर केंद्र में कृष्ण विवर के स्थान पर तारों का समूह होता तो ऐसी गति देखने में नहीं आती। निम्न केंद्रों का अवलोकन किया गया है - कोमा बेरेनिसेस M८७ (NGC ४४८६) पीटर यंग और वॅलेस सर्जन्ट द्वारा, १९७७ में। संभाव्य कृष्ण विवर का वस्तुमान, सूर्य से ३ अरब गुना और व्याप्ति १२० प्रकाशवर्ष तक होनी चाहिए।

आकाशगंगा-

वर्ष १९७० में किए गये प्रयोगों से पता चला कि आकाशगंगा के केंद्र से आने वाली गॅमा किरणें एक ही तरंग लम्बाई की हैं । सूर्य से तो सभी लम्बाइयों वाला विकिरण उत्सर्जित होता है। इससे यह अनुमान लगाया गया कि आकाशगंगा के केंद्र की ऊर्जा निर्मिति क्षमता सूर्य से लाखों गुना होनी चाहिए। कृष्ण विवर के परिसर में पैदा होने वाले उच्च ऊर्जाधारी फोटॉन एकदूसरे से टकराकर इलेक्ट्रॉन-पॉजिट्रॉन की जोड़ियां पैदा करते हैं लेकिन क्षणाधार्त वे एकदूसरे

का नाश करते हैं। इससे मुक्त होने वाली ऊर्जा गॅमा किरणों के रूप में उत्सर्जित होती है। वैसे १९७० तक आकाशगंगा के केंद्र का स्वरूप काफी कुछ स्पष्ट हो गया था।

कृष्ण विवर की महत्तम मर्यादा--

भारतीय मूल की खगोलशास्त्री प्रियवंदा नटराजन, येल यूनिवर्सिटी में खगोलशास्त्र और भौतिकशास्त्र की असोसिएट प्रोफेसर तथा उच्च शिक्षा रैंडिक्लिफ इन्स्टीट्यूट की फेलो हैं। वे तथा उनकी टीम ने बहुत बड़ी मंडाकिनियों के केंद्र में होने वाले महाबृहत कृष्ण विवर के भी बड़े होने की मर्यादा पर अनुसंधान और गणना की है। यह सूरज की संहिता के १० अरब गुना हो सकती है। इस मर्यादा के आगे, महाबृहत कृष्ण विवर, अपने आप ही अपनी वृद्धि को मर्यादित करते हैं। ऐसे महाबृहत कृष्ण विवर सूर्य से एक अरब गुना बड़े होते हैं। कई गॅलक्सियों के केन्द्र में ऐसे कृष्ण विवर पाए गये हैं। ऐसा माना जाता है कि ब्रह्माण्ड उत्पत्ति के शुरू में ऐसे राक्षसी पिंड नहीं बने होंगे। उन्हें बनने में काफी समय लगना है। (इस खोज में उनकी सहयोगी थी एड्रिक्विल ट्रिडिस्टर जो हवाई यूनिवर्सिटी की फेलो हैं।)

सौर परिवार के किनारे छोटा कृष्ण विवर

नेपच्यून ग्रह के पार, सूर्यमाला के किनारे पर, अंगूर इतना छोटा कृष्ण विवर होने की संभावना हॉवर्ड विद्यापीठ के प्राध्यापक अविलोएब और उनका छात्र अमीर सिराज इन्होंने अपने प्रसिद्ध किए अनुसंधान रिपोर्ट में व्यक्त की है। यह विवर ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के समय पैदा हुए सूक्ष्म कृष्ण विवरों में से हो सकता है। यह छोटा कृष्ण विवर किसी ग्रह के समान ही सूर्य प्रदक्षिणा कर रहा हो ऐसा अनुमान है। ' लेग सी सर्वे ऑफ स्पेस टेलिस्कोप ' नामक एक दूरबीन निर्माणाधीन है। इसके माध्यम से इस घटक के स्वरूप पर अधिक रोशनी पड़ सकती है। 'ट्रान्स नेपच्यून पिंड' नामक पिंडों का एक वर्ग है। इस नाम से ही स्पष्ट होता है कि ये पिंड नेपच्यून के पार सूर्यमाला के घटक हैं। वैज्ञानिकों के निरीक्षणों के आधार पर ऐसा अनुमान है कि इन घटकों के परिभ्रमण पर किसी बड़े पिंड का परिणाम हो रहा है। यह पिंड पृथ्वी से पांच से लेकर तो दस गुना तक बड़ा ग्रह होना चाहिए। हो सकता है यह सूर्यमाला का अभी तक अज्ञात ग्रह हो। लेकिन हाल में वैज्ञानिकों को लगने लगा है कि यह अंगूर के आकार का कृष्ण विवर हो सकता है।

नये कृष्ण विवर का जन्म --

खगोलशास्त्रियों ने एक ऐसे कृष्ण विवर को खोज लिया है, जिसने केवल तीस साल पहले एक सुपरनोव्हा से जन्म लिया है। जिस तारे का विस्फोट हुआ वह तारा M १०० गॅलेक्सी के किनारे पर था। वह ५ करोड़ प्रकाशवर्ष दूर है। इसे सर्वप्रथम १९७९ वर्ष में देखा गया था। यह कृष्ण विवर सूर्य से पांच गुना भारी है और जिस तारे के विस्फोट से इसका जन्म हुआ वह सूर्य से २० गुना भारी होना चाहिए। काफी अध्ययन के बाद यह कृष्ण विवर होने की बात पक्की हुई है। इस अध्ययन का नेतृत्व हॉवर्ड यूनिवर्सिटी की डॅनियल पाटनाउडे (Danial Patnaude) ने किया। चंद्रा क्ष किरण अंतरिक्ष दूरबीन द्वारा ली गयी प्रतिमाओं के विश्लेषण के बाद इस नतीजे पर पहुँचा गया है। इसी यूनिवर्सिटी के अवी लोएब (Avi Loeb) ने कहा है कि यह पहला ही प्रसंग है कि किसी सामान्य सुपरनोवा से कृष्ण विवर ने जन्म लेते हुए देखा गया है।

कृष्ण विवर की खोज--

कृष्ण विवर के अस्तित्व का प्रथम सबूत हंस तारका समूह के ' सिग्नस क्ष १ ' इस किरणों के स्रोत से मिला। इसकी खोज वर्ष १९६५ में हुई। इस स्रोत के स्थान पर सूर्य की तुलना में लगभग १५ गुना वस्तुमान वाला निले रंग का एक प्रचंड तारा है। १९७१ में चार्ल्स बोल्टन इस अमेरिकी खगोलशास्त्री ने वर्णपटशास्त्र के आधार पर इस तारे का अध्ययन किया। इस तारे के वर्णपट में कालानुसार होने वाला बदल यह बता रहा था कि इस तारे का कोई अदृश्य जोड़ीदार होना चाहिए। यह जोड़ी किसी निश्चित बिंदु के गिर्द ५.६ दिन में प्रदक्षिणा करती हुई दिख रही थी। यह अदृश्य तारा सूरज की तुलना में कम से कम छह गुना भारी होने की संभावना दिख रही थी। अतः यह न्यूट्रॉन तारा नहीं हो सकता था। इतना प्रचंड वस्तुमान होने पर भी अदृश्य तारा, कृष्ण विवर के रूप में होने की संभावना व्यक्त की गयी। उसके बाद ' सिग्नस क्ष १ ' स्रोत की तीव्रता के बदलों का अधिक अध्ययन किया गया। इससे स्पष्ट हो रहा था कि यह कृष्ण विवर अपने गुरुत्वाकर्षण से नीले तारे से पदार्थ अपनी ओर खींच रहा था। यह पदार्थ इतनी तेज गति से कृष्ण विवर की ओर खींचा जा रहा था कि उसका तापमान बढ़कर उसमें से बड़े पैमाने पर क्ष किरणों का उत्सर्जन हो रहा था। उपरोक्त प्रणाली हमसे ८००० प्रकाशवर्ष दूर है।

इस संभाव्य कृष्ण विवर की खोज के बाद क्ष किरणों के ऐसे ही स्रोतों के पास संभाव्य कृष्ण विवरों की खोज हुई है।

नये कृष्ण विवरों की खोज--

कृष्ण विवरों को निम्न पद्धतियों से ढूंढा जाता है -

- १) विशिष्ट तारे की दिशा से आने वाले क्ष किरणों का स्रोत : क्ष किरणों का स्रोत या तो न्यूट्रॉन तारा हो सकता है या कृष्ण विवर । लेकिन न्यूट्रॉन तारे से आनेवाली क्ष किरणें, स्पंदन के रूप में होती हैं जबकि कृष्ण विवर की तरफ से आने वाली अनियमित स्वरूप की क्योंकि कृष्ण विवर की तरफ जाने वाला द्रव्य का प्रवाह हमेशा समान मात्रा का नहीं होता। जब ऐसा प्रतीत होता है कि क्ष किरणों का अस्तित्व चारों ओर है लेकिन बीच का हिस्सा रिक्त है, तो वैज्ञानिक उस हिस्से में कृष्ण विवर का अस्तित्व जान लेते हैं। यह विकिरण जबतक कृष्ण विवर की गिरफ्त में नहीं आता तबतक अंतरिक्ष में प्रसृत होते रहता है।
- २) गुरुत्वीय भिंग प्रभाव : इस प्रभाव के कारण तारों की भ्रमक प्रतिमाएं दिख सकती हैं, यह हमने अन्यत्र देखा। कभी एक ही तारे की दो प्रतिमाएं, तो कभी दो अर्धगोलाकार प्रतिमाएं आदि। इनकी दीप्ति तारे की दीप्ति से अधिक होती है। कृष्ण विवर न होता तो तारा धुंधला दिखाई देता। (वैसे तो तारा, कृष्ण विवर और पृथ्वी एक ही रेखा में आना यह बहुत कम संभावना की बात है।) लेकिन वहां कृष्ण विवर होना केवल एक संभावना है। वहां कोई महादैत्य धुंधला तारा भी हो सकता है। वह भी यही प्रभाव उत्पन्न करेगा।
- ३) ताम्रसृति-नीलसृति : समझो एक कृष्ण विवर और एक राक्षसी तारा एकदूसरे की परिक्रमा कर रहे हैं। कृष्ण विवर का वस्तुमान तारे से अधिक है। ऐसी स्थिति में, वस्तुकेंद्र के संदर्भ में कृष्ण विवर की भ्रमण कक्षा तारे की भ्रमण कक्षा से कम होगी। इस युग्म में से भ्रमणरत दृश्य तारा एक विशिष्ट क्षण में पृथ्वी से दूर जाते हुए दिखेगा तो किसी और क्षण पास आते हुए। इन दो स्थितियों में लिए गये वर्णपटों में से पहले में ताम्रसृति तो दूसरे में नीलसृति मिलेगी। इनसे इस तारे की गति का अंदाजा होगा और इस आधार पर अदृश्य साथी का वस्तुमान पता किया जा सकेगा। अंदरूनी कक्षा में भ्रमणरत वस्तु से विकिरण उत्सर्जित नहीं हो रहा होगा और अगर उसका वस्तुमान सूर्य से तीन गुना अधिक होगा तो वहां कृष्ण विवर होने की संभावना अधिक है।
- ४) जिस स्थान पर एकदूसरे से एकदम करीबी तारों का बड़ा समूह हो, उस स्थान पर कृष्ण विवर मिलने की संभावना अधिक होती है। उदाहरणार्थ, ग्लोब्युलर क्लस्टर में लाखों तारे कम

क्षेत्र में सिमटे रहते हैं। सामान्य क्षेत्र में तारों के बीच औसत दूरी पांच प्रकाशवर्ष हो तो उपरोक्त क्षेत्र में वह आधा प्रकाशवर्ष ही होगी। ऐसे गुच्छों के केंद्र में सूर्य से दस से लेकर तो सौ गुना वस्तुमान का कृष्ण विवर हो सकता है।

५) सन् २००० में स्वतंत्र ढंग से भ्रमण करने वाला कृष्ण विवर ज्ञात होने का दावा कुछ वैज्ञानिकों ने किया था।

कृष्ण विवर का भविष्य -

श्वेत विवर

इस विषय में तो दो राय नहीं कि द्रव्य का पूरी तरह विनाश नहीं हो सकता। ज्यादा से ज्यादा उसका ऊर्जा में रूपान्तर हो सकता है। या यह भी तार्किक नहीं कि कृष्ण विवर अनंत काल तक द्रव्य ही निगलते रहेंगे। कृष्ण विवरों का कहीं न कहीं और किसी न किसी रूप में, कभी तो प्रकटीकरण अवश्यम्भावी है। इसी तर्क के आधार पर वैज्ञानिकों ने ऐसे 'श्वेत विवरों' की कल्पना की है जहाँ यह द्रव्य फिर प्रकट होता है। लेकिन ऐसे पिंड के अस्तित्व के बारे में हम पूरी तरह अनभिज्ञ हैं। यह पूरी तरह कल्पना के स्तर पर ही है। यह भी अज्ञात है कि कृष्ण विवर में जमा यह द्रव्य किस प्रक्रिया द्वारा रूपान्तरित होता है। कृष्ण विवर में द्रव्य विलुप्त नहीं होता केवल अदृश्य होता है। लेकिन यह तार्किक है कि इस द्रव्य का विकास क्रम आगे भी जारी रहना चाहिए। (वैसे भी हम यह बिल्कुल नहीं जानते कि ब्रह्माण्ड का सारा द्रव्य कहां से और कैसे आया ।)

लेकिन आइन्स्टाइन के सामान्य सापेक्षता सिद्धांत के आधार पर यह पूर्वानुमान लगाया गया कि दिक्-काल की उत्पत्ति एक असीमित घनत्व और ताप वाले महानाद से हुई थी और इसका अन्त एक असीमित रूप से सम्पिंडित विलक्षणता (Singularity) पर होगा या किसी कृष्ण विवर की आन्तरिक विलक्षणता पर होगा।

दूसरी ओर कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि केवल एक ही महाविस्फोट से ब्रह्माण्ड का जन्म नहीं हुआ, तो लघु स्फोटों की श्रृंखलाओं में से धीरे-धीरे विश्व अस्तित्व में आया। ये लघु स्फोट 'श्वेत विवर' के निदर्शक हो सकते हैं।

लेकिन जब क्वांटम प्रभाव ध्यान में लिए गये तो ऐसा लगा कि द्रव्यराशि अर्थात् पदार्थ की ऊर्जा अंततः शेष ब्रह्माण्ड में लौटा दी जाएगी तथा कृष्ण विवर अपनी विलक्षणता के साथ ही बाष्पित हो जाएगा और अन्त में विलुप्त हो जाएगा। जब गुरुत्वीय क्षेत्र इतने प्रबल हो जाते हैं तो क्वांटम प्रभावों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

(वैसे फ्रीडमन मॉडल के अनुसार ज्यों-ज्यों ब्रह्माण्ड का विस्तार होता जाएगा, इसके अंदर का समस्त पदार्थ या विकिरण ठंडा होता जाएगा।)

कृष्ण विवर और नोबेल पुरस्कार-

आइन्स्टाइन को भी कृष्ण विवरों के अस्तित्व के बारे में साशंकता थी। लेकिन उनकी मृत्यु के लगभग एक दशक के अंदर ही ब्रिटिश सैद्धांतिक भौतिक वैज्ञानिक रॉजर पेनरोज ने गणित के आधार पर कृष्ण विवरों का अस्तित्व, सैद्धांतिक स्तर पर सिद्ध किया। इस सिद्धता का आधार आइन्स्टाइन का सापेक्षतावाद ही था। इससे पहले उन्होंने ' Trapped Surfaces ' यह संकल्पना प्रस्तुत की थी।

रीनहार्ड, गेंजेल और एंड्रिया घेज इन्होंने हमारी आकाशगंगा के केंद्र में एक कृष्ण विवर की खोज की। इस कृष्ण विवर का वस्तुमान, सूर्य के वस्तुमान के चालीस लाख गुना होना चाहिए। उन्होंने यह खोज आंतरतारकीय वायु तथा धूल में से दूरबीन द्वारा लिए गये निरीक्षणों के आधार पर की। इसी कारण यह निश्चित हो सका कि सभी दीर्घिकाओं के केंद्र में अति विशाल कृष्ण विवर होते हैं। इन अनुसन्धानों के लिए उपरोक्त तीनों को ६-१०-२०२० को भौतिकशास्त्र का नोबेल पुरस्कार घोषित किया गया।

स्टीफन हॉकिन्स--

जन्म : ८-१-१९४२ ऑक्सफोर्ड इंग्लैंड में। **मृत्यु :** १४-३-२०१८ केंब्रिज के घर में।

उनकी जन्म तारीख का दिन, जिन्होंने गुरुत्वाकर्षण के अध्ययन का आरंभ किया उस महान वैज्ञानिक गैलिलियो का तीन सौवां स्मृति दिन था। जीवन का अधिकतर समय उन्होंने पॅरलाइज्ड अवस्था में गुजारा। उनकी अंतिम इच्छा थी कि हॉकिंग रेडिएशन का सूत्र उनकी समाधि पर अंकित किया जाए। उनकी वर्ष १९८८ में प्रकाशित विश्वविख्यात पुस्तक है ' समय का संक्षिप्त इतिहास '(एक करोड़ प्रतियों की बिक्री हुई)

लेकिन वे नोबेल पुरस्कार प्राप्त नहीं कर सके। इसका कारण यह है कि नोबेल पुरस्कार उस सैद्धांतिक काम के लिए दिया जाता है जिसकी सिद्धता निरीक्षणों द्वारा हो जाती है। अभी तक हॉकिन्स विकिरण का प्रत्यक्ष सबूत प्राप्त नहीं हो सका था। (नोबेल पुरस्कार मरणोपरांत नहीं दिया जाता)

हॉकिन्स विकिरण --

अगर हमने लोहे की सरिया को आग पर गरम किया तो वह लाल होकर दमकने लगती है। वह विकिरण उत्सर्जित करने लगती है। हम ताप को अनुभव भी करते हैं। लेकिन विज्ञान कहता है कि कम तापमान पर भी वस्तुएं विकिरण उत्सर्जित करती हैं। यह तापमान कम होते-होते 0° केल्विन की ओर भी अग्रसर हो सकता है। लेकिन उत्सर्जित होने वाला उष्मीय विकिरण परिमाण में कम-कम होते जाता है और हम उसे अनुभव नहीं करते। इस कारण हमारा उसकी ओर ध्यान नहीं जाता। उष्मा गतिकी के द्वितीय नियम के उल्लंघन को रोकना है तो प्रत्येक वस्तु ने यह उष्मीय विकिरण उत्सर्जित करना ही चाहिए, जिसका तापमान 0° केल्विन से अधिक है, फिर चाहे वह कृष्ण विवर ही क्यों न हो।

स्टीफन हॉकिन्स ये सुप्रसिद्ध भौतिक वैज्ञानिक थे । उन्होंने क्वांटम यांत्रिकी के सिद्धांतों के आधार पर कृष्ण विवर की सर्वग्राही छवि का विरोध किया। उनके अनुसार कृष्ण विवर से तापीय विकिरण (Thermal Radiation) संभव है। इसे ही ‘ हॉकिन्स विकिरण ‘ नाम दिया गया है। उन्होंने यह प्रतिपादन १९७५ में किया था। उनके अनुसार बहुत छोटे और अतितप्त कृष्ण विवरों से यह विकिरण निकलता है। इसका संसूचन भी संभव है। यह विकिरण कृष्णविवर की ऊर्जा को भी अपने साथ ले जाएगा और एक दिन सभी कृष्ण विवर समाप्त हो जाएंगे।

हॉकिन्स ने पाया कि संभावित कृष्ण विवर की दिशा से आ रहे उत्सर्जित कणों के वर्णक्रम की किसी तप्त पिंड से उत्सर्जित कणों के वर्णक्रम के साथ सटीक समानता थी और इस तरह कृष्ण विवर उष्मा गतिकी के दूसरे नियम के उल्लंघन से बचने के लिए बिल्कुल सही दर से कणों का उत्सर्जन कर रहा था। तब से अबतक अन्य वैज्ञानिकों द्वारा भी इन गणनाओं की पुष्टि की जा चुकी है कि कृष्ण विवर को उसी प्रकार विकिरण का उत्सर्जन करना चाहिए मानो वह कोई तप्त पिंड हो, जिसका तापमान केवल कृष्ण विवर की द्रव्यराशि पर निर्भर करता है।

जितनी द्रव्यराशि अधिक उतना तापमान कम। आमतौर पर बड़े कृष्ण विवर का तापमान अधिक नहीं होता। वह 0° केल्विन के आसपास ही होता है।

स्टिफन ने वर्ष १९७४ में एक प्रस्तुति दी थी -

$T = hc^3 / 16 \pi^5 k^4$ (T-कृष्ण विवर का तापमान, M-विवर का द्रव्यमान, G,K,c,h सभी स्थिरांक हैं और इसमें पूंज भौतिकी, सापेक्षता, गुरुत्व एकसाथ अंतर्भूत हैं।)

यह सूत्र दर्शाता है कि कृष्ण विवर का तापमान होता है जो उसके वस्तुमान के व्यस्त प्रमाण में है। अगर तापमान होगा तो प्रारण भी होगा ही भले ही उसका स्वरूप कृष्ण पदार्थ के प्रारण (Black Body Radiation) जैसा ही हो। हॉकिन्स उत्सर्जन यह कृष्ण पिंड उत्सर्जन ही होता है। लेकिन हॉकिन्स विकिरण यह न अबतक देखा गया है न सीधा देखा जाने की उम्मीद है चूंकि वह बहुत ही क्षीण विकिरण है। लेकिन सैद्धान्तिक दृष्टि से तथा प्रयोगशाला में किये गये समांतर अनुसंधानात्मक गतिविधियों से उसके होने की पुष्टि हुई है।

कृष्ण विवर

अगर कृष्ण विवर पदार्थ को निगलेगा तो उसके घटना क्षितिज का दायरा बढ़ता जाएगा। अगर दो कृष्ण विवर टकराएंगे तो एक नया कृष्ण विवर बनेगा। तो नये के घटना क्षितिज का दायरा दोनों के टकराव पूर्व घटना क्षितिजों के योग इतना होगा, कभी कम नहीं होगा। कृष्ण विवर के घटना क्षितिज का गुणधर्म, एन्ट्रॉपी के नियम के समान है। लेकिन ऐसा लग रहा था कृष्ण विवर, तापयांत्रिकी के नियम को तोड़ रहा है। पुरानी एन्ट्रॉपी = कृष्ण विवर के बाहर के पदार्थ की एन्ट्रॉपी + कृष्ण विवर द्वारा निगले पदार्थ की एन्ट्रॉपी। लेकिन चूंकि हम कृष्ण विवर के अंदरूनी बातों से अनजान हैं, हम यह नहीं कह सकते कि बाहर से अंदर गये पदार्थ की एन्ट्रॉपी अब कितनी है। उस समय जेकब बिकास्टिन (विन्स्टन युनिवर्सिटी के छात्र) ने यह सुझाया कि कृष्ण विवर के घटना क्षितिज का क्षेत्रफल ही उसके एन्ट्रॉपी का माप है।

अगर कृष्ण विवर की एन्ट्रॉपी है तो उसका तापमान भी होगा। सभी तापमान पर पदार्थ तापीय विकिरण कृष्ण विवर से नहीं निकलते बल्कि घटना क्षितिज के करीबी अंतराल से निकलते हैं। क्वांटम सिद्धांत के अनुसार कोई अंतराल पूरी तरह रिक्त अर्थात् सभी क्षेत्रों से

रहित नहीं होता। किसी क्षेत्र की कीमत और उसमें समय के साथ होने वाला फर्क, बिल्कुल कण की स्थिति और आवेग (मोमेंटम) के समतुल्य होगा।

इस कारण रिक्त अवकाश में क्षेत्र की कीमत शून्य नहीं हो सकती। अगर हुई तो उसका अर्थ होगा, हमें उसके कीमत की निश्चित जानकारी होगी और उसमें आये अंतर की भी (जो दोनों बाबत शून्य होगी)। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता। अतः वहां कुछ अनिश्चितता या क्वांटम क्षोभ जरूर होगा।

जिसे हम रिक्त अंतराल कहते हैं उसमें आभासी कण और प्रतिकण जोड़ी में उभरते हैं और तुरंत नष्ट होते हैं। ऊर्जा यूंही नहीं बनती। अतः पदार्थ और प्रतिपदार्थ इनमें एक की ऊर्जा धनात्मक होगी तो दूसरे की ऋणात्मक। सामान्य अवस्था में साधारण पदार्थ की ऊर्जा धनात्मक होती है। ऋणात्मक ऊर्जा वाले आभासी कण की आयु कम होती है। अगर यह जोड़ी घटना क्षितिज के पास बनती है तो चूंकि ऋणात्मक कण के पास इतनी ऊर्जा नहीं होती कि वह बाहर निकल जाएं तो कृष्ण विवर उसे अपने अंदर खींच लेता है। धनात्मक ऊर्जा वाला कण अधिक ऊर्जावान होने के कारण अपने आपको बचा लेता है और बाहर निकल आता है। हम समझते हैं कि वह कृष्ण विवर से आ रहा है। यही हॉकिन्स उत्सर्जन है।

कृष्ण विवर का गुरुत्व इतना अधिक होता है कि अन्दर खींचा गया ऋणात्मक आभासी कण भी वास्तव कण बन जाता है। अब उसे धनात्मक कण से टकराकर नष्ट होने की आवश्यकता नहीं रहती। कृष्ण विवर जितना छोटा होगा, उसके अन्दर गये आभासी कण को वास्तव कण में बदलने उतना ही कम समय लगेगा। इससे उत्सर्जन भी बढ़ेगा और विवर का तापमान भी। बाहर जाती + ऊर्जा को संतुलित करेगी अन्दर जाती - ऊर्जा। $E = mc^2$ के अनुसार अगर अन्दर जाती - ऊर्जा के कारण विवर का द्रव्यमान घटेगा। अतः घटना क्षितिज का क्षेत्रफल भी कम होगा। अब यहाँ जितनी एन्ट्रॉपी घटती है उसकी भरपाई बाहर जाते उत्सर्जन की एन्ट्रॉपी करती है और ऊष्मा गतिकी के द्वितीय नियम का उल्लंघन नहीं होता।

जैसे-जैसे कृष्ण विवर का द्रव्यमान घटेगा वैसे-वैसे उसका तापमान और उत्सर्जन बढ़ेगा और यह परिणाम एक चक्रिय रूप में बढ़ता जायेगा। अंत में एक आखरी भयंकर विस्फोट होगा और सब कुछ खत्म। सारी ऊर्जा ब्रह्माण्ड के पास लौट आएगी।

लेकिन हॉकिन्स विकिरण की प्रयोग से पुष्टि नहीं हुई है। भविष्य में उसकी संभावना के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। इसी कारण हॉकिन्स नोबल पुरस्कार से वंचित रहे।

आंतरिक निःपातीय पिंड (Eternally collapsing objects)

इसे हम अर्ध कृष्ण विवर कह सकते हैं (Quasi Black Hole)। यह सिद्धांत डॉ. अभयकुमार मित्रा ने १९९८ में रखा था - “ जिन्हें हम कृष्ण विवर कहते हैं, वे वास्तव में, हमने कृष्ण विवर की जो कल्पना की है, वैसे है ही नहीं ।”

फिर कुछ साल बाद डैरी लीटर (Darry Leiter) और स्टॅनले रॉबर्टसन (Stanley Robertson) इन्होंने कुछ ऐसा ही सिद्धांत रखा और उसे नाम दिया Magneto Spheric Eternally Collapsing Objects (MECO)

अर्ध कृष्ण विवर याने जो कृष्ण विवर बनने की राह पर तो है लेकिन अभी पूरी तरह बना नहीं है।

कृष्ण विवर तब बनते हैं जब तारे का द्रव्यमान सूर्य से २० गुना हो।

ECO और MECO निर्माण की प्रक्रिया वैसी ही है जैसी कृष्ण विवर की होती है। लेकिन यहाँ घटना क्षितिज का निर्माण कभी नहीं होता। अतः यह एक बेहद चमकीले गोले जैसा होता है। सुपरनोव्हा विस्फोट के बाद कृष्ण विवर में एक बिंदुवत् केंद्र (कोर) का निर्माण निश्चित समय में होता है। लेकिन ECO और MECO मॉडल में कोर जब घना होने लगता है तो यह और भी चमकने लगता है। अन्त में इसका अंतर्भाग एडिंग्टन मर्यादा तक पहुँच जाता है। यह तब होता है जब अंदर की ओर खींचने वाले गुरुत्वाकर्षण को विकिरण का बाहर की ओर का दबाव संतुलित कर लेता है। इस कारण Singularity को बनने के लिए लगने वाला समय अनंत होता है। ECO यानि लगातार निःपात (collapse) होते रहने वाला पिंड।

कृष्ण विवर निश्चित (Finite) समय में Singularity में बदल जाता है। लेकिन ECO और MECO में मर्यादित समय में Singularity का निर्माण नहीं होता। आन्तरिक निःपात सदा चलते रहता है। उसका दर इतना धीमा हो जाता है कि Singularity बनने में अनन्त समय लगेगा। अर्थात् वह कभी बनेगी ही नहीं।

मित्रा के अनुसार वास्तव में कृष्ण विवरों का ब्रह्माण्ड में कहीं अस्तित्व ही नहीं है। इसका कारण है- न्यूटोनियन सिद्धान्त के अनुसार अंतरिक्ष और समय निरपेक्ष होते हैं। लेकिन सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार ऐसा नहीं है। टाइम डायलेशन के कारण हम ऐसा नहीं मान सकते कि कोई तारा निश्चित समय में Singularity में बदल जाएगा ही। इसी कारण आइन्स्टाइन, एडिंग्टन, रोजन, पॉल डिरॅक सभी वैज्ञानिकों ने कहा कि निःपातप्रत तारा कभी Singularity नहीं बन सकता। अधिक से अधिक उसका निःपात श्वास्चाईल्ड त्रिज्या तक ही हो सकता है।

१९३९ में ओपनहाइमर और एच. नायडर इन वैज्ञानिकों ने दिखाया था कि धूल(dust) के माध्यम से Singularity अर्थात् कृष्ण विवर का और घटना क्षितिज का निर्माण निश्चित समय में संभव है। लेकिन धूल का तो अपना कोई दबाव नहीं होता।

कृष्ण विवर का भयंकर गुरुत्वाकर्षण बहुत भारी ज्वारीय (Tidal) बल उत्पन्न करता है। कोई वस्तु Singularity की ओर बढ़ रही हो तो वह एक दिशा में बला की खींची जाएगी तो लम्ब दिशा में बला की दबाई जाएगी अर्थात् गन्ने की चिप्पी जैसी बन जाएगी। इसे वैज्ञानिक “ Spaghettification “ कहते हैं।

न्यूट्रॉन तारा और कृष्ण विवर

उपलब्ध डाटा के अनुसार न्यूट्रॉन तारे का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से २.१६ गुना से कम होना चाहिए तो कृष्ण विवर का ३.० गुना से अधिक।

न्यूट्रॉन तारे के लिए पलायन गति 10^6 मी. / से. के स्तर की होती है।

किसी पिंड का करीबी कण पर होने वाला परिणाम यह है कि उसकी गति बढ़ती है और उससे जुड़ी तरंग की आवृत्ति बढ़ती है।

जैसे-जैसे हम सतह से केंद्र की ओर बढ़ते हैं पदार्थ की घनता बढ़ती जाती है | घनता त्रिज्या के व्युत्क्रमी अनुपात में होती है।

न्यूट्रॉन तारे की त्रिज्या का निर्धारण होता है उसके द्रव्यमान और घनता प्रोफाइल के अनुसार।

वैसे ब्रह्माण्ड में पदार्थ का सबसे घना रूप न्यूट्रॉन तारा ही है। अर्थात् यह स्वयं परमाणु के नाभिक की घनता है जो $4 \times 10^{17} \text{ Kg/m}^3$ है।

डॉ. विजय इंगोले

डॉ. विजय की गणनाओं के अनुसार कृष्ण विवर और न्यूट्रॉन तारा इनके परामितके लगभग समान ही प्राप्त होते हैं। दोनों में केवल निम्न अंतर है — न्यूट्रॉन तारे की अँक्रिशन तश्तरी नहीं होती। उसी तरह घटना क्षितिज नहीं होता। कृष्ण विवर के उलट उसकी पलायन गति प्रकाशगति से कम होती है। न्यूट्रॉन तारा विकिरण उत्सर्जित करता है जबकि कृष्ण विवर नहीं।

अगर कोई द्रव्य किसी बड़े अंतरिक्षीय पिंड की ओर मुक्त रूप से गिर रहा है, तो गति लगातार बढ़ती रहेगी और पिंड की सतह पर वह पलायन गति के बराबर होती है। कृष्ण विवर के लिए यह घटना क्षितिज पर प्रकाशगति के बराबर होती है। यह महत्तम संभवनीय गति है। अतः यह द्रव्यमान कृष्ण विवर के अन्दर कभी भी यात्रा नहीं कर सकता। वह अँक्रिशन तश्तरी में या घटना क्षितिज के त्वरित बाहर बना रहेगा। या वह अँक्रिशन तश्तरी बना सकता है।

लेकिन गणनाएं यह बताती हैं कि वह अगर अल्प दूरी से गिर रहा है तो उसकी गति 'c' से कम होगी और वह घटना क्षितिज को पार कर केंद्र की ओर बढ़ सकता है।

प्रकाशगति और क्षितिज घटना के पास गुरुत्व के कारण घटना क्षितिज का परिघ, नाजुक ढंग से संतुलन में रहते हैं। लेकिन अन्य पिंडों के प्रभाव, तीव्र गुरुत्व तरंग या विचलन के कारण घटना क्षितिज के संतुलन में मामूली विचलन हो सकता है और पलायन गति कम हो सकती है। ऐसी स्थिति में उससे कुछ विकिरण उत्सर्जित हो सकता है। निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कृष्ण विवर यह वृद्धिंगत होता न्यूट्रॉन तारा ही है। लेकिन न्यूट्रॉन तारे के केंद्र में Singularity की अवस्था नहीं बन पाती अतः कृष्ण विवर के केंद्र में भी वह होगी इसकी संभावना बहुत-बहुत कम है। भले ही यह घनत्व केंद्र में सर्वाधिक हो लेकिन वह न्यूट्रॉन तारे की महत्तम संभवनीय घनता से अधिक होने की संभावना नहीं है।

Singularity

$$\text{घनत्व} = \text{द्रव्यमान} / \text{घनफल}$$

अगर पृथ्वी से सबसे दूर की गैलेक्सी GN-Z11 तक की दूरी ली गयी और फिर हम समय में पीछे चल दिए और ब्रह्माण्ड की आयु के आधे बिंदु पर पहुँचे तो उसका अंतर होगा आधा। हम अगर 1/10 आयु बिंदु पर पहुँचे तो वह दूरी भी 1/10 होगी। इसे Scale Factor कहते हैं। यह नंबर है जो ब्रह्माण्ड की आयु के साथ बदलता है। आज के अंतर को इससे गुना किया तो उस आयु के समय का अंतर मिलेगा। तो ब्रह्माण्ड की आयु जितनी अधिक उतना s. f. बड़ा आदि।

यह क्रमांक ब्रह्माण्ड की घनता निश्चित करने के लिए भी उपयोगी है। यहाँ 'घन नियम' (Cube law) सामने आता है। s.f. को आधा करने से आपको प्रति घन एकक, आठ गुना द्रव्यमान मिलेगा। लेकिन s.f. कम करते-करते ऐसा समय आ सकता है कि s.f. शून्य हो। अर्थात् पूरा अंतर और व्याप भी शून्य हो जाएगा। इसका अर्थ यह लगाया जा सकता है कि घनत्व अनंत हो जाएगा। लेकिन नहीं, घनता = द्रव्यमान / 0 यह वास्तव में अनिर्णीत (Undefined) है। Singularity का यही अर्थ है। यह अंतरिक्ष का एक बिंदु नहीं तो गणितीय 'परेशान बिंदु' है जहाँ आपको उत्तर मिलता है अनंत, अनंतरूप से सूक्ष्म या अनिर्णीत जो आपकी पहुँच से बाहर है।

अक्रिशन तश्तरी

कोई भी पदार्थ जब कृष्ण विवर के पास जाता है तो सीधा विवर के अन्दर नहीं जाता। पहले, गति के कारण, तश्तरी के आकार में उसके चक्कर लगाता है। गुरुत्व बल के कारण बढ़ती गति और घर्षण के कारण इस तश्तरी में जो कुछ भी होता है उसका तापमान बढ़ता है और तश्तरी चमकने लगती है। उससे विकिरण का उत्सर्जन होता है। यह तश्तरी बहुत तेजी से घूमती है। उसका एक चुंबकीय क्षेत्र बन जाता है। लेकिन कृष्ण विवर द्वारा निगलने आजुबाजु कुछ न हो तो ऐसी तश्तरी दिखाई नहीं देती। जब मंदाकिनियाँ टकराती हैं या क्वासार उस कृष्ण विवर के पास होता है जो युवा है तो वहाँ उसके निगलने के लिए काफी सारा पदार्थ उपलब्ध रहता है।

फिर भी कृष्ण विवर का गुरुत्व बहुत अधिक भले ही हो लेकिन बहुत दूर से वे पदार्थ को खींच नहीं सकते। पदार्थ उनके दायरे में पहुँचना चाहिए।

फोटॉन स्फियर -

वह क्षेत्र होता है जहाँ फोटॉन न पूरी तरह निगले जाते हैं, न वहाँ से छुटकर बाहर निकल सकते हैं।

व्हाइट होल -

कृष्ण विवर के भयंकर गुरुत्व के कारण अंतराल-काल वक्र होते-होते funnel का आकार ले और विरुद्ध बाजू में उसकी दर्पण प्रतिमा हो, जो शुभ्र विवर हो। कृष्ण विवर जहाँ सब कुछ निगलता है वहाँ शुभ्र विवर केवल बाहर उगलेगा। वास्तव में यह एक कल्पना ही है। यह कृष्ण विवर के एकदम उलट कल्पना है। इसने द्रव्य के अति प्रचंड उद्रेक के रूप में गॅमा किरणों का उत्सर्जन करना चाहिए। स्टिफन हॉकिन्स के अनुसार ऐसे विवरों का अस्तित्व हो सकता है। चूंकि ब्रह्माण्ड में प्रत्येक अस्तित्व वाले द्रव्य के लिए विरोधी द्रव्य होता ही है। लेकिन कुछ वैज्ञानिक इसे स्वीकार नहीं करते। चूंकि इससे 'उष्मा गतिकी' के द्वितीय नियम में अंतर्भूत एंट्रॉपी के नियम का उल्लंघन होता है। अभितक कोई 'शुभ्र विवर' खोजा नहीं गया है।

लेकिन १४ जून २००६ को अंतरिक्ष में GRB०६०६१४ क्षेत्र में एक भयंकर गॅमा_विस्फोट दर्ज किया गया। यह विस्फोट हमारी किसी भी जानकारी से मेल नहीं खाता। सामान्यतः गॅमा विस्फोट का समयावधि कुछ ही सेकंड होता है। लेकिन यह विस्फोट १०२ सेकंड कायम रहा। यह सूरज की तुलना में एक खरब गुना शक्तिशाली था। इस दरम्यान कुछ बातें, व्हाइट होल के, कल्पना किये गये कुछ गुणधर्मों से मेल खाती हुई देखी गयीं। फिर सवाल उठा कि कहीं हमने इस विस्फोट के रूप में व्हाइट होल को तो नहीं देख लिया?

एक अकेला प्रचंड विवर HEO४५०२९५८ :

इसके गिर्द कोई गॅलेक्सी नहीं है। यह हमसे पांच अरब प्रकाशवर्ष दूर है। एक अन्य छोटी गॅलेक्सी में बहुत भारी कृष्ण विवर देखा गया। वह किसी मृत तारे का अवशेष नहीं हो सकता। इन उदाहरणों से यह प्रश्न खड़ा होता है कि तारों या गॅलेलियों से कृष्ण विवर बने या कृष्ण विवरों से गॅलेक्सियां।

महादानवी कृष्ण विवर-

आमतौर पर कृष्ण विवर अपनी पितृ गॅलेक्सी के 0.2 % से 0.5 % इतने द्रव्यमान तक पहुँचता है। लेकिन CID ९४७ यह विवर अबतक ज्ञात हुए अधिकतम द्रव्यमान वाले कृष्ण विवरों में एक है। उसका द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से सात अरब गुना है। ऐसे महादानवी कृष्ण विवर का होना एक पहेली ही है। चूंकि ब्रह्माण्ड की आयु इतनी पर्याप्त नहीं है कि ऐसा महादानवी कृष्ण विवर बने।

फिर एक बार संक्षेप में कृष्ण विवरों के प्रकार--

१) तारकीय कृष्ण विवर: तारकीय द्रव्यमान से बने ऐसे विवरों को मरे हुए तारे का अवशेष माना जाता है।

२) महाराक्षसी कृष्ण विवर : ये मंदाकिनियों के केंद्र में होते हैं। हमारी आकाशगंगा के केंद्र में जो विवर है उसका द्रव्यमान सूर्य से एक करोड़ गुना है। ऐसे विवर हर साल सूर्य इतना द्रव्यमान निगल लेते हैं। ऐसे विवरों की आयु बहुत लम्बी होती है।

३) सूर्य से कम द्रव्यमान वाला कृष्ण विवर : इसका निर्माण गुरुत्वीय निःपात के कारण नहीं तो केंद्र के पदार्थ पर तापीय सम्पिडन के कारण होता है। उन्हें Premordial कृष्ण विवर कहते हैं। इनका निर्माण ब्रह्माण्ड उत्पत्ति के साथ होना चाहिए। वे अणु आकार के होने चाहिए।

४) कृमि कृष्ण विवर : वैज्ञानिकों का अनुमान है कि ये आभासी कणों की ही तरह उत्पन्न और त्वरित नष्ट होना चाहिए। अर्थात् वे अस्थिर होने चाहिए। उनका आकार प्लैंक स्तर का अर्थात् 10^{-33} से.मी. होना चाहिए।

सर्वप्रथम ज्ञात हुआ कृष्ण विवर :

सिग्नस(Cygnus) X-1 के केंद्र में स्थित कृष्ण विवर यह जिसका अस्तित्व सर्वप्रथम ज्ञात हुआ या निश्चित हुआ ऐसा कृष्ण विवर है। इसका परिचय लगभग ६० वर्ष पूर्व हुआ था। यह हमसे ७२०० प्रकाशवर्ष दूर है। अब ज्ञात हुआ है कि यह प्रकाश गति के लगभग गति से परिवर्तन करता है।

क्वासार्स (Quasi Stellar Sources) : इन्हें यह नाम 1964 में दिया गया।

वर्ष १९६३ में कैलिफोर्निया के पालोमर वेधशाला में शोधरत एक खगोलशास्त्री मार्टेन श्मिट (Maarten Schmidt) ने 3C273 नामक रेडियो तरंगों के स्रोत की दिशा में एक धुंधले तारे जैसे पिंड के अभिरक्त विस्थापन (Red Shift) का अनुमापन किया। विस्थापन इतना विस्तृत था कि वह किसी गुरुत्वीय पिंड से नहीं बन सकता था। यदि इसे गुरुत्वीय अभिरक्त विस्थापन मान लें तो वह पिंड इतना महाकाय और हमारे अत्यंत निकट होना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं दिख रहा था। इसलिए यह मान लिया गया कि इस विस्थापन का संबंध ब्रह्माण्ड विस्तार से है। अर्थात् यह पिंड हमसे अत्यंत दूर है। इतनी दूरी का पिंड दिखाई पड़ता है तो उसकी दीप्ति भी भारी होनी चाहिए। अर्थात् वे तारे नहीं हैं। वह किसी एक तारे का गुरुत्वीय निःपात नहीं हो सकता। बल्कि वह किसी मंदाकिनी के संपूर्ण केंद्रीय क्षेत्र का निःपात होना चाहिए। बाद में इस तरह के कई पिंड खोजे गये। क्वासी स्टेलर सोर्सज को क्वासार् यह संक्षिप्त रूप दिया, वैज्ञानिक हॉग यी शिऊ ने। वास्तव में ऐसा एक पिंड वर्ष १९६० में ही देखा गया था और उसे नाम दिया गया था 3C48। इसे अमेरिकी खगोल वैज्ञानिक ए.आर.सेनडेगे ने खोजा था ।

संक्षेप में क्वासार का स्वरूप इस तरह का दिखाई देता है-

केंद्रस्थान में महाकाय कृष्ण विवर, उसके गिर्द घूमती एक्रिएशन डिस्क और केंद्र से विरुद्ध दिशाओं में उछलने वाले तप्त वायु के फव्वारे। ये ब्रह्माण्ड के सबसे चमकदार पिंड हैं। उनकी दीप्ति दीर्घिका से सौ गुना भी हो सकती है। अबतक ऐसे १५०० से अधिक पिंड खोजे गये हैं। कुछ क्वासार्स अपनी दीप्ति तेजी से बदलते हैं। एक महीने की अवधि में उनकी दीप्ति आधी या दुगुनी हो जाती है। अर्थात् उनका आकार बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए। उनका व्यास एक प्रकाशवर्ष से अधिक होने की संभावना नहीं हो सकता है उनका स्वरूप अति दूर की दीर्घिकाओं के अतिशय कार्यप्रवण केंद्रों का हो या फिर वे अति तप्त वायु से घिरे, अति बलशाली वस्तुमान के कृष्ण विवर हो। इनका वस्तुमान सूर्य की तुलना में कई अरब गुना हो सकता है। लेकिन उनका निश्चित स्वरूप क्या है यह एक रहस्य ही है।

निरीक्षण के दरम्यान ऐसा देखने में आया कि विशिष्ट क्वासार्स का कुछ हिस्सा प्रकाश की गति के कई गुना गति से गतिमान है । लेकिन बाद में यह स्पष्ट हुआ कि यह केवल आभास है। प्रकाश से इस तरह अधिक लगने वाली आभासी गतिमानता को ' सुपरल्यूमिनल

मोशन ' कहा जाता है। सी273 क्वसार ऐसे मोशन का अच्छा उदाहरण है। उनसे इतनी दूरी से प्रकाश तथा अन्य विकिरण आ रहा है इस कारण उनकी विशेषता है बहुत अल्प कोणीय आयाम।

क्वासार्स निर्मिती संबंधित सिद्धांत

- ब्रह्माण्ड निर्मिति के बाद भारी संख्या में क्वासार्स उत्पन्न होना चाहिए ऐसा अनुमान है। लेकिन ऐसा लगता है कि बाद में उनकी संख्या कम होती गयी। इसी दरम्यान मंदाकिनियाँ अपने यौवन में आ रही थीं। ब्रह्माण्ड का प्रसरण हो रहा था। अर्थात् शुरू में मंदाकिनियों के बीच अंतर कम था। उनके एकदूसरे के साथ टकराने की संभावनाएं अधिक थीं। इन टकराहटों से ही क्वासार्स की निर्मिति हुई ऐसा माना जाता है। इनके बीच दूरी बढ़ती गयी और टकराहटों की संभावना घटती गयी। परिणामतः क्वासार्सों की निर्मिति का दर भी कम होता गया।
- ब्रह्माण्ड के जन्म के बाद शुरू में महाकाय हैड्रोजन मेघों का अस्तित्व था। वे अपने गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में संकुचित होकर परिवर्तन करने लगे। इस दरम्यान कुछ टुकड़ों में विभक्त हुए। उनसे तारों का जन्म हुआ। मूल मेघ, मंदाकिनियों में रूपान्तरित हुए। लेकिन जो टुकड़ों में नहीं बंटें उनका आकुंचन लगातार होता रहा और वे महाकाय कृष्ण विवर बने। उन्हें आज हम क्वासार रूप में देखते हैं।

क्वासार्स ये ब्रह्माण्ड की सबसे चमकदार वस्तु है लेकिन उनका तेज गॅमा किरणों का है। यह तेज पैदा होता है कृष्ण विवर में गिरते द्रव्यमान की 'ऐक्रिशन' प्रक्रिया के कारण। ऐक्रिशन तश्तरी में गिरने वाली वस्तु के स्थिरता द्रव्यमान का, ४० % तक ऊर्जा में रूपान्तरित होता है।

* कभी-कभी कोई तारा ही कृष्ण विवर के बिलकुल करीब पहुंच जाता है तो ऐक्रिशन प्रक्रिया आरंभ हो जाती है और अति तेज उद्भूत होता है। लेकिन इसका समय लम्बा नहीं होता और यह बार बार होने वाली घटना नहीं है।

कुछ समय बाद कृष्ण विवर अपने संपृक्त बिंदु पर पहुँच जाएगा और जब दबाव असंतुलित स्थिति में पहुँच जाएगा तो कृष्ण विवर के ध्रुवों में से फव्वारे फूट पड़ेंगे। ये १५० प्रकाशवर्ष इतनी लम्बाई के भी हो सकते हैं और उनका तापमान सूर्य की सतह के तापमान से दस लाख गुना भी हो सकता है। इन फव्वारों से फूट पड़ा द्रव्य कृष्ण विवर के चारों ओर

मंदाकिनियों का निर्माण करेगा। हा, हर बार यह सृजन होगा ही, यह जरूरी नहीं। यही क्वासार्स हैं।

* जब सुपरनोवा विस्फोट, इस तरह के सामान्य विस्फोट की तुलना में बहुत ही शक्तिशाली होता है, तो उसे 'हायपरनोवा' कहते हैं। ऐसे विस्फोट के बाद प्लाज्मा के, उच्च ऊर्जा के दो फव्वारे उसके ध्रुवों से फूट पड़ते हैं। इनसे गॅमा विकिरण निकलता है। इस कारण इसे 'Gamma Ray Burst' भी कहते हैं। जो पीछे रहता है, वह कृष्ण विवर/ क्वासार।

* जब मंदाकिनियाँ आपस में मिल जाती हैं तो कभी-कभी महाराक्षसी कृष्ण विवर, क्वासार के रूप में क्रियाशील हो उठते हैं। दो मंदाकिनियों के वायु के बादल जो महाराक्षसी कृष्ण विवर के गिर्द परिक्रमा करते हैं। एकदूसरे से टकराने के बाद विवर में गिरते हैं और क्वासार की निर्मिति होती है। यह क्वासार का पुनः क्रियाशील होना है। यह काफी लम्बे समय तक चलता है चूंकि अधिकतर मंदाकिनियों का द्रव्य तारों के रूप में होने की तुलना में वायु रूप में होता है। जब मंदाकिनियाँ एकदूसरे में विलीन होती हैं तो व्यक्तिगत तारे क्वचित् ही टकराते हैं। लेकिन वायु बादलों के विषय में यह बात बारबार होती है। ये टकराव बादलों की परिक्रमा कक्षाएं भी बदल देते हैं और ये बादल कृष्ण विवर के पास पहुंच जाते हैं। वे वहां कृष्ण विवर के गिर्द ऐक्रिशन तश्तरी का निर्माण कर लेते हैं। क्वासार का पुनः निर्माण होता है।

* जब क्वासार के करीबी आजुबाजु के क्षेत्र से पूरे पदार्थ का सफाया हो जाता है तो वह शांत हो जाता है और अदृश्य हो जाता है। सभी क्वासार्स अंततः शांत होने हैं, चूंकि क्वासार्स की महत्तम संख्या ब्रह्माण्ड के शुरू में मिलती है। ब्रह्माण्ड में क्वासार्स की महत्तम गतिविधियों का युग लगभग १० अरब साल पहले का मिलता है। अगर वे शांत न होते तो समय के साथ उनकी संख्या में वृद्धि होती।

- पोनियो आएना क्वासार (वर्ष २०२०) : पहले इसे (जे १००७ + २११५) नाम दिया गया था। इसे सबसे दूर का क्वासार माना जा रहा है अर्थात् सबसे पुराना भी। इसके कृष्ण विवर में १.५ अरब से अधिक सौर भार है।

ऐसा माना जाता है कि इसका प्रकाश पृथ्वी तक पहुँचने १३.०२ अरब साल लगे। इसके प्रकाश ने अपनी यात्रा बिग बैंग के सात करोड़ साल बाद शुरू की थी। बहुत कम समय में

बनने वाला यह विशाल पिंड है। महाविस्फोट के समय ब्रह्माण्ड बहुत ठंडा था। पहला तारा और गैलेक्सी बनने में ३ से ४ करोड़ साल लगे। तारे और गैलेक्सियों के रीआयोजनायझेशन युग शुरू हुआ जो महाविस्फोट के चार करोड़ साल बाद का समय है। वैज्ञानिकों को आश्चर्य हुआ है कि बिग बैंग के बाद, एक तारे के सिमटने के बाद बने ब्लैक होल से इतने कम समय में ही इतना महाविशाल ब्लैक होल कैसे बन गया ? एरिझोना यूनिवर्सिटी की स्टीवर्ड ऑब्जर्वेटरी में रिसर्च एसोसिएट जिन्यी यांग तथा उनकी सहलेखिका जियाओ हुई फॅन, इस खोज से जुड़े हैं।

- ऐसा ही एक और क्वासार खोजा गया है जो हमसे दस अरब प्रकाशवर्ष दूर है और प्रकाश के ९९% गति से हम से दूर भाग रहा है। सापेक्षतावाद की मान्यता के अनुसार प्रकाश की गति महत्तम संभवनीय गति है। हम देख चुके हैं, पिंड हमसे जितने अधिक दूर उतनी ही अधिक तेजी से वे हमसे दूर भाग रहे हैं। हो सकता है उपरोक्त क्वासार से अधिक दूरी का कोई पिंड प्रकाश की गति से हमसे दूर भाग रहा हो | तो उस पिंड का प्रकाश हमतक पहुंच ही नहीं पाएगा। ब्रह्माण्ड के विषय में हमें मिलने वाली सारी जानकारी प्रकाश किरणों और अन्य विद्युत चुंबकीय विकिरण जो हमतक पहुंचती हैं, उनसे ही प्राप्त होती हैं। अब ब्रह्माण्ड का ऐसा हिस्सा जहाँसे कोई विकिरण हमतक पहुंचेगा ही नहीं, हमेशा के लिए हमारे लिए अज्ञात ही रहेगा। तो क्या हमें ब्रह्माण्ड की जानकारी प्रदान करने वाले अंतिम पिंड क्वासार ही हैं ? खगोल भौतिकी ने हमें विश्व की करीब १५ अरब प्रकाशवर्ष दूर की सीमाओं तक पहुँचा दिया है, जहाँ मंदाकिनियां लगभग प्रकाश गति से हमसे दूर भाग रही हैं ।

मास्को के सुविख्यात खगोलशास्त्री वोरोंत्सोव वेल्यामिनोव्ह ने एक बात की ओर ध्यान आकर्षित किया - “ लगभग सभी ज्ञात क्वासार्स एकांती पिंड हैं। दूसरी ओर उनसे मिलते जुलते गुणों वाली रेडियो मंदाकिनियां नियमतः पुंजों में ही पायी जाती हैं और पुंज की मुख्य तथा केंद्रीय सदस्य होती हैं, सबसे चमकदार और सक्रिय।” इस संदर्भ में उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि क्वासार और कुछ नहीं, ऐसे पिंड हैं जिनसे आगे के विकास दौर में मंदाकिनियां और मंदाकिनी पुंज उत्पन्न होते हैं। इस अनुमान का समर्थन मंदाकिनियों के नाभिकों की सक्रियता से होता है, जो क्वासारों की सक्रियता से मिलती जुलती है, यद्यपि उतनी प्रचंड नहीं होती।

भाग ३

- अंतरिक्ष
- ब्रह्माण्ड
- अंतरिक्ष के पिंड
- धधकते अंतरिक्ष पिंड
- पृथ्वी

१. अन्तरिक्ष

वैसे अन्तरिक्ष यह शब्द तो हजारों साल पुराना है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में वह उद्धृत है। वहाँ जगत को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौः। उस समय अन्तरिक्ष का अर्थ लिया जाता था, पृथ्वी के इर्दगिर्द लेकिन समीप का वायुमंडलीय विस्तार। जिसमें मेघ हैं, बिजली है, पक्षी विहार करते हैं, वह। द्यौः, इससे ऊपर का वह विस्तार जिसमें

सूर्य, चंद्र, तारे इनका अस्तित्व है। उस समय के विश्वास के अनुसार चंद्र की उपस्थिति सूर्य के ऊपर थी। ऐसा भी जान पड़ता है कि अभी जगत का विभाजन स्वर्ग, पाताल और मृत्युलोक अर्थात् पृथ्वी लोक में नहीं हुआ था।

लेकिन समय के साथ शब्दों के अर्थ भी बदल जाते हैं। आज इसे अंग्रेज़ी के 'Space' शब्द के लिए उपयोग में लाया जाता है। या हम इससे अर्थ ग्रहण करते हैं : पृथ्वी के वायुमंडल के परे का दिक्कालिक विस्तार। अन्तरराष्ट्रीय वैमानिक संघ के निर्णयानुसार 'अन्तरिक्ष यात्रा' का अर्थ है, धरातल से १०० किमी. से अधिक दूर के प्रदेश की यात्रा।

- १९४६ के 'युनाइटेड स्टेट्स' विरुद्ध 'कॉस्बी' इस मुकदमे के निर्णय के अनुसार अब ३६५ फीट उँचाई तक ही जमीन मालिक का हक होता है। इसी कारण ड्रोन ४०० फीट उँचाई से गुजरते हैं।

अन्तरिक्ष में अस्तित्व के वे रूप जो गॅलिलियो की दूरबीन के कारण मनुष्य को सर्वप्रथम देखने मिले।

गॅलिलियो की, प्रथम दूरबीन ४९ इंच लम्बाई की थी और उसकी दृष्टिवर्धन क्षमता ३० थी।

- १) रात के समय आकाश के एक हिस्से में एक धुंधला सा सफेद पट्टा दिखता है जिसे आज हम आकाशगंगा कहते हैं। उसे देखकर गॅलिलियो ने अनुमान लगाया कि यह अनगिनत तारों के प्रकाश के कारण होना चाहिए।
- २) सूर्य पर काले धब्बे दिखते हैं। सूर्य की सतह पर विद्यमान ये धब्बे अपना स्थान बदलते हैं। इससे सूर्यवलन की बात ध्यान में आयी।
- ३) चंद्र की सतह : दूर से चिकनी दिखने वाली चंद्र की सतह उबड़खाबड़, विवरों, पर्वतों और घाटियों से भरी है।
- ४) ग्रहों का तश्तरीनुमा रूप : तारे तो चमकने वाले बिंदु लगते हैं। लेकिन दूरबीन से देखने पर ग्रह तश्तरी के समान दिखे। इससे तारा और ग्रह के बीच का अन्तर स्पष्ट हुआ।
- ५) गुरु के चार उपग्रह देखें। उनका नामकरण बाद में इस तरह किया गया - आयो, यूरोपा, गॅनिमीड, कॅलिस्टो।

६) शुक्र की कलाएँ : टॉलेमी के भूकेंद्रित सिद्धांत के अनुसार शुक्र हमेशा सूर्य के इस ओर ही होगा। इस कारण उसका चमकिला हिस्सा आधे से हमेशा ही कम रहना चाहिए। लेकिन गैलिलियो ने शुक्र की कलाएँ देखीं। अर्थात् शुक्र अब आधे से अधिक चमकता है तो उसे सूर्य के उस पार होना चाहिए। अर्थात् भूकेंद्रित ब्रह्माण्ड की कल्पना को धक्का लगा।

अन्तरिक्ष का भौतिक स्वरूप --

भौतिक रूप में अन्तरिक्ष वह क्षेत्र है जहाँ पृथ्वी का वायुमंडल समाप्त हो जाता है। भौतिक दृष्टि से अन्तरिक्ष की सीमा पृथ्वी सतह से १००० और २००० कि.मी. ऊँचाई के बीच है। १६ कि.मी. की ऊँचाई पर पूर्ण रूप से प्राणवायु की कमी मनुष्य अनुभव करता है। वहाँ वायुमंडल में प्राणवायु की मात्रा २१ % तक रह जाती है। लेकिन दबाव की कमी के कारण मनुष्य उसे अपने अंदर नहीं ले पाता।

अन्तरिक्ष में अंधेरा

जैसे-जैसे हम ऊपर जाते हैं, वैसे-वैसे वहाँ अंधेरा बढ़ते जाता है। ३० किमी. से ऊपर दिन के समय भी अन्तरिक्ष में अंधकार शुरू हो जाता है। १६० किमी. ऊपर वह पूरी तरह अंधकारमय प्रतीत होगा। अन्तरिक्ष यान से देखने पर उसकी खिड़की के बाहर तारे टिमटिमाते नज़र आएंगे।

लेकिन अन्तरिक्ष में सूर्य से उत्सर्जित होने वाला अति नील प्रकाश, पृथ्वी पर पहुँचने वाले इसी प्रकाश की तुलना में १ हजार गुना अधिक होता है।

(जहाँ तक अन्तरिक्ष से पृथ्वी दिखने का प्रश्न है, पृथ्वी का अधिक हिस्सा दिखेगा और उसकी चमक भी बढ़ जाएगी चूंकि सूर्य की किरणें पृथ्वी द्वारा परिवर्तित की जाती हैं।)

रात्रि का आकाश काला क्यों ?

आकाश में अनगिनत तारे हैं। वे तप्त अर्थात् प्रकाशमान हैं। उष्मा गतिकी के नियम के अनुसार उष्मा हमेशा उष्ण पदार्थ से या उष्ण प्रदेश से ठंडे की ओर बहती है और यह सर्वत्र समान तापमान होने तक चलता है। यह नियम आकाश को क्यों लागू नहीं होता ? इसपर हेन्रीच ऑल्बर्स इस जर्मन खगोलशास्त्री ने गहन चिंतन किया। इसे ' ऑल्बर्स विरोधाभास ' कहा जाता

हैं। सन् १८२३ में ऑल्बर्स ने इसके दो कारण बताए -- १) विश्व का प्रसरण शुरू है। २) तारे तथा दीर्घिकाएं हमसे इतनी दूर हैं कि उनसे निकले प्रकाशकिरणों की ऊर्जा हम तक पहुँचते-पहुँचते लगभग समाप्त होती है। अर्थात् सब तारे मिलकर भी रात के समय आकाश को प्रकाशमान नहीं कर सकते।

अंतरिक्ष में वायु का प्रतिरोध

जैसे-जैसे मानव ऊपर जाता है वैसे-वैसे वायुमंडल का घनत्व कम होते जाता है। २०० कि.मी. की ऊँचाई पर वायु प्रतिरोध नगण्य हो जाता है।

अन्तरिक्ष का प्रमुख गुण पूर्ण निर्वात है। इस निर्वात में अनेक पदार्थों के अभियान्त्रिक गुण वही नहीं रहते, जैसे वे पृथ्वी पर होते हैं। औद्योगिक क्रियाएं पृथ्वी की अपेक्षा अन्तरिक्ष में अधिक सफलतापूर्वक और आसानी से की जा सकती हैं। वहाँ बनाये गये मिश्र धातुओं की शुद्धता पृथ्वी पर बनाये मिश्र धातुओं से अधिक होती है। धातुओं के स्फटिक भी सही आकार में बनते हैं।

लेकिन अन्तरिक्ष कई प्रकार की किरणों, ऊर्जाओं, चुंबकीय क्षेत्रों और कणों से भरा हुआ है। वहाँ सूर्य से प्राप्त होने वाले विकिरण में ५०% गॅमा और एक्स किरणें होती हैं। वहाँ तापीय स्थानान्तरण विकिरण और चालन द्वारा ही सम्पन्न होता है, न कि संवहन प्रक्रिया द्वारा।

अन्तरिक्ष में समय की गति

आइन्स्टाइन की सापेक्षता की परिकल्पना ने यह सिद्ध किया है कि समय उस उपकरण, जो समय का मापन कर रहा है, की गति के साथ परिवर्तित होता है। समय के लिए कोई वैश्विक मापन नहीं है। समय सापेक्ष है। यह घड़ी में होने वाला कोई भौतिक परिवर्तन नहीं है। एक शटल मिशन के दौरान, अंतरिक्ष में उसकी गति पृथ्वी पर देखी जाने वाली गतियों की तुलना में अधिक होती है। फिर भी वह प्रकाश गति की तुलना में बहुत ही अल्प होती है। अतः 'समय धीमा करण' भी अल्प होता है। लेकिन यह होता जरूर है। इसका प्रायोगिक सबूत भी मिल गया है। गुरुत्व भी समय को धीमा करता है। लेकिन यह एक गौण प्रभाव है। अर्थात् अन्तरिक्ष में केवल उपस्थिति के कारण समय न तेज होता है न धीमा।

भारहीनता

अन्तरिक्ष में मनुष्य का भार नगण्य होता जाता है अर्थात् मनुष्य वहाँ भारहीनता की स्थिति में पहुँच जाता है। जब कोई फल पेड़ से टूटकर पृथ्वी पर गिरता है तो पेड़ से अलग होने से लेकर तो पृथ्वी को स्पर्श करने तक, इस दरम्यान फल भारहीनता की स्थिति में होता है। लम्बे समय तक भारहीनता की स्थिति मनुष्य शरीर तंत्र के लिए खतरनाक होती है। मनुष्य जब अन्तरिक्ष यान में बैठकर पृथ्वी के चक्कर लगाता है तब ऐसी स्थिति आ सकती है। कारण : भारहीनता की स्थिति उत्पन्न होने का कारण, गुरुत्वाकर्षण की कमी नहीं है। जब व्यक्ति जमीन पर उछलता है तो वह भी क्षण भर के लिए भारहीनता की स्थिति में आ जाता है। अर्थात् यह एक प्रकार की अनियंत्रित गति के कारण है। अन्तरिक्ष में वातावरण एकदम शून्य है। मान लीजिये कोई अन्तरिक्ष यात्री, यान में पृथ्वी के चक्कर लगा रहा है। यान के इंजन बंद कर दिए जाए तो यान प्राकृतिक रूप से पृथ्वी के चक्कर लगाने लगेगा और अन्तरिक्ष यात्री भारहीनता की अवस्था में आ जाएगा। उसे अपने भार की अनुभूति नहीं होगी। अन्तरिक्ष यान अधिकतर प्राकृतिक रूप से ही पृथ्वी का चक्कर लगाता है। उसके इंजन चालू करने की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है। अर्थात् अन्तरिक्ष यात्रा के दौरान अन्तरिक्ष यात्री अधिकांश समय भारहीनता की अवस्था में ही रहता है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इसे टालने के लिए कई उपाय किए जाते हैं। (भारहीनता की स्थिति क्षणिक हो तो उससे कोई नुकसान नहीं)।

भारहीनता का शरीर पर परिणाम : १) शरीर को निष्क्रिय कर देता है। जिसके कारण गुर्दों में कैल्शियम जमा हो जाता है। इस कारण गुर्दे में पथरी हो सकती है। २) हड्डियां मुलायम बन जाती हैं। परिणामतः शरीर का ढांचा असंतुलित हो सकता है। ३) भारहीनता के कारण वैसे तो हृदय का, बाकी शरीर के लिए पंप करने का काम आसान हो जाता है। लेकिन जैसे ही भारहीनता की स्थिति समाप्त हो जाती है और शरीर गुरुत्वाकर्षण प्रभाव में आता है वैसे ही अचानक परिवर्तन के कारण हृदय के लिए खतरा हो जाता है। पृथ्वी पर रक्त प्रवाह सिर से पैर की ओर होता है। लेकिन अन्तरिक्ष में इससे उलट होता है। इस कारण जब अन्तरिक्ष यात्री पृथ्वी पर लौटते हैं तो उनके चेहरों पर सुजन होती है। कुछ समय बाद वे सामान्य हो जाते हैं।

असामान्य गुरुत्व के शरीर पर परिणाम -

पृथ्वी के गुरुत्व को 'g' से व्यक्त करते हैं। जिसका अर्थ है वस्तु ऊपर से नीचे पृथ्वी की ओर गिरते समय ९.८ मीटर प्रति सेकंड का उसकी गति में होने वाला परिवर्तन या त्वरण। त्वरणों के मान हर समय पृथ्वी के सापेक्ष दिए जाते हैं।

$$\text{वस्तु का वजन /भार} = \text{वस्तु का वस्तुमान} \times g$$

लेकिन असामान्य गुरुत्व बल के मानव शरीर पर खतरनाक परिणाम होते हैं। अगर मानव शरीर पर ३.५ से ५ गुना गुरुत्व बल (पृथ्वी के सापेक्ष) पैर से सिर तक कार्य कर रहा हो तो इस स्थिति में हृदय के द्वारा सिर के लिए रक्त भेजना संभव नहीं हो पाएगा। इससे आंख के रेटिना को रक्त पूर्ति रुक जाएगी। गुरुत्व बल का असामान्य प्रभाव मांसपेशियों की क्रियाशीलता को प्रभावित करता है। द्वितीय महायुद्ध के दरम्यान दो व्यक्ति सत्रह गुना गुरुत्व बल सहन करने में सफल रहे। वर्ष १९५८ के एक प्रयोग में अल्प समय के लिए २० गुना गुरुत्व बल एक व्यक्ति द्वारा सहा गया। और भी प्रयोग चल रहे हैं।

अन्तरिक्ष में जीवन

१) क्या अन्तरिक्ष में किन्हीं जीवाणुओं से सामना हो सकता है ?

आज इस प्रश्न का निश्चित उत्तर देना कठिन है।

२) अन्तरिक्ष में भारहीनता के कारण मनुष्य जीवन की विभिन्न प्रक्रियाएं काफी बदल जाती हैं।

३) अन्तरिक्ष में, मनुष्य के लिए कितना लम्बा वास संभव है ?

अगर स्वास्थ्य की दृष्टि से देखा जाए तो इसे अभी जानने का प्रयास किया जा रहा है। एक समय अन्तरिक्षयान में सबसे अधिक वास, रूसी कॉस्मॉनॉट डॉ. वैलरी पॉलिकोव्ह का है (४३८ दिन)।

अन्तरिक्ष यात्रा में कठिनाइयां--

१) स्पेस सूट लगभग १६० किलो भार का होता है। शून्य गुरुत्वाकर्षण के कारण अन्तरिक्ष में उसका वजन तो अनुभव नहीं होता लेकिन इतने बड़े तामझाम के साथ हिलना-डुलना और नियोजित काम करना इतना आसान नहीं। इस कारण काम निपटाने के बाद अन्तरिक्ष

यात्री एकदम थक जाते हैं। उनकी ऊर्जा कम हो जाती है। पृथ्वी पर थकने के बाद हम विश्राम करते हैं। लेकिन अन्तरिक्ष यान में यह संभव नहीं होता चूंकि शून्य गुरुत्वाकर्षण के कारण वहाँ यात्रियों के लिए एक स्थान पर स्थिर होना संभव नहीं होता। छोटी से छोटी हरकत में भी उन्हें अपनी काफी ऊर्जा खर्च करनी होती है। अन्तरिक्ष में बिना सूट के सांस लेने पर मनुष्य केवल ३० सेकंड तक जिन्दा रह सकता है।

- २) अन्तरिक्ष में क्या हो सकता है इसका अंदाजा लगाना मुश्किल है। शून्य गुरुत्वाकर्षण का अलग-अलग व्यक्तियों पर अलग-अलग प्रभाव हो सकता है। निर्वात में मनुष्य का मांस मूल आयाम से दुगुना फुल जाता है। अन्तरिक्ष यान में ज्यादा दिन रहने पर यात्री का हृदय गोलाकार होने लगता है।
- ३) अन्तरिक्ष में आपके न आंसू निकलते हैं न डकार आती है। निंद में खर्राटे भी अपेक्षाकृत कम होते हैं। यान के यात्रियों के लिए निंद लेना कठिन हो जाता है, चूंकि पृथ्वी की करीबी कक्षा में सूर्यास्त और सूर्योदय हर ९० मिनट में होता है। अतः दिन और रात का फर्क समझना कठिन हो जाता है। वहाँ सूर्य पीला नहीं सफेद दिखता है।
- ४) चूंकि अन्तरिक्ष में गुरुत्वाकर्षण बल का प्रभाव नहीं होता, अन्तरिक्ष यात्रियों की रीढ़ की हड्डी का कॉलम फैलता है और उसकी लम्बाई भी ५ से ८ से.मी. तक बढ़ जाती है। पृथ्वी पर लौटने के बाद उन्हें पीठ दर्द की शिकायत होने की संभावना रहती है। अन्तरिक्ष स्थानक के यात्रियों को प्रतिदिन दो घंटे व्यायाम करना पड़ता है। स्पेस वॉक के दरम्यान हाथ के नाखून अपने आप छोटे हो जाते हैं। अन्तरिक्ष में मनुष्य कम तेजी से बुढ़ापे की ओर बढ़ता है। (पृथ्वी पर आयु बढ़ने की तुलना में)
- ५) अन्तरिक्ष यात्रा के लिए प्राणवायु साथ में ले जाना काफी खर्चिली बात है। एक अनुमान के अनुसार एक टन O_2 साथ ले जाने, लगभग १० करोड़ डॉलर्स खर्च आ सकता है।

अन्तरिक्ष का प्रेक्षण

गुरुत्व भिग

पृथ्वी से तारे की ओर देखते समय, कोई अति घन लेकिन छोटी वस्तु अपनी दृष्टिरेखा के बहुत करीब हो तो उस वस्तु के गुरुत्वाकर्षण का क्षेत्र, तारे से हमारी ओर आने वाली प्रकाशकिरण को

विचलित करेगा और निरीक्षणांतर्गत तारा अस्थायी रूप से तेजस्वी दिखेगा। इस प्रभाव को ‘ गुरुत्वीय सूक्ष्म भिंग परिणाम ’ (Gravitational Microlensing) कहते हैं। कांच के बहिर्गोल भिंग से होते हुए गुजरने वाले प्रकाश का जिस तरह मार्ग बदलता है वैसा ही यह परिणाम है। निरीक्षणों का विश्लेषण करते समय यह बात ध्यान में आयी कि उपरोक्त परिणाम पैदा करने वाली वस्तु का वस्तुमान सूर्यमाला के ग्रह बृहस्पति इतना तो कम से कम होना चाहिए। गुरुत्वीय परीणाम पैदा करने वाली प्रत्येक वस्तु की चारों ओर एक घेरे की कल्पना की जा सकती है। इसे ‘ आइन्स्टाइन वलय ’ इस नाम से पहचाना जाता है। इस घेरे की मर्यादा तक प्रकाशकिरणें बड़े पैमाने पर विचलित होती हैं। इस वलय की त्रिज्या परिणाम उत्पन्न करने वाली वस्तु के वस्तुमान पर निर्भर होती है।

खगोलीय मरिचिकाएं या भ्रम -

आइन्स्टाइन ने सामान्य सापेक्षता सिद्धांत के आधार पर दिखाया था कि विराट द्रव्यमान के पिंडों के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्रों में प्रकाश किरणें विचलित हो सकती हैं। बाद के अनुसंधानों द्वारा यह स्थापित हुआ कि अति विशाल पिंड (जैसे कृष्ण विवर) किरणों को विचलित ही नहीं करते तो संकेंद्रित भी करते हैं जिससे वे गुरुत्वाकर्षी लेन्स की भूमिका निभाते हैं। इतना ही नहीं तो इसी सिद्धांत के अनुसार ही शक्तिशाली गुरुत्वीय क्षेत्र में काल प्रवाह मंद हो जाता है। यह काल मंदन विद्वुत चुंबकीय सिग्नलों में एक अतिरिक्त अवरोध की भूमिका अदा करेगा। कृष्णविवर जैसे पिंड प्रकाशकिरणों को केवल विचलित ही नहीं करेंगे तो काफी बड़ी कोणिक दूरी पर मोड़ भी दे सकते हैं। अतः विद्वुत चुंबकीय विकिरणों के पथ सीधे नहीं हो सकते। अन्तरिक्षीय पिंडों की स्थिति के विषय में हमारी धारणा इस बात पर आधारित है कि विद्वुत चुंबकीय विकिरण (जिसमें दृश्य प्रकाश भी शामिल है) सरल रेखाओं में आगे बढ़ता है और हम तक पहुँचता है।

तो फिर ऐसा विचलित विकिरण कोई भ्रम भी उत्पन्न कर सकता है। यह उसी तरह होगा जैसा पृथ्वी पर विशिष्ट परिस्थितियों में मरिचिकाओं का बनना है। हमें जो बिंब मिल रहा है वह उस स्थान पर हो ही न या विद्रूप, विकृत रूप में हो। ऐसे कई भ्रम पैदा हो सकते हैं। उदा. वर्ष १९७९ में एक ऐसे पिंड की खोज हुई थी जो लगता था दुहरा क्वासार है। दोनों के बीच कोणिक दूरी बहुत कम और वास्तविक दूरी केवल ५०० प्रकाशवर्ष दिखती है। इसे क्रमांक दिया गया Q

०९५७+५६१ A,B| लेकिन क्वासार्स इतने करीब हो ही नहीं सकते। उनके वर्णपट, रासायनिक गठन यहाँ तक कि स्पेक्ट्रमी रेखाओं की तीव्रता और अन्य परामितकों में समानता पायी गयी। अतः काफी सोच के बाद अन्तिम रूप से उन्हें एक ही क्वासार के दो बिंब माना गया।

गोल्डीलॉक्स क्षेत्र

खगोलशास्त्र में गोल्डीलॉक्स झोन का अर्थ है आकाशगंगा में ऐसे क्षेत्र जहाँ जीवन संभव हो। इस क्षेत्र में न ज्यादा ठंडी होती है, न ज्यादा गर्मी। इस क्षेत्र के पृथ्वी जैसे ग्रह पर, पानी की उपस्थिति की जीवन के लिए आदर्श स्थितियां होती हैं। वास योग्य क्षेत्र को अंग्रेजी में ' हॅबिटेबल झोन ' कहते हैं। अंग्रेजी की प्रसिद्ध गोल्डीलॉक्स की कहानी से प्रेरित होकर इस झोन को यह नाम दिया गया है। वैज्ञानिकों का लक्ष ऐसे ग्रहों का पता लगाना है जो अपने तारे से बिल्कुल सही और उपयुक्त दूरी पर हैं ताकि वहाँ तापमान ऐसा हो, जो जीवन उत्पत्ति के लिए अनुकूल हो। उसका आकार भी ऐसा होना चाहिए जो वातावरण को ग्रह के साथ जोड़कर रखे। ग्रह का आकार बहुत बड़ा रहा तो वह गॅसीय पिंड में परिवर्तित हो जाएगा।

केपलर दूरबीन से मिले डाटा के ही आधार पर हार्वर्ड स्मिथसोनियन सेंटर फॉर अॅस्ट्रोफिजिक्स के खगोल शास्त्रियों ने किए एक अध्ययन के अनुसार छह प्रति शत रेड डॉवर्फ (Red dwarf) तारों के पास वास योग्य पृथ्वी समान ग्रह हैं। रेड डॉवर्फ तारा छोटा, ठंडा, कम चमकिला होता है। औसतन, यह तारा आकार में सूर्य से एक तिहाई और चमकिलेपन में हजारवें हिस्से इतना होता है। ऐसा तारा हम नंगी आंखों से नहीं देख सकते। हमारी आकाशगंगा के ७५ % तारे इसी वर्ग के हैं। इनकी/ संख्या ७५ अरब तक हो सकती है। हमारे सूर्य के चारों ओर ऐसे तारे बहुतायत में हैं। अर्थात् वास युक्त ग्रहों की संख्या भी बहुत अधिक होनी चाहिए।

अब कार्नेगी इन्स्टीट्यूट की मार्ग्रेट टर्नबुल ने वास युक्त ग्रहधारी तारों की संख्या (एक लाख बीस हजार तारामंडलों में से) १७००० तक सीमित कर दी है। इनमें से कई तारे आयु और आकार में सूर्य के बराबर हैं। मार्ग्रेट ने इस सूची में सबसे ऊपर ' बीटा सिवीएन ' तारे को रखा है। यह सूर्य जैसा है और हमसे २६ प्रकाशवर्ष दूर है। वह सूर्य से कुछ चमकदार है।

सेती प्रकल्प - (सर्च फॉर एस्ट्रोटेरेस्ट्रियल इन्टेलिजन्स)

प्युएर्टो रिको के अँरीकिबो वेधशाला मार्फत यह प्रयत्न किया जा रहा है। वहाँ ३०० मीटर चौड़ी, विशाल और शक्तिशाली रेडियो दूरबीन, पर ग्रह से आने वाले संकेत कभी तो ग्रहण करेगी ऐसी आशा है। हम भी इस दूरदर्शक के मार्फत अन्तरिक्ष में संदेश भेज रहे हैं। रेडियो तरंगों में से मायक्रोवेव का उपयोग करते हुए प्रगत संस्कृति से संपर्क करना संभव होगा या कोई प्रगत संस्कृति इन्हीं तरंगों का उपयोग करते हुए हमसे संपर्क करने का प्रयत्न करेगी। आंतरतारकीय यात्रा में वायु और धुली कण मायक्रोवेव का बहुत कम परिमाण में अवशोषण कर सकते हैं। सेती का प्रारंभ १९८० के दशक में शुरू हुआ। लेकिन अभी तो प्रयत्न ही जारी रखना है।

अन्तरिक्ष में संचार

सामान्य मनुष्य जिसे आकाश समझता है उसमें संचार का साधन हवाई जहाज से तो सभी परिचित हैं। लेकिन अन्तरिक्ष की जो परिभाषा ऊपर दी गयी है, उसमें संचार करने के साधन भी मनुष्य ने बीसवीं सदी में बना लिए हैं। उपग्रह, अन्तरिक्ष यान, अन्तरिक्ष स्थानक, पुनः प्रयोजनीय अन्तरिक्ष यान आदि साधनों से सभी परिचित हैं।

अब प्रश्न है पृथ्वी सतह से अन्तरिक्ष में पहुँचे कैसा ?

- १) पृथ्वी से कोई भी रॉकेट जब ऊपर जाता है तो पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण उसकी गति ३२ मीटर / सेकंड के हिसाब से कम होती है।
- २) अन्तरिक्ष में स्थापित उपग्रह या कोई भी वस्तु, गतिहीन अवस्था में नहीं रह सकती।
- ३) यदि कोई वस्तु, पृथ्वी से ८.०४ कि.मी./ से. उर्ध्व गति से ऊपर फेंकी जाए तो वह २३५ कि.मी. ऊँचाई पर वृत्ताकार कक्षा में पृथ्वी के चक्कर लगाने लगेगी। अगर उसकी कक्षा को अंडाकार बनाना है तो उसकी गति को बढ़ाना होगा।
- ४) ११.२६ कि.मी./ से. प्रक्षेपित की गयी वस्तु पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से बाहर निकल जाएगी। अन्तरिक्ष में भेजी जाने वाली वस्तु को पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र के पार भेजने के लिए उसे जो शुरू में न्यूनतम उर्ध्व गति आवश्यक होती है उसे ' पलायन वेग ' कहते हैं।
- ५) जैसे-जैसे कक्षा की ऊँचाई बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उपग्रह का पृथ्वी के गिर्द चक्कर लगाने का समय बढ़ता जाता है।

६) यदि कोई उपग्रह पृथ्वी से ३५,६०० कि.मी. ऊँचाई पर स्थापित हो तो वह ११००० कि.मी./घंटे की गति से पृथ्वी के चक्कर लगाएगा। इस स्थिति में उसकी गति पृथ्वी की परिवलन गति के बराबर होगी। इसे ' समकालीक कक्षा ' कहते हैं। उपग्रह को समकालिक कक्षा में स्थापित करने के लिए प्रयुक्त रॉकेट को भूमध्य रेखा के पूर्वी ओर से छोड़ा जाता है तो उसकी गति में ४५० मीटर / सेकंड की वृद्धि हो जाती है (पृथ्वी के अपने पूर्व से पश्चिम की ओर की परिवलन गति के कारण)। परिणामतः इंधन की बचत होती है।)

(लेकिन सभी उपग्रहों के लिए यह सत्य नहीं। उदा. पृथ्वी का निरीक्षण करने वाले उपग्रहों से पूरी पृथ्वी की सतह का निरीक्षण होना चाहिए इसलिए उनकी कक्षा ध्रुवों पर से होकर गुजरती है (Polar Orbit) और उन्हें दक्षिण दिशा में प्रक्षेपित किया जाता है। सुदूर संवेदी उपग्रह इस कक्षा में स्थापित किए जाते हैं। पृथ्वी, पश्चिम से पूर्व की ओर २४ घंटे में एक चक्कर लगाती है। इस प्रकार सुदूर संवेदी उपग्रह २४ घंटे में, संपूर्ण पृथ्वी सतह का सुदूर संवेदन कर लेता है)।

वह उपग्रह, जिसे पृथ्वी का चक्कर लगाने वास्तव में २४ घंटे का समय लगता है, पृथ्वी से देखने पर पूर्णरूपेण स्थिर प्रतीत होता है। यदि पृथ्वी को हम एक परिपूर्ण गोल माने (जबकि ऐसा नहीं है) जिसका व्यास ६३७८ कि.मी. हो तो इस प्रकार का उपग्रह पृथ्वी से ३५,८८० कि.मी. ऊँचाई पर होगा। स्टेशनरी होने के लिए उसकी कक्षीय गति ३.०७३ कि.मी. प्रति सेकंड होगी। उपग्रह का भ्रमण काल और पृथ्वी का स्वांग भ्रमण काल समान होने से वह हमें स्थिर दिखेगा।

लेकिन सटीक भू-स्थिर कक्षा के लिए साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि कक्षा भूमध्य रेखा के समांतर भूमध्य रेखीय प्रतल में हो।

उपग्रह की कक्षाएं (Orbit) -

पृथ्वी से क्षेपित की गयी कोई मानव निर्मित वस्तु ग्रह के गिर्द, खास करके उसके गुरुत्वाकर्षण के कारण घूमती हुई रखी तो उसे कृत्रिम उपग्रह कहते हैं। पृथ्वी के अक्ष के साथ कोई भी कोन करने वाली कृत्रिम उपग्रह की कक्षा पृथ्वी के गुरुत्व मध्य से गुजरती है। विषुववृत्त

से होती हुई गुजरने वाली कक्षा को विषुववृत्तीय(Equatorial) कक्षा तो ध्रुवपर से होते हुए जाने वाली को ध्रुवीय कक्षा कहते हैं। परिवहन के कारण ध्रुवीय कक्षा वाला कृत्रिम उपग्रह पृथ्वी के सभी हिस्सों पर से होते हुए गुजरता है।

उपग्रह की कक्षाएं मुख्यतः दो तरह की होती हैं - १) गोलाकार २) दीर्घ गोलाकार।

- गोलाकार कक्षाओं के तीन वर्ग किए गये हैं : अ) निम्न कक्षाएं- इनका दायरा पृथ्वी सतह से १६० कि.मी. से लेकर तो २००० कि.मी. तक होता है। इसमें लॉच किए गये उपग्रह प्रतिदिन पृथ्वी के तीन से चार चक्कर लगा लेते हैं। उदा. मौसम की जानकारी देने वाले उपग्रह , आंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष स्थानक , जासूसी उपग्रह आदि।
आ) मध्यवर्ती कक्षाएं : दायरा २००० से ३५२८६ कि.मी. पृथ्वी के दो चक्कर ३) जियोसिन्क्रोनस कक्षा : भूतुल्यकालीन कक्षा- प्रतिदिन उपग्रह द्वारा एक ही चक्कर।
- पृथ्वी सतह से ३५,७८६ कि.मी. दूर, उच्च दीर्घवृत्तीय कक्षा- सतह से ३५२८६ कि.मी. के बाद।

भूस्थिर कक्षा- पृथ्वी की भूमध्य रेखा पर शून्य झुकाव वाली भूतुल्यकालीन कक्षा।

उपग्रह को भूपृष्ठ से विशिष्ट उंचाई पर भ्रमणरत रखने के लिए उस उंचाई तक ले जाते हैं। उसके बाद उसे इस निर्धारित कक्षा में स्थापित करने के लिए कक्षा की स्पर्श रेखा की दिशा में दी जाने वाली कमसे कम प्रक्षेपण गति को क्रांतिक गति(Critical Velocity) कहते हैं। यह गति मिलते ही उपग्रह पृथ्वी के गिर्द भ्रमण करने लगता है। प्रक्षेपण की गति क्रांतिक गति इतनी हो तो उपग्रह पृथ्वी के गिर्द गोलाकार कक्षा में घूमता है। प्रक्षेपण की गति मुक्तिवेग से कम लेकिन क्रांतिवेग से अधिक हो तो वह लंबगोलाकार कक्षा में घूमता है।

(उपग्रह के मुख्य तीन हिस्से होते हैं- ऑर्बिटर , लैंडर , रोवर।)

सबसे सशक्त संचार प्रणालियाँ -

- १) ऑप्टिकल फायबर संचार प्रणाली : इसकी संचार क्षमता काफी अधिक (एक टेरैबीट प्रति सेकंड स्तर की) होती है। लेकिन इन तंत्रों को समुद्र के बीच से होते हुए स्थापित करना और उसका रखरखाव भी कठिनाइयाँ पैदा करता है।
- २) उपग्रह संचार प्रणाली : उपरोक्त संचार प्रणाली की तुलना में इनकी संचार क्षमता तो कम है लेकिन स्थापन और रखरखाव काफी आसान हैं। समकालिक कक्षा (पृथ्वी से ३६००० कि.मी. पर) में 120° के अन्तर पर तीन संचार उपग्रह, संपूर्ण पृथ्वी पर संचार व्यवस्था स्थापित कर सकते हैं।

संचार उपग्रह के प्रकार -

अ) निष्क्रिय उपग्रह : यह एक परावर्तक की तरह काम करता है। पृथ्वी से प्रेषित किए गये संदेश को वापस पृथ्वी की ओर परावर्तित कर देता है। अभिग्राही स्टेशन इसे ग्रहण कर लेता है। इसमें न कोई उपकरण होता है, न इसे बिजली की आवश्यकता होती है। इसका जीवन काल लम्बा होता है।

आ) सक्रिय उपग्रह : यह केवल एक परावर्तक ही नहीं होता बल्कि इसमें प्रवर्धन (Amplification), आवृत्ति परिवर्तन (Frequency Change) इत्यादि के लिए उपकरण होते हैं । पृथ्वी से भेजा हुआ सिग्नल इन प्रक्रियाओं से गुजरता है। इसलिए इसमें सोलर अरे (बिजली उत्पादक) लगा होता है। अतः इसका जीवन काल निम्न बातों पर निर्भर होता है। उपकरणों कार्य क्षमता, विद्युत उपलब्धता और स्टेशन कीपिंग के लिए उपलब्ध इंधन आदि। अतः तुलना में जीवन काल कम होता है। संचार उपग्रह को - 140° से $+ 140^\circ$ डिग्री सेंटिग्रेड इतना तापमान झेलना पड़ता है। वर्तमान युग के सभी संचार उपग्रह सक्रिय ही हैं।

सुदूर संवेदी तकनीक-

सुदूर संवेदन वह प्रक्रिया है, जिसमें किसी पदार्थ के वास्तविक संपर्क में आए बिना, उस पदार्थ की प्रकृति और लक्षणों का पता लगाया जाता है। अर्थात् दूर से किसी पदार्थ के गुणों का पता लगाने के तरीके को सुदूर संवेदन कहते हैं। पदार्थ विद्युत चुंबकीय विकिरण का उत्सर्जन करते हैं। संसूचकों (Sensor) द्वारा इन विकिरणों का पता लगाना, सुदूर संवेदन है।

ग्लोबल पोजिशनिंग तंत्र -

- १) अमेरिका का जी.पी.एस. तंत्र : इसमें २४ उपग्रह हैं तथा प्रत्येक उपग्रह पृथ्वी से 11,००० नॉटिकल मील की दूरी पर है। उसकी स्थिति निर्धारण शुद्धता ३०० फीट है। इस तंत्र की शुद्धता का राज इसकी परमाण्विक घड़ियों में है। इनकी शुद्धता 0.०००००००३ सेकंड है।
- २) रूस का ग्लोनस तंत्र :
उपरोक्त दोनों तंत्र सैनिकी तंत्र हैं।
- ३) यूरोप का गॅलिलियो तंत्र : यह असैनिक तंत्र है।
- ४) भारत का इन्सेट तंत्र : समकालिक कक्षा से, सम्पन्न करने वाला हमारा भारतीय इन्सेट तंत्र, विश्व का पहला उपग्रह संचार तंत्र है। यह एक उपग्रह से तीन प्रकार की सेवाएँ प्रदान करने वाला भी विश्व का प्रथम उपग्रह संचार तंत्र है। सेवाएँ हैं—दूरसंचार, दूरदर्शन और मौसम विज्ञानी विदा।

उपग्रहों के प्रकार—

- व्यवसायिक संचार उपग्रह—(१००० से ४००० किलोग्राम भार)—अ) विशाल उपग्रह—१००० किलोग्राम से अधिक भार आ) मध्यम आकार-५०० से १००० कि.।
- लघु उपग्रह : ५०० कि. से कम भार के -
अ) मिनी उपग्रह - १०० से ५०० किलोग्राम
आ) मायक्रो उपग्रह -१० से १०० कि.।
*a) अन्तरिक्ष यान और उपग्रह सूर्य से प्राप्त किरणों से अपने लिए ऊर्जा निर्मित करते हैं।
*b) अक्टूबर २०२० तक २७०० उपग्रह अन्तरिक्ष में कार्यरत थे।

अन्तरिक्ष में दूरबीनें

- १) गॅलिलियो की पहली दूरबीन से लेकर तो हबल स्पेस टेलिस्कोप तक पहुँचते-पहुँचते प्रेक्षणशक्ति में हुई वृद्धि ५० करोड़ गुना है।
- २) पृथ्वी पर खड़ी की गई सबसे शक्तिशाली दूरबीन की अवलोकन क्षमता दो अरब प्रकाशवर्ष है। उच्च अवलोकन क्षमता के लिए (१४ अरब प्रकाशवर्षों तक) दूरबीनों को अन्तरिक्ष में ही स्थापित करना पड़ता है।

- 3) चूंकि खगोलीय परिघटनाओं के प्रेक्षण का आधार खगोलीय पिंडों से निकले विभिन्न प्रकार के विद्युत चुंबकीय विकिरणों का अभिग्रहण होता है। ये विकिरण विभिन्न प्रकार के होते हैं जैसे मनुष्य के लिए दृष्टिगोचर, अति नील, इन्फ्रारेड, एक्स किरणें, गॅमा किरणें आदि। पृथ्वी का वायुमंडल इनमें से कई तरह के विकिरणों को अवशोषित कर लेता है या फिर उनका अन्तरिक्ष में विसरण (Scattering) कर देता है।
- 4) एक टेलिस्कोप सभी तरंगदैर्घ्यों (Wave Lenth) पर कार्य नहीं कर सकती। इसलिए उन्हें अलग-अलग तरंग लम्बाई के लिए बनाया जाता है। उदा. क्रॉम्पटन गॅमा किरण प्रयोगशाला, चंद्रा एक्स किरण प्रयोगशाला, स्पेस इन्फ्रारेड टेलिस्कोप।
- 5) दूरबिनों के प्रकार : १) ऑप्टिकल टेलिस्कोप २) रेडियो टेलिस्कोप ।
- 6) हबल टेलिस्कोप ने अपने प्रथम दसवर्षीय कार्यकाल में ३,३०,००० खगोलीय चित्र, १४००० खगोलीय पिंडों के प्रेक्षण भेजे। पृथ्वी के ५८००० चक्कर लगाएं। डेढ़ अरब मील की यात्रा की और ३.५ टेराबाइट डाटा प्रदान किया।

गुरुत्व सहायता (Gravity Assist) तकनीक

इस तकनीक का मूल सिद्धांत यह है कि जब कोई अन्तरिक्ष यान किसी ग्रह के बहुत करीब से गुजरता है तो इस ग्रह के गुरुत्व का प्रभाव उस यान पर होता है। इस गुरुत्व बल से यान को विशाल परिमाण में ऊर्जा प्राप्त होती है। इससे उसकी गति काफी बढ़ जाती है तथा वह अन्य किसी ग्रह की कक्षा में पहुंच जाता है। इस प्रकार, बिना इंधन के प्रयोग के, यान लम्बी दूरी तय कर लेता है। इस बल का उपयोग कर यान की गति कम भी की जा सकती है। शनि जैसे काफी दूर के ग्रह की ओर (पृथ्वी से दूरी लगभग तीन अरब कि.मी.) ५.६ टन वस्तुमान का कैसिनो यान भेजा गया था। कोई भी रॉकेट ५.६ टन के यान को सीधे शनि तक नहीं ले जा सकता। इसके लिए हजारों टन इंधन लगेगा जो रॉकेट का वजन और बढ़ा देगा। लेकिन उपरोक्त तकनीक का उपयोग कर इच्छित परिणाम प्राप्त किया गया।

जुगाड टेक्नोलॉजी

भारत की ' जुगाड़ टेक्नोलॉजी ' वैसे तो पूरी दुनिया में ख्यात है। लेकिन, भारतीय मूल की अमेरिकी अंतरिक्ष यात्री सुनिता विलियम्स ने इसे अंतरिक्ष तक पहुँचा दिया। सुनिता और उनके

जापानी सहयोगी ने अंतरिक्ष में दूथब्रश के जरिए स्पेस स्टेशन में आयी दिक्कत दूर की। सुनिता और अखिदो होशिदे, स्पेस स्टेशन की खराब विद्युत युनिट एम्.बी.एस.यु. को बदलने की कोशिश कर रहे थे। स्पेस स्टेशन के पास उपयोग में लाने के लिए बहुत कम ऊर्जा बची थी। इसमें स्पेस वॉक का समय आठ घंटे तक खींच गया। समस्या यह थी कि मशीनरी को कसने वाले बोल्ट के अंदर कचरा जमा होने से वे पॉवर युनिट को स्पेस क्राफ्ट से जोड़ नहीं पा रहे थे। इसके बाद उन्होंने कचरे को दूथब्रश से साफ करने का निर्णय लिया। साधारण से दूथब्रश में मेटल पोल जोड़कर औज़ार तैयार कर लिया गया। चार घंटे लम्बी घिसाई के बाद कचरा साफ हुआ और पॉवर युनिट को लगाया जा सका।

इसरो

इसरो की गतिविधियों के विकास क्रम के महत्वपूर्ण चरण—

- १) भारत में अंतरिक्ष कार्यक्रम की शुरुआत १९६२ से हुई। तब भारतीय अनुसंधान कमेटी का गठन किया गया।
- २) इसके अगले साल, भारत का रॉकेट प्रक्षेपण केंद्र तिरुवनंतपुरम के निकट स्थापित किया गया। थुंबा मैग्नेटिक इक्वेटर के पास है, इसलिए उसका चयन किया गया।
- ३) महान वैज्ञानिक डॉ. विक्रम साराभाई को, भारत में अंतरिक्ष शोध कार्य का जनक माना जाता है। उनका जन्म १२ अगस्त १९१९ को अहमदाबाद के एक धनी उद्योगपति परिवार में हुआ था और मृत्यु ३० दिसंबर १९७१ को तिरुवनंतपुरम में हुई थी।
- ४) २१ नवम्बर १९६३ को भारत ने थुंबा से ' साउंडिंग रॉकेट ' प्रक्षेपित किया जिसे भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम का आरंभ माना जाता है। यह रॉकेट अमेरिका से मिला था। शुरु में भारत के पास संसाधनों की कमी थी। इस रॉकेट को साइकिल से प्रक्षेपण स्थल तक वैज्ञानिक ले गये थे।
- ५) भारत में बना पहला रॉकेट, रोहिणी ७५, बीस नवम्बर १९६७ को प्रक्षेपित किया गया।
- ६) १५ अगस्त १९६९ को , भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) का गठन किया गया। इसका मुख्यालय बेंगलुरु में है। १९७२ में भारत सरकार द्वारा अंतरिक्ष आयोग और अंतरिक्ष विभाग गठित किया गया।

- ७) भारत का प्रथम स्वदेशी उपग्रह 'आर्यभट्ट' था। १९ एप्रिल १९७५ को सोवियत संघ ने 'कापुस्तीन यार' से लॉच किया था।
- ८) भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के अंतर्गत बनाए गए भास्कर-१ और भास्कर-२, ऐसे उपग्रह थे जिनसे प्रथम 'लो ऑर्बिट अर्थ ऑब्जरवेशन सैटलाइट' बना था। लॉचिंग के समय अर्थात् ७ जून १९७९ को जिसका वजन ४४४ किलो था ऐसे भास्कर १ को कपुस्तिन यार से, इंटरकॉस्मॉस लॉच व्हेहिकल द्वारा अंतरिक्ष में भेजा गया था। वहीं से २० नवम्बर १९८१ को १४३६ किलो के भास्कर २ को प्रक्षेपित किया गया था।
- ९) रोहिणी प्रदौगिकी पेलोड उपग्रह, सतीश धवन अंतरिक्ष केंद्र से १० अगस्त १९७९ को अंतरिक्ष में भेजा गया था लेकिन वह अपनी कक्षा में स्थापित नहीं हो पाया। लेकिन रोहिणी मालिका का ही एक अन्य उपग्रह 'आरएस् १' जिसे १८ जुलाई १९८० को भेजा था, वह सफल रहा।
- १०) अप्सरा उपग्रह का प्रक्षेपण १९ जून १९८१ को हुआ था। इसका पूरा नाम है- एरियन पैसेंजर पेलोड एक्सपेरिमेंट था। ३५० किलोग्राम के इस उपग्रह ने टेलिविजन और रेडियो नेटवर्किंग जैसे क्षेत्र में परीक्षण किए। यह २ वर्षों तक कार्यरत रहा। अप्सरा ने संचार क्षेत्र में कई नयी राहें, भारत के लिए खोल दीं। इसे भी प्रक्षेपण स्थल पर बैलगाड़ी से लाया गया था।
- ११) इनसेट मालिका के उपग्रहों ने भारत की संचार सेवाओं को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनसेट -१ का प्रक्षेपण १० एप्रिल १९८२ को हुआ था। इस मालिका का पूरा नाम था - इंडियन नैशनल सैटलाइट सिस्टिम। इस मालिका के ९ उपग्रह थे।
- १२) प्रथम भारतीय अंतरिक्ष यात्री है स्काईलैब लिडर राकेश शर्मा। इसरो और सोवियत इंटरकॉस्मॉस के संयुक्त कार्यक्रम के तहत दो अन्य सोवियत यात्रियों के साथ उन्होंने सैल्युट-७ स्पेस स्टेशन में, आठ दिन अंतरिक्ष में बिताए। ये यात्री १२ एप्रिल १९८४ को सोयुज टी 11 रॉकेट से अंतरिक्ष में पहुंचे थे। तत्कालीन प्र. मंत्री इंदिरा जी ने जब उनसे पुछा था कि अंतरिक्ष से भारत कैसा दिखता है ? तो उनका उत्तर था, " सारे जहाँ से अच्छा -----"
- १३) ध्रुवीय प्रक्षेपण यान पीएसएलवी, भारतीय अनुसंधान संस्था का भूस्थिर उपग्रह प्रक्षेपण यान है। शुरु में इसकी ऊंचाई ४४ मीटर तथा वजन २३० टन था। यह पूरी तरह देशी

तकनीक पर आधारित है। इस यान के एक प्रक्षेपण का व्यय लगभग १.७ करोड़ अमेरिकी डॉलर होता है। पीएसएलवी १६ का वजन था ३२० टन था।

१४) २२ अक्टूबर २००८ को इसरो ने चंद्रमा पर चंद्रयान भेजकर अपने आपको उन छह देशों के साथ जोड़ लिया जिन्होंने यह उपलब्धी प्राप्त कर ली थी। यह २००९ तक कार्यरत रहा। मिशन में एक लूनर ऑर्बिटर और एक इंपैक्टर था। चॉंद पर पानी ढूँढने का श्रेय इस मिशन को दिया जा रहा है। १४ नवम्बर २००८ को मून इंपैक्टर प्रोब, ऑर्बिटर से अलग होकर साउथ पोल पर जाकर अटक गया।

१५) ५ नवम्बर २०१४ को इसरो ने सफलतापूर्वक मंगल ग्रह की ओर यान भेजा। पहले ही प्रयत्न में ऐसी सफलता प्राप्त करने वाला, उस समय, भारत प्रथम देश था। यान ने ६७ करोड़ कि.मी. दूरी तय की थी। इस अभियान का व्यय ४५० करोड़ रुपये था जो ऐसे ही अभियान के लिए आने वाले अमेरिकी व्यय की तुलना में केवल १० % था।

१६) सन् २०१६ में इसरो ने नेविगेशन सिस्टम प्रक्षेपित किया। यह भारत का, अमेरिका जैसा अपना जीपीएस सिस्टम है।

१७) वर्ष २०१७ में भारत का सबसे भारी रॉकेट जीएसएलवी एम-के ३ प्रक्षेपित किया गया। यह अपने साथ ३१३६ किलो का संचार (Communication) उपग्रह जी-सैट १९ ले गया। इससे पहले भारत को २३०० किलो से भारी उपग्रह के प्रक्षेपण के लिए विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता था।

१८) वर्ष २०१७ में इसरो द्वारा पीएसएलवी के जरिए एकसाथ १०४ उपग्रह प्रक्षेपित कर विश्व रिकार्ड बनाया गया। इससे पहले यह रिकार्ड २०१४ में भेजे गये ३७ उपग्रहों के साथ रूस के नाम था।

१९) वर्ष २००७ में रूस के साथ इसरो का एक अनुबंध हुआ और तय किया गया था कि एक लैंडर और रोवर, चंद्र के उस दक्षिणी ध्रुव पर उतरने के लिए भेजा जाएगा, जहां अभी तक कोई देश अपना यान उतार नहीं पाया था। इस अभियान में हमें रूस की तरफ से लैंडर मिलना था। न जाने क्यों, रूस लैंडर देने का मामला टालता रहा और २०१६ में उसने अंततः इसके लिए मना कर दिया। हमारे वैज्ञानिकों ने इसे चुनौती की तरह लिया और दो साल में अपना स्वयं का लैंडर विकसित कर लिया। इसे विक्रम साराभाई को श्रद्धांजलि देने की दृष्टि से ' विक्रम ' नाम दिया गया। हो सकता है रूस ने ऐसा करने के पीछे यह कारण रहा हो - रोस्कोस्मोस, चीनी अंतरिक्ष एजेंसी के सहयोग से मंगल ग्रह

के चंद्रमा पर अपना लैंडर और रोवर उतारने वाला था (फोबोस ग्रैंड मिशन) जो विफल रहा।

(सन् १९५८ के बाद के १०९ चंद्र अभियानों में से ६१ याने आधे से थोड़े ही अधिक सफल रहे हैं। चंद्रयान-२ की तरह चंद्रमा पर अधर अवतरण की, ४६ मिशनों में योजना थी, जिनमें से केवल २१ सफल रहें।)

२०) इसरो ने अपनी ही क्षमता से, ३०० कि.मी. ऊंचाई पर स्थित उपग्रह को सफलतापूर्वक मार गिराया। उपग्रह की गति सैकड़ों कि.मी. प्रति घंटा थी। इसरो का यह ' मिशन शक्ति ' (एन्टी सैटेलाइट मिसाइल परिक्षण-ए-सैट) था।

२१) भारत का दुनिया के ३३ देशों के साथ अंतरिक्ष क्षेत्र में सहयोग है।

इसरो ने अंतरिक्ष क्षेत्र में अर्जित की सफलता यह ऐसे उपक्रमों अंतर्गत आर्थिक प्राप्ति का भी अवसर है, यह ध्यान में लेते हुए, संसद की विज्ञान-तंत्रज्ञान विषयक स्थायी समिति ने इसरो के लिए वार्षिक बजट ५० % बढ़ा देने की शिफारिश की थी। लेकिन २०१७-१८ के बजट में उससे आधी वृद्धि भी नहीं दी गयी। यह है हमारी विज्ञान के प्रति आस्था। कई अनुत्पादक कामों के लिए सरकार के पास बजट होता है।

अंतरिक्ष

मंगल पर हेलिकॉप्टर

१९ अप्रैल २०२१ के दिन ' इनजेन्यूइटी ' इस नासा के हेलिकॉप्टर ने मंगल के " जेसेरे " विवर के परिसर में सफल उड़ान भरी। यह पृथ्वी छोड़कर अन्य किसी ग्रह पर हेलिकॉप्टर के सफल परीक्षण का प्रथम प्रयत्न था। १.८ कि.ग्रा.के छोटे हेलीकॉप्टर ने अपने आपको मंगल की जमीन से ३ मीटर ऊपर उठा लिया था। वहाँ वह ३० सेकंड तक स्थिर रहा और फिर धीरे-धीरे वापस जमीन पर उतरा।

व्हॉयेजर २

व्हॉयेजर -२, यह मानव निर्मित सबसे तेज चलने वाला यान है। फिलहाल उसकी चाल ५७८९० कि.मी. / घंटा है। व्हॉएजर-१ आज हमसे २३.३ अरब कि.मी. दूर है तो व्हायेजर -२ १७ अरब कि.मी.(सन् २०२१)।

व्हॉएजर-१

यह २०२२ की दृष्टि से ४५ वर्ष पुराना अंतरिक्ष यान है। उसके और पृथ्वी के बीच के एकद्वैशिक संदेशवहन के लिए २० घंटे और ३३ मिनट लगते हैं। इसका विस्तारित मिशन २०२५ तक चलता रहेगा ऐसी अपेक्षा है। तब रेडिओएक्टिव थर्मो इलेक्टिकल जनरेटर, उपकरणों के लिए आवश्यक ऊर्जा उत्पादन नहीं कर पाएगा। सौर ऊर्जा उत्पादन के संदर्भ में यह कब का काफी दूर चला गया है। जब उपरोक्त ऊर्जा उत्पादन भी रुक जायेगा तब उसके साथ मनुष्य का संपर्क पूरी तरह टूट जाएगा।

हबल दूरबीन-

व्यास- २.४ मीटर, भार - ११११० किलोग्राम, प्रक्षेपण- २४-४-१९९० , कक्षा-लगभग वृत्ताकार। पृथ्वी से दूरी -३८० मील , पृथ्वी प्रदक्षिणा की गति -७८०० मीटर /सेकंड (९६ मिनट एक प्रदक्षिणा)

नासा और युरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी का संयुक्त उपक्रम है।

- २०२० के अंत तक अंतरिक्ष में लगभग ३००० मृत और २८०० कार्यरत अंतरिक्ष यान और उपग्रह थे।
- अभीतक अंतरिक्ष यानों के संदर्भ में प्राप्त की गयी अधिकतम गति ३९९३७ कि.मी. प्रति घंटा रही है।

*अंतरिक्ष में 'जेम्स वेब दूरबीन'

यह अंतरिक्ष के उस बिंदु पर स्थापित की गयी है, जिस बिंदु पर सूर्य का गुरुत्वाकर्षण बल और पृथ्वी की गुरुत्व शक्ति अधिक Centrifugal बल एकत्र, एक दूसरे को निरंक करते हैं। इस 'लैंग्रेज बिंदु' कहते हैं। इसमें से L2 बिंदु पर यह स्थापित है। यह अंतरिक्ष में स्थापित अब तक की सबसे बड़ी दूरबीन है।

२. ब्रह्मांड

प्राचीन सोच -

शुरू में प्रकृति की हर घटना और हर वस्तु को इस प्रकृति के पार की किसी अलौकिक सत्ता के साथ जोड़ा जाता था। सारी गतिविधियों को मनुष्य के नियंत्रण के बाहर माना जाता था और इसलिए इस अलौकिक सत्ता को प्रसन्न रखना आवश्यक माना जाता था। इन कल्पनाओं का आधार अज्ञान ही था।

लेकिन बाद में कुछ लोगों के ध्यान में आने लगा कि प्रकृति की घटनाओं के पीछे कुछ निश्चित नियम हैं। उनको जानने से इन घटनाओं पर नियंत्रण किया जा सकता है। यही विज्ञान के पीछे की प्रेरणा थी। अस्तित्व के विश्लेषण को कल्पनाओं और मिथकों की दलदल से निकालकर तर्क और वैज्ञानिक क्षेत्र में लाने का महान कार्य ग्रीस में मिलेट के थेल्स ने किया। उसका समय ईसापूर्व छठीं सदी है। उसने प्रकृति की घटनाओं के लिए आसान स्पष्टीकरण दिये। इसी कारण थेल्स को दुनिया का प्रथम वैज्ञानिक कहा जाता है।

वैसे तो ईसापूर्व छठीं सदी में, पायथागोरस ने पृथ्वी को गोलाकार और स्थिर न होने की बात कही थी। न्यूटन के काफी पहले अथेन्स के ग्रीक तत्वज्ञ अनाक्सगोरस ने कहा था कि अगर चंद्रमा पृथ्वी के चारों ओर नहीं घूमा तो वह पृथ्वी पर गिर जाएगा।

- अरिस्टॉटल-(ईसापूर्व ३८४-३२२) : उनकी पुस्तक है ' ऑन दी हेवन ' ।

बाद की, जगत की रचना संबंधी व्यवस्थित धारणा अरिस्टॉटल से ही मिलती है। हम उनकी सोच देखेंगे -

- १) प्रकृति के नियमानुसार भारी वस्तुएं नीचे आती हैं। अतः पृथ्वी ब्रह्माण्ड का केंद्र हो सकती है।
- २) पृथ्वी काफी भारी है। इसलिए उसका घूमना संभव नहीं। वह अचल है। वह अचल न होती तो उसपर वास्तव्य करना संभव नहीं होता। सूर्य, चंद्र, ग्रह और तारे वृत्ताकार कक्षाओं में उसके चारों ओर घूमते हैं।

- 3) वृत्ताकार आदर्श आकार है। इस कारण आकाशीय पिंड इस आकार के हैं। पृथ्वी एक समतल तश्तरी नहीं है जैसा कि पहले माना जाता था। वह गोल पिंड है। इसके लिए उन्होंने कुछ तर्क भी दिए थे।
- 8) सूर्य, चंद्र का स्वरूप चिकना और कलंक रहित ही होना चाहिए।
- 9) हल्के की अपेक्षा भारी पिंड को, नीचे अधिक तेजी से गिरना चाहिए क्योंकि पृथ्वी की ओर इसका आकर्षण या खींचाव अपेक्षाकृत अधिक होगा। जमीन पर गिरते पिंड, ब्रह्माण्ड के केंद्र अर्थात् पृथ्वी के केंद्र की ओर आकर्षित होते हैं। पृथ्वी केंद्र सभी बलों और उद्देश्यों का भी केंद्र है।
- 6) अरस्तू की परंपरा, इस धारणा का निर्वहन भी करती थी कि शुद्ध चिंतन मात्र से, ब्रह्माण्ड को नियंत्रित करने वाले सभी नियमों को समझा जा सकता है। इन्हें प्रेक्षणों द्वारा जांचने की आवश्यकता नहीं। इसलिए गैलिलिओ तक किसी ने भी यह देखने कि चिन्ता नहीं की कि क्या वास्तव में भिन्न-भिन्न भार वाले पिंड नीचे आते समय भिन्न-भिन्न गतियों से गिरते हैं। पीसा की झुकी हुई मीनार से विभिन्न भार की वस्तुओं को गिराकर गैलिलियो ने यह प्रदर्शित किया था कि अरस्तू का विश्वास गलत था और वास्तवता तक पहुँचने के लिए प्रकृति का निरीक्षण आवश्यक है। (ऐसा क्यों है इसका स्पष्टीकरण 'न्यूटन का गतिशास्त्र 'शीर्षकांतर्गत' दिया हुआ है)

• टॉलेमी (ईसा की दूसरी सदी : लगभग सन ९० -१६०) -

ग्रीक-इजिप्शियन विद्वान कॉलियस टॉलेमी ने गणित पर आधारित ग्रहमाला का प्रारूप जिसे ' भूकेंद्र प्रारूप ' के तौर पर जाना जाता है, प्रस्तुत किया। अर्थात् इसमें ब्रह्माण्ड का केंद्र पृथ्वी ही है। ईसा सन १५० के दरम्यान ' मॅथेमॅटिकल सिन्टॉक्सिस ' (१३ खंडों का ग्रंथ) में उन्होंने इसे प्रस्तुत किया था। इसे ही अरस्तू-टॉलेमी का 'भूकेंद्रीय विश्वतंत्र' कहा जाता है। इसके महत्वपूर्ण मुद्दे हैं -

पृथ्वी ब्रह्माण्ड के केंद्र में स्थित है और आठ गोलों से घिरी हुई है, जो इसके गिर्द घूमते हैं। इन गोलों पर क्रमशः चंद्र, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि और स्थिर तारे स्थित हैं। (उस समय केवल पांच ही ग्रह ज्ञात थे)। इसे ईसाई चर्च द्वारा ब्रह्माण्ड की उस तस्वीर के रूप में स्वीकार कर लिया गया जो बाइबल की धारणा के अनुरूप थी। इन विचारों को चुनौती

देने की हिम्मत पंधरहवीं सदी तक किसी ने नहीं की। सर्वप्रथम शंका उपस्थित करने वाली व्यक्ति थी लिओनार्डो द व्हिन्सी (ई.१४५२-१५१९)। उन्होंने कहा कि पृथ्वी, ब्रह्मांड के केंद्र स्थान पर नहीं है।

- **सामोस के एरिस्टार्कस (ईसापूर्व दूसरी सदी)-**

इन्होंने अरस्तु के अध्ययन का जो आधार था, नैतिक परंपरा, उसे हटाकर निरीक्षण और गणितीय समीकरणों के आधार पर खगोलशास्त्र का अध्ययन किया।

- १) ब्रह्मांड का केंद्र पृथ्वी नहीं, तो सूर्य है।
- २) पृथ्वी अचल नहीं तो ३६५ दिनों में, सूर्य की एक प्रदक्षिणा करती है।
- ३) पृथ्वी अपनी धुरि पर भी घूमती है। इसके लिए उसे २४ घंटे लगते हैं।
इसी कारण सूरज, चँद, तारों का उदय और अस्त होता है।
- ४) चंद्र की तुलना में सूर्य का आकार काफी बड़ा है।
- ५) चंद्र पृथ्वी से काफी दूर है। तारे तो बहुत ही दूर हैं। इस कारण वे हमें स्थिर नज़र आते हैं।

- **पोलैंड के पादरी निकोलस कोपर्निकस (१४७३ -१५४३)-**

सूर्य केंद्र में स्थित है और पृथ्वी सहित सभी ग्रह उसके चारों ओर वृत्ताकार कक्षाओं में घूमते हैं।

- **जोहान्नस केपलर (१५७१-१६३०) :** ग्रहों के भ्रमण के तीन नियम--

दूरबीनपूर्व दुनिया का सबसे महान खगोल निरीक्षक था टायको ब्राहे। ब्राहे का सहायक था केपलर।

- केपलर ने कोपर्निकस के सिद्धान्त में सुधार किया। केपलर के अनुसार ग्रहों की कक्षाएं गोलाकार न होकर *लंबवृत्ताकार* हैं और इसीमें से केपलर के सूर्यकेन्द्रित ग्रहकक्षाओं के तीन नियमों ने जन्म लिया ।

#नियम प्रथम - ग्रहों की कक्षाएं दीर्घवृत्तीय (Elliptical) हैं और उनके नाभि के एक स्थान पर सूर्य रहता है।

#नियम दूसरा -ग्रह का कक्षा में स्थान और उसकी गति इनका संबंध बताता है कि ग्रह जब सूर्य के सर्वाधिक करीब आता है तब उसकी गति सर्वाधिक होती है।

उसने अपने ये दोनों नियम १६०९ में ' अस्ट्रोनॉमिया नोव्हा ' इस ग्रंथ में प्रसिद्ध किए। उसने बताया कि चुंबकीय शक्ति के कारण ग्रह, सूर्य का चक्कर लगाते हैं। इस नियम को अलग भाषा में ऐसा भी लिखते हैं-

“सूर्य से किसी ग्रह की ओर अरीय सदीश, समान समय में समान क्षेत्र पाटता है। “

#तीसरा नियम - यह नियम, ग्रह की कक्षा (व्याप्ति) और उसका प्रदक्षिणा काल इनका गणितीय मेल बिठाता है । इसके अनुसार ग्रह की कक्षा जितनी बड़ी उतना उसका प्रदक्षिणा काल अधिक। इस नियम को उसने १६१९ में ' हार्मोनिसेस मुंडी ' ग्रंथ द्वारा रखा।

ये तीनों नियम आज भी ग्रह गणित के आधार माने जाते हैं।

• गैलिलिओ गैलिली (१५६४-१६४२)---

इन्होंने १६०९ में दूरबीन से पहली बार आकाश का निरीक्षण किया।

गैलिली को पक्का विश्वास था कि कोपर्निकस के विचारों के अनुसार ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। लेकिन सन् १६१६ में चर्च ने कोपर्निकस की अवधारणाओं को झूठी और गलत घोषित किया और गैलिलियो को आदेश दिया कि वे इन अवधारणाओं का पक्ष न ले। गैलिलियो ने फिर भी चुपचाप उनका बचाव करने का प्रयत्न किया जिसके लिए उन्हें जीवन भर घर में ही नज़रबंद रहना पड़ा। फिर भी १६४२ में उनकी एक किताब ' दो नए विज्ञान ' चोरी-छिपे हॉलंड पहुंच गयी। ऐसा माना जाता है कि इसीसे आधुनिक भौतिकी का आरंभ हुआ।

गैलिलिओ भौतिकशास्त्र में प्रयोग करने वाले प्रथम व्यक्ति थे। उनका इटली में पीसा की झुकती मीनार का प्रयोग विख्यात है। वैसे तो यह एक सामान्य ढंग का प्रयोग था, लेकिन विज्ञान के इतिहास में उसका अन्योन्य साधारण महत्व है। क्योंकि पहली बार मापन द्वारा वैज्ञानिक तथ्य विश्वसनीय ढंग से स्थापित किया गया। यह स्थापना अरिस्टॉटल की समझ के विरोधी थी।

प्रत्यक्ष मापन से उन्होंने इस मुक्त गिरने की मात्रा या प्रवेग की कीमत निश्चित की। (आगे उसमें कुछ सुधार हुआ)। द्रव्यमान को ध्यान में न लेते हुए सभी पिंडों में समान त्वरण उत्पन्न करने वाला एक बल है। त्वरण को g_0 से दर्शाते हैं और इसकी कीमत ९.८ मीटर / से. / से. है।

महाविस्फोट सिद्धान्त (Big Bang Theory)

यह ब्रह्माण्ड क्या है ? यह कहाँ से आया ? हम यह भी नहीं जान सकते कि ब्रह्माण्ड का समस्त द्रव्य कहाँ से आया, कैसे आया ? आदि-आदि सवाल तो प्रत्येक मनुष्य के मन में उठते ही हैं। पहले इसका सीधा सा उत्तर दिया जाता था और सारा दायित्व ईश्वर पर डाल दिया जाता था और मनुष्य मत्थापच्ची से मुक्ति पा लेता था। लेकिन सभी मनुष्य इतने से संतुष्ट कहाँ होते हैं ? धीरे-धीरे प्रकृति के निरीक्षण के फलस्वरूप विज्ञान का उदय हुआ। लेकिन वैज्ञानिक ऐसे दार्शनिक प्रश्नों में नहीं उलझते जिनका आज तक न कोई उत्तर मिला, न आगे मिलने की संभावना है। वे अस्तित्व का स्वरूप जानने की चेष्टा करते हैं ताकि बौद्धिक उत्सुकता को शांत किया जा सके और उसका उपयोग मनुष्य की भलाई के लिए किया जा सके।

- वर्ष १९२७ में बेल्जियम कैथॉलिक धर्मगुरु, खगोलशास्त्री और भौतिकशास्त्र के प्राध्यापक जॉर्ज लेमैत्रे ने यह सिद्धान्त रखा कि विश्व विस्तार पा रहा है। अलेक्ज़ांडर फ़्रिडमैन का शोध भी यह बता रहा था कि विश्व प्रसरण पा रहा है।
- अगले दो सालों में ही अमेरिकी खगोलशास्त्री एडविन हबल ने विश्व का विस्तार हो रहा है इसके सबूत एकत्र किये। डॉपलर प्रभाव और ताम्रसृति इनके विषय में अन्यत्र विस्तार से चर्चा हो चुकी है। हबल के निष्कर्ष कि तारे हमसे दूर जा रहे हैं इसकी भी चर्चा हुई है। कन्या तारका समूह में एक तारका विश्व हमसे लगभग ७.८ करोड़ प्रकाशवर्ष दूर है। हबल ने कुल २४ दीर्घिकाओं में सेफीड तारों का निरीक्षण कर उसपर से उन तारों की हमसे दूरी निकाली। माउंट विल्सन में स्थापित २.५ मीटर दूरबीन से प्राप्त निरीक्षणों के आधार पर ये निष्कर्ष निकाले गये।
- अन्य अमेरिकी वैज्ञानिक व्हेस्टो स्लिफर ने लॉवेल वेधशाला के दूरबीन से विविध दीर्घिकाओं के वर्णपट लिए थे। उन्हें, इनमें से अधिकांश दीर्घिकाओं के वर्णपटों की विविध रेखाएं लाल रंग की दिशा में सरकी हुई मिलीं। यह विस्थापन जितना अधिक उतनी उन दीर्घिकाओं की दूर जाने की गति अधिक। इस विस्थापन से स्लिफर ने इन दीर्घिकाओं के गति का गणित रचाया। हबल ने स्वयं निकाले इन दीर्घिकाओं के अंतर और स्लिफर ने निकाले उनके वेग इनसे यह परिणाम मिला कि इन दीर्घिकाओं की हमसे जितनी दूरी अधिक उतनी ही उनकी हमसे दूर जाने की गति भी अधिक। अर्थात् ब्रह्मांड का विस्तार हो

रहा है। इसी दरम्यान जॉर्जस लेमाइटर इस बेल्जियम वैज्ञानिक ने भी यही खोज करने के कारण विश्व विस्तार के इस नियम को ' हबल-लेमाइटर नियम कहते हैं।

- इस सिद्धान्त का एक लाभ यह हुआ कि सुदूर भूतकाल में क्या हुआ होगा इसकी खोज शुरू हुई। यही है बिग बैंग सिद्धान्त। इसके अनुसार हम काल के संदर्भ में जैसे-जैसे पीछे जाएंगे तो ब्रह्माण्ड का आकार क्रमशः छोटा होता जाएगा। घनता और तापमान बढ़ता जाएगा, इसकी हम कल्पना करने लगे। आज का विस्तारित होने वाला विश्व १३.८ अरब साल पहले अनंत घनत्व और उष्णता वाला और एक ही बिंदु में केंद्रित हुआ, छोटा विश्व था। यह वास्तव में विश्व शुरू होने के पहले की अवस्था थी। इसे Singularity कहते हैं। उस समय काल और अवकाश इनका भी अस्तित्व नहीं था। फिर एक महाविस्फोट हुआ और विश्व विस्तारित होना शुरू हुआ। तापमान भी कम होने लगा। क्रमशः प्राथमिक कण पैदा होते गए और आज का विश्व अस्तित्व में आया।
- ब्रह्माण्ड की असीमित रूप से तप्त प्रारंभिक अवस्था की यह तस्वीर सर्वप्रथम प्रसिद्ध वैज्ञानिक जॉर्ज गॅमो (George Gomow) द्वारा अपने विद्यार्थी रॉल्फ एल्फर (Ralph Alpher) के सहयोग से सन् १९४८ में प्रसिद्ध किए गये एक शोधपत्र में प्रस्तुत की गयी थी। इस शोधपत्र में उन्होंने यह विलक्षण पूर्वानुमान भी प्रस्तुत किया कि ब्रह्माण्ड उत्पत्ति के अत्यंत प्रारंभिक पलों में विकिरण की प्रधानता थी। उस विकिरण का अवशेष फोटॉनों के रूप में आज भी सभी दिशाओं में व्याप्त होना चाहिए। परंतु इसका तापमान घटकर परम शून्य (-273 डिग्री सेल्सियस) से बिल्कुल ही मामूली ऊपर होना चाहिए। यही वह विकिरण था जिसे पेंजियास और विल्सन ने १९६५ में खोजा था।
- महाविस्फोट सिद्धान्त के अनुसार ही विस्फोट के बाद की शुरू की समयावधि में ब्रह्माण्ड की घनता में विकिरण का हिस्सा बहुत अधिक था। लेकिन आगे ब्रह्माण्ड का तापमान कम होता रहा। विकिरणप्रभुत्व वाले काल से पदार्थ प्रभुत्व वाले काल में संक्रमण हुआ। ब्रह्माण्ड का विस्तार होता गया। इस प्रसरण के दरम्यान विकिरण की घनता पदार्थ की घनता की तुलना में तेजी से घटती गयी। फोटॉन्स की सांद्रता (Concentration) और पदार्थ के कणों की सांद्रता एक ही दर से कम हुई लेकिन तापमान कम होने के कारण फोटॉन गॅस की औसत ऊर्जा काफी कम हुई। विकिरण प्रभुत्व वाला युग और पदार्थ वाला युग इनके मध्य बिंदु पर ब्रह्माण्ड की घनता लगभग 3×10^{-22} ग्रॅम्स / घन से.मी. होनी चाहिए। संयुक्तीकरण के पूर्व विकिरण और आयनी स्वरूप पदार्थ इनमें विद्युत चुंबकीय

अन्योन्यक्रिया होती रही तब वे तापीयगतिक संतुलन अवस्था में थे। तब तटस्थ परमाणुओं का निर्माण हुआ तो यह अन्योन्यक्रिया और सन्तुलन संभव नहीं रहा। ब्रह्माण्ड प्रसरण के दरम्यान पदार्थ, विकिरण की तुलना में तेजी से ठंडा हुआ। वे फोटॉन्स जो पदार्थ के कणिकाओं के साथ तापगतिक संतुलन (Thermodynamic Equilibrium) में थे वे आज तक बने रहने चाहिए, ब्रह्माण्ड की आदि स्थिति के अवशेष के रूप में। संयुक्तीकरण के उपरांत जो फोटॉन्स बचे वे अवशिष्ट विकिरण के रूप में, ठंडे स्वरूप में ब्रह्माण्ड में फैल गये। ऐसे अवशिष्ट विकिरण मिलने की संभावना १९६४ में ए.डी.डोरोशकेव्हिच और आय.डी.नोव्हिकोव्ह इन्होंने व्यक्त की थी। १९६५ में इन्हें ढूँढ निकाला गया। इसकी खोज बताती है कि संपूर्ण ब्रह्माण्ड मिलीमीटर परास (रेंज) के रेडिओ विकिरण से परिपूर्ण है। इसका तापमान लगभग 3^0 केल्विन है। I.S.Shklovsky ने इसे ' अवशिष्ट विकिरण' (Relict Radiation) यह नाम दिया।

लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि इस विकिरण में इतनी समदैशिकता है कि उसपर ब्रह्माण्ड की महत्वपूर्ण घटनाओं की कोई छाप नहीं मिलती। इसलिए कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि यह या तो किसी महामंदाकिनी का तापीय परिप्रेक्ष्य होना चाहिए या सुदूर अतीत में किन्हीं अलग-थलग अंतरिक्ष पिंडों का विकिरण था जो बाद में पूरे अंतरिक्ष में फैल गया। अगर यह बात सिद्ध हुई तो महाविस्फोट सिद्धान्त के आगे बड़ा प्रश्नचिन्ह अंकित हो जाएगा।

- ब्रह्माण्ड के द्रव्यमान में विकिरण का हिस्सा बहुत ही अल्प है। अभी ब्रह्माण्ड में विकिरण घनता 3×10^{-34} gms /cm³ ली जाती है। यह, ब्रह्माण्ड में महामंदाकिनियों की औसत घनत्व का हजारवां हिस्सा है। (विकिरण के फोटॉन्स का स्थिरावस्था वस्तुमान भले ही शून्य हो लेकिन $E=mc^2$ के आधार पर यह हिसाब लगाया गया है। लेकिन यह जितनी ऊर्जा धारण करता है वह ब्रह्माण्ड के सारे तारों ने उनके जीवन के दरम्यान उत्सर्जित किए हुए प्रकाश की कुल ऊर्जा से अधिक है। अनुमान के अनुसार ब्रह्माण्ड के हर घन से.मी. में औसतन, विकिरण के ५०० क्वांटा होने चाहिए। फोटॉन्स की कुल संख्या, कणों की कुल संख्या से बहुत-बहुत अधिक है।
- आज उपलब्ध डाटा के आधार पर यह निश्चित किया गया है कि अंतरिक्ष में द्रव्य की औसत घनता 3×10^{-31} gms /cm³ या हैड्रोजन परमाणु के परिमाण में एक परमाणु प्रति 30 घनमीटर है।

- **ब्रह्माण्ड का तापमान -**

तापमान यह पदार्थ कणों की औसत ऊर्जा या गति का माप है।

बीते १३.७७ अरब वर्षों के इतिहास में ब्रह्माण्ड कितना ठंडा हुआ है ? आस्ट्रेलिया, स्वीडन, फ्रांस, जर्मनी जैसे देशों के वैज्ञानिकों के अंतर्राष्ट्रीय दल ने, ७.२ अरब प्रकाश वर्ष दूरी पर स्थित एक अनाम आकाशगंगा में स्थित गैसों के तापमान के अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि वहां का तापमान -२६७.९२ डिग्री सेल्सियस है।

आज ब्रह्माण्ड का तापमान -२७०.२७ सेंटीग्रेड होने का अनुमान है।

अंतरिक्ष में वायु और धूल का एक बादल देखा गया है। यह एक मृतप्राय तारे से बना है । इसे नाम दिया गया है ' बूमरँग नेब्युला ' इसके तापमान के विषय में गणना की गयी है -272⁰ सेल्सियस। यह अब तक ज्ञात, ब्रह्माण्ड का सबसे ठंडा स्थान समझा जाता है।

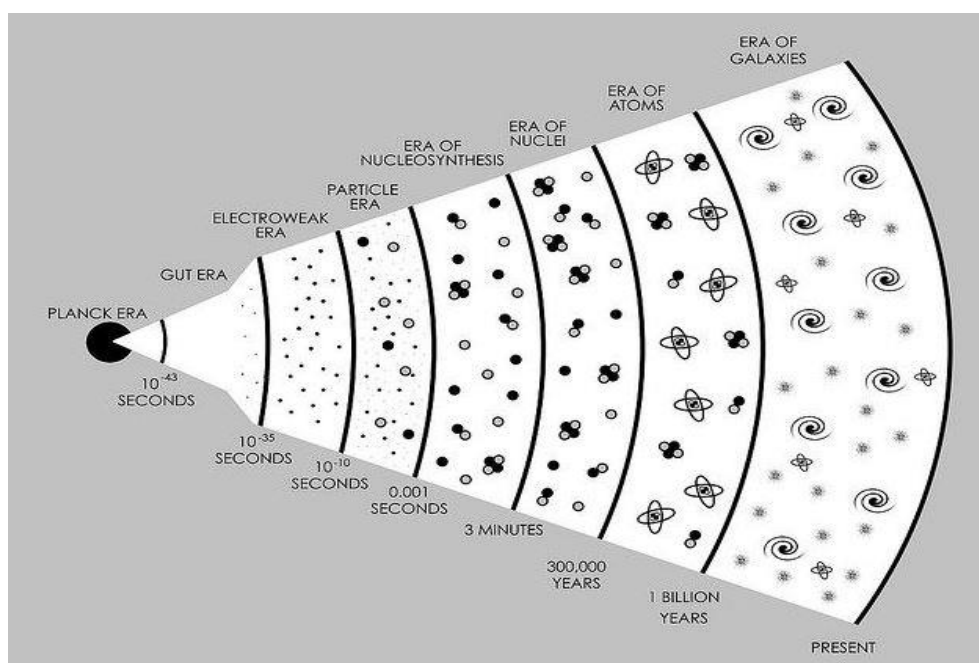
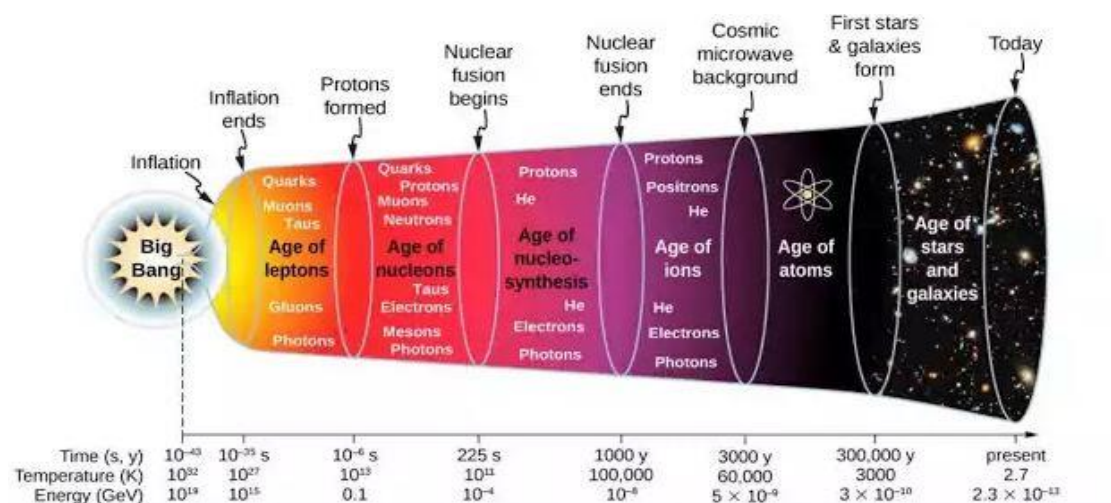
- आज वैसे तो महाविस्फोट सिद्धान्त बहुस्विकृत है लेकिन इसकी अपनी समस्याएं हैं। इस सिद्धान्त द्वारा गणना के उपरांत ब्रह्माण्ड की आयु ८-१२ अरब वर्ष आती है। लेकिन यह काफी कम है क्योंकि हमारी आकाशगंगा की आयु ही यह सीमा लांघ सकती है। पिता की आयु बेटी से कम कैसे हो सकती है ?

दूसरी बात यानि पूरा ब्रह्माण्ड एक बिंदु में समेटा होने की कल्पना भी न केवल ग्रहण करने में कठिन है बल्कि गणितीय दृष्टि से उसे परिमाणात्मक रूप देना भी असंभव है। गणितज्ञ ऐसी घटनाओं को, जहाँ उनकी गणितीय प्रक्रियाएं असफल होती हैं या टूट जाती हैं (Broke Down), एकास्थित्व (Singularity) कहते हैं।

कई लोग इस विचार को पसंद नहीं करते कि काल की उत्पत्ति महाविस्फोट के साथ हुई। शायद इसलिए कि इसमें दैवी हस्तक्षेप का अंश छुपा है। लेकिन दूसरी ओर कॅथोलिक चर्च ने महाविस्फोट मॉडल को तुरंत स्वीकार कर लिया तथा १९५१ में अधिकारिक रूप से उसे बाइबल के अनुरूप घोषित कर दिया।

ब्रह्माण्ड में प्रथम किरण की झलक -

महाविस्फोट के बाद, ठंड और अंधेरा ही था। अब वैज्ञानिकों ने दावा किया है कि ब्रह्माण्डीय अंधेरे में, १३.६ अरब साल पहले उदय हुई पहली किरण की झलक उन्होंने देखी है , जब सबसे पहले बने तारों ने प्रकाश बिखेरना शुरू किया था। यह बात महाविस्फोट के १८ करोड़ साल बाद की होनी चाहिए (Gulf News:२ /३ /२०१८)।



(प्रतिमाएं गूगल सौजन्य से)

महा विस्फोट)

महा विस्फोट सिद्धान्त की रूपरेखा मोटे तौर पर हमने देखी। और विस्तार से कुछ बातों की चर्चा करेंगे।

- वर्ष १९२७ के दरम्यान ब्रह्माण्ड के विषय में जानकारी या उन्हें कल्पनाएं कहना अधिक उचित होगा, इस प्रकार थीं -
 - १) ब्रह्माण्ड की जानकारी का दायरा हमारी आकाशगंगा इतना ही था।
 - २) ब्रह्माण्ड यह स्थिर है। उसमें किसी तरह का बदलाव नहीं होता। ब्रह्माण्ड का आरंभ यह कल्पना ही धर्म विरोधी और पापपूर्ण थी।
- लेकिन फिर फ्रिडमैन ने स्थिर ब्रह्माण्ड की कल्पना को नकारा।
- १९२७ में जॉर्जस लेमाइट्री (Georges Lemaitre) ने गणित के आधार पर प्रस्तुत किया कि ब्रह्माण्ड न केवल अस्थिर है बल्कि उसका आरंभ भी होना चाहिए। लेमाइट्री बेल्जियम भौतिकशास्त्री, खगोलशास्त्री, गणितज्ञ तथा कैथोलिक धर्मगुरु भी थे। उनके अनुसार शुरू में ब्रह्माण्ड का आकार बहुत छोटा होगा। उन्होंने उसे ' उर अँटम ' (Ur-atom) नाम दिया। हम उसे ' ब्रह्माण्डीय अण्डा ' कह सकते हैं। लेकिन आइन्स्टाइन सहित पूरे वैज्ञानिक जगत ने उनके प्रस्तुति को गंभीरता से नहीं लिया।
- एडविन हबल : वे मूलतः एक वकील थे। पहले, अंतरिक्ष में स्थित अँड्रोमिडा पुंज को एक नेब्युला या बादल युक्त एक अंतरिक्षीय वस्तु समझा जाता था। हबल ने खोज की, वह नेब्युला नहीं तो हमारी आकाशगंगा जैसी ही एक स्वतंत्र आकाशगंगा है। उन्होंने अन्य कई मंदाकिनियां खोज निकालीं। उनकी सबसे महत्वपूर्ण प्रस्तुति है, " ब्रह्माण्ड विस्तारित हो रहा है। "
- फ्राइड होईल- : इन्होंने ही इस सिद्धान्त को यह संबोधन १९४९ में व्यंग्यात्मक दृष्टि से दिया था। लेकिन वही नाम आगे चल निकला। वैसे तो होईल ने इस सिद्धान्त को मान्य नहीं किया था।
- यह सिद्धान्त जॉर्ज गॅमोव्ह, राल्फ आल्फेर और रॉबर्ट हर्मन इन्होंने १९४८ में रखा था। इसके अनुसार अगर ब्रह्माण्ड शुरू में ' उर अणु ' में अंतर्भूत था तो उसका विस्तार शुरू होने के बाद कुछ समय तक उसका घनत्व और तापमान बहुत अधिक होना चाहिए। अर्थात् उसका रूप प्लाज्मा का ही होना चाहिए।

जिसे हम विस्फोट कहते हैं उसका निश्चित स्वरूप क्या था, हमें नहीं मालूम हो सकता है वह केवल तत्क्षण विस्तार ही हो। समय का प्रवाह शुरू हुआ। अंतराल का विस्तार होने लगा। शुरू में तो केवल ऊर्जा ही थी।

प्लाज्मा अपारदर्शी होता है। हम उससे होते हुए पार का कुछ नहीं देख सकते। जब ब्रह्माण्ड ठंडा हुआ और अणु-परमाणु बनने लगे तब वह पारदर्शी बना। जब ऐसा हुआ तब की सतह को, “अंतिम बिखराव की सतह” (Surface of the last scattering) कहते हैं। इस सतह से ब्रह्माण्ड में चारों ओर चल निकला ऊष्मा का स्वरूप कृष्ण पिंड विकिरण जैसा होगा। यह फैला विकिरण और प्रकाश अभी भी ब्रह्माण्ड में होना चाहिए और हम तक पहुँचते-पहुँचते ताम्र-श्रुति होकर वह मायक्रोवेव तरंग लंबाई के क्षेत्र में मिलना चाहिए। उसका तापमान 2.7°K के स्तर का होना चाहिए। आरनो पेनझिआस और रॉबर्ट उडरो विल्सन ने इस विकिरण को 1964 में ढूँढ निकाला। इसे महाविस्फोट का पुख्ता सबूत माना जाता है।

लेकिन फिर सवाल सामने आया कि गुरुत्वाकर्षण के कारण इस विस्तार की गति कम होनी चाहिए ताकि ब्रह्माण्ड अपने ही गुरुत्व के कारण अपने केंद्र की दिशा में ढहता जाए और एक क्षण ‘Big Crunch’ की अवस्था को पहुँच जाए। लेकिन साउल पर्लमट्टर, ऐडम रिएस और ब्रियान पी. स्मिथ के अनुसार ऐसा दिखता है कि पिछले चार अरब सालों से इस अपेक्षा के विपरीत कि ब्रह्माण्ड विस्तार की गति कम होती रहनी चाहिए, बढ़ती जा रही है। इसके लिए उन्हें २०११ का नोबेल पुरस्कार भी मिला। ऐसा क्यों है, हम नहीं जानते। केवल, जिस कारण से यह हो रहा है, उसे ‘डार्क एनर्जी’ नाम दिया गया है।

आज ब्रह्माण्ड विषयक अत्याधुनिक जो उपलब्ध जानकारी है, वह इस प्रकार है -

- ब्रह्माण्ड का आरंभ 13.69 ± 0.021 अरब साल पहले हुआ था।
- इस उत्पत्ति के बहुत ही शुरू के क्षणों (10^{-36} - 10^{-32} सेकंड) के दरम्यान ब्रह्माण्ड का बहुत ही तेजी से विस्तार या फुलाव हुआ (Cosmic Inflation)। इस विस्तार की गति प्रकाश गति से भी अधिक होनी चाहिए। इसकी कारण मीमांसा करने वाले कई सिद्धान्त सामने आये।

- आज ब्रह्माण्ड का विस्तार हो रहा है और विस्तार की गति लगातार बढ़ रही है। गणितीय मापन के आधार पर विस्तार की गति है - 63.3 ± 2.4 कि.मी. / सेकंड, मेगा पार्सेक दूरी पर (13.3 प्रकाशवर्ष दूरी) ।

कुछ और अनुमान -

- १) जब ब्रह्माण्ड की आयु सेकंड का दस लाखवाँ हिस्सा थी तब आकार ६ करोड़ मील था। सेकंड के बाद विस्तार २० लाख प्रकाशवर्ष हुआ। ३,८०,००० वर्ष बाद १० करोड़ प्रकाशवर्ष तो २० करोड़ साल बाद व्यास ६० अरब प्रकाशवर्ष।
आज यह विस्तार ९३ अरब प्रकाशवर्ष माना जाता है।
- २) ब्रह्माण्ड में कणों की संख्या 10^{90} अनुमानित है।

ऐसा अनुमान है कि मंडाकिनियों के बीच की अंतरिक्ष की गहराइयों में औसत, हैड्रोजन के 0.25 परमाणु प्रति घनमीटर हैं। अगर तुलना करनी हो तो, मनुष्य द्वारा पृथ्वी पर निर्मित सर्वाधिक निर्वात में प्रति घनमीटर लगभग एक अरब परमाणु होते हैं।

जब हम अंतरिक्ष के निर्वात की बात करते हैं तो वहां के अधिकतर कणों की गत्यात्मक ऊर्जा, कण की स्थिर द्रव्यमान ऊर्जा की तुलना में बहुत-बहुत कम होती है। वहाँ अर्थात् क्षीण ऊर्जा वातावरण होता है। परिणामतः वहाँ कणों की गतिविधि बहुत कम होती है। वहाँ स्थिर द्रव्यमान ऊर्जा का प्रभुत्व रहता है। अगर कणों में गत्यात्मक ऊर्जा, स्थिर द्रव्यमान ऊर्जा से बहुत अधिक होगी तो गतिविधियों की गति बहुत अधिक होती है।

- ३) २० करोड़ वर्षों बाद तारे बनना शुरू हुए। इससे पहले के युग को Dark Age कहते हैं।
- अगर यह सब वास्तव है तो प्रश्न उभरता है कि अगर शुरू में केवल ऊर्जा ही थी और उसीसे बाद में मूलभूत कण बने तो ऐसी स्थिति में कण-प्रतिकण की जोड़ी बनती है। लेकिन आज हम ब्रह्माण्ड में केवल Matter देखते हैं। फिर Antimatter कहाँ गया ? प्रो.स्पेहर्जेल- प्रिन्सटोन यूनिवर्सिटी -इन्हें महाविस्फोट के विशेषज्ञ माना जाता है। उनके अनुसार -

कण-प्रतिकणों की निर्मिति में, प्रति १०० मिलियन प्रति कणों की तुलना में १००+१ कण उत्पन्न हुए । इस मामूली असंतुलन से ही आज का ब्रह्माण्ड अस्तित्व में है।

डर्बन युनिवर्सिटी के प्रो. कार्लोस फ्रेन्क के अनुसार CERN प्रयोगशाला में वही स्थितियाँ पैदा करने की कोशिश की जा रही है जो महाविस्फोट के समय थीं।

महाविस्फोट की आयु

इसे निश्चित करने की कई पद्धतियाँ हैं—

- १) सबसे प्रसिद्ध पद्धति है 'कॉस्मिक मायक्रोवेव पार्श्व' का अध्ययन।
- २) ब्रह्माण्ड विस्तार की गति के आधार पर पीछे-पीछे जाकर।
- ३) सबसे पुराने तथा सबसे दूर के पिंडों और वायुपुंजों को ढूँढकर और उनकी आयु निश्चित करके। भले ही, ब्रह्माण्ड में कितनी भी उथल-पुथल होती रहे, लेकिन द्रव्य के अविनाशी होने के तत्व के अनुसार, वह नष्ट नहीं होता, बना रहता है। ब्रह्माण्ड के सारे पिंड इन वायुपुंजों से ही बने हैं।

इन सभी पद्धतियों के आधार पर ब्रह्माण्ड की आयु समान मिलती है, जो १३.७७ अरब वर्ष आती है।

कॉस्मिक स्फिति या फुलाव (Cosmic Inflation)

महा विस्फोट के बाद ब्रह्मांड का जो फैलाव शुरू हुआ उसे हम कॉस्मिक स्फिति के नाम से जानते हैं। यह तब शुरू हुआ जब विस्फोट को 10^{-36} सेकंड हुए थे और जब समाप्त हुआ तब 10^{-32} सेकंड हुए थे। इतने छोटे समय में ब्रह्मांड 10^{26} गुना विस्तृत हुआ। इस सिद्धांत के अनुसार, इस दरम्यान ब्रह्मांड विस्तृत होने की गति प्रकाशगति से भी कई गुना अधिक होनी चाहिए। लेकिन किसी भी वस्तु की गति प्रकाश गति से अधिक नहीं हो सकती। लेकिन ऐसा लगता है यह मर्यादा स्वयं अंतराल के विस्तार को लागू नहीं।

हम निश्चित तौर पर तो नहीं बता सकते, यह किस कारण हुआ। लेकिन कई सिद्धांत प्रस्तुत किये गए हैं। सर्वप्रथम सिद्धांत ऐलन गुथ ने १९७९ में प्रस्तुत किया था। यह वैज्ञानिक जगत् में सर्वमान्य सिद्धान्त भी है। इसे आगे विकसित करने में कई वैज्ञानिकों का योगदान है। लगभग १५ से अधिक सिद्धान्त प्रस्तुत हुए हैं। लेकिन निम्न तीन सबसे महत्वपूर्ण हैं -

- १) एंड्रैई लिंडे (Andrei Linde) : Chaotic Inflation Theory
- २) पॉल स्टेइनहार्थ (Paul Steinhardt) : Internal Inflation

३) अलेक्झांडर व्हिलेन्किन (Alexander Vilenkin)

ये सिद्धान्त कई बातों की कारण मीमांसा करते हैं लेकिन उन्हें प्रत्यक्ष सिद्ध करना संभव नहीं।

आम भाषा में इसके पीछे की कल्पना संक्षेप में इस प्रकार है -

सभी पदार्थ हमेशा स्थिर होने की कोशिश करते हैं। कोई वस्तु या प्रणाली तभी स्थिर हो सकती है जब उसके पास कम से कम ऊर्जा बचे। यह बात क्वांटम स्तर पर भी लागू होती है। इसे Vaccum State कहते हैं। लेकिन किसी कारणवश अगर कोई वस्तु या प्रणाली इस अवस्था में पहुँचने से वंचित रही तो उस अवस्था को Meta State कहते हैं। ऐसी स्थिति में Higg's Field जैसे क्षेत्र में काफी ऊर्जा सिमटी हुई रहती है। ऐसी स्थिति को False Vacuum कहते हैं। ऐसी स्थिति में गुरुत्वाकर्षण बल, आकर्षण बल होने के स्थान पर विकर्षण बल हो जाता है, जो अंतराल को मजबूर करता है फैलने के लिए।

हम इससे अधिक गहराई में नहीं जाएंगे।

ब्रह्माण्डीय मायक्रोवेव पार्श्व (Cosmic microwave background)

महाविस्फोट के बाद ३,८०,००० वर्षों तक, अति उच्च तापमान के कारण जो भी पदार्थ था वह प्लाज्मा की अवस्था में था। अर्थात् इलेक्ट्रॉन्स और अन्य मूलभूत कण बेतरतीब ढंग से, अति तेज गति से इधर-उधर गति कर रहे थे। इस कारण प्लाज्मा अपारदर्शी था। अर्थात् इस अवरोध के पार नहीं देख सकते। उपरोक्त समय बीत जाने के बाद ब्रह्माण्ड का तापमान लगभग ३००० केल्विन इतना कम हुआ। अब हैड्रोजन अणुओं का बनना शुरू हुआ और ब्रह्माण्ड पारदर्शी होने लगा।

उपरोक्त दरम्यान का यह प्रकाश मूलतः अधिक आवृत्ति वाला अर्थात् अधिक ऊर्जायुक्त विकिरण ही था। लेकिन इस तापमान पर क्ष किरणों या गॅमा किरणों का अस्तित्व संभव नहीं था। यह विकिरण दृश्य प्रकाश के साथ-साथ अधिकतर इन्फ्रारेड स्वरूप का था।

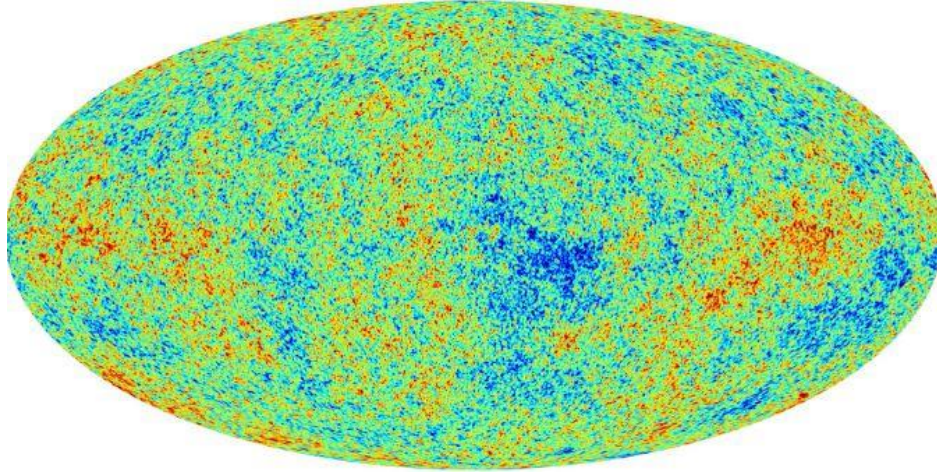
लेकिन तब से लेकर तो आज तक ब्रह्माण्ड विस्तारित होता रहा है। प्रकाश गति स्थिर है। इस विस्तार के साथ फोटॉन भी फैलते रहे। इस कारण उनकी ऊर्जा में कमी होती रही। उनकी तरंग लम्बाई बढ़ती रही। आज हम तक पहुँचते-पहुँचते वह रेडियो या मायक्रोवेव तरंगलम्बाई की

अवस्था में पहुंच गया है। उसकी तरंग लम्बाई मूल तरंग लम्बाई से १००० गुना खींची गयी या बढ़ गयी या उसमें इतने गुना ताम्रसृति हुई। आज लगभग 2mm तरंगलम्बाई वाला यह विकिरण है। लेकिन प्रकाश लुप्त नहीं हुआ है। यह विकिरण ब्रह्माण्ड के चारों ओर के सभी बिंदुओं से आ रहा है। उसका स्वरूप पार्श्वीय बहुत हल्की चमक (Glow) के तौर पर है। यह हमें ज्ञात सबसे पुराना प्रकाश है। यह अभी भी हम तक पहुंच रहा है, भले ही वह पृष्ठभाग जिससे यह प्रसृत हुआ था, आज हमसे ९२ अरब प्रकाशवर्ष दूर है।

वह सभी दिशाओं में उपस्थित निम्न स्तरीय विकिरण है। यह ब्रह्माण्ड में विद्यमान सबसे पुरानी रोशनी है जो हमें उस समय के ब्रह्माण्ड के विषय में काफी कुछ बता सकती है। इस मायक्रोवेव पार्श्व विकिरण का तापमान 2.726° केल्विन है। अर्थात् बहुत कुछ तापीय संतुलन की अवस्था में है। इस विकिरण की मिलने वाली तरंग लम्बाई के आधार पर जेम्स पीबल और उनके तीन सहयोगियों ने इसका उपरोक्त तापमान निकाला। ब्रह्माण्ड का शुरू का तापमान 10 अरब डिग्री सें. होना चाहिए। 2019 में जेम्स पीबल, दिदिएर क्वेलोझ और मिशेल मेयर को नोबेल पुरस्कार दिया गया।

अंतरिक्ष में ऐसे प्रदेश हैं, जहाँ कोई भी आकाशगंगा, तारा या प्रकाश उत्सर्जित कर सकेगी ऐसी कोई भी आकाशीय वस्तु नहीं है। ऐसे प्रदेश का किसी भी और कितने भी बड़े दूरदर्शक से प्रेक्षण करने पर वैसे तो पूरा हिस्सा काला दिखता है। लेकिन ऐसे हिस्से में भी क्षीण विद्युत चुंबकीय प्रारण के अस्तित्व का पता 1964 में चला था। यह रेडिओ दूरदर्शक के माध्यम से ही संभव हुआ।

इसका एक नक्शा बनाया गया है। इसे बनाने में आठ साल की मेहनत लगी। इसे ध्यान से देखने से बहुत मामूली हल्की रंगों की बिंदियां दिखाई देंगी। ये ब्रह्माण्डीय स्फिति के पूर्व क्वांटम आंदोलनों के कारण पैदा हुईं और बाद में स्थायी हो गईं। नीले रंग के पैच ठंडे हैं जो अपने इर्द-गिर्द से औसतन 0.०१५ मिली केल्विन कम तापमान के हैं। तो सूक्ष्म लाल रंग के इतनी ही मात्रा से गर्म हैं। ब्रह्माण्ड इतना सम क्यों है ? और ऊपर बताए गए मामूली फर्क का निश्चित अर्थ क्या है ? इसपर वैज्ञानिक माथापच्ची कर रहे हैं।



(गूगल सौजन्य से)

सीटर का विश्व निर्मिती का चित्र

विल्यम डी. सीटर इस वैज्ञानिक ने विश्व निर्मिति का इस तरह का चित्र प्रस्तुत किया है -

- महाविस्फोट से लेकर तो 10^{-43} सेकंड तक के काल को ' प्लैंक काल ' कहा जाता है। इस दरम्यान एक ही महाबल था। विश्व का आकार 10^{-33} सें.मी. इतना था। इस आकार को ' प्लैंक लम्बाई ' कहा जाता है। इस दरम्यान न पुंज सिद्धान्त का न सापेक्षता सिद्धान्त का प्रभाव था। अत्याधुनिक डाटा के अनुसार इनकी कीमतें हैं -
प्लैंक लम्बाई - 1.616229×10^{-35} मीटर।
लम्बाई के इस सूक्ष्म माप को पार करने, लगनेवाला समय-प्लैंक काल - 9.39116×10^{-44} सेकंड।
इस दरम्यान अनुमानित घनता $-10^{90} \text{ Kg / cm}^3$ और तापमान 10^{32} डिग्री केल्विन। इसी दरम्यान अति सूक्ष्म कृष्ण विवर अस्तित्व में आने चाहिए। उनका आज भी अस्तित्व होना चाहिए। लेकिन अभी तक ऐसा कोई विवर मनुष्य के नजरों में नहीं आया।
- $10^{-36} - 10^{-34}$ से. दरम्यान विद्युत चुंबकीय बल, तीव्र और क्षीण नाभिकीय बल एकत्र थे। इस समय को Grand Unification Theory Period कहते हैं। इसी दरम्यान गुरुत्वाकर्षण बल अन्य बलों से अलग हुआ
- तिसरा टप्पा : 10^{-34} सेकंड से 3 मिनट तक। इस दरम्यान तीव्र बल, अन्य दो बलों से अलग हुआ। इस दरम्यान विश्व यह क्वाक्स, ग्लुऑन, लेप्टॉन कणों का प्लाज्मा था।

इसी दरम्यान मोनोपोल अस्तित्व में आने चाहिए। लेकिन अभी तक वैज्ञानिकों को कहीं भी उनके दर्शन नहीं हुए।

- साधारण तौर पर 3 मिनट से लेकर तो 3 लाख अस्सी हजार वर्षों की कालावधि में अणुकेन्द्रों की निर्मिती हुई। विश्व का तापमान कम हुआ। 75% हैड्रोजन, 25% हिलियम निर्मिति का यह युग है।
- पांचवां टप्पा : 3 लाख 80 हजार वर्षों से लेकर तो 100 करोड़ साल यह अणुओं की निर्मिति का समय है।
- छठा टप्पा : तारों और दीर्घिकाओं की निर्मिति का समय है। कार्बन, ऑक्सीजन, नैट्रोजन की उत्पत्ति। यह काल 650 करोड़ वर्षों तक आता है। हबल आकाशीय दूरदर्शी, आमतौर पर इस काल तक का प्रकाश देख सकती है।
- सातवाँ टप्पा : इसके बाद विश्व घटकों में होने वाले गुरुत्वीय बल के विरुद्ध विश्व के प्रसरण में त्वरण आरंभ हुआ।
- आठवां टप्पा : महाविस्फोट के सात अरब वर्षों बाद से लेकर तो आज तक का काल।

ब्रह्माण्ड स्वरूप के सिद्धान्तों के विषय में पुनश्च

महाविस्फोट सिद्धान्त में जो खामियाँ थीं, उसे दूर करने के लिए ब्रह्माण्ड स्थिति सिद्धान्त भी प्रस्तुत हुआ था। लेकिन इसकी प्रमुख त्रुटि यह थी कि वह इसका उत्तर नहीं दे सकता था कि वैश्विक स्थिति क्यों उत्पन्न हुई और महाविस्फोट के लिए कारण क्या था। दूसरी ओर १९४८ में थॉमस गोल्ड और हर्मन बॉडी ने स्थिर स्थिति सिद्धान्त प्रस्तुत किया। बाद में फ्रेड हॉईल ने उसमें सुधार किया। फिर १९९३ में हॉईल, जेफ्री बर्बिज और जयंत नारळीकर इन्होंने 'स्थिरवत् स्थिति का विश्व' (Quasi Steady State) यह सुधारित सिद्धान्त रखा।

इस सिद्धान्त के अनुसार बड़े कालखंड में विश्व स्थिति भले ही स्थिर हो लेकिन तुलनात्मक छोटे कालखंड में उसमें दोलायमान परिवर्तन होता है। अंदाजन ४०-५० अरब वर्षों के कालखंड में इन परिवर्तनों का एक दोलन पूर्ण होता है। यह दोलन यानी एक बार प्रसरण होकर फिर आकुंचन होना। इसमें किसी भी समय ब्रह्माण्ड का आकार शून्य नहीं होता। इस प्रतिमान में, निर्मिति लगातार ओर समान होती है। वस्तु की निर्मिति प्लँक कणों में होती है। इसमें प्रकाश

की गति. प्लँक स्थिरांक और गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक ये तीन भौतिकशास्त्र के मूलभूत स्थिरांक जुड़े होते हैं। आगे इन प्लँक कणों का ह्रास होकर प्रोटॉन, न्यूट्रॉन कण बनते हैं।

महाउछाल सिद्धान्त -

पॉल स्टाईनहार्, एना इजास और अन्य कुछ वैज्ञानिकों ने महाउछाल सिद्धान्त विकसित कर महाविस्फोट सिद्धान्त को पर्यायी सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इस सिद्धान्त के संस्थापकों में अभय अष्टेकर भी है ।

इस सिद्धान्त का आधार पुंज-वलय-गुरुत्व सिद्धान्त है। अति घनता के स्थान पर (जैसे कृष्ण विवर के घटना क्षितीज के पार या विवर के अंदर या फिर महाविस्फोट विशेषावस्था में), पुंजवाद और सापेक्षतावाद असफल होते हैं। इन दोनों सिद्धान्तों को एकत्र लाने वाला है पुंज-वलय-गुरुत्व (Loop-Quantum-Gravity) सिद्धान्त है।

महाविस्फोट सिद्धान्त के अनुसार विशेषावस्था से विश्व की निर्मिति हुई और तबसे उसका निरंतर प्रसरण हो रहा है। पुंज स्तर पर अवकाश शांत न होने से वैश्विक स्फीति के समय ऊर्जा का वितरण सर्वत्र समान न होते हुए कुछ स्थानों पर एकत्रीकरण अधिक हुआ। परिणामतः वहाँ अवकाश-काल को अधिक वक्रता प्राप्त हुई और इस अतिरिक्त घनता के कारण विश्व के प्रसरण में अवरोध उत्पन्न हुआ और गुरुत्व बल के प्रभावांतर्गत आकुंचन शुरू होकर विश्व को महाविलय की अवस्था प्राप्त हो सकती है।

पुंजवाद (Quantum Theory) के अनुसार मूलकण ये कण और तरंग ऐसे द्वित्व का पालन करते हैं। अवकाश-काल को भी यह नियम लागू किया तो अवकाश-काल सलग न होकर कई सूक्ष्म पुंजों से बना हुआ होगा। उन्हें लूप या वलय कहा जा सकेगा। गुरुत्व क्षेत्र का सूक्ष्मतम हिस्सा यानि वलय जिसका आकार होगा 10^{-35} से.मी.। पुंजवाद के अनुसार इस स्तर पर अवकाश साबुन के फेन जैसा होता है और इस स्तर पर अगर गुरुत्व बल के कारण वस्तु की घनता अति प्रचंड हुई तो अवकाश-काल की रचना गुरुत्वीय बल के स्वरूप में बदल करवाती है और वही अपकर्षण बल में रूपान्तरित हो जाता है। एक विशिष्ट उच्चतम घनता पर अवकाश-काल के इस वलयाकार रचना के कारण गुरुत्व बल का ही रूपान्तर अपकर्षण बल में होता है। उस कारण आकुंचित होने वाले विश्व का उछलकर दोबारा प्रसरण होने लगता है।

व्यापक सापेक्षता सिद्धान्त के विरुद्ध यह प्रक्रिया है। व्यापक सापेक्षता सिद्धान्त में अवकाश-काल पुंजात्मक नहीं तो सलग है। लेकिन महाउछाल सिद्धान्त में वह वलय रूपी सूक्ष्म

कणों से बना है। इसके अनुसार इस तरह विश्व की महाविस्फोट और महाविलय, एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया या चक्र है।

वैश्विक स्फीति का सिद्धान्त यह महाविस्फोट सिद्धान्त के, विश्व में सर्वत्र समानता क्यों है और विश्व भौमितिक दृष्टि से सपाट क्यों है, इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए अवतरित हुआ था। लेकिन उसकी खामियों का ऊपर उल्लेख किया गया है। (वैश्विक स्फीति और महाविस्फोट का कारण नहीं दे सका)। महाउछाल सिद्धान्त के बाद वैश्विक स्फीति सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं रहती। चूंकि महाउछाल सिद्धान्त के अनुसार गुरुत्वाकर्षण बल ही अपकर्षण बल हो जाने से प्राकृतिक रूप से ही अपकर्षण के कारण, विश्व में स्फीति पैदा होती है।

लेकिन २०१७ में स्टिफन हॉकिन्स और कुछ वैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त के प्रति आक्षेप व्यक्त किया था। उनके अनुसार वैश्विक स्फीति सिद्धान्त कई बार वैज्ञानिक निरीक्षणों के आधार पर उत्तीर्ण हुआ है।

ब्रह्माण्ड की प्रतिकृतियाँ

महाविस्फोट सिद्धान्त के विरोध में स्थिर विश्व का सिद्धान्त भी है। मजे की बात यह कि स्थिर विश्व का जोरदार समर्थन करने वाले खगोल वैज्ञानिक फ्राइड हॉइल ने ही व्यंग्यात्मक लहजे में उपरोक्त सिद्धान्त को BIG Bang नाम दिया था, जो आगे वैसा ही चल पड़ा।

स्थायी दशा सिद्धान्त -

नाझी अधिग्रहित आस्ट्रिया से आए दो शरणार्थी भौतिकशास्त्री हरमन बॉडी, थॉमस गोल्ड, इन्होंने एक ब्रिटिश शोधकर्ता फ्राइड हॉइल के साथ वर्ष १९४८ में यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। हॉइल ने युद्ध के दौरान बॉडी और गोल्ड के साथ मिलकर राडार के विकास पर शोधकार्य किया था।

स्थिर अवस्था या शाश्वत ब्रह्माण्ड के अनुसार ब्रह्माण्ड अविनाशी, अजर, अमर और अजन्मा है। अरबों सालों से वह जैसा था, आज भी वैसा ही है। इस स्थिर ब्रह्माण्ड में आकाशगंगाएं भाग तो रही हैं मगर उनके दूर हटने से बीच का स्थान खाली नहीं होता। वहां नये द्रव्य का निर्माण होते रहता है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड में पदार्थ का घनत्व सदा कायम रहता है। अतः मोटे तौर पर यह प्रत्येक काल और अंतराल में प्रत्येक बिंदु से एकसमान दिखाई देगा। अर्थात् वह समरूप तथा समदैशिक है। यों ब्रह्माण्ड द्रव्य में हेरफेर की गुंजाइश नहीं है। आकाशगंगाएं जन्म लेगीं, उनका विकास होगा और कालानुसार वे विलीन भी होगीं। जब ब्रह्माण्ड

का आदि / अन्त ही नहीं है तो उसके उम्र का सवाल ही अप्रस्तुत है। (लेकिन अब यह स्थापित हो चुका है कि ब्रह्माण्ड का निरंतर विस्तार हो रहा है। आकाशगंगाएं हमसे दूर भाग रही हैं। दूर जाने वाली आकाशगंगाओं की जगह नयी आ जाती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि ब्रह्माण्ड में नये पदार्थ का सृजन हो रहा है।)

हॉइल और गोल्ड का कहना है कि हैड्रोजन परमाणु के रूप में बन रहा नया पदार्थ, आकाशगंगाओं को पीछे ढकेल रहा है। उनका कथन है कि अंतरिक्ष में पदार्थ निरंतर, मुक्त न्यूट्रॉन के रूप में, प्रकट होते रहता है। ये हैड्रोजन परमाणुओं में बदलते रहते हैं। इस प्रक्रिया में लगभग १०० करोड़ डिग्री से ऊपर तापमान पर ऊर्जा निःसारण होता है। ये तप्त हैड्रोजन परमाणु आकाशगंगाओं को गर्म गैस के सागर में डूबो देते हैं और उन्हें गति प्रदान करते हैं। भागती हुई आकाशगंगाएं पीछे शीत क्षेत्र छोड़ती जाती हैं। जिससे गर्म परमाणु उसी प्रकार संघनित होकर बादल बन जाता है जैसे ठंडी सतह पर जल-बाष्प संघनित हो जाता है। संघनित होकर गैस सिकुड़ने लगती है और तारों की एक नयी आकाशगंगा का सृजन आरंभ होता है।

लम्बी कालावधि का विचार किया तो वह स्थिर है। लेकिन छोटी-छोटी कालावधि का विचार करने पर ऐसा दिखता है कि उसके घटकों में बदल होता है।

लेकिन इससे इस सिद्धान्त का खंडन होता है कि पदार्थ या ऊर्जा न तो नष्ट होती है, न सृजित होती है। लेकिन बात यह है कि ब्रह्माण्ड में घटने वाली कई प्रक्रियाओं को हम नहीं जानते।

बाद में डॉ. नारलीकर, हॉइल और बर्बीज, इन्होंने मिलकर नया ' स्थिरवत विश्वस्थिति ' का सिद्धान्त रखा। उसके अनुसार लम्बे कालावधि का विचार करने पर, विश्व यह लगातार विस्तार पाते रहता है। लेकिन छोटी कालावधि का विचार करने पर, वह लगातार विस्तार-आकुंचन चक्र से गुजरता रहता है।

भारतीय वैज्ञानिक जयन्त नारलीकर जी का कथन है कि निरंतर सृजन को, सामान्य सापेक्षता के अंतर्गत, गणित की सहायता से भी स्पष्ट किया जा सकता है। (नवभारत टाइम्स ६-५-७८ स्थिर ब्रह्माण्ड कितना अस्थिर : निरंकार सिंह)

लेकिन इस सिद्धान्त को व्यापक समर्थन नहीं मिला।

- सन् १९१५ में जब आइन्स्टाइन ने सापेक्षता के सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तो वे भी स्थिर ब्रह्माण्ड की अवधारणा के प्रति इतने आश्वस्त थे कि उन्होंने अपने समीकरणों में एक तथाकथित ब्रह्माण्डीय स्थिरांक (Cosmological Constant) को

समाविष्ट करके अपने सिद्धान्त का ही संशोधन कर डाला। आइन्स्टाइन ने एक नये ' प्रतिगुरुत्वीय ' बल को प्रस्तुत किया जो दूसरे बलों की तरह किसी विशेष स्रोत से न होकर, दिक-काल के ढांचे में ही समाहित था। उन्होंने यह दावा किया कि दिक-काल में विस्तार की एक अंदरूनी प्रवृत्ति है और इसीसे ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थ के अस्तित्व को सही तरह से संतुलित कराया जा सकता है जिसका परिणाम एक स्थिर ब्रह्माण्ड के रूप में देखने को मिलता है।

रूसी भौतिकशास्त्री एवं गणितज्ञ अलेक्झांडर फ्रीडमेन -

ऐसा लगता है सिर्फ एक ही व्यक्ति था जो सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त के वास्तविक महत्व को स्वीकारने का इच्छुक था, जब आइन्स्टाइन से लेकर तो अन्य वैज्ञानिक, सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त के इस पूर्वानुमान को कि ब्रह्माण्ड अस्थिर है, से बचने के तरीके ढूंढ रहे थे। उसी समय फ्रीडमेन (१८८८-१९२५) उसकी विवेचना में जुट गये।

१९२२ में ही फ्रीडमेन ने यह पूर्वानुमान लगा लिया था और कहा था कि हमें अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि ब्रह्माण्ड स्थिर है।

ब्रह्माण्ड प्रत्येक दिशा में एक समान दिखाई देता है यह यथार्थ में सत्य नहीं है। बल्कि विशाल स्तर पर मोटे रूप से यह हमें एक समान प्रतीत होता है। विशेष रूप से ऐसा प्रतीत हो सकता है कि यदि हम तमाम दूसरी मंडाकिनियों को हमसे दूर भागते हुए देखते हैं, तो हमें अवश्य ही ब्रह्माण्ड के केंद्र में होना चाहिए। किसी दूसरी मंडाकिनी से भी यदि देखा जाये, तो भी ब्रह्माण्ड प्रत्येक दिशा में शायद एक जैसा ही दिखाई देगा यही फ्रीडमैन की दूसरी अवधारणा थी।

स्थिति एक निरंतर फुलते हुए गुब्बारे के समान है जिसपर छोटे-छोटे धब्बे बने हैं। ज्यों-ज्यों गुब्बारा फुलता जाता है, दो धब्बों के बीच की दूरी बढ़ती जाती है। परंतु ऐसा कोई धब्बा नहीं है जिसे विस्तार का केंद्र कहा जा सके। इसके अतिरिक्त, धब्बे एक दूसरे से जितने अधिक दूर होंगे, उतनी ही अधिक तेजी से वे एक दूसरे से दूर हट रहे होंगे।

फ्रीडमैन मॉडल के अनुसार ज्यों-ज्यों ब्रह्माण्ड का विस्तार होता जाएगा, उसके अंदर का समूचा पदार्थ या विकिरण ठंडा होता जाएगा।

- **ब्रह्माण्ड की बंद प्रतिकृति :**

जब क्वांटम परिणाम ध्यान में लिए जाते हैं तो परिणामतः अवकाश-काल की बंद प्रणाली से युक्त ब्रह्माण्ड हमें मिलता है। अवकाश-काल का, बिना किसी मर्यादा रेखा के मर्यादित होने का अर्थ है उसका कोई आदि क्षण या उत्पत्ति क्षण नहीं है। इस नमूने में अंतराल के सभी बिंदुओं का दर्जा समान है। जिस तरह पृथ्वी का द्विआयामी पृष्ठभाग सान्त है लेकिन उसका कोई किनारा नहीं है उसी अर्थ में जगत का अवकाश भी सान्त है। पृथ्वी का पृष्ठतल विस्तार में सीमाबद्ध है, पर इसकी कोई परिसीमा या किनारा नहीं है। लेकिन फ्रीडमैन की प्राक्कल्पना के अनुसार, वैश्विक अंतराल, काल के साथ बदलता है। ब्रह्माण्ड विस्तारित हो रहा है। १९२२ और १९२५ के बीच फ्रीडमैन ने दिखाया था कि बंद ब्रह्माण्ड का विस्तार होते ही रहना चाहिए। इस सिद्धान्त में यह आवश्यक है कि या तो ब्रह्माण्ड का विस्तार होता रहे या फिर उसके विस्तार और आकुंचन की क्रमिक कड़ियाँ हो। किसी भी हालत में वह स्थिर नहीं रह सकता।

लेकिन अभी तक खगोलशास्त्र निश्चित किसी नतीजे पर नहीं पहुँचा है कि ब्रह्माण्ड मुक्त है या बंद।

ब्रह्माण्ड का विस्तार

विकिपिडिया में ब्रह्माण्ड विस्तार की व्याख्या इस प्रकार दी गयी है -“ ब्रह्माण्ड का विस्तार यह, दृश्य ब्रह्माण्ड के किसी भी दो हिस्से, जो गुरुत्व के कारण एक दूसरे से बंधे नहीं हैं, में समय के साथ बढ़ने वाला अंतर है। यह आंतरिक विस्तार है जिस कारण स्वयं अंतराल का माप बदल जाता है।”

ब्रह्माण्ड का अर्थ ही है कि सब कुछ उसीमें है। फिर ब्रह्माण्ड कहां फैल रहा है ? ब्रह्माण्ड के बाहर क्या है, हम नहीं जानते। महाविस्फोट के पहले क्या था यह भी ज्ञात नहीं हो सकेगा। ब्रह्माण्ड अपने आप में फैल रहा है, इसका भी क्या अर्थ हुआ ? ब्रह्माण्ड विस्तारित हो रहा है का यह अर्थ नहीं कि पदार्थ वहां पहुंच रहा है जो अभी तक किसी से भी व्याप्त नहीं था।

ब्रह्माण्ड ऊर्जा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वस्तु और विकिरण यह उसके व्यक्त होने के रूप हैं।

कुछ प्रतिकृतियों में फैलाव की अवधारणा यह भी सूचित करती है कि ब्रह्माण्ड में पदार्थ का सृजन हो रहा है। ब्रह्माण्ड के जिस क्षेत्र का हम प्रेक्षण कर सकते हैं, उसमें लगभग 10^{85} कण हैं। ये सब कहां से आए ? क्वांटम सिद्धान्त में इसका उत्तर यह है कि कण/प्रतिकण की

जोड़ी के रूप में, ऊर्जा से कण उत्पन्न हो सकते हैं। लेकिन फिर यह प्रश्न उठता है कि ऊर्जा कहां से आयी?

इसका उत्तर यह है कि ब्रह्माण्ड की संपूर्ण ऊर्जा ठीक शून्य के बराबर है। ब्रह्माण्ड में मौजूद पदार्थ धनात्मक ऊर्जा से बना हुआ है ऐसा माना जाता है। बहरहाल समस्त पदार्थ अपने आपको गुरुत्व बल से आकृष्ट करता है। थोड़े दूर के दो पिंडों को और दूर ले जाने के लिए आपको गुरुत्व बल के विरुद्ध प्रत्यक्ष ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है। इस प्रकार एक अर्थ में गुरुत्व क्षेत्र में ऋणात्मक ऊर्जा होती है। एक ऐसे ब्रह्माण्ड के मामले में जो अवकाश में लगभग एक समान है यह सिद्ध किया जा सकता है कि यह ऋणात्मक गुरुत्व ऊर्जा, पदार्थ की धनात्मक ऊर्जा को पूर्णतः निरस्त कर देती है। अतः ब्रह्माण्ड की संपूर्ण ऊर्जा शून्य है। अब दो शून्यों का योग भी शून्य ही होता है। इस प्रकार, ऊर्जा संरक्षण के नियम का उल्लंघन किये बिना ही, ब्रह्माण्ड धनात्मक पदार्थ-ऊर्जा के परिमाण को तथा साथ ही ऋणात्मक गुरुत्व ऊर्जा को भी दोगुना कर सकता है। लेकिन ऐसा ब्रह्माण्ड के सामान्य विस्तार की स्थिति में घटित नहीं होता। इसमें पदार्थ-ऊर्जा का घनत्व ब्रह्माण्ड ऊर्जा के साथ-साथ कम होते जाता है। बहरहाल स्फीतिकारी (फुलते) विस्तार में ऐसा होता है क्योंकि अतिशीतित अवस्था का ऊर्जा घनत्व स्थिर रहता है। उपरोक्त कथन के अनुसार ऐसा होने पर भी संपूर्ण ऊर्जा शून्य ही रहती है। लेकिन इस संकल्पना के कारण इस वास्तवता में कोई फर्क नहीं पड़ता कि ब्रह्माण्ड अपने आपमें स्वयं पूर्ण है।

- ऐसा कहा जाता है कि अंतराल विस्तारित नहीं होता। हमें केवल उसमें स्थित पिंड एकदूसरे से दूर भागते हुए या अलग होते हुए दिखते हैं, अंतराल खींचा जाते हुए नहीं या अंतराल द्वारा पिंडों को खींचा जाते हुए नहीं। जब पिंड एकदूसरे से दूर होते हुए दिखते हैं तो साथ-साथ वे एकदूसरे के प्रति खींचाव या आकर्षण भी अनुभव करते हैं। अंतराल के कुछ हिस्से कम घनत्व तो कुछ अधिक घनता के हैं, यह हमें पता है। अधिक घनता का अर्थ है अधिक गुरुत्वाकर्षण और हो सकता है, यह गुरुत्वाकर्षण पदार्थों को अपने गिर्द घूमाता हों, जो हमें पदार्थ एकदूसरे से दूर होते पदार्थों के रूप में दिखते हैं। हम एक समय ब्रह्माण्ड के एक सीमित हिस्से को ही देख पाते हैं। लेकिन ब्रह्माण्ड के अति विशाल पार्श्व में उपरोक्त बात संभव है।

इनमें से किसी भी संकल्पना की सिद्धता तक हम नहीं पहुंच सकते। इतना ही है कि ये भौतिकशास्त्र के सिद्धान्तों का उल्लंघन नहीं करते। लेकिन महाविस्फोट के समयपूर्व की अत्युच्च स्थितियों को स्पष्ट करने वाला भौतिकशास्त्र हमारे पास नहीं है।

ब्रह्माण्ड का भविष्य

ब्रह्माण्ड का प्रसरण हो रहा है, यह तो अब सर्वमान्य बात है। लेकिन यह प्रसरण लगातार होता रहेगा या कभी तो रुकेगा और आकुंचन आरंभ होगा, यह बात रहस्य में लिपटी हुई है। वह स्थिर अवस्था में तो रह नहीं सकता। विश्व में यथोचित वस्तुमान होगा तो ही प्रसरण रुकेगा अन्यथा वह लगातार विस्तारित होता रहेगा और अरबों साल बाद उसका स्वरूप क्या होगा यह अज्ञात बात है। लेकिन विस्तार रुकने के लिए आवश्यक वस्तुमान है या नहीं यह बात भी तो हम नहीं जानते।

गुरुत्व बल ही ब्रह्माण्ड की विशाल स्तरीय संरचना को सुगठित करता है, भला ही वह चारों ज्ञात प्राकृतिक बलों में सबसे क्षीण है। विश्व का भवितव्य गुरुत्वाकर्षण पर निर्भर है। विश्व के ज्ञात-अज्ञात सारे वस्तुओं का गुरुत्वाकर्षण विश्व का प्रसरण रोकने समर्थ है या नहीं यही असली सवाल है। लेकिन उसके लिए विश्व की एक विशिष्ट घनता होनी चाहिए। लेकिन हाल के मापन से ऐसा नहीं लगता कि वह आवश्यक उतनी है।

आज ब्रह्माण्ड में ७५ % हैड्रोजन और २५ % हिलीयम है। जबकि तारों में ७० % हैड्रोजन और ३० % हिलीयम है। ब्रह्माण्ड के मूलभूत घटक, मूलभूत कण और विकिरण हैं।

एक अनिवार्य रूप से अपरिवर्तनशील ब्रह्माण्ड की पुरानी धारणा, एक गतिशील, सक्रिय और विस्तृत होते ब्रह्माण्ड की धारणा से प्रतिस्थापित हो गई, जो एक सीमाबद्ध समय पर प्रारंभ हुआ प्रतीत होता है और जो भविष्य में एक सीमाबद्ध समय पर समाप्त हो जाएगा। रोजर पेनरोज और स्टिफन हॉकिन्स इन्होंने स्पष्ट कर दिया कि आइन्स्टाइन के सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त का अर्थ यह है कि ब्रह्माण्ड का प्रारंभ और संभवतः अन्त होना चाहिए।

व्यापक सापेक्षता और विश्व का स्वरूप—

इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व में अंतर्भूत कुल वस्तुमान और ऊर्जा इनपर विश्व का स्वरूप और भविष्य निर्भर है। व्यापक सापेक्षता के अनुसार वस्तु की उपस्थिति में अवकाश-काल वक्र होता है। जितनी वस्तु अधिक उतनी वक्रता अधिक। अगर विश्व में विशिष्ट क्रांतिक (

Criticle) वस्तुमान से अधिक वस्तुमान होगा तो विश्व की वक्रता गेंद के जैसी धन या बहिर्गोलीय होगी। अगर वह क्रांतिक वस्तुमान से कम होगा तो वक्रता घोड़े के जीन समान ऋण या अंतर्गोलीय होगी। अगर विश्व का कुल वस्तुमान और ऊर्जा क्रांतिक कीमत इतनी ही होगी तो विश्व सपाट (Flat) होगा। विश्व की कुल ऊर्जा और वस्तुमान के लिए ' ओमेगा ' इस ग्रीक अक्षर को लिया जाता है। ओमेगा को हम क्रांतिक घनता भी मान सकते हैं। ओमेगा की कीमत एक से कम होगी तो विश्व की वक्रता घोड़े के जीन सदृश्य ऋणात्मक, एक से अधिक तो अवकाश-काल की वक्रता धनात्मक और एक होगी तो विश्व स्वरूप सपाट होगा। ओमेगा एक से कम होगा तो विश्व में आवश्यक उतना वस्तुमान और ऊर्जा नहीं है अतः विश्व का निरंतर प्रसरण होता रहेगा। अगर ओमेगा की कीमत एक से अधिक है तो विश्व में आवश्यक इतना वस्तुमान और ऊर्जा होगी। और परिणामस्वरूप आगे कभी तो विश्व का प्रसरण रुकेगा और आकुंचन शुरू होगा। ओमेगा की कीमत एक होने पर भी उसका लगातार प्रसरण होता रहेगा । प्रसरणशील विश्व के सभी अणु-परमाणु अंततः एकदूसरे से अलग होंगे और विश्व का पूरी तरह शक्तिपात होगा। विश्व के इस अंत को ' व्हिपर ' नाम दिया गया है। निरीक्षणों के आधार पर ओमेगा की कीमत एक होगी फिलहाल ऐसा अंदाजा है।

विश्व के स्वरूप का विवेचन करने वाला प्रथम आधुनिक सिद्धान्त आइन्स्टाइन ने १९१७ में प्रस्तुत किया था ' व्यापक सापेक्षता के अनुसार विश्व का विचार '। व्यापक सापेक्षता में सबसे महत्वपूर्ण है गुरुत्वाकर्षण। लेकिन अगर केवल यही एक बल सोचा जाए तो विश्व अस्थिर होकर केंद्र की दिशा में ढह गया होता। लेकिन आइन्स्टाइन के अनुसार भी विश्व स्थिर है। तो उन्होंने इस स्थिरता के लिए, गुरुत्वाकर्षण को विरोध करने वाले एक नये बल का अस्तित्व गृहित मान लिया। उनका यह बल अंतर के सम प्रमाण में बदलता है। अर्थात् जितनी दूरी अधिक उतना इस बल का प्रभाव अधिक। (वैश्विक अपकर्षण बल = स्थिरांक x अंतर) । इस सूत्र का स्थिरांक अर्थात् ' कॉस्मोलॉजिकल कॉन्स्टेंट '। इस स्थिरांक की कीमत बहुत कम होने से करोड़ों प्रकाश वर्षों के बाद इसका प्रभाव दिखने लगेगा, आदि कल्पनाएँ की हैं।

आइन्स्टाइन का यह विश्व गोलाकार है। इस गोलाकृति विश्व की प्रदक्षिणा करना संभव है। एक प्रदक्षिणा का अंतर विश्व की परिधि इतना होगा। इस विश्वगोल पर निरीक्षक जहां खड़ा है उसके बराबर सामने वाले परिधि के बिंदु को ' अँटीपोड ' नाम दिया गया है। उदा. के तौर पर पृथ्वी के उत्तर-दक्षिण ध्रुव एकदूसरे के अँटीपोड हैं। प्रकाश का किरण सारे विश्व का चक्कर

लगाकर दोबारा मूल स्थान पर आने में सक्षम होने के कारण सैद्धांतिक दृष्टि से हम भूतकाल में झांक सकेंगे। लेकिन आइन्स्टाइन का यह विश्व बहुत अस्थिर है। इस विश्व का कोई मामूली विक्षोभ या तो गुरुत्वाकर्षण बल को प्रभावी बनाकर आकुंचन के तहत उसे ढहाकर बिंदुवत् बना सकेगा या फिर उसके विरोधी बल को प्रभावी बनाकर उसे अमर्यादित विस्तार के लिए प्रेरित करेगा। पहले प्रकार के विश्व के अंत को 'बीग क्रंच' तो दूसरे प्रकार के अंत को 'व्हिपर' नाम दिया गया है।

वास्तव में आइन्स्टाइन की इन कल्पनाओं के बाद ही 'विश्वशास्त्र' (Cosmology) इस एक नए विषय का आरंभ हुआ। विश्व की उत्पत्ति, स्थिति, लय इस विषय में विज्ञान पर आधारित चर्चा शुरू हुई। आइन्स्टाइन ने विश्व स्वरूप के बारे में जो सूत्र सामने रखा उसे 'फिल्ड इक्विएशन' ऐसा नाम है। इससे ऐसा ध्यान में आ रहा था कि या तो विश्व का प्रसरण हो रहा है आ आकुंचन। लेकिन प्रत्यक्ष में तो विश्व स्थिर दिख रहा था। उस समय मनुष्य के लिए हमारी आकाशगंगा ही, संपूर्ण ब्रह्माण्ड था। इस संपूर्ण पार्श्वभूमी पर आइन्स्टाइन ने स्थिर विश्व की कल्पना की। अपने सूत्र के अनुसार विश्व प्रसरणशील या आकुंचनशील हो सकता है अतः इसे स्थिर बनाने के लिए उन्होंने एक स्थिरांक उसमें प्रविष्ट किया। यही स्थिरांक, 'वैश्विक स्थिरांक' के रूप में आज पहचाना जाता है।

लेकिन आगे यह स्थापित हुआ कि ब्रह्माण्ड विस्तारित हो रहा है। इस स्थिति से आइन्स्टाइन को ऐसा लगा कि सूत्र में वैश्विक स्थिरांक प्रविष्ट करने में गलती हुई है। बीच के समय में इस स्थिरांक के विषय में संदेह था। लेकिन अब यह दृढ़ता से स्थापित हो गया है कि विश्व के प्रसरण की गति भी बढ़ रही है। इस कारण अब गुरुत्वाकर्षण को विरोध करने वाले किसी बल और दीर्घिकाओं के बीच अपकर्षण दर्शाने वाला वैश्विक स्थिरांक अस्तित्व में होना चाहिए, ऐसा खगोलशास्त्री मानने लगे हैं।

- ब्रह्माण्ड के आदि और अंत की, 'Big Bang' और 'Big Crunch' के अतिरिक्त और दो संकल्पनाएं हैं। Big Freeze और Big Rip | इन दोनों संकल्पनाओं में काल का अक्ष अनंत की दिशा में आगे बढ़ता है।
- Big Freeze में एक समय ऐसा आएगा जब एन्ट्रॉपी उसके अधिकतम मूल्य पर पहुँचने के बाद आगे वृद्धिगत नहीं होगी। इसके आगे विश्व का प्रसरण संभव नहीं होगा। विश्व के सभी वस्तुओं का लय होगा। विश्व में सर्वत्र वस्तुमान और ऊर्जा समान अनुपात में फैली

होगी। ऐसे विश्व में किसी भी घटना का होना असंभव होगा। अर्थात् काल की गति, अस्तित्व का ही कोई अर्थ नहीं होगा।

- Big Rip यह अत्यंत विद्वंसक अंत होगा । इसके अनुसार विश्व के प्रसरण की गति, विश्व के गुरुत्वाकर्षण और अन्य बलों पर क्रमशः प्रभुत्व स्थापित करेगी। आकाशगंगाएं, तारे, ग्रह, उपग्रह सभी छिन्न-भिन्न होंगे। लेकिन यह विद्वंस यही न रुकते हुए आगे अणुओं और आगे मूलकणों के स्तर पर पहुंचेगा। सारा विश्व, मूल कणों के स्तर पर (या मूलकण जिस किसी ऊर्जा से बने हुए होंगे उस स्तर पर) पहुंचने पर गुरुत्वाकर्षण नगण्य होने से काल का स्वरूप कैसा होगा, यह बताना मुश्किल है। आज भी पूंज भौतिकी के स्तर पर काल का वास्तव स्वरूप कैसा होगा यह मनुष्य के लिए अज्ञात है। हां कुछ संकल्पनाएं प्रस्तुत जरूर हुई हैं।

- ब्रह्माण्ड विस्तार की बढ़ती गति-

सन् २०११ भौतिकी के नोबेल पुरस्कार के लिए तीन वैज्ञानिकों का चयन किया गया था - ब्रियॉन पी. श्मिड्ट, अँड्रैस गॉर रीस और साउल पर्लमुटर इनका। इनको पुरस्कार इस खोज के लिए दिया गया है कि ब्रह्माण्ड के फैलने की गति बढ़ती जा रही है। इस खोज के लिए इन्होंने सुपरनोवा के अध्ययन का सहारा लिया। यह खोज वैज्ञानिकों को चकित कर देने वाली थी। यदि ब्रह्माण्ड के फैलने की गति में इसी प्रकार वृद्धि होती रही तो इसका अंत इसमें होगा कि दो मंदाकिनियों की दूरी उतनी होगी जितनी आज पूरे ब्रह्माण्ड की व्याप्ति है। एक मंदाकिनी का प्रकाश दूसरी तक नहीं पहुंच पाएगा। भौतिकी नोबेल समिति के सचिव लार्स बर्स्ट्राम का मत है कि ब्रह्माण्ड का विस्तार ज्यों-ज्यों होता जाएगा तो यह धीरे-धीरे अत्यंत विशाल बर्फीले क्षेत्र में बदल जाएगा। वैज्ञानिकों ने अपनी यह खोज १९९८ में प्रकाशित की थी। इसने उस परंपरागत मान्यता को बिल्कुल उलटकर रख दिया कि महाविस्फोट के १३.७ अरब वर्षों के बाद ब्रह्माण्ड के फैलने की गति धीमी पड़ गयी है। इस खोज ने एक मूलभूत प्रश्न को जन्म दिया कि वह कौनसा बल है जो ब्रह्माण्ड के फैलने की गति को बढ़ा रहा है। कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि वह बल डार्क एनर्जी होनी चाहिए। लेकिन प्रश्न जहां का वहीं है कि आखिर यह डार्क एनर्जी है क्या ? (लो. स. ३-६ २०१२)

(कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि महाविस्फोट के ७ अरब सालों बाद डार्क एनर्जी ने गुरुत्वाकर्षण पर प्रभुत्व स्थापन कर लिया होगा।)

- ब्रह्मांड की आयु : १३.७९९ +/- ०.०२० अरब वर्ष ली जाती है।
- ब्रह्मांड विस्तारित हो रहा है और इस विस्तार के कारण दृश्य ब्रह्मांड १३.७७९ अरब प्रकाश वर्ष से बड़ा दिखता है, ३.३७ गुना बड़ा- त्रिज्या ४६.५ अरब प्रकाशवर्ष। खगोलशास्त्रियों ने इसके विस्तार की गति निकाली है ६७.३६ कि.मी. प्रति सेकंड, प्रति मेगा पार्सेक (या प्रति ३.३ दशलक्ष प्रकाशवर्ष)। या यह गति इसपर निर्भर होगी कि ब्रह्मांड के किस हिस्से में आप उपस्थित हो। समय के साथ विस्तार की यह गति भी बढ़ेगी। विस्तार की गति प्रकाश गति से अधिक है इसी कारण सूर्य से निकला प्रथम फोटॉन प्रकाश गति से आगे बढ़ता है। इसी कारण सूर्य भलेही ४.६०३ अरब प्रकाशवर्षों से चमक रहा हो यह फोटॉन उससे ७.५९ अरब प्रकाशवर्ष दूर है।
- क्या वास्तव में ब्रह्मांड विस्तारित हो रहा है | जहांतक मानव को ज्ञात है ब्रह्मांड का कोई किनारा नहीं है। हम केवल इतना जानते हैं, ब्रह्मांड की वस्तुएं एकदूसरे से दूर होती हुई दिख रही हैं।
- ब्रह्माण्ड में रिक्ति -

१९८६ में हॉवर्ड-स्मिथसनियन सेंटर ऑफ अस्ट्रोफिजिक्स के जॉन हुचरा, मार्गरेट गेलर तथा वेलेरी द. लेपोरे इन्होंने मिलकर आकाश के एक हिस्से का त्रिआयामी नक्शा खींचा, जिसमें लगभग ११०० आकाशगंगाएं हैं। आकाश का यह हिस्सा गहराई में ४५ से ९० करोड़ प्रकाशवर्ष तक फैला हुआ था। हांलाकि यह, ब्रह्माण्ड का छोटा सा ही हिस्सा था लेकिन इससे पता चल सकता था कि आकाशगंगाएं किस तरह छितरी हुई हैं। इधर-उधर बिखरी होने के बजाय वे ९ से १५ करोड़ प्रकाशवर्ष चौड़ाई वाले महाशून्य के ऊपर टिकी हुई थीं, ठीक उसी तरह जैसे साबून के बुलबुले पर झाग बैठा होता है।

ब्रह्माण्ड की नपाई

आकाश के करीबी तारों की दूरी नापने के लिए पराशय पद्धति उपयोग में लायी जाती है। खगोलशास्त्रियों ने सबसे पहले इसके लिए, नाविकों और सर्वेक्षकों द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का उपयोग किया था। यदि आप किसी वस्तु की दूरी नापना चाहते हैं तो पहले आप एक स्थान से उसका कोन नापें, फिर किसी अन्य स्थान से कोन नापें। दोनों स्थानों के बीच की दूरी और दोनों कोनों की कीमतों के आधार पर त्रिकोणमिती की मदद से आप उस वस्तु की दूरी पता कर सकते हैं। खगोलशास्त्री तारों की दूरी को मापने के लिए जिस प्रक्रिया को उपयोग में लाते हैं,

इसमें वे किसी तारे को आज देखेंगे तथा छह महीने बाद देखेंगे, जब पृथ्वी सूर्य के दूसरी ओर होगी। ये दो स्थान मानो पृथ्वी की प्रदक्षिणा की परिधि पर 180° पर स्थित होंगे। अर्थात् पृथ्वी पर से महत्तम संभवनीय दूरी से किए गये निरीक्षण। लेकिन यह पद्धति केवल 300 प्रकाश वर्ष दूरी तक के तारों के लिए ही काम की है।

सेफिड तारों की सहायता से -

किसी भी तारे की आभासी दीप्ति (Apparent Luminosity) दो बातों पर निर्भर होती है।

१) वह तारा कितने प्रकाश का विकिरण करता है (उसकी परम ज्योति)।

२) उसकी हमसे दूरी।

जब हम चमकिले तारे से दूर जाते हैं, तब उसका प्रकाश धीमा होता जाता है। इसी कारण यदि हमें किसी चमकिले तारे की वास्तविक चमक का पता चला तो हम उसकी आभासी चमक को नापकर पृथ्वी से उसकी दूरी का पता लगा सकते हैं। मगर यहाँ बैठे-बैठे किसी तारे की आभासी चमक तो पता लग सकती है, लेकिन उसकी वास्तविक चमक कैसी पता करें ?

सेफिड तारों का उल्लेख पहले हो चुका है। इस प्रकार के तारों की दीप्ति निश्चित बारंबारता से बदलती है। अमेरिकी खगोलशास्त्री हेन्रिटा लेव्हीट इस महिला ने अपने ही आकाशगंगा की उपदीर्घिका माजेलनिक मेघ के तारकागुच्छों के विविध सेफिड तारों का अध्ययन किया। एक ही तारकागुच्छे में होने के कारण ये सारे सेफिड तारे हमसे लगभग समान दूरी पर हैं। इस कारण उनकी मूल तेजस्विता की एकदूसरे के साथ तुलना करना लेव्हीट के लिए भी संभव हुआ। इन तारों की दीप्ति में हो रहे बदल की बारंबारता का तारे की मूल तेजस्विता के साथ निश्चित संबंध होने की बात उनके ध्यान में आयी। तारा जितना अधिक तेजस्वी, उतना उसकी तेजस्विता में हो रहे बदल के चक्र का कालावधि अधिक। १९१२ में हुई इस खोज के कारण किसी भी दूर की दीर्घिका के एकादे सेफिड तारे तेजस्विता में हो रहे बदल की बारंबारता का मापन किया कि उससे उसकी मूल तेजस्विता ज्ञात होने लगी। इस मूल दीप्ति की उस तारे की पृथ्वी पर दिखने वाली तेजस्विता से तुलना करने पर उस तारे और पर्याय से उस दीर्घिका की हमसे दूरी का पता लगने लगा। कुछ करोड प्रकाश वर्ष से अधिक दूरी की दीर्घिकाएं बहुत ही अंधुक होने से ऐसी दीर्घिकाओं के लिए यह पद्धति काम की नहीं।

हबल सिद्धान्त के आधार पर -

दीर्घिकाओं का दूर जाने का वेग वर्णपटशास्त्र के आधार पर निकाला जा सकता है। और हबल सिद्धान्त के अनुसार जो तारा हमसे जितना दूर वह उतनी ही अधिक गति से हमसे दूर

जा रहा है। इस आधार पर अरबों प्रकाशवर्ष दूर की मंदाकिनियों का हमसे अंतर, निकालना संभव हुआ।

ब्रह्माण्ड का विस्तार और अंतराल-काल का अवतरण

ब्रह्माण्ड विस्तार के साथ नया अंतराल-काल कैसे पैदा होता है ?

अंतराल-काल यह कोई वस्तु नहीं है। उसमें स्वतंत्र मापन करने लायक कोई गुणधर्म नहीं है। हम जब दूरी नापते हैं तो वह दो चीजों के बीच की होती है। जब समय अंतराल नापते हैं तो वह दो वस्तुओं के बीच होने वाली अन्योन्यक्रियाओं के कारण पैदा हुई दो घटनाओं के बीच का होता है। अंतराल-काल केवल पार्श्व प्रदान करता है। अतः नया-पुराना अंतराल-काल यह कल्पना ही अप्रस्तुत है।

- **ब्रह्माण्ड की सबसे ठंडी जगह -**

बुमरैंग नेब्युला यह सेंटाउरस तारामंडल में दिखता है। यह हमसे ५००० प्रकाशवर्ष दूर है। इसका प्राकृतिक रूप में तापमान - 272 ° से. है और जहां तक मनुष्य जानता है यह ब्रह्माण्ड की भी सबसे ठंडी जगह है। यह जगह इतनी ठंडी होने का कारण है इसके केंद्र में स्थित एक मृत तारा सभी दिशाओं में वायु फेंक रहा है।

लेकिन कृत्रिम रूप से वैज्ञानिक -273.1499995⁰ सें.(५०० नानोकेल्विन) तापमान तक पहुँचने में सफल हुए हैं। एम. आय. टी. के वैज्ञानिकों ने सोडियम-पोटेशियम अणुओं को इस तापमान तक पहुँचाया है। ऐसा विश्वास किया जाता है परमाणु स्तर पर इन अणुओं का अंत ' सुपर परमाणु ' में होना चाहिए।

- **गहन ब्रह्माण्ड का तापमान -**

गहन ब्रह्माण्ड का तापमान क्या माना जाए ? यह ऐसा तापमान होगा जिसपर कोई बिंदु तापीय संतुलन में होगा। अर्थात् जो बिंदु अंतरिक्ष से जितनी उष्मा ग्रहण करता है उतनी ही उत्सर्जित करता है। इस तापमान पर तापमापक स्थिर रहेगा। किसी बिंदु पर आने वाली स्थिर ऊर्जा केवल सभी ओर फैले कॉस्मिक मायक्रोवेव्ह बैकग्राउंड उत्सर्जन की ही हो सकती है जिसका तापमान २.७ ° केल्विन निकाला गया है। अतः यही ब्रह्माण्ड का तापमान माना जाता है।

- **ब्रह्माण्ड में हमारी दृष्टि कहां तक जाएगी -**

अगर ब्रह्माण्ड की आयु १३.७७ अरब वर्ष है और प्रकाश की गति यह ब्रह्माण्ड में महत्तम संभवनीय गति है तो हमारी दृष्टि में ४६ अरब प्रकाशवर्ष दूर तक का अंतरिक्ष आ सकता है। यहाँ अंतरिक्ष का होने वाला विस्तार यह अन्य फॅक्टर है। भले ही प्रकाश की यात्रा १३.७७ अरब प्रकाशवर्ष ही हुई हो लेकिन अंतरिक्ष विस्तार के कारण वह बिंदु और पीछे सरक गया है।

नंगी सशक्त आंखों से मनुष्य अधिक से अधिक अँड्रिमेडा मंदाकिनी तक ही देख सकता है जो हमसे २५ लाख प्रकाशवर्ष दूर है।

- **सपाट ब्रह्माण्ड -**

सापेक्षता सिद्धांत के संदर्भ में ' सपाट ' इस शब्द का विशिष्ट अर्थ है। सपाट शीट पर, त्रिकोण के आन्तरिकोनों का योग 180° आता है। लेकिन यहाँ सपाट का मतलब द्विमितीय कागज की शीट नहीं।

सामान्य सापेक्षता सिद्धांत के अनुसार अंतर-समय एकत्र, कभी सपाट नहीं होता। उसमें हमेशा थोड़ी-न-थोड़ी वक्रता रहती ही है। केवल अंतराल स्वयं सपाट होने की बात दिखती है। अर्थात् अंतराल में त्रिकोण का आकार चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, हमारी सभी गणनाओं में त्रिकोण के अंतरिकोनों का योग 180° आता है ऐसा दिखता है। चारों ओर दीर्घिकाएं फैली हैं। उनमें से कोई भी तीन चुनिए। उनके बीच रेखाएं खींचीए। आने वाले त्रिकोण के तीनों कोनों का योग 180 होगा। हमें जो निरीक्षण मिले हैं वह बताते हैं कि अंतराल में कोई वक्रता नहीं है। वह समदैशिक और समांग है। वह हर स्थान पर और हर दिशा में एक समान ही दिखता और पाया जाता है।

खगोलीय पिंडों में दूरियाँ -

- ग्रहों के बीच की दूरियाँ उनकी आकार की तुलना में बहुत अधिक हैं।
- सौर मंडलों के आकार की तुलना में उनके बीच की दूरियाँ भी अधिक ही हैं । लेकिन ग्रहों के वर्ग की तुलना में कम।
- लेकिन जब हम मंदाकिनियों के बीच की दूरियों पर विचार करते हैं तो उनके आकार की तुलना में उनके बीच की दूरियाँ और कम हैं। या इस स्तर पर घनता काफी अधिक है। हमारी आकाशगंगा का व्यास एक लाख प्रकाशवर्ष है। जबकी आकाशगंगा और उसकी पड़ोसी मंदाकिनी अँड्रिमेडा इनके बीच की दूरी केवल २५ लाख प्रकाशवर्ष है।

- प्रकाशवर्ष यह ब्रह्माण्ड में अंतर मापन की इकाई है, काल मापन की नहीं। यह अंतर होगा जिसे प्रकाश एक वर्ष में पार करता है।

- **ब्रह्मांड में सर्वाधिक दूरी तक पहुंचे यान -**

अब तक कुल पांच मानव निर्मित यान सौर मंडल को लांघकर अंतरिक्ष में पहुंच गए हैं। इनमें व्हॉएजर एक और दो, पायोनियर दस(संपर्क टूटा १९९५) और ग्यारह(संपर्क २००३ तक था) और न्यू हॉरिज़ॉन ये यान हैं।

व्हॉएजर यान ४५ वर्षों से अंतरिक्ष में यात्रा कर रहे हैं और हमसे दूर जा रहे हैं। फिर भी व्हॉएजर १ ने ऊर्ट बादल के सबसे करीबी बिंदु के अंतर का केवल १० % अंतर ही नापा है। ऊर्ट बादल को पूरी तरह पार करने उसे ४५००० साल लगेंगे। डेल्टा ५ रॉकेट या अंतरिक्ष प्रक्षेपक के क्षेपक(Thurster) में प्रोपेलंट के तौर पर भरा हैड्राज़ाइन उत्प्रेरक / कॅटलिस्ट के माध्यम से विघटित होते रहता है। शुरू में १०४ किलो हैड्राज़ाइन था। अभी २२ किलो बचा हुआ है। उसे पूरी तरह खर्च होने अगले २५ वर्ष लग सकते हैं। फिर यान शांत हो जाएगा और हमारे लिए ओझल। २०२१ के अंत की स्थिति इस प्रकार थी-

व्हॉएजर १ - दूरी २३ अरब कि. मी. | १५२ खगोलीय एकक | गति १६.९ कि. मी. / सेकंड |

व्हॉएजर २ - १२७ “ | गति १५.३ कि.मी. /सेकंड |

इन यानों के कैमरे बंद हो चुके हैं। वे केवल कार्यरत सेन्सॉर्स की मदद से पृथ्वी को डाटा भेजते हैं। उनके ट्रान्समीटर्स 22 वॉट शक्ति के हैं। उनके साथ संपर्क रखने के लिए बृहत रेडिओ दूरदर्शक के 77 मीटर अँन्टिनाज उपयोग में लाये जा रहे हैं।

ब्रह्माण्ड का वास्तव रंग

जनवरी 2002 में, बाल्टीमोर, मेरीलैंड की जॉन हॉफकिन्स युनिवर्सिटी से जुड़े इवान बाल्डी (Ivan Baldry) और कार्ल ग्लेज़ब्रुक (Karl Glazbrook) इन्होंने ब्रह्माण्ड का रंग हलका turquoise और aquamarine इनके बीच का है, ऐसा घोषित किया। पृथ्वी के दो अरब प्रकाश वर्ष दायरे में स्थित 200,000 मंदाकिनियों से आ रहे प्रकाश को एकत्र कर इसे निश्चित किया गया। यह कुछ igeish सफेद जैसा है। इसे नाम देने के लिए प्रतियोगिता भी आयोजित की गयी थी। अंत में नाम निश्चित हुआ Cosmic Latte।

तो फिर आकाश रात में स्याह क्यों दिखता है, जबकि उसमें अनगिनत तारे भरे पड़े हैं?

सर्वप्रथम इसका कारण है, कोई तारा हमेशा के लिए चमकते नहीं रहता। हम अंतराल की किसी भी दिशा में जब देखते हैं तो हमारी दृष्टि किसी तारे की सतह पर नहीं टिकती बल्कि महाविस्फोट के बाद के अंतराल पर टिकती है जब किसी तारे की उत्पत्ति नहीं हुई थी और वह पूरी तरह स्याह था। ब्रह्माण्ड के विस्तार के कारण महाविस्फोट में उत्पन्न आदिम अग्निपुंज के प्रकाश में ताम्रसृति होकर वह अब पार्श्व मायक्रोवेव्ह विकिरण के रूप में फैला है। उसका तापमान -270^0 सें. है। इस कारण वह हमें स्याह दिखता है।

- एक प्रश्न पुछा जाता है कि क्या ऐसा कोई बिंदु है जिसके चारों ओर पूरा ब्रह्माण्ड चक्कर काट रहा है ? (जैसे पृथ्वी सूर्य के, सूर्य आकाशगंगा के केंद्र के चारों ओर परिक्रमा करते हैं।) किसी वस्तु ने किसी बिंदु के गिर्द घूमना का अर्थ है उसका एक चक्कर तो पूरा होना चाहिए। बंद कक्षा तभी हो सकती है, जब उस प्रणाली का आकार, ब्रह्माण्ड की आयु के दरम्यान पूर्ण वापसी कर मूल बिंदु पर लौटने की अनुमति देता हो। परिक्रमा स्थानिक ही हो सकती है। अब प्रश्न है, यह स्थानिक कितना बड़ा हो। यह कुछ, कितनी दूर तक हो सकता है ताकि वह एक ही प्रणाली का हिस्सा बना रहे।

हम कह सकते हैं कि मंदाकिनियों के झुंड अपने केंद्रबिंदु की परिक्रमा करते हैं चूंकि वे उनके संयुक्त द्रव्यमान के केंद्रबिंदु की ओर बढ़ते हुए दिखते हैं। लेकिन ये प्रणालियाँ स्वयं अपने आकार के दृष्टि से बंद नहीं हैं और अनियमित आकार की हैं।

सुपर क्लस्टर एक दूसरे से इतने दूर हैं कि ब्रह्माण्ड की आयु के दरम्यान चक्कर शायद ही पूरा हो। अधिक से अधिक वे वलय के एक चाप इतने हिस्से पर आगे बढ़ सकते हैं।

अतः उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में ' नहीं ' ही कहना पड़ेगा।

३. अंतरिक्ष के पिंड

उल्कापिंड

उल्का पिंड, धूमकेतु या लघु ग्रह के टुकड़े होते हैं। जो पिंड अंतरिक्ष से पृथ्वी पर गिरता है उसे उल्का कहते हैं। अंतरिक्ष में, अधिकतर उल्काएँ लघु ग्रह के पट्टे में ही हैं।

अगर उल्का बड़ी होगी तो, वह गिरते समय गडगडाहट होगी, वह धुँएँ और धूल से युक्त होगी। अगर रात का समय होगा तो बड़े भूभाग पर प्रकाश फैलेगा। तात्विक गणनाओं के अनुसार जब उसकी जमीन से टकराने की गति १०० मीटर प्रति सेकंड से अधिक नहीं होती, तबतक वह विखंडित नहीं होती। जब गति ५०० मीटर / सेकंड तक होती है तब वह विखंडित होती है। उसके टुकड़े चारों ओर बिखर जाते हैं। अगर गति ५ कि.मी. प्रति सेकंड से अधिक रही तो जबरदस्त विस्फोट होता है और शॉक तरंग पैदा होती है। उसका अधिकतर हिस्सा भांप बन जाता है। छोटे-छोटे टुकड़े इधर-उधर बिखरे हुए मिलते हैं।

प्रतिवर्ष कम से कम १०-१२ बड़ी उल्काएँ पृथ्वी के करीब से गुजरती हैं लेकिन उनमें से एक, दो छोड़कर अन्य धोका दायक नहीं होतीं। आजतक लगभग १५० बड़ी उल्काओं के कारण पृथ्वी पर बड़ी झीलें या क्रेटर्स निर्माण हुए हैं।

पॅसिडोना कैलिफोर्निया से नासा द्वारा उल्काओं पर नजर रखी जाती है। पृथ्वी के करीब होने वाले पिंडों को NEO(Near Earth Objects) कहा जाता है। इसमें पृथ्वी से १९.५ करोड़ कि.मी. के दायरे में आने वाले पिंड लिए जाते हैं। नासा के अनुसार ९० पिंड ऐसे हैं जो चंद्र-पृथ्वी दूरी के पांच गुना अंतर के अंदर तक आते हैं तो २१ ऐसे पिंड हैं जो एक चंद्र-पृथ्वी अंतर से भी कम दूरी तक आते हैं। नासा ने एक कि.मी. या अधिक व्यास वाले '९००' NEO's ढूँढ निकाले हैं। (इस आकार के पिंडों की संख्या के ८५ %)। ऐसे पिंडों की पृथ्वी से टकराने की संभावना ७०००० सालों में एक बार होती है। १४० मीटर या इससे बड़े पिंड एक लाख से अधिक हो सकते हैं। लेकिन अगर १४० मीटर का पिंड भी पृथ्वी से टकराया तो उस टकराव की ऊर्जा ३०० मेगाटन TNT के बराबर होगी। वैसे पृथ्वी से १.२ करोड़ मील दूरी तक आने वाली किसी भी अंतरिक्षीय वस्तु को नासा खतरनाक मानता है।

रूस के यूराल पर्वतीय क्षेत्र के येकातरीबर्ग शहर के ऊपर आसमान में १५-२-२०१३ को विशाल उल्का का विस्फोट हुआ, जिसमें १००० लोग घायल हुए। इसके कारण घर की खिड़कियाँ तक टूट गयीं। धमाके के कारण ३००० घर क्षतिग्रस्त हुए। रूसी विज्ञान अकादमी का कहना है कि उल्का का वजन १० टन था और इसने पृथ्वी के वायुमंडल में ५४००० कि.मी. प्रति घंटे की रफ्तार से प्रवेश किया। नासा का दावा है कि धरती के करीब से गुजरने वाले उल्कापिंड का यह

एक हिस्सा था। वायुमंडल के निचले हिस्से में वह आंशिक रूप से जला और बाद में उसके टुकड़े धरती पर गिरने लगे।

1. २०२० में एक उल्कापिंड सहारा के मरुस्थल में पाया गया। परिक्षण के बाद उसकी आयु ४.५६ अरब वर्ष पायी गयी। अर्थात् पृथ्वी की आयु से २ करोड़ वर्ष अधिक। ऐसा अनुमान है कि वह उस आदि ग्रह का हिस्सा होना चाहिए जो पृथ्वी के जन्म के पहले था।
2. २८ सितम्बर १९६९ को मरचिन्सन व्हिक्टोरिया, आस्ट्रेलिया में एक उल्काखंड गिरा। जो खंड आकाश में ही विखंडित हुआ उसके टुकड़े १३ वर्ग कि.मी. में बिखरे। इस खंड में ७ अरब साल पुराने सिलिकॉन कार्बाइड के कण पाये गये। इतना ही नहीं तो जीवन के लिए आवश्यक कुछ अमिनो अम्ल के कतरे भी मिले। इससे पता चलता है कि जीवन का आधार समझे जाने वाले मूलभूत घटक केवल पृथ्वी की विशेषता नहीं। वे ब्रह्माण्ड अन्यत्र भी हो सकते हैं।



(1)



(2)

Image credit: Quora

लोणार सरोवर : यह बुलढाना से ९० कि.मी. दूरी पर है। लगभग ५० हजार वर्ष पूर्व बेसॉल्ट के पथरीले स्थान पर उल्कापात से बना यह विवर है (Higher Vlocity Meteriorite Impact)। जिसने झील का रूप ले लिया है। यह दुनिया का इतना बड़ा सबसे युवा उल्का विवर है। इसका आकार अंडाकृति है जिसका पूर्व-पश्चिम व्यास १७८७ मीटर तो उत्तर-दक्षिण १८७५ मीटर है और गहराई १५० मीटर है। यह अल्कधर्मी और क्षारीय झील है। सामान्य तौर पर ७ से अधिक Ph मूल्य वाले पानी को अल्कधर्मी और जिस अल्कधर्मी पानी में सोडियम क्षार अधिक होते हैं उसे क्षारीय झील कहा जाता है । यह महाराष्ट्र का एक अकेला राष्ट्रीय भू-वारीस स्थल है। भारत में ऐसे ३४ स्थल हैं जिनमें सर्वाधिक १२ राजस्थान में हैं।

तीन अरब साल पुराना क्रेटर-

वैज्ञानिकों ने उल्का पिंड से धरती पर बने सबसे बड़े गढ़दे को खोज निकालने का दावा किया है। उनका मानना है कि इस क्रेटर का निर्माण लगभग ३ अरब साल पहले हुआ था। यह क्रेटर ग्रीनलैंड के मैनिस्सॉक शहर के पास लगभग १०० कि.मी. तक फैला हुआ है। डेनमार्क के शोधकर्ता अँडम गार्ड ने बताया कि क्षरण होने से पहले यह क्रेटर लगभग ५०० कि.मी. से अधिक चौड़ा था और इसका निर्माण ३० कि.मी. चौड़े उल्का पिंड से होना चाहिए। 'डेनमार्क अँण्ड ग्रीनलैंड जिऑलॉजिकल सर्वे' शोधपत्र में यह बात कही गई है।

इस क्रेटर की खोज से पहले दक्षिण अफ्रीका का 'व्रेडेफोर्ट' सबसे पुराना क्रेटर माना जाता था। समझा जाता है कि यह करीब दो अरब वर्ष पुराना है। ३०० कि.मी. चौड़े इस विशाल क्रेटर के अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं।

पृथ्वी पर प्राप्त, सबसे बड़ा उल्का पाषाण ६० टन भार का है। वह नामिबिया के एक खेत में १९२० में मिला था। उसे 'होबा' नाम दिया गया है। ८० हजार वर्षों से वह जहां गिरा था वहीं पड़ा है। वर्ष १९६७ में ३७ टन भार का उल्का पाषाण आर्जेन्टीना में खोजा गया था। दूसरा सबसे बड़ा पाषाण भी आर्जेन्टीना के ही कॅम्पो डेल सिएलो यहां खोजा गया है। यह अखंड है। लेकिन उसके कारण कई विवर बने हुए हैं। उसमें ७८ x ६५ मीटर का विवर सबसे बड़ा है।

- हाल ही में हुए एक अध्ययन के अनुसार पिछले एक लाख साल में उल्का टकराव से बना सबसे बड़ा गढ़दा उत्तर-पूर्व चीन के हीलॉगजियांग प्रांत में मिला है। इसका व्यास 1.85 कि.मी. और गहराई 300 मीटर है। गढ़दे में मौजूद सतह की उंचाई 150 मीटर है। यह गढ़दा एक लाख साल पुराना है। ऐसे गढ़दों को 'मिटियोराइट इम्पैक्ट क्रेटर' कहते हैं। इसे नाम दिया गया है 'द ईलान क्रेटर'। यहाँ 100 मीटर चौड़ा उल्कापिंड टकराया होगा।
- साल के कुछ दिन ऐसे होते हैं जब भारी उल्कापात को देखा जा सकता है। उन्हें नाम भी दिए गये हैं--

१) क्वाड्रंटिड्स(Quadrantids)-जनवरी ३-४ , २) लायरिड्स(Lyrids)-एप्रिल २२-२३ , ३)

अँक्वेरिड्स(Aquarids)-मई ५-६ ,

४) डेल्टा अँक्वेरिड्स(Delta Aquarids)-जुलाई २७-२८ , ५) पर्सिड्स(Persids)-अगस्त 11-१२ ,

६) ओरायनिड्स(Orianids)- अक्टूबर २१-२२ , ७) डियोनिड्स-नवम्बर १७-१८ , ८)

जेमिनिड्स(Geminids)-दिसंबर १३-१४

धूमकेतु

धूमकेतुओं के बारे में माना जाता है कि ये सौर प्रणाली में मौजूद बेहद पुरानी धूल और बर्फ के पिंड हैं। इनका निर्माण करीब ४.६ अरब साल पहले ग्रहों के निर्माण के बाद बचे मलवे से हुआ था।

अब नासा के वैज्ञानिक दावा करने लगे हैं कि एक अदृश्य तारा (ब्राउन ड्वार्फ), जो गुरु से पांच गुना बड़ा है, संभवतः हमारे सौर मंडल के करीबी क्षेत्र में होना चाहिए, जो बीच-बीच में धूमकेतुओं को पृथ्वी की दिशा में ठेलता है। प्रत्येक २.६ करोड़ वर्षों बाद पृथ्वी पर होने वाले महाविद्वंस के लिए भी यही उत्तरदायी होना चाहिए। इस तारे को 'नेमेसिस' नाम दिया गया है। यह तारा हमारे सौर परिवार की मर्यादा के बाहर अदृश्य रूप में होना चाहिए, एक मृत तारा। उससे केवल इन्फ्रारेड विकिरण उत्सर्जित होना चाहिए। उसने पृथ्वी-सूर्य अंतर के, २५००० गुना दूरी से परिक्रमा करनी चाहिए। इस तारे की चक्रण गति के कारण उसका गुरुत्वाकर्षण बल, ऊर्ट बादल से बर्फीले पिंड बाहर खींचता हो और यही पिंड धूमकेतु के रूप में पृथ्वी की ओर फेंके जाते हैं। लोउसिअना यूनिवर्सिटी के प्रो. जॉन मॅट्टेसे का यही कहना है।

ऊर्ट बादल यह पत्थरों और धूल का ऐसा क्षेत्र है जो नेमेसिस-पृथ्वी के अंतर के दुगुने दूरी तक फैला है। आम तौर पर तारे का गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र, उसके करीबी तारे की दूरी के एक तिहाई होता है। सूर्य के आसपास के अवकाश में होने वाले तारे, एक दूसरे से औसतन तीन प्रकाशवर्ष दूरी पर हैं। अर्थात् सूर्य के गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव ५० हजार ज्योतिषीय एकक अंतर से कुछ अधिक है या उसकी मर्यादा ६६००० ज्योतिषीय एकक हो सकती है। इस दूरी से अगर कोई वस्तु उसकी प्रदक्षिणा कर रही हो तो सूर्य के पास से जाने वाले किसी तारे के कारण वह अपने नियोजित स्थान से या पथ से हट सकती है। नेमेसिस के अस्तित्व का एक प्रमाण हो सकता है सेडेना पिंड की अनियमित कक्षा।

सोहो अंतरिक्ष प्रयोगशाला--

सन ग्रेजिंग धूमकेतु--

‘ सोहो अंतरिक्ष यान ‘ यह सूरज का अध्ययन करने के लिए प्रक्षेपित किया गया नासा और यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी का संयुक्त अभियान था।

अल्पकालीन धूमकेतुओं में से कई धूमकेतु जब सूरज के निकट से गुजरते हैं तब उनका आकार छोटा होते जाता है चूंकि उनका कुछ हिस्सा पीछे छूटता है और वे सूर्य के आसपास ही मंडराते रह जाते हैं। इन धूमकेतुओं को ‘ सन ग्रेजिंग कॉमेट्स ‘ कहा जाता है। इनकी खोज सोहो अंतरिक्ष वेधशाला ने की। यह वेधशाला वर्ष १९९५ से कार्यरत थी। इसकी मदद से सूर्य का अंदरूनी हिस्सा, सौर मंडल, सौर तुफान तथा सूर्य के पास से गुजरने वाले धूमकेतुओं का अध्ययन किया गया है। सोहो की मदद से अबतक, सूर्य के निकटवर्ती लगभग २१०० धूमकेतुओं को खोजा गया है।

कई बार सूर्य और इन धूमकेतुओं के बीच की दूरी केवल कुछ हजार कि.मी. रह जाती है। ८३ % सनग्रेजर्स, क्रेउटज़ वर्ग के हैं। क्रेउटज़ १९ वीं सदी के जर्मन खगोलविद् थे जिन्होंने धूमकेतुओं का गहन अध्ययन किया था। उन्हींके नाम पर यह नामकरण हुआ है। ये धूमकेतु किसी बड़े धूमकेतु के टुकड़े होने चाहिए जो कमसेकम २००० वर्ष पूर्व खंडित हो गया होगा। प्रथम सनग्रेजर धूमकेतु ३०/३१ अगस्त १९७९ को अमेरिकी उपग्रह द्वारा ढूंढा गया था। उसे नाम दिया गया है c/1979Q1 (सोलो विंड)।

धूमकेतु-147/P

कुशिदा-मुरामत्सु(147/P) यह धूमकेतु १९४९ से लेकर तो १९६१ तक अर्थात् १२ साल तक, बृहस्पति का उपग्रह बनकर उसके चक्कर लगाता रहा। लेकिन इस दरम्यान उसकी कक्षा अनियमित ही थी फिर भी उसने बृहस्पति के दो चक्कर लगाए। ऐसी घटनाएँ बहुत कम ही हुई हैं। कई घटनाओं में, बृहस्पति की पकड़ में आए धूमकेतु ने बृहस्पति का पूरा चक्कर भी नहीं लगाया।

उडनतशतरी

उडनतशतरियां नजर आने की घटनाएँ पूरे विश्व में घटित हुई हैं और इनका क्रम अब भी जारी है, ऐसा दावा किया जाता है। वर्ष १९४७ से लेकर तो १९६८ तक अमेरिका की वायुसेना ने उडनतशतरियों को राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा मानते हुए मामले की सघन जांच की। अमेरिकी

वायुसेना का यह अभियान ' प्रोजेक्ट ब्लू बुक ' के नाम से प्रसिद्ध है। १९४७ और १९६९ के बीच अमेरिकी वायुसेना ने उडनतश्तरियों से संबंधित कुल १२६१८ मामलों की छानबीन की थी। इनमें से ९० % मामले कुछ अन्य बातों से उत्पन्न भ्रम मात्र थे। लेकिन ७०१ अर्थात् कुल मामलों के ५.६ % रिपोर्ट्स ऐसी थीं जिनकी व्याख्या नहीं की जा सकी।

सोवियत संघ में भी उडनतश्तरियों के मामलों को उच्च प्राथमिकता देते हुए रूसी वैज्ञानिकों के एक टीम ने -जिसमें केजीबी के अधिकारी भी शामिल थे- १९७८ से १९९० तक लम्बी जांच-पड़ताल की। हजारों मामलों की छानबीन की गई लेकिन उनमें से अधिकतर भ्रम ही पाए गए। लेकिन यहाँ भी कुछ मामलों के संदर्भ में वैज्ञानिकों के पास कोई व्याख्या नहीं थी।

दोनों महाशक्तियों की जांच का परिणाम एक सा निकला। अति गोपनीयता की मुहर लगी फाइलें किन्हीं गुप्त स्थानों पर रख दी गई थीं। लेकिन समय के साथ शीतयुद्ध समाप्त हुआ तो दोनों देशों में ये फाइलें सामने आयीं। लेकिन ऐसी ही एक रोजवेल घटना के बाद अमेरिका के सेना प्रमुख ने अपना दृष्टिकोण घोषित किया था कि हम न इसका समर्थन करते हैं, न खंडन।

यूफॉलॉजी : UFO से संबंधित रिपोर्ट्स, उनकी गतिविधियाँ संबंधित प्रमाणों आदि का अध्ययन ही यूफॉलॉजी है। अध्ययनकर्ता को ' यूफॉलॉजिस्ट ' कहा जाता है।

विशिष्ट लघुग्रह

सेरेस--

मंगल और बृहस्पति ग्रहों के बीच क्षुद्र ग्रहों का जो पट्टा है उसमें सेरेस सबसे बड़ा पिंड है। वर्ष २०१८ में एक अंतरिक्षयान इससे केवल ३५ कि.मी. दूरी से गुजरा था। उससे प्राप्त आकड़ों के आधार पर यह ज्ञात हुआ कि इसकी सतह के नीचे खारे पानी का विशाल सागर मौजूद है ।-----
----- (लो.स. नागपुर , मेट्रो एक्सप्रेस , २१-८-२०२०)

लघुग्रह--

- १) मंगल की कक्षा से करीबी लघुग्रह ये मंगल के समान ही अधिक घनता के हैं तो बृहस्पति की कक्षा के पास वाले, बृहस्पति के समान ही कम घनत्व के हैं।

२) अभी तक दस भारतियों के नाम लघुग्रहों को दिये गये हैं। २०१९ में संगीतकार पं. जसराज का नाम एक लघुग्रह को दिया गया है।

३) पृथ्वी के सबसे करीब से गुजरा पिंड : वैसे तो पृथ्वी के करीबी कई लघु पिंड हैं जिन्हें NEA(Near Earth Astreroid) कहा जाता है। उनमें से कोई न कोई हमेशा ही पृथ्वी के करीब से गुजरता ही है। लेकिन अब तक सबसे करीब से १५/१६ अगस्त २०२० को एक पिंड केवल २९५० कि.मी. अंतर से गुजरा। उसका आयाम १०-२० फीट का था। उसे २०२० QG लघुपिंड नाम दिया गया है।

४) NEO के प्रकार : १) कर्ब प्रधान (Carbonaceous २), धातु प्रधान (Metallic-मुख्यतः लोहा-निकेल), ३) अश्म प्रधान (Stony), ४) गुरुत्वाकर्षण के कारण एकत्र आए लघुग्रह का समूह (Rubble Pile)

५) अभी तक ग्यारह लाख लघुग्रहों की पहचान हुई। उनमें १५० के अपने चंद्रमा हैं।

लघुग्रहों की ओर अंतरिक्षयान :

अ) जापान ने २०१४ में छोड़े एक अंतरिक्षयान ने पृथ्वी से तीस करोड़ कि.मी. दूरी के एक ' Ryugu ' नाम के लघुग्रह से एकत्र किए मिट्टी-पत्थर के नमूनेवाला कैप्सूल, ६-१२-२०२० को ऑस्ट्रेलिया के एक दूर के इलाके से, सहिसलामत स्थिति में प्राप्त किया गया। इस अभियान का नाम Hayabusa-२ है। इस कैप्सूल ने एक साल पहले उस लघुग्रह को छोड़ा था। अब अंतरिक्षयान एक अन्य लघुग्रह १९९८-K१/२६ की ओर बढ़ रहा है। (Hitvad ७-१२-२०२०)

आ) अवकाशयान का ' बेन्नु ' लघुग्रह पर सफल अवतरण :

नासा ऑसिरिस रेक्स (दी ओरिजिन्स, स्पेक्ट्रल इंटरप्रिटेशन रिसोर्स आयडेंटिफिकेशन, सिक्योरिटी रिगोलिथ एक्स्प्लोरर) अवकाशयान ने 'बेन्नु' नाम के लघुग्रह पर सफल अवतरण किया और अपने यांत्रिक बाहुओं से वहां की शिलाएं तथा धूल के नमूने एकत्र किए। ये शिलाएं सौरमंडल के उत्पत्ति के समय की मानी जाती हैं। उन्हें अब धरती पर लाया जाएगा। यह लघुग्रह पृथ्वी से ३२.१ करोड़ कि.मी. दूर है। नमूने एकत्र करने में चार घंटे लगे। इस अभियान को ' टच अँड गो ' नाम दिया गया

हैं। हो सकता है एकत्र करने का एक और प्रयत्न किया जाए, चूंकि परीक्षण के लिए कम से कम साठ ग्रॅम नमूने आवश्यक हैं। यह यान अपनी वापसी मार्च २०२१ को शुरू करेगा और पृथ्वी पर नमूने वर्ष २०२३ में उपलब्ध हो जाएंगे।----- (लोकसत्ता :पृष्ठ 11 : २२-१०-२०२०)

इ) लघुग्रह साईक १६ -

यह एक २२६ कि.मी. व्यास का बड़ा क्षुद्र ग्रह है जिसे १७-०३-१८५२ को इटली के खगोलशास्त्री एनीबेल डी. गास्प्येर ने खोजा था। इसके बारे में माना जाता है कि, यह कभी पूरा ग्रह रहे पिंड का क्रोड होना चाहिए जो लोहे और निकेल से भरपूर है, जैसा कि पृथ्वी का क्रोड है। इसके लिए नासा अगस्त २०२२ में एक यान प्रक्षेपित करेगा। यह उस लघुग्रह पर २०२६ के शुरू में उतरेगा।----- (लो. स. : मेट्रो एक्सप्रेस : २६-८-२०२०)

लॅंग्रेज बिंदु -

जहाँ सूर्य और ग्रह की गुरुत्वाकर्षण शक्तियाँ समान होती हैं, उसे लॅंग्रेज बिंदु कहते हैं। लघुग्रहों के मुख्य पट्टे के सिवाय ऐसे बिंदुओं के पास भी लघुग्रह हैं। उन्हें ' ट्रोजन ग्रह ' कहते हैं। गुरु के साथ सूर्य के गिर्द घूमने वाले लघुग्रह हैं। उनका भ्रमण काल सामान्य तौर पर गुरु के कक्षीय भ्रमणकाल इतना ही है। ये दो वर्गों में वर्गीकृत हैं। एक वर्ग के लघुग्रह बृहस्पति से ६०^0 आगे हैं तो दूसरे के ६०^0 पीछे। आकार की दृष्टि से ये सभी २० से लेकर तो ८० कि.मी.व्यास के हैं।

पृथ्वी गिर्द भी ऐसे लघुग्रह घूम रहे हैं यह हमने पीछे ही देखा।

ऐसे ग्रहों की संख्या लाखों में है। नासा के अनुसार ऐसे १६००० लघुग्रहों की पहचान की जा चुकी है।

- a) लघुग्रहों में लगभग १५० के, एक/दो चंद्र भी हैं।
- b) जोड़ी से एकदूसरे की परिक्रमा करनेवाले अर्थात् द्वयी या बायनरी लघुग्रह भी हैं।
- c) इनका तापमान आमतौर पर - ७३ ^{0} सें. रहता है।

d) ३० जून को जागतिक लघुग्रह दिन मनाया जाता है - ३० जून १९०८ को ही सायबेरिया के तुंगस्का में हुई थी लघुग्रह, पृथ्वी से टकराने की घटना। उसीकी स्मृति में यह मनाया जाता है।

कुछ ब्रह्माण्डीय पिंड—

औमुआमुआ (Aumuamua)

अंतरिक्ष में यह एक ऐसी वस्तु है जो धूमकेतु जैसी है लेकिन जिसको पूंछ नहीं है। अर्थात् इसका बाष्पीभवन नहीं हो रहा है। स्वरूप लघु ग्रह जैसा है। लेकिन इसकी विशेषता यह है कि लम्बाई ४०० मीटर तो चौड़ाई उसके लगभग १० गुना है। अर्थात् आकार एक सिगार जैसा है। लम्बाई-चौड़ाई का अनुपात 1 : 10 है। हमारे सौर मंडल में ऐसे आकार का कोई पिंड नहीं है। यहाँ लम्बाई-चौड़ाई का अनुपात 3 : 1 से अधिक वाला कोई पिंड नहीं है। इसका रंग भूरा है। यह ७.३ घंटे में अपना एक चक्रण पूरा करता है।

अगर विकेंद्रता (Eccentricity) 0 है तो वह भ्रमणकक्षा पूरी तरह वलयाकार होगी। एक से कम है तो दीर्घ वृत्ताकार (elliptical) होगी। पृथ्वी की eccentricity 0.०१७ है। अगर यह एक से ज्यादा होगी तो वह पिंड अतिपरवलिक (Hyperbolic) पाथ का अनुसरण करेगा। लेकिन ये सूर्य का पूरा चक्कर नहीं लगाता। हेली धूमकेतु के लिए यह कीमत 0.९६७ है। अगर eccentricity १.२ या इससे अधिक हुई तो वह पिंड सूर्यमंडल से बाहर निकल जाएगा। औमुआमुआ की गति ७०००० कि.मी./ घंटा है और यह भी सूर्यमंडल से बाहर चला जाएगा चूंकि इसकी गति, सौर तंत्र की पलायन गति की तुलना में अधिक है।

इसे सर्वप्रथम 19 अक्टूबर 2017 को देखा गया था और शुरू में नाम दिया गया था C/२०१७ U-१। इकट्ठा किए गये डाटा के अनुसार यह सूर्य करीब से 9-9-2017 को गुजरना चाहिए। तब उसकी गति रही होगी, 96,000मील/घंटा।



Image credit:- Google images

बाह्य ग्रह-

१) Gliese ४३६ B : आग में जलता हुआ बर्फीला ग्रह (बर्फ से ढंका हुआ)। लाखों सालों से यह ऐसा ही जल रहा है। फिर भी इसका बर्फ ठोस है। तापमान ४४० डि.से. है। यह तारे के बहुत करीब(४० लाख कि.मी.) है । इसकी खोज ३१ अगस्त २००४ को R.Paul Butler और Jefari Marsi ने की थी। इसका तारा रेड स्टार है। लेकिन इसका तापमान और ठोस बर्फ की उपस्थिति एक पहेली है।

- ग्रह अगर उसके तारे के कुछ अधिक ही करीब होगा तो तारे के गुरुत्व अन्योन्यक्रिया के कारण ग्रह के परिवर्तन को तारा रोक सकता है। ऐसी स्थिति को Tidal locking कहते हैं। लेकिन ऐसी स्थिति में ग्रह की एक बाजू हमेशा तारे की तरफ और गर्म रहेगी तो दूसरी अंधेरी और ठंडी रहेगी । लेकिन इनके बीच एक पट्टी पूरे ग्रह को घेरे रह सकती है जहां जीवनानुकूल परिस्थिति हो सकती है। इस पट्टी को Terminator Belt कहते हैं।
- २०२० अन्त तक ढूँढे गये बाह्य ग्रहों की संख्या ४३२४ थी।
- वैज्ञानिकों के दावे के अनुसार पहली बार आकाशगंगा के बाहर मेसियर ५१ इस दीर्घिका में (२ करोड़ ८० लाख प्रकाशवर्ष दूर) एक बाह्य ग्रह देखा गया है।
- ग्रह का गुरुत्व उसके चंद्रमा को बार-बार संकुचित और विस्तारित करते रहता या मथते रहता है। इस कारण ऊष्मा पैदा होती है जो काफी अधिक भी हो सकती है । इसे Tidal heating कहते हैं।
- बृहस्पति से दस गुना बड़ा एक बाह्य ग्रह ढुंढा गया है। इसका परिक्रमा पथ, बृहस्पति के परिक्रमा पथ से सौ गुना चौड़ा है। इस नये ग्रह की खोज स्वीडन की स्टॉकहोम युनिवर्सिटी के खगोलशास्त्री मार्क्स जैन्सन और उनकी टीम द्वारा चिली के रेगिस्तान में स्थित एक बड़े यूरोपीयन टेलिस्कोप के माध्यम से की गयी। इसे एक ऐसे तारे के पास पाया गया है जो सूर्य से तीन गुना से भी अधिक बड़ा है और उच्च तापमान के कारण यह अत्यधिक मात्रा में युवही और क्ष किरणें उत्सर्जित करता है। यह हमारे सौरमंडल से 325 प्रकाशवर्ष दूर है। इस ग्रह की आयु 1.5 करोड़ वर्ष है। यह गॅस से भरा हुआ है। इसे बी सेंटोरी बी नाम दिया गया है। इसे अबतक खोजे गये बाह्य ग्रहों में सबसे बड़ा कहा गया है। अपने मुख्य तारे से इसकी दूरी 8368 करोड़ कि.मी.है। वैज्ञानिक अबतक यही मानते आ रहे थे कि सूर्य से तीन गुना बड़ा कोई तारा होगा तो उसकी विकिरणें इतनी तेज होगीं कि किसी

भी ग्रह के लिए इसके चक्कर लगाना संभव नहीं होगा। यह उसे जला देगा। यहाँ स्थिति अलग है।

- ट्रेस-2b यह अबतक ज्ञात सर्वाधिक स्याह बाह्य ग्रह है। इसे 'केपलर 2 b' भी कहा गया है। यह GSC-03549-02811 इस तारे का चक्कर काटता है जो हमसे 750 प्रकाशवर्ष दूर है। इसे 2006 में ही खोजा गया था। सर्वाधिक काला कोयला, जो उसपर गिरने वाले प्रकाश का 1% से भी कम प्रकाश परावर्तित करता है। यह ग्रह उससे भी काला है। यह वायु से बना है और बृहस्पति से 1.45 गुना बड़ा है। बृहस्पति की परावर्तन क्षमता 33% है। लेकिन उसके तारे से केवल 30 लाख कि.मी. दूर है और उसका परिक्रमा काल केवल 2.5 दिन है। अर्थात् गर्म ग्रह है। इतना स्याह होने का कारण अज्ञात है।

सौरमण्डल के ग्रह -

नौवां ग्रह : द्रव्यमान की दृष्टि से पृथ्वी से दस गुना बड़ा होना चाहिए। इसकी कक्षा दीर्घ वर्तुलाकार Elliptical है - १९.८ - १००.२ अरब मील। गति बेहद धीमी है। सूर्य परिक्रमा काल १०००० वर्ष होना चाहिए।

बृहस्पति : इसका चुंबकीय क्षेत्र ३० लाख कि.मी. तक फैला है। यह सर्वप्रथम उत्पन्न ग्रह है।

यूरेनस : यह सौरमंडल का एकमात्र ग्रह है जिसका विषुववृत्त, उसकी कक्षा के 90° पर है और धुरी का झुकाव 97.76° है। इसका कारण हो सकता है दूर अतीत में इसका पृथ्वी इतने बड़े ग्रह से टकराव होना। इसके दोनों ध्रुव इसके विषुववृत्त पर हैं इस कारण सूर्य की किरणें सीधी इन ध्रुवों पर पड़ती हैं। इसका वर्ष पृथ्वी के ८४ वर्षों के बराबर होने से एक ध्रुव पर दिन तो दूसरे पर रात, ४२ वर्षों की होती है।

- सौर परिवार में बुध की कक्षा सबसे अधिक दीर्घवृत्ताकार है। उसकी विकेंद्रता 0.2056 है।
- शुक्र का विरुद्ध दिशा में परिवलन -

जिससे ग्रह बने वह महाबादल घड़ी की सुइयों की विरुद्ध दिशा में परिवलन कर रहा था तो यह लाजमी है कि उससे बनने वाले पिंडों का परिवलन भी उसी दिशा में हो। सूर्य के परिवलन की दिशा भी वही है। (गुरुत्वाकर्षण के कारण अभीकेन्द्री (Centripetal) बल पैदा होता है और इस कारण परिवलन होता है ।) लेकिन शुक्र का परिवलन उलटी दिशा में है। इस विषय में दो मत हैं-

- १) सूर्य की ज्वारीय तरंगों का शुक्र पर होने वाले परिणाम के कारण सूइयों की विरुद्ध दिशा में होने वाला परिवलन समय के साथ धीमा होता गया। वह शून्य कोनीय गति से गुजरते हुए ऋणात्मक कोनीय गति में परिवर्तित हो गया या उसने सूइयों की दिशा में घूमना शुरू कर दिया। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि वहाँ, दिन साल की कालावधि से बड़ा क्यों है।
- २) दूसरा सिद्धांत यह बताता है कि शुक्र की किसी बड़े पिंड से टक्कर हुई होगी। परिणामतः उसका कोनीय संवेग ही बदल गया होगा।
 - ग्रहों के जिन उपग्रहों का परिवलन सूइयों की घूमने की दिशा में है, उनके विषय में माना जाता है कि वे पिंड हमारे सौर परिवार के बाहर के होने चाहिए जिस कारण उनका कोनीय संवेग मूल बादल के कोनीय संवेग के अनुसार होने की आवश्यकता नहीं। वे सौर परिवार की पकड़ में आ गये। सौर परिवार में ऐसे उपग्रहों की संख्या आधा दर्जन है।
 - सबसे बड़े ज्ञात ग्रह -
 - १) HD १००५४६ b : इसकी त्रिज्या बृहस्पति से ६.९ गुना है। द्रव्यमान २० गुना है।
 - २) GQलूपब : त्रिज्या- (३+/- 0.५) गुना।
 - ३) ROX_s 42B_b : २.५ गुना बड़ी त्रिज्या।
 - ४) c. T. chab : त्रिज्या २.२९ गुना, बृहस्पति के।

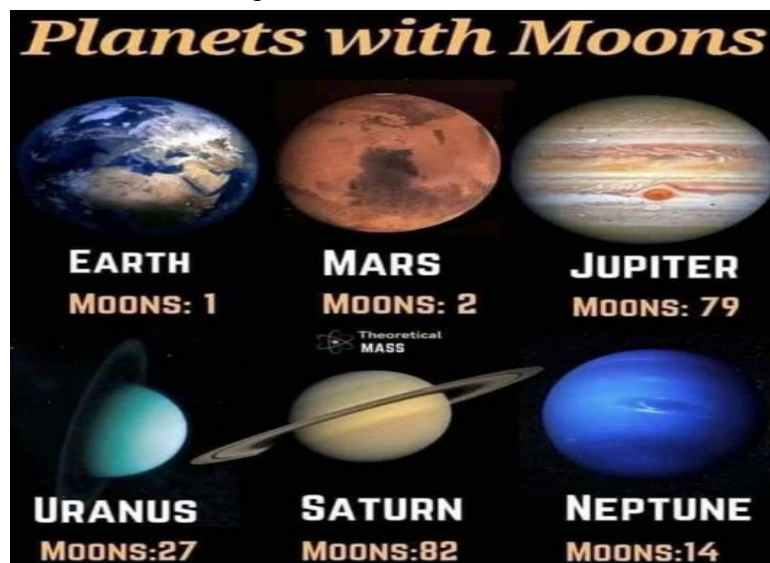


Image credit:- Google images

हमारा चंद्रमा

चंद्र उत्पत्ति के सिद्धांत

इतने सारे सिद्धांत सामने आने के बाद भी चंद्र जन्म का रहस्य अभी तक स्पष्ट नहीं हुआ है।

१) विभाजन सिद्धांत : शुरू में चंद्र पृथ्वी का ही एक हिस्सा था। कालांतर में वह उससे अलग हुआ।

जब पृथ्वी द्रव रूप में थी और बहुत अधिक गति से परिवलन कर रही थी तब केंद्रोत्सारी बल अत्याधिक होने के कारण उसका कुछ हिस्सा उससे अलग हुआ जो चंद्रमा में रूपान्तरित हो गया। यह सिद्धांत जॉन डार्विन ने रखा था। उनके अनुसार यह हिस्सा पॅसिफिक महासागर से निकला होना चाहिए। लेकिन इसे स्वीकार करने में सबसे बड़ी बाधा यह है कि अगर यह पृथ्वी का ही हिस्सा है तो दोनों के रासायनिक घटक समान होने चाहिए। लेकिन उनमें काफी फर्क है। अंततः इसे मान्यता नहीं मिली।

लेकिन चंद्रमा के ऑक्सीजन आयसोटोप का संयोजन वैसा ही है जैसा पृथ्वी का। जबकि यह, सौर मंडल के अन्य हिस्सों की शिलाएं तथा लघुग्रहों के लिए अलग है। यह बात बताती है कि चंद्रमा की उत्पत्ति पृथ्वी से करीबी रहे मलवे से हुई है।

२) भगिनी सिद्धांत : सौर तेजोमेघ से साथ-साथ पृथ्वी और चंद्र का निर्माण हुआ। इसे मानने में दिक्कत यह है कि पृथ्वी की घनता ५.५ ग्रॅम / घन से.मी. है तो चंद्र की ३.३। इतना अंतर क्यों ? चंद्र पर लोहे का प्रमाण इतना कम क्यों ? चंद्र के चुंबकीय ध्रुव नहीं हैं। अतः उसका लोहे की अधिकता वाला घना केंद्रीय क्रोड भी नहीं है।

३) हस्तगत सिद्धांत : सौर क्षेत्र में कहीं और चंद्र उत्पन्न हुआ और कालान्तर में पृथ्वी ने उसे गुरुत्वाकर्षण से अपनी गिरफ्त में ले लिया। यह गेस्टेनकॉर्न का सिद्धांत है। लेकिन चंद्र जैसा बड़ा पिंड पृथ्वी की दिशा में आने के बाद तुरन्त उसकी परिक्रमा करना शुरू कर देगा यह संभव नहीं। इस प्रक्रिया में चंद्र की काफी ऊर्जा खर्च होगी। अतः उसकी भ्रमण कक्षा अधिक दीर्घ गोलाकार होनी चाहिए थी। लेकिन वह लगभग गोलाकार है। साथ-साथ उनकी संरचनाओं में कुछ समानताएं भी हैं। इस सिद्धांत को भी अंतिम रूप से मान्यता नहीं मिली।

४) **धड़क सिद्धांत** : मंगल के आकार की कोई खगोलीय वस्तु पृथ्वी से टकराई। इस टक्कर के कारण पृथ्वी का एक बड़ा हिस्सा टुकड़ों के रूप में अंतरिक्ष में छिटका। शुरू में तो उससे एक छल्ले के रूप में पृथ्वी के चारों ओर घेरा बना, जिसने बाद में चांद का रूप ले लिया।

यहाँ एक समस्या यह है कि पृथ्वी की औसत घनता ५.५ ग्रॅम / से. मी.^३ है जबकि चंद्र की ३.३ । इसका कारण है चंद्र में लोहे की कमी। पृथ्वी की लोहे की बहुत बड़ी कोर है जबकि चंद्र की नहीं। इसका कारण दिया जाता है कि जिस किसी बड़े पिंड का पृथ्वी से टकराव हुआ, उस टकराव से पहले ही पृथ्वी का लोहा केंद्र में पहुंच कर एकत्र हो गया था। इसी कारण टकराव से पृथ्वी और पिंड से जो मलवा उछला वह लोहे से युक्त नहीं था। टकराव में टकराने वाले पिंड का लोहा पिघलकर पृथ्वी की लोहे की कोर के साथ मिल गया था। कॉम्प्यूटर मॉडल यही बताता है ।

अगर चंद्र की उत्पत्ति उत्क्रांती के रूप में हुई होती तो यह बताना मुश्किल है कि क्यों अन्य ग्रहों के, (प्लेटो छोड़कर) उनके अपने आकार के बड़े प्रतिशत इतने बड़े उपग्रह नहीं हैं।

वातावरण रहित चंद्र -

किसी भी वायु के अणुओं का तापमान अगर $- 273^{\circ}$ से. से ऊपर होगा तो वे गतिमान होते हैं। ग्रह पर वातावरण होगा या नहीं यह बात इसपर निर्भर होती है कि उस ग्रह के लिए मुक्तिवेग कितना है। चंद्र के लिए यह मुक्तिवेग २.४ कि.मी. प्रति सेकंड है। चंद्र पर दोपहर के समय अधिक से अधिक तापमान १२०° सेल्सियस होता है। इस तापमान पर भिन्न-भिन्न वायु के अणुओं की औसत गति इस प्रकार होगी - हैड्रोजन २.२ कि.मी./ सेकंड, प्राणवायु 0.५५ कि.मी./से., नत्रवायु 0.६० कि.मी./से., बाष्प 0.७३५ । ग्रहगोल से वातावरण कितनी तेजी से नष्ट होगा यह अणु की औसत गति और मुक्तिवेग इनके गुणोत्तर पर निर्भर है। मान लो, यह गुणोत्तर 0.३३ हो तो वायु कुछ ही सप्ताह में अंतरिक्ष में छिटक जाएगा। गुणोत्तर 0.२ हो तो इसके लिए कुछ लाख वर्ष लगेंगे। वातावरण नष्ट होगा का अर्थ, वायु के अणुओं की गति मुक्तिवेग से अधिक होने के कारण वे अंतरिक्ष में निकल जाएंगे, वापस न लौटने के लिए।

चंद्र के लिए यह गुणोत्तर इस प्रकार हैं - हैड्रोजन 0.९ , प्राणवायु 0.२३ , नत्रवायु 0.२५ , बाष्प 0.३ । अर्थात् चंद्र के जन्म के समय उसपर वातावरण होगा तो भी उसमें से हैड्रोजन और बाष्प बहुत जल्दी ही अंतरिक्ष में रुखसत हो गये होंगे। प्राण और नत्र भले ही पीछे मंडराते रहे हों

लेकिन एखादा अरब वर्षों के लिए ही। जिसका अणुभार ४३ से कम हो ऐसा कोई भी वायु आज चंद्र पर बचा नहीं है।

चंद्र की आयु--

पृथ्वी पर, ज्वालामुखी से निकलने वाले लावे से अभी भी शिलाएं बनती हैं। लेकिन चंद्र के पुरातनतम ऊंची जगह से लायी शिलाएं ४९० करोड़ साल पुरानी हैं तो निचली स्थानों से लायीं, सबसे अर्वाचीन शिलाओं की आयु ३००-३७० करोड़ साल आंकी गयी है। अर्थात् चंद्रमा की आयु ४९० करोड़ वर्षों से तो निश्चित रूप से अधिक है। लेकिन शायद नयी शिलाएं बनने की प्रक्रिया ३७० करोड़ वर्ष पूर्व रुक गयी होगी।

चंद्र के गुरुत्व का पृथ्वी पर परिणाम--

चंद्र के आकर्षण के कारण समुद्र में ज्वारभाटा आता है यह तो हमें पता है। अर्थात् चंद्र आकर्षण के कारण समुद्र के पानी में उभार आता है। उसी तरह ऐसा ही परिणाम भूपृष्ठ पर भी होता है। अर्थात् भूपृष्ठ या जमीन में उभार आता है। इस कारण भूपृष्ठ २२ से.मी. ऊपर-नीचे होता है। लेकिन इस कारण पृथ्वी के आकार में कोई स्थायी परिवर्तन नहीं होता। इसका कारण है, पृथ्वी की स्थितिस्थापकता। कहा जाता है कि यह फौलाद इतनी या उससे भी थोड़ी ज्यादा है।

पृथ्वी पर ज्वारभाटा उत्पन्न करने से पृथ्वी के अक्ष भ्रमण को धीरे-धीरे कम करते हुए चंद्रमा पृथ्वी के अपनी ओर के आकर्षण को कम कर रहा है। उसकी इस करामात के कारण पृथ्वी और चंद्रमा के बीच का अंतर प्रतिवर्ष ३.८ से.मी. बढ़ता जा रहा है। अतः १०० सालों में, दिन २ मिली सेकंड से बड़ा होता जाएगा। और दूरी बढ़ने की यह प्रक्रिया आगे भी जारी रही, जिसकी पूरी संभावना है, तो दूर भविष्य में एक समय ऐसा आएगा जब चंद्र, सूर्य का ग्रह बन जाएगा और तब पृथ्वी का कोई उपग्रह नहीं होगा।

चंद्र के गिर्द तेजोवलय --

आकाश में काफी ऊँचाई पर कई बार छितरे बादल बन जाते हैं। उनमें बर्फ के अनगिनत स्फटिक होते हैं। उनका आकार षटकोणी होता है और अपवर्तन कोन 60° का होता है। प्रकाश किरण स्फटिकों में से गुजरने लगे कि वे मूल दिशा से विचलित होते हैं। बर्फ के षटकोणी स्फटिकों के कारण पैदा होने वाला न्यूनतम विचलन कोन 22° का होता है। यही तेजोवलय की

कोनीय त्रिज्या होती है। चंद्र की दिशा में आकाश की ओर देखने पर और चंद्र को केंद्र मानकर 22° कोनीय व्यास के व्याप्ति का तेजोवलय बना दिखता है। कभी-कभी उपरोक्त वलय के बाहर ४६ अंश कोनीय त्रिज्या का एक और धुंधला सा वलय दिखता है। इस विशिष्ट वलय के अंदर-बाहर ९० अंश अपवर्तन कोन वाले स्फटिक एकत्र आए रहते हैं। इन स्फटिकों से गुजरने वाले प्रकाश किरणों का न्यूनतम विचलन ४६ अंश से होता है। लेकिन यह दूसरा वलय बहुत कम दिखाई देता है।

सुपर मून आदि--

सुपर मून और माइक्रो मून

चंद्र की कक्षा कुछ अंडाकृति होने के कारण कभी वह पृथ्वी से करीब होती है तो कभी दूर। पास वाले बिंदु को 'पेरिजी' (Perigee Point) तो अधिकतम दूरी के बिंदु को 'अपोजी' (Apogee Point) बिंदु कहते हैं। चंद्र का पृथ्वी से औसत अंतर ३,८४,४०० कि.मी. है। चंद्र, पृथ्वी के चारों ओर घूमते समय, जिस पूर्णिमा के दिन सबसे कम दूरी पर या ३,५६,५०० कि.मी. या पेरिजी बिंदु पर आता है तो वह ३० % अधिक प्रकाशित और १४ % बड़ा दिखता है। उसे 'सुपर मून' कहते हैं। ऐसी स्थिति में समुद्र में ज्वार-भाटे की तीव्रता बढ़ जाती है। जिस पूर्णिमा के दिन वह अपोजी बिंदु पर आता है तो उसका अंतर सबसे अधिक या ४,०६,७०० कि.मी. होता है। उसका आकार छोटा दिखता है। इसे 'माइक्रो मून' कहते हैं।

ब्लू मून

चंद्र सूर्यप्रकाश के कारण सफेद दिखता है। फिर भी दो तरह की स्थितियों में चंद्र को 'ब्लू मून' कहते हैं।

- १) पृथ्वी की फेरी पूरी करने, चंद्र को २७.३ दिन लगते हैं। इस समय को 'नक्षत्रीय महीना' कहते हैं। लेकिन उसकी कलाएँ पूरी होने (पूर्णिमा से पूर्णिमा तक—Sideral Month) २९.५ दिन लगते हैं। इस समयावधि को 'चांद्रमास' (Synodic Month) कहते हैं। इस कारण एक महीने में आमतौर पर एक पूर्णिमा और एक अमावस्या आती है। लेकिन कभी-कभी संयोग से एक महीने में दो पूर्णिमाएँ आती हैं। उस समय दूसरी पूर्णिमा के चंद्र को 'ब्लू मून' कहते हैं।

ब्लू मून ' कहते हैं। जैसे अक्टूबर २०२० मास में दो और तीस अक्टूबर को पूर्णिमाएँ हुईं। अतः तीस अक्टूबर का चंद्र ' ब्लू मून था।

- २) खगोलीय ऋतुएँ, २१ मार्च से २१ जून, २१ जून से २२ सितम्बर, २२ सितम्बर से २२ दिसंबर और २२ दिसंबर से २१ मार्च ऐसी होती हैं। जिस तरह एक महिने में दो पूर्णिमाएँ आना संयोग की ही बात है, उसीतरह एक खगोलीय ऋतु में सतत चार पूर्णिमाएँ आना दूरलभ संयोग है। वर्ष २०२१ के २१ जून और २२ सितम्बर इस खगोलीय ऋतु में २४ जून, २३ जुलाई, २२ अगस्त तथा २० सितम्बर ऐसी चार पूर्णिमाएँ होंगी। तो २२ अगस्त की तिसरी पूर्णिमा का चंद्र ' ब्लू मून ' होगा।

ब्लड मून : (खग्रास चंद्र ग्रहण के दिन)

खग्रास चंद्रग्रहण के समय सूर्य का प्रकाश पृथ्वी द्वारा पूरी तरह रोका जाता है। फिर भी थोड़ा अधिक प्रकाश चंद्र पर गिरता ही है। इस प्रकाश को चंद्र तक पहुँचने के लिए पृथ्वी के वातावरण से होते हुए गुजरना पड़ता है। हम जानते हैं कि सूर्यप्रकाश यह भिन्न-भिन्न तरंगलम्बाई के सात रंगों का मिश्रण है। प्रकाश जिस समय पृथ्वी के वातावरण से गुजरता है तब उसमें अंतर्भूत अलग-अलग तरंग लम्बाइयों के सात रंग वातावरण में फैलते हैं। इनमें से लाल रंग की तरंगलम्बाई सर्वाधिक होने के कारण वह वातावरण में कम फैलता है और चंद्र पर गिरकर परावर्तित होता है। हम चंद्र को पृथ्वी से निहारते हैं, अतः खग्रास चंद्रग्रहण की स्थिति में जब वह पृथ्वी की घनी छाया में होता है तब वह हमें लाल रंग का दिखता है। इस कारण इसे 'ब्लड मून ' (Blood Moon) कहते हैं।

हमें चंद्र उपरोक्त छटाओं के साथ दिखने का भास होता है लेकिन उसका रंग वास्तव में वैसा नहीं होता।

- ग्रहों में परिवलन है जबकि चंद्र में क्यों नहीं ?

जब कोई पिंड, अधिक गुरुत्व वाले किसी पिंड के करीब पहुँचता तब वह बड़े पिंड के साथ इस तरह बद्ध हो जाता है कि उसका अपना परिवलन रुक जाता है। इसे 'Tidal Locking' कहते हैं। चंद्र के साथ ऐसा ही हुआ है। इस कारण परिक्रमा करते समय चंद्र की एक ही बाजू हमेशा हमारी तरफ रहती है। ऐसी ही बात शनि के करीबी चंद्र के बारे में भी हुई है। वह बाजू जो बृहत

गुरुत्व स्रोत की तरफ होती है वह गुरुत्वाकर्षण का अधिक बल अनुभव करती है (पीछे की बाजू की तुलना में)। चूंकि गुरुत्वाकर्षण अंतर के अनुपात में कम होता है। यह छोटे पिंड के परिवलन के लिए ब्रेक के तौर पर काम करता है। वैसे तो दोनों पिंड एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं लेकिन छोटे पर परिणाम अधिक होता है। मूलतः चंद्र का परिवलन होना चाहिए। यही प्रभाव पृथ्वी ने भी अनुभव करना चाहिए और धीरे-धीरे उसके परिवलन की गति कम होती रहनी चाहिए। आज परिवलन का एक चक्र २४ घंटे में पूरा होता है लेकिन किसी समय अधिक गति के कारण दिन १७ घंटे का ही होना चाहिए ।

हो सकता है कुछ दशलक्ष सालों बाद ये दोनों पिंड एकदूसरे के साथ Tidally Locked हो जाएंगे तब पृथ्वी की भी एक ही बाजू हमेशा चंद्रमा की ओर रहेगी और हमारी परिक्रमा करने जितना समय लेता है उतने ही समय का अर्थात् आज की तुलना में २७ दिन का हमारा दिन होगा। यह समय भी बढ़ता रहेगा चूंकि चंद्रमा प्रति वर्ष हमसे ४ से.मी. दूर जा रहा है। लेकिन हो सकता यह समय सूर्य की बची हुई आयु से भी अधिक हो ।

- अगर चंद्र पृथ्वी पर स्थित समुद्र की द्रव राशि को अपने साथ खिंचता है तो ऐसा करने में उसकी कुछ ऊर्जा खर्च होगी। ऐसे में ऊर्जा व्यय के कारण चंद्र को पृथ्वी के करीब आना चाहिए। अर्थात् उसकी कक्षा छोटी होनी चाहिए। लेकिन प्रत्यक्ष में वह दूर जा रहा है।

इसका कारण है पृथ्वी का परिवलन उसी दिशा में हो रहा है जो चंद्र के परिक्रमा की है। उसके इस परिवलन की कोनीय गति भी काफी अधिक है। वास्तव में पृथ्वी और उसके समुद्र, चंद्र को अपने साथ खींच रहे(Dragging) हैं। इस कारण चंद्र को ऊर्जा मिल रही है। यह उसे बड़ी कक्षा में ठेल रही है। पृथ्वी अपनी ऊर्जा खो रही है जो समय के साथ उसके घुमाव की गति धीमी करेगी।

पृथ्वी के और उपग्रह --

आभासी उपग्रह (Quasi Satellites)-

इस उप वर्ग में आने वाले पिंड वास्तव में लघु ग्रह हैं जो हमेशा पृथ्वी के आजु बाजु रहते हैं। पृथ्वी से देखने पर ऐसा लगता है मानो वे पृथ्वी के उपग्रह हों। प्रत्यक्ष में वे पृथ्वी की तुलना में अधिक उत्केंद्रता (Eccentricity) वाली लंबगोलाकार कक्षाओं में सूर्य के गिर्द ही परिभ्रमण करते हैं। उनकी कक्षा के अपसूर्यबिंदु परिसर में इन लघुग्रहों की गति पृथ्वी से कम होती है तो उपसूर्यबिंदु परिसर में वह अधिक होती है। इस कारण ऐसा आभास होता है कि ये

पृथ्वी की उलटी दिशा में घूमते हैं। सभी ग्रहों के ऐसे आभासी उपग्रह हैं। 2016H03 यह लघुग्रह दीर्घ काल तक पृथ्वी का आभासी उपग्रह रहेगा ऐसा, गणित बताता है।

हंगामी उपग्रह :

पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण जाल में अटककर कुछ लघुग्रह पृथ्वी के अस्थायी उपग्रह का रूप धारण कर लेते हैं। 2006RH120 यह लघुग्रह सितम्बर २००६ से जून २००७ तक पृथ्वी का उपग्रह बना रहा।

उपग्रहों के और भी कई उपवर्ग बनाए गए हैं।

१९८६ में यूरोप के खगोलशास्त्रियों द्वारा एक एस्ट्रॉयड ' क्रुइथेन ' खोजा गया था। यह चंद्रमा जैसा ही पृथ्वी के लगातार चक्कर काटता है।

चंद्र से संबंधित और कुछ बातें--

१) चंद्रमा को पृथ्वी की परिक्रमा करने २७ दिन, ७ घंटे, ४३ मिनट, 11.६ सेकंड लगते हैं और अपनी धुरी पर घूमने भी लगभग इतना ही समय लगता है। इस कारण हम हमेशा चंद्र की एक ही बाजू देख सकते हैं। इस समयावधि को ' नक्षत्र मास ' कहते हैं।

२) एक अमावस्या से अगली अमावस्या तक औसत दिन होते हैं, २९.५३०५८८७। इसे ' संयुति मास ' कहते हैं। स्पष्टतः यह नक्षत्र मास से बड़ा होता है। इसका कारण है जबतक चंद्र पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी करता है, सूर्य भी लगभग एक राशि आगे बढ़ता है। चंद्र को फिर सूर्य के सामने आने के लिए ज्यादा समय लगता है।

अमावस्या के बाद सूर्यास्त के उपरांत सूर्य और चंद्र दोनों पश्चिम में दिखने लगते हैं। लेकिन शुक्ल पक्ष में चंद्र पूर्व की ओर सरकने लगता है। इस कारण आकाश में अधिक समय दिखता है। पूर्णिमा को सूर्यास्त होते ही चंद्रोदय होता है। इस समय तक उसकी आधी पृथ्वी प्रदक्षिणा पूरी हो चुकी होती है।

३) शुक्ल पक्ष में चंद्र, सूर्य से दूर-दूर जाता है और पूर्णिमा को वह सूर्य से 1.5×10^8 मीटर पर पहुँचता है। इससे उलट कृष्ण पक्ष में चंद्र, सूर्य के पास-पास आता है और अमावस्या को दोनों एकत्र आते हैं। उस दिन दोनों लगभग साथ ही उगते हैं और साथ ही डूबते हैं।

४) चंद्र का डिजिटल नक्शा बनाने में दस साल लगे। यह भी एक रहस्य है कि पृथ्वी के सामने रहने वाला हिस्सा और पीछे का हिस्सा इनकी बनावट में इतना अंतर क्यों है। सामने के हिस्से

में तो प्राचीन ज्वालामुखियों के विस्फोट के कारण बने सपाट मैदान और गड्ढे हैं, जबकि पिछले हिस्से में पहाड़ियां हैं।

६) चंद्र कलाएँ :

चंद्रबिंब का प्रकाशित क्षेत्र और उसके पूर्ण बिंब का क्षेत्र इनके गुणोत्तर को चंद्र की कला कहते हैं।

चंद्र की कला = $(1 - \text{इनांतर की कोसाइन}) / 2$ { इनांतर अर्थात् सूर्य, पृथ्वी और चंद्र इनके बीच का कोन }

अमावस्या को इनांतर शून्य होता है तो पूर्णिमा को 180° होता है। प्रतिपदा को वह 90° होता है।

७) चंद्र रोज ५४ मिनट देरी से उगता है। इसका कारण सूर्य और चंद्र की भ्रमण कक्षाओं की स्थितियां हैं। शुक्ल पक्ष में चंद्रकला सीधे हाथ से बायीं ओर बढ़ती जाती है तो कृष्ण पक्ष में दाहिनी ओर से बायीं ओर कम होती जाती है।

८) हम चंद्र के केवल ५९ % हिस्से को ही देख पाते हैं लेकिन चंद्र पर से पृथ्वी का ९८.४ % हिस्सा दिख सकेगा।

चंद्र पर मानव निर्मित कचरा--

अब तक ३० से अधिक यान या तो चंद्र पर उतरे हैं या उससे टकराकर नष्ट हो चुके हैं।

अ) १३ सितम्बर १९५९ को सोवियत संघ का, चंद्र तक पहुँचने वाला मानव का प्रथम यान लूना-२ उससे टकराकर ध्वस्त हो गया था। वह चंद्र पर गिरने वाला मानव निर्मित प्रथम कचरा था। इसके बाद १९६६ में लूना-९ ऐसा पहला यान था जो सुरक्षित ढंग से चंद्र पर उतर पाया। उसने वहाँ के कुछ फोटो भी पृथ्वी पर भेजे। लेकिन ३ दिन बाद ही उसकी बैटरी डिसचार्ज हो गई और वह भी कचरे में बदल गया। २१ जुलाई १९६९ को चंद्रमा पर उतरे प्रथम मानव, नील आर्मस्ट्रांग ने अपने हाथ से चंद्र पर कुड़े की एक प्लैस्टिक थैली फेंकी थी। नासा का अनुमान है कि चंद्रमा पर अब १९० टन मानव निर्मित कचरा यहाँ-वहाँ बिखरा पड़ा है - (लो.स. २८-८-२०२०)

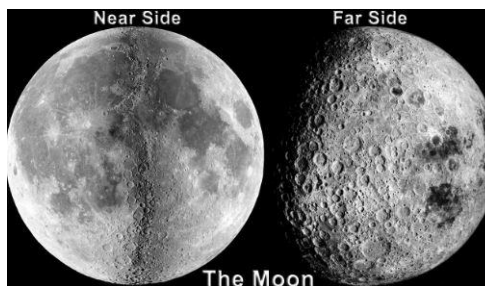


Image credit:- Google images

ग्रहण

पूर्ण ग्रहण

पूर्ण सूर्यग्रहण :

पूर्ण सूर्यग्रहण, पृथ्वी के किसी न किसी स्थान पर औसतन प्रति १८ महीने में एक बार होता है। लेकिन प्रायः पृथ्वी के किसी स्थान विशेष पर पूर्ण सूर्यग्रहण ३७० वर्षों में केवल एक बार दिखता है। पूर्ण सूर्यग्रहण के लगभग तीन मिनट पूर्व आसमान काला हो जाता है। उस समय सूर्य का आकार हँसियां जैसा दिखाई देता है। फिर एक मिनट पहले सफेद सतह पर तरंग की तरह चलती काली और श्वेत पट्टियां दिखाई देने लगती हैं। ये, 'छाया पट्टियों' या 'शाडो बैंड' कहलाती हैं। अगले कुछ सेकंडों में सूर्य प्रकाश की तीव्रता तेजी से कम हो जाती है। इसी समय आपको चंद्रमा की सतह पर मौजूद घाटियों से कौंधता प्रकाश मणिकाओं की माला के समान दिखाई देने लगता है। इसके बाद चंद्रमा की घाटियों से आते प्रकाश की अंतिम तेज चमक हिरे की अंगुठी सी दिखती है। जब यह अंगुठी गायब हो जाती है तो हमें सूर्य का जो दृश्य दिखाई देता है वह होता है श्वेत प्रकाशमंडल से ठीक ऊपर स्थित सूर्य का निचला वायुमंडल अर्थात् क्रोमोस्फियर। अर्थात् अब पूर्ण सूर्यग्रहण आरंभ हो चुका है। इसी समय सूर्य-सतह से लाखों कि.मी. दूर तक लपकते, आग के लाल या नारंगी फव्वारे दिखाई देते हैं। यही सौर ज्वालामुखी कहलाती हैं। अब चंद्र पूरी तरह सूर्य को ढंक लेता है और मोतिया सफेद रंग का भव्य किरीट प्रभामंडल यानी कोरोना चमकने लगता है। किरीट सूर्य का बाहरी वायुमंडल है। इसमें गर्म लेकिन विरल गैसें होती हैं। किरीट लाखों कि.मी. दूर तक फैला होता है। आमतौर पर इसकी चमक क्षीण होती है जो चंद्रमा की चमक से तौलनिक होती है।

कुछ अन्य बातें -

१) धरती से चंद्र, प्रति वर्ष ३.८ से.मी. दूर जा रहा है। ६० करोड़ साल बाद पृथ्वी से चंद्र की दूरी २३,५०० कि.मी. बढ़ जाएगी। सूर्य का आकार भी बढ़ रहा है। अतः ग्रहण के समय चंद्र, सूर्य को पूरी तरह ढंक नहीं सकेगा और तब परिणामतः कभी खग्रास सूर्यग्रहण नहीं दिखेगा।

२) पूर्ण सूर्यग्रहण की अधिकतम अवधि सात मिनट हो सकती है तो पूर्ण चंद्रग्रहण की एक घंटा चालीस मिनट।

३) अधिकतम लम्बा खग्रास सूर्यग्रहण : सूर्यग्रहण का समय अधिक होने के लिए सूर्य बिम्ब का आकार छोटा और चंद्रबिम्ब का बड़ा होना चाहिए। तभी चंद्र सूर्य को ज्यादा समय तक ढांप सकेगा। प्रति वर्ष जुलाई महीने के आरंभ में सूर्य भ्रमण कक्षा के नीचे बिंदु के पास होता है। उस समय वह पृथ्वी से औसत से अधिक दूर होने के कारण उसके बिम्ब का आकार छोटा होता है। इस समय अगर सूर्यग्रहण लगा तो वह अधिक समय तक रह सकता है। ३० जून १९७३ को लगा खग्रास सूर्यग्रहण ७ मिनट और १० सेकंड का था।

४) चंद्र पृथ्वी की प्रदक्षिणा करते समय कभी अपनी भ्रमण कक्षा के उच्च बिंदु के पास होता है तो कभी नीचे बिंदु के पास। नीचे बिंदु के पास होते समय उसकी पृथ्वी से दूरी सर्वाधिक अर्थात् ४,०४,३२० कि.मी. होती है तो उच्च बिंदु के पास होते समय न्यूनतम अर्थात् ३,५४,३३६ कि.मी.। सूर्यग्रहण के समय चंद्र, सूर्य के सामने आया कि चंद्र की लम्बी ही लम्बी छाया पृथ्वी की दिशा में निर्मित होती है। चंद्र की यह छाया शंकु के आकार की होती है। ग्रहण काल में चंद्र अपनी भ्रमण कक्षा के नीचे बिंदु के पास होगा तो छाया की लम्बाई ३,७१,६२० कि.मी. से अधिक नहीं होती। अर्थात् छाया का सिरा पृथ्वी तक नहीं पहुँच पाता। चंद्र की छाया लगभग ३२,७०० (४,०४,३२०-३,७१,६२०) कि.मी. से कम पड़ती है। इस कारण छाया के सिरे के बराबर नीचे पृथ्वी पर स्थित निरीक्षक को कंकणाकृति सूर्यग्रहण देखने मिलता है। इस तरह के ग्रहण में चंद्र के काले बिंब के बाहर, सूर्य के प्रखर प्रकाश का कंकण चमकते हुए दिखता है। सूर्यग्रहण के समय चंद्र अपनी भ्रमण कक्षा के उच्च बिंदु के पास हो तो उसकी शंखाकृति छाया का सिरा एकदम पृथ्वी की सतह तक पहुँचता है और वह भूपृष्ठ पर लगभग २७० कि.मी. चौड़ी पट्टी को व्याप्त करता है। इस पट्टी के निरीक्षक को खग्रास सूर्यग्रहण दिखता है। पृथ्वी के स्वांगभ्रमण के कारण छाया का पट्टा तेजी से पृथ्वी की सतह पर सरकता जाता है और कई हजार कि.मी. लम्बाई और २५० कि.मी. चौड़े पट्टे के निरीक्षक, खग्रास सूर्यग्रहण देख सकते हैं। साथ ही पट्टी के बाहर कई हजार कि.मी. दूरी तक खंडग्रास ग्रहण दिखेगा।

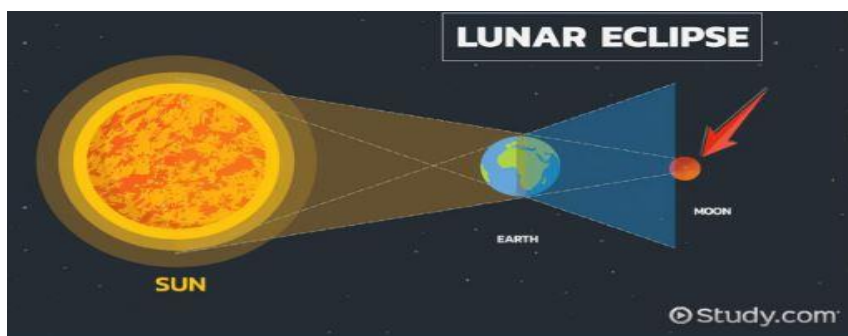
चंद्रग्रहण : खग्रास चंद्रग्रहण की महत्तम कालमर्यादा:

चंद्रग्रहण के समय पृथ्वी, सूर्य के सामने होने के कारण पृथ्वी की शंकु के आकार की छाया चंद्र की दिशा में निर्मित होती है। पृथ्वी की यह बहुत बड़ी छाया अंतरिक्ष में १४ लाख कि.मी. दूरी तक फैलती है। पृथ्वी से चंद्र की औसत दूरी पर अर्थात् ३,८४,००० कि.मी. अंतर पर पृथ्वी की छाया की चौड़ाई लगभग ९२०० कि.मी. होती है। चंद्र बिंब ने इस स्थान पर छाया को स्पर्श किया कि चंद्रग्रहण आरंभ होता है। चंद्र के बिंब ने पूरी तरह पृथ्वी की छाया में प्रवेश किया कि खग्रास चंद्रग्रहण शुरू होता है और उसने इस छाया से बाहर निकलना शुरू किया कि ग्रहण का खग्रास स्वरूप समाप्त होता है। चंद्र को पृथ्वी की इस छाया से होते हुए उसे पार करने में १०० मिनट लगते हैं। अर्थात् यही खग्रास चंद्रग्रहण का अवधि हो सकता है। चंद्र को पृथ्वी की छाया में पूरी तरह प्रवेश करने के लिए और पूरी तरह बाहर निकलने, हर एक के लिए दो घंटे लगेंगे ऐसा मान लेने पर चंद्रग्रहण का अधिकतम समय लगभग छह घंटे हो सकता है। लेकिन इतने लम्बे समय का चंद्रग्रहण शायद ही देखने मिले।

ग्रहणों से संबंधित –

- १) एक साल में अधिकतम सात ग्रहण हो सकते हैं। इसमें से चार से पांच सूर्यग्रहण और बाकी चंद्रग्रहण होते हैं। एक साल में कम से कम दो ग्रहण तो होते ही हैं। इस स्थिति में दोनों सूर्यग्रहण होते हैं। चंद्रग्रहणों की तुलना में सूर्यग्रहण संख्या में अधिक होते हैं। चंद्रग्रहण पृथ्वी के आधे हिस्से में दिखता है तो सूर्यग्रहण पृथ्वी के बहुत थोड़े हिस्से में दिखता है।
- २) सूर्यग्रहण के लिए चंद्र, सूर्य के सामने आना चाहिए। इस कारण सूर्यग्रहण केवल अमावस्या के दिन ही हो सकता है चूंकि उसी दिन पृथ्वी, चंद्र और सूर्य क्रम के साथ आमतौर पर एक सीध में आते हैं। उसी तरह चंद्रग्रहण के लिए चंद्र को पृथ्वी की छाया से गुजरना होता है। अर्थात् उसे सूर्य के बिल्कुल विरुद्ध दिशा में या पृथ्वी के उस पार होना चाहिए। स्पष्टतः चंद्रग्रहण केवल पूर्णिमा को हो सकता है। उस दिन सूर्य, पृथ्वी और चंद्र, क्रम से एक सीध में आते हैं। लेकिन प्रति अमावस्या या पूर्णिमा को ग्रहण नहीं लगते। इसका कारण है चंद्र का भ्रमण-प्रतल आयनिक प्रतल के साथ 90° का कोन करता है। इस कारण पूर्णिमा या अमावस्या को चंद्र आयनिक प्रतल के उत्तर में या दक्षिण में हो सकता है और सूर्य, पृथ्वी तथा चंद्र एक सीध में नहीं आते।

- ३) चंद्र की भ्रमण कक्षा आयनिक प्रतल को छेद देकर जहाँ उत्तर की ओर आती है उस बिंदु को ऊर्ध्व संपात और आयनिक प्रतल को जहाँ छेदकर दक्षिण की ओर जाती है उस बिंदु को अधःसंपात बिंदु कहते हैं। इन दो बिंदुओं को जोड़ने वाली और पृथ्वी के केंद्र में से जाने वाली रेखा को 'संपात रेखा' कहते हैं। पृथ्वी, सूर्य का परिभ्रमण करते समय संपात रेखा और चंद्र का भ्रमण प्रतल आमतौर पर स्थिर रहता है। लेकिन चंद्र की कक्षा स्थिर नहीं रहती। इस कारण संपात रेखा आयनिक वृत्त पर धीरे-धीरे पश्चिम की दिशा में सरकती रहती है। १८.६ सालों में वह अपना एक चक्र पूर्ण करती है।
- ४) छायाकल्प चंद्रग्रहण : सूर्यप्रकाश पृथ्वी पर पड़ता है। इस कारण पृथ्वी की दो छायाएँ निर्मित होती हैं। एक गहरी तो दूसरी धुंधली। इस धुंधली छाया के कारण छायाकल्प ग्रहण होता है। लेकिन उसका परिणाम इतना कम होता है कि वह ध्यान में भी नहीं आता।
- ५) प्राचीन समय में गणित इतनी उन्नत अवस्था में नहीं था कि सूर्यग्रहणों का सटीक समय निकाला जा सके। उसका अंदाजा मोटे तौर पर लगाया जाता था। सूर्यग्रहणों की 'सारोस' श्रृंखला यह इसी तरह सूर्यग्रहण के समय का अंदाजा लगाने का एक अतिशय सरल, मोटा हिसाब है। एक बार दिखे सूर्यग्रहण की १८ वर्ष और ११ दिन बाद पुनरावृत्ति होती है। सूर्यग्रहण के इस वैशिष्ट्यपूर्ण आवर्तन को ही 'सारोस' नाम दिया गया है। लेकिन इतना निश्चित है कि ईसा पूर्व ७५० से, प्राचीन खाल्डियन लोगों को इस पुनरावृत्ति की जानकारी थी। ऐसा देखा गया है कि सूर्यग्रहणों की एक सारोस श्रृंखला ७० आवर्तन तक कार्यरत रहती है। लगभग १२६० वर्षों का यह कालावधि है। चंद्रग्रहणों की श्रृंखला मात्र ४९ आवर्तनों तक ही कार्यरत रहती है। यह अवधि लगभग ९०० सालों की है।



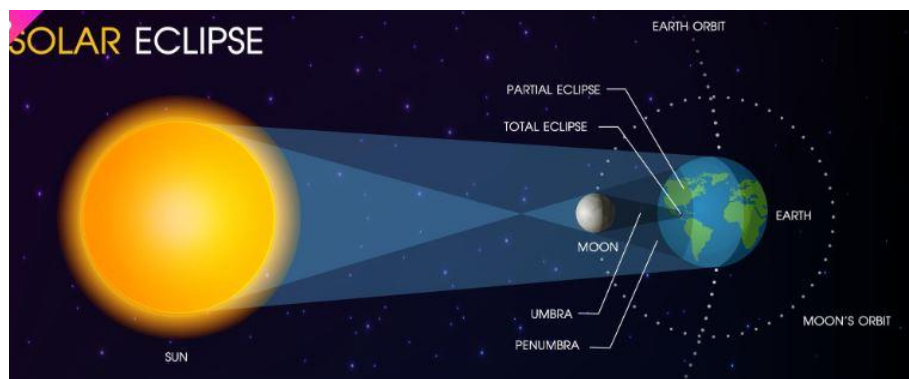


Image credit: Google images

ग्रह

सूर्य के 0.01 गुना से कम वस्तुमान वाले पिंड, ग्रह इस वर्ग में आते हैं। बृहस्पति का वस्तुमान सूर्य की तुलना में उसका हजारवाँ हिस्सा है। ऐसे खगोलीय पिंडों के अंतर्भाग में किरणोत्सर्गी द्रव्य होते हैं। उसी तरह मंद गति से होने वाला गुरुत्वीय आकुंचन भी होता रहता है। इन कारणों से वे ऊर्जा तो उत्सर्जित कर सकते हैं, निश्चित ही उसका परिमाण बहुत अल्प होता है। लेकिन वे तारे नहीं बन सकते।

सूर्य वस्तुमान के 0.01 से लेकर तो 0.08 गुना वस्तुमान वाले पिंडों के अंतर्भाग में थोड़े समय के लिए ऊर्जा निर्मिति होती है लेकिन वह हैड्रोजन का हिलियम रूपान्तर करने के लिए आवश्यक इतनी नहीं होती। ऐसे खगोलीय ज्योतियों को ' ब्राऊन ड्वार्फ ' कहते हैं।

सूर्य के 0.08 गुना वाली मर्यादा तक के पिंड के अंतर्भाग में हैड्रोजन ज्वलन प्रक्रिया आरंभ ही नहीं हो सकती क्योंकि आण्विक ज्वलन के लिए आवश्यक तापमान तथा दबाव वहाँ पैदा ही नहीं हो सकता। ऐसे पिंडों को ' असफल तारा ' (Failed Star) कहा जाता है।

ग्रहोत्पत्ति--

वायु और धूल इनसे बने आंतरतारकीय मेघ के कण आपस में टकराते रहते हैं। परिणामतः वे समरूप वितरित स्थिति में नहीं रह सकते। मेघ के किसी-किसी हिस्से में वे संघनित होते हैं। इस हिस्से में गुरुत्वीय अवपात शुरू हो जाता है। यह मेघ आकाशगंगा के केंद्र के गिर्द परिभ्रमण करते रहता है। केंद्र से अधिक दूर के हिस्से, करीबी हिस्से की तुलना में धीमी गति से घूमते हैं। इस कारण जैसे-जैसे बादल का गुरुत्वीय निःपात होता है वैसे-वैसे वह अपने

गिर्द भी घूमने लगता है। स्वाभाविक रूप से उसका कोनीय संवेग उतना ही कायम रहेगा। इस कारण जैसा-जैसा उसका आकुंचन होगा वैसी-वैसी उसके घूर्णन की गति बढ़ेगी। साथ ही साथ वह चपटा भी होगा। लाप्लास की प्रतिकृति के अनुसार इस दरम्यान मध्यवर्ती संघनन के चारों ओर द्रव्य की एक तश्तरी बन जाती है। इस रचना को आमतौर पर ' तारक अभिका ' कहते हैं। वायु और धूल मध्यवर्ती संघनन की तरफ खींची जाती है। तब उसके स्थितीज ऊर्जा का रूपान्तर गतीज ऊर्जा में होता है और द्रव्य का तापमान बढ़ते जाता है। अंततः यथोचित तापमान पहुँचने पर अणुकेंद्रीय प्रक्रिया आरंभ होती है और तारे का जन्म होता है।

दरम्यान अभिका के द्रव्य कणों में आपसी आघात होते हैं और काण्ट के सिद्धांत के अनुसार उनका सम्मिलन होकर अधिकाधिक बड़े पिंड बन जाते हैं। द्रव्य के अधिकतर कणों की कक्षा और परिणामी, ऊर्जा भी लगभग समान होने के कारण उनके आपस में सौम्य टकराओं से वे आपस में चिपक जाते हैं। इस तरह कणों का संगलन धीरे-धीरे और अधिक वृद्धिगत होता रहता है। लेकिन बन रहे पिंडों की वृद्धि और संगठन में भिन्नता होती है। यह निर्भर होता है पिंड के तप्त केंद्र से उस हिस्से की दूरी पर। सूर्य से करीबी पिंडों का तापमान बहुत अधिक होने से वहाँ पानी के अणुओं का संघनन होकर बर्फ निर्मिति नहीं होती। जैसे-जैसे अभिका का द्रव्य ठंडा होते जाता है वैसे-वैसे वहाँ केवल घनरूप द्रव्य ही संघनित होता है। ऐसा दिखता है कि प्रथम संघनित हुआ द्रव्य धातुयुक्त सिलिकेट कण थे। इनसे ही शिलाएँ बनीं।

ब्रह्माण्ड में हैड्रोजन अणुओं के बाद, पानी के अणु ही बहुसंख्या में हैं। ऐसा अनुमान है कि गुरु इतनी या उससे अधिक दूरी पर पानी बर्फ का रूप ले सकता है। उसी तरह ऐसे कम तापमान पर संघनित हुए पिंड में घन द्रव्य भी काफी मात्रा में इकट्ठा हो सकता है। ऐसे वृद्धिगत होते पिंडों में, घन द्रव्य जब पृथ्वी के द्रव्यमान से लगभग दस गुना हो जाता है तो उसका गुरुत्व भी बढ़ जाता है। पिंड, हैड्रोजन, हीलियम जैसे हलके मूलद्रव्यों को अपनी ओर खींच सकता है और अपने साथ जोड़ कर भी रख सकता है। ब्रह्माण्ड में यही दो मूलद्रव्य सर्वाधिक हैं। इस तरह इस प्रदेश में आकार लेने वाले पिंड या ग्रह काफी बड़े और हैड्रोजन से घिरे हुए मिलते हैं। इस तरह सौर माला में अन्तर्ग्रह पथरीले रूप में, आकार में छोटे तो बहीर्ग्रह सूर्य से अधिक दूरी पर बने। इस दूरी पर लगभग 150° केल्विन तापमान पर बर्फ संघनित हो गया। घनरूप पिंडों में संघनित हुए, जमे हुए बाष्पनशील द्रव्य का अंश, जैसे-जैसे हम सूर्य से दूर जाते हैं, बढ़ा हुआ मिलता है।

पृथ्वी का उपग्रह चंद्र अन्तर्गत हिस्से में है। उसका घनत्व ३.३ ग्रॅम है और वह सिलीकेट खनिजों से बना है। सूर्यकुल के बाहरी हिस्से में शनि का टीथिस उपग्रह अगर लिया तो उसका घनत्व काफी कम यानी प्रति घन से.मी. एक ग्रॅम है। अर्थात् वे अधिकतर बर्फ से ही बने होने चाहिए। लेकिन इससे आगे बढ़ने पर पिंडों की घनता मामूली तौर पर बढ़ती हुई दिखती है चूंकि यहाँ तापमान और कम होने से केवल पानी ही नहीं तो तुलनात्मक दृष्टि से अधिक द्रव्यमान वाले कार्बन डाय ऑक्साइड जैसे द्रव्य भी घनिभूत हो सकते हैं।

यह सारा विवेचन तर्कशुद्ध लगता है। लेकिन जब पिछली सदी के अंत में बाह्य ग्रहों की (अन्य तारों के ग्रह) खोज हुई तो पाया गया कि बहुत बड़े (बृहस्पति से भी काफी बड़े) ग्रह, बहुत ही कम दूरी से अपने पितृ तारे की परिक्रमा करते हैं। तो ये हमारी तार्किक संकल्पना के सामने प्रश्नचिन्ह खड़ा करते हैं। इस संदर्भ में यह भी निरीक्षण किया गया है और अवरक्त तथा रेडिओ तरंग लम्बाई वाले विकिरणों से प्राप्त डाटा के आधार पर यह निश्चित हुआ है कि युवा तारों के गिर्द द्रव्यों की अभिकाएँ बनी हुई हैं। इससे ऐसा लगता है कि ये अजस्र ग्रह बहुत जल्दी-जल्दी में बन गये और अभिका में उसके बाद भी द्रव्य बचा रहा।

(आंतरतारकीय मेघ का गुरुत्वीय निःपात होकर अभिका तैयार होने के लिए अंदाज़न दस लाख साल लगते हैं)।

लेकिन ग्रह बनने की यह अलग ढंग की प्रक्रिया क्यों ?

ग्रहों का परिभ्रमण : केपलर के तीन नियम

- १) लम्बवलयकार कक्षा का नियम : प्रत्येक ग्रह सूर्य के गिर्द लम्बवलयकार (Elliptical) कक्षा में घूमता है। सूर्य इस लम्बवलय के एक उपकेंद्र में होता है।
- २) समान क्षेत्रफल का नियम : किसी भी ग्रह के लिए, सूर्य से निकाला त्रिज्या सदीश, समान समय के दरम्यान, समान क्षेत्रफल पार करता है। या सदीश त्रिज्या की क्षेत्रफलीय गति समान होती है। अर्थात् ग्रह और सूर्य को जोड़ने वाली अरीय रेखा, ग्रहपथ द्वारा उत्पन्न होने वाली दीर्घवृत्ताकार आकृति में, समान समय में, समान क्षेत्रफल घेरती है।

ग्रह जब सूर्य के सबसे करीब होता है तो उसकी गति अधिकतम होती है, उलट जब सबसे दूर होता है तो वह न्यूनतम होती है। त्रिज्या-सदीश का क्षेत्रीय वेग(Areal Velocity) हमेशा स्थिर रहता है।

प्रत्येक ग्रह का सूर्य के गिर्द परिभ्रमण करने का कालावधि उसकी कक्षा की त्रिज्या के साथ-साथ तेजी से बढ़ता है।

3) आवर्ति समय का नियम : ग्रह द्वारा सूर्य के परिभ्रमण के लिए लगने वाले समय का वर्ग या ग्रह का आवर्तन काल या ग्रह वर्ष इसका वर्ग, यह उसके लम्बवतलाकार कक्षा के semi major axis के तृतीय घात के प्रमाण में होता है। इस नियम को हार्मोनिक नियम कहते हैं।

(केपलर, टायको ब्राहे के सहायक थे। उनका New Astronomy यह ग्रंथ १६०९ में प्रकाशित हुआ था।)

ग्रह का परावर्तन गुणोत्तर --

ग्रह का परावर्तन गुणोत्तर = ग्रह या उपग्रह की सतह से परावर्तित होने वाला प्रकाश / सतह पर गिरने वाला कुल प्रकाश।

परिपूर्ण कृष्णवर्णी वस्तु (Perfectly black body) का परावर्तन गुणोत्तर 0 होता है।

किसी ग्रह पर सूर्य का जो प्रकाश गिरता है उसका कुछ हिस्सा ग्रह सोख लेता है और कुछ परावर्तित होता है। प्रत्येक ग्रह की परावर्तन क्षमता अलग-अलग होती है। ग्रह की परावर्तन क्षमता को अंग्रेजी में 'आल्बिडो' कहा जाता है। ग्रहों के परावर्तन गुणोत्तर इस प्रकार हैं - (बुध : १०.६ %, शुक्र : ६५ %, पृथ्वी : ३७ %, मंगल : १५ %, गुरु : ५२ %, शनि : ४७ %, यूरेनस : ५० %, नेपच्यून : ५० %, प्लूटो : ६० % , चंद्रमा : केवल ७ %)।

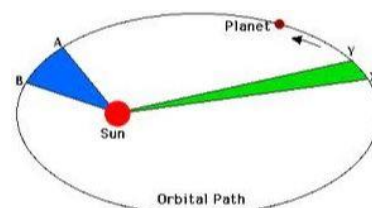
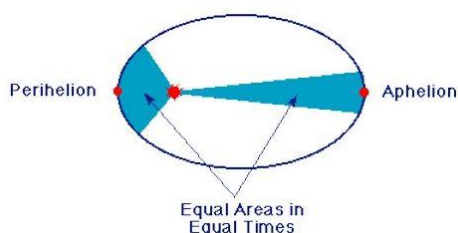


Image credit: Google images

ग्रह का दर्जा पाने के लिए मानक --

अगस्त २००६ में चेक गणराज्य की राजधानी प्राग में हुए आन्तरराष्ट्रीय खगोलीय संगठन के अधिवेशन में अंतरिक्ष के किसी पिंड को ग्रह का दर्जा देने के लिए मानक निश्चित किए गये। या ग्रह की नयी परिभाषा निश्चित की गयी। मानक इस प्रकार हैं -

- १) उस खगोलीय वस्तु को ग्रह माना जाएगा जो किसी तारे का चक्कर लगा रहा हो, लेकिन स्वयं तारा न हो।
- २) साथ ही इसमें ठोस शक्तियों के असर से निकलने के लिए अपना आवश्यक गुरुत्वाकर्षण हो। उसका गुरुत्वाकर्षण इतना हो कि उसने लगभग गोल आकार ग्रहण किया हो।
- ३) इसकी कक्षा के आसपास का क्षेत्र साफ हो। (प्लूटो की कक्षा अंशतः वरुण ग्रह की कक्षा से होकर गुजरती है। अतः इसी अधिवेशन में प्लूटो का ग्रह का दर्जा हटा दिया गया था। ' प्लूटोन्स ' नामक एक नए वर्ग का सुझाव भी दिया गया। इसके अंतर्गत उस तश्तरीनुमा रहस्यात्मक क्षेत्र जिसे 'कूईपर बेल्ट ' कहा जाता है, में विद्यमान खगोलीय पिंड होंगे। यह क्षेत्र नेपच्यून के बाद है। उसमें हजारों आकाशीय पिंड तथा पुच्छल तारे हैं। प्लूटो भी इसी पट्टे का हिस्सा है।)

सौर परिवार के ग्रह और उनकी विशेषताएँ

बुध :

१) बुध अपनी धुरी पर झुका हुआ नहीं है। वह सूर्य के चारों ओर बिल्कुल सीधा घूमता है, अतः वहां पृथ्वी जैसे मौसम के बदलाव नहीं हैं। २) कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि बुध कभी शुक्र का उपग्रह होना चाहिए। ३) बुध का घनत्व पृथ्वी इतना ही अर्थात् ५.५ है। इससे साफ है कि इसके गर्भ में लोहा है। ४) सूर्य की सबसे तेज गति से परिक्रमा करने वाला, सौर परिवार का सबसे छोटा और सूर्य का सबसे करीबी ग्रह है। लेकिन बहुत धीमे घूर्णन वाला है। इसका वर्ष पृथ्वी के ८७.९७ दिनों के बराबर तो उसका एक दिन पृथ्वी के ५९.६४ दिनों बराबर है।

शुक्र :

१) इसकी एक विचित्रता यह है कि इसके एक वर्ष की अवधि इसके एक दिन की अवधि से कम है अर्थात् इसकी सूर्य की परिक्रमा करने की अवधि इसके स्वांगभ्रमण की अवधि से कम है। यह सौर तंत्र के सभी ग्रहों में सबसे कम घूर्णन गति वाला ग्रह है। इतना ही नहीं तो, पृथ्वी आदी अन्य ग्रहों की तुलना में इसका घूर्णन विरुद्ध दिशा में है। यह अपनी धुरि पर पश्चिम से पूर्व की ओर नहीं तो पूर्व से पश्चिम की ओर घूमता है। अतः यहां सूर्योदय पश्चिम में होता है। लेकिन इसका कारण ज्ञात नहीं है। इस दृष्टि से इसे सौर परिवार का विचित्र ग्रह मान सकते हैं।

२) अंतर्ग्रह होने के कारण वह सुबह या संध्या को ही दिखता है और तब उसकी तेजस्विता आकाश में सर्वाधिक होती है।

३) सब ग्रहों की भ्रमण कक्षाएं लंबगोलाकार हैं लेकिन शुक्र की पूरी तरह गोलाकार है।

४) आरंभिक दौर में सोवियत संघ और अमेरिका ने इस ग्रह की ओर ३१ अवकाश यान भेजे, जिसमें ९ असफल रहे।

मंगल :

बैसिल्यूस ओडिसिई नामक अत्यधिक दूरलभ जीवाणु लोणार सरोवर में मिला है। इसका पता संत गाडगे बाबा अमरावती विश्वविद्यालय के सूक्ष्म जीवशास्त्र विभाग के डॉ. डी.एच्. तांबेकर तथा छात्रा संध्या तांबेकर ने लगाया है। वर्ष २००४ में जब अंतरिक्ष यान मंगल ग्रह से वापस आया था तब उसके साथ आए मिट्टी के कण में ये जीवाणु मिले थे। ये जीवाणु पृथ्वी पर केवल लोणार सरोवर में ही पाए जाने के कारण यह खोज आन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भी महत्वपूर्ण मानी जा रही है। इससे पहले यह जीवाणु पृथ्वी पर न होने की बात कही जा रही थी। इस खोज से इस बात का पुख्ता सबूत मिल गया है कि लोणार सरोवर का निर्माण, मंगल ग्रह का उल्का पाषाण पृथ्वी पर गिरने के कारण हुआ है, ऐसा दावा किया गया है। आजतक यह माना जा रहा था कि इस सरोवर का निर्माण ज्वालामुखी के कारण हुआ है।

लेकिन इसके साथ ही यह भी दावा किया जा रहा है कि मंगल से गिरे दो उल्कापिंडों के अध्ययन से यह सूचित होता है कि पिछले चार अरब वर्षों से मंगल, ठंड से जमी हुई स्थिति में है और कभी भी नमी पूर्ण, उष्ण अवस्था में नहीं था, जो स्थिति जीवन उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी होती है। यह रिपोर्ट जर्नल सायंस में प्रकाशित हुई है ।

मंगल पर बिजली का चमकना :

मंगल पर बिजली चमकने की एक लड़ी दर्ज की गयी। यह घटना, धूल की आंधी के दरम्यान घटित हुई। लेकिन इस बिजली चमक के साथ कोई वर्षा नहीं थी। मंगल पर अगर किसी भी समय जीवन रहा होगा तो वह अस्तित्व में आने के लिए यह भी एक कारक हो सकता है। (Hitvad Nagpur: २३-८-२००९) | लेकिन इसका अर्थ यह लिया जा सकता है कि मंगल पर धूल है।

तो एक दावा यह भी है :

जब वातावरण में धूल बहुत कम या बिल्कुल नहीं होती तो जल उसको अपना आधार नहीं बना सकता। ऐसी स्थिति में जल बाष्प रूप में रह सकता है। इस स्थिति को ' सुपर सॅच्युरेशन ' कहते हैं। इस अवस्था में १० से लेकर तो १०० गुना तक जलबाष्प कायम रह सकता है। अतः वैज्ञानिकों का कहना है कि मंगल के बाहरी वातावरण में पूर्वानुमान की तुलना में सौ गुना अधिक पानी, मंगल पर हो सकता है। वैज्ञानिकों ने इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी के ' मार्स एक्सप्रेस प्रोब ' और नासा के ' रिकानायसंस ऑर्बिटर ' के आंकड़ों का विश्लेषण किया। आंतरराष्ट्रीय खगोलविदों के एक दल ने यह निश्चित किया कि मंगल ग्रह के बाहरी वातावरण में सुपर सॅच्युरेशन प्रक्रिया हुई। उनके अनुसार यह प्रक्रिया सुखे एवं धूल भरे ग्रह पर नहीं हो सकती। सामान्य जलवायु अवस्था में जल कण धूल और हवा के कणों से चिपक जाते हैं। (नवभारत, नागपुर ४-१०-२०११)

इस तरह अनुसंधान के दरम्यान प्राप्त अलग-अलग निरीक्षणों से कुछ विरोधाभासी अनुमान निकलते हैं।

और भी :

- १) मंगल पर वातावरण बहुत छितरा है। वहाँ वातावरण का दबाव पृथ्वी की तुलना में केवल ६ % है। इस कारण वहाँ कोई भी द्रव वायु रूप में बदल जाता है। हम अगर बिना किसी सुरक्षा व्यवस्था के वहाँ पहुँचे तो हमारा खून उबलने लगेगा।
- २) मंगल का औसत तापमान -६३° सें. है।
- ३) मंगल का अपना कोई चुंबकीय क्षेत्र नहीं है। अर्थात् वैश्विक विकिरण से सुरक्षा का कोई साधन वहाँ नहीं है।
- ४) पृथ्वी और मंगल २६ महीनों में एकबार सबसे करीब आते हैं।

- ५) स्पिरिट और ऑपरचुनिटी को मंगल तक पहुँचने ७ महीने लगे थे।
६) रेडियो सिग्नल को पृथ्वी से मंगल तक पहुँचने १० मिनट लगते हैं अर्थात् आने-जाने में २० मिनट।

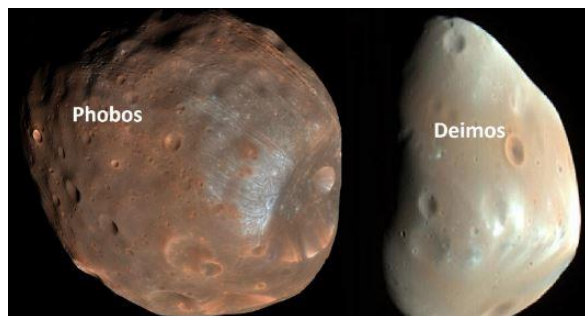


Image credit:- Google images

बृहस्पति :

ऐसा माना जाता है कि सौर परिवार में सूर्य के बाद सर्वप्रथम आकार लेने वाला पिंड बृहस्पति ही है।

जुलाई १९९४ में शुमेकर-लेवी नामक धूमकेतु को बृहस्पति के गुरुत्वाकर्षण ने जकड़ लिया और अंततः वह धूमकेतु बृहस्पति से टकरा गया। टकराते हुए उसकी गति २,१६,००० कि.मी. प्रति घंटा थी। भारी विस्फोट हुआ जिससे ४२००० फॅ. से ज्यादा तापमान पैदा हुआ। वैज्ञानिकों का मानना है कि अगर यह विशाल ग्रह न होता तो हमारी पृथ्वी काफी पहले नष्ट हो चुकी होती। बृहस्पति से टकराकर धूमकेतु आदि नष्ट होते रहते हैं अन्यथा वे पृथ्वी से टकराते। (लो.स. मेट्रो एक्सप्रेस-१९-११-२०२०)

धात्विक हैड्रोजन की पहली : बृहस्पति अधिकतर हैड्रोजन और हेलियम से बना है। ये ब्रह्माण्ड में सबसे सरल और सर्वाधिक मात्रा में पाए जाने वाले मूलद्रव्य हैं। इन्हें अगर उचित स्तर तक ठंडा किया गया तो वे द्रव रूप में आ जाते हैं। लेकिन ऐसा समझा जाता है कि बृहस्पति के गर्भ केंद्र में हैड्रोजन ने घन रूप धारण कर लिया है। वैज्ञानिक, धरती पर धातुरूप हैड्रोजन निर्माण करने में सफल नहीं हुए हैं। चाहें जैसी स्थिति पैदा करने पर भी हैड्रोजन अधातु

ही बना रहता है। अतः धात्विक हैड्रोजन यह भी वैज्ञानिकों के लिए एक पहेली ही है।(गल्फ न्यूज:६-७-२०१६)

शनि :

भारतीय भविष्यशास्त्र और मिथकों में इसे उग्र और कोपी ग्रह माना गया है जो आपको पहले दंड देता है, बाद में सीख। इसे पाप ग्रह भी कहा गया है। इतने सुंदर ग्रह को ऐसा विद्रुप स्वरूप प्रदान करने का अधिकार मानव को किसने दिया ?

- १) शनि का वस्तुमान इस तरह फैला है कि हमारे सौर परिवार के ग्रहों में सबसे कम घनत्व शनि का ही है।
- २) अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा के जेट प्रोपेलशन लेबोरेटरी और विस्कॉन्सिन मैडिसन विश्वविद्यालय के डॉ. केविन, बेन्स ने गॅस के विशाल ग्रहों, शनि और बृहस्पति के वातावरण के नए आंकड़ों का विश्लेषण कर बताया कि इन ग्रहों पर झिलमिलाते क्रिस्टलों के रूप में बहुतायत में कार्बन मौजूद है। बेन्स ने अपने अप्रकाशित शोध के निष्कर्ष में बताया कि इन ग्रहों पर गरज, चमक और तूफान के साथ होने वाली ओलावृष्टि मीथेन को कार्बन में बदल देती है। कार्बन के काले बादल बन जाते हैं जो गिरने पर ठोस होकर ग्रॅफाइट का रूप ले लेते हैं और फिर हीरे में तब्दील हो जाते हैं। शनि पर प्रतिवर्ष एक हजार टन से भी अधिक हीरावृष्टि होनी चाहिए।

अरुण, वरुण ग्रहों में तो ऐसी प्रक्रिया होने की संभावना की जानकारी थी। लेकिन अभी तक ऐसा माना जाता था कि शनि, बृहस्पति इनका वातावरण इसके लिए उपयुक्त नहीं है। लेकिन उपरोक्त दोनों वैज्ञानिकों ने इन ग्रहों के आंतरिक तापमान और दबाव के ताजा आंकड़ों का विश्लेषण किया, साथ में विभिन्न स्थितियों में कार्बन कैसे काम करता है, इसका भी पता लगाया।

उपग्रह

- १) उपग्रह एक पिंड होता है जो किसी विशाल पिंड के चारों ओर एक निश्चित कक्षा में उसके चक्कर लगाता है। यदि दो पिंडों का भार लगभग बराबर हो तो उसे ' बायनरी तंत्र ' कहते हैं, न कि प्राथमिक पिंड और उपग्रह। उदा. द्वयी क्षुद्र ग्रह ' ९० अँन्टिओप ' । किसी पिंड के उपग्रह होने का सामान्य आधार यह है कि दो पिंडों, प्राथमिक पिंड और उपग्रह, इनका द्रव्यमान केंद्र (Centre of Mass) एक हो।

- २) वर्ष १८८९ में ई. रोश नाम के वैज्ञानिक ने यह सिद्ध किया था कि ग्रह से, उसकी त्रिज्या के २.४४ गुना से कम दूरी पर अगर कोई द्रवरूप द्रव्य हो तो उससे उपग्रह की निर्मिती नहीं हो सकेगी।
- ३) उपग्रह, ग्रहों की परिक्रमा करते हैं। लेकिन इस परिक्रमा के दरम्यान उपग्रह, ग्रह से कितना करीब आ सकता है इसपर कुछ बंधन है। ग्रह से जिस दूरी के अन्दर उसका उपग्रह नहीं आ सकता, उस अंतर को ' रोश की मर्यादा ' नाम दिया गया है। एदुआर्द रोश, एक खोजी वैज्ञानिक थे। उपग्रह ने अगर रोश मर्यादा का उल्लंघन किया तो उसपर कार्यरत ज्वार-भाटे के बल के कारण उपग्रह के टुकड़े हो जाते हैं। उपग्रह, ग्रह की वलयाकार कक्षा में परिक्रमा कर रहा हो, उसका वस्तुमान ग्रह की तुलना में बहुत कम हो और उसका घनत्व ग्रह के घनत्व इतना ही हो तो रोश मर्यादा, ग्रह की त्रिज्या के २.४६ गुना होती है। अर्थात् उपग्रह को अपना अस्तित्व बनाए रखना है तो उसे ग्रह की त्रिज्या के २.४६ गुना अंतर के बाहर से ही ग्रह की परिक्रमा करनी होगी। इस मर्यादा को लांघते ही प्रथम तो उपग्रह अंडाकृति बनते जाता है। इस कारण वह ग्रह के और करीब पहुँचता है। इस तरह उसकी कक्षा की दीर्घ वलयाकृति क्रमशः बढ़ती जाती है और एक विशिष्ट क्षण उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। बहुत पुरातन समय में शनि के किसी उपग्रह ने रोश मर्यादा का उल्लंघन किया हो और उपरोक्त कारण से उसके टुकड़े-टुकड़े हुए हो। वे ही छल्लों के रूप में आज हमें दिखते हैं चूंकि शनि के चार मुख्य छल्ले, शनि से, रोश मर्यादा के अन्दर हैं।

यही बात द्वाैती तारों के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है। दो में से एक के अंतर्भाग का अणु इंधन समाप्त हुआ तो उस तारे का आकार १० से १०० गुना तक बढ़ जाता है। वह अपने जोड़ीदार के रोश मर्यादा का उल्लंघन करता है और उसके वायु कणों का प्रवाह उसके जोड़ीदार की ओर बहना शुरू हो जाता है।

मंगल के उपग्रह --

अमेरिकी खगोलशास्त्री असफ हॉल ने वर्ष १८७७ में फोबोस और मंगल के दूसरे छोटे चंद्र डिमोस की खोज की थी। फोबोस एक उबड़खाबड़ सी चट्टान की तरह है और सिर्फ २८ कि.मी. लम्बा है। जबकि डिमोस उससे भी छोटा है। शुरू में इन्हें अंतरिक्ष की ऐसी चट्टानें माना गया था जो मंगल के इर्दगिर्द मंडरा रही थीं और मंगल की गिरफ्त में आ गयीं। सत्तर के दशक में मॅरिनर ९ और वायकिंग अंतरिक्ष यानों द्वारा की गयी फोबोस की पहली नापजोख के आधार पर

यही धारणा बनी कि यह पिंड केवल अंतरिक्ष की चट्टान है। फोबोस की सतह से परावर्तित सूर्यप्रकाश से पता चलता है कि उसका हुलिया ही प्राचीन क्षुद्र ग्रह जैसा है। बाद के अनुसंधान से भी इसीकी पुष्टि हुई। ऐसी ही धारणा डिमोस के बारे में भी बनी।

लेकिन ये चंद्रमा जिन कक्षाओं का अनुसरण करते हैं, वे किसी गिरफ्तार पिंड की कक्षा से बिल्कुल भिन्न हैं। ये दोनों पिंड जिस मार्ग पर चलते हैं, वह मंगल की भूमध्य रेखा के नजदीक है। भूमध्य कक्षा का मतलब है कि दोनों पिंडों का निर्माण भी उसी पदार्थ से हुआ है, जिसने मंगल को जन्म दिया। यदि यह सही है तो उनका हुलिया मंगल की चट्टान जैसा क्यों नहीं है ?

मंगल के इन अजनबी उपग्रहों की संरचना और उनकी उत्पत्ति को समझने के लिए यूरोपीय अंतरिक्ष यान, मार्स एक्सप्रेस ने २००६ में फोबोस से ४६० कि.मी. ऊंचाई से कई उड़ानें भरीं। इसी यान ने फिर २००८ में फोबोस से २७० कि.मी. दूरी से उड़ानें भरीं। इन निरीक्षणों से यह निष्कर्ष निकला कि उसका घनत्व बहुत कम है। इस अनुसंधान से जुड़े, कोलोन विश्वविद्यालय जर्मनी के प्रो. मार्टिज पैटजोल्ड का विचार है कि फोबोस एक ठोस चट्टान के स्थान पर सच्छीद्र और दरारों से युक्त है।

और आगे --

- १) मंगल के दोनों चंद्रमा गोलाकार नहीं हैं।
- २) उनकी मंगल के गिर्द घूमने की कक्षाएं भी गोलाकार नहीं हैं। फोबोस यह एक ऐसा चंद्रमा है जो सूर्यमाला और उनके उपग्रह इनकी तुलना में अपने पितृग्रह से सबसे करीबी है। वह मंगल की परिक्रमा केवल ७ घंटे ३९ मिनट में पूरी करता है।

अब SETI INSTITUTE और परड्यू यूनिवर्सिटी के खोजी दल ने किए अनुसंधान के अनुसार (जो अस्ट्रोफिजिकल जर्नल में प्रसिद्ध हुआ) ३०० करोड़ साल पहले मंगल के गिर्द फोबोस से २० गुना बड़ा उपग्रह चक्कर लगा रहा था। मंगल के गुरुत्वाकर्षण के कारण वह मंगल की ओर खींचता चला गया और एक बिंदु पर उसका विस्फोट होकर उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए। शुरू में तो उनसे छल्ले जैसा आकार बना । इसका पदार्थ समय के साथ मुख्य ग्रह की ओर खींचता गया और छल्ला नष्ट हो गया। फोबोस और डिमोस अस्तित्व में आए। डिमोस की कक्षा तौलनिक दृष्टि से अधिक गोलाकार लेकिन दो अंश से अधिक झुकी हुई है।

बृहस्पति के उपग्रह--

बृहस्पति के गिर्द कई उपग्रह चक्कर लगाते हैं। लेकिन इनमें इयो, यूरोपा, गॅनिमीड और कॅलिस्टो ये चार ही महत्वपूर्ण हैं। इस्वी १६१० में गॅलिलियो ने इनकी सर्वप्रथम खोज की थी। इस कारण इन्हें गॅलिलियन उपग्रह कहते हैं। इयो, यूरोपा और गॅनिमीड इनके भ्रमण कालों में एक विलक्षण सुसूत्रता देखने मिलती है। इयो की दो परिक्रमाएँ पूर्ण हुई कि यूरोपा की एक प्रदक्षिणा पूरी होती है। उसी तरह यूरोपा की दो प्रदक्षिणाएँ पूरी होने पर गॅनिमीड अपनी एक परिक्रमा पूरी करता है। इस तरह एकदूसरे के साथ संबंध रखते हुए होने वाले भ्रमण को 'संस्पंदीय भ्रमण' नाम दिया गया है।

अनियमित उपग्रह :

ये मूल सौर अभिका से, ग्रह निर्मिति के साथ ही बने उपग्रह नहीं होते। वे जिसका चक्कर लगाते हैं, उस ग्रह ने बाहर से पकड़े हुए पिंड या उपग्रह होते हैं। बृहस्पति के क्र. ६ से १२, उसके अपने उपग्रह न होकर, करीब आने पर उसने पकड़े हुए लघुग्रह होने चाहिए। इनमें से सबसे बाहरी ८, ९, ११, १२ ये उलट गति से घूमते हैं। इस कारण उन्हें बृहस्पति ने पकड़े हुए धूमकेतु होने का अंदाजा लगाया गया है। बृहस्पति के अपने उपग्रह उसकी विषुववृत्तीय प्रतल में ही परिक्रमा करते हैं।

बृहस्पति के चंद्रमा और टाइडल हीटिंग-

टाइडल हीटिंग, वह गुरुत्व प्रभाव है जिसके कारण बना खिंचाव चंद्रमा में अंततः गर्मी पैदा करता है। परिणामतः इन चंद्रमाओं के अंदर की बर्फ इतनी पिघल जाती है कि बर्फ के नीचे ही महासागर बन जाता है। परिणाम यहाँ तक होता है कि पथरीले चंद्रमा में तो चट्टानें पिघल जाती हैं। अनुसन्धानकर्ता हामिश हे का कहना है कि (जियोफिजिकल रिसर्च लैटर में प्रकाशित) इस गर्मी को पैदा करने के लिए बृहस्पति ग्रह कम और चंद्रमाओं आपसी क्रियाएँ अधिक उत्तरदायी हैं। यह बात हैरानी पैदा करने वाली है चूंकि बृहस्पति की तुलना में ये चंद्रमा बहुत ही छोटे हैं। टाइडल हीटिंग का संबंध टाइडल रेज़ोनन्स प्रक्रिया से है। जब किसी वस्तु को धक्का लगता है तो उसमें कंपन पैदा होते हैं। जब दूसरे चंद्रमाओं के कारण मिलने वाले धक्के लगातार होते हैं और उनकी आवृत्ति, चंद्रमा की स्वयं की आवृत्ति से मेल खाती है तो कंपनों का आयाम

बहुत बढ जाता है। इसे टाइडल रेझोनन्स कहते हैं। इससे गर्मी पैदा होती है। (लो. स. नागपुर, मेट्रो एक्सप्रेस : २४-९-२०२०)

शनि के उपग्रह--

टाइटन :

टाइटन यह बुध से बड़ा लेकिन मंगल से कुछ छोटा है। पहले इसे सौर मंडल का सबसे बड़ा उपग्रह माना जाता था। लेकिन वायेजर अंतरिक्षयान की खोज ने यह स्थान बृहस्पति के उपग्रह गैनिमीड को दिया। लेकिन यह सौर मंडल का अकेला उपग्रह है जिसपर घना वायुमंडल है। सौर मंडल में यह एक ही ऐसा उपग्रह है जिसकी, पत्थर और बर्फ के ऊपर बाह्य परत गॅसीय है। पृथ्वी के बाद टाइटन ही एक ऐसा पिंड है जिसके वायुमंडल में नाइट्रोजन उपस्थित है। टाइटन का व्यास पृथ्वी के व्यास से ढाई गुना कम है लेकिन उसके वायुमंडल की परत पृथ्वी के वातावरण से करीब दस गुना मोटी है। फिर भी वायु का दबाव पृथ्वी की समुद्रसतह पर पाये जाने वाले वायु दबाव से केवल डेढ़ गुना ही ज्यादा है।

शनि के गिर्द अबतक ८२ चंद्रमा खोजे गए हैं। अब ७९ चंद्रमा वाले बृहस्पति को शनि ने पीछे छोड़ दिया है। अमेरिका स्थित कार्नेजी इंस्टीट्यूट फॉर सायंस के अनुसंधानकर्ताओं का दावा है कि सबसे बाद में खोजे गए २० चंद्रमाओं के व्यास करीब ५ कि.मी. हैं। दिलचस्प बात यह है कि इनमें से १७ चंद्र अपनी धुरी पर, शनि की घूमने की दिशा से विपरीत दिशा में उसके चक्कर लगा रहे हैं।

बृहस्पति के ४ बड़े चंद्रमा हैं। जबकि उसके पार के शनि का बड़ा चंद्रमा केवल एक ही है टायटन। वैज्ञानिकों के अनुसार इसके भी एक से अधिक बड़े चंद्रमा होने चाहिए थे। लेकिन जो टायटन की तुलना में अंदरूनी हिस्से में थे वे परिक्रमाओं के दरम्यान अंदर खींचे चले गए और शनि के गुरुत्वाकर्षण बल के कारण बर्फ तो पिघल गयी और पथरीला मलवा शनि में जाकर मिला। अकेला टायटन बचा रहा।

शनि के फीबी उपग्रह को भी अनियमित उपग्रह माना गया है।

नेपच्यून :-

इसका सबसे बड़ा उपग्रह ' ट्रायटन ' है। यह ग्रह की, उलटी दिशा में चक्कर लगा रहा है। सौर मंडल में दूसरा कोई भी बड़ा उपग्रह इस तरह उल्टा चक्कर नहीं लगाता। इस उपग्रह पर बड़े-बड़े ज्वार-भाटे उत्पन्न होते हैं, जिनकी शक्तियाँ इसके भ्रमण की गति को कम कर रही हैं।

सौर मंडल के सक्रिय उपग्रह -

सूर्यमाला के, बाहरी, बड़े ग्रहों के कई-कई उपग्रह हैं। इनमें कई काफी छोटे हैं। इस आकार के पिंड अपनी आंतरिक ऊष्मा जल्दी खो देते हैं और मृत हो जाते हैं। उनपर वातावरण भी बना नहीं रह सकता। कुछ अपवाद छोड़कर अधिकतर पिंड इसी अवस्था में हैं। लेकिन निम्न चार उपग्रह मृत पिंडों की श्रेणी में नहीं आते। केवल इन्हीं पिंडों पर भू-प्रक्रियाएँ (Geological Activities) जारी हैं।

१) बृहस्पति का ज्वालामुखियों से युक्त उपग्रह ' इओ (IO) ' । यहाँ बहुत तेज ज्वालामुखीय गतिविधियाँ पायी गयी हैं।

२) बृहस्पति का ही एक अन्य चंद्रमा ' यूरोपा '। वहाँ जल होने का अनुमान है।

३) शनि का ' एन्सेलेडस (Enceladus) ' : इसकी प्राप्त प्रतिमाओं में, उसका कुछ हिस्सा एकदम सपाट और चिकना (Smooth) पाया गया है। यह बात बताती है कि इस उपग्रह पर आन्तरिक भू-गतिविधियाँ जारी हैं। लेकिन इतने छोटे उपग्रह पर यह कैसा संभव है ? इस विषय पर अनुसंधान जारी है। इसके साथ ही इस पिंड पर जमीन के अंदर पानी, बाष्प, कार्बन डाय ऑक्साइड, नैट्रोजन, मिथेन होने के भी संकेत मिले हैं। जैविक उत्पत्ति के लिए उष्मा, ऑर्गेनिक संयुक्ते और जल आवश्यक होता है।

४) नेपच्यून : इसके चंद्रमा ट्रायटन (Triton) के वातावरण में सक्रिय धुंध देखी गयी है।

प्लूटो और उसके उपग्रह--

प्लूटो का उपग्रह चेरॉन की खोज १९७८ में जेम्स डब्ल्यू क्रिस्ती ने की थी। प्लूटो और चेरॉन इनका मेल सौर मंडल में अनोखा है। चेरॉन का व्यास प्लूटो के व्यास के आधे से ज्यादा है और उसका द्रव्यमान प्लूटो के द्रव्यमान के 11.६% है जो सौर मंडल में किसी भी उपग्रह-ग्रह की जोड़ी में सबसे अधिक है। तुलना के लिए, पृथ्वी के चंद्रमा का व्यास पृथ्वी के व्यास का लगभग

एक चौथाई और द्रव्यमान पृथ्वी के द्रव्यमान के केवल १.२% है। इस कारण प्लूटो और चेरॉन के एकत्र द्रव्यमान के केंद्र का बिंदु प्लूटो के अंदर नहीं तो इन दोनों के बीच के खुले व्योम में है। प्लूटो और चेरॉन दोनों इस बिंदु की परिक्रमा करते हैं। अगर खगोलशास्त्र की परिभाषाएं सख्ती से लागू कीं, तो ऐसी स्थिति में, दो खगोलीय पिंडों को ग्रह-उपग्रह न कहकर जुडवाँ ग्रह कहा जाता है। लेकिन फिर भी चेरॉन को आमतौर पर प्लूटो का उपग्रह ही माना जाता है। प्लूटो के घनत्व के अनुसार उसमें ७०% शिलाएं हैं, जबकि चेरॉन का ५०-५५ % हिस्सा ही पत्थरों का है बाकी बर्फ। इस कारण चेरॉन की उत्पत्ति के विषय में भी मतभेद है कि क्या चेरॉन प्लूटो से उत्पन्न है या दो भिन्न पिंड थे जो बाद में एक दूसरे के परिक्रमागत हो गये।

फिर वर्ष २००५ में प्लूटो के दो और छोटे चंद्रमाओं की खोज हुई। 11-७-२०१२ को हबल टेलिस्कोप द्वारा इसके पांचवे चंद्रमा स्टिक्स का पता लगाया गया। इसका व्यास १० से लेकर २५ कि.मी. होना चाहिए।

सौर ग्रहों के वलय-

शनि :-

शनि की निर्मिति तो ४५० करोड़ वर्ष पूर्व हुई लेकिन उसके वलयों की आयु केवल १० से २० करोड़ वर्ष है ऐसा अनुमान है। इनके उत्पत्ति के पुराने सिद्धांत के अनुसार शनि का कोई उपग्रह किसी धूमकेतु के साथ टकराव के कारण नष्ट हो गया और उसके मलवे से वलयों का निर्माण हो गया। इस सिद्धांत के अनुसार वलयों के गठन में पथरीला मलवा और बर्फ इनका मिश्रण होना चाहिए। लेकिन वलयों में ९० से ९५ % बर्फ है। इसपर वैज्ञानिक कॅनप और उनकी टीम के अनुसार शनि के किसी चंद्रमा ने जब विद्यमान ' B ' वलय को लांघा होगा तो प्लॅनेटरी टाइडल बलों ने उस उपग्रह की बाहरी परतों को अलग कर दिया होगा जबकि उसका पथरीला केंद्र बचा होगा जो अंततः ग्रह में जा मिला। इससे शुरू में बर्फ का भारी वलय बना लेकिन समय के साथ वह अंदरूनी तरफ फैलता रहा। आज विद्यमान, कम घनत्व वाले वलय बने जबकि बाहरी सिरे के बर्फ ने छोटे-छोटे बर्फीले चंद्रमाओं का रूप ले लिया। अर्थात् शनि के वलयों की रचना भी चंद्रमा की तरह, मौलिक रूप से ही, बनी होगी।

कॅसिनी यान से प्राप्त जानकारी के अनुसार वलयों का अपना वातावरण है जो मुख्य ग्रह से अलग है। यह वातावरण मुख्यतः प्राणवायु के अणुओं से बना है। यूरोपीयन स्पेस एजेंसी के

अनुसार वलयों से जब पानी बाहर आता है तो सूर्यप्रकाश के कारण उसका विघटन होता है। ऐसा कहना है, यूनिवर्सिटी लंदन के अँड्र्यू कोट्स का।

शनि के छल्लों से प्रति सेकंड दस हजार किलोग्राम बर्फ, पत्थर और धुलीकणों का वर्षाव शनि पर हो रहा है।

इसका पता १९८० में लगा। अतः कुछ समय बाद इन छल्लों का अस्तित्व नहीं रहेगा। कितने समय बाद इसके प्रति मतभेद है। फिर भी एक अनुमान के अनुसार इसके लिए ३ लाख वर्ष लगेंगे।

यूरेनस :

शनि के वलय चमकीले परमाणुओं और कणों से बने हैं। लेकिन यूरेनस के वलय काले, चिकने और गोल पत्थरों से बने हैं। इस कारण शनि के वलय हमें चमकीले दिखते हैं तो यूरेनस के काले। यूरेनस के वलय शनि के वलयों की तुलना में कम चौड़े हैं।

सौर परिवार के सदस्यों से संबंधित कुछ और बातें -

- १) सन १६०९ में खगोलशास्त्री जोहानेस केपलर (१५७१-१६३०) ने गणितीय रूप से यह दिखा दिया कि सारे ग्रह सूर्य के चारों ओर दीर्घवृत्तीय कक्षा में चक्कर लगाते हैं। सूर्य के आसपास के ग्रहों के प्रदक्षिणा मार्ग लगभग गोलाकार हैं जबकि दूर के पिंडों के दीर्घवृत्ताकार। धूमकेतुओं की कक्षाएं दबी हुई और काफी लम्बाई वाले दीर्घवृत्त हैं।
- २) सूर्य के पास के चार ग्रहों को पार्थिव ग्रह तो दूर के चार ग्रहों को सौर ग्रह कहते हैं।
- ३) शुरु के दो ग्रहों के कोई उपग्रह नहीं हैं। पृथ्वी का एक है तो मंगल के दो लेकिन काफी छोटे चंद्र हैं।
- ४) सौर परिवार के चार आंतरिक ग्रहों की तुलना में बहिर्भाग के चार ग्रह काफी बड़े हैं। लेकिन तुलनात्मक तौर पर उतने ठोस नहीं हैं। प्रत्येक के कई-कई चंद्रमा हैं। इनके गिरे वलय भी हैं।
- ५) आंतरिक ग्रहों में बुध और मंगल तो बड़े ग्रहों के चंद्रमाओं से भी छोटे हैं। बुध का वातावरण नहीं है। मंगल का वातावरण एकदम छितरा-छितरा है। ये ग्रह अपने क्षीण गुरुत्वाकर्षण के कारण किसी भी वायु को अपने साथ बांधकर नहीं रख सके। शुक्र-पृथ्वी पर वातावरण की घनता संतोषजनक है। इन ग्रहों में भारी धातुएं हैं। जिनमें मुख्य है लोहा।

पृथ्वी और शुक्र, मंगल और बुध की तुलना में ज्यादा संहतिवाले हैं। नॅशनल जियोग्राफिक न्यूज नामक नियतकालिक में प्रसिद्ध हुए एक मॉडल के अनुसार शुक्र और पृथ्वी के निर्माण के बाद बचे हुए मलवे से बुध और मंगल का उप उत्पाद के रूप में निर्माण होना चाहिए। यह कहना है लॉस एंजेलस की कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी के श्री. ब्राड हान्सेन का। अंतर्ग्रहों में पृथ्वी का चुंबकीय क्षेत्र सबसे तीव्र है।

६) बाह्य ग्रहों के चंद्र अपने-अपने ग्रहों के गुणधर्म व्यक्त नहीं करते। इसके विपरीत वे छोटे ग्रहों के गुणधर्म धारण करते हैं। इस कारण कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि उपग्रहों की उत्पत्ति ग्रहों से नहीं हुई।

७) जिसे आज तक नववां ग्रह माना जाता था वह प्लूटो, वह छोटे ग्रहों की कोई विशेषता नहीं रखता। इसलिए कई खगोलशास्त्री उसे नेपच्यून का स्थानभ्रष्ट चंद्रमा मानते हैं।

८) सौर मंडल का व्यास करीब 11 प्रकाश घंटे है।

९) आम तौर पर सभी ग्रहों की सूर्य की परिक्रमा करने की और सूर्य के अपने परिवलन की दिशा एक ही है।

हमारे सौर मंडल के लगभग सभी ग्रह समांतर घूमते हैं। लेकिन इसके लिए अपवाद हैं शुक्र, यूरेनस और प्लूटो। अन्य ग्रहों की तुलना में यूरेनस अपनी धुरी पर उलटा घूमता है। यूरेनस इतना झुका हुआ है कि ऐसा लगता है वह पलटियां खाता हुआ तथा लुढ़कता हुआ घूम रहा है। पृथ्वी का अक्षीय झुकाव 23.5° अंश है तो यूरेनस का 90° अंश। किसी पिंड की सूर्य के गिर्द परिभ्रमण की कक्षा निश्चित करने वाला गुण विशेष है उसका तिर्यक कोन। पृथ्वी के लिए, पृथ्वी की कक्षा का प्रतल और क्रांतिवृत्त का प्रतल इनके बीच का कोन। ग्रहों में बुध का तिर्यक कोन सबसे अधिक 60° है। छोटे पिंडों की कक्षाओं के संदर्भ में आमतौर पर विकेंद्रता और तिर्यक कोन तौलनिक दृष्टि से बड़े होते हैं।

कांट-लाप्लास अभिकीय परिकल्पना : ग्रहों का परिभ्रमण -

शुरू में उपलब्ध निरीक्षणों के आधार पर ऐसा माना जाता था कि ग्रह, सूर्य की परिक्रमा सूर्य के परिभ्रमण और परिवलन की दिशा में ही करते हैं। उनकी कक्षाएं लगभग गोलाकार और एक ही प्रतल में हैं जो सूर्य के परिवलन अक्ष के लगभग लम्ब दिशा में है। इसके लिए कारण माना जाता था कि सूर्य और ग्रह ये एक ही, धूली कणों और वायु के महाकाय मेघ से बने हैं। इस मेघ

के अपने ही चक्रीय परिवहन के कारण, ग्रह निर्मिति के लिए उपयुक्त तश्तरी या प्रोटो प्लैनेटरी डिस्क बनी। उसीसे ग्रहों की निर्मिति होने के कारण सूर्य और ग्रह एक ही प्रतल में हैं।

लेकिन समय के साथ अतिशय विकेंद्री कक्षा वाले लघुग्रहों की खोज हुई तथा वक्री कक्षा वाले उपग्रह भी मिले। ये बातें सूर्यकुल में गति की तार्किक और अपेक्षित नियमितता के विरुद्ध हैं।

केंद्रच्युति --

दीर्घवृत्त के केंद्र से सूर्य का अंतर और उप या अपसूर्यबिंदु का अंतर इनके गुणोत्तर को केंद्रच्युति कहते हैं।

दीर्घवृत्त की केंद्रच्युति हमेशा एक से कम होती है। केंद्रच्युति जितनी अधिक (लेकिन एक से कम) उतनी दीर्घवृत्त की दीर्घता अधिक। बुध - 0.2 , प्लूटो - 0.28 अर्थात् इन दो ग्रहों की कक्षाएं, अन्य ग्रहों की तुलना में अधिक दीर्घवृत्ताकार हैं। केंद्रच्युति शून्य का अर्थ पूर्ण गोलाकार। लेकिन सौर्यमाला में किसी भी ग्रह की केंद्रच्युति शून्य नहीं है। पृथ्वी के लिए इसकी कीमत 0.०१७ है अर्थात् काफी गोलाकार है।

केंद्रच्युति एक हो तो ऐसी भ्रमणकक्षा को ' अन्वस्त ' (Parabolla) कहते हैं। उदा. घूमकेतुओं की कक्षाएं।

वस्तुकेंद्र (बैरिसेंटर)

जिस बिंदु के चारों ओर दो या अधिक वस्तुएं भ्रमण करती हैं, उस बिंदु को ' वस्तुकेंद्र ' कहते हैं। उदा. पृथ्वी और चंद्र - पृथ्वी का वस्तुमान = $M = 6 \times 10^{24}$ कि.ग्रॅ. ; चंद्र का वस्तुमान = $m = 7.4 \times 10^{22}$ कि.ग्रॅ. ; पृथ्वी और चंद्र इनके बीच की दूरी = $r = 3,84,000$ कि.मी. मानों पृथ्वी के केंद्र से वस्तुकेंद्र का अंतर = a कि.मी. अब सूत्र के अनुसार - $6 \times 10^{24} \times a = 7.4 \times 10^{22} \times (3,84,000 - a)$ | अतः $a = 4680$ कि.मी. पृथ्वी की त्रिज्या = 6400 कि.मी. पृथ्वी और चंद्र इनका वस्तुकेंद्र , पृथ्वी के केंद्र से 4680 कि.मी. दूरी पर है या भूपृष्ठ के अंदर $6400 - 4680 = 1720$ कि.मी. पर है। पृथ्वी का केंद्र बैरिसेंटर के गिर्द लगभग 27 दिन में एक प्रदक्षिणा पूरी करता है।

बृहस्पति और सूर्य

बृहस्पति सूर्य की परिक्रमा नहीं करता तो बृहस्पति और सूर्य एक सामान्य बिंदु की परिक्रमा करते हैं। यह बैरिसेंटर सूर्य के बाहर है।

सारे ग्रहों की युति --

प्रथम बात तो, वास्तव अर्थ में पृथ्वी के संदर्भ में सभी ग्रह कभी एक रेखा में नहीं आते। ग्रहों की युति यह एक दूरलभ घटना है। पृथ्वी की विरुद्ध दिशा में सभी ग्रह एकत्र आए तो उनका एकत्र गुरुत्वाकर्षण या कहो प्रभाव पृथ्वी पर भारी भूकंप, उथलपुथल मचाएगा, सागरों में भारी ज्वार आएगा, मानव जाति नष्ट हो जाएगी आदि दावे किए जाते हैं। लेकिन वास्तवता यह है कि सारे ग्रहों की युति भी पृथ्वी का बाल भी बांका नहीं कर सकती। हां, भूतकाल में पृथ्वी पर भारी उथलपुथल हुई है, लेकिन उसके अन्य कारण थे, कथित तरह की युति नहीं। चंद्र का पृथ्वी पर आकर्षण और ज्वार-भाटे का बल एकक माना तो प्रत्यक्ष सूर्य का ज्वार-भाटा लाने का बल भी उसे ४६ % ही है। उसके बाद सबसे अधिक है शुक्र का जो 0.००५ % है। सभी ग्रहों का मिलाकर भी यह बल नगण्य ही है। प्रत्यक्ष चंद्र जब पृथ्वी से न्यूनतम दूरी पर होता है तो उसके द्वारा डाला जाने वाला और जब वह महत्तम दूर होता है तब का बल इनमें भी २५ % का अंतर है।

सूर्य के संदर्भ में ग्रहों की युति -

अधिक्रमण--

कभी-कभी बुध या शुक्र, सूर्य और पृथ्वी इनकी रेखा में उनके ऊर्ध्व या अधःसंपात बिंदु के पास आते हैं। ऐसे समय एक काली बिंदी सूर्य बिंब पर से गुजरती हुई दिखती है। इस घटना को ही अधिक्रमण (Transit) कहते हैं। चंद्रबिंब का व्यास साधारण तौर पर सूर्यबिंब इतना ही होने के कारण चंद्र, सूर्य को पूरी तरह ढांप सकता है। सूर्यबिंब की तुलना में बुध या शुक्र बिंबों के व्यास बहुत ही छोटे हैं। बुध का बिंब सूर्यबिंब की तुलना में लगभग ३५० गुना छोटा है तो शुक्र का ६४ गुना। इस कारण अधिक्रमण के समय केवल काली बिंदी सूर्यबिंब पर से गुजरती हुई दिखती है।

क्यूडपर बेल्ट

वर्ष १९४३ में केनेथ एजवर्थ ने नेपच्यून के पार के हिस्से में, ग्रह निर्मिति के समय के, बाद में बचे हुए मलवे के पट्टे के अस्तित्व की संकल्पना प्रस्तुत की थी। लेकिन १९५१ में गेराल्ड क्यूइपर (Gerard Kuiper) ने, उस समय जो समझ थी, उसके अनुसार, प्लूटो को पृथ्वी समान ग्रह ही माना था। उस स्थान पर कोई वस्तु होने की बात को नकारा था। उनके अनुसार वहाँ की कोई भी वस्तु गुरुत्वीय प्रभाव से अपनी कक्षा बदलते-बदलते या तो ग्रहमाला के अंदर आ जाएगी या बाहर फेंकी जाएगी। एक ढंग से यह उपरोक्त संकल्पना को खारिज करना था। लेकिन जब उस हिस्से में अधिकाधिक वस्तुएं मिलने लगीं तो उनका एक वर्ग बनाया गया और उस हिस्से को 'क्यूइपर पट्टा' नाम से संबोधित जाने लगा और यही नाम आगे चल पड़ा।

लेकिन वर्ष १९५२ में क्यूइपर ने लघु आवर्तकालीन धूमकेतु, सूर्य से ३० से ५० खगोलीय एकक दूरी से आने की बात व्यक्त की थी। अब धूमकेतुओं का उनके आवर्तन काल के अनुसार वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है -

लघु आवर्त कालीन धूमकेतु :

आवर्तन काल २०० वर्षों से कम। उदा. ७६ वर्ष आवर्तन काल वाला हेली धूमकेतु।

दीर्घ आवर्त कालीन धूमकेतु :

उदा. तीन-साडे तीन सहस्र वर्षों के आवर्तन काल वाला हेले-बॉप। ये सूर्य से ५० हजार से एक लाख खगोलीय एकक इतनी दूरी पर होने वाले 'ऊर्ट मेघ' से आते हैं।

नेपच्यून ग्रह, सूर्य से ३० खगोलीय एकक अंतर पर है। उससे आगे ५० खगोलीय एकक अंतर तक होने वाली वस्तुओं से जो क्षेत्र बना है उसे 'क्यूइपर पट्टा' नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र से सूर्य के गिर्द भ्रमण के लिए आने वाली वस्तुएं आयनिक प्रतल से अधिक दूर नहीं हैं। अर्थात् वे गोलाकृति क्षेत्र में नहीं हैं। इसी कारण इसे क्यूइपर बेल्ट या पट्टा नाम दिया गया है। इससे उलट, ऊर्ट मेघ से आने वाली वस्तुएं सूर्य से ५० हजार से लेकर तो एक लाख खगोलीय एकक दूर, गोलाकृति क्षेत्र में हैं। सामान्यतः धूमकेतु का आकार कुछ कि.मी. की मर्यादा में होता है। लेकिन उपरोक्त बेल्ट में २५० कि.मी. आकार वाली कुछ वस्तुएं मिली हैं। शुरू में ऐसा अनुमान था कि यह पट्टा २०० वर्षों से अधिक परिभ्रमण कालावधि वाले धूमकेतुओं का उगम स्थान होना चाहिए। लेकिन बाद में ऐसा देखा गया कि इसमें विद्यमान वस्तुओं की कक्षाएं धूमकेतुओं की तुलना में अधिक नियमित हैं। अतः इसे ऊर्ट मेघ से अलग माना गया। ५५

खगोलीय एकक के पास कुछ वस्तुएं दिखी हैं, लेकिन उससे पार एक भी वस्तु नहीं मिली। इन वस्तुओं के कई उपवर्ग बनाए गये हैं।

नेपच्यून के पार के पिंड -

- १) नेपच्यून की कक्षा के बाहर, सेमी मेजर ऑक्सिस वाले पिंडों में प्लूटो सबसे प्रथम है।
- २) लम्बी कालावधि वाले धूमकेतुओं की कक्षाओं के अपसूर्यबिंदु नेपच्यून की कक्षा के बाहर हैं।
- ३) नेपच्यून की कक्षीय कालावधि के साथ २ : ३ प्रमाण में अनुकंपी कक्षावाले पिंडों को 'प्लुटिनोज' नाम दिया गया है। इस वर्ग में लगभग २०० वस्तुएं हैं।
- ४) नेपच्यून की कक्षीय कालावधि के साथ ३ : ४ प्रमाण में अनुकंपी कक्षा वाले पिंड, नेपच्यून के करीब से गुजरते हैं तो २ : ५ प्रमाण रखनेवाले, महत्तम दूरी से।

संक्षेप में -

- १) हाल के अनुमान के अनुसार लघुग्रह के मुख्य पट्टे से यह क्यूडपर पट्टा २० गुना चौड़ा और वस्तुमान की दृष्टि से उससे २० से लेकर तो २०० गुना बड़ा होना चाहिए।
- २) इस क्षेत्र में मिली प्रथम वस्तु प्लूटो है (१९३० में)।
- ३) इस संकल्पना की प्रस्तुति के बाद मिली प्रथम वस्तु 'अल्बियोन १५७६०' है जो १९९२ में खोजी गयी थी। १९९२ के बाद इस क्षेत्र पर काफी अनुसंधान हुआ है। जनवरी २०१९ तक यहाँ २००० से अधिक वस्तुएं मिली हैं।
- ४) १०० कि.मी. से अधिक व्यासवाली करीब ३५००० वस्तुएं इसमें होनी चाहिए और उससे छोटी लाखों ऐसा २०२० के शुरू तक का अनुमान है।
- ५) क्यूडपर बेल्ट के वस्तुओं के प्रमुख घटक हैं अमोनिया, मिथेन और पानी का बर्फ।
- ६) सूर्यमाला बनी उसी समय शायद यहाँ की वस्तुएं बनी हैं। ४.५ अरब सालों में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है।
- ७) प्लूटो (PLUTO), एरिस (ERIS), हाउमिया (HAUMEA) और मेकमेक(MAKEMAKE) ये अधिकृत चार बटु ग्रह (Dwarf Planets) हैं जिनका आकार लगभग समान है तथा शनि का फोबे और नेपच्यून का ट्रिटॉन ये उपग्रह भी शुरू में इसी पट्टे में होने चाहिए।

सौर परिवार से बाहर : -

सौर परिवार के बाहर पहुँचा प्रथम मानव निर्मित यान ' वायेजर-१ ' है। वह २५ अगस्त २०१२ को सौर परिवार की मर्यादा के बाहरी अंतरिक्ष में दाखिल हुआ था ।

ऊर्ट बादल

हम इस बादल को प्रत्यक्ष नहीं देख सकते चूँकि यह घना नहीं है। इस बर्फीले, पथरीले, बुलबुलों तथा छितरे बादल जैसे क्षेत्र की अंदरूनी दीवार सूर्य से 2000-5000 खगोलीय एकक दूर तो बाहरी दीवार 50,000 ख. दूर मानी जाती है। कुछ अनुमानों के अनुसार वह 200,000 ख. एकक तक भी हो सकती है। अगर यह अनुमान ठीक है तो यह अंतर होगा सूर्य और उसका सबसे करीबी तारा प्रॉक्झिमा सेंचुरी के बीच की दूरी के एक तिहाई।

एक धारणा के अनुसार यह दायरा सूर्य से 1.87 प्रकाश वर्ष तक होना चाहिए। कुईपर बेल्ट, सूर्य से 30 से 50 ख.एककों के बीच है अर्थात् 4.5×10^9 कि.मी.से लेकर तो 7.5×10^9 कि.मी.के बीच। अर्थात् कुईपर बेल्ट का मध्य यह सूर्य से, सूर्य और ऊर्ट बादल की अधिकतम दूर की किनार, इस अन्तर के केवल 0.034%दूरी पर है। लेकिन बीच के अन्तराल में मिलने लायक अधिक कुछ नहीं है।

बाह्य ग्रहों का विचित्र संसार -

तारा रहित ग्रह-

पृथ्वी से ८० प्रकाशवर्ष दूर एक ऐसा ग्रह पाया गया है, जो अंतरिक्ष में किसी सूर्य के बिना, एकदम अकेले भ्रमण कर रहा है। यह बृहस्पति के मुकाबले छह गुना बड़ा है। उसका जीवनकाल १.२ करोड़ वर्ष ही हो सकता है । उसे नंबर दिया गया है - PSOJ ३१८.५- २२। खगोल वैज्ञानिकों की आंतरराष्ट्रीय टीम ने, हालिकाला माउई स्थित विशाल दूरबीन पेन-स्टार्स-१ (PS-1) के माध्यम से इसे ढूँढ निकाला है। यह या तो अपने तारे के चंगुल से भाग निकला है या शुरू से ही उसके पास कोई तारा नहीं था। ऐसे स्वतंत्र ग्रहों को जो किसी तारे से बंधे नहीं होते और स्वतंत्र रूप से इधर-उधर भटकते रहते हैं, आवारा ग्रह या निष्कासित ग्रह कहते हैं।

उलटी दिशा में घूमनेवाले ग्रह -

खगोलशास्त्रियों की एक आंतरराष्ट्रीय टीम ने खोजे ग्रहों में, ऐसे भी छह ग्रह मिले हैं जो अपने स्वामी तारे की घूर्णन-दिशा की उलटी दिशा में घूम रहे हैं। इस संदर्भ में खगोलविदों का कहना है कि खोजे गये नए ग्रहों की उलटी दिशा में घूमने की स्थिति, ग्रहों के निर्माण के अब तक के मान्य सिद्धांत को चुनौती दे सकती है। सबसे पहले सौर मंडल के बाहर, उलटी दिशा में परिक्रमा करने वाला पहला ग्रह अगस्त २००९ में मिला था।

एक ही कक्षा में दो ग्रह -

केपलर दूरबीन द्वारा अब एक ऐसा सौर मंडल खोजा गया है जिसमें दो ग्रह एक ही कक्षा में, एक के पीछे एक, अपने तारे का चक्कर लगा रहे हैं। इस सौर मंडल को नाम दिया गया है - KOI-७०३/१। इसमें चार ग्रह हैं जो उस तारे का चक्कर लगा रहे हैं। उनमें दो ग्रह ऐसे हैं जिनकी कक्षाएं उनके सूर्य से समान दूरी पर हैं। इन दोनों को उस तारे का चक्कर लगाने ९.८ दिन लगते हैं। इन दोनों ग्रहों को इनके सूर्य से जोड़ने वाली काल्पनिक रेखाओं के बीच 120° का कोण है। अर्थात् आप एक ग्रह पर खड़े हुए तो दूसरा आपको हमेशा चमकता हुआ दिखेगा। दूसरे का कभी अस्त नहीं होगा, न वह कभी धूमिल पड़ेगा। वैज्ञानिकों के अनुसार ऐसा सैद्धान्तिक दृष्टि से संभव है। जब कोई पिंड किसी अन्य भारी पिंड के चक्कर काटता है तो उसके परिक्रमा पथ पर दो बिंदु ऐसे होते हैं जहां कोई दूसरा पिंड संतुलित अवस्था में बना रह सकता है। ये दो बिंदु 'लैग्रांजे बिंदु' कहलाते हैं और वे 120° पर स्थित होते हैं। सैद्धान्तिक रूप से यह भले ही संभव हो, लेकिन किसी सौर मंडल में यह स्थिति इससे पहले कभी देखी नहीं गयी।

इस तरह की स्थिति बृहस्पति के बारे में भी देखी गयी है। उसके आसपास कुछ क्षुद्र उपग्रह एक ही परिक्रमा पथ पर चक्कर काट रहे हैं। इन्हें ट्रोजन उपग्रह कहते हैं।

वैज्ञानिकों को लग रहा है कि हमारे चंद्रमा के उत्पत्ति के एक सिद्धांत की पुष्टि इस आधार पर हो सकती है। इसके अनुसार हमारे अपने चंद्रमा की उत्पत्ति सौर मंडल की उत्पत्ति के करीब पांच करोड़ साल बाद हुई। उस समय पृथ्वी की टक्कर एक विशाल पिंड से हुई थी जिसके फलस्वरूप चंद्रमा की उत्पत्ति हुई। इस दूसरे पिंड को 'थेइया' नाम दिया गया है। वैज्ञानिकों के अनुसार यह टक्कर तभी संभव थी जब थेइया पृथ्वी के लैग्रांजे बिंदु पर रहा हो। अब KOI-७०३/१ को देखकर लग रहा है कि शायद ऐसा वास्तव में हुआ हो। अब सवाल उठता है कि क्या KOI

के ये दो ग्रह भी कभी आपस में टकराएंगे ? लेकिन गणनाएं बताती हैं कि अगले २०-२५ लाख सालों में ऐसी संभावना नहीं है। (लो. स. नागपुर : 11-९-२०११)

छोटे तारे का चक्कर लगाता बड़ा ग्रह-

स्पेन की कालार अल्टो ऑब्जरवेटरी ने टेलिस्कोप के सहारे एक ऐसा ग्रह देखा जो बृहस्पति जैसा बड़ा होकर भी अपने से छोटे तारे की दीर्घवृत्ताकार पथ पर परिक्रमा कर रहा है। यह ग्रह मुख्य रूप से गॅसीय है। इसे अपने तारे का चक्कर पूरा करने २०४ दिन लगते हैं। यह नया सौर मंडल पृथ्वी से मात्र ३० प्रकाशवर्ष दूर है। इस तारे को GJ-३५१२ नाम दिया गया है। इस तारे का आकार सूर्य के केवल १० % है। तो ग्रह का वस्तुमान बृहस्पति से आधा है। इस अध्ययन के प्रमुख हैं कैटिलोनिया इन्स्टीट्यूट ऑफ स्पेस स्टडिज के तारा भौतिकशास्त्री युआन कार्लोस मोरास। उनके अनुसार यह बात काफी आश्चर्यजनक है। सैद्धान्तिक निर्माण मॉडल बताते हैं कि कम वजनी तारे के ग्रह छोटे होते हैं जैसे पृथ्वी या बुध। इससे ग्रहों के निर्मिति की हमारी परिभाषा बदल सकती है। इसी अध्ययन के अनुसार इस तारे की परिक्रमा करने वाला एक और ग्रह भी होना चाहिए। और कहा जा रहा है कि इसका ही एक तीसरा ग्रह शायद इस सौर मंडल से पहले कभी बाहर गया है।

बृहस्पति से चालीस गुना भार वाले ग्रहों का भी पता चला है तो बड़े ग्रहों द्वारा अपने तारे का बहुत करीब से चक्कर लगाने वाले बहुत सारे ग्रह तो ज्ञात हुए ही हैं।

ब्रह्माण्ड का सबसे बड़ा ग्रह -

यह सबसे कम घनत्व वाला ग्रह भी हो सकता है। घनत्व बृहस्पति की तुलना में ६% से १४% ही हो सकता है। इसकी खोज 11 अगस्त २००९ को डेव्हिड अँडरसन और उनकी टीम ने की थी। इसे नाम दिया गया है WASP 17-B। यह अपने तारे WASP 17 की ३.७ दिनों में परिक्रमा करता है। हमसे ९००० प्रकाशवर्ष दूर है। व्यास २,४९,००० कि.मी. अर्थात् बृहस्पति से दुगुना बड़ा गॅसीय ग्रह है। अपने तारे की विपरीत दिशा में परिक्रमा करता है। अपने तारे से केवल ७०,०००,०० कि.मी. दूर अर्थात् सूर्य-बुध दूरी से ८ गुना कम दूर है।

सबसे स्याह बाह्य ग्रह :

TrES-2b या केपलर 2b यह अब तक ज्ञात बाह्य ग्रहों में सबसे स्याह ग्रह है। यह GSC-03549-02811 तारे की प्रदक्षिणा करता है जो सूर्य से 750 प्रकाशवर्ष दूर है। इसकी खोज

2006 में Trans Atlantic Exoplanet Survey के दरम्यान की गयी थी। सबसे काला कोयला उसपर गिरने वाले प्रकाश का 1% से भी कम हिस्सा परावर्तित करता है। यह ग्रह उससे भी काला है। यह वायु का प्रचंड ग्रह है जो बृहस्पति से 1.45 गुना बड़ा है। यह अपने तारे से केवल 30 लाख कि.मी. दूर है और उसका परिक्रमा कालावधि केवल 2.5 दिन है।

घन ग्रह के आकार की मर्यादा

पथरीले ग्रह के आकार की महत्तम संभवनीय मर्यादा को गणितीय पद्धति से निकाला गया है, जो पृथ्वी की त्रिज्या के तीन गुना है, तो बृहस्पति की त्रिज्या के एक तिहाई से कुछ ही कम है।

जैसे-जैसे ग्रह अधिक वजनी होता है, वैसे-वैसे उसमें गुरुत्व के कारण अंदर की ओर दबाव की प्रवृत्ति बढ़ती है। यह तबतक होता है, जबतक उसका द्रव्यमान बृहस्पति के १.७ गुना या पृथ्वी के ५४० गुना नहीं हो जाता। यह क्रांतिक बिंदु है। इसके बाद द्रव्यमान में वृद्धि रुक जाती है चूंकि अब इलेक्ट्रॉन्स की अपभ्रष्टता(degeneracy) के कारण बड़े हुए द्रव्यमान से होने वाला संकुचन, बड़े हुए द्रव्य के आकारमान से अधिक होता है। परिणामतः ग्रह का आकार छोटा हो जाता है।

ग्रहों के परिक्रमा का लंबवलाकार पथ

ग्रह के सूर्य की परिक्रमा करने का पथ सटीक वलाकार होने के स्थान पर लंबवलाकार (elliptical) है इसका मूल कारण है, ऊर्जा तथा कोनीय मोमेंटम के अविनाशी होने के नियम। लंबवलाकार कक्षा में वे बिंदु होते हैं जहां उपरोक्त दोनों राशियाँ कायम रहती हैं।

कक्षा सटीक वलाकार होने के लिए हर क्षण और सभी बिंदुओं पर पिंड की गति एक ही होनी चाहिए। सौर प्रणाली में ग्रह एकदूसरे को खींचते हैं और उनपर लघुग्रहों या पिंडों द्वारा आघात होते रहते हैं। उस कारण उनकी परिक्रमा की गति स्थिर नहीं रहती। जब गति धीमी होती है, तो वह सूर्य की ओर खिसकेगा। परिणामतः गति फिर बढ़ती है। आगे वह सूर्य से दूर हो जायेगा। फिर गति धीमी हो जायेगी। इस तरह ग्रह, सूर्य करीब और दूर, इनके बीच दोलायमान

होते रहता है। अंतिम परिणाम यह होता है कि कक्षा लंबवत्याकार रूप में स्थिर होती है। अर्थात् ग्रहों के लिए गोलाकार कक्षा के स्थान पर लंबवत्याकार कक्षा स्थिर कक्षा होती है।

वत्याकार यह लंबवत्याकार की विशेष अवस्था है, जहाँ प्रमुख और दुय्यम अक्ष समान होते हैं। कुछ ग्रहों की कक्षा वत्याकार लगती है। लेकिन सूक्ष्म मापन करने पर वह, अल्प क्यों न हो, लंबवत्याकार ही मिलेगी ।

४. धधकते अंतरिक्ष पिंड

आंतरतारकीय माध्यम के तीन महत्वपूर्ण घटक होते हैं ।

- १) धूल और वायु के मेघ
- २) कॉस्मिक किरणें
- ३) चुंबकीय क्षेत्र।

ऐसा पाया गया है कि इन तीनों में विशेष ढंग का संतुलन है - कॉस्मिक किरणों की कुल ऊर्जा $\approx$ चुंबकीय क्षेत्र की ऊर्जा $\approx$ मेघों के अनियमित (Random) भ्रमण की गतिजन्य ऊर्जा।

यह अभी स्पष्ट नहीं हुआ है कि ऐसा क्यों है और किस तरह यह संतुलन बनाकर रखा जा रहा है।

वायु और धूल के महाबादल

इस ब्रह्माण्ड में निरपेक्ष रिक्ति जैसा कुछ भी नहीं है। जहां अंतरिक्ष है वहां द्रव्य है। तारों के अंतरालों में भी धूल और गॅसों के रूप में द्रव्य है, भले ही वह कितना ही विरल क्यों न हो। खगोलविदों का मत है कि आकाशगंगाओं में जितना द्रव्य है उतना ही द्रव्य आन्तरनक्षत्रीय अंतरिक्ष में विद्यमान है।

तेजोमेघ - धुलिकण और वायु इनके अंतर्भाव वाले तथा अंतर्गत तारों से प्रकाशित हुए वायु के प्रचंड बादलों को तेजोमेघ कहते हैं।

जब कभी किसी माध्यम का तापमान परम शून्य (Absolute Zero -273 डिग्रीज) से अधिक होता है तो तापीय विचलन (Fluctuations) उभरते ही हैं। वे कणों की तापीय अनियमित (Random) हलचल (Motion) के कारण उभरते हैं। वे आकस्मिक ढंग से माध्यम के किसी भाग में कणों का घनत्व बढ़ाते हैं तो कहीं उसे घटा देते हैं। खगोलशास्त्री 'जीन' ने अपने सिद्धांत में गुरुत्वीय अस्थिरता के लिए माध्यम के इन्हीं तापीय विचलनों को ही महत्वपूर्ण भूमिका सौंपी है। यह गुरुत्वीय अस्थिरता ही वायु / धूल के संघनन (Condensation) को गति देकर उनको कमाधिक गोलाकार घने बादलों में बदल देती है। ये बने बादल शुरू में तो ठंडे (10^0 केल्विन) होते हैं। हैड्रोजन परमाणुओं से थोड़ी संख्या में हैड्रोजन अणु बनते हैं। इन अणुओं का उत्तेजित होना तथा ऊर्जा का उत्सर्जित होना, इस ठंडे होने की क्रिया के लिए, कारण है। यह शीतलीकरण बादलों को अधिक संख्या में विभाजित करता है। ये बादल ही आगे मंदाकिनियों, तारों की उत्पत्ति के लिए उपादान कारण का काम देते हैं।

माध्यम में शुरू का हल्का क्षोभ अंततः भारी क्षोभ में बदलना ही है। जब विस्तार का बल और गुरुत्वीय बल एकदूसरे को संतुलित कर लेते हैं, उस आकार को 'जीन लम्बाई' कहते हैं। ऐसे संतुलित गुरुत्वीय बल की प्रवृत्ति पदार्थ को गोल आकार में संघनित करने की होती है। लेकिन जब वायुमेघ का आकार बहुत बड़ा होता है तो उसका माध्यम को विस्तारित करने का बल, गुरुत्वीय बल की तुलना में, काफी क्षीण होता है और वायुमेघ गोल आकार ग्रहण नहीं करता। उलटा शुरू में गोल हो तो भी गुरुत्वीय अनियमित आकुंचन के कारण अंततः वह चपटा रूप धारण कर लेता है। यही आकाशगंगा के निर्मिति की उपादान सामग्री बनती है।

नेब्युला: निहारिका--

नेब्युला यह लैटिन शब्द है। इसका अर्थ होता है ' बादल ' या ' धूँध '। यह अंतरिक्ष में उपस्थित वायु और धूल के महादानवी बादल को प्रदर्शित करता है। नेब्युला के पांच वर्ग हैं -

१) परावर्तनीय नेब्युला (reflection nebula): यह तारों उत्पत्ति का स्थान है और ऐसे तारे के प्रकाश को यह नेब्युला परावर्तित करता है। ये नीले होते हैं चूंकि प्रकाश प्रकीर्णन (Scattering) की दृष्टि से नीला रंग अधिक सक्षम होता है। उदा. (विच हेड रि. नेब्युला -IC २११८)

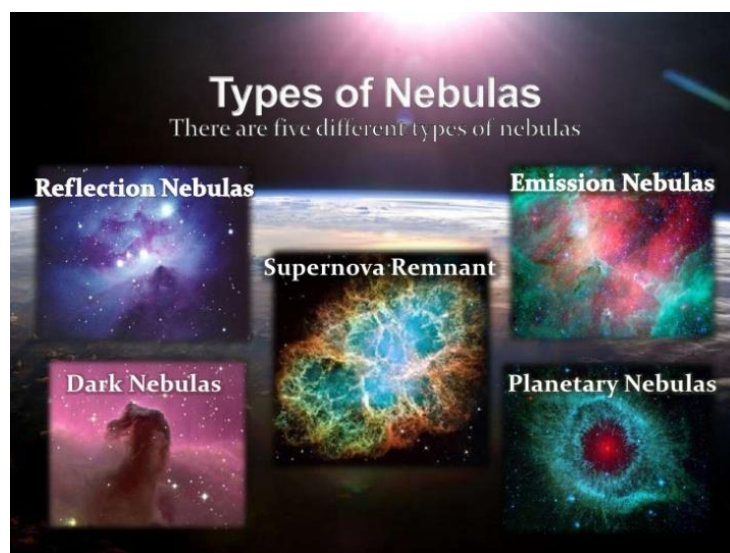
२) Emulsion नेब्युला : ये उच्च तापमान वाले वायु से बने होते हैं। बादल के परमाणु आजुबाजू के तारों द्वारा उत्सर्जित अति नील किरणों से ऊर्जा ग्रहण करते हैं। जैसे ही वे विशिष्ट ऊर्जा स्तर पर पहुँचते हैं तो विकिरण का उत्सर्जन करते हैं। विकिरण में हैड्रोजन की रेखाएं विपुलता से होती हैं। उनका रंग मुख्य रूप से लाल होने के कारण ये नेब्युला लाल दिखते हैं। ये वास्तव में जहां तारा बनने की प्रक्रिया अभी-अभी शुरू हुई है, ऐसे स्थान होते हैं। उदा. नॉर्थ अमेरिका नेब्युला NGC 7000।

३) कृष्ण नेब्युला (डार्क नेब्युला) : ये धूल के पुंज के स्वरूप के होते हैं। पीछे से आ रहे प्रकाश को रोकते हैं। वे परावर्तन नेब्युला जैसे ही होते हैं। केवल अलग दिखने का कारण है प्रकाश स्रोत, बादल और पृथ्वी इनका अलग ढंग से सीधी रेखा में होना। वे परावर्तन नेब्युला, उत्सर्जन नेब्युला के साथ दिखते हैं। इनकी व्याप्ति कुछ प्रकाश वर्ष इतनी होती है। उदा. हॉर्स हेड नेब्युला।

४) ग्रहीय नेब्युला (Planetary Nebula) : ये कुछ तारों द्वारा अपने जीवन के अंतिम पड़ाव पर फेंके गये वायु के पुंज (Shell) होते हैं। अपना सूर्य, इस अवस्था में पांच अरब साल बाद पहुँचेगा। इनका ग्रहों से कुछ लेना-देना नहीं। लेकिन दूरबीन से देखने पर वे छोटे ग्रह जैसे दिखते हैं। उनकी व्याप्ति एक प्रकाशवर्ष इतनी हो सकती है। उदा. The Cat's Eye Nebula।

५) सुपरनोवा का अवशेष : जब बड़े तारे का अंत अति तेजस्वी विस्फोट के साथ होता है तो उसे सुपरनोवा कहते हैं। शुरू में तो इस विस्फोट में पूरी मंदाकिनी इतनी ऊर्जा निकलती है। कुछ समय तक तो वायु दूर तक फैलते रहती है। बाद में तारे का बचा हुआ कलेवर या तो नेब्युला या कृष्ण विवर बन जाता है। यह विस्फोटित होते तारे के द्रव्यमान पर निर्भर होता है। उदा. SN १९८७ A नेब्युला।

*जब परावर्तन नेब्युला उत्सर्जन नेब्युला के साथ दिखाई पड़ता है तो उसे ' Diffused Nebula ' कहते हैं।



Images credit:- Quora

मंदाकिनी का आकार ग्रहण

आद्य-मंदाकिनी(Protogalaxy) के संकुचन के शुरुआती दौर में घूर्णन उतना महत्वपूर्ण नहीं होता। गुरुत्वाकर्षण की तुलना में प्रणाली का जड़त्व (Inertia) क्षीण होता है। संकुचन के दरम्यान ही घूर्णन क्रमशः तेज होते रहता है। (वैसे यह बात, क्या छोटी क्या बड़ी, सभी वस्तुओं के लिए समान रूप से सत्य है)। साथ-साथ जड़त्व बढ़ता है। यह जड़त्व, घूर्णन अक्ष की दिशा में आकुंचन को प्रतिबंध नहीं करता लेकिन घूर्णन अक्ष की लम्ब दिशा में कार्यरत गुरुत्वाकर्षण बल के विरोध में कार्यप्रवृत्त होने में सक्षम होता है। (Inertia does not impede the contraction along the rotation axis but it is capable of counter-acting the force of gravitation in the direction at right angle to the axis)। यही कारण है कि संकुचित होता मेघ जो शुरू में एकदम गोल आकार का था बाद में अधिक चपटा होते रहता है और अंततः तश्तरी का रूप धारण कर लेता है। या जब गुरुत्व बल और उसका जड़त्वीय प्रभाव आपस में तुलना करने लायक हो जाते हैं तब अगर आद्य-मंदाकिनी ने बहुत अधिक कोणीय संवेग (Angular Momentum) धारण कर लिया हो तो केंद्र में एकत्र वायु आकाशगंगा के केंद्रीय सतह में (Central plane of the galaxy) एकत्रित होना शुरू हो जाता है। हमारी आकाशगंगा ने

इसी कारण तश्तरी जैसा आकार धारण कर लिया होगा ऐसा अनुमान है और केंद्रीय हिस्से ने तौलनिक दृष्टि से गोल आकार ग्रहण कर लिया। सभी सर्पिल मंदाकिनियों की यही कथा है। (हमारी आकाशगंगा का आकार देखिए)।

इस तरह एक तारकीय निकाय (Stellar System) तैयार हो जाता है। अर्थात् इस निकाय को नियमित और विशिष्ट आकार देने वाला बल उसका गुरुत्वाकर्षण तथा उसका अपना जडत्व ही है। तारकीय निकाय में कोई और बल होता ही नहीं।

तारे का जन्म

ऊपर हमने तारकीय निकाय निर्मिति देखी। अब तारे की जन्म कथा देखना अधिक उपयुक्त होगा। जहां आवश्यक हो, तारों के प्रतिनिधि के तौर पर हम सूर्य को लेंगे, चूंकि तारों की तरह ही सूर्य भी वायु का जलता गोला ही है जिसे उसीके गुरुत्वीय बल ने अखंडित रूप में बनाएं रखा है।

गॅस और धूल के विशाल बादल को ' निहारिका ' कहते हैं। इसमें हैड्रोजन की मात्रा सबसे अधिक होती है। वायुमय होने के कारण निहारिका में बीच-बीच में भंवर निर्मित होते हैं। फलस्वरूप इसमें पदार्थ का वितरण असमान हो जाता है। कुछ ऐसे क्षेत्र विकसित हो जाते हैं जहां पदार्थ की मात्रा तथा घनत्व अधिक हो जाता है। वहां कुछ भारी गुरुत्व पैदा हो जाता है जिससे संकुचन शुरू हो जाता है। इस संकुचन, भंवरयुक्त गतिशीलता तथा आकर्षण से वायुमेघ गोलाकार रूप ले लेता है। वायुमेघ में गुरुत्वीय बल के कारण आकुंचन की प्रक्रिया शुरू होती है। स्थितिज ऊर्जा का रूपान्तर गतीज ऊर्जा में होना शुरू होता है। बादलों की घनता में वृद्धि होने लगती है। इन्हें ' ब्लैक ग्लोबुल्स ' कहा जाता है। हम उन्हें 'कृष्ण गोलिकाएं ' कह सकते हैं। इस दशा में उनका आकार अति विशाल यानी एक से दो प्रकाशवर्ष भी हो सकता है। शुरू में तापमान ५ से १५ डिग्रीज केल्विन होता है। इनके मुख्य घटक होते हैं हैड्रोजन और हिलीयम। लेकिन और निश्चित ढंग से कहें तो वे प्रमुख रूप में हैड्रोजन से बने गॅसीय मेघ होते हैं। इसमें कुछ हैड्रोजन के परमाणु तेज गति से आपस में टकराते हैं तो हिलीयम नाभिक बन जाते हैं।

जैसा कि ऊपर उल्लेख हुआ है, उनमें संकुचन और केंद्रभाग में द्रव्य का संघनित होना गुरुत्वाकर्षण के अंतर्गत होता है। गॅस को दबाने पर उसका दबाव बढ़ता है और घनत्व में वृद्धि होती है। इस संकुचन-क्रिया का विशेष अध्ययन जापानी खगोलशास्त्री हयाशी ने किया। इस

कारण इसे हयाशी-काल कहा जाता है। इस काल दरम्यान उपरोक्त मेघ के अंदरूनी भाग का तापमान बढ़ते रहता है। इस प्रक्रिया में उत्पन्न होने वाली गुरुत्वीय ऊर्जा का एक हिस्सा गॅसों को गर्म करता है तो दूसरा उत्सर्जित हो जाता है। बादल का तापमान बढ़ने लगता है। जैसे-जैसे तापमान बढ़ता है भिन्न-भिन्न विद्युत चुंबकीय किरणें उत्सर्जित होने लगती हैं। जब तापमान २-३ हजार डिग्रीज केल्विन हो जाता है तो अधोक्त किरणें उत्सर्जित होती हैं। बादल का मार्गक्रमण अब तारा बनने की दिशा में होने लगता है। या हम कह सकते हैं कि तारा अब भ्रूण अवस्था में है। मृग नक्षत्र के विशाल मेघ में इस प्रकार की घटनाओं का आभास मिलता है।

वर्ष १८९० में ही वैज्ञानिक लॉकेयर ने ऐसा विचार प्रस्तुत किया था कि इस बढ़ते हुए तापमान के कारण तारा चमकने लगता है। लेकिन लॉकेयर की यह मान्यता ठीक नहीं थी कि गुरुत्वीय संकुचन के कारण तारों में ऊर्जा उत्पन्न होती है। ब्रिटिश वैज्ञानिक लॉर्ड केल्विन ने यह बता दिया था कि सूर्य का जलना अगर कोयले आदि के जलने जैसी प्रक्रिया के ढंग का होता तो यह कुछ हजार वर्षों में ही राख होकर बुझ जाता।

इसके बाद अमेरिकी खगोलविद् एच्. एन्. रसेल ने १९१३ में सुझाया कि वस्तुतः यह ऊर्जा परमाणु ऊर्जा है। वास्तव में यह ऊर्जा रसेल ने सुझायी परमाणु ऊर्जा भी नहीं है।

इस ऊर्जा का सही आकलन और स्पष्टीकरण वर्ष १९२५ के दरम्यान सर्वप्रथम इंग्लैंड (केंब्रिज) के प्रख्यात भौतिकशास्त्री ऑर्थर एडिंग्टन ने दिया। उन्होंने कुछ समीकरण प्रस्तुत किए जिनके आधार पर यह स्पष्ट होता है कि सूर्य जैसे तारों की आंतरिक संरचना (Structure) कैसी है। तारों में दो बलों के बीच संतुलन किस तरह बनाए रखा जाता है। १) एक बल है, उसके अपने गुरुत्वाकर्षण के कारण, उसके अपने ही आकुंचन का बल। २) केंद्र से बहिर्दिशा की ओर दबाव वाला बल जो उत्पन्न होता है तारे के गर्भ में जल रही अणुभट्टी के कारण। वे एडिंग्टन ही थे जिन्होंने सूचित किया था कि इस भट्टी को इंधन प्राप्त होता है नाभिकीय संगलन की प्रक्रिया द्वारा। इसी ऊर्जा के बदौलत तारे चमकते हैं और गुरुत्वाकर्षण बल के कारण आकुंचन के दबाव के बावजूद पिचकते नहीं। एडिंग्टन ने स्पष्ट किया कि तारे की बाह्य सतह का तापमान भले ही कुछ हजार डिग्री सें. रहता हो लेकिन केंद्र की ओर बढ़ते-बढ़ते केंद्रभाग का तापमान जब एक करोड़ डिग्रीज् के ऊपर पहुंच जाता है तो तारे के गर्भ में अणुगर्भीय प्रक्रिया आरंभ होती है। साधारणतः तारे के गर्भ का तापमान एक से डेढ़ करोड़ डिग्री से. के बीच होता है। अन्य बातों में एडिंग्टन की कल्पना में भले ही कुछ सुधार हुए हों लेकिन गर्भ के उपरोक्त तापमान को आज

भी मान्यता प्राप्त है। उसके विषय में कोई विवाद नहीं है। इतने ऊंचे तापमान पर द्रव्य प्लाज्मा की अवस्था में ही रह सकता है। एडिंग्टन ने ही सुझाया था कि हैड्रोजन के नाभिक जुड़कर हिलीयम के नाभिक में रूपान्तरित हो जाते हैं। यह संगलन(Fusion) की ऊर्जा है। हैड्रोजन बम में इसी ढंग की ऊर्जा उत्पन्न होती है। वास्तव में एडिंग्टन के समय तक परमाणु ऊर्जा की खोज नहीं हुई थी। इस कारण सूर्य / तारे के केंद्र में उत्पन्न ऊर्जा के विषय में अधिक जानकारी नहीं थी। यह वर्ष १९३८ में जर्मन वैज्ञानिक कार्ल फोन वाइत्सेकर और अमेरिकी वैज्ञानिक हान्स बेथे ने दी। एडिंग्टन ने एक किताब भी लिखी है ' सितारों का आंतरिक संगठन ' । उनका समीकरण तारे में उष्मा का स्थानान्तरण और तारे के द्रव्य का आंतरिक संतुलन इनका संबंध दिखाता है।

हैड्रोजन के चार अणुगर्भ (Nucleus) एकत्र आकर हिलीयम का एक अणुगर्भ तैयार होता है। इस अणुगर्भ का वस्तुमान हैड्रोजन के चार अणुगर्भों के कुल वस्तुमान के ९९.३ % होता है। बाकी 0.७ % वस्तुमान, ऊर्जा में रूपान्तरित हो जाता है। इस ऊर्जा का दबाव आकुंचन की प्रक्रिया की विरुद्ध दिशा में होता है अर्थात् केंद्र से बाहर की ओर। एक स्थिति ऐसी आती है कि यह दबाव बढ़कर बादल के आकुंचन प्रक्रिया को और आगे बढ़ने से रोक देता है । उस समय नये तारे ने जन्म लिया ऐसा हम कहते हैं।

शुरू में मेघ घनता 10^{-10} कण प्रति घन से. मी. हो और मेघ का व्यास सूर्य त्रिज्या के ५० गुना हो तो ऐसे मेघ से सूर्य जैसे तारे का जन्म हो सकता है। तारे के जन्म के समय केंद्र की घनता 10^{-16} ग्रॅम प्रति घन सें. मी. होती है।

संक्षेप में-

गुरुत्वीय बल वायु को दबाता है और उसके कणों को महत्तम संभवनीय, एकदूसरे के करीब लाता है। वायु तप्त होता है। तप्त वायु के कारण उत्पन्न दबाव गुरुत्व बल की विरुद्ध दिशा में कार्य करता है और वायु के प्रसरण का प्रयत्न करता है। गुरुत्व बल तारे के केंद्र की ओर कार्य करता है तो यह दूसरा बल केंद्र से बाहर की ओर। शुरू में तारे के केंद्र की घनता बाह्य भाग की तुलना में तेजी से बढ़ती है। केंद्र अधिक से अधिक घना होते रहता है। परिणामतः तापमान और बढ़ता है और अंततः नाभिकीय संगलन शुरू होता है। सतह से जो ऊर्जा उत्सर्जित होती है उसकी क्षतिपूर्ति इस प्रक्रिया में उत्पन्न ऊर्जा करती है और तारा करोड़ों वर्षों की स्थिर आयु प्राप्त कर लेता है। दोनों विरुद्ध दिशाओं वाले बल संतुलन बना लेते हैं। तारे के जीवन के दरम्यान उसका आकार, द्युति और ताप में कोई खास बदलाव नहीं होता।

तारों का अन्वेषण

- तारों की जानकारी प्राप्त होने का एकमात्र स्रोत, उनसे प्राप्त होनेवाला विकिरण है। उनके वर्णक्रम प्राप्त किए जा सकते हैं।
- तारों के विकिरण को वर्णक्रमों में वियोजित कर उनका अध्ययन करने का सिलसिला वर्ष १८५९ में ही शुरू हो चुका था।
- पुराने समय के ज्योतिषी मानते थे कि तारे, खगोल के अपने-अपने स्थान पर स्थिर हैं। लेकिन आज हम जानते हैं कि ब्रह्माण्ड में सुस्थिर कुछ भी नहीं है। करीब तीन सौ वर्ष पहले एडमंड हेली ने सर्वप्रथम पहचाना था कि तारे भी अपने स्थान से विचलित होते हैं। नक्षत्र-मंडलों की आकृतियाँ सदियों बाद बदल सकती हैं।
- हालो शेप्ली के आविष्कार ने हमें अर्कट्रीय ब्रह्माण्ड तक पहुँचा दिया।
- अगर कोई तारा सीधा हमारी ओर आ रहा है या हमसे दूर जा रहा है तो उसकी इस हलचल को अरीय (Radial) गति कहते हैं। लेकिन तारे हमसे इतने दूर हैं कि उनके इस आनेजाने से उनकी कांति में कोई फर्क नहीं होता। लेकिन इससे जुड़ा हल ऑस्ट्रिया के वैज्ञानिक क्रिश्चियन डॉपलर ने १८४२ में खोज निकाला। यह 'डॉपलर प्रभाव' के नाम से जाना जाता है।
- वर्णपट के अध्ययन में वैज्ञानिक लुइटन के विशेष सहभाग के कारण वामन तारों की काफी जानकारी मिली।
- तारामंडलों के वर्णपटों की अलगता की छानबीन वैज्ञानिक वॉल्टेयर अँडम द्वारा किए जाने के बाद उनकी दूरी का सही खयाल आ सका। इस बात को आगे बढ़ाया वैज्ञानिक मिसलीबीट ने।
- विराट तारों के व्यास जानने की पद्धति की खोज की मिचेलसन ने। तारे प्रकाशबिंदु जैसे दिखते हैं। इस कारण उनका व्यास निश्चित करना काफी कठिन काम था।
- वर्ष १८९३ में ही जर्मन भौतिकविद् विल्हेम ने तारों का वर्णपट और उनका तापमान इनका संबंध ढूँढ लिया था।
- तारों की सतह का तापमान और उनका रंग, इनका संबंध वीन के नियम द्वारा दर्शाया जाने लगा।

- तारों के ताप और वर्णक्रम के निकट संबंध को खोज निकाला था डॉ. मेघनाथ साहा ने।
- तारों के द्रव्यमान मालूम करने का एक सूत्र १९१८ में सुझाया था हर्ट्ज़स्पिंग ने। तारे से ऊर्जा निर्गमन की बात, तारे के द्रव्यमान से संबंधित होती है।
- १९२० में ही खगोलशास्त्री स्लिफेर ने खोजा था कि दूर की सभी निहारिकाओं की रेखाएं, वर्णपट में लाल सिरे की ओर सरक जाती हैं।
- तारों में ऊर्जा किस प्रकार उत्पन्न होती है इसका समीकरण ' बिथी ' नाम के खगोलशास्त्री ने दिया था जो ' बिथी कार्बन चक्र ' नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रक्रिया का स्वतंत्र रूप से आविष्कार वैज्ञानिक बिज़ोकर ने भी किया था।
- लाल तारे वृद्ध हैं तो नीले युवा, यह खोज वाल्टेयर बाडे के नाम है।
- वामन और विराट तारों का विशेष अंतर जानने में हेनरी रसेल की भूमिका का महत्व है। वर्णपट और तेजस्विता के बीच संबंध स्थापित करके वामन तारों की आपसी भिन्नताओं पर भी उन्होंने प्रकाश डाला।
- तारे अपने धूरियों के गिर्द घूमते हैं, यह बात सर्वप्रथम घोषित करनेवाले वैज्ञानिक थे कॅ. डब्ल्यू .एबनी। इसको अनुमोदन दिया प्रो. फ्रैंक श्लेपिंजर ने तो उसे सत्य सिद्ध किया १९२२ में हेलेरीख ने।
- तारकाविश्व भी अक्षभ्रमण करते हैं यह खोज है ऊर्ट की।
- दूर के ताराविश्व, नजदीक के ताराविश्वों की अपेक्षा अधिक वेग से अंतरिक्ष में गति कर रहे हैं, यह हबल और ह्यूमेसन का अन्वेषण है ।

तारों की गिनती असंभव -

अंतरिक्ष में अरबों तारे हैं। लेकिन बिना दूरबीन के हमें कुछ हजार ही दिखाई देते हैं। वह भी पृथ्वी के किसी एक स्थान से इनमें से आधे ही दिखते हैं। शेष गोलार्ध के दूसरी ओर होते हैं। इनमें से भी क्षितिज के पास के तारे धुंधलेपन के कारण नजर नहीं आते। अंतरिक्ष का सूक्ष्म और दीर्घ अवधि तक निरीक्षण करने वालों के अनुसार सामान्यतौर पर कोरी आंखों से ५७७६ तारे ही दिखाई देते हैं। लेकिन खगोलशास्त्रियों ने अबतक लगभग चार लाख सत्तावन हजार तारों की स्वतंत्र पहचान की है।

पृथ्वी के करीबी तारे-

पृथ्वी का सबसे पास का तारा प्रोक्झिमा सेंटौरी है। यह हमसे ४.२८ प्रकाशवर्ष दूर है। लेकिन यह दक्षिण गोलार्ध से ही दिखता है। उत्तर गोलार्ध से दिखने वाला सबसे करीबी तारा सायरस या व्याध है। आंखों से दिखने वाले तारों में यह सबसे तेजस्वी है।

ब्राउन ड्वार्फ

अंतरिक्ष में कई तरह के तारे हैं। लेकिन ऐसे भी कुछ पिंड हैं जो तारा इस अवस्था को तो नहीं पहुंच सके फिर भी वे बृहस्पति से भी कई गुना बड़े हैं। ये न ग्रह हैं न तारे। ऐसे पिंडों को ' ब्राउन ड्वार्फ ' कहते हैं। आवश्यक वस्तुमान होने के कारण अपने केंद्र में आण्विक प्रक्रिया द्वारा ऊर्जा पैदा करने वाली खगोलीय वस्तु, ऐसी तारे की परिभाषा की जाती है। मान लो आज प्रत्यक्ष आण्विक ऊर्जा उत्पन्न न भी हो रही हो लेकिन आण्विक ऊर्जा उत्पन्न हो सके इतना वस्तुमान एकत्र हुआ या नहीं इसका महत्व है।

अंतर्भाग में आण्विक ऊर्जा निर्माण की प्रक्रिया शुरू होने के लिए किसी भी खगोलीय पिंड का वस्तुमान सूर्य वस्तुमान के कम से कम 0.08 होना चाहिए। यह किमान वस्तुमान बृहस्पति के ७० गुना है। इस विशिष्ट मर्यादा के अंदर लेकिन सूर्य से 0.03 से अधिक वस्तुमान वाले खगोलीय पिंडों को ' Brown Dwarf ' इस नाम से जाना जाता है। ग्रह और तारा इनके बीच का यह पिंड होता है। इसका व्यास १ लाख ५० हजार कि.मी. के करीब होता है। ऐसे पिंड के अंतर्भाग में धात्वात्मक हैड्रोजन का अस्तित्व होना चाहिए। लेकिन इन पिंडों की घनता बृहस्पति से अधिक होती है। अतः उनके अंदर गुरुत्वाकर्षण के कारण उष्मा पैदा होता है। इस कारण उनकी सतह का तापमान ७००-७५० डिग्री सेल्सियस रहता है। लेकिन इतने कम तापमान वाले पिंड का अस्तित्व अंतरिक्ष में ढूंढना कठिन काम है। (बृहस्पति के पृष्ठभाग का तापमान शून्य से नीचे १७५ डिग्री सेल्सियस है) । लेकिन आकाशगंगा में ऐसे करोड़ों पिंड होने चाहिए। आकाशगंगा के बहुत सारे वस्तुमान का पता नहीं चलता। हो सकता है इसके लिए ऐसे पिंडों की बड़े पैमाने पर उपस्थिति उत्तरदायी हो।

आदितारा

वायुमेघ का कुछ हिस्सा जब अंदर की ओर ढहने लगता है तो तारा मूर्त रूप में, अस्तित्व में आने के पहले की तारे की अवस्था को ' आदितारा ' नाम दिया गया है। विशिष्ट स्थान पर घनत्व बढ़ते ही वहाँ क्रोड तैयार होता है। उसका यह गर्भ गुरुत्वाकर्षण बल से अधिकाधिक द्रव्य आत्मसात करने लगता है और बढ़ते वस्तुमान के साथ निःपात क्रिया की गति भी बढ़ती है। गर्भ

याने हैड्रोजन का इंधन के रूप में उपयोग करने वाली अणुभट्टी। अगर निःपातप्रत गर्भ परिवलन कर रहा होगा तो केंद्र में घनत्व अधिक होगा और गर्भ के गिर्द एक चपटी तश्तरी बन जाती है। आदितारा जैसे-जैसे आकुंचित होता है वैसे-वैसे अधिकाधिक जडत्वीय ऊर्जा का रूपान्तर उष्मीय ऊर्जा में होने लगता है। अभिसरण क्रिया द्वारा यह ऊर्जा तारे की सतह तक पहुँचती है। गुरुत्व के कारण मेघ की निःपात क्रिया शुरू होने के बाद कुछ हजार वर्षों में ही आदितारे की सतह का तापमान २००० से ३००० डिग्री केल्विन तक पहुँचता है। अबतक आदितारे का आयाम काफी अधिक ही रहता है। आकुंचन के १००० साल बितने के बाद भी सूर्य इतने वस्तुमान के आदितारे का व्यास सूर्य से बीस गुना बड़ा होगा।

वस्तुतः गुरुत्वीय आकर्षण का समय तारे के वस्तुमान पर निर्भर होता है। प्रचंड वस्तुमान वाले तारे आम तौर पर १०००० सालों में हमारी सूर्यमाला इतना आकार ग्रहण कर लेते हैं और सतह का तापमान १०००० से ५०००० अंश केल्विन वाले तारे जन्म लेते हैं। कम वस्तुमान के तारे अति मंद गति से सिकुड़ते हैं। सूर्य सदृश तारे का आकुंचन समयावधि कुछ करोड़ साल हो सकता है। यह भी एक विरोधाभास है कि जितने अधिक इंधन के साथ तारा शुरू होता है, उतना ही उसका गुरुत्वाकर्षण अधिक होता है। उसे संतुलित करने के लिए उतनी ही अधिक उष्मा चाहिए। परिणामतः इंधन की खपत अधिक, तो तारे की आयु उतनी ही कम होगी। (बहुत अधिक वस्तुमान के तारे तेजस्वी होते हैं तो कम वस्तुमान वाले निस्तेज) जब आण्विक बल और गुरुत्वाकर्षण बल एकदूसरे को संतुलित करते हैं तब आदितारे से प्रत्यक्ष तारे ने जन्म लिया ऐसा माना जा सकता है।

रक्तवर्णी बटू तारे

ब्रह्माण्ड में रक्तवर्णी बटू तारों का प्रमाण सर्वाधिक है। सूर्य के करीबी ६१ तारों में ४९ रक्तवर्णी बटू हैं। लेकिन संख्या में इतने अधिक होने पर भी उनमें से एक भी हमें कोरी आंखों से नहीं दिखता। उनकी सतह का तापमान ३००० डिग्री सेल्सियस होता है जबकि सूर्य की सतह का ६००० डिग्री है। ये तारे आकारमान और वस्तुमान दोनों दृष्टि से छोटे होते हैं। आमतौर पर उनका वस्तुमान सूर्य के वस्तुमान के १० % और ५० % इनके बीच होता है। इनके अंदर आण्विक ज्वलन की क्रिया बड़ी मुश्किल से चलती रहती है। तुलनात्मक दृष्टि से उनका जीवनकाल भी कम होता है।

ब्रह्माण्ड का सबसे गोल तारा

मॅक्स प्लैंक सौर संशोधन विभाग के लॉरेंट गिज़ॉन तथा जर्मनी के गॉटिगेन विद्यापीठ के वैज्ञानिकों ने केप्लर १११४,५२१३ यह अभी तक ज्ञात सबसे गोल तारा ढूँढ निकाला है। उसकी गोलाई अँस्टरोसिस्मॉलॉजी अर्थात् तारों के स्पंदनशास्त्र की मदद से सटीकता से गिनी गई है। उसके विषुववृत्तीय और ध्रुवीय त्रिज्याओं में केवल तीन कि.मी. का अंतर है। उसकी कुल त्रिज्या १५ लाख कि.मी. है। अतः यह अंतर बहुत मामूली है। यह तारा हमसे ५ हजार प्रकाशवर्ष दूर है। वह सूर्य से दुगुना बड़ा है। लेकिन उसकी भ्रमणगति सूर्य की तुलना में एक तिहाई ही है। (सूर्य की विषुववृत्तीय और ध्रुवीय त्रिज्याओं में १० कि.मी. का फर्क है तो पृथ्वी के लिए यह २१ कि.मी. है।)

सबसे बड़ा तारा

यु. के. की शेफील्ड विद्यापीठ की एक टीम द्वारा खोजें गये एक तारे का द्रव्यमान सूर्य से २६५ गुना बताया जा रहा है। हांलाकि अभी तक बताया जा रहा था कि किसी तारे का अधिकतम द्रव्यमान सूर्य के १५० गुना ही हो सकता है। यह तारा लगभग १,६५,००० प्रकाशवर्ष की दूरी पर टेरंटुला नेब्युला में स्थित है। इसे R-136 AL नाम दिया गया है। वैज्ञानिकों के अनुसार यह अब तक पाये गये तारों में न केवल सबसे भारी है बल्कि सबसे चमकदार भी है। यह सूर्य से लगभग एक करोड़ गुना चमकीला है।

अन्य बड़े तारें : १) Vy-scuti-इसकी त्रिज्या सूर्य से 1708 गुना ज्यादा है ।

२) WHO-g-64 : त्रिज्या सूर्य से 1540-1570 गुना ।

३) RW-Cephei : त्रिज्या-सूर्य से 1535 गुना ।

४) Westerland १-२६ : त्रिज्या-1530 गुना

५) V354-Cephei : त्रिज्या-1520 गुना ।

६)VY Canis Majoris : त्रिज्या-1420 गुना ।

तारा बड़ा होने की सैद्धान्तिक मर्यादा

ऐसे तारे को क्वासी स्टार या कृष्ण विवर तारा कहते हैं। अति द्रव्यमान तथा तेजस्विता वाला ऐसा तारा ब्रह्माण्ड के शुरू के कालावधि में अस्तित्व में होना चाहिए, ऐसा माना जाता है। आज जो तारे हैं वे नाभिक में नाभिक विखंडन प्रक्रिया के कारण अपना अस्तित्व बनाए रखते हैं। लेकिन ऊपर उल्लेखित ढंग के तारे की ऊर्जा इस तारे के केंद्र में उपस्थित कृष्ण विवर द्वारा निगले जा रहे वस्तुमान के कारण होनी चाहिए। यह केवल ब्रह्माण्ड विकास की शुरू के समयावधि में ही संभव था जब हैड्रोजन और हिलीयम, भारी मूलद्रव्यों से दूषित नहीं हुए थे। एक अनुमान के अनुसार उनकी सतह का तापमान $10,000^0$ केल्विन से अधिक होना चाहिए। उनकी त्रिज्या 10 अरब कि.मी. या सूर्य से 14,000 गुना बड़ी होनी चाहिए। उनका तेज एक छोटे मंदाकिनी इतना होना चाहिए।

धूल से घिरा तारा

अमेरिका के खगोलशास्त्रियों ने एक ऐसा तारा देखा है जो बहुत करीब से धूल द्वारा घिरा हुआ है। यह हमसे 300 प्रकाशवर्ष दूर है। वैसे तो तारे धूल से घिरे हुए रहते हैं। लेकिन आमतौर पर धूल तारे से काफी दूरी पर होती है। जैसे सूर्य और प्लूटो इनके बीच का अंतर। लेकिन यहाँ धूल इतने ही दूरी पर है जितनी पृथ्वी, सूर्य से दूर है। (सायंस पोर्टल : www.eurekalert.org : nature magazine)। दूसरी आश्चर्यजनक बात है कि सूर्य के गिर्द जितनी धूल है यह उससे 10 लाख गुना अधिक है। यह प्रस्तुति है एरिक बेकलिन की जो नासा के अस्ट्रोबायोलॉजी इन्स्टीट्यूट के सदस्य है और उपरोक्त लेख के सहलेखक है। वैज्ञानिकों के अनुसार ग्रहों के जन्म के दरम्यान तारों के गिर्द धूल मिलती है। लेकिन उपरोक्त बात अनुठी है। हो सकता है यह ग्रहों जैसे पिंडों के टकराव का परिणाम हो।

ध्रुव तारा

ध्रुव तारा स्थिर न होने का भान, पिथियस इस ग्रीक दर्यावर्दी को ई.पू. 300 वर्ष के दरम्यान ही आया था ।

ब्रह्माण्ड का सबसे पुराना तारा- HD140-283

यह लगभग 190 प्रकाशवर्ष दूर है। इसकी आयु 13.66 अरब वर्ष आंकी गयी है। फिर भी चूंकि इसमें कुछ धातु पायी गई है अतः यह दूसरी पीढ़ी का तारा है। प्रथम पीढ़ी के तारों में धातु नहीं मिलती। ऐसा कोई तारा नहीं मिला है। कुछ सिद्धांत यह सूचित करते हैं कि शुरू में पैदा हुए तारे बहुत भारी होने चाहिए। परिणामतः उनकी आयु बहुत अल्प होगी। इस कारण आज उनका कोई अस्तित्व नहीं मिलता।

युग्म तारे

हमारी आकाशगंगा के ५० % से अधिक तारे द्वैती हैं। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार यह प्रतिशत अस्सी तक भी हो सकता है। कहीं-कहीं तो तीन या उससे अधिक तारे एकदूसरे के गिर्द चक्कर काटते हैं। सूर्य का सबसे करीबी तारा अल्फा सेंटारी यह भी तारों का एक त्रिकुट ही है। ऐसे तारों को भी कई वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। अभी तक ४०,००० युग्म तारों की पहचान की गयी है। वैज्ञानिकों के अनुसार ब्रह्माण्ड में कमसे कम २० % तारे तो युग्म तारे होने ही चाहिए। लेकिन यह बात ध्यान में रहे कि जो तारे नजदीक से एक दूसरे की परिक्रमा करते हैं उन्हें ही जुड़वां या युग्म तारे कहते हैं। इस तंत्रों में एक तारा सामान्य होता है तो दूसरा न्यूट्रॉन तारा या कृष्णविवर हो सकता है।

तारका गुच्छे

आकाशगंगा में तारों का फैलाव सभी ओर समान नहीं है। केंद्र के पास तारों की संख्या बहुत अधिक है, तो सर्पिल बाहुओं में कम। दो सर्पिल बाहुओं के बीच के क्षेत्र में तो वे बहुत ही छितरे हैं। इसके अतिरिक्त भी कुछ क्षेत्रों में संख्या की दृष्टि से तारों की घनता अधिक है। लघु क्षेत्र में जमा, ऐसे तारों के समूह को ' तारका गुच्छ (Stars Cluster) कहते हैं। जिन तारका गुच्छों को विशिष्ट आकार नहीं होता उन्हें ' खुले तारका गुच्छ ' या 'ओपन क्लस्टर्स, गैलैक्टिक क्लस्टर्स ' नाम दिया गया है। कृत्तिका (Plides) गुच्छे में कोरी आंखों से केवल छह तारे ही दिखते हैं। लेकिन दूरबीन से सैकड़ों तारों का पता चलता है। ये तारे स्वतंत्र रूप से दिख सकते हैं। उनके साथ वायु या धूलिकण संलग्न नहीं रहते। आज तक ऐसे एक हजार से अधिक गुच्छों का पता चला है। उनमें से अधिकतर सर्पिल बाहु में ही हैं। इनके तारों की आयु १० करोड़ से एक अरब वर्षों की मर्यादा में है। अर्थात् ये तारे अर्वाचीन हैं। इनमें ९० % हैड्रोजन, ९ % हिलीयम और १ % भारी धातुएं हैं। खुले गुच्छों का व्यास ३२ प्रकाशवर्षों से अधिक नहीं है। ये एक ही दिशा में यात्रा करते हैं। अधिकतर ये गुच्छे हमसे १००० प्रकाशवर्षों से अधिक दूर हैं।

तारा गुच्छों का दूसरा प्रकार है ' गोलाकृति तारका गुच्छ ' (ग्लोब्युलर क्लस्टर्स)। हर्क्युलस(शौरी) में एम् १३ यह इस तरह के तारका गुच्छ का अच्छा उदाहरण है। ऐसे गुच्छ आकाशगंगा की प्रमुख तश्तरी के ऊपर या नीचे मिलते हैं। इनके तारे स्वतंत्र रूप से देखे नहीं जा

सकते। इनका व्यास १०० प्रकाशवर्षों तक हो सकता है। आज तक ऐसे १३५ क्लस्टर्स ज्ञात हुए हैं। इनमें १०० तो हमारी आकाशगंगा में ही हैं। इनके तारों की आयु १२ अरब वर्षों से अधिक है। अर्थात् ये महाविस्फोट के तुरन्त बाद पैदा हुए तारे हैं। एक गुच्छे में १० हजार से एक लाख तक तारे हो सकते हैं। इनमें भारी धातु नहीं हैं। सामान्य रूप से दो तारों के बीच औसत अंतर ५ प्रकाशवर्ष होता है। लेकिन गोलीय तारका गुच्छों के केंद्रभाग में यह औसत अंतर केवल १/२ प्रकाशवर्ष ही हो सकता है। ग्लोब्युलर क्लस्टर्स आकाशगंगा की अनियमित कक्षाओं में परिक्रमा करते हैं लेकिन उनका भ्रमण मार्ग तिरछा होता है। कुछ गुच्छ परिवलन भी करते हैं। कभी-कभी कोई तारा, गुच्छे से बाहर फेंका भी जाता है।

कई गुच्छ क्ष किरणें उत्सर्जित करते हैं तो कड़ियों में क्ष किरणों का उद्रेक भी देखा गया है। उनके केंद्र में कोई भारी कृष्णविवर होने की संभावना है। NGC-६६१४ गुच्छ के केंद्र में १०० सूर्यों के वस्तुमान वाला कृष्णविवर हो सकता है।

तारों का वर्गीकरण

यदि हम लोहे के दण्ड को आग में गर्म करें, तो जैसे-जैसे उसका तापमान बढ़ेगा वैसे-वैसे उसके रंग में परिवर्तन दिखाई देगा। पहले लाल, फिर पीला और बाद में क्रमशः अन्य रंग -आदि।

‘ यदि ताप बढ़ाया जाए, तो सर्वाधिक ऊर्जा वाली तरंगों की लम्बाई घटती जाती है, बारंबारता बढ़ती जाती है ‘ इसे ‘ वीन का नियम’ कहते हैं।

वर्ष १८९३ में ही जर्मन भौतिकविद् ‘ विल्हेल्म ने तारों का वर्णपट और उनका तापमान इनका संबंध ढूँढ निकाला था।

तारों के पृष्ठभाग का तापमान और रंगों को इस तरह संबंधित किया जा सकता है -

रंग तापमान परम : (डिग्री सेंटीग्रेड के लिए 273 ° घटाइए)
(वीन के नियम के अनुसार)

लाल	३६०० - ४६००
नारंगी	४६०० - ४९००
पीला	४९०० - ५०००

हरा	५००० - ५९००
नीला	५९०० - ६४००
बैंगनी	६४०० - ७५००

वास्तव में वीन के नियम के अलावा किस लम्बाई की तरंग में तारे का विकिरण अधिकतम है, इसपर उसका रंग निर्भर है।

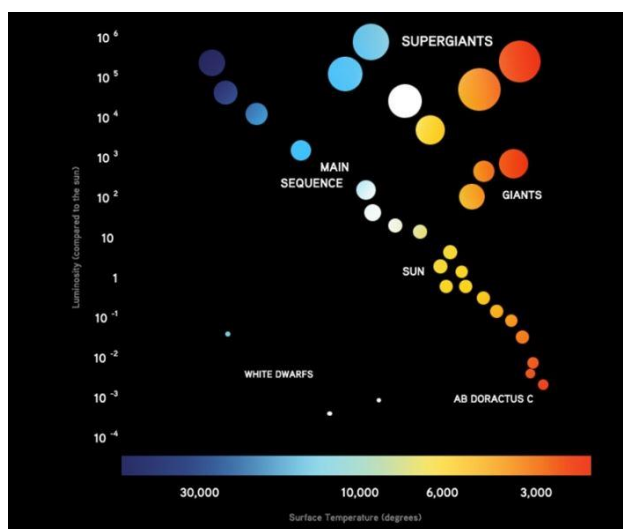


Image credit :- Google images

परमकांति-

तारे की दूरी अगर पता कर ली और उसकी दृश्यकांति या चमक का मापन भी कर लिया तो पता कर सकते हैं कि पृथ्वी से एक निश्चित दूरी पर उस तारे की कांति क्या होगी ? इसे परम कांति कहा गया है।

स्पेक्ट्रम और ताप के आधार पर तारों का निम्नलिखित क्रम से वर्गीकरण किया गया है। यह हेनरी -ड्रॉपर(Henry-Draper System) प्रणाली है। इसमें निम्न ९ वर्ग हैं - O (नीला), B , A , F , G , K , M , R , N (लाल) ।

‘ओ’ वर्ग के तारे सबसे गर्म होते हैं तथा उनमें हिलीयम वायु की प्रमुखता रहती है। हमारी आकाशगंगा में ‘ओ’ और ‘बी’ वर्ग के तारे युवा हैं । सूर्य ‘जी’ वर्ग का तारा है।

हर्ट्ज़स्प्रिंग और रसेल का रेखाचित्र : १९०५ में एजनार हर्ट्ज़स्प्रिंग (डैनिश) और हेनरी नॉरिस रसेल (अमरीकी) इन दो वैज्ञानिकों ने स्वतंत्र ढंग से तारों से संबंधित एक रेखाचित्र की रचना की। यह रेखाचित्र उनके संयुक्त नाम से ही जाना जाता है या संक्षेप में एच्-आर रेखाचित्र कहते हैं।(रेखाचित्र ऊपर देखें)। इसका खगोलशास्त्र में अनोन्य साधारण महत्व है।

आंखें और तारों के रंग :

तापमान या वस्तुमान की तरह रंग यह भी भौतिक वस्तुओं का अपना गुणधर्म नहीं है। रंगज्ञान आंखों की रचना पर निर्भर है। कई प्राणियों को रंगज्ञान नहीं होता। सारी वस्तुएं सफेद-काली ही दिखती हैं। रंगज्ञान कराने वाली मानवी आंखों की पेशियों को ' रॉड ' और ' कोन ' ऐसे नाम हैं। आंख की पुतली के पीछे नेत्रपटल (रेटिना) पर इन पेशियों के समूह होते हैं। ये ही दिमाग को रंगज्ञान देते हैं। दृश्य वस्तु अच्छी तरह प्रकाशित होगी तो ही रेटिना की कोन पेशियाँ उत्तेजित होती हैं। नेत्रपेशियों का 'रॉड' वर्ग दिमाग को कृष्ण / धवल रंगों का ज्ञान देता है। प्रकाश मंद हो तो रॉड पेशी क्रियाशील होती हैं। आकाश में विद्यमान अंधुक तारों का दर्शन इन्हीं के कारण हमें होता है। अर्थात् वे हमें सफेद दिखते हैं। वस्तु की तेजस्विता और उससे उत्सर्जित होने वाली किरण की तरंग लम्बाई इन दोनों के एकत्रित प्रभाव पर कोन पेशियों की उत्तेजना और दिखने वाले रंग निर्भर होते हैं । तारों में हमें लाल, पीले, नीले तारे दिखते हैं, वे उनके तापमान के अनुसार। १०००० डिग्री सेल्सियस के तारे हरे दिखना चाहिए लेकिन नेत्ररचना के कारण वे हमें धुंधले सफेद दिखते हैं।

तारों का नामकरण

केवल आंतरराष्ट्रीय खगोलशास्त्रीय संगठन (International Astronomical Union) तारों का नामकरण कर सकता है।

तारों में भारी मूलद्रव्यों का सृजन

जब हैड्रोजन रूपी सारा इंधन समाप्त हो जाता है तब क्रोड का दबाव कम होने लगता है और गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव बढ़ जाता है। परिणामतः तारे के मध्य में स्थित हिलीयम का गोला सिकुड़ने लगता है। गोले में ताप और बढ़ने लगता है। बढ़ते - बढ़ते वह इतना हो जाता है कि हिलीयम के नाभिकों में संगलन शुरू हो जाता है। इस अभिक्रिया में हिलीयम के तीन नाभिकों के जुड़ने से कार्बन का एक नाभिक बनता है और साथ में ऊर्जा भी मुक्त होती है। ऊर्जा के कारण गैस में नया दबाव पैदा होता है जो अब गोले के संकुचन को रोकने में सफल होता है। लेकिन यह अभिक्रिया आगे भी शुरू रहती है। ऑक्सीजन, सल्फर, से लेकर तो लोहे तक भारी मूलद्रव्यों का निर्माण नाभिकों के संगलन द्वारा तथा अन्य नाभिकीय अभिक्रियाओं द्वारा तारों में ही होता है। हिलीयम के तीन अणुओं के संगलन से जब कार्बन अणु बनता है तो इस प्रक्रिया को 'ट्रिपल अल्फा प्रोसेस' कहते हैं। हिलीयम ज्वलन की गति में वृद्धि होती है। अनियंत्रित स्वरूप की यह प्रक्रिया होती है। कुछ ही क्षणों में तापमान १० करोड़ डिग्री केल्विन तक पहुंच जाता है। मानो संपूर्ण गर्भ को आग लग जाती है। प्रचंड ऊर्जा मुक्त होती है। इसे हिलीयम फ्लैश कहते हैं।

इस प्रक्रिया की प्रस्तुति १९५७ में बर्बिज दम्पति, फ्राइड हॉइल और विलियम फाउलर ने मिलकर एक लेख द्वारा की थी। उनके अनुसार अधिकतर रासायनिक मूलद्रव्य तारों के गर्भ भाग में नाभिकीय अभिक्रियाओं द्वारा बनते हैं और अंत में अधिनवतारे के विस्फोट में लोहे से भारी मूलद्रव्य पैदा होते हैं और बाहर आकाश में फेंके जाते हैं। ये भारी तत्व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के समय नहीं तो बाद में तारों की गर्भ भट्टियों में उत्पन्न हुए हैं। उपरोक्त कथनानुसार विस्फोट में फेंका गया द्रव्य जो भारी मूलद्रव्यों की दृष्टि से समृद्ध होता है अगली पीढ़ी के तारों को जन्म देने के काम आता है। लेकिन इसका अर्थ हुआ, पहले पीढ़ी के अधिकतर तारे (कुछ अपवादों को छोड़कर) कम भारी ही होने चाहिए। भारी मूलद्रव्यों का पीढ़ी दर पीढ़ी के तारों में बढ़ते जाता है।

लेकिन इसके साथ एक बात और ध्यान में रखने लायक है। महातारे में सुपरनोवा विस्फोट से जो माध्यम अगली पीढ़ी के तारों की उत्पत्ती का कारण बनता है उसमें भी प्रक्रिया के दरम्यान वायुमय आद्य गैलक्सी का संकुचन जारी रहता है। भारी तत्वों का जमावड़ा केंद्र के करीबी हिस्से में तेजी से होता है। जबकि हलके हैड्रोजन, हिलीयम वायु केंद्र से दूर ढकेले जाते हैं। नये तारों का जन्म इस आंतरतारकीय वायुमेघ के केंद्र में होता है वे भारी मूलद्रव्यों की दृष्टि से

समृद्ध होते हैं। इस कारण गैलेक्सी के अंदरूनी हिस्से में और बाहरी हिस्से में निर्मित तारों के घटकों में फर्क मिलता है।

गैलेक्सी के फैले हुए माध्यम में निम्नलिखित अणुओं का अस्तित्व पाया गया है - H_2O , H_2 , CO , C_2H_5OH | और भी कई सूक्ष्म कठिन कण मिलते हैं जिनमें अधिकतर कार्बन के होते हैं।

संक्षेप में-

महाविस्फोट सिद्धांत के अनुसार सभी ढंग के तारका विश्व एकसाथ उत्पन्न हुए तो स्थिर स्थितिवाद के अनुसार पुराने ताराविश्वों का समाप्त होते रहना और नयों का लगातार उत्पन्न होना यही वास्तव प्रक्रिया है। दोनों इस बात पर सहमत हैं कि विश्व की प्रत्येक चीज हैड्रोजन वायु से उत्पन्न हुई है। थोड़ा सा स्पंदित होने पर वायु का स्पंदित हिस्सा ठोस बनने लगेगा और गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण गाढ़ा बनते हुए तथा कई स्तरों से गुजरते हुए क्रमशः ताराविश्व बनेगा ऐसा समझा जा सकता है। ये प्रथम पीढ़ी के तारे होंगे। ये लम्बे समय बाद श्वेत बौने तारे बन जाते हैं। मगर ऐसा होते समय, उन तारों द्वारा त्यागा गया द्रव्य भारी मूलद्रव्यों में रूपांतरित होकर अगली पीढ़ी के तारों के काम आता है।

• तारों की निर्मिति की प्रक्रिया :

राष्ट्रीय रेडिओ खगोलभौतिकी केंद्र से जुड़े पी.एच.डी. छात्र आदित्य चौधरी, प्रा. निस्सिम काणेकर, प्रा. जयराम चेंगलूर इनकी खोज से यह निष्कर्ष निकलता है कि लगभग १३ अरब साल पहले, दीर्घिकाओं में अणु हैड्रोजन की विपुलता होने के कारण, तारों की निर्मिति की गति प्रचंड थी। आठ से ग्यारह अरब सालों के दरम्यान दीर्घिकाओं में दस गुना अधिक तारे पैदा हुए। लेकिन आठ अरब साल पहले तारे पैदा होने की गति कम हुई। शुरू में इसके कारण का पता नहीं चल रहा था। लेकिन अब इसका कारण ज्ञात हुआ है। वह है अणु हैड्रोजन का अनुपात कम होना। आठ अरब साल पहले की दीर्घिकाओं में विद्यमान, औसत हैड्रोजन अणु वस्तुमान, नऊ अरब साल पहले की, समान तारकीय वस्तुमान वाली दीर्घिकाओं से तीन गुना कम पाया गया। संबंधित शोधपत्र ' दी अस्ट्रॉफिजिकल लेटर्स ' में प्रकाशित हुआ है। (लोकसत्ता १-७-२२)

तारों के तेजस्विता की प्रत

वैसे तो तारों और तारका प्रणालियों के द्रव्यमान और दीप्ति को दर्शाने के लिए सूर्य का द्रव्यमान और दीप्ति को एकक के तौर पर उपयोग में लाया जाता है। इसे तेजांक कहते हैं। व्याध तारा हमसे ८.७ प्रकाशवर्ष दूर है। उसका तेजांक २६ है। अगर उसे सूर्य के स्थान पर रख दिया जाए तो हमें मिलने वाली गर्मी और प्रकाश २६ गुना बढ़ जाएगा।

निरपेक्ष तारकीय प्रत - :

कोई तारा कितना तेजोमय दिखेगा, यह दो बातों पर निर्भर है। १) उस तारे की मूल दीप्ति (तेज)। २) हमसे दूरी। अर्थात् हमें पृथ्वी से दिखने वाली किसी तारे की तेजस्विता आभासी होती है। यह बात स्पष्ट है कि तुलना करने के लिए सभी तारों को हमसे समान दूरी पर रखना होगा। यह अंतर १० पार्सेक (३२.५८ प्रकाशवर्ष) तय किया गया है। समझो कोई तारा हमसे १० पार्सेक दूरी पर है। वह इस दूरी पर होते समय उसके दीप्ति की जो प्रत हमें दिखेगी वह उस तारे की निरपेक्ष प्रत कही जाएगी। वैसे १० पार्सेक इस संख्या का कोई खास महत्व नहीं है। भासमान प्रत के जैसा ही निरपेक्ष प्रत के लिए भी कोई एकक नहीं है। तारों से उत्सर्जित होने वाले प्रकाश की तुलना करने के लिए निरपेक्ष प्रत का उपयोग किया जाता है। आकाश में सबसे तेजस्वी तारा व्याध है। उसकी प्रत -१.५ है लेकिन निरपेक्ष प्रत +१.४ है। इससे उलट जेष्ठा तारा एक प्रत का दिखता है। लेकिन उसकी निरपेक्ष प्रत -४.७ है। अर्थात् जेष्ठा तारे की ओर से, व्याध की तुलना में कई गुना प्रकाश उत्सर्जित होना चाहिए। इस आधार पर तारों का वर्गीकरण भी किया गया है। तारे का निरपेक्ष वर्ग, दृश्य वर्ग से एकदम भिन्न होता है।

रूप विकारी तारे--

आकाश में जो हजारों तारे चमकते हुए दिखते हैं उनमें से कइयों का तेज स्थिर नहीं रहता। वह धीरे-धीरे बढ़ता है। एक विशिष्ट क्षण वह अधिकतम होता है फिर घटते-घटते न्यूनतम होता है। उसके बाद फिर बढ़ने लगता है। यह बदल चक्रीय ढंग का होता है। ऐसे तारों को ' रूप विकारी ' तारे कहते हैं। इसके कारण निम्न हैं -

१) कंपायमान तारे-सेफाइड चल तारे

अपने हृदय जैसा इन तारों में आकुंचन-प्रसरण होता है। आकुंचन होने पर तापमान बढ़ता है, दीप्ति बढ़ती है। प्रसरण के दरम्यान तापमान और दीप्ति कम होती है। तारे का लगातार होने वाला प्रसरण अर्थात् उष्णता के कारण बाहर की ओर कार्य करने वाला दबाव तथा गुरुत्व के कारण होने वाला आकुंचन इनमें संतुलन साधते समय घटित होने

वाला यह परिणाम है। प्रसरण के दरम्यान बाह्य परतें ठंडी होती हैं और तारा मद्धिम दिखने लगता है। फिर आकुंचन शुरू हो जाता है।

- २) द्वैती तारे : ये तारे एकदूसरे के गिर्द चक्कर लगाते हैं। इनमें एक तारा काफी बड़ा होता है। वे एकदूसरे के सामने आने पर मानो ग्रहण जैसी स्थिति पैदा होती है जो तारे की दीप्ति में बदलाव लाती है।

तारों की दूरियां --

एक प्रसिद्ध पद्धति है लंबन (Parallax) की। सूर्य-पृथ्वी के बीच के औसत अंतर के द्वारा तारे का आगे जो कोन बनता है उसे लंबन कहा जाता है। लंबन का माप कोनीय है और इस कारण उसे अंश, कला और विकला में दर्शाया जाता है। एक अंश = ६० कला = ३६० विकला। हमसे अत्यंत करीबी तारे का, समीप नराश्व का, लंबन 0.७६ विकला है। यह ४.३ प्रकाशवर्ष दूर है।

तारों की आयु --

तारे के अंतर्भाग में संगलन क्रिया चलती रहती है जिस कारण प्रचंड ऊर्जा पैदा होती है। सूर्य के संदर्भ में हम उसे सौर ऊर्जा कहते हैं। लेकिन संगलन के दरम्यान तारे के वस्तुमान में कमी आते रहती है। कोई तारा मृत्यु को प्राप्त हुआ का अर्थ है उसका सारा इंधन, हैड्रोजन जल गया है। अगर हमें तारे में अंतर्भूत हैड्रोजन के प्रमाण का पता चला तो उसकी आयु का अंदाजा लगाया जा सकता है।

आकाशगंगाएं

- आकाशगंगा तथा अन्य मंडाकिनियों का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन सर्वप्रथम १६१० ईस्वी में गैलिलियो द्वारा शुरू किया गया था।
- दूसरे व्यक्ति थे यूरोपीय वैज्ञानिक इमॅन्युएल कांट। १७५५ में उन्होंने बताया था कि आकाशगंगा असीम नहीं है। बल्कि उसकी भी कुछ सीमाएं हैं।
- सौर परिवार (Solar System)- सूर्य जैसा एक तारा, उसकी परिक्रमा करने वाले ग्रह, उपग्रह तथा कुछ अन्य पिंड मिलकर सौर परिवार बनता है।
- निहारिका(Nebula)- धूल और वायु के विशाल मेघ जो हमारी आकाशगंगा के भीतर हैं।

- हमारी आकाशगंगा को 'Milky Way' कहते हैं।
- मंदाकिनी(Galaxy)- यह प्रयोग आकाशगंगा के बाहर की तारका योजनाओं के लिए किया जाता है। कुछ अरब तारे मिलकर इनका निर्माण होता है।
- स्थानीय समूह (Local Cluster)- इसका निर्माण कुछ मंदाकिनियां मिलकर होता है।
- द्वीपविश्व(Super Cluster)- कुछ स्थानीय समूह मिलकर बनते हैं । इसमें १००० से लेकर तो १०००० तक मंदाकिनियाँ हो सकती हैं। हमारी आकाशगंगा जिस द्वीपविश्व का हिस्सा है उसे ' लेकिया ' नाम दिया गया है। इसकी खोज २०१४ में हुई थी। इसका विस्तार एक करोड़ प्रकाशवर्ष है।
- अधिमंदाकिनी(Mtagalaxy)- अंतरिक्षीय प्रणाली जो अरबों मंदाकिनियों से बनी है। 'मेटगॅलेक्सी' संज्ञा का प्रयोग अमेरिकी खगोलशास्त्री एच्. शाप्ली ने किया था।

हमारी आकाशगंगा-

अवकाश में जो कुछ भी द्रव्य फैला है वह समान ढंग से वितरित (Uniformly diffused in space) नहीं रह सकता। कणों के बीच का आपसी आकर्षण, द्रव्य में किसी पैमाने का संघनन (Condensation) जरूर पैदा करेगा। शुरू के ब्रह्माण्ड में गुरुत्वीय अस्थिरता ने द्रव्य वितरण में कमजोर अनियमितताओं को तीव्र किया। इन संघनित परतों की सीमाएं एक ढंग से प्रघाती तरंगें (Shock waves) थीं जिनके अग्रों (Fronts) पर शुरू में भँवर रहित माध्यम या द्रव्य ने भँवर रूपी हलचलों का रूप ले लिया और उनके आकार के अनुसार आगे ब्रह्माण्डीय पिंड बने।

प्रत्येक आकाशगंगा में औसत एक अरब से चार अरब तारे होते हैं। उनमें तेज और क्रियाशील प्रक्रियाएं गॅलेक्सी के मध्यभाग में ही चलती रहती हैं। वे अन्य हिस्से में काफी धीमी होती हैं।

आकाशगंगाओं की निर्मिती का हबल सिद्धांत-

प्रसिद्ध अमेरिकी खगोलशास्त्री एडविन हबल ने १९२६ में आकाशगंगाओं की निर्मिति विषयक और उनके वर्गीकरण संबंधित अपना मत प्रसिद्ध किया। इस पद्धति को ' हबल नादकाटा (Hubble's Tunning Fork) ' पद्धति कहा जाता है। आज इसे प्राथमिक अवस्था का

सिद्धांत माना जाता है। फिर भी उसकी मूलभूत कल्पना कायम है। इसमें आकाशगंगाओं का वर्गीकरण और उनकी विशेषताएं इस प्रकार हैं -

१) लंबगोलाकार दीर्घिकाएं- E_0 : लगभग गोलाकार दीर्घिकाएं E_7 : प्रदीर्घ गोलाकार आकाशगंगाएं।

- इनका घूर्णन सर्पिल दीर्घिकाओं की तुलना में काफी कमजोर होता है। इनकी उत्पत्ति कम घूर्णन वाले वायुमेघ से होनी चाहिए।
- यह बहुत भारी (Massive) आकाशगंगा होती है। उसका नाभिक बहुत घना, बड़ा और अधिक सक्रिय होता है। मध्य भाग चमकीले होते हैं लेकिन छोर तक पहुंचते-पहुंचते धुंधले हो जाते हैं। इनकी कोई निश्चित सीमा नहीं होती। इस कारण उनका स्वरूप भी स्पष्ट नहीं दिखता।
- इनमें आन्तरतारकीय वायु लगभग अनुपस्थित होती है। लगता है, वहां तारे बनने की प्रक्रिया बहुत पहले रुक गयी है। वहां कोई युवा तारा नहीं मिलता।
- वहां केवल उपप्रणाली, कुछ हद तक, विशेष रूप से चपटी मिलती है। वह ढांचे की दृष्टि से और तारों की आबादी की दृष्टि से हमारी आकाशगंगा के प्रभामंडल जैसी होती है।
- इनमें अधिकतर लाल रंग के तारे होते हैं, नीले और श्वेत कम। नीले और श्वेत तारे युवा होते हैं।

२) सर्पिल दीर्घिकाएं :

अ) भुजा सख्त तरह से लपेटी हुई(पुरानी)।

आ) भुजा ढीली तरह से लपेटी हुई (नयी)।

इनके केंद्र के पास का उभार उनकी भुजाओं के लपेटे के ठोसपन के अनुसार बढ़ते जाता है।

इनका वर्गीकरण इस तरह से भी किया जाता है-

इ) सामान्य सर्पिल

ई) दण्डीय सर्पिल

दण्डीय सर्पिल दीर्घिका के उभार वाले हिस्से से होकर तारों का बना हुआ दण्ड जाता है। इस दीर्घिका की भुजाएं उसके उभार वाले हिस्से से शुरू न होकर दण्ड के सीरे से शुरू होती हैं।

- जिस आकाशगंगा की तश्तरीनुमा उपप्रणाली सर्पिल ढंग की होती है उसे सर्पिल आकाशगंगा कहते हैं। हमारी आकाशगंगा भी ऐसी ही है ।
- ऐसी मंदाकिनियों के तारीय बादलों में तेजस्वी भँवर दिखाई देते हैं।

- ऐसी आकाशगंगा की चपटी तश्तरीनुमा प्रणाली का घूर्णन तेज होता है। जबकि केंद्रस्थान की गोल उपप्रणाली तुलनात्मक दृष्टि से बहुत धीमी घूमती है। घूर्णन की केंद्र से बाहर की ओर होने वाली गति, गुरुत्वाकर्षण के केंद्र की दिशा में कार्य करने वाले बल को संतुलित रखती है। अगर यह गति या इसका बल कम होता तो तारे जडत्व के कारण उड़ जाते।
- इनकी सर्पिल भुजाओं में युवा और दीप्तियुक्त तारे मिलते हैं।
- सामान्यतः एक ही दिशा में भ्रमण प्रवृत्तिवाली दो भुजाएं ऐसी आकाशगंगा में पायी जाती हैं। लेकिन तीन-चार भुजाएं और उनकी उपभुजाएं होना कोई असंभव बात नहीं। खुली भुजाएं सामान्य बात है। सख्त लपेटी हुई भुजाएं जो छल्ले का आभास दे, कम ही देखने में आयी हैं। इसमें चौड़ी और लम्बी, चाप (Arc) रूप में सर्पिल शाखाएं निकलती हैं, जिनमें तेजस्वी तारे होते हैं।
- ब्रह्माण्ड में फैली आकाशगंगाओं में लगभग ८०% इसी वर्ग की हैं। इनमें युवा तारे अधिक दिखाई देते हैं।
- लंबगोलाकार और सर्पिल दीर्घिकाओं के संक्रमण का प्रदेश भी होता है। इन दो प्रकारों को जोड़नेवाला वह सेतु है।

बाद में हबल के ध्यान में आया कि कुछ ऐसी भी दीर्घिकाएं हैं जिन्हें उपरोक्त वर्गों में से किसमें भी अंतर्भूत नहीं किया जा सकता। उन्हें अनियमित आकार की दीर्घिकाएं कहा गया। इनमें आवश्यक नियमित घूर्णन देखने नहीं मिलता। वे थिगले के रूप में नज़र आती हैं, न कि दर्शनीय नियमित आकार की। इनमें वायु का प्रमाण सबसे ज्यादा मिलता है।

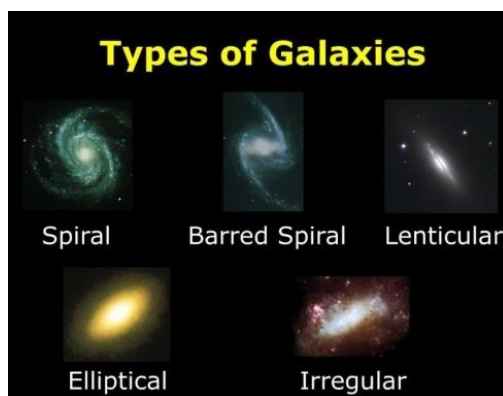


Image credit : Google images

हबल के बाद इसी संदर्भ में और भी कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया ।
लेकिन यहां हम अधिक विस्तार में नहीं जाएंगे।

- घूर्णन यह आकाशगंगाओं का सामान्य गुणधर्म है। हां, मात्रा कम-ज्यादा होती है। इस घूर्णन के विषय में दो सिद्धान्त हैं -
 - १) इस्वी १९४० : सी.व्हॉन वेइज़साकर(Weizsacker)- ब्रह्माण्ड उत्पन्न होने की तथा विस्तार पाने की प्रक्रिया में पैदा हुए शुरुवाती भँवर ही गॅलक्सी घूर्णन के लिए जिम्मेदार हैं। लेकिन १९६० में ऐसा ध्यान में आया कि आकाशगंगाओं के इतने घूर्णन के लिए वे भँवर अपर्याप्त होंगे।
 - २) लगभग उसी समय एफ़. हॉईल ने एक अलग सिद्धांत प्रस्तुत किया- जबतक ब्रह्माण्डीय द्रव्य के आदीम बादलों में अलगाव होने का काल शुरू नहीं हुआ था तबतक उनमें कोई घूर्णन नहीं था। उनमें जब गुरुत्वाकर्षण की लहरात्मक व्यतिक्रिया शुरू हुई तो उसी कारण बाद में इनमें घूर्णन शुरू हुआ।
 - ३) सन् १९७०, ए.डी. चेर्नन की परिकल्पना(Hypothesis) : घूर्णन का कारण ब्रह्माण्डीय माध्यम में खंडित पराध्वनिक(Supersonic) हलचल और परिणामतः उभरने वाली भँवर रूपी हलचलें थीं।

अग्निकिरीट (Corona)--

आधुनिक निरीक्षणों से ऐसा पता चला है कि सारी मंदाकिनियां काफी बड़े अग्निकिरीटों से युक्त हैं। ये, दृश्य आन्तरिक्षीय प्रणालियों से काफी दूर तक फैले होते हैं। ये प्रकाश तो उत्सर्जित नहीं करते, लेकिन उनका कुल द्रव्यमान सभी तारों के द्रव्यमान से, जिन्हें वे घेरे हैं, अधिक होना चाहिए। इनकी प्रकृति खगोलशास्त्र के लिए एक पहेली ही है। ऐसा दिखाई देता है कि ये अग्निकिरीट न्यूट्रिनो द्वारा बने हैं।

- **बौनी गॅलक्सियां—**

‘मिल्की वे’ में विस्तार के बाद अब तुलनात्मक दृष्टि से नये तारों का निर्माण बंद हो गया है। लेकिन उसके आसपास बौनी गॅलक्सियों की भरमार है। इनमें बड़े पैमाने पर तारों का निर्माण हो रहा है। भारत की प्रथम मल्टी वेव्हेलेन्थ स्पेस ऑब्जर्वेटरी ने एक ऐसी बौनी गॅलक्सी देखी है। ऐसी गॅलक्सी के किनारों पर तारों के गुच्छे बनते हैं और

सर्पिल आकार की यात्रा कर, गैलक्सी के अंदर एक निश्चित समय सीमा में ही समा जाते हैं। इससे गैलक्सी के विकास में वृद्धि होती है।

सबसे दूरस्थ आकाशगंगा-

सबसे दूर की आकाशगंगा का पता लगाया गया है। इसे नासा की चंद्र क्ष किरण वेधशाला और अन्य दूरदर्शियों की मदद से देखा गया है। इसे CLJ १००१ +०२२० नाम दिया गया है। यह पृथ्वी से 11.1 अरब प्रकाशवर्ष दूर है। अनुसंधान की अगुआई फ्रेंच वैकल्पिक ऊर्जा आयोग के, ताओ वांग ने की।

ब्रह्माण्ड का नक्शा -

हाल ही में ब्रह्माण्ड का एक त्रिआयामी नक्शा प्रसिद्ध किया गया है। अध्ययन दल के सदस्य कोलंबिया यूनिवर्सिटी के डॉ. चेरिस ब्लैक के अनुसार यह नक्शा अरबों प्रकाशवर्षों तक फैली ब्रह्माण्डीय तरंगों के विश्लेषण पर आधारित है। ये तरंगें अरबों साल पहले उत्पन्न हुई थीं जो ब्रह्माण्ड के विस्तार के साथ फैलती जा रही हैं। इस नक्शे को बनाने में लाखों आकाशगंगाओं के रंगों और आकार का डाटा ग्रहण करने के लिए अमेरिका, ब्रिटेन और आस्ट्रेलिया के भौतिकशास्त्रियों ने सैलोन डिजीटल स्काई सर्वे के टू डायमेंशनल नक्शे और अँग्लो-ऑस्ट्रेलियन टेलिस्कोप की मदद ली है। इस नक्शे में १०००० से ज्यादा आकाशगंगाओं की स्थिति दर्शाई गयी है। इसमें पांच अरब प्रकाशवर्ष की दूरी में फैले ब्रह्माण्ड का अंतर्भाव है। यूनिवर्सिटी कॉलेज लंडन के प्रो. ओफर लाहव के अनुसार इस नक्शे से भी पता चलता है कि ब्रह्माण्ड का ३/४ हिस्सा रहस्यमय डार्क ऊर्जा और डार्क मैटर से संबंधित है।

हमारी आकाशगंगा

हमारी आकाशगंगा गोलाकार, सपाट, शंखाकार रचना है। लेकिन इसका कोई स्पष्ट आदि और अन्त बिंदु नहीं है। इसकी दो प्रतिमाएं मिलती हैं - १) प्रथम है 360° panorama, पृथ्वी से अर्थात् आकाशगंगा के अंदर से ली हुई। २) दूसरी है दीर्घिका UGC 12158 की। यह भले ही हमारी आकाशगंगा से बड़ी है लेकिन ऐसा माना जाता है कि वह बाहर से दिखने में हमारी आकाशगंगा जैसी ही होनी चाहिए।

- हमारी आकाशगंगा हमें तारों के सघन दूधिया पट्टे जैसी या हलके सफेद पट्टे के रूप में दिखाई देती है। ऐसा लगता है मानो प्रकाश का प्रवाह हो। इस कारण उसे ' Milky Way ' कहते हैं।
- यह १० अरब साल पहले अस्तित्व में आयी।
- यह अन्य बहुत सारी मंदाकिनियों के साथ मिलकर ' Virgo ' नामक महासमूह में स्थित है। हमारी आकाशगंगा और देवयानी ये दो दीर्घिकाएं एक स्थानीय संघ की प्रमुख सदस्याएं हैं। इसमें अन्य छोटी-बड़ी मिलकर २४ दीर्घिकाएं हैं। लेकिन स्थानीय संघ के वस्तुमान का ९५ % हिस्सा उपरोक्त दो प्रमुख दीर्घिकाओं का ही है। स्थानिक संघ में विशाल आकार की दीर्घ गोलाकार दीर्घिकाएं नहीं होतीं। वास्तव में हमारी आकाशगंगा को सबसे करीबी दीर्घिका देवयानी ही है। यह हमसे २२ लाख प्रकाशवर्ष दूर है। लेकिन ये दोनों स्वतंत्र नहीं हैं। वे सर्पिल दीर्घिकाओं का एक युग्म है। ये दोनों एक ही बिंदु के चारों ओर लेकिन विरुद्ध दिशाओं में भ्रमण करती हैं। आकाशगंगा की तुलना में देवयानी विशाल है। उसमें ३०० अरब तारे होने चाहिए। उसका व्यास १ लाख ८० हजार प्रकाशवर्ष होना चाहिए। यह अपने अक्ष के गिर्द २० करोड़ वर्षों में प्रदक्षिणा पूरी करती है।
- एक अध्ययन के अनुसार हमारी आकाशगंगा में डेढ़ से दो खरब तारे हैं।
- आकाशगंगा का व्यास लगभग एक लाख प्रकाशवर्ष है।
- हमारा सौर परिवार आकाशगंगा के केंद्र से लगभग ३२००० प्रकाशवर्ष दूर है।
- आकाशगंगा के दक्षिण हिस्से में तारे अधिक हैं।
- मिल्की वे के केंद्र में स्थित ' कृष्ण विवर ' को ' सेजिटेरस ए ' नाम दिया गया है।
- आकाशगंगा में तारों के साथ-साथ दो तरह के बादल दिखाई देते हैं -१) हैड्रोजन गॅस से बने २) धूल कणों से निर्मित -ये कोहरे इतने घने होते हैं। कहीं-कहीं उनके पार देखना कठिन हो जाता है। ये ठोस कणों से निर्मित हैं। इनमें लोहा तथा अन्य धातुओं से बने कुछ कण भी पाए जाते हैं, जिनमें चुंबकीय गुण भी दिखते हैं।
- केंद्रभाग में आकाशगंगा के फुले हुए भाग की मोटाई लगभग २० हजार प्रकाशवर्ष है और व्यास १५ से २० हजार प्रकाशवर्ष है।
- आकाशगंगा के सबसे हलके तारे का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान का करीब पांचवा हिस्सा है तो सबसे भारी ज्ञात तारे का लगभग ४०० सूर्यों के बराबर है। लेकिन अधिकांश तारों का सूर्य

के आधे से लेकर तो चार सूर्यों के बराबर हैं। सूर्य का द्रव्यमान ३,३०,००० पृथ्वीयों के बराबर है।

- तारों के व्यास सूर्य के व्यास के शतांश से लेकर तो ५०० गुना तक हैं।
- आकाशगंगा में एक ओर तो सूर्य से काफी कम घनत्व वाले तारे हैं तो दूसरी ओर दस लाख गुना घनत्व वाले भी हैं।
- तारों में द्रव्य प्लाज्मा के रूप में ही हो सकता है।
- तारों के सिवाय हमारी आकाशगंगा में ५-१० हजार वायुमेघ हो सकते हैं। कोई विशेष वायुमेघ एक लाख से दस लाख सूर्यों का द्रव्यमान भी समाए हुए हो सकता है। ये मेघ अनियमित ढंग से लेकिन ६-८ कि.मी./ से. वेग से घूमते हैं।
- सूर्य की केंद्र की परिक्रमा करने की गति २२० कि.मी./ से. है।
- सूर्य द्वारा केंद्र की परिक्रमा पूरी करने २२.५ करोड़ वर्ष लगते हैं।
- हमसे सबसे करीबी तारा प्रोक्सिमा सेन्टौरी है। यह हमसे ४.२२ प्रकाशवर्ष दूर है । (४,००,०० अरब कि.मी.)। यह धुंधलासा दिखाई देता है ।
- आकाश का सबसे चमकिला तारा है व्याध। वह हमसे ९ प्रकाशवर्ष दूर है।
- लेकिन गणना बताती है कि ईसा वर्ष ११८०० में हमसे जो सबसे निकट का तारा होगा उसे नाम दिया गया है ' बर्नार्ड स्टार ' । उसकी उस समय की दूरी होगी ३.७५ प्रकाशवर्ष।

आकाशगंगा का द्रव्यमान--

हमारी आकाशगंगा में समझ लो -

सूर्य का उसके केंद्र से अंतर ' R ' , सूर्य की उसके केंद्र के गिर्द परिक्रमा करने की सरलरेखीय गति ' v '

- परिभ्रमण जो अभिकेन्द्री (Centripetal) त्वरण उत्पन्न करेगा वह होगा $= v^2 / R$
- सूर्य का द्रव्यमान ' M '। इस द्रव्यमान द्वारा उत्पन्न गुरुत्वीय त्वरण, R त्रिज्या पर होगा $= GM/ R^2$
- दोनों कीमतों की तुल्यता के आधार पर हमें मिलेगा $M = V^2 R/ G$
- आकाशगंगा के लिए सूर्य के अंतर पर सरलरेखीय गति है २०० कि.मी./ से. (केंद्र से 3×10^{22} cm पर)

- तो द्रव्यमान होगा = 10^{44} gms अर्थात् 10^{11} x सूर्य का द्रव्यमान। इसे ही पूरी आकाशगंगा के द्रव्यमान के तौर पर लिया जाता है। इसमें कुछ द्रव्यमान तो प्रत्यक्ष तारों का है और बाकी आंतरतारकीय वायु और धुलीकणों का।

आकाशगंगा की दीप्ति --

आकाशगंगा की दीप्ति (Luminosity) या आकाशगंगा द्वारा एक समय उत्सर्जित की जाने वाली कुल दृश्यमान ऊर्जा की कीमत गणना के बाद आती है = 3×10^{36} वॉट या सूर्य की दीप्ति से 10^9 गुना। सूर्य की दीप्ति = 4×10^{26} वॉट।

आकाशगंगा का आकार --

आकाशगंगा का आकार सर्पिल है और उसके तीन सर्पिल बाहु मनुष्य को निश्चित ज्ञात हुए हैं। मृग बाहु (ओरायन आर्म) बीच में है। उसके बाहर केंद्र की विरुद्ध दिशा में लगभग २००० पार्सेक दूरी पर ययाति बाहु (पेर्सस आर्म) और केंद्र की दिशा में लगभग २००० पार्सेक दूरी पर धनु बाहु (सॅजिटारिअस आर्म) है। सबसे अंत में जिस बाहु की खोज हुई है उसे नौकातल बाहु (कॅरिना आर्म) नाम दिया गया है। लेकिन वह मृग बाहु का ही विस्तार होना चाहिए। हमारी सौर मालिका मृग बाहु की घटक है और उसका स्थान बाहु के अंदरूनी किनारे के पास है। यह भुजा आकाशगंगा के केंद्र की २२० कि.मी./ से. गति से परिक्रमा करती है। एक परिक्रमा पूरी करने उसे २४ करोड़ साल लगते हैं। आकाशगंगा की विश्वभुजाएं सामान्यतः १०००० प्रकाशवर्ष लम्बी और ५००० प्र.वर्ष चौड़ी होनी चाहिए। हर भुजा तारे और घने वायु इनसे बनी है। अक्ष भ्रमण के कारण विश्वभुजाओं के बीच का अंतर बढ़ता रहेगा। लेकिन भिन्न-भिन्न हिस्सों में गति अलग-अलग होने के कारण भुजाओं का यह विस्तार भी असमान होगा।

लेकिन हमारी सूर्यमाला का तल, आकाशगंगा के तल (Plane) के साथ ६० डिग्रीज का कोन करता है। यही कारण है कि हम उत्तर और दक्षिण दोनों गोलार्धों से ऊपर देखने पर आकाशगंगा को देख सकते हैं। अगर दोनों का तल एक ही होता तो पृथ्वी का २३.५ डिग्री अक्षीय

झुकाव ध्यान में लेते हुए, आकाशगंगा का दुधिया पट्टा देखने के लिए विषुववृत्त के काफी करीब रहना पड़ता।

- केंद्रीय फुला हुआ हिस्सा और मध्यवर्ती तश्तरी इनके गिर्द एक प्रभामंडल है जिसका व्यास ६५००० प्रकाशवर्ष होना चाहिए। प्रभामंडल के भी बाहर कोरोना का आवरण है। केंद्र से इसका विस्तार २ और ३.५ लाख प्रकाशवर्ष होना चाहिए।
- आकाशगंगा का अक्ष भ्रमण-
सूर्य के आजुबाजु के तारों की गतियों के कारण ताराविश्व के अक्ष भ्रमण का पता चला। इसकी खोज वर्ष १९२६ में बी. लिंडब्लाड और जे. ऊर्टे इन्होंने की थी। हमारी आकाशगंगा की तश्तरी एक सामान्य केंद्र के गिर्द घूमती है। अर्थात् केंद्र से भिन्न-भिन्न अंतरों पर घूमने की गति अलग-अलग होगी। लेकिन इस अक्ष भ्रमण की विशेषता यह है कि हमारे विश्व का, अक्ष भ्रमण वेग, केंद्र के समीप बहुत कम है। लेकिन जैसे-जैसे केंद्र से दूर जाते हैं वह क्रमिक रूप से त्रिज्या के अनुपात में बढ़ता जाता है। केंद्र से २१००० प्रकाशवर्ष दूरी पर वह महत्तम है। और आगे, बढ़ने के स्थान पर वह घटने लगता है। छोर पर वह बहुत ही कम हो जाता है। पहले दायरे में जिस नियम का पालन होता है वह है कि संबंधित अंदरूनी क्षेत्र स्थिर कोनीय गति से घुमता है और उसका घूर्णन, कालांतर तक कायम रहता है, मानों वह कोई अखंड पिंड हो। लेकिन बाद में वह केप्लर के तिसरे नियम का पालन करती है। गति केंद्र से अंतर के वर्गमूल के व्युत्क्रमानुपात में कम होती है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि बाहरी दायरे (Periphery) के पास के तारे केंद्र के द्रव्यमान के प्रभावांतर्गत परिक्रमा करते हैं। बाहरी क्षेत्र के तारों पर केंद्रीय द्रव्यमान का प्रभाव इतना नहीं है। यह वैसा ही है जैसे ग्रह, सूर्य की परिक्रमा करते हैं।



Image credit : Google images

सूर्य के आसपास यह रैखिक वेग (Linear Velocity) २२० से २५० कि.मी./ से. है। फिर भी इस हिस्से को परिक्रमा पूरी करने २२ करोड़ वर्ष लगते हैं। अन्य कई मंडाकिनियों के लिए यह मापन सीधे तौर पर किया गया है जो साधारणतः १०० से ३०० कि. मी. / से. है। आकाशगंगा की परिक्रमा का कालावधि उस समयावधि को माना जाता है जिसमें वह हिस्सा जो स्थिर कोनीय गति से परिक्रमा कर रहा है, एक परिक्रमा पूरी करता है। अर्थात् अंदरूनी हिस्से द्वारा परिक्रमा पूरी करने का समय। निरीक्षण की गयी सभी आकाशगंगाओं के लिए यह तीन करोड़ से सौ करोड़ वर्षों के बीच है (B.A.Vorohtsov-Velyaminov)।

अँड्रोमिडा मंडाकिनी-

- यह हमारी आकाशगंगा के लिए सबसे करीबी बड़ी मंडाकिनी है। वैसे इसके आसपास छोटी मंडाकिनियाँ हैं। जैसे कॅनिस मेजर ड्वार्फ मंडाकिनी जो 25000 प्रकाशवर्ष दूर है। अँड्रोमिडा का व्यास २.२ लाख प्रकाशवर्ष है। यह आकाशगंगा से २.५४ दशलक्ष प्रकाशवर्ष दूर है। इसमें लगभग एक ट्रिलियन तारे होने चाहिए। यह भले ही लोकल पुंज में सबसे बड़ी हो लेकिन सबसे भारी नहीं। आकाशगंगा में डार्क मॅटर का परिमाण अधिक होने से वह अधिक भारी है। अँड्रोमिडा, आकाशगंगा की ओर १०० से १४० कि.मी./सेकंड गति से आ रही है। दोनों का मिलना लगभग ४.५ अरब सालों बाद होने की संभावना है। इस मंडाकिनी के केंद्र में महावजनी कृष्ण विवर और आजुबाजू तारों का भारी पुंज है।
- आकाशगंगा और अँड्रोमिडा
मंडाकिनियाँ द्रव्यमान की दृष्टि से भारी होती हैं और अंतरिक्ष-काल को विकृभूत करती हैं। परिणामतः एकदूसरे की ओर गिरती जाती हैं जिसे हम आकर्षित होना कहते हैं। लेकिन यह दर बहुत अल्प होता है, ब्रह्माण्ड विस्तार के दर से कम। यही कारण है कि अधिकतर दीर्घिकाएँ एकदूसरे से दूर भागती हुई लगती हैं। लेकिन यह बात दीर्घिकाओं के स्थानीय गुट में सर्वाधिक बड़ी अँड्रोमिडा और द्वितीय स्थानवाली आकाशगंगा इनके लिए सच नहीं है। वे ब्रह्माण्ड विस्तार की गति ७३ कि.मी./सेकंड की तुलना में काफी अधिक गति से - ११० कि.मी./सेकंड - एकदूसरे की ओर आ रही हैं। इस कारण वे भविष्य में एकदूसरे में विलीन हो जाएगी।
- सबसे बड़ी मंडाकिनी

ब्रह्माण्ड की सबसे भारी ज्ञात गैलॅक्सी है IC ११०१। यह दीर्घगोलाकार(Elliptical) मंदाकिनी है। वह बड़े अबेल २०२९ मंदाकिनी पुंज के केंद्र में है। इसमें १०० ट्रिलियन से अधिक तारों होने चाहिए। आकाशगंगा से हजार गुना अधिक। इसकी त्रिज्या १.९५६९ दशलक्ष प्रकाशवर्ष है। यह लगभग १२.३१ अरब प्रकाशवर्ष पुरानी है। यह हमसे 1.05 अरब प्रकाशवर्ष दूर है। इसका द्रव्यमान 10×10^{12} तारों इतना होना चाहिए।

- हमसे सर्वाधिक दूर ज्ञात दीर्घिका GN-Z11

यह महाविस्फोट के बाद ४० करोड़ वर्षों के बाद अस्तित्व में आनी चाहिए। यह प्रथम पीढ़ी की दीर्घिकाएं अस्तित्व में आने का समय था । यह हमसे 32 अरब प्रकाशवर्ष दूर है। ऐसा माना जाता है कि दृश्यमान ब्रह्माण्ड प्रकाश गति से अधिक तेजी से विस्तारित हो रहा है। इसका कारण है ब्रह्माण्ड स्वयं विस्तारित हो रहा है। यही कारण है कि दृश्यमान ब्रह्माण्ड का आकार १३.७७ अरब प्रकाशवर्ष (ब्रह्माण्ड की आयु) x प्रकाश गति से अधिक है। उसकी त्रिज्या तीन गुना अधिक या ४६.५ अरब प्रकाशवर्ष मानी जाती है। उपरोक्त दीर्घिका हमसे ४७४८३६ कि.मी./से. (प्रकाशगति से १.५८ गुना) गति से दूर हो रही है। दीर्घिका जितनी दूर उतनी अधिक उसकी हमसे दूर होने की गति। दृश्यमान जगत की दूर की कुछ दीर्घिकाएं ब्रह्माण्ड विस्तार की गति से भी तेज भागती हुई दिखती हैं। अतः एक समय आ सकता है कि वे दृश्यमान जगत की मर्यादा के पार निकल जाएं।(The Cosmological Horizone) और हमारे लिए अदृश्य हो जाएं।

सूर्य

सूर्य की कोई ठोस सतह नहीं है। यह पूर्ण रूप से गैसीय गोला है। पृथ्वी का परिवलन एक ठोस वस्तु का परिवलन है। लेकिन सूर्य के अलग-अलग हिस्से भिन्न-भिन्न गति से घूम सकते हैं। उसका विषुववृत्त २४.५ दिनों में एक चक्कर पूरा करता है तो ध्रुवों को उसे पूरा करने में ३८ दिन लगते हैं। इसका गर्भ ७० हजार कि.मी. तथा वहां का तापमान एक से डेढ़ करोड़ सेंटीग्रेड होना चाहिए। सूर्य के ऊपरी हिस्से या वातावरण के तीन हिस्से हैं -

१) फोटोस्फिअर : सूर्यप्रकाश का स्रोत। तापमान ६००० से.। इसकी मोटाई ५००० कि.मी. होनी चाहिए।

- २) क्रोमोस्फिअर : ग्रहण के समय, अल्प समय के लिए दिखने वाला लाल प्रकाश यहाँ पैदा होता है। तापमान ४५०० से., बढ़ते - बढ़ते ५ लक्ष से. तक पहुँच जाता है। इसकी चौड़ाई १०००० कि.मी. है।
- ३) कोरोना किरीट : यह नंगी आंखों से नहीं दिखता। खग्रास सूर्यग्रहण के समय उसका अस्तित्व ध्यान में आता है। इसका विस्तार लाखों कि.मी. तक है। अध्ययन से पता चला है कि अग्निकिरीट बहुत गर्म है और बेहद कम घनत्व वाले इलेक्ट्रॉनों से बना है। इसका तापमान एक लाख डिग्री सेंटीग्रेड है जो प्रकाशमंडल के मुकाबले सैकड़ों गुना है लेकिन इसका निश्चित कारण अभी तक ज्ञात नहीं हो सका। वास्तव में फोटोस्फियर केंद्र के करीब है। उष्मा कम उष्ण जगह से अधिक उष्ण जगह नहीं जा सकती। अतः सूर्य की किरणें इसका कारण नहीं हो सकती। सूर्यकिरणें पारदर्शक कोरोना से बिना उष्मा का अंतरण हुए पार निकल जाती हैं। वर्ष १९४९ में भौतिकविदों ने इसके प्रति कहा था कि ध्वनि तरंगें जब फोटोस्फिअर से कोरोना में आती हैं तो कंपन, तरंगों में बदल जाती हैं जो पतले कोरोना को गर्म कर देती हैं। लेकिन स्कायलैब द्वारा किए गये प्रयोगों में इसके कोई साक्ष नहीं मिले। फिर तर्क किया गया कि इसका कारण चुंबकीय प्लाज्मा तरंगें हो। मगर ये भी कोरोना के बाहर निकल जाती हैं।

सूर्य से उत्सर्जित ऊर्जा --

सूर्य से प्रति सेकंड 4×10^{33} अर्ग ऊर्जा अंतरिक्ष में उत्सर्जित होती है। सूर्य में प्रति सेकंड ४६ लक्ष टन वस्तु का रूपान्तर ऊर्जा में होना चाहिए। अर्थात् सूर्य प्रति सेकंड इतना अपना वस्तुमान गंवाता है। लेकिन हिलीयम अणुकेंद्र निर्मिति के लिए ०.७३ % वस्तुमान का नाश होना आवश्यक है। अतः ४६ लक्ष टन वस्तु का ऊर्जा में रूपांतर होने के लिए प्रति सेकंड ६३ करोड़ टन हैड्रोजन का ज्वलन होकर उसका रूपांतर हिलीयम में होना चाहिए। यह वस्तुमान बहुत अधिक है लेकिन सूर्य का वस्तुमान भी तो 2×10^{33} ग्रॅम या 2×10^{26} मे. टन है। गणित के अनुसार १० अरब साल तक यह ज्वलन होते रहने के लिए 2×10^{26} टन इंधन का ही ज्वलन होगा। आज की स्थिति में सूर्य में ९४. ३ % हैड्रोजन और ५.६ % हिलीयम है।

लगाए गये हिसाब के अनुसार धरती के बाहरी वायुमंडल के प्रति वर्ग मीटर को सूर्य से प्रति सेकंड १३२४ वॅट ऊर्जा मिलती है। इस तरह पूरी पृथ्वी को प्रति सेकंड मिलने वाली ऊर्जा ६४३ लाख टन कोयला जलाने से मिलने वाली ऊर्जा के बराबर है। (लो. स. २२-१-२००५ विज्ञान विभाग)। सूर्य प्रति मिनट एक अरब टन जल बाष्पित करता है।

सौर पवन और सौर ज्वालाएं--

सूर्य के तप्त सतह से प्रमुखता से प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन ये विद्युत भारित कण, अंतरिक्ष की सभी दिशाओं में लगातार प्रक्षेपित होते हैं। इन कणों की गति प्रति सेकंड 340 से लेकर तो ८०० कि.मी. इतनी विलक्षण होती है। इन विद्युत भारित कणों के गतिमान प्रवाह को ही सौर पवन कहते हैं। यह प्रवाह लगभग १०० ज्योतिषीय एकक लांघने के बाद, कणों की गति बहुत कम हो जाने के कारण अंतरिक्ष में लुप्त हो जाता है। अंतरिक्ष में विद्यमान वायुकण, सौरवात के इन इलेक्ट्रॉन्स और प्रोटॉन्स को सोख लेते हैं।

सौर ज्वालाएं तो सीधी धरती तक नहीं आ पातीं और सौर पवन भी धरती के वायुमंडल को नहीं भेद पाता। धरती की चुंबकीय बलरेखाएं सौर पवन को अपने साथ उत्तर-दक्षिणी ध्रुवों तक ले जाती हैं। ध्रुवीय आकाश में हवा और गॅसों के कणों से टकराकर सौर पवन चमक पैदा करता है और ध्रुवीय ज्योति के रूप में अद्भुत नजारा देखने मिलता है। वैज्ञानिक भाषा में इस ज्योति को ' अरोरा ' कहा जाता है।

बहुत अधिक तापमान पर गॅसों के अणुओं से इलेक्ट्रॉन्स बाहर निकलने पर वे आवेशित हो जाते हैं। ये बिजली के सुचालक होते हैं। इसे प्लाज्मा कहा जाता है। सूर्य की अंदर की गर्मी बाहर लाने में प्लाज्मा का बड़ा हाथ है। प्लाज्मा के साथ ही सूर्य का चुंबकीय क्षेत्र भी जुड़ा है। मुक्त इलेक्ट्रॉनों में गतिमान आवेशित गॅसे चुंबकीय बल पैदा करती हैं। चुंबकीय क्षेत्र में डोलता सुचालक बिजली पैदा करता है। यह बिजली चुंबकीय क्षेत्र की शक्ति और बढ़ा देती है। तेजी से चलता चुंबकीय क्षेत्र अपने साथ प्लाज्मा को भी घसिटता रहता है। यह लगातार बदलता चुंबकीय क्षेत्र गॅसों में भारी हलचल पैदा करता है। इसके प्रभाव से उठी सौर लपटों में एक अरब नाभिकीय विस्फोटों इतनी चुंबकीय ऊर्जा मुक्त होती है। चुंबकीय ऊर्जा से भरपूर लपटें, किरीट के रूप में अरबों टन तेज रफ्तार के आवेशित कण अंतरिक्ष में छोड़ती हैं। इन्हें ही सौर पवन कहा जाता है।

सौर गतिविधियों का चक्र --

सौर लपटें और सौर पवन, सूर्य की 11 वर्षीय चुंबकीय गतिविधियों के अनुसार घटते-बढ़ते हैं। हर 11 वे साल धब्बे खास तौर पर ज्यादा नजर आते हैं। ये धब्बे भी तेज चुंबकीय क्षेत्र के कारण बनते हैं। संवहन धाराओं के साथ प्लाज्मा काफी गहराई तक नीचे जाता है। लेकिन सतह पर अधिक दूरी तय नहीं करता। सूर्य के अंदर से गर्मी पाकर यह प्लाज्मा हजारों कि.मी. ऊपर-

नीचे उठता-गिरता है। कभी-कभी यह भंवर के रूप में चक्कर काटते हुए नीचे जाता है। तो कहीं चुंबकीय क्षेत्र को घेरकर छोटे दायरे में मर्यादित कर देता है। तब ये क्षेत्र सौर धब्बों का रूप धारण कर लेते हैं। इन धब्बों से तेज एक्स किरणें निकलती हैं और सौर लपटें उठती हैं।

इन महत्तम सौर गतिविधियों के दरम्यान सौर पवन पृथ्वी के चुंबकीय कवच को भेदते हुए वायुमंडल में घुसकर चुंबकीय आंधी पैदा करता है। इससे रेडियो सिग्नल, संचार साधन, उपग्रह, हवाई जहाज की उड़ानें, विद्युत व्यवस्था आदि में गड़बड़ी पैदा हो सकती है। सूर्य की गतिविधियों पर नजर रखने वाली वेधशालाएं, उपग्रहों से इन आंधियों के बारे में जानकारी उपलब्ध होती है और हम आवश्यक उपाय कर सकते हैं।

अमेरिका के नॅशनल ओशनोग्राफिक अँड अँटमॉसफ़ोयरिक अँडमिनिस्ट्रेशन के अनुसार १२ जुलाई २००० को सौर ज्वालाएं उठने से पहले १० और ११ जुलाई को जो गतिविधियाँ देखी गयी थीं उसे ' कोरोनल मास इंजेक्शन ' नाम दिया गया है। इनकी रफ़्तार सौर विकिरणों की तुलना में काफी कम होती है। इस कारण इसे धरती तक पहुँचने काफ़ी दिन लग जाते हैं। इस सौर सामग्री की रफ़्तार १३०० से १८०० कि.मी./ सेकंड के बीच आंकी गयी और भार १० अरब टन आंका गया। इसे धरती तक पहुँचने दो दिन से ज्यादा का समय लगा। लेकिन ऐसी सामग्री का अधिकतर हिस्सा बाहरी वायुमंडल द्वारा अंतरिक्ष में खदेड़ दिया जाता है। इस कारण हमारे स्वास्थ्य पर तो असर नहीं पड़ता लेकिन धरती के चुंबकीय क्षेत्र की सेहत पर तो निश्चित प्रभाव पड़ता है। यह क्षेत्र संकुचित हो जाता है और इस कारण यहां भू-चुंबकीय तुफान चलने लगते हैं। यदि ये तुफान काफ़ी शक्तिशाली हो तो इससे पृथ्वी में भी विद्युत आवेश पैदा हो जाता है जो हमारी विददुत प्रणाली को गड़बड़ा देता है।

जिस तरह महत्तम धब्बों का ११ वर्षों का चक्र होता है उसी तरह सूर्य शांत होने का या न्यूनतम धब्बों का या न्यूनतम सौर गतिविधियों का भी ११ वर्षों का ही चक्र है। यह सूर्य के अधिकतम गतिविधियों के समय की विरोधी प्रावस्था(Phase) होती है। सूर्य के उत्तर और दक्षिण गोलार्ध के सौर धब्बों के चुंबकीय ध्रुव एकदूसरे के विरुद्ध दिशा में होते हैं। ११ वर्षों के एक चक्र के बाद इन ध्रुवों की दिशा उलट होती है। ११ वर्षों के अगले चक्र के उपरांत उन्हें फिर मूल दिशा प्राप्त होती है। यह बात जॉर्ज हेल ने १९१९ में दिखा दी थी। इससे स्पष्ट होता है कि मूलतः यह चक्र २२ वर्षों का है।

२०२० में सूर्य स्थिति संबंधी चेतावनी-

वैज्ञानिकों के अनुसार वर्तमान में सूर्य की सतह पर हलचल में भारी कमी आयी है। उनकी भाषा में सूर्य सपाट हो चुका है। धब्बों में ७६ % की कमी हुई है। अर्थात् सूरज का चुंबकीय क्षेत्र कमजोर हो चुका है। जिसके कारण सौर मंडल में अतिरिक्त ब्रह्माण्डीय किरणें दाखिल हो रही हैं जो स्वास्थ्य के लिए घातक है। सूरज के इसी तरह लॉक डाउन में चले जाने के कारण वर्ष १७९० से १८३० के दरम्यान आफत भरा समय रहा था। इस काल को ' डाल्टन मिनीमम काल ' कहा गया था। उस दरम्यान जबरदस्त ठंड, अकाल, शक्तिशाली ज्वालामुखी विस्फोट की घटनाएँ सामने आयी थीं। नासा के वैज्ञानिकों को आशंका है कि वर्तमान में सौर-स्याह कहीं उस दौर की पुनरावृत्ति का संकेत तो नहीं ? (लो. स. २०-५-२०२०)।

- वास्तव में सौर धब्बों को सर्वप्रथम गॅलिलियो ने अपनी दूरबीन से देखा था। यह भी देखा था कि ये धब्बे अपना स्थान बदलते हैं और अनुमान व्यक्त किया था कि सूर्य का भी परिवलन होना चाहिए।
- सौर धब्बों के 11 वर्षीय चक्र की खोज वर्ष १८४३ में जर्मन खगोलशास्त्री हेनरीच श्वाबे ने की थी।
- सूर्य के धब्बे उसकी सतह की तुलना में अधिक वेग से गतिमान है।
- सूर्य के धब्बों का चुंबकीय क्षेत्र, पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र की तुलना में १००० गुना है।

और कुछ बातें-

- सूर्य का परिवलन काल २४ दिन १६ घंटे का है। लेकिन यह परिवलन सर्वत्र समान नहीं है। विषुववृत्त के प्रदेश में वह २४ दिन तो ध्रुवों के पास ३० दिन है। सूर्य की विभिन्न परतें अलग-अलग गति से घूमती हैं। लेकिन अभीतक इसका कारण स्पष्ट नहीं हुआ है।
- अभीतक सौर ज्वालाओं का अधिकतम विस्तार ढाई लाख कि.मी. तक पाया गया है।
- सूरज से प्राप्त होने वाले विकिरण में लगभग सभी तरंगलम्बाई वाली विद्युत् चुंबकीय तरंगें होती हैं।
- सूर्य के चारो तरफ घेरा : ' सिरस क्लाउड ' का निर्माण तब होता है जब पृथ्वी की सतह से पांच से दस कि.मी. ऊपर जलबाष्प, बर्फ स्फटिकों में संघनित हो जाता है।
- सौर मंडल की प्रथम रेखा को ' Termination Shock ' कहा जाता है। इसका अगला क्षेत्र है ' Hileeoshith '। यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते सौर पवन की गति १५० कि.मी./ सेकंड रह जाती है।

- ३ जनवरी को पृथ्वी, सूर्य से सबसे करीब होती है। सूर्य-पृथ्वी औसत दूरी १५ करोड़ कि.मी. है। पृथ्वी-सूर्य दूरी न्यूनतम होने की घटना को उपसूर्य कहते हैं। तब पृथ्वी की गति अधिकतम होती है।
- सूर्य की आयु निश्चित करने वाले प्रथम वैज्ञानिक थे सर आर्थर एडिंग्टन।
- सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी निकालने का प्रथम प्रयास ग्रीक तत्त्वज्ञ अरिस्टार्कस ने किया था। यह समय ईसा पूर्व २८०-२७० के दरम्यान का था। निकाली कीमत और वास्तव कीमत में अंतर केवल ५ % का था। इसके एक शताब्दी बाद इरैस्टोथिनीस ने काफी ठीक कीमत निकाली। इसी व्यक्ति ने ही पृथ्वी के आकार का काफी सही अनुमान लगाया था। लेकिन १७ वीं सदी में कैसिनी ने निकाली कीमत काफी हद तक सटीक थी।
- सौर तंत्र का आकार :
 सौर तंत्र की जो मर्यादा मानी जाती है, उसे नाम दिया गया है
 “हेलियोपॉज(Heliopause)”। यह वह क्षेत्र है जहाँ सूर्य प्रारण का दबाव और गैलक्षीय दबाव बराबर होता है या दोनों संतुलन में होते हैं। यहाँ सौर पवन समाप्त हो जाता है। यह अंतर १२० खगोलीय एकक इतना है।
 एक अन्य दृष्टि से यह है ऊर्ट बादल की मर्यादा अर्थात् जहाँ तक इसकी वस्तुओं पर सूर्य का प्रभाव पहुँचता है। यह तीन प्रकाशवर्ष तक भी हो सकता है।

सूर्य अनुसंधान के अभियान --

सोहो (सोलर अँड हिलियोग्राफिक ऑब्ज़र्वेटरी) : इस अंतरिक्ष यान को २ दिसम्बर १९९५ को प्रक्षेपित किया गया था। यह नासा और यूरोपीय अंतरिक्ष संस्था का संयुक्त अभियान है। इसका लक्ष सूर्य और सौर चक्रीय परिवेश का अध्ययन करना है। साथ-साथ यह क्षुद्र ग्रहों से संबंधित जानकारी भी उपलब्ध कराएगा। सोहो अब तक अज्ञात २३०० से अधिक क्षुद्र ग्रहों का पता लगा चुका है। मूलतः इसका कार्यकाल २ साल का था। लेकिन वह १५ वर्षों से अधिक समय तक काम करता रहा। वास्तव में सोहो २३३३ यह एक क्षुद्र ग्रह को दिया हुआ नाम था। यह सौर मंडल के लंगरेजी बिंदु की एल-१ कक्षा में परिक्रमा कर रहा है। एल-१ कक्षा उस हिस्से को कहा जाता है जहाँ सूर्य और पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण एक दूसरे के लिए शून्य होता है। (लो. स. ११-२-२०१३)

SOAO : यह जापानी उपग्रह है जो सूर्य से १५ लाख कि.मी. दूरी पर है और पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र से बाहर है। वह चौबिसों घंटे सूर्य की तस्वीरें ले रहा है।

पार्कर सोलर प्रोब : इसे नासा ने १२-८-२०१८ को सूरज का अध्ययन करने हेतु अंतरिक्ष में भेजा है। यह कोरोना से २४ बार गुजरेगा और ७ साल काम करेगा। इसका वजन ६१२ किलो है। इसपर १०३ अरब रु. खर्च हुए हैं। हो सकता है इससे कोरोना के उच्च तापमान का रहस्य खुले।

11 फरवरी २०१० को नासा ने सोलर डायनामिक ऑब्ज़रवेटरी उपग्रह भी प्रक्षेपित किया था।

गॉन्ग प्रकल्प : पृथ्वी पर होने वाले भूकम्पों से जुड़े विज्ञान को सिस्मॉलॉजी नाम है। सूर्य पर होने वाले भूकम्पशास्त्र को ' हीलियो सिस्मॉलॉजी ' नाम दिया गया है। सूर्य की भूकम्प तरंगों की सहायता से उसके अंतर्भाग की रचना संबंधी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए पूरी दुनिया में फैली एक व्यवस्था निर्माण की गयी है। उसे ' The Global Oscillation Network Group ' (GONG) नाम से पहचाना जाता है। इसके छह निरीक्षण स्थल आपस में जोड़े गये हैं। वे इस प्रकार हैं- कैलिफोर्निया, हवाई, ऑस्ट्रेलिया, भारत, कनरी द्वीप और चिली। ऐसा दावा है कि इस व्यवस्था द्वारा सूर्य की सतह के एक करोड़ स्थानों पर एकसाथ नजर रखी जा सकती है।

सूर्य : और कुछ जानकारी--

- 1) 4 जुलाई को सूर्य और पृथ्वी इनके बीच की दूरी सर्वाधिक अर्थात् १५.२ करोड़ कि.मी. के दरम्यान होती है। वैसे औसत अंतर १५ करोड़ कि.मी. होता है।
 - 2) एक लाख वर्षों में पृथ्वी, सूर्य की ओर 1 से.मी. खींची जाती है।
 - 3) सूर्य का चुंबकीय क्षेत्र ५ करोड़ कि.मी. तक फैला है। Solar wind screen यह भी हमें कॉस्मिक विकिरण से बचाता है।
 - 4) सूर्य की आयु सर्वप्रथम आर्थर एडिंग्टन इन्होंने निश्चित की थी।
 - 5) सूर्य दागों पर अनुसंधान सर्वप्रथम वैज्ञानिक श्वोबे ने किया था।
- अस्ट्रॉफिजिकल जर्नल में प्रकाशित कार्नेल युनिवर्सिटी के एरिक ई. मॅमजेकईर के एक प्रस्तुति (16-02-2015) के अनुसार स्कॉल्ड नाम का तारा अभी हमसे 20 प्रकाशवर्ष दूर है। लेकिन लगभग 70,000 वर्ष पूर्व यह सूर्य से केवल 0.8 प्रकाशवर्ष दूरी से गुजरना चाहिए।

यह एक छोटा red dwarf है जिसका द्रव्यमान सूर्य की तुलना में 15% है। यह द्रव्यी तारका प्रणाली में से एक है। तो दूसरा साथी brown dwarf(लघुतारा) है। उसे ऊर्ट बादल का purturer कहा गया है।



Image credit:- Quora

(सूर्य की अबतक की सबसे स्पष्ट तस्वीर)

गतिमान तारका विश्व

खगोलीय पिंडों की जानकारी प्राप्त करने का अर्थ है उनसे संबंधित सांख्यिकीय दत्त सामग्री (Data) एकत्र करना। यह पिंडों से संबंधित भिन्न-भिन्न परामितकों के रूप में होगी। उनमें एक होगा पिंडों से संबंधित गतियां।

पुराने जमाने में ऐसी मान्यता थी कि आकाश में तारे स्थिर हैं। लेकिन लगभग ३०० साल पहले एडमंड हेली ने इस कल्पना को नकारते हुए कहा कि तारे भी अपने स्थानों से विचलित होते हैं।

अगर वे स्थिर नहीं हैं तो फिर उनकी गति का प्रश्न सामने आएगा ही। गति का अन्वेषण जब होगा तो संदर्भ बिंदु की उपस्थिति आवश्यक हो जाती है। यह संदर्भ बिंदु हो सकता है -

१) पृथ्वी स्वयं या

२) ब्रह्माण्ड का कोई बिंदु ।

यहां हम पृथ्वी के सापेक्ष, पिंडों की गति के विषय में सोचेंगे। इसका सीधी भाषा में अर्थ हुआ, कोई आकाशीय पिंड किस गति से पृथ्वी की ओर आ रहा है या उससे दूर जा रहा है। तारे

हमसे इतने दूर हैं कि उनके हमारी ओर आने से या दूर जाने से उनकी दीप्ति में कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन मनुष्य ने इस समस्या का हल ढूँढ लिया है।

डॉप्लर प्रभाव -

कल्पना किजिये आप रेल के किसी प्लेटफॉर्म द्वय के बीचोंबीच खड़े हैं। आपके एक बाजू के प्लेटफॉर्म पर गाड़ी आ रही है तो उसी समय दूसरी ओर के प्लेटफॉर्म से गाड़ी विरुद्ध दिशा में रवाना हो रही है। एक गाड़ी आपकी ओर आ रही है तो दूसरी आपसे दूर जा रही है। दोनों गाड़ियों की सीटियाँ बज रहीं हैं। दोनों सीटियों का स्थान आपसे समान दूरी पर होने पर भी आप पाएंगे कि आने वाली ट्रेन की सीटी ज्यादा तीखी सुनाई दे रही है जबकि दूर जाती हुई अधिकाधिक मंद होती जा रही है। इसका कारण है, आती हुई ट्रेन की सीटी से प्रति सेकंड ज्यादा ध्वनि तरंगें आप तक पहुँच रहीं हैं या तरंग आवृत्ति बढ़ रही है। दूर जाती आवाज़ के लिए इससे उलट होगा। गतिमान वस्तु ने प्रक्षेपित की ध्वनि के स्वरमान में फर्क होता है। स्वरमान कंपन संख्या पर निर्भर होता है। स्वरमान में हो रहे उतार-चढ़ाव की इस संवृत्ति को भौतिकी में ' डॉप्लरी प्रभाव ' कहते हैं। यह नियम सभी तरंगों पर लागू होता है। प्रकाश या अन्य चुंबकीय तरंगों पर भी।

प्रकाश और डॉप्लर नियम :

कांच के प्रिज्म से सूर्यप्रकाश पार होते समय वह सात रंगों में विभक्त होता है। यही दृश्य प्रकाश का वर्णपट (Spectrum) है। इस वर्णपट में कुछ काली रेखाएँ दिखाई देती हैं। उस विशिष्ट लम्बाई की प्रकाश लहरों का शोषण हो जाने से यह हिस्सा काला दिखता है। इन लहरों की लम्बाई, शोषण करने वाले मूलद्रव्यों पर निर्भर होती है। वर्णपट में लाल रंग की तरंगें सबसे अधिक लम्बाई की तो जामुनी सबसे कम की होती हैं। तरंग लम्बाई अधिक तो आवृत्ति कम और लम्बाई कम तो आवृत्ति अधिक।

कोई तारा अगर हमारी ओर आ रहा है तो डॉप्लर प्रभाव के अनुसार बढ़ी हुई आवृत्ति वाला विकिरण हम तक पहुँचेगा या उस तारे की सभी वर्णक्रम रेखाएँ थोड़ी सी नीले सिरे की ओर सरक जाएंगीं। दूर जाते तारे से प्राप्त विकिरण, आवृत्ति कम होकर हमें प्राप्त होगा। अतः उसकी शोषण रेखाएँ मूल स्थान से अधिक लम्बाई वाले स्थान की ओर सरकेगीं, लाल रंग की ओर। इसी कारण इसे 'ताम्रसृति' कहते हैं। यह होता है, जब प्रकाशस्रोत और प्रकाशग्राहक इनके बीच की दूरी बढ़ती है।

कुल विदुत चुंबकीय तरंगों के वर्णपट में दृश्य वर्णपट का हिस्सा बहुत छोटा है। उससे पहले क्रमशः गॅमा, क्ष, अतिनील तो बाद में अवरक्त और रडिओ जैसी अदृश्य तरंगें हैं। दृश्य हिस्से में क्रम से जामुनी, नीला, अस्मानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल ऐसे सात रंग हैं। जामुनी से लाल रंग की ओर बढ़ते समय तरंगों की लम्बाई (Wave Length) बढ़ती जाती है अर्थात् आवृत्ति(Frequency) कम होती जाती है।

विशिष्ट मूलद्रव्य विशिष्ट तरंग लम्बाई की तरंगें ही उत्सर्जित करता है। उस-उस रंग की रेखाओं के स्वरूप में हम उन तरंगों को देखते हैं। जैसे सोडियम मूलद्रव्य ५८९० औ ५८९६ अँगस्ट्रॉम(१अं.= १०^{-८} से.मी.) ये पीले रंग की दो ही तरंगें उत्सर्जित करता है। कोई और मूलद्रव्य इन लम्बाई वाली तरंगें उत्सर्जित नहीं करता। अतः इस आधार पर हम मूलद्रव्यों की पहचान कर सकते हैं। मूलद्रव्य केवल दृश्य वर्णपट के रंग उत्सर्जित कर सकते हैं, ऐसा नहीं। तापमान के अनुसार सभी प्रकार की विदुत चुंबकीय तरंगें वे उत्सर्जित कर सकते हैं। मान लो, कोई मूलद्रव्य अति नील तरंगें उत्सर्जित कर रहा हो फिर भी ताम्रसृति के कारण वे दृश्य वर्णपट के विभाग में आ सकती हैं। उलट कोई मूलद्रव्य अवरक्त किरण उत्सर्जित कर रहा हो तो नीलसृति के कारण वह दृश्य लहरी के विभाग में आ सकती है। कभी-कभी ऐसा ध्यान में आता है कि किसी विशिष्ट मूलद्रव्य के वर्णपट की रेखाएं उनके नियोजित स्थान पर नहीं मिलती तो वे लाल रंग की ओर सरकी हुई मिलती हैं। अर्थात् उनकी तरंग लम्बाई बढ़ी है। यही ताम्रसृति है। उलट कभी-कभी ये रेखाएं नीले रंग की ओर सरकी हुई मिलती हैं। यह नीलसृति है। यहाँ तरंग लम्बाई कम हुई है और आवृत्ति बढ़ी है।

ताम्रसृति= $L_0 - L / L$ (L_0 निरीक्षित तरंग लम्बाई, L =उत्सर्जित तरंग लम्बाई या फिर आवृत्ति की भाषा में $=f - f_0 / f_0$)

ये रेखाएं लाल रंग की ओर सरकती हैं इसका अर्थ यह नहीं कि वे लाल रंग की हो जाती हैं। वे कितने प्रमाण में सरकती हैं, इसपर उनका रंग निर्भर है। ताम्रसृति तीन कारणों से पैदा होती है -

- 1) गुरुत्वाकर्षण के कारण (Gravitational Red Shift) : कृष्ण विवर जैसे महाप्रचंड गुरुत्वीय पिंड के सान्निध्य में उत्पन्न होने वाला प्रकाश गुरुत्व के कारण पीछे खींचा जाएगा तो किरणों की तरंग लम्बाई बढ़ेगी और ताम्रसृति परिणाम देखने में आएगा।

2) डॉप्लर प्रभाव : यह प्रभाव ध्वनि तरंगों और विद्युत चुंबकीय तरंगों दोनों के लिए समान है। अंतर है तो केवल इतना ही कि ध्वनि तरंगों को माध्यम की आवश्यकता होती है, विद्युत चुंबकीय तरंगों को नहीं।

उदा. कैल्शियम की H रेखा का तरंग दैर्घ्य $3968.4 \text{ \AA}$ (अ) होना चाहिए। यदि प्रेक्षण में वह $4062.2 \text{ \AA}$ (ब) पाया जाता है तो अभिरक्त विस्थापन होगा (ब)-
(अ)/अ = 0.2।

पिंड के दूर जाने की गति (v) का, प्रकाश की निर्वात में गति (c) से अनुपात, अभिरक्त विस्थापन बराबर होगा। वास्तव में डॉप्लर नियम, न्यूटन के गति नियम तथा काल-अवकाश के नियम इनपर निर्भर है।

इस विस्थापन का मापन करने से हमें पता चल जाएगा कि अंतरिक्ष का कोई प्रकाशस्रोत कितनी तेजी से हमारी ओर आ रहा है या हमसे दूर जा रहा है। इस विधि से सर्वप्रथम अंग्रेज़ खगोलशास्त्री विलियम हगिन्स द्वारा व्याध तारे की गति का मापन किया गया। समकालीन जर्मन खगोलशास्त्री हरमान फोगेल ने इस गतिमापन में सूक्ष्मता लाने के लिए तकनिकें खोज निकालीं।

१९१४-१९२० के दरम्यान खगोलशास्त्री व्हि.एम्.स्लाइफेर के ध्यान में आया कि दूर की सभी मंदाकिनियों के वर्णक्रमों की रेखाएं लाल सिरे की ओर सरक जाती हैं।

कैलिफोर्निया अमेरिका के माउंट विल्सन वेधशाला में २.५ मीटर व्यास वाली दूरबीन के सहारे अमेरिकी खगोलविद् एडविन हबल और उनके सहयोगी मिल्टन ह्युमासन, खगोल अनुसंधान में १९२४ से १९२९ तक व्यस्त थे। उन्होंने अपने निष्कर्ष १९२९ में घोषित किए।

१) आसपास की गैलेक्सियों से आने वाले प्रकाश का स्पेक्ट्रमी विश्लेषण करने पर हबल को यह पता लगा कि सामान्य स्पेक्ट्रम में अवशोषण रेखाओं को जिन निश्चित स्थितियों में होना चाहिए, वे वहाँ नहीं थीं।

२) हबल-ह्युमासन की जोड़ी ने देखा कि किसी गैलेक्सी के स्पेक्ट्रम की सभी रेखाएं एक ही ताम्रसृतिवाली दिखती हैं, जिसे उस गैलेक्सी का अभिरक्त विस्थापन कहते हैं।

३) इसके अलावा हबल ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि यह अभिरक्त विस्थापन गैलेक्सी की प्रेक्षक से दूरी के अनुपात में बढ़ता-घटता है। इसे हबल नियम कहते हैं।

‘ डॉप्लर प्रभाव ‘ और ‘ हबल नियम ‘ इनको जोड़ कर देखने से जो नतीजे सामने आते हैं, उनके अनुसार-

- १) जो मंदाकिनी हमसे जितनी दूर है, उसके स्पेक्ट्रम में रेखाओं का स्थानान्तरण भी उतना ही अधिक होता है।
- २) हमारे आसपास की अधिकतर गैलेक्सियाँ हमसे दूर भाग रही हैं।
- ३) दूर भागने का वेग गैलेक्सी की यहाँ से दूरी के अनुपात में बढ़ता है।

हबल का नियम -

मंदाकिनी की दूर भागने की गति = $(H) \times$ मंदाकिनी की दूरी (H को हबल स्थिरांक कहते हैं ।)

हबल स्थिरांक

निरीक्षण बताते हैं कि मंदाकिनियों के एकदूसरे के सापेक्ष भागने का वेग उनकी आपसी दूरियों का समानुपाती है। अर्थात् हबल स्थिरांक मंदाकिनियों के स्थानीय गुट और दूसरी मंदाकिनियों के दूर भागते पुंज के बीच की दूरी और दूर भागते पुंज की भागने की दर का अनुपात है। एक निश्चित अंतराल में मंदाकिनी के पलायन वेग में जो वृद्धि होती है वही हबल स्थिरांक है। इससे पता चलता है कि दूरी में दस लाख प्रकाशवर्ष की वृद्धि होने पर पलायन वेग में प्रति सेकंड कितने कि.मी. की वृद्धि होती है। हबल ने दूरी तथा वेगवृद्धि के अनुपात के नियतांक का जो मान निकाला वह १०० था । लेकिन १९२९ में हबल ने गैलेक्सियों की दूरियाँ जिस पद्धति से तय की थीं उसमें काफी त्रुटियाँ थीं। आज उन्हें अधिकतर दूर किया गया है।

आज अधिकाधिक दूर की मंदाकिनियों की दूरियाँ अधिक सटीकता से नापना संभव हुआ है। इस कारण हबल स्थिरांक में भी संशोधन होता रहा है। हाल तक उसे १०० कि.मी. /सेकंड / मेगा पारसेक (एक पारसेक= 3.08×10^{12} कि.मी. और मेगा= 10^6) लिया जाता था। पारसेक वह दूरी है, जहाँ से पृथ्वी की कक्षा का बृहत अक्षार्ध एक सेकंड के कोन पर दिखता है। इतनी दूरी पर स्थित तारे का वार्षिक लंबन अर्थात् सूर्य और पृथ्वी से तारे की दिशाओं के बीच का कोन एक सेकंड के बराबर होगा।

फिर उसका मान आधा कर दिया गया। बाद में फिर उसकी पूर्व कीमत फ्रांसीसी भौतिकविदों ने स्वीकार कर ली। यह उन्होंने मंदाकिनियों के प्रेक्षणों से प्राप्त विस्तृत आंकड़ों के आधार पर किया। इस तरह के संशोधन के कारण ‘ हबल स्थिरांक ‘ की कीमत के विषय में मतभेद उभरे।

लेकिन अंतिम रूप से उसका मूल्य 66.68 ± 0.86 कि.मी./सेकंड/प्रति मेगा पारसेक निश्चित किया गया है। इस स्थिरांक की कीमतें भले ही अलग-अलग आतीं हो लेकिन वे सब $66-68$ की मर्यादा में ही हैं।

कन्या तारका समूह का तारका विश्व हमसे लगभग 6.6 प्रकाशवर्ष दूर है और वह हमसे प्रति सेकंड 1200 कि.मी. गति से दूर भाग रहा है। तो उत्तर मुकुट तारका समूह का एक तारका विश्व 1.9 अरब वर्ष दूर है। और वह हमसे दूर भाग रहा है 22000 कि.मी./सेकंड गति से।

हबल स्थिरांक :-

हबल स्थिरांक हमें बताता है कि ब्रह्माण्ड कितनी तेजी से विस्तारित हो रहा है। इसकी कीमत मोटे तौर पर 60 कि.मी. प्रति सेकंड प्रति मेगापारसेक ली जाती है। लेते समय यह माना जाता है कि अंतरिक्ष में पिंड, एक दूसरे के साथ गुरुत्वाकर्षण से बंधे नहीं हैं।

जहां तक हमारे सौर मंडल का प्रश्न है, इस गति का माप बहुत छोटा है। इसे प्रत्यक्ष अनुभव करना असंभव है। पृथ्वी और सूर्य के बीच का अंतर लगभग 5×10^{-12} मेगा पारसेक है। इसका अर्थ हुआ ब्रह्माण्ड विस्तारित होने के कारण सूर्य और पृथ्वी के बीच दूर होने की गति लगभग 3×10^{-10} कि.मी. है। इसका स्तर नैनोमीटर का है।

ब्रह्माण्डीय पिंडों की दूरियों का मापन

प्रकाश वर्ष इस संकल्पना का प्रथम उल्लेख फ्रेड्रिक बेसेल ने 1838 में किया था।

ब्रह्माण्ड में कुछ विशेष तारों की पहचान की गयी है। उन्हें ' सेफीड व्हेरीएबल स्टार्स ' नाम दिया गया है। ये तारे बंधी-बंधाई गति से मद्धिम से तेज और फिर मद्धिम होते रहते हैं। एक करवट (Cycle) में कितना समय लगता है यह तारे की वास्तविक चमक पर निर्भर है। जितनी लम्बी करवट होगी उतनी अधिक तारे की चमक। इस तरह से किसी तारे की वास्तविक चमक और वह चमक जो हमें यहाँ पृथ्वी पर दिखाई देती है उनकी तुलना हमें, उस तारे की या वह जिसमें स्थित है उस मंदाकिनी की दूरी बता सकती है। पुराने जमाने के ज्योतिषी खगोल पर तारों की स्थिति के बारे में तो काफी कुछ गणनाएं कर लेते थे लेकिन ये तारे हमसे वास्तव में कितने दूर हैं, यह मनुष्य के लिए अज्ञात था।

सबसे पहले वर्ष १८८८ में आकाशगंगा के एक तारे सिग्नस ६१ की दूरी जानना संभव हुआ। यह तारा हमसे ११ प्रकाशवर्ष दूर है। उसके बाद लम्बन विधि (Parallax) से आकाशगंगा के करीबी तारों की दूरियाँ निकालीं गयीं। लेकिन यह विधि लगभग १०० प्रकाशवर्ष की दूरी निश्चित करने तक ही कारगर है। इससे अधिक दूरी का मापन इस विधि से संभव नहीं यह बात स्पष्ट हुई। बाद में दूरी मापन के लिए कई विधियाँ अन्वेषित की गयीं।

प्रसारी ब्रह्माण्ड

उपरोक्त जानकारी के आधार पर हम जिन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं, वे इस प्रकार हैं -

- १) ब्रह्माण्ड का निरन्तर विस्तार हो रहा है। हबल के प्रेक्षकों से प्रसारी ब्रह्माण्ड की धारणा का उदय हुआ। ब्रह्माण्ड में स्थित गैलेक्सियाँ एकदूसरे से दूर भाग रही हैं। उनके बीच का अंतराल फैल रहा है। ब्रह्माण्ड प्रसरणशील है।
- २) इससे उलट भूतकाल में लौटते-लौटते एक क्षण ऐसा भी आएगा जब विश्व का सारा द्रव्य (ऊर्जा) एक महापिंड में पूंजीभूत होना चाहिए। किसी कारण उस महापिंड में विस्फोट (Big Bang) हुआ और तब से विश्व का सतत विस्तार हो रहा है।
- ३) हबल स्थिरांक या फैलाव की रफ्तार के आधार पर यह जाना जा सकता है कि महाविस्फोट की वह घटना कितने पूर्व हुई या विश्व की आयु कितनी है।

ब्रह्माण्ड की आयु संबंधित अनुमान--

- १) १९७८ में सामान्य कालानुक्रमिकी विज्ञान के आधार पर तथा १९८२ में विंटर्स और मॅक्लीन ने न्यूक्लियो कालानुक्रमिकी के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष एक जैसे ही हैं। विश्व की आयु १४.५ अरब वर्ष है।
- २) जुलाई १९८७ में प्रो. हॉर्वे बूचर (नेदरलैंड) की घोषणा के अनुसार ब्रह्माण्ड की आयु ११ अरब वर्ष होनी चाहिए । यह गणना सूर्य एवं अन्य २० तारों से प्राप्त प्रकाश के विश्लेषण पर आधारित है।

ब्रह्माण्ड की आयु से जुड़ी विसंगति --

आम तौर पर कहे तो ब्रह्माण्ड की आयु का निर्धारण १५-२० अरब वर्ष किया गया है। साथ ही साथ हमारी आकाशगंगा में ही कुछ तारे १६ अरब साल पुराने पाए गये हैं। कुछ

मंदाकिनियां १२ अरब साल पुरानी पायी गयीं | लेकिन अंतरिक्ष में स्थापित हबल दूरबीन से जो कुछ तथ्य सामने आये हैं, उनसे ब्रह्माण्ड की उपरोक्त निर्धारित आयु संबंधी स्थापित मान्यता को बड़ा झटका लगा है। इस दूरबीन द्वारा एम्. १०० नामक गैलेक्सी में विद्यमान कुछ सैफीड (सैफियरी चरमकांति) तारों का अध्ययन किया गया। उसकी तुलना पुराने अध्ययनों से की गयी। ऐसा ध्यान में आया कि यह मंदाकिनी हमसे उतनी दूर नहीं जितनी कि पहले मानी गयी थी। नये अनुमान के अनुसार यह केवल ५.६ करोड़ प्रकाशवर्ष दूर है। फिर गणना करके हबल स्थिरांक की कीमत निकाली गयी। वह ८० कि.मी./सेकंड आयी। यह कीमत इस अध्ययन से पूर्व गृहित ली जा रही कीमत से ज्यादा आयी।

अब हबल स्थिरांक की कीमत जितनी ज्यादा होगी, विश्व की आयु उतनी ही कम आंकी जाएगी। हबल स्थिरांक में संशोधन का अर्थ हुआ ब्रह्माण्ड की आयु में तथा अंतरिक्ष दूरियों में संशोधन। या अंतरिक्ष दूरियों में संशोधन का अर्थ हुआ हबल स्थिरांक में संशोधन और विश्व की आयु में संशोधन।

हबल दूरबीन की निरीक्षण से यह अनुमान निकलता है कि गैलेक्सियाँ पूर्वानुमान से कई ज्यादा रफ्तार से एक दूसरे से दूर हट रही हैं। यानी ब्रह्माण्ड के फुलने की रफ्तार पहले के अनुमान से कई ज्यादा है। उसे विद्यमान अवस्था में पहुँचने, पूर्वानुमान से काफी कम समय लगा होगा। इस नए अनुमान के अनुसार आयु आती है केवल ७.५ अरब साल। इस ढंग के और निरीक्षणों के आधार पर वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुँचे कि विश्व की आयु ८ से १२ अरब साल ही होनी चाहिए।

यह कैसा संभव है कि हमें प्राप्त जानकारी के अनुसार तारे तो १६ अरब साल पुराने हैं, मंदाकिनियाँ अधिक से अधिक १२ अरब साल पुरानी और ब्रह्माण्ड की आयु केवल ८ से १२ अरब साल। तो वास्तविकता क्या है ? अगर विश्व की आयु ८ अरब साल ही निश्चित हुई तो महाविस्फोट सिद्धांत के सामने एक बड़ा प्रश्नचिन्ह खड़ा हो जाएगा। हो सकता है हबल स्थिरांक में आगे और सुधार की आवश्यकता अनुभव हो। या यह विसंगति हमें ब्रह्माण्ड के किसी अब तक अज्ञात लेकिन बड़े विस्मयकारी तथ्य की ओर ले जाए।

- हबल ने १९३१ में दिए गणितीय सूत्र के अनुसार दीर्घिका की गति = अंतर×हबल स्थिरांक

अतः अंतर/दीर्घिका की गति = १/ हबल स्थिरांक ; गति = अंतर / काल ; काल=अंतर/दी. की गति (यहाँ काल अर्थात् विश्व की आयु)। अतः विश्व की आयु = १/ हबल स्थिरांक।

लेकिन हबल स्थिरांक के विषय में आम सहमति नहीं है। वास्तव अर्थ में यह स्थिरांक नहीं है। विश्व की आयु और प्रसरण के अनुसार उसका मूल्य बदलता रहता है। गति के डेरिवेटिव, त्वरण को ध्यान में लेना भी आवश्यक है। उसके अनुसार गणित भी बदल जाएगा।

आज आयु का मूल्य लिया जा रहा है -- $13,799 \pm 0.021$ अरब साल।

अज्ञात बल --

ऊपर उल्लेखित पहली को सुलझाने के लिए जो संभावनाएं हैं उनमें, किसी अज्ञात बल के अस्तित्व को मान्यता यह भी एक है। इस बल के कारण विश्व की आयु वास्तविकता से कम प्रतीत होती हो। यह कल्पना उपरोक्त विरोधाभासी निष्कर्षों के बाद उभरी ऐसी बात नहीं। इससे पहले भी ऐसी कल्पनाएं की गयी हैं। आइन्स्टाइन ने स्वयं एक प्रति- गुरुत्वाकर्षण बल की कल्पना की थी। लेकिन बाद में उन्होंने ही इसे अपना एक गलत विचार घोषित किया था। लेकिन हो सकता है उनका यह विचार सही हो।

अज्ञात पदार्थ या द्रव्यमान --

१) अदृश्य द्रव्यमान का विचार १९३३ में ही उभरा था। तीस के दशक में वैज्ञानिक फ्रिट्स ज्विकी ने, बहुत तेजी से एकदूसरी का चक्कर लगाती हुई मंदाकिनियों का अध्ययन किया था। उन्होंने यह संभावना व्यक्त की थी कि कोई अज्ञात पदार्थ इन्हें अपने गुरुत्व बल से रोक रहा है। वरना इतनी गति से घूमने पर ये अभी तक अंतरिक्ष में गुम हो गयी होतीं। लेकिन अरबों सालों से वे बनी हुई हैं। इसका अर्थ है कुछ अधिक द्रव्यमान है जो दिखता नहीं, लेकिन गुरुत्व बल प्रदान करता है।

२) मंदाकिनी पुंज का द्रव्यमान दो रीतियों से निर्धारित किया जा सकता है -

- a) प्रदीप्ति निर्धारण : पुंज का द्रव्यमान जितना ही अधिक होगा उसकी दीप्ति भी उतनी ही अधिक होगी।
- b) गुरुत्वाकर्षण नियम पर आधारित : पुंजों में मंदाकिनियों की पारस्परिक गति के प्रेक्षण से।

एक ही पुंज का द्रव्यमान उपरोक्त दोनों पद्धतियों से निकालने पर परिणाम एकदम भिन्न आते हैं। गुरुत्वाकर्षण नियम पर आधारित गणना से प्राप्त द्रव्यमान प्रथम पद्धति से प्राप्त द्रव्यमान से कई गुना अधिक आता है। इसकी यही व्याख्या की जा सकती है कि पुंजों में

प्रदीप्तिहीन पिंड भी हैं, जो द्रव्यमान तो बढ़ाते हैं लेकिन दीप्ति में वृद्धि नहीं करते। इसे ' डार्क मैटर ' (कृष्ण पदार्थ) नाम दिया गया है और द्रव्यमान को ' गुप्त द्रव्यमान '।
तो फिर इस द्रव्यमान की प्रकृति क्या है ?

- c) जब कोई पिंड किसी केंद्र के गिर्द घूमता है तब उस पिंड पर उसके परिक्रमा गति के कारण अभिकेन्द्री बल (Centripetal force) कार्य करने लगता है। यह बल केंद्र से बहिर्गत दिशा में कार्य करता है। सूर्य की परिक्रमागत पृथ्वी का यही बल पृथ्वी को अपनी ओर खींचने वाले सूर्य के गुरुत्वाकर्षण बल को संतुलित करता है और पृथ्वी नियत कक्षा में परिक्रमा करती रहती है। सूर्य में जाकर मिलती नहीं।

एडविन हबल का 'ताम्रसृति विस्थापन ' हमें परिक्रमागत पिंडों का वेग जानने में मदद करता है। उस बल को संतुलित करने के लिए आवश्यक गुरुत्वाकर्षण बल उत्पन्न करने के लिए द्रव्य की आवश्यक मात्रा भी, गणना के द्वारा जानी जा सकती है। इन सारी गणनाओं के पश्चात ऐसा दिखाई दिया कि सारे विशाल पिंडों के अभिकेन्द्री बलों को संतुलित करने के लिए पदार्थ की जितनी मात्रा आवश्यक है वह दृश्य पदार्थ की मात्रा से कई गुना अधिक है। यानि दृश्य पदार्थ से अधिक भी कोई पदार्थ है। वह दिख नहीं रहा इसलिए उसे अदृश्य कहा गया है।

- d) हम ऐसा कहते हैं की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण इस विशाल शून्य के भीतर मंदाकिनियाँ आदि पिंड बने। लेकिन ऐसा अनुमान करने के लिए कारण है कि एकदम शुरू में विस्फोटित हुए और भयंकर त्वरण के साथ चल निकले द्रव्य को इस तरह संघटित होने के लिए भी, विद्यमान पदार्थ का गुरुत्वाकर्षण पर्याप्त नहीं था।
अतिरिक्त द्रव्य और उसके बल की आवश्यकता थी।

अज्ञात द्रव्यमान और ब्रह्माण्ड की आयु--

मान लीजिये अज्ञात पदार्थ, ज्ञात पदार्थ से अधिक होगा तो यह ज्ञात अंतरिक्ष के फैलाव में रुकावट पैदा करेगा। महाविस्फोट के बाद शुरू में फैलाव तेजी से हुआ होगा। लेकिन बाद में इस अज्ञात पदार्थ के दबाव के कारण इसके फैलने की गति कम होती रही होगी। यही बात हमें इस रूप में मिलती है कि जो मंदाकिनी हमसे जितनी दूर वह हमसे उतनी ही तेजी से दूर भाग रही है क्योंकि जो मंदाकिनी हमसे अरबों प्रकाशवर्ष दूर है उसे हम उसी अनुपात में महाविस्फोट के त्वरित समय में देखते हैं। इस आधार पर ब्रह्माण्ड की प्राप्त, काफी कम उम्र का स्पष्टीकरण

मिल सकता है। दूसरी तरफ यदि यह मान लें कि अज्ञात पदार्थ की मात्रा ज्ञात पदार्थ से काफी कम है तो ब्रह्माण्ड की आयु बारह अरब वर्ष आंकी जा सकती है। या इसमें और भी सुधार हो सकता है, उस कमी की मात्रा के आधार पर।

मंदित प्रसरण और त्वरणशील प्रसरण -

- १) प्रसरण के आरंभ में द्रव्यमानों का पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण अधिक प्रबल होता है, जो प्रसरण को मंदित करता है।
- २) प्रसरण के साथ गुरुत्वाकर्षण क्षीण होने लगता है। अंतरिक्षी विकर्षण प्रबल होने लगता है।
- ३) एक ऐसी स्थिति संभव है जब आकर्षण और विकर्षण एकदूसरे को संतुलित करते हों।
- ४) फिर गुरुत्वाकर्षण उससे क्षीण होने लगता है। तब मंदनशील प्रसरण की जगह त्वरणशील प्रसरण शुरू हो जाता है।

आज हमें निरीक्षण से जो परिणाम मिलते हैं उससे यह निश्चित हो जाता है कि हम त्वरणशील प्रसरण युग में हैं। लेकिन इसका अर्थ यह भी हुआ कि जैसे-जैसे हम अतीत में पीछे-पीछे जाएंगे प्रसरण धीमा होता जाएगा। अर्थात् आज के निरीक्षणों के आधार पर विश्व के आयु की जो कीमत मिलेगी वह ज्यादा भी हो सकती है।

पायोनियर विसंगति -

यह खगोल विज्ञान का उलझनपूर्ण रहस्य है। सुदूर अंतरिक्ष में अज्ञात बलों के कारण, चलते अंतरिक्षयान की गति धीमी हो जाती है। १९७२ और १९७३ में नासा द्वारा पायोनियर 10 और 11 छोड़े गये थे। इन्होंने शुक्र से लेकर तो शनि ग्रह तक के चित्र और डाटा भेजा। २७०० मील / घंटा की रफ्तार से चल रहे यानों के द्वारा भेजे जा रहे टेलीमीटरी डाटा में विसंगति देखने मिली। यह बात १९८० के दरम्यान ध्यान में आयी। एक स्थिर दर से यानों की गति धीमी होने लगी। पसादेना कैलिफोर्निया स्थित प्रोपल्शन लैब के जॉन अँडरसन और साथियों का अनुमान है कि यह मंदन प्रति वर्ष अपनी हिसाबी स्थिति से ८००० मील है। इसे स्पष्ट करने के लिए कई सिद्धांत उभरे।

आकाशगंगा तश्तरी में स्पंदन--

श्री लिओ ब्लिट्ज, कैलिफोर्निया युनिवर्सिटी में खगोलशास्त्र के प्रोफेसर हैं। उन्होंने तथा मार्टिन वेइंगबर्ग और अन्य साथियों ने, हमारी आकाशगंगा की तश्तरी में कुछ ऐंठन दर्ज की है। उनके अनुसार इसका कारण आकाशगंगा में परमाणुरूप हैड्रोजन के विचरण कर रहे बादलों (इन्हें हम उप आकाशगंगा भी कह सकते हैं। अंग्रेज़ी में इन्हें Magellanic Clouds कहा जाता है) की आकाशगंगा में स्थित कृष्ण पदार्थ से होने वाली क्रिया-प्रतिक्रिया है। इस आपसी क्रिया के कारण आकाशगंगा की तश्तरी में ड्रम के स्पंदनों की तरह स्पंदन उत्पन्न हुए हैं। वायु तश्तरी में ये स्पंदन हो रहे हैं। केवल ये बादल अपनी हलचल के बुते, तश्तरी में इस तरह के स्पंदन उत्पन्न नहीं कर सकते चूंकि उनका द्रव्यमान आकाशगंगा के द्रव्यमान की तुलना में बहुत कम याने अंदाज़न २ % है। इतना कम द्रव्यमान, उस तश्तरी को जिसकी आकाशगंगा का द्रव्यमान २०० अरब सूर्यों के बराबर है और परिक्रमा का कालावधि १.५ अरब साल है, प्रभावित नहीं कर सकता। उनके अनुसार आकाशगंगा के दृश्य वस्तुमान की तुलना में अदृश्य वस्तुमान २० गुना अधिक होना चाहिए।

क्या हम ब्रह्माण्ड के केंद्र में हैं ?

हम निश्चित तौर पर जानते हैं कि हम प्रसारमान महामंडाकिनी में जी रहे हैं। हमारे चारों ओर की मंडाकिनियां हमसे दूर भागती जा रही हैं । इस तरह ऐसा लगता है, हम प्रसारण के केंद्र में बैठे हैं, जो एक अचल बिंदु है। लेकिन यह प्रतीति गलत है। श्री. अ. जेल्मानोव्ह ने एक उदा. दिया है -

मान लें कि बिल्कुल सीधी सड़क पर किसी स्थान से एकसाथ बहुत सारी गाड़ियां चल पड़ी हैं, एक ही दिशा में लेकिन भिन्न गतियों से। स्पष्ट है कुछ समय बाद उनकी पारस्परिक स्थितियां उनके वेगों के अनुरूप हो जाएंगी। जो तेज होगी वह आगे बढ़ जाएगी। जो धीमी होगी वह पीछे रह जाएगी। अब हर गाड़ी अपनी पिछली गाड़ी से अधिक तेज चलेगी। अब कल्पना करें कि किसी भी बीच की गाड़ी पर एक प्रेक्षक बैठा है और बाकी गाड़ियों को देखता है, आगे की भी और पीछे की भी। उसे प्रतीत होगा कि मोटरों की लड़ी के प्रसारण के केंद्र में वही बैठा है। आगे की मोटरें उसे और आगे भागतीं नजर आएंगी क्योंकि उनका वेग उससे अधिक है। पीछे की भी दूर होती दिखेंगी चूंकि उसका अपना वेग उनसे अधिक है। ठीक इसी तरह महामंडाकिनी में भी लाल स्थानांतरण सिर्फ इस बात का साक्षी है कि मंडाकिनियों के बीच में दूरियां बढ़ रही हैं न कि प्रसारण केंद्र में हमारी स्थिति का।

वास्तविक स्थिति का अनुमान एक फुलते गुब्बारे की ब्रह्माण्ड से तुलना करके लगाया जा सकता है। हम यदि गुब्बारे पर छोटे-छोटे बिंदु अंकित करें, तो जैसे-जैसे गुब्बारा फुलाया जाएगा, वैसे-वैसे ये बिंदु एक दूसरे से दूर होते जाएंगे। लेकिन किसी एक बिंदु को हम केंद्र नहीं मान सकते। सभी बिंदुओं का महत्व समान है।

तारों की वार्धक्यावस्था

नाभिकीय संगलन प्रक्रिया के माध्यम से तारा करोड़ों, अरबों वर्षों का सुस्थिर जीवन प्राप्त कर लेता है। लेकिन ऊर्जा का यह स्रोत कभी तो समाप्त होना ही है। इस समाप्ति के बाद तारे की नियति क्या होगी ?

अर्थात् तारे का स्थिर जीवन कितना होगा यह उसकी संहति (वस्तुमान) पर निर्भर है। तारे का द्रव्यमान जितना अधिक उतना गुरुत्वीय निःपात अधिक। गुरुत्वीय बल अधिक तो उसे संतुलित करने वाला आवश्यक बल अधिक। इसे पैदा करने ऊर्जा की खपत अधिक।

१) सूर्य जैसे तारे का जीवनकाल ---१० अरब वर्षों से अधिक।

२) सूर्य से १० गुना द्रव्यमान-आयु ३०-८० लाख वर्ष।

३) सूर्य से आधे द्रव्यमान वाला तारा -१०० अरब वर्ष।

इसका अर्थ यह हुआ कि प्रथम पीढ़ी के ऐसे ही तारों को जिनका द्रव्यमान सूर्य से कम हैं, आज देखा जा सकता है।

विश्रान्त प्रक्रिया(Relaxation) : यह वह प्रक्रिया है जिसमें कोई भौतिक प्रणाली स्थिर, संतुलन की अवस्था को प्राप्त होती है।

आर. एच. फाउलर-

इस वैज्ञानिक ने अपने अन्वेषण द्वारा यह स्थापित कर लिया था कि यदि किसी तारे में आंतरिक ऊर्जा का यथोचित दबाव न हो तो वह सिकुड़ने लगेगा और सिकुड़न तबतक जारी रहेगी जबतक कि एक नये ढंग का दबाव उसे रोक न ले। इस दबाव को ' क्वांटम डिजनरसी दबाव ' नाम दिया गया या ' क्वांटम अपकृष्टता दबाव '। लेकिन उनके अनुसार बौने श्वेत तारों की स्थिति में पहुँचे ऐसे पिंड की संहति कितनी भी हो सकती है।

पावली के नियम के अनुसार किसी भी निश्चित आयतन में इलेक्ट्रॉन पैकिंग या ठूँसे होने की एक सीमा होती है। इस सीमा पर पहुँचते ही कहा जाता है कि इलेक्ट्रॉन्स डिजनरेट

अवस्था में पहुँच गए। डिजनरेटेड पदार्थ में उत्पन्न दबाव ही तारे के निरंतर सिकुड़ने को प्रतिरोध करता है, उसपर प्रतिबंध लगाता है।

जब तारा अपने ही गुरुत्वीय आकुंचन के अंतर्गत घना होता है तो उसके द्रव्य में एक विशेष ढंग का प्रत्यास्थापन (Elasticity) पैदा होता है। यह कणों के, तापीय गतिविधि अंतर्गत तापमान और दबाव के कारण होने वाले इसी तरह के गुण से संबंधित नहीं होता। परम शून्य तापमान पर भी यह प्रत्यास्थापन द्रव्य में उपस्थित रहता है। वह तापीय गतिविधि से संबंधित नहीं होता। ऐसी स्थिति में कण, क्वांटम यांत्रिकी के नियम के प्रभाव में रहते हैं और कणों के माध्यम से आवश्यक, परिणामकारक दबाव की निर्मिति होती है। ऐसी स्थिति में वायु को डिजनरेटेड वायु कहते हैं। जब घनता बढ़ती है तो कम द्रव्यमान के कण डिजनरेटेड अवस्था में पहले पहुँचते हैं। इलेक्ट्रॉन्स और नाभिक के मिश्रण में पहले इलेक्ट्रॉन्स डिजनरेटेड अवस्था में पहुँचते हैं। ज्यादा की प्रत्यास्थापन उत्पन्न होता है। यही आकुंचन क्रिया को विरोध करने लगता है। क्वांटम डिजनरेसी दबाव तब उत्पन्न होता है जब तारे में उपस्थित इलेक्ट्रॉन्स इतने ठसाठस पँक हो जाते हैं कि स्थूल विश्व के नियमों के स्थान पर क्वांटम यांत्रिकी के नियम उनपर लागू होते हैं।

चंद्रशेखर सुब्रमण्यन

लेकिन उपरोक्त विश्लेषण की खामी की ओर जिस व्यक्ति का सर्वप्रथम ध्यान गया वह व्यक्ति थे चंद्रशेखर सुब्रमण्यन । इलेक्ट्रॉन्स को निर्धारित सीमा तक पँक करते चले जाने से उनका ऊर्जा स्तर बढ़ने लगता है। गति बढ़ने लगती है। पर्याप्त उच्च ऊर्जा वाले इलेक्ट्रॉन्स की गति प्रकाश गति के बराबर हो सकती है। याने इलेक्ट्रॉन्स सामान्य स्थिति के स्थान पर सापेक्ष अवस्था में पहुँच जाते हैं। अर्थात् उनपर लागू होने वाले नियम बदल जाते हैं। ठसाठस पँक होने के बारे में भी यही बात लागू होती है। इसे ' सापेक्षतापूर्ण डिजनरेसी ' कहना होगा। काफी कम संहति वाले तारों में इन बदले हुए नियमों के अंतर्गत भी डिजनरेसी अवस्था प्राप्त हो जाती है। लेकिन बहुत विशाल तारों का आंतरिक तापमान इतना अधिक होता है कि

सिकुडकर घने से घना होने के बाद भी डिजनरेसी सीमा कभी नहीं आती। चंद्रशेखर के अनुसार इस संदर्भ में संहति की एक निर्णायक सीमा होती है। इस सीमा से कम द्रव्यमान वाले तारों में तो एक संतुलित स्थिति बन जाती है। लेकिन इस सीमा से बड़े तारे में यह संतुलन कभी स्थापित नहीं हो पाता।

‘ चंद्रशेखर सीमा ’

तारे के द्रव्यमान की यह निर्णायक सीमा ही “ चंद्रशेखर सीमा ” है। यह सीमा सूर्य के द्रव्यमान के १.४४ गुना है। इसका प्रतिपादन १९३० में किया गया था। लेकिन चंद्रशेखर के इस प्रतिपादन को मान्यता मिलने कई वर्ष लगे। क्योंकि स्वयं एडिंग्टन ने कहा कि सापेक्षकीय डिजनरेसी एक अनावश्यक विचार है।

एडिंग्टन का युक्तिवाद-

- १) अत्याधिक दबाव के कारण श्वेतबटु तारे के अंतर्भाग में अति उच्च उष्मीय ऊर्जा होनी चाहिए।
 - २) इस कारण इलेक्ट्रॉन्स को अत्युच्च गति प्राप्त होती होगी।
 - ३) उसी तरह इलेक्ट्रॉन्स बहुत ही छोटे आयतन में बंद होने के कारण उनके बीच अपकर्षण का तीव्र बल उत्पन्न होता होगा। वही गुरुत्वाकर्षण को संतुलन में रखता होगा।
 - ४) श्वेतबटु ठंडा होने लगा कि अंतर्गत दबाव कम होकर अंदरूनी तापमान में भी कमी आकर साथ ही इलेक्ट्रॉन्स की गति भी कम होती होगी। बाह्य स्तर श्वेतबटु का आयतन और कम करते होंगे।
- इस तरह श्वेतबटु ठंडा और लघु रूप धारण करता होगा। लेकिन इस प्रक्रिया का अंत कहा ? क्या उसने एक बिंदु रूप धारण करने तक यह प्रक्रिया चलती रहेगी ? लेकिन तारे की यह अंतिम अवस्था स्वीकार करने एडिंग्टन तैयार नहीं थे।

संक्षेप में तारे का प्रथम आकुंचन होगा, बाद में वह विस्तारित होगा। अंतिम अवस्था में उसकी घनता प्रस्तर इतनी होगी और अंतर्गत औष्णिक ऊर्जा से वह स्थिर होगा। अति शीत होने पर उष्मीय ऊर्जा से नहीं तो प्रस्तर जैसे कठिन पदार्थ के कणों में जिस तरह का आकर्षण होता है उस तरह से श्वेतबटु स्थिर होगा। ऐसा एडिंग्टन का विचार था। पत्थर की घनता प्रति घन से.

मी. कुछ ग्राम होती है। लेकिन यहाँ तो उसकी घनता १०००० गुना अधिक आ रही थी। यह इस विश्लेषण में विरोधाभास था। एडिंग्टन की किताब “ Mystery of white dwarf ” के एक प्रकरण में एडिंग्टन ने ही कहा था कि सायरस B का व्यास ३७५६० कि.मी. और वस्तुमान सूर्य के ८५ % होना चाहिए। अर्थात् घनत्व होगा ६१००० ग्रॅम। लेकिन उनके अनुसार ऐसा निष्कर्ष निकालना बेहूदगी है। उस समय प्रस्तर से अधिक घनत्व वाली वस्तु से मनुष्य परिचित ही नहीं था।

रॉल्फ फाउलर -

इस विरोधाभास को दूर करने का प्रयत्न सर्वप्रथम फाउलर ने किया। १९२६ में उनका शोध प्रबंध ‘ ऑन डेन्स मॅटर ’ प्रसिद्ध हुआ। उसके प्रतिपादन के अनुसार -

- १) श्वेतबटु के स्वरूप का विवेचन करते समय पारंपरिक भौतिकी के नियम अधूरे हैं।
- २) नवोदित क्वांटम यांत्रिकी के नियमों का सहारा लेकर इस समस्या पर सोचना चाहिए।
- ३) पारंपरिक नियम के अनुसार उष्मीय ऊर्जा श्वेतबटु के गुरुत्वाकर्षण को संतुलन में रखती है यह सोच ही गलत है।
- ४) क्वांटम यांत्रिकी के नियमों के अनुसार अति घन वस्तु में पैदा होने वाला इलेक्ट्रॉन्स का अपकृष्ट दबाव (Degeneracy Pressure), इस संतुलन के लिए उत्तरदायी है। वही उसे हमेशा स्थिर रखेगा।
- ५) श्वेतबटु ठंडा होने के बाद उसका दोबारा प्रसरण होना नहीं है।

चंद्रशेखर मर्यादा-

तारे का आण्विक इंधन समाप्त होने पर, अपने ही गुरुत्वाकर्षण के कारण उसका आकुंचन होने लगता है। उसके बाद उसका बाह्य आवरण अंतरिक्ष में बिखर जाता है। लगभग एक करोड़ से अधिक तापमान वाला अति उष्ण गर्भ हिस्सा पीछे छुटता है। इस गर्भ हिस्से को ‘ श्वेतबटु तारा ’ कहते हैं। इस तारे की घनता पानी की घनता की तुलना में लाखों गुना होती है। इस प्रचंड घनत्व के कारण श्वेतबटु तारे के अणु केंद्रक और इलेक्ट्रॉन्स अति पास आए हुए रहते हैं। लेकिन इलेक्ट्रॉन्स पैदा कर रहे एक खास तरह के दबाव के कारण अणु केंद्र और इलेक्ट्रॉन्स एक दूसरे में जाकर नहीं मिलते।

१९३० तक ऐसा समझा जाता था कि सभी तारों का अंत ‘ श्वेतबटु ’ तारे में ही होता है। फाउलर और एडिंग्टन दोनों के अनुसार तारे की संहति कितनी भी हो उसे अंतिम संतुलन बनाने में कोई दिक्कत नहीं होगी।

लेकिन केंब्रिज विद्यापीठ में शोधकार्य करने वाले सुब्रह्मण्यन चंद्रशेखर ने यह दिखा दिया कि तारे के गर्भ केंद्र का द्रव्यमान अगर एक निश्चित मर्यादा से अधिक होगा तो उसके अणु केंद्र और इलेक्ट्रॉन्स अलग-अलग नहीं रह सकते चूंकि ऐसे तारे के केंद्रक की घनता इतनी अधिक होती है कि उसके द्वारा उत्पन्न आकुंचन के दबाव को इलेक्ट्रॉन्स पैदा कर रहा दबाव कम पड़ता है और वह अणु केंद्र और इलेक्ट्रॉन्स को अलग रखने में सफल नहीं होगा। इस खोज के निष्कर्ष उन्होंने १९३१ में एस्ट्रोफिजिकल जर्नल में प्रकाशित किए। इस श्वेतबटु तारे का वस्तुमान अधिक से अधिक सूर्य के वस्तुमान के १.४४ गुना ही हो सकता है, यह उन्होंने दिखाया। श्वेतबटु तारे के वस्तुमान के इस महत्तम मर्यादा को ही 'चंद्रशेखर मर्यादा' कहते हैं। उनके अनुसार यह वस्तुमान इस मर्यादा से अधिक होगा तो तारे का भविष्य कुछ अलग होगा। वह श्वेतबटु नहीं रहेगा। वैसे भी इस मर्यादा से अधिक वस्तुमान वाला श्वेतबटु अभी तक नहीं मिला है।

चंद्रशेखर जी की जीवनी -

इनका जन्म १९ अक्टूबर १९१० को लाहौर में हुआ था। वे, नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले प्रथम भारतीय वैज्ञानिक, सी.व्ही. रमण के भतीजे थे। वे जीवनभर शिकॅगो विश्वविद्यालय से संबद्ध रहे। उन्हें, उनके खगोल भौतिकी के क्षेत्र में किये कार्य के लिए १९८३ में नोबेल पुरस्कार दिया गया। २१ अगस्त १९९५ को शिकागो में उनका निधन हुआ। अस्सी के दशक में ही उन्होंने 'कृष्ण विवर का गणितीय सिद्धान्त' नामक पुस्तक लिखी थी। १९५२ से १९७१ तक वे एस्ट्रोफिजिकल जर्नल के संपादक भी रहे। अनुसंधान के लिए उनके गाईड थे फाउलर। चंद्रशेखर मर्यादा की प्रस्तुति 11-1-1935 को की गयी थी।

लेव डेविडोविच लैन्दाऊ - (Lew Davudovich Landau)--

ऐसी ही खोज लगभग इसी समय उपरोक्त रूसी वैज्ञानिक ने की थी। महाकाय तारों की अंतिम नियति के लिए उपरोक्त क्रांतिक सीमा के गंभीर अर्थ थे। यदि किसी तारे का द्रव्यमान चंद्रशेखर सीमा से कम है तो तारा अपना सिकुड़ना बंद कर सकता है और अपनी संभावित अंतिम स्थिति के रूप में, एक श्वेत वामन (White Dwarf) के रूप में स्थिरता प्राप्त कर सकता है। इसकी त्रिज्या केवल कुछ हजार कि.मी. होगी तथा घनत्व सैकड़ों टन प्रति घन से. मी. होगा।

यहाँ अपवर्जन सिद्धांत के अनुसार इसके पदार्थ में, इलेक्ट्रॉनों के बीच प्रतिकर्षण द्वारा अवलंबन दिया जाता है। लैदाऊ ने यह स्पष्ट किया कि सूर्य के द्रव्यमान से लगभग एक या दो गुना अधिक द्रव्यमान वाले, परंतु श्वेत वामन से भी काफी छोटे तारे के लिए एक और संभावित स्थिति है। ये तारे अपवर्जन सिद्धांत के अनुसार, बजाय इलेक्ट्रॉनों के बीच प्रतिकर्षण के, न्यूट्रॉनों और प्रोटॉनों के बीच प्रतिकर्षण से अवलम्बन प्राप्त करेंगे। इसी कारण आगे इन्हें न्यूट्रॉन तारों का नाम दिया गया। इनमें इलेक्ट्रॉन्स का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता।

रॉबर्ट ओपनहाइमर-

इन्होंने १९३९ में यह सिद्ध किया कि अपने ही गुरुत्वाकर्षण के कारण, तारे के लगातार गुरुत्व निःपात के लिए तारे का वस्तुमान सूर्य से तीन गुना या उससे अधिक होना चाहिए। यह कल्पना आगे कृष्ण विवर की ओर ले गयी।

(तारों के जीवन का अंतिम पड़ाव)

लाल दानव तारा

कई अरब सालों बाद, सामान्य तारे के केंद्र भाग का अधिकतर इंधन हैड्रोजन, हिलीयम में बदल जाता है। हिलीयम को हम हैड्रोजन की राख कह सकते हैं। केंद्र भाग की गुठली का द्रव्यमान (जो पूरी तरह हिलीयम का बना होता है), समुचे तारे के द्रव्यमान के १२ % होने तक, केंद्र भाग के पास के बाहरी घेरे में ऊर्जा उत्पादन जारी रहता है। इस ऊर्जा उत्पत्ति के साथ बाहरी परतों का तापमान बढ़ता है। उससे तारे की बाहरी परतें हजार गुना तक विस्तारित हो जाती हैं। इस स्थिति को ' लाल दानव तारा ' (Red Gaint) नाम दिया गया है। पांच अरब साल बाद हमारा सूर्य भी इसी अवस्था में पहुँच जाएगा। शुक्र, पृथ्वी, मंगल तक को अपने में समेट लेगा। आकार बढ़ने के कारण सतह का तापमान कम होने लगता है और रंग भी नीले से लाल हो जाता है। जहाँ तारे का मुख्य जीवन काल अरबों वर्षों का होता है, वही दानव रूप में वह उसका हजारवां हिस्सा भी नहीं होता। इसी कारण दानव तारे इतने कम दिखाई देते हैं।

आगे की अवस्था :

श्वेत वामन तारा -

लाल दानव तारे में उल्लेखित १२ % की सीमा को लांघते ही तारे का केंद्र भाग फिर एक बार सिकुड़ने लगता है। यह सब भयंकर हलचल (Terrible Violence) के साथ क्षण भर में हो जाता है। हिलीयम के नाभिकों का आगे संगलन होकर और भारी मूलद्रव्यों का निर्माण होता है। और अधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है। तारे का मानो अन्तर्वर्ति पतन होता है। (The Star Cool Down and eventually collapses . It will end up in a small comparatively cool object)। उसके द्रव्यमान का उसके केंद्र भाग में तेजी से पतन हो जाता है। केंद्र भाग घना हो जाता है। किसी क्षण इस गुरुत्वाकर्षण का उद्रेक होता है (Gravitational Collapse)। गुरुत्वीय निःपात में वह तारा मानो अपना ही वस्तुमान बहुत ही छोटे आकार में सिमट लेता है।

लाल दानव तारे के प्रसारित और फुले हुए आवरण की जो बात कही गयी है, वह आवरण क्रमशः इस गुठली से अलग हो जाता है । वह और विस्तारित होते हुए विरल होते जाता है। या तारे में छोटे-छोटे विस्फोट होकर उससे तप्त गॅस बाहर निकल पड़ती है। तारे की संहति घटती जाती है। लेकिन गर्भभाग का संकुचन एक मर्यादा तक होता है और आगे इलेक्ट्रॉन्स का दबाव सिकुड़न की इस प्रक्रिया को रोक देता है। तारा बौना होकर जिस अवस्था में पहुँच जाता है उसे ' श्वेत वामन तारा ' (White Dwarf) कहते हैं। इस अवस्था में उसके अंतरंग में नाभिकीय क्रियाएं नहीं चलतीं।

ऐसा तारा लगभग हमारी पृथ्वी के आकार का होगा। द्रव्य लगभग सूर्य के द्रव्य इतना ही होगा। अर्थात् यहां द्रव्य की सघनता होगी एक टन प्रति घन से.मी.। एक चम्मच द्रव्य का भार हाथी के बराबर होगा। यहां पदार्थ के परमाणुओं से इलेक्ट्रॉन्स भगाए हुए हैं (STRIPPED OFF)। मानो सभी अणु केंद्र इलेक्ट्रॉन्स के सागर में डूबे हुए हैं। वैज्ञानिकों का मत है कि हमारा सूर्य भी अन्त में श्वेत बौना तारा ही बनेगा। उसका अर्ध व्यास होगा लगभग २०००० कि.मी.। आकाश के सर्वाधिक चमकीले ' व्याध ' नक्षत्र का साथी एक श्वेत बटु तारा ही है। इस गर्भभाग(Core) में तापमान १०-१५ करोड़ केल्विन होने पर हिलीयम जलने लगता है और नाभिकीय प्रक्रिया से कार्बन अणु बनते हैं। मुक्त हुई ऊर्जा तापमान और बढ़ाती है। दीप्ति और बढ़ जाती है। लेकिन साथ-साथ उत्सर्जन का क्षेत्र बहुत कम होने के कारण या आकार बहुत छोटा होने के कारण तापमान उच्च होने पर भी हमें मंद ज्योति ही दिखती है। यह प्रकाश उत्सर्जित करते-करते ठंडा हो जाता है। श्वेतबटु तारा यह वास्तविक ऊर्जा स्रोत विरहित तारा है। यह सूर्य की तुलना में धुंधला दिखता है। कुछ लाख वर्षों के बाद यह अपनी समस्त ऊर्जा चुकाकर लुप्त

हो जाता है। श्वेत बौना ' कृष्ण बौने ' में रूपांतरित हो जाता है। यही उसकी अंतिम अवस्था है। या हम कह सकते हैं, ऐसा तारा जिसमें गुरुत्वाकर्षण को डिजनरेटेड इलेक्ट्रॉन्स के क्वांटम यांत्रिकी दबाव ने संतुलित किया हो, श्वेत वामन तारा है। तारे का ठंडा होना इलेक्ट्रॉन्स के उपरोक्त दबाव पर कोई असर नहीं करता।

हमने इतना सारा वर्णन किया लेकिन यह उसी तारे पर लागू होता है, जिसकी विस्फोट के बाद बची द्रव्यराशि सूर्य के द्रव्यमान से १.२ गुना से अधिक नहीं है। यहां स्पष्ट है कि तारों का द्रव्य मापन करने के लिए मानक के तौर पर सूर्य के भार को लिया गया है। निरीक्षणों और गणना के आधार पर सूर्य का भार निश्चित किया गया है 2×10^{30} किलो। चंद्रशेखर जी ने बताया कि किसी तारे का अंत कैसा होगा यह इसपर निर्भर है कि तारे की अंतिम अवस्था में द्रव्यराशि कितनी है। चंद्रशेखर मर्यादा का महत्व इतना अधिक है कि ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इसीने खगोल भौतिकी के क्षेत्र की आज की प्रमुख उपलब्धियों के लिए द्वार खोल दिये। डॉ. चंद्रशेखर ने तारों के अध्ययन के लिए क्वांटम यांत्रिकी का उपयोग किया था।

अतिनव तारा या सुपरनोवा

' लाल दानव तारे ' से ' श्वेत वामन तारे ' की स्थिति में पहुँचते हुए, बाहरी आवरण कोर से अलग होता है, यह हमने देखा। लेकिन तारे की द्रव्यराशि अगर चंद्रशेखर सीमा से अधिक हो तो उसका सिकुड़ना वामन अवस्था से भी आगे जारी रहेगा। जो भी द्रव्य है उसका दबाव और तापमान इतना बढ़ जाता है, नाभिकीय क्रियाओं की गति भी इतनी तेज हो जाती है कि बाहरी आवरण शांति से अलग होने के स्थान पर एक बिंदु पर महाविस्फोट का रूप ले लेता है और बाहरी कवच अलग फेंक दिया जाता है। यही ' सुपरनोवा ' है। अंदर बचता है अत्यंत तप्त छोटा सा गोला। कुछ सुपरनोवा में तारा पूर्णतः विस्फोटित होता है। अर्थात् यह तारे की मौत है। इसमें तारे की कांति एकाएक अंदाजन १० करोड़ सूर्य के बराबर, इतनी बढ़ जाती है और इसकी अधिकांश द्रव्यराशि हजारों कि.मी. प्रति सेकंड गति से अंतरिक्ष में फैलने लगती है। सुपरनोवा का बचा हुआ द्रव्य अंत में सघन बनकर रेडियो तरंगों का अति शक्तिशाली स्रोत बन जाता है। कुछ घंटों या कुछ ही दिनों में किसी तारे की चमक दस हजार गुना या इससे भी अधिक बढ़ जाती है तो किसी आम निरीक्षक को लगता है कि कोई नया तारा होगा। लेकिन यह कोई नया तारा नहीं

तो किसी तारे के भयंकर विस्फोट की प्रलयंकारी स्थिति, होती है। इस स्थिति में किसी विस्फोटक तारे में धूल और गैस का बड़ा सा बादल बन जाता है। ऐसे ही कुछ चमकते बादल जिन्हें आज हम देख सकते हैं, सैकड़ों साल पहले के किसी तारे के अवशेष हो सकते हैं।

तारे का मूल वस्तुमान, सूर्य के वस्तुमान के कई गुना हो सकता है। सूर्य से ६० से १०० गुना अधिक संहति वाले तारे तो हमारी आकाशगंगा में ही हैं। ऐसे तारे के अंतर्भाग में प्रथम हैड्रोजन के अणु एकत्र आकर हिलीयम पैदा होता है। परिणामतः गर्भ में हैड्रोजन का प्रमाण कम होता रहता है, तो हिलीयम का बढ़ता है। अंतर्भाग में हैड्रोजन इंधन समाप्त होने लगा कि गर्भ अधिक ही आकुंचित होता है। उसका तापमान बढ़ता है। उर्वरित हैड्रोजन बाहर की ओर ढकेला जाता है और गर्भ में हिलीयम का ज्वलन शुरू होता है। इस ज्वलन से कार्बन और ऑक्सीजन उत्पन्न होते हैं। समय के साथ हिलीयम भी समाप्त होने लगता है। गर्भ हिस्सा और आकुंचित और अधिक तप्त होता है। बचा हुआ हिलीयम फिर बाहर की ओर ढकेला जाता है। गर्भ में कार्बन और ऑक्सीजन का ज्वलन शुरू होता है। इस कड़ी में गर्भ में अधिकाधिक भारी तत्व पैदा होते हैं और वहां उनका ज्वलन शुरू रहता है। हलके बाहर की ओर ढकेले जाते हैं। प्याज में जिस तरह एक के ऊपर एक परतें होती हैं उस तरह भारीपन के क्रम में यहां भी परतें तैयार होती हैं। सबसे भारी तत्व गर्भ में रहते हैं। अंत में सिलीकॉन इस मूलद्रव्य का रूपांतर लोहे में होने के बाद यह प्रक्रिया रुक जाती है। अब लोहे का ज्वलन होकर और भारी मूल द्रव्य तैयार होने के लिए जो अति उच्च तापमान आवश्यक है वह गर्भ में पैदा नहीं हो सकता। अब केवल गुरुत्वाकर्षण बल ही रहता है जो तारे के गर्भ को और आकुंचित करता है और तारे का रूपांतर न्यूट्रॉन तारे में होता है। लेकिन गर्भ में यह रूपान्तर बहुत ही कम समय में होने के कारण प्रघाति तरंग की एक जबरदस्त लहर, तारे के बाह्य हिस्से को भयंकर धक्का देती है। इसकी शक्ति इतनी भयंकर होती है कि बाह्य भाग भयानक विस्फोट होता है। इसे ही ' सुपरनोवा ' कहते हैं।

नोव्हा -नवतारा

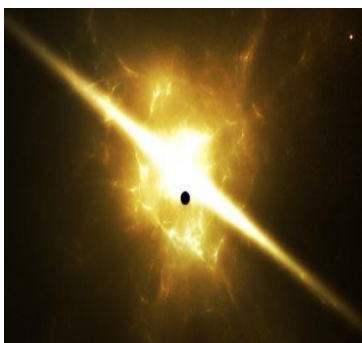
लेकिन हर विस्फोट में तारा पूरी तरह विस्फोटित होगा ही यह जरूरी नहीं। कभी-कभी तारा अपने बाह्य कवच की काफी अधिक राशि उछाल देता है और इस कारण दीप्तिमान हो उठता है। इसे ' नोव्हा ' कहते हैं। नोवा का अर्थ होता है नया तारा। लेकिन यह नामाभिधान एकदम ठीक नहीं। वास्तव में यहां कोई नया तारा उत्पन्न नहीं हुआ है। हमारी आकाशगंगा में

प्रति वर्ष ऐसी लगभग २५ घटनाएँ होती हैं। इस घटना के बाद, तारे की कांति एकाएक करीब एक लाख गुना बढ़ जाती है। लेकिन इस कांति का जीवन कुछ दिनों का ही होता है। बाद में वह घटती है और तारा पूर्ववत् हो जाता है। उछाला गया द्रव्य अत्यंत विरल होता है और तेजी से चारों ओर फैलने लगता है और प्रायः उस तारे के इर्दगिर्द चमकीले वलय के रूप में दिखाई देने लगता है।

अधिकतर, नवतारा द्वैती तारों की प्रणाली में पाया जाता है। दो में से एक श्वेतबटु तारा होता है तो दूसरा राक्षसी। राक्षसी तारे से श्वेतबटु की ओर वायुकणों का प्रवाह शुरू रहता है। बटु तारे पर उसकी परतों पर परतें जमती हैं। समय के साथ इन परतों का वजन भी बढ़ता है और तापमान भी। एक विशिष्ट क्षण में इन स्तरों में ही अणु इंधन के ज्वलन का आरंभ होता है। कालांतर में इन स्तरों में ही विस्फोट होकर वायुकण चारों दिशाओं में उत्सर्जित होते हैं। इस विस्फोट के दरम्यान ही हमें तारे की दीप्ति में विलक्षण वृद्धि देखने मिलती है। वास्तव में किसी नए तारे का जन्म नहीं हुआ। वह पहले से ही अस्तित्व में था। ऐसे तारे का वस्तुमान तुलनात्मक दृष्टि से कम होता है। उसके गर्भ के तापमान की मर्यादा १ से २ करोड़ अंश केल्विन इतनी ही होती है। सूर्य के अंतर्भाग का तापमान १.५ करोड़ अंश केल्विन है।

नवतारे को अन्य तारों से अलग से पहचानने के लिए कुछ मापदंड तय किए गये हैं -

- १) तारे की दीप्ति कुछ ही दिनों में ४००० गुना से अधिक होना चाहिए।
- २) कुछ ही हफ्तों, महिनों या सालों में उसकी दीप्ति लुप्त होनी चाहिए।
- ३) उसके वर्णपट में बदल होना चाहिए। अति उच्च तापमान के वायु ने प्रक्षेपित की हुई तरंगें उसमें दिखनी चाहिए।
- ४) उसमें से १०० से ५००० कि.मी. / सेकंड इस गति से वायु कणों का उत्सर्जन होना चाहिए।



श्वेतबटु तारा-पुनः :

उन्नीसवीं सदी के अंत तक यही समझा जाता था कि सभी तारे एक जैसे होने चाहिए। तब खगोलशास्त्र में यही काम होता था कि आकाश में तारों की स्थिति निश्चित करने में अधिक से अधिक सटीकता लायी जाए।

जर्मनी : फ्रेड्रिक विल्यम बेसेल(१७८४-१८४६) : इन्होंने खगोलशास्त्र में दूरियाँ नापने की पराशय (Parallax) पद्धति को पूर्णत्व प्रदान किया और लगभग ५० हजार तारों की दूरियों का सटीकता के साथ मापन किया। इन निरीक्षणों के दरम्यान व्याध तारे पर अपना ध्यान केंद्रित करते समय उनके ध्यान में आया कि यह तारा अन्य तारों जैसा ही दीर्घवृत्त पर भ्रमण तो करता है लेकिन इसके साथ ही उसका सर्पिल आंदोलन भी शुरू है। बारिकी से प्रेक्षण के बाद ऐसा दिखाई दिया कि तारा स्वयं अपने ही दीर्घवृत्त पर घूमता है। इस प्रदक्षिणा का समय ५० साल होना चाहिए। अर्थात् कोई गुरुत्वीय बल उसपर कार्यरत होना चाहिए। लेकिन तारे के आसपास ऐसा कोई पिंड उन्हें दिखाई नहीं दिया। उसे उस समय कृष्णवर्णी साथी(Dark Companion) नाम दिया गया। ऐसा ही निरीक्षण एक अन्य तारा ' प्रश्वा ' (Procyon) के लिए भी प्राप्त हुआ।

लेकिन २५ साल बाद(१८६२ में) व्याध या सायरस के उस जोड़ीदार को अल्विन ग्रॅहम क्लार्क ने अपनी १८" लेन्स वाली दूरबीन से देखा । लेकिन वह काला नहीं था। उसकी दीप्ति बहुत मद्धम थी। व्याध की दीप्ति से दस हजार गुना कम। उसे सायरस-बी नाम दिया गया। १८९५ में प्रोसियान बी को भी देखा गया।

दरम्यान १८९३ में भौतिक शास्त्रज्ञ विल्हेल्म व्हिएन ने तारों का वर्णपट और उनका तापमान इनके बीच का संबंध ढूँढ निकाला था। लेकिन उपरोक्त तारे इतने धुंधले थे कि उनका वर्णपट उन्नीसवीं सदी की तकनीक के आधार पर प्राप्त करना असंभव था। बीस साल बाद १९१५ में अंततः सायरस-बी का वर्णपट वॉल्टर अडम्स इस वैज्ञानिक ने प्राप्त किया। इस आधार पर यह निश्चित हुआ कि इसकी सतह का तापमान ८००० डिग्री केल्विन होना चाहिए। सूर्य की सतह के तापमान से २००० डिग्री अधिक। फिर भी अगर वह इतना धुंधला है तो साफ बात है वह काफी छोटा होना चाहिए। लेकिन अगर वह सूरज के ढाई गुना वस्तुमान वाले सायरस-ए को अपने सामान्य पथ से विचलित कर सकता है तो उसका गुरुत्वाकर्षण अर्थात् द्रव्यमान आश्चर्यजनक ढंग से अधिक या सूर्य के बराबर होना चाहिए।

ऑर्थर एडिंग्टन का सापेक्षता सिद्धांत पर जबरदस्त प्रभुत्व था। १९१६ के व्यापक सापेक्षता सिद्धांत में आइन्स्टाइन ने गुरुत्वीय ताम्रसृति की कल्पना प्रस्तुत की थी। एडिंग्टन ने अपनी किताब ' दी इंटरनल कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ स्टार्स ' में अनुमान व्यक्त किया था कि सायरस-बी की घनता पानी से ६०००० गुना होगी तो उसके वर्णपट की रेखाएं 0.००६ % से लाल रंग की ओर सरकना चाहिए। उसकी माउन्ट विल्सन वेधशाला के प्रो. अँडम्स ने पुष्टि की। इससे सायरस-बी का स्वरूप स्पष्ट हुआ - १) यह तारा सूर्य की तुलना में काफी छोटा है। २) उसकी सतह का तापमान सूर्य सतह के तापमान से अधिक है। ३) वह अत्यंत ठोस है। ४) वह सायरस-ए के चारों ओर ५० सालों में एक प्रदक्षिणा पूरी करता है। ऐसे सफेद बौने तारों को ' श्वेत बटु तारा ' नाम दिया गया।

- शुरू में श्वेत बटु अति तप्त होता है। ऐसे समय उसकी सतह का तापमान एक लक्ष केल्विन के लगभग होता है। अन्तर्भाग का तो उससे भी काफी अधिक होता है। इस तापमान पर अगर कुछ हैड्रोजन बचा भी होगा तो उसका हिलीयम में और हिलीयम का कार्बन और ऑक्सीजन में रूपान्तर हो जाता है। आमतौर पर अंतर्भाग में कार्बन और ऑक्सीजन इनके अणुओं की ही प्रचुरता होती है। लेकिन बटु अगर लघु तारे से बना होगा तो अंतर्भाग हिलीयम का बना होगा। अगर बहुत बड़े तारे का वह अवशेष होगा तो अंतर्भाग में ऑक्सीजन, निऑन आदि मूलद्रव्यों की बहुलता होगी। इस आण्विक प्रक्रियाओं के दरम्यान अंतर्भाग में बड़ी संख्या में न्यूट्रिनो कण उत्पन्न होते हैं और अंतरिक्ष में उत्सर्जित होते हैं। अपने साथ ऊर्जा भी ले जाते हैं। श्वेतबटु ठंडा हो जाता है। उसका तापमान ३००० केल्विन तक नीचे आ जाता है। अब न्यूट्रिनो की उत्पत्ति भी रुक जाती है। यह समय लगभग एक करोड़ वर्षों का होता है।

अब अंतर्भाग के अणु केंद्र निरंतर गतिमान हैं। इस कारण वहां प्रचंड गतिजन्य ऊर्जा उत्पन्न होती है। लेकिन यह ऊर्जा अंदर ही दबी रहती है। चूंकि श्वेतबटु पर लगभग ५० कि.मी. का बाह्यस्तर बन जाता है जो डिजनरेसी से मुक्त रहता है। इस स्तर की वस्तु सामान्य रहती है। अतः वह उष्णता का दुर्वाहक होता है। इसमें बटु का लगभग १ % वस्तुमान होता है। इस परत के निचले स्तर का तापमान एक करोड़ केल्विन हो तो भी सतह का केवल १०००० केल्विन ही रहेगा। इस कारण ऊर्जा बाहर जाने की गति काफी धीमी हो जाती है और ऐसे तारे का जीवनकाल अरबों वर्षों का होता है। उत्पन्न होने के समझो एक अरब साल बाद बटु अपनी

लगभग समस्त ऊर्जा खो देता है। अब अंतर्भाग का स्फटिकीकरण शुरू हो जाता है। अधिक हिस्से के स्फटिकीकरण के उपरांत यह मद्धम होते-होते कृष्ण बटु में रूपांतरित होकर अदृश्य हो जाता है।

श्वेतबटु और ब्रह्माण्ड की आयु -

तारे का जन्म होकर उसका श्वेतबटु में रूपान्तर होने का समय, उसके उच्च तापमान से ठंडा होते हुए आज के तापमान तक ठंडा होने का समय, इनके आधार पर ब्रह्माण्ड की आयु की जानकारी प्राप्त की जा सकती है, ऐसा वैज्ञानिकों का विश्वास है। आज श्वेतबटु के जो तापमान हैं उस आधार पर उनकी अगर गणना की जाए तो हम जैसे-जैसे ३५०० डिग्री केल्विन की ओर उतरते हैं, बटुओं की संख्या बढ़ती है। ३५०० डिग्री से ठंडा कोई बटु नहीं पाया गया। अपनी आकाशगंगा में सबसे पुराने श्वेतबटु ९.५ अरब साल पुराने हैं। आकाशगंगा बनने का समय, फिर तारा बनने का काल, उससे श्वेतबटु बनने का काल इनके हिसाब के आधार पर ब्रह्माण्ड की आयु १२ अरब साल आंकी गयी है।

- लेकिन कई श्वेतबटु अकेले नहीं पाये जाते। उनका जोड़ीदार होता है। ऐसे बटु नवतारे के विस्फोट के आधार पर पहचाने जा सकते हैं। राक्षसी रक्तवर्णी बनने के रास्ते पर होने वाले तारे का जोड़ीदार श्वेतबटु होगा। उनके बीच अंतर कम होगा तो राक्षसी तारे की वस्तु बटु अपनी ओर खींचता रहेगा। बटु की सतह पर हैड्रोजनयुक्त पदार्थ की परत जमा होने लगेगी। इस परत की मोटाई बढ़ती जाएगी। परत के निचले तल का तापमान भी बढ़ता जाएगा। अंततः वह गर्भ हिस्से इतना होगा। तत्काल हैड्रोजन का ज्वलन शुरू होकर सतह पर जमा हुए पदार्थ में विस्फोट होगा और वह पदार्थ दसों दिशाओं में फैल जाएगा। मानों हजारों हैड्रोजन बमों का विस्फोट हो। आकाश में नवतारा दिखने लगेगा। नवतारे के एकसाथ विस्फोट से सूर्य के दस हजारवें हिस्से से लेकर तो एक लाखवें हिस्से इतना पदार्थ अंतरिक्ष में बिखरेगा। बिखरने वाले कणों की गति १००० कि.मी. / सेकंड हो सकती है। कुछ समय बाद श्वेतबटु स्थिर होगा। लेकिन उसके जोड़ीदार से पदार्थ उसमें गिरना शुरू ही रहा तो यही घटना फिर दोहराई जाएगी। फिर एक विस्फोट होगा।

- प्लैनेटरी नेब्युला -

इसका अर्थ है ग्रह सदृश्य तेजोमेघ। वास्तव में ऐसे तेजोमेघ की, ग्रहमाला के साथ कोई रिश्तेदारी नहीं होती। किसी समय वैज्ञानिकों को ऐसे तेजोमेघ में ग्रहमाला का

आभास हुआ था और यह नाम सामने आया था। लेकिन वास्तवता सामने आने पर भी वही नाम प्रचलन में रहा।

सूर्य से ६-८ गुना बड़े राक्षसी तारे का विस्फोट होकर बचा हुआ वस्तुमान सूर्य की तुलना में १.४ गुना से कम होगा तो ही उसका रूपान्तर श्वेतबटु में होगा। अर्थात् तारे का बहुत वस्तुमान अंतरिक्ष में उड़ जाना चाहिए। विस्फोट के साथ मूल तारे का वस्तुमान, चर्चों दिशाओं में बिखर गया कि बीचोबीच रिक्ति वाला तप्त वायु का एक चौड़ा वलय पिछे छोटे श्वेतबटु के गिर्द बन जाता है। शुरू में काफी तप्त होने से वायु के स्तरों का यह वलय प्रकाशित होता है। यही प्लैनेटरी नेब्युला है। इसका उदा. है लायरा तारका समूह में देखा गया 'रिंग नेब्युला'। यह ऐसा ही तेजोमेघ है। हमारी आकाशगंगा में ऐसे १००० के करीब नेब्युला पहचाने गये हैं। ऐसे वलयों में प्रसरित होने वाले वायु के स्तरों की गति प्रति सेकंड २० से ३० कि.मी. होती है और उसका व्यास ०.३ से १.० प्रकाशवर्ष होता है।

श्वेतबटु तारों के तीन वर्ग -

श्वेतबटु तारों के तीन तरह के शोषक वर्णपट पाए गये हैं। रक्तवर्णी राक्षसी तारे की बाह्य वस्तु अतिनवतारा विस्फोट में अंतरिक्ष में उड़ जाती है। इस प्रक्रिया में अगर बाह्य आवरण में उपस्थित पूरा हैड्रोजन समाप्त होने के पहले ही विस्फोट हुआ तो बनने वाले श्वेतबटु की सतह पर हैड्रोजन का आवरण तैयार होता है। इस वर्ग के बटु को 'डीए' कहते हैं। लेकिन अगर विस्फोट में पूरा हैड्रोजन उड़ गया हो तो बटु पर हिलियम का आवरण होगा और 'डीबी' वर्ग का श्वेतबटु बनेगा। जिसका शोषक वर्णपट मिश्रित या उलझनपूर्ण होता है उसका एक अलग 'डीसी' वर्ग बनाया गया है। लगभग ८० % बटु डीए वर्ग के तो २० % डीबी वर्ग के पाए गये हैं।

सुपरनोव्हा -

इतिहास में सुपरनोवा दिखने की दर्ज बातें--

- इतिहास से यह पता लगता है कि आज से ६००० साल पहले इराक के दजला और फरात नदियों के तट पर विकसित हुई सुमेर सभ्यता के लोगों ने सुपरनोवा का नजारा नंगी आखों से देखा था। इसे हम आज, पृथ्वी से केवल ३००० प्रकाशवर्ष दूरी पर स्थित 'वेला एक्स' सुपरनोवा के रूप में जानते हैं।

- सुपरनोवा सदृश घटना दिखने की संभवतः सर्वप्रथम नोंद HB9 के संदर्भ में किसी अज्ञात भारतीय व्यक्ति द्वारा की गयी है। यह ईसा पूर्व ४५००+/-१००० साल की हो सकती है।
 - ईसा पूर्व १३४ में एक नया तारा आकाश में दिखने लगा था । इसे हिप्पार्कस नाम के ग्रीक खगोलशास्त्री ने देखा था और इससे प्रेरणा लेकर उसने तारों का एक नक्शा तैयार किया ताकि कोई नया तारा अगर आकाश में प्रकट हुआ तो इस नक्शे के आधार पर उसे पहचाना जा सके।
 - ईसा के वर्ष 185 में, रोमन साहित्य में जो उल्लेख मिलता है वह SN185 सुपरनोवा से संबंधित हो सकता है। लेकिन उसका व्यवस्थित दस्तावेज नहीं मिलता। यह उल्लेख हान के चीन के इतिहास के पुस्तक में भी मिलता है, जो ईसा २५-२२० के बीच का इतिहास देता है।
 - ईसा ३९३ में चीनियों ने सुपरनोवा देखने की नोंद की है। वह अधिकतर आज की स्कॉर्पियन तारकापुंज के SN393 के बारे में होनी चाहिए।
 - दक्षिण गोलार्ध में ईसा के १००६ में SN-1006 सुपरनोवा दिखाई दिया था। यह Lupus तारकापुंज में था जो हमसे ७१०० प्र.वर्ष दूर है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने इसके धुंधले बचे हिस्से को ढूँढ निकाला है।
 - Taurus तारकापुंज सुपरनोवा, ४ जुलाई १०५४ वृषभ राशि में देखा गया था।(SN1054) जिसका अवशेष आज क्रॅब नेब्युला के रूप में है। वह अपनी चरम स्थिति में शुक्र के तेज से चार गुना तेजस्वी होना चाहिए। वह २३ दिनों तक दिन में भी दिखाई देता था और रात के आकाश में 653 दिनों तक। ऐसे अचानक दिखने वाले तारे को चीनी 'अतिथि तारा' कहते थे। १७३१ में यूरोप के खगोलविदों ने दूरबीन से उसी स्थान पर एक तारा देखा। फिर १७५८ में चार्ल्स मेसिए ने उसकी पहचान एक निहारिका के तौर पर की और उसे अपनी निहारिकाओं की सूची में प्रथम स्थान दिया। बीसवीं सदी में उसके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त हुई--
 - १) यह निश्चित हुआ कि यह १०५४ में विस्फोटित तारे से उत्पन्न द्रव्यराशि है।
 - २) इसमें उपस्थित गॅस १००० कि.मी. / सेकंड गति से फैल रही है।
 - ३) १८४४ में पार्सन और रोझी इन दो खगोल वैज्ञानिकों ने इसका निरीक्षण किया तो उन्हें वायु और धुली कणों की आड़ी तिरछी रेखाएं दिखीं मानों वे किसी केकड़े के पैर हों। इसी लिए उन्होंने इसे नाम दिया 'क्रॅब नेब्युला' या कर्क निहारिका।

- ४) यह निहारिका हमसे ६५२० प्रकाशवर्ष दूर है।
- ५) यह प्रकाश के अलावा रडियो तरंगें, एक्स विकिरण, गॅमा विकिरण भी उत्सर्जित करती है।
- ६) इस निहारिका के केंद्र में एक पल्सर या न्यूट्रॉन तारा भी उपस्थित है।
- कैसिओपिया तारकापुंज में वर्ष 1181 में दिखा सुपरनोवा अपने पीछे पल्सर 3C58 छोड़ गया।
 - इ.स. १५७२ में शर्मिष्ठा तारका समूह में एक नया तारा अचानक प्रकट हुआ। टायको ब्राहे इस डैनिश खगोलशास्त्री का ध्यान उसने अपनी ओर खींच लिया। ब्राहे ने ऐसे आगंतुक तारों पर एक किताब ही लिख डाली। किताब का नाम था ' दी नोव्हा स्टेला '। उसका अर्थ है नये तारों के विषय में। उसके बाद ऐसे आगंतुक तारों के लिए ' नोव्हा ' शब्द उपयोग में आने लगा।
 - इ.स. 9-10-1604 को केपलर ने अपनी आकाशगंगा में एक सुपरनोवा देखा था।
 - वर्ष १८८५ में अपने करीबी देवयानी दीर्घिका में एक नया तारा प्रकट हुआ। उसका तेज सूर्य से १० अरब गुना या अपनी आकाशगंगा से एक लाख गुना था। ऐसे अति तेजस्वी तारे के लिए ' सुपरनोवा ' या अतिनव तारा शब्द उपयोग में लाने की बात तय हुई।
 - २३ फरवरी १९८७ को SN1987A सुपरनोवा दिखा था। यह कोरी आंखों से दिखा सबसे अर्वाचीन सुपरनोवा है। यह आकाशगंगा की एक छोटी उपमंडाकिनी में देखा गया था(Magellanic cloud)। यह पृथ्वी से १,६८,००० प्रकाशवर्ष दूर है। इसका प्रकाश पृथ्वी पर पहुँचने के दो-तीन घंटे पहले तीन न्यूट्रिनो प्रयोगशालाओं में न्यूट्रिनो का उद्रेक दर्ज किया गया। हो सकता है यह तारा ढहने के साथ ही लेकिन प्रकाश उत्सर्जन के पूर्व हुआ हो। रेडिओ उत्सर्जन प्रयोगशाला(लाल), हबल दूरबीन(हरा) और चंद्र क्ष किरण प्रयोगशाला(नीला) से प्राप्त डाटा से पता चला कि उस समय विस्तारित होती हुई शॉक तरंग उत्पन्न हुई थी। इसे कॅनॅडा के खगोलशास्त्री शेल्टन ने खोजा था इसलिए उसे शेल्टन १९८७ नाम दिया गया।
 - अतिनव तारे, नवतारों की तुलना में काफी कम प्रकट होते हैं। निरीक्षणों के आधार पर अगर उनका अनुपात निकाला तो वह होगा १ : १०००। दूरबीन की खोज के बाद आज तक जितने भी सुपरनोवा देखे गये हैं वे सब आकाशगंगा के बाहर अन्य दीर्घिकाओं में ही।

हमारी आकाशगंगा में देखे गये सुपरनोवा केवल ५ हैं, तो इसके बाहर की संख्या १५०० है। प्रत्येक मंदाकिनी में सुपरनोवा दिखने की बारंबारता प्रति शताब्दी तीन है।

- १) तारे के ज्वलनशील गर्भ में प्रमुखता से फोटॉन और न्यूट्रिनो ऐसे दो तरह के कण लगातार पैदा होते हैं। ये ही ऊर्जा के वाहक होते हैं। लेकिन सामान्य तारे में ऊर्जा का उत्सर्जन प्रमुखता से फोटॉन द्वारा ही होता है। फोटॉन की गति तो प्रकाश की गति होती है लेकिन उनका लगातार शोषण होता रहता है। इस कारण उसे तारे की सतह तक पहुँचने दस लाख वर्ष भी लग सकते हैं। अर्थात् ऊर्जा का वहन बहुत धीमा होता है और परिणामी ऐसे तारों की आयु अरबों वर्ष होती है।

लेकिन महाकाय तारे के गर्भ का तापमान कुछ अरब डिग्री केल्विन तक होता है। इसके अंतर्भाग में लोहतत्व तक सब मूलद्रव्यों का ज्वलन हो सकता है। विस्फोट के पूर्व, पितृतारे के अंतर्भाग के प्याज जैसे कई स्तर होते हैं। क्रोड के केंद्र में लोहा तो बाहर की ओर के परतों में अनुक्रम से कम-कम अणुक्रम के मूलद्रव्यों का ज्वलन होते रहता है। सबसे बाहरी स्तर हैड्रोजन का होता है। जिस महाकाय तारे के गर्भ का तापमान ६ अरब केल्विन के पास-पास होता है उसके अंतर्भाग में बड़ी संख्या में न्यूट्रिनो पैदा होते हैं। उनकी किसी भी वस्तु के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया नहीं होती। मानो सारी वस्तुएं उनके लिए पारदर्शी हैं। वह उनमें से आसानी से पार हो जाता है। उसकी गति भी प्रकाश गति ही है। अतः कुछ सेकंडों में ही वह तारे की सतह तक पहुँच जाता है। फिर वह अंतरिक्ष में चला जाता है। साथ में ऊर्जा भी ले जाता है। अर्थात् ऊर्जा का उत्सर्जन बड़ी तेजी से होता है। इसके बाद तारे के पास गुरुत्वीय आकुंचन को विरोध करने के लिए ऊर्जा नहीं बचती। कुछ मिनटों में तारे का तापमान एकाएक कम हो जाता है और अतर्वर्ति निःपात होने लगता है। इस क्रिया को अंतःस्फोट (Implosion) कहते हैं। लेकिन इस अंतःस्फोट के साथ ही गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा मुक्त होती है। यह क्रिया इतनी तीव्रता से होती है कि तारे में बचा सारा इंधन क्षण में जलकर भस्म हो जाता है। इस मुक्त हुई अफाट ऊर्जा का ही परिणाम है भयंकर विस्फोट और सुपरनोवा। इसी कारण वह कुछ समय तक असामान्य ढंग से तेजस्वी दिखता है। मुक्त हुई यही प्रचंड ऊर्जा लोह से अधिक भारी मूलद्रव्यों का निर्माण करती है। विस्फोट में पितृतारे का दस में से नौ हिस्सा द्रव्य अंतरिक्ष में फेंका जाता है। पीछे केवल एक क्रोड बचता है। फेंके गये द्रव्य में हलके हैड्रोजन से लेकर तो अति भारी यूरेनियम तक मूलद्रव्य होते हैं। बाद में कई हजार वर्षों तक यह तेजोमेघ विरल होते रहता है और उसमें अंतर्भूत

मूलद्रव्य आंतरतारकीय वस्तु का हिस्सा बन जाते हैं। विस्फोट में लोहमय गर्भ के बाहर के सारे फेंके गए मूलद्रव्यों की गति १०००० कि.मी./सेकंड होती है।

महाविस्फोट से ब्रह्माण्ड का जन्म होने के बाद जो आदिद्रव्य था उससे जो तारे बने उन्हें पहली पीढ़ी के तारे कहा जाता है। वे मुख्यतः हैड्रोजन व हिलीयम युक्त थे। हिलीयम से भारी मूलद्रव्य केवल उनके गर्भ में ही उत्पन्न हुए थे। अपना सूर्य दूसरी पीढ़ी का तारा है। ऐसे तारों में सुपरनोवा में उत्पन्न भारी मूलद्रव्य अंतर्भूत हुए हैं। तेजोमेघ अवस्था में ही सूर्य को वे किसी सुपरनोवा से प्राप्त हुए हैं। इसी कारण सूर्य से उत्पन्न पृथ्वी जैसे ग्रहों में भारी मूलद्रव्य मिलते हैं। भारी मूलद्रव्यों की अनुपस्थिति में जीवन असंभव है।

- सुपरनोवा के विस्फोट के बाद उसकी दीप्ति अत्युच्च तेजस्वी स्थिति में सूर्य के १० अरब गुना तक हो सकती है। वैज्ञानिकों का दावा है कि उन्होंने अभी तक देखे गये सुपरनोवा विस्फोटों में सबसे प्रखर विस्फोट देखा है। यह सामान्य सुपरनोवा विस्फोट से २०० गुना प्रखर था। इसके बाद बहुत ही घने चुंबकीय क्षेत्र वाला मलवा पीछे छुटा जिसे ' Magnetar ' नाम दिया गया है। यह हमसे ३.८ अरब प्रकाशवर्ष दूर है। जिस तारे का विस्फोट हुआ उसका वस्तुमान सूर्य से ५०-१०० गुना होना चाहिए। (२०१६ BBC News Service)

पल्सर / न्यूट्रॉन तारा

२८-11-१९६७ को मिस जोसोलिन बेल, अंतरिक्ष का निरीक्षण कर रही थी तो एक अजीब तरह का पिंड उसके देखने में आया। उसकी दो विशेषताएं थीं -

१) इसका स्वरूप स्पंदन का था। स्पंदन बहुत ही नियमित थे।

२) इन स्पंदनों के बीच का काल बहुत-बहुत ही अल्प था।(१.३३७२७९५ सेकंड)

आगे के अनुसंधान के बाद २४-२-१९६८ के ' नेचर ' इस विख्यात विज्ञान पत्रिका में हेविश, बेल और दो छात्रों के नाम से पल्सर्स से जुड़ा प्रथम महत्वपूर्ण शोध प्रबंध प्रसिद्ध हुआ। इस नये, खगोलीय पिंड के लिए उन्होंने (Pulsating Radio Source) यह नाम उपयोग में लाया। उसका लघु रूपान्तर ' पल्सर ' आगे लोकप्रिय हुआ। इस खोज के लिए जेसोलिन बेल को डॉक्टरेट की उपाधि तो उनके मार्गदर्शक अँथनी ह्युईश को १९७४ में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। इस पिंड को नाम दिया गया CP-१९१९ (CP का अर्थ-Cambridge Catalogue of Pulsars)

शुरू के शास्त्रीय मंथन के बाद यह माना गया कि वह ज्योतिषुंज अगर पृथ्वी के आकार का होगा तो उसे या तो श्वेतबटु तारा होना चाहिए या फिर न्यूट्रॉन तारा। लेकिन श्वेतबटु होने की संभावना भी हटा दी गयी चूँकि गणितीय ढंग से स्थापित हुआ कि श्वेतबटु के स्पंदन का न्यूनतम आवर्त काल आठ सेकंड से कम नहीं हो सकता। अंत में १९६८ में ही थॉमस गोल्ड ने ' पल्सर ' तारे के स्वरूप को विवेचित किया। पल्सर्स ये घूर्णन युक्त न्यूट्रॉन तारे हैं। वे युग्म तारों की प्रणाली में अंतर्भूत न्यूट्रॉन तारे हैं।



डी. लैंडाऊ-

वास्तव में न्यूट्रॉन तारों का विचार १९३० के दरम्यान रूसी वैज्ञानिक लैंडाऊ ने प्रस्तुत किया था। लेकिन उस समय ऐसा समझा जाता था कि ऐसे पिंड केवल परिकल्पित (Hypothetical) ही हो सकते हैं। लैंडाऊ की कल्पनाएँ-

सभी छोटे-बड़े तारों का गर्भ न्यूट्रॉन कणों से बना होना चाहिए। तारे का गर्भ न्यूट्रॉन कणों से बना होगा तो तारे के गर्भ के बाहरी स्तर गुरुत्वीय आकुंचन के कारण उसमें ढहते चले जाएंगे। इस क्रिया से गुरुत्वीय ऊर्जा मुक्त होगी और वह तारे के अंतर्भाग का तापमान उच्च रखने के लिए आवश्यक ऊष्मीय ऊर्जा प्रदान करेगी। सूर्य का केवल १ % वस्तुमान इस तरह न्यूट्रॉन कणों से रचित गर्भ में ढह गया तो भी आवश्यक परिमाण की ऊर्जा उत्पन्न हो सकेगी। यह बात उन्होंने गणित के आधार पर सिद्ध की। न्यूट्रॉन गर्भ का वस्तुमान, सूर्य वस्तुमान के ५ % वस्तुमान से कम होगा तो तारा स्थिर अवस्था में पहुँच जाएगा । १९३३ में सुझे ये विचार उन्होंने १९३८ में प्रसिद्ध किए। लेकिन उन्होंने अपने गणित में यह नहीं सोचा था कि अत्यधिक दबाव का न्यूट्रॉनों पर क्या असर होगा।

१९३८ में ही, कम से कम सूर्य सदृश्य तारे के अंतर्भाग में ऊर्जा निर्मिति का प्रश्न वैज्ञानिक हॅन्स बेथा ने सटीक गणितीय आधार पर हल किया। उनका सिद्धांत ' प्रोटॉन-प्रोटॉन सायकल ' इस नाम से जाना जाता है। सूर्य सदृश्य तारे के अंतर्भाग में एक से डेढ़ करोड़ डिग्री

केल्विन तापमान होता है। ऐसे तारों में ही प्रोटॉन-प्रोटॉन यह ऊर्जा निर्मिति की श्रृंखला प्रभावी होती है। इसे सूत्र में इस प्रकार लिखा जा सकता है -

हाइड्रोजन + हाइड्रोजन = ड्यूटेरियम + पोजिट्रॉन + न्यूट्रिनो

ड्यूटेरियम + हाइड्रोजन = हिलियम ३ + ऊर्जा

हिलियम ३ + हिलियम ३ = हिलियम ४ + हाइड्रोजन + हाइड्रोजन

प्रक्रिया की शुरुआत, दो हाइड्रोजन अणुओं से हुई और अंत में हमें फिर दो हाइड्रोजन अणु प्राप्त हुए। अर्थात् यह प्रक्रिया अपने आपको बार-बार दोहराती रहेगी। इस प्रक्रिया से इतना निश्चित हुआ कि हर सदृश्य तारे का गर्भ हिस्सा, न्यूट्रॉनों से बना नहीं होता।

- सुपरनोवा विस्फोट के बाद बचे गर्भ हिस्से का वस्तुमान चंद्रशेखर मर्यादा से अधिक होगा तो तारे के भविष्य का क्या?

इलेक्ट्रॉन्स का डिजनरेसी दबाव भी इस गर्भ का आकुंचन रोक नहीं सकेगा। वस्तुमान १.४ और ३.० इनके बीच रहा तो आकुंचन जारी रहेगा। वह इस स्थिति में पहुँचेगा कि अणु केंद्रों के चक्कर काट रहे इलेक्ट्रॉन्स की कक्षाएं भी अणु केन्द्रों में विलीन हो जाएंगी। अर्थात् इलेक्ट्रॉन्स भी अणु केन्द्रों में विलीन हो जाएंगे। प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन मिलकर न्यूट्रॉन की उत्पत्ति होती है। पूरा गर्भ ही केवल न्यूट्रॉनों का हो जाएगा। इस गोल का व्यास मुश्किल से १०-१५ कि.मी. होता है। लेकिन उसकी घनता 10^{14} ग्रॅम्स इतनी हो सकती है। इसीको न्यूट्रॉन तारा कहते हैं।

जब न्यूट्रॉन तारे का आकुंचन होते रहता है तब वह एक अवस्था में, 'न्यूट्रॉन्स डिजनरेसी' अवस्था को प्राप्त होता है। न्यूट्रॉन्स का इस कारण निर्मित अतिरिक्त बल (क्वांटम दबाव परिणाम) तारे का आगे संकुचन रोकने में सक्षम होता है। लेकिन यहां फिर ' चंद्रशेखर सीमा ' उपस्थित होती है। न्यूट्रॉन तारे की अवस्था में बने रहने के लिए मूल तारे का द्रव्यमान दो सूर्यों से अधिक नहीं होना चाहिए। अणुबॉम्ब के जनक ओपन हायमर और उनके शिष्य जॉर्ज व्होल्कोफ इनके द्वारा बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में न्यूट्रॉन तारे के वस्तुमान की मर्यादा निश्चित की जा सकी। नवतारे के विस्फोट के बाद पितृतारे के गर्भ का वस्तुमान सूर्य के १.४ गुना तक होगा तो गर्भ का रूपान्तर श्वेतबटु तारे में होगा। उसी तरह अतिनव तारे के विस्फोट के बाद पितृतारे के गर्भ का वस्तुमान सूर्य के १.५ और ३.० गुना इस मर्यादा में होगा तो उसका रूपान्तर न्यूट्रॉन तारे में होगा। इस मर्यादा को 'ओपन हायमर-व्होल्कोफ मर्यादा' कहते हैं। (वैसे

तो श्वेतबटु यह मृत तारे की अंतिम मर्यादा नहीं है तो इसके आगे भी उसका आकुंचन हो सकता है यह बात सर्वप्रथम फ्रिट्ज़ ड्रिंस्की और वाल्टर बाथ इन्होंने प्रस्तुत की थी।)

न्यूट्रॉन तारे का स्वरूप -

ऐसा तारा एक तरह से डायनामो की भूमिका में होता है। मानो अति तीव्र चुंबकीय क्षेत्र वाला बड़ा वाहक चुंबक। अति तेज गति से परिवर्तन करने वाले न्यूट्रॉन तारे की सतह से इलेक्ट्रॉन कणों का छिटकना संभव है लेकिन उनका चुंबकीय क्षेत्र में उलझना निश्चित है। फिर भी चुंबकीय ध्रुवों से मात्र, वे बाह्य अवकाश में उछल सकते हैं। ध्रुवों की दिशाओं से बाहर उछलने वाले इलेक्ट्रॉन्स ' मायक्रोवेव्हज् ' के रूप में ऊर्जा गंवाएंगे। अर्थात् उससे रेडिओ तरंगों का उत्सर्जन होता रहता है। प्रत्येक न्यूट्रॉन तारे से ध्रुवों की दिशाओं में इलेक्ट्रॉन्स के दो फव्वारे बाहर आते हैं। उनमें से एक फव्वारा, हम और न्यूट्रॉन तारा इनकी दृष्टिरेखा में होगा तो अत्यल्प आवर्तनकाल वाला स्पंद आंखों तक पहुँचेगा। न्यूट्रॉन तारे का अपने अक्ष के गिर्द घूमना यह उसके चुंबकीय ध्रुवों से गुजरने वाले चुंबकीय अक्ष की दृष्टि से झुका हुआ है। (उसी तरह जिस तरह पृथ्वी का घूर्णन)। इससे जो प्रभाव उत्पन्न होता है उसे ' बेकन प्रभाव ' कहते हैं।

वैज्ञानिकों के अनुसार, समझो हमने इस तारे से आने वाले संकेतों को आवाज़ में रूपान्तरित करके स्पिकर के माध्यम से सुना तो हमें घड़ी के लंबक (Pendulum) की आवाज़ जैसी टिक-टिक सुनाई देगी। अधिक तेज क्रैब पल्सर की आवाज़ मोटर सायकल इंजन जैसी सुनाई देगी। क्रैब पल्सर एक सेकंड में ३० स्पंदन भेजता है।

संक्षेप में पल्सर यह प्रचक्रणयुक्त (Spinning) न्यूट्रॉन तारा है जो अंतरिक्ष में दो विरुद्ध दिशाओं में विकिरण या क्ष किरणों की तेज ब्लीप्स के स्वरूप की माला रूपी शलाका भेजता है। भिन्न-भिन्न पल्सरों का ब्लिपिंग समय अलग-अलग होता है। लेकिन अधिकतर पल्सरों का समय चक्र एक सेकंड से कम होता है। लेकिन ऊर्जा उत्सर्जन के कारण तारे की परिवर्तन गति कम होती रहेगी। प्रत्येक तारा घूर्णन युक्त होता है। सूर्य अपने अक्ष के गिर्द घूमता है। वह अपने विषुववृत्त के पास अपने अक्ष के गिर्द एक चक्कर पूरा करने २८ दिन लेता है। जब पिंड का आकुंचन होता है तो उसका आकार घटता है और घूर्णन कालावधि आकार के वर्ग के अनुपात में कम होता है। अगर सूर्य न्यूट्रॉन तारे इतना आकार ग्रहण कर ले तो उसका घूर्णनकाल एक सेकंड होगा। संकोचन होगा तो घूर्णन गति बढ़ेगी ही। आमतौर पर यही इन तारों का घूर्णन कालावधि है।

लेकिन अब डेढ़ मिली सेकंड इतनी कम घूर्णन कालावधि वाला पल्सर भी ढूँढ लिया गया है। इसे मिली सेकंड पल्सर नाम दिया गया है। मिली सेकंड पल्सरस ये अधिकतर एक अरब वर्ष या इससे पुराने हैं। लेकिन अब खगोलशास्त्रियों का दावा है कि उन्होंने अब तक के सबसे चमकीले और युवा पल्सर की खोज की है। तेज घूर्णन वाले या अत्यधिक घनत्व के या इस मिली सेकंड पल्सर को नाम दिया गया है J-१८२३-३०२१ A। यह पृथ्वी से २७००० प्रकाशवर्ष दूर है, सेगिटिरियस तारामंडल में, तारों के एक समूह में स्थित है। यह तीव्र गॅमा किरणों का उत्सर्जन करता है। लेकिन यह केवल २.५ करोड़ वर्ष पुराना ही है। इसकी खोज नासा की फर्मी गॅमा रेज स्पेस टेलिस्कोप के माध्यम से हुई है।

घूर्णन और चुंबकीय क्षेत्र का मिलाजुला प्रभाव न्यूट्रॉन तारे के स्पंदन का काल असामान्य ढंग से नियमित करता है। यह तारे के घूर्णन काल इतना होता है। यह दशमलव स्थानों के अविश्वसनीय मर्यादा तक सटीक रहता है।

पल्सर से उत्सर्जन-

पल्सर की खोज के शुरू में उनसे दो विरुद्ध दिशाओं में रेडिओ तरंगों का विकिरण तेज स्पंदमाला के रूप में देखा गया। लेकिन १९७० में रेडिओ विकिरण की जगह 'क्ष' किरणें उत्सर्जित करने वाले पल्सरस भी ढूँढे गये। J-१८२३-३०२१ A तो तीव्र गॅमा किरणें उत्सर्जित करता है। लेकिन न्यूट्रॉन तारों में जब इलेक्ट्रॉन्स और प्रोटॉनों का संगलन होता है तो साथ में भारी संख्या में न्यूट्रॉनों का भी उत्सर्जन होता है। इतना ही नहीं तो आने वाले स्पंदन में प्रकाश का उपरोक्त, बारंबारता से प्रस्फुटित होना-बुझना (जैसा लाईट हाऊस में होता है) दिखता है।

*युवा पल्सरस की घूर्णन गति अधिक होती है।

न्यूट्रॉन तारा

ब्रह्माण्ड में सबसे अधिक घनत्व और सबसे प्रखर चुंबक क्षेत्र न्यूट्रॉन तारे का ही है। ऐसा प्रश्न खड़ा हो सकता है कि अगर न्यूट्रॉन तारा केवल न्यूट्रॉनों से ही बना है, जिनपर कोई विद्युत आवेश नहीं है तो फिर चुंबक क्षेत्र भी नहीं होना चाहिए। लेकिन अब ऐसा माना जाने लगा है कि न्यूट्रॉन भी क्वार्क कणों से बना होने से, जिनपर विद्युत आवेश होता है, न्यूट्रॉन का भी चुंबक आवेग होता है। एक अन्य बात यह है कि न्यूट्रॉन तारा शुद्ध न्यूट्रॉन कणों का नहीं

होता चूंकि वह प्रोटॉन जैसा शुद्ध अविनाशी नहीं है (विलगावस्था न्यूट्रॉन का जीवनकाल आमतौर पर 1000 सेकंड ही होता है ।) न्यूट्रॉन तारे में वास्तविक तौर पर न्यूट्रॉन्स, कुछ प्रोटॉन्स और इलेक्ट्रॉन्स इनका गत्यात्मक संतुलन होता है।

ऐसा मानने के लिए भी स्थान है कि न्यूट्रॉन तारे का अंतर्भाग सुपरद्रव और सुपरवाहक होता है। ऐसी स्थिति में बहुत भारी विद्युत धारा और पर्याय से चुंबकीय क्षेत्र की संभावना नकारी नहीं जा सकती। यह ध्यान में रखना होगा कि हम ऐसी वस्तु की बात कर रहे हैं जिसका तापमान, घूर्णन की गति, घनत्व आदि सापेक्षिकीय स्तर की है। अतः असामान्य शक्तिशाली चुंबकीय क्षेत्र का अस्तित्व अवश्यंभावी हो सकता है।

- मॅग्नेटार

अत्यधिक चुंबकीय क्षेत्र वाले न्यूट्रॉन तारे को मॅग्नेटार कहा जाता है। ऐसे ही एक न्यूट्रॉन तारे का विस्फोट 15-4-2020 को देखने को मिला जो एक सेकंड के दसवें हिस्से तक ही चला। इससे उत्पन्न ऊर्जा उस ऊर्जा के बराबर पायी गयी जो हमारा सूर्य एक लाख वर्षों में उत्सर्जित करता है। ब्रह्माण्ड में अभी तक इस तरह के मात्र 30 पिंडों का ही पता चला है। खोजकर्ताओं के टीम का नेतृत्व स्पेन के वैज्ञानिक प्रो. अल्बर्टो जे.कास्त्रो.-तिराडो ने किया। अन्य सहयोगी थे डॉ. शशिभूषण पांडे और नॉर्वे के डॉ. ओस्टगार्ड।

- बहुत तेज गति से परिवलनरत पिंड -

मानो कोई वस्तु बहुत तेज गति से परिवलन कर रही है। केंद्र के पास गति कम होगी। लेकिन जैसे-जैसे परीघ की दिशा में या त्रिज्या पर बाहर की ओर हम बढ़ेंगे, गति बढ़ती जाएगी। यह गति प्रकाश वेग के पास-पास तक भी बढ़ सकती है।

१) परिवलनरत वस्तु की ओर देखने से ऐसा लगेगा कि परिवलन की दिशा में वस्तु की लम्बाई कम हो रही है। जैसे-जैसे परिघ की ओर बढ़ेंगे यह परिणाम अधिकाधिक होगा। वस्तु विरूप होगी।

२) परिघ की दिशा में उसका द्रव्यमान भी बढ़ता जाएगा। यह बात किसी भी हिस्से की गति प्रकाशगति से कम की मर्यादा में रखने का काम करती है।

अगर आप पिंड पर सवार हो गये तो बातें कुछ अलग होंगी।

- न्यूट्रॉन तारे के लिये पलायन गति 10^6 मी./ से. के स्तर की होती है।

- जैसे-जैसे हम सतह से केंद्र की ओर बढ़ते हैं, पदार्थ की घनता बढ़ती जाती है। घनता त्रिज्या के व्युत्क्रमी अनुपात में होती है।
- न्यूट्रॉन तारे की त्रिज्या का निर्धारण होता है उसके द्रव्यमान परिच्छेदिका या आड़ी काट(profile) के अनुसार।
- न्यूट्रॉन तारे के पृष्ठभाग का गुरुत्व, पृथ्वी के भूपृष्ठीय गुरुत्व से दो अरब गुना तथा तापमान 100 अरब से एक ट्रिलियन डिग्रीज केल्विन हो सकता है। लेकिन एक बार बनने के बाद उसका शीतलीकरण शुरू होता है।
- ब्रह्माण्ड का सबसे मजबूत द्रव्य न्यूट्रॉन तारे के गर्भ में ही मिलेगा। इसे व्यंग्यात्मक लहजे में “ नाभिकीय पाश्ता “ नाम दिया गया है। यह सर्वोच्च घना द्रव्य होगा जो फौलाद से भी 10 अरब गुना कठिन(Hard) होगा।

बर्स्टर्स

क्ष किरणों का बहुत तेजस्वी लेकिन क्षणिक प्रस्फोट देने वाले विशेष वर्ग के तारों को ‘बर्स्टर्स’ नाम दिया गया है। इनके प्रस्फोट का आवर्त काल कुछ सेकंडों से लेकर तो कुछ मिनटों तक होता है। ये प्रस्फोट निश्चित आवर्त काल से विरहित, अनियमित ढंग के होते हैं। दीप्ति में अचानक वृद्धि होती है जो सेकंड के कुछ हिस्से से लेकर तो दस सेकंड तक की होती है। फिर कुछ सेकंड या मिनटों में दीप्ति कम होती हुई, अपनी पूर्व स्थिति को लौट आती है। नये प्रस्फोट की अपेक्षा आप कुछ घंटों या दिनों में कर सकते हैं। फिर भी ये न्यूट्रॉन तारे ही हैं। लेकिन युगल तारों के रूप में न कि अकेले। इनमें एक तारे से दूसरे तारे की ओर द्रव्य का प्रवाह बहता है और संबंधित गतिजन्य ऊर्जा तब उष्मा में रूपान्तरित हो जाती है, जब द्रव्य न्यूट्रॉन तारे की सतह से टकराता है और बाद में ऊर्जा क्ष विकिरण प्रवाह के रूप में उत्सर्जित होती है। जब द्रव्य न्यूट्रॉन तारे के तीव्र गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में गिरता है तो उसकी गति प्रकाश की गति के लगभग पहुँच जाती है।

बर्स्टर्स 3×10^{30} से लेकर तो 3×10^{38} जूल ऊर्जा प्रत्येक प्रस्फोट में उत्सर्जित करते हैं। उनसे प्राप्त क्ष विकिरणों के वर्णपट के विश्लेषण से यह स्थापित हो चुका है कि प्रस्फोट के दरम्यान जो विकिरण उत्सर्जित होता है, उसे उत्सर्जित करने वाली सतह का तापमान तीन

करोड़ केल्विन होना चाहिए। इस तापमान पर उत्सर्जित होने वाला अधिकतर विकिरण क्ष किरणों के रूप में ही होता है। (सूर्य की ज्योति या लुमिनोसिटी 4×10^{26} वॉट है)। ये दृश्य प्रकाश और पराबैंगनी विकिरण की तुलना में लघु तरंग-लम्बाई परास (रेंज) वाली विद्युत चुंबकीय तरंगें हैं। सबसे तेज क्ष किरण तारा, सूर्य के कुल विकिरण से दस हजार गुना अधिक ऊर्जा उत्सर्जित करता है।

इन तारों का इतिहास १९७५ से शुरू होता है। उस समय कॉस्मॉस ४२८ इस उपग्रह ने ऐसे तारे की उपस्थिति दर्ज की थी।

अभी तक ऐसे ३२ तारे ज्ञात हुए हैं। उनमें से ८ हमारी आकाशगंगा से हैं।



Image credit- Google images

और कुछ तारे :

- हायपर गति वाले तारे - आम तारे लगभग १०० कि.मी./ से. गति करते हैं। लेकिन ऐसे तारे भी पाये गये हैं जो इससे १० गुना तेजी से भ्रमण करते हैं। 1988 में जॉक जी. हिल्स ने ऐसे तारे होने का अनुमान किया था। सन् २००५ में वॉरेन ब्राउन, मार्गारेट गेल्लर, स्कॉट केनिऑन तथा माइकेल कुर्ट्ज़ इनकी टीम ने इसकी पुष्टि की। २००८ तक ऐसे १० तारे खोज लिए गये थे। एक अनुमान के अनुसार हमारी आकाशगंगा में ही उनकी संख्या १००० तक हो सकती है। इनकी उत्पत्ति द्वयी तारा प्रणाली से होती है। इनकी गति आकाशगंगाओं के पलायन गति से भी अधिक हो सकती है।
- सबसे ठंडा तारा- WD०८०६-६६१B--
इसकी खोज केव्हिन लुहमन ने की थी। उनके अनुसार इसका तापमान 27 से 80 डि.से.तक हो सकता है अर्थात् हमारे वातावरण इतना। इसे ब्राउन ड्वार्फ वर्ग में रखा गया है। द्रव्यमान, बृहस्पति से 6 से 9 गुना हो सकता है।
- सबसे रहस्यमय तारा-KIC ८४६२-८५२--

निरीक्षण के दरम्यान २०११ में ऐसा देखा गया कि इस तारे से आने वाले प्रकाश का २० से ४० % हिस्सा किसी पिंड द्वारा रोका जा रहा था। यह किसी ग्रह द्वारा रोके जाने वाले प्रतिशत से कई गुना है। इसके लिए स्पष्टीकरण तो दिए गये फिर भी निश्चित कारण अज्ञात है।

➤ मनुष्य द्वारा देखा गया सर्वाधिक दूर का तारा व्हल्ड-137-LS-

वैसे इसकी घोषणा अभी-अभी 30-3-22 को की गयी। इसे नाम दिया गया है इरेन्डेल (Earendel) अर्थात् ' सुबह का तारा ' । इसकी खोज हबल अंतरिक्ष दूरबीन द्वारा गुरुत्वीय Lensing से तारे के वृद्धिंगत प्रकाश के प्रेक्षण के कारण संभव हुई है। यह हमसे 28 अरब प्रकाशवर्ष दूर है। उसका प्रकाश हम तक पहुँचने 12.9 अरब प्रकाशवर्ष लगे। इसका द्रव्यमान सूर्य से 50-100 गुना होना चाहिए। सतह का तापमान $20,000^0$ से. है। ऐसा लगता है, हैड्रोजन और हिलीयम के अतिरिक्त और कोई मूलद्रव्य इसका घटक नहीं है। (इससे पहले सबसे दूर का ज्ञात तारा MACSJ-1149-नाम ईकॅरस (Icarus) था।

➤ आकाशगंगा का सबसे बड़ा तारा -UY SCUTI--

यह SCUTUM नक्षत्र में है। वास्तव में इसकी खोज जर्मन खगोलशास्त्रियों ने १८६० में ही की थी। लेकिन २०१२ में इसे आकाशगंगा का सबसे बड़ा तारा घोषित किया गया। यह सूर्य से २१०० गुना बड़ा है। हमसे ९५०० प्रकाशवर्ष दूर है।

➤ आकाशगंगा का सबसे बड़ा तारा पुंज (Cluster) - Omega centory--

यह दस लाख सितारों का बना है। यह आकाशगंगा का सबसे बड़ा तारकापुंज है। व्यास २३० प्रकाशवर्ष है। यह सामान्य क्लस्टर से दस गुना बड़ा है। हमसे १८००० प्रकाशवर्ष दूर है।

➤ सबसे बड़ी आकाशगंगा IC११०१ -

इसमें १०० अरब तारों इतना द्रव्यमान है। लेकिन अधिकांश द्रव्यमान डार्क मैटर के रूप में है। यह आकाशगंगा के आकार से ५० गुना बड़ी और २००० गुना भारी है। इसके अधिकतर तारे बूढ़े हो गये हैं और इसमें नये तारों का निर्माण क्वचित् ही हो रहा है। (नीली छटा वाली मंदाकिनियों में नये तारों का निर्माण बड़े पैमाने पर होता है जबकि लालिमायुक्त पीली मंदाकिनियों में कम ।) इसका व्यास ५.५ से ६.0 दशलक्ष प्रकाशवर्ष है।

यह हमसे १.०४ अरब प्रकाशवर्ष दूर है। यह अबेल मंदाकिनियों के पूंज के केंद्र में स्थित elliptical गैलेक्सी है। वैसे तो इसकी खोज ब्रिटिश खगोलविद् फ्रेड्रिक विलियम हर्षेल ने १९ जून १७९० को ही की थी।)

लेकिन अब इससे भी चौगुना बड़ी मंदाकिनी का पता चला है। इसे नाम दिया गया है- Alcyoneus। इसका विस्तार १६.३ दशलक्ष प्रकाशवर्ष बताया जा रहा है। यह हमारी आकाशगंगा से १६० गुना तो सूर्य से २४० अरब गुना बड़ी है। यह हमसे ३ अरब प्रकाशवर्ष दूर है। यह ज्ञात होने की घोषणा फरवरी २०२२ में मार्टिन ओई और सहयोगियों द्वारा की गयी।

➤ ब्रह्माण्ड का आजतक ज्ञात सबसे बड़ा पदार्थ : TON 618—

यह पृथ्वी से 389.8 अरब कि.मी. दूर है। इसका द्रव्यमान सूर्य से 66 अरब गुना होना चाहिए। यह महाराक्षसी कृष्ण विवर है जो ऐसी ही महाराक्षसी दीर्घगोलाकार Holmberg-15 A इस मंदाकिनी के अंदर है। लेकिन यह एक अदृश्य मंदाकिनी के केंद्र में क्वासार है। मंदाकिनी अदृश्य होने का कारण अज्ञात है। इसका तेज सूर्य से १४० अरब गुना होना चाहिए। इस कारण यह ब्रह्माण्ड की सबसे तेजस्वी वस्तुओं में से एक है। यह कृष्ण विवर ही हमारी आकाशगंगा इतना है।

ब्रह्माण्ड की सबसे बड़ी रचना : Hercules corona great wall --

यह दस अरब प्रकाशवर्ष लम्बी और ७.२ प्रकाशवर्ष चौड़ी है। एक अरब प्रकाशवर्ष मोटी है। हमसे १० अरब प्रकाशवर्ष दूर है। इसकी खोज नवम्बर २०१३ में हुई। हमारे अभी तक के ज्ञान के अनुसार इतनी बड़ी संरचना हो ही नहीं सकती। आइन्स्टाइन के ब्रह्माण्डीय सिद्धांत के अनुसार ब्रह्माण्डीय संरचना का अधिकतम आकार लगभग १.२ अरब प्रकाशवर्ष ही होना चाहिए। यह इससे ८ गुना बड़ी है। यह भी रहस्य है।

बुट्स रिक्ति Bootes void-

यह ३३० दशलक्ष प्रकाशवर्षों में फैली है। यह ब्रह्माण्ड की सबसे बड़ी गोलाकार रिक्ति है। इसकी खोज १९८१ में रॉबर्ट क्रिश्नर ने की थी। इसका केंद्र पृथ्वी से ७०० दशलक्ष प्रकाशवर्ष दूर है। १९८१ से लेकर तो अबतक यहाँ केवल ६० आकाशगंगाएं मिली हैं। दो आकाशगंगाओं की दूरी औसतन एक करोड़ प्रकाशवर्ष होती है। हमसे सबसे करीब अँन्द्रोमेडा आकाशगंगा हमसे २५ लाख

प्रकाशवर्ष दूर है। यहाँ वास्तव में २००० आकाशगंगाएं होनी चाहिए थीं। लेकिन इसका कारण अज्ञात है।

सबसे दूर का ज्ञात क्वासार -

इसकी दूरी १२ अरब प्रकाशवर्ष है। इसका तेज सूर्य से 3×10^{11} गुना या 10^{41} वॉट है जो इसे ब्रह्माण्ड का सबसे अधिक शक्तिशाली ऊर्जा स्रोत बनाता है। इसके कृष्ण विवर का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से ४० अरब गुना होना चाहिए। यह प्रति वर्ष ४००० सूर्य द्रव्यमान इतना द्रव्य निगलता है। इसके घटना क्षितिज की त्रिज्या प्लूटो की कक्षा की त्रिज्या के ४० गुना होनी चाहिए।

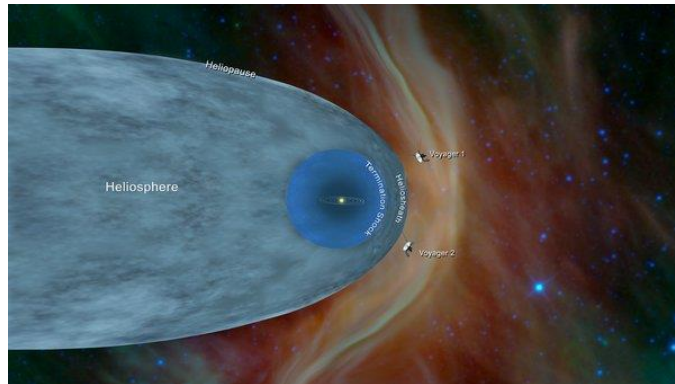
अंतरिक्ष में-

- पिंडों की गतियाँ -

- १) पृथ्वी के परिवहन की विषुववृत्त पर गति - 1037 मील / घंटा है।
- २) पृथ्वी की सूर्य परिक्रमा करने की गति 66,627 मील / घंटा है।
- ३) सूर्य अपनी आकाशगंगा के गीर्द ५१५,००० मील / घंटा गति से घूमता है।
- ४) आकाशगंगा, ब्रह्माण्ड में अनुमानतः १,३००,००० मील / घंटा गति से भ्रमण करती है (२१० हजार कि.मी./ घंटा)



(गूगल/क्वोरा) सौजन्य से



POWERS OF TEN

Natural phenomena occur on many scales. The fine details tend not to affect the large-scale workings, making it hard to test quantum theories of gravity such as string theory. But cosmic inflation allows the absurdly small to affect the astronomically big.

10^{26} meter:
Observable
universe



10^{-10} meter:
Atom



10^{21} meter:
Milky Way galaxy



10^{-15} meter:
Atomic nucleus



10^{13} meter:
Solar system



10^{-18} meter:
Smallest distance
probed by particle
accelerators



10^7 meter:
Earth



10^{-18} to 10^{-35} meter:
Typical size of
fundamental strings
and of extra dimensions



10^{-2} meter:
Insect



10^{-35} meter:
Minimum meaningful
length in nature



Image Credit:- Quora

५. पृथ्वी

परामितके -

- पायथागोरस ने पृथ्वी गोल होने की बात कही, इसके लिए उन्होंने सूर्य, चंद्र का उदाहरण दिया।
- इस कथन को समर्थन दिया अरिस्टॉटल (ईसापूर्व ३८४-३२२) ने चूंकि ग्रहण के समय चंद्र पर गिरने वाली पृथ्वी की छाया गोल होती है।
- इसकी सत्यता, पृथ्वी प्रदक्षिणा करने के बाद, प्रस्थापित की मॅगलन (ईसा १४८०-१५२१) इस व्यक्ति ने।
- झा रीशे इस व्यक्ति ने प्रतिपादित किया कि पृथ्वी बीच में उभरी हुई है। बाद में सर आयज़क न्यूटन ने बताया कि पृथ्वी के स्वांग भ्रमण के कारण उत्पन्न होने वाले केन्द्रोत्सारी (केंद्र से दूर ठेलने वाले) बल के कारण वह विषुववृत्त के पास उभरी और ध्रुवों के पास चपटी होनी चाहिए। पृथ्वी की विषुववृत्तीय त्रिज्या ध्रुवीय त्रिज्या से २२ कि.मी. ज्यादा है।

कृत्रिम उपग्रहों की कक्षाओं के अध्ययन से पता चला कि पृथ्वी कुछ-कुछ नाशपाती जैसे आकार की होनी चाहिए। उसका शूंडाकार भाग उत्तर गोलार्ध में है। इसका अर्थ हुआ कि उत्तर ध्रुव पर भूपृष्ठ का प्रतल अपक्षा से (गोलाभ प्रतल) से अंदाज़न १५-१८.८ मीटर अधिक होगा। तो दक्षिण ध्रुव पर वह अपेक्षा से अंदाज़न १५-२५.८ मीटर कम होगा। इस जानकारी के आधार पर पृथ्वी का विषुववृत्तीय परीघ ४०,१८२.४०८ कि.मी. तो ध्रुवीय परीघ ३९,७७६ कि.मी. आता है।

- पृथ्वी की अक्षीय और कक्षीय गति होने की बात सन् १७२५ में ही पता चली थी।
- पृथ्वी का आकारमान सर्वप्रथम निकाला था व्हिलेवॉर्ट स्नेल (१५९१-१६२६) ने जो प्रत्यक्ष आकारमान से केवल ३.४% कम था। (इससे पहले यह प्रयत्न करने वाली व्यक्ति थी एरॉटास्थिनीज (इ.स.पू. २७६-१६९))
- टॉलेमी ने (इ.स. अंदाजन ९०-१६९) ने पृथ्वी का व्यास निकाला था।
- पृथ्वी का सटीक वस्तुमान निकाला सन् १७९७ में हेनरी कैवेंडिश (१७३१-१८१०) ने।
- पृथ्वी का चुंबकीय उत्तर ध्रुव दुंदु निकाला जे.सी.रॉस(१८००-१८६२) तो चुंबकीय दक्षिण ध्रुव १९०९ में इ.एच्. शॉकल्टन(१८७४-१९२२) ने। किसी गोल को अक्ष के गिर्द गति हो और बृहतवृत्त अक्ष की लम्ब दिशा में हो तो बृहद्वृत्त के जिस बाजू में वह गति अपसव्य(घड़ी के काटों की गति की दिशा के उलट) दिखेगी, उस बाजू में उत्तर ध्रुव और विरुद्ध बाजू में दक्षिण ध्रुव माना जाता है।
- भूचुंबकीय क्षेत्र की कुल तीव्रता ध्रुवों के करीब सर्वाधिक होती है और भूमध्यरेखा के पास न्यूनतम।
- पृथ्वी पर प्रति वर्ष अंदाजन २० लाख टन वैश्विक धूल (पृथ्वी के बाहर से आने वाली) गिरती है। इस कारण उसका वस्तुमान बढ़ रहा है।
- भूपृष्ठ पर वातावरण का दबाव प्रति चौ.सें.मी. लगभग एक कि.ग्रॅ. होता है। जैसे-जैसे हम ऊपर जाएंगे वैसे-वैसे वह कम होता जाएगा । आठ कि.मी. की ऊंचाई पर वह समुद्र सतह के दबाव से एक तिहाई होगा। उलट पृथ्वी के अंतरंग में दबाव गहराई के अनुसार बढ़ता जाता है। पृथ्वी के केंद्र में वह ३० लाख वातावरणीय दबाव इतना होगा, ऐसा अनुमान है।
- गुरुत्वीय प्रवेग पृथ्वी के केंद्र से अंतर के वर्ग के व्यस्त प्रमाण में बदलता है। पृथ्वी पूर्ण गोलाकार न होने के कारण वह अलग-अलग स्थानों पर अक्षांश के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। दक्षिण ध्रुव पर वह औसतन ९७८.०३२ सें.मी. प्रति सेकंड, प्रति सेकंड है अर्थात् विषुववृत्तीय कीमत की तुलना में ०.५ % अधिक। ध्रुव पर औसतन प्रवेग ९८३.२२ सें.मी./से./से. लिया जाता है। तो पृथ्वी के भूपृष्ठ पर उसकी औसत कीमत ९७९.७६ से.मी./से./से. ली जाती है। गुरुत्वीय प्रेरणा की तीव्रता, गहराई अनुसार कम होती जाती है और पृथ्वी के केंद्र में वह शून्य हो जाती है। (मुक्त वस्तु के गुरुत्वीय प्रवेग के अर्थात् प्रति सेकंड बढ़ने वाली गति के मूल्य द्वारा गुरुत्वीय क्षेत्र व्यक्त किया जाता है।)

- पृथ्वी की कक्षा १.५ सें. मी. से प्रति वर्ष बढ़ रही है चूंकि ज्वलन के कारण सूर्य का वस्तुमान कम हो रहा है।

पृथ्वी की सांख्यिकी

- आयु : ४.५ अरब वर्ष।
- सूर्य से दूरी : १,४९,५९७,९०० कि.मी.।
- सूर्य की परिक्रमा करने की गति : १०७,२२० कि.मी. / घंटा।
- सूर्य परिक्रमा का कालावधि : ३६५ दिन, ५ घंटे, ४८ मिनट और ४५.५१ सेकंड।
- धूरि पर पूरे घूर्णन का कालावधि : २३ घंटे, ५६ मिनट, ४.०९१ सेकंड।
- द्रव्यमान : ५.८८०×10^{21} टन।
- घनता : ५.५१७ (पानी की घनता के गुना)।
- आकार (आयतन) : १,०८३,२०८,८४०,००० क्यूबिक कि.मी.।
- पृष्ठभाग का क्षेत्रफल : ५१०,००६,१०० चौरस कि.मी.।

दिन-

- २१ जून वर्ष का सबसे बड़ा दिन : १३ घंटे १३ मिनट।
- २२ दिसम्बर वर्ष का सबसे छोटा दिन।
- २२ सितम्बर तथा २१ मार्च को दिन, रात समान होते हैं। २१ मार्च से २३ सितम्बर तक सूर्य, पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध के सामने होता है और बाकी आधे समय दक्षिण गोलार्ध के। उत्तरी गोलार्ध में यह २१ मार्च को भूमध्य रेखा से चलकर २२ जून को कर्क रेखा पर पहुँचता है जो भारत के मध्य से गुजरती है। इस कारण मई के आखरी दिनों में सूर्य किरणें लम्बवत गिरती हैं। यही कारण है नौतपा तपने का।
- ३ जनवरी को पृथ्वी, सूर्य से सबसे निकट रहती है। इसे खगोलशास्त्र में ' पेरेहेलिऑन ' कहते हैं। जुलाई में यह दूरी सबसे अधिक होती है।

वर्ष गणना -

- ग्रेगोरियन कैलेंडर : यह वर्तमान में विश्व में सर्वत्र प्रचलन में है। इसमें वर्ष में ३६५ दिन और लीप वर्ष में ३६६ दिन होते हैं। इसे सर्वप्रथम ईसा १७०० में डेनमार्क और नोर्वे ने अपनाया। फिर इंग्लैंड -१७५२, युएसएसआर (रशिया) -१९१८, टर्की -१९२७।

- शक संवत : इसके अनुसार प्रथम माह चैत्र होता है। यह वर्ष गणना ७८ ईसवीं में चलन में आई।
- विक्रम संवत : विक्रम संवत चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से शुरू होता है। विक्रम संवत ईसा पूर्व 57 में आरंभ हुआ।

संरचना-

- सतह का ऊपरी हिस्सा (भूपटल अर्थात् क्रस्ट) करीब ४० कि.मी. और समुद्र के नीचे करीब ६ कि.मी. मोटा है।
- क्रस्ट के नीचे पृथ्वी ने २९०० कि.मी. का आवरण ओढ़ रखा है जिसे हम ऊपरी आवरण (Upper Mantle)-लगभग ६२५ कि.मी. तथा भीतरी आवरण (Inner Mantle) -२२७५ कि.मी. मोटा, ऐसा विभाजित करते हैं | यह मूलतः मैग्नेशियम के सिलीकेट और लौह यौगिक से बना है। यहाँ का तापमान, ३००० डिग्री सेल्सियस तक हो सकता है।
- मैनटल के नीचे २२५० से २३०० कि.मी. मोटा आउटर कोअर (बाहरी बीजकोष) है। इनर कोअर या भीतरी बीजकोष या पृथ्वी का गर्भ हिस्सा २६०० कि.मी. व्यास का है। बाहरी बीजकोष लोहा और निकल का पिघला हिस्सा है जबकि भीतरी बीजकोष पूरा लोहा है।
- पृथ्वी की परिधि अर्थात् इक्वेटोरियल व्यास १२७५६ कि.मी. है।
- पृथ्वी की जमीनी सतह १५ करोड़ वर्ग कि.मी. है। जल सतह ३६.१ करोड़ वर्ग कि.मी. है।

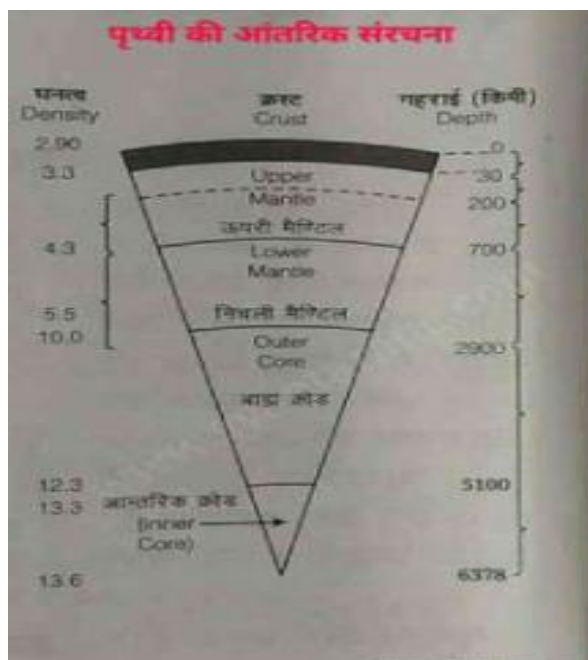


Image credit: Google images.

परिवलन

पृथ्वी के अपने अक्ष पर चक्रण को घूर्णन कहते हैं। पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है। इसीसे दिन-रात होते हैं।

शुरु में लोग मानते थे कि पृथ्वी स्थिर है। केवल १९ वीं सदी में यह निश्चित हुआ कि पृथ्वी अपने अक्ष के गिर्द घूमती है। अब यह ज्ञात हुआ है कि पृथ्वी तथा सौर परिवार के अन्य ग्रहों की उत्पत्ति एक घूर्णनयुक्त गॅस के बादल से हुई है। जब कोई घूर्णनरत वस्तु टूटती है तो उसके टुकड़े उसी दिशा में घूर्णन करते रहते हैं जिस दिशा में उनका मूल पिंड घूर्णनरत था चूंकि अंतरिक्ष में वातावरण न होने से कोई घर्षण नहीं होता। न्यूटन के प्रथम नियम के अनुसार पृथ्वी का घूर्णन कायम रहा । (हितवाद १८-१२-२०१०)

परिक्रमण -

पृथ्वी सूर्य के चारों ओर अंडाकार पथ पर परिक्रमा करती है। इस गति के कारण ऋतु परिवर्तन होता है।

- सभी चार सौर भौमिक ग्रहों में पृथ्वी द्रव्यमान, आकार में बड़ी है। तीनों भौमिक ग्रह-बुध, शुक्र, मंगल - से पृथ्वी का घनत्व, गुरुत्वाकर्षण, चुंबकीय क्षेत्र और घूर्णन सबसे ज्यादा है।

आसमान का रंग नीला -

सूरज की किरणें जब पृथ्वी के आसपास के वातावरण में प्रवेश करती हैं तब वे वातावरण में मौजूद कई अति सूक्ष्म कणों पर पड़ती हैं और उनका विभिन्न दिशाओं में विकिरण हो जाता है। सूरज की किरणों में सात रंग होते हैं। इनमें से नीले और बैंगनी रंगों का विकिरण सबसे अधिक होता है, चूंकि इन रंगों की कंपन संख्या और अणु में विद्यमान इलेक्ट्रॉन्स की कंपन संख्या लगभग समान होती है, इस कारण विकिरण का प्रमाण बढ़ता है। वातावरण से होते हुए पृथ्वी की सतह पर पहुँचने तक बैंगनी रंग नष्ट हो जाता है। केवल नीला रंग हमारी आंखों

तक पहुँचता है। रात के समय सूर्य की किरणें न होने से हमें आकाश का रंग काला नजर आता है। अंतरिक्ष यात्री जब पृथ्वी की कक्षा से दूर पहुंच जाते हैं तब उन्हें, आकाश में सूरज होते हुए भी उसका रंग काला दिखता है क्योंकि वहां वातावरण नहीं होता।

पृथ्वी पर पानी-

पृथ्वी के ७१ % हिस्से में पानी और बाकी हिस्सा जमीन है।

महासागर पांच हैं -१) पॅसिफिक (प्रशांत) यह सबसे बड़ा है - १५५,५५७,००० वर्ग कि.मी. २) अटलांटिक - ७६,७६२,००० वर्ग कि.मी. ३) हिंद - ६८,५५६,००० वर्ग कि.मी. ४) दक्षिण - २०,३२७,००० वर्ग कि.मी. ५) आर्कटिक - १४,०५६,००० वर्ग कि.मी.।

एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी पर कुल ३२ करोड़ ६० लाख खरब गॅलन पानी है। इसकी मात्रा घटती-बढ़ती नहीं।

अत्याधुनिक जानकारी के अनुसार समुद्रों का कुल आयतन (आकार) १.३३२ अरब क्यूबिक कि.मी. है। समुद्र की औसत गहराई ३,६८२.२ मीटर्स है। (हितवाद-१३-६-२०१०)।

(भारत -सामान्य बारिश की स्थिति में ७०० अरब घन मीटर्स सतही जल मिलता है। जबकि बांधों की जल रोकने की क्षमता २५७ अरब घन मीटर्स ही है।)

बर्फ - अंटार्कटिक बर्फ की चादर में पृथ्वी के बर्फ का ९० % तथा पृथ्वी के मीठे पानी का ७० % हिस्सा है। अगर पूरी चादर पिघल गयी तो समुद्र की सतह २२० फीट बढ़ जाएगी। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार अगर विद्यमान तापमान वृद्धि का ट्रेंड कायम रहा तो सन् २१०० तक यह ३ फीट तक बढ़ सकती है।

महाद्वीप सात हैं -

एशिया (सबसे बड़ा), अफ्रीका, उत्तर अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, यूरोप, अंटार्कटिका, आस्ट्रेलिया (सबसे छोटा) ।

दुनिया का सबसे बड़ा द्वीप ग्रीनलैंड है। यह २,१७६,००० वर्ग कि.मी. घेरता है। कोई इसे द्वीप मानते हैं तो कोई महाद्वीप। लेकिन यह ऑस्ट्रेलिया से एक तिहाई ही है।

भूकंप

- पृथ्वी के भीतर एक बिंदु से उत्पन्न हुई कंपन श्रृंखला को भूकंप कहा जाता है। उक्त बिंदु के ठीक ऊर्ध्व रेखा में, पृथ्वी के पृष्ठभाग पर स्थित बिंदु को ' उर्ध्व बिंदु ' या ' एपीसेंटर ' कहा जाता है। उर्ध्व केंद्र में भूकंपन की तीव्रता सर्वाधिक होती है और उर्ध्व केंद्र से दूर वलयाकार में कम होती जाती है।
- पृथ्वी के अंदर भूकंप उत्पन्न होने के स्थान को उत्पत्ति केंद्र कहते हैं।
- आमतौर पर भूकंप का उद्गम १० कि.मी. से ७०० कि.मी. गहराई में स्थित होता है। यहीं से भूकंप की तरंगें सभी दिशाओं में फैलती हैं।
- भूकंप की तीव्रता नापने के लिए समय-समय पर स्केल बनाएं गये। परंतु आज सिस्मोमीटर द्वारा इन्हें नापा जा सकता है। इसके द्वारा प्राप्त रेकॉर्ड के आधार पर सी.एफ.रिक्टर ने १९३५ में एक स्केल बनाया। इससे हम भूकंप के दौरान निकली ऊर्जा को नापते हैं। रिक्टर स्केल पर प्रत्येक पूर्णांक (१ से १० तक) अपने से पहले वाले पूर्णांक से दस गुना बड़ा होता है। अर्थात् ८ स्केल तीव्रता का भूकंप ४ स्केल तीव्रता के भूकंप से १०,००० गुना शक्तिशाली होगा। एक मेगाटन के एटम बम से निकली ऊर्जा ६ रिक्टर स्केल के भूकंप की ऊर्जा के बराबर होगी।
- प्राथमिक तरंगों की गति ८ कि.मी. / से. तो दुय्यम तरंगों की ५ कि.मी. / से. होती है।
- पृथ्वी पर ७ प्रमुख Crustal Plates जो ८० कि.मी. मोटी हैं। वे एकदूसरी की संदर्भ में लगातार हलचल में रहती हैं। प्रति वर्ष वे १० मि.मी. से १३० मि.मी. सरकती हैं। USGS भूकंप जानकारी केंद्र प्रति वर्ष १२००० से १४००० भूकम्पों की नोंद करता है। इनमें ६० भूकंप ध्यान खींचने लायक होते हैं तो लगभग १९ को हम प्रमुख भूकंप कह सकते हैं। Significant भूकंप का अर्थ ६.५ तीव्रता से अधिक के तो Major भूकम्पों की तीव्रता ७ से अधिक होती है।
- दुनिया में सबसे भीषण भूकंप १९६० में चिली में आए भूकंप को माना जाता है। जिसकी तीव्रता ९.५ रिक्टर थी।
- पृथ्वी की सबसे बाहरी परत को पर्पटी कहते हैं। इस पर्पटी के ऐन नीचे मॅटल नामक परत है। पर्पटी और मॅटल के ऊपरी हिस्से को मिलाकर ' लिथोस्फियर ' कहते हैं। (लिथो का मतलब है चट्टान और यह हिस्सा चट्टानों से बना है) लिथोस्फियर के नीचे की

परत को ' एस्थिनोस्फियर ' कहते हैं जो सतह से १०० से २०० कि.मी. नीचे तक पायी जाती है। यह परत पूरी तरह ठोस नहीं है बल्कि गाढ़े तरल जैसी है जो बहती है। लिथोस्फियर तरल धरातल पर टिका है। इस कारण वह गति करता है।

पर्वतों के उभरने का सिद्धान्त

- सतह प्लेट टेक्टॉनिक्स पर टिकी है। प्लेट टेक्टॉनिक्स का मतलब होता है, भूपर्पटी को प्लेटों से बना माना जाता है जो निरंतर गतिशील है। पृथ्वी की पर्पटी का कोई हिस्सा अपने पड़ोस के हिस्से से टकरा जाए, तो पर्वतों का निर्माण होता है। सौर परिवार में सबसे ऊंचा पर्वत (२४ कि.मी.ऊंचाई) मंगल ग्रह पर है। पृथ्वी के सबसे ऊंचे पर्वत की ऊंचाई ९ कि.मी. भी नहीं है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण पृथ्वी पर १५००० मीटर से ऊंचा पर्वत होना संभव नहीं।

चट्टानें-

ग्रेनाइट : इन चट्टानों के निर्माण में मैग्मा अर्थात् लावा, धरातल के ऊपर न पहुंचकर अंदर ही जमकर ठोस रूप धारण कर लेता है। भूगर्भ का तापमान अधिक होने से लावा ठंडी होने की प्रक्रिया बहुत धीमी होती है और बनने वाले स्फटिक काफी बड़े होते हैं।

बेसॉल्ट : ये समुद्री तल में पायी जाती हैं।

ज्वालामुखीय चट्टानें : ज्वालामुखी से बाहर आया लावा ठंडा होने से ये बनती हैं।

ज्वालामुखी :

धरती की सबसे प्रमुख टोपोग्राफिक बात है, ज्वालामुखी पहाड़ों की श्रृंखला जो समुद्र के अंदर पूरी धरती को घेरे हुए है । इसकी लम्बाई ४८,००० कि.मी. है और कहीं-कहीं यह समुद्र तल से ५.५ कि.मी. ऊंची भी है। इसे Mid Ocean Ridge कहते हैं। इसमें जमीन की तुलना में अधिक ज्वालामुखी हैं। अर्वाचीन समय में सबसे भयंकर ज्वालामुखी उद्रेक Tambora Volcano (इंडोनेशिया) का माना जाता है जिसमें ९०,००० लोगों की मौत हुई थी।

खनिजें -

पृथ्वी पर लगभग ४००० खनिज हैं। लेकिन उनमें से केवल २०० ही महत्वपूर्ण हैं। सबसे मुलायम खनिज टाल्क है जिससे टाल्कम पावडर बनाते हैं। कार्बन से बने ज्ञात संयुक्तों की संख्या अंदाजन ७०,००० है। धातुओं में सबसे भारी ओसमियम है तो सबसे हल्का लिथियम है।

जमीन से निकलने वाले खनिज तेल की पहचान तो मनुष्य को चार हजार सालों से थी लेकिन आधुनिक तेल उद्योग की नींव रखने वाला, तेल का जमीन में पहला कुंआ कॅनडा और अमेरिका में १८५८-५९ में खोदा गया।

बिजली गिरना :

इस धरती पर प्रति मिनट औसतन ६००० बार बिजली गिरती है। आकाशीय बिजली की शक्ति अधिकतर एक करोड़ से तीन करोड़ वोल्टस् तक होती है। इसके कौंधने के क्षण आसपास की हवा २८००० डिग्री सेल्सियस तक गर्म हो जाती है। औसत बिजली का चमकना एक अरब ज्यूल्स इतनी ऊर्जा मुक्त करता है। लेकिन kWh में वह केवल २८० ही होती है।

भारत -

क्षेत्रफल ३३,७०,००० वर्ग कि.मी.। दुनिया का सातवाँ बड़ा देश। दुनिया का सबसे बड़ा देश रूस, भारत से पांच गुना बड़ा है (१,७०,००,००० वर्ग कि.मी.)। चीन और कॅनडा, भारत से तीन गुना बड़े (क्रमशः ९६ और ९७ लाख वर्ग कि.मी.), अमेरिका-९५ लाख वर्ग कि.मी.। दुनिया में कुल १९४ देश हैं। सबसे छोटा देश - व्हेटिकन सिटी - ४ वर्ग कि.मी.। लोकसंख्या एक हजार। पोप और अन्य धर्मगुरु रहते हैं।

पृथ्वी का परिवलन

पृथ्वी अपने अक्ष के गिर्द घूमती है। इसे पृथ्वी का परिवलन कहते हैं। पृथ्वी अपने अक्ष के गिर्द पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है। ध्रुव तारे से हमने अगर देखा तो वह हमें घड़ी के कांटों की घूमने की दिशा की विरुद्ध दिशा में घूमती नजर आयेगी। वह एक परिवलन २३ घंटे, ५६ मिनट और ४.०९९ सेकंड में पूरा करती है। सूर्य के संदर्भ में हिसाब किया तो वह एक दिन

में या २४ घंटे में पूरा करती है। यह फर्क पृथ्वी के सूर्य के चारों ओर के परिभ्रमण के कारण है। यह फर्क प्रति दिन $26000/365.25$ (२४ घंटे के सेकंड / साल के दिन) = ३ मिनट ५६ सेकंड है।

ज्वार-भाटे के कारण पृथ्वी अक्षीय परिभ्रमण की गति धीरे-धीरे कम हो रही है। इस कारण दिन की लम्बाई बढ़ रही है। सौ वर्षों में यह वृद्धि ०.००१८ सेकंड होनी चाहिए। चंद्र के कारण समुद्र में ज्वार आता है। अर्थात् चंद्र के एकदम सामने, समुद्र के पानी में उभार आता है। पृथ्वी के गिर्द होने वाले चंद्र के परिभ्रमण के दरम्यान चंद्र जैसा-जैसा आगे बढ़ता है, वह इस उभार को भी उसी गति से अपने साथ रखने का प्रयत्न करता है। लेकिन पृथ्वी का पृष्ठभाग और परिणामतः समुद्र का तल, पृथ्वी के दैनंदिन अक्षीय भ्रमण के कारण इससे कई अधिक गति से आगे बढ़ता है। परिणाम यह होता है कि ज्वार का उभार और समुद्र तल इनके बीच घर्षण उत्पन्न होता है और पृथ्वी के अक्षीय परिभ्रमण की गति कम होती है।

इस कारण पृथ्वी का कोनीय संवेग (कोनीय गति X कोनीय प्रवेग को होने वाले प्रतिरोध का मान) कम होता है। संवेग के अक्षयत्व के सिद्धान्त के अनुसार उसी मात्रा में चंद्र के कक्षीय परिभ्रमण का कोनीय संवेग बढ़ता है और इस कारण चंद्र धीरे-धीरे पृथ्वी से दूर जा रहा है। पृथ्वी का अक्षीय परिभ्रमण और चंद्र का कक्षीय परिभ्रमण इनकी कोनीय गतियाँ समान होने तक यह खींचातानी शुरू रहेगी। गणना के अनुसार यह स्थिति ५ हजार करोड़ साल बाद आएगी तब पृथ्वी का दिन तथा चंद्रमास इनकी अवधि समान होगी और वह होगी हमारे विद्यमान ४७ दिनों इतनी। अर्थात् भूतकाल में चंद्र पृथ्वी के करीब होना चाहिए।

परांचन

- पृथ्वी की कक्षा का प्रतल अर्थात् क्रांतिवृत्त का प्रतल तथा विषुववृत्त का प्रतल एक नहीं हैं। उनके बीच 23.5° का कोन है।
- अक्षीय परिभ्रमण की गति के कारण पृथ्वी विषुववृत्त पर कुछ उभरी हुई तो ध्रुवों पर चपटी हो गयी है।

- कक्षा पर बढ़ते समय उसका अक्ष हमेशा कक्षा के प्रतल के साथ 66.9° का कोन करेगा। लेकिन वह अक्ष हमेशा स्वयं समांतर रहता है। इस कारण वह आकाश के एक स्थिर बिंदु की ओर तना हुआ रहता है। इस स्थिर बिंदु को ही हम 'ध्रुव बिंदु' कहते हैं।
- लेकिन विषुववृत्त और क्रान्तिवृत्त ये एक ही प्रतल में नहीं हैं। सूर्य और चंद्र इनका पृथ्वी के अन्य हिस्सों की तुलना में विषुववृत्त पर विद्यमान उभार पर अधिक आकर्षण होता है। यह आकर्षण हमेशा इस प्रयत्न में रहता है कि विषुववृत्त के उभारयुक्त हिस्से को अर्थात् विषुववृत्त प्रतल को क्रान्तिवृत्त के प्रतल में लाया जाए। लेकिन पृथ्वी की बड़ी घूर्णन गति की तुलना में यह आकर्षण काफी छोटा होता है। इस कारण यह प्रयत्न उतना सफल नहीं हो पाता। फिर भी अक्ष की स्थिति पर सूक्ष्म परिणाम तो होते ही रहता है। इस परिणाम को 'परांचन' कहते हैं। इस परिणाम के कारण पृथ्वी का अक्ष, क्रान्तिवृत्त के उत्तर ध्रुव बिंदु के गिर्द शंकु के आकार की गति से लट्टू जैसा घूमता रहता है। यह प्रदक्षिणा घड़ी की बढ़ने की दिशा में लगभग २६००० सालों में पूरी होती है। भू-ध्रुव निर्देशक मध्य और अनिश्चित त्रिज्या वाले उस काल्पनिक गोल पर के उस वलयाकार की कोनीय त्रिज्या 23.5° इतनी होती है। उस कारण आकाश का ध्रुव बिंदु वही नहीं रहता। उस वलय पर होने वाले बिंदु क्रमशः ध्रुवबिंदु रहते हैं। आज जो ध्रुव बिंदु है वह २६००० वर्षों बाद फिर दोबारा ध्रुव बिंदु होगा। अक्ष के इस भ्रमण के कारण संपात बिंदु (सूर्य के वार्षिक भासमान भ्रमण में वह भौगोलिक विषुववृत्त को जहाँ लांघता है वह बिंदु) क्रान्तिवृत्त पर पीछे-पीछे अर्थात् पश्चिम की ओर खिसकता है। इसे 'संपात चलन' कहते हैं।

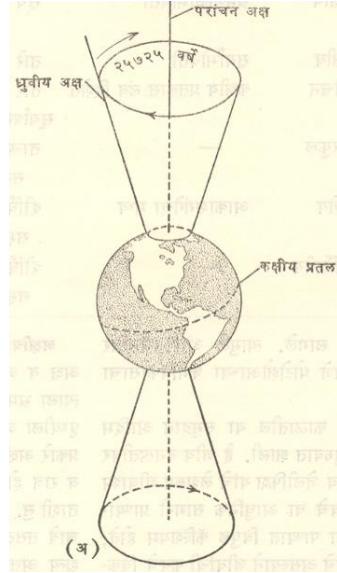


Image credit: Google images

अक्षांदोलन

चंद्र की पृथ्वी के परिभ्रमण की कक्षा क्रान्तिवृत्त के प्रतल में न होकर, उसके साथ 90° का कोन करती है। अर्थात् चंद्र अधिकतर क्रान्तिवृत्त पर नहीं होता। वह या तो उसके ऊपर होता है या नीचे। इसका भी मामूली परिणाम विषुववृत्त के उभार पर होता है। इस कारण अक्ष दिखा रहा ध्रुव बिंदु, जो ऊपर विवेचित किया गया है उस परांचन वलय पर न होकर उस वलय पर अपेक्षित बिंदु के गिर्द एक बिल्कुल छोटी विवृत कक्षा (लंबवलयकार) में लगभग १८ साल २२० दिनों में घूमता है। इस विवृत कक्षा का बृहदाक्ष ध्रुव बिंदु की दिशा में होकर वह १८ सेकंड और लघु अक्ष १४ सेकंड इतना होता है। इस कारण अक्ष के ध्रुव बिंदु का प्रत्यक्ष भ्रमण उपरोक्त वलय के कभी किंचित अंदरूनी बाजू में तो कभी किंचित बाह्य बाजू से होता है। इस तरह उसका भ्रमण सर्पाकृति होता है। ध्रुव बिंदु का यह सर्पाकृति मार्ग 23.5° के गोलाकृति को २६००० सालों में लगभग २८०० स्थानों पर लांघता है।

चंद्र की कक्षा क्रान्तिवृत्त के साथ जो 90° का कोन करती है, उस कारण होने वाले इस परिणाम को ' अक्षांदोलन ' कहते हैं। इस अक्षांदोलन के कारण संपात बिंदु का भी किंचित आंदोलन होता है। इस आंदोलन की खोज ब्रॅडली ने सन् १७२८ में ही की थी।

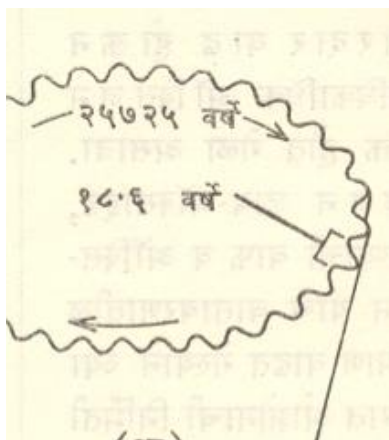


Image credit: Google images

अक्षांश-रेखांश

अक्षांश : किसी स्थान के अक्षांश का अर्थ है उस स्थान से पृथ्वी के केंद्र तक की रेखा तथा विषुववृत्त का प्रतल इनके बीच का कोण। या इसे ही गणितीय भाषा में इस तरह व्यक्त किया जाता है -

ध्रुव तारे की कोनीय ऊंचाई 1° से बढ़ाने के लिए जितना अंतर उत्तर की ओर जाना पड़ता है वह कोनीय अंतर याने एक अक्षांश।

नक्शे पर विषुववृत्त को समांतर पूर्व-पश्चिम वक्र रेखाओं (अक्ष वृत्तों) से, अक्षांश दिखाया जाता है। उसका विषुववृत्त से उत्तर की ओर और दक्षिण की ओर 0° से लेकर 90° , इस तरह मापन किया जाता है। $23^\circ 27'$ उत्तर अक्षवृत्त को ' कर्कवृत्त ' तो $23^\circ 27'$ दक्षिण अक्षवृत्त को ' मकर वृत्त ' कहते हैं। उसी तरह $66^\circ 30'$ उत्तर अक्षवृत्त को ' उत्तर ध्रुव वृत्त ' तो $66^\circ 30'$ दक्षिण अक्ष वृत्त ' को दक्षिण ध्रुव वृत्त ' कहते हैं । विषुववृत्त से लेकर तो मकर और कर्क वृत्त इनके दरम्यान के प्रदेश को ' उष्ण कटिबन्ध ' , उसके आगे के ध्रुव वृत्तों तक के प्रदेश को ' समशीतोष्ण कटिबन्ध ' व उसके आगे के ध्रुवों तक के प्रदेशों को ' शीत कटिबंध ' कहते हैं।

रेखांश- किसी स्थान का रेखांश याने उस स्थान का मध्यान्हवृत्त और मध्य मंडल या मूलरेखावृत्त इनके बीच का क्षैतिज कोण है। नक्शे पर, रेखांश को, दक्षिणोत्तर वक्र रेखाओं (रेखावृत्तों) द्वारा दर्शाया जाता है। ग्रीनीज स्थान का रेखावृत्त ' मूल रेखा वृत्त ' या शून्यरेखावृत्त ' माना जाता है। उसके पूर्व और पश्चिम में 0° से 180° तक रेखावृत्त गिना जाता है।

EQUATOR LATITUDE AND LONGITUDE

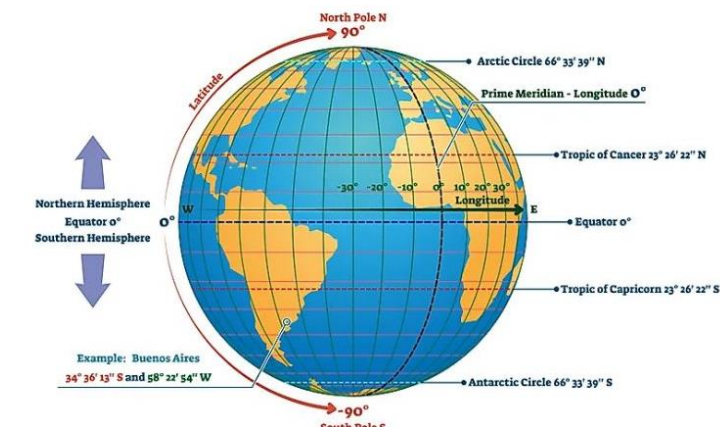


Image credit: Google images

ध्रुव प्रदेशों में दिन-रात

दिन के चौबीस घंटों का आमतौर पर बारह घंटे दिन और बारह घंटे रात ऐसा विभाजन है। पृथ्वी अपने अक्ष पर झुकी हुई है। इस कारण पृथ्वी जब सूर्य प्रदक्षिणा करती है तब दिन और रात में विभाजित उपरोक्त अवधि भी बदलती रहती है। विषुववृत्त का प्रदेश छोड़ दिया तो अन्यत्र गर्मी में दिन लम्बे होते रहते हैं और रातें छोटी होती हैं। सर्दी में स्थिति एकदम उलट होती है। हमारा महाराष्ट्र भी विषुववृत्त से अधिक दूर नहीं है। यहाँ गर्मी में दिन तेरह-चौदह घंटों का होता है। विषुववृत्त से जैसे-जैसे दूर जाएंगे वैसे-वैसे यह अंतर बढ़ते जाता है। इंग्लैंड में तो गर्मी में दिन अठारह घंटों का तो सर्दी में रात अठारह घंटों की होती है।

विषुववृत्त से सबसे दूर का प्रदेश है उत्तर तथा दक्षिण ध्रुव। उसके पास के प्रदेश में तो गर्मी और सर्दी में रात और दिन की समयावधि का हिसाब अत्यधिक व्यस्त है। इस प्रदेश में गर्मी में दिन लगभग चौबीस घंटों का तो सर्दी में रात लगभग चौबीस घंटों की होती है। अर्थात् कहा जा सकता है कि सूरज लगभग डूबता ही नहीं। वह क्षितिज से नीचे गया नहीं कि फिर सूर्योदय।

२१ मार्च के बाद उत्तर ध्रुव की सूर्य की दिशा में यात्रा शुरू होती है। उसी समय दक्षिण ध्रुव, सूर्य की विरुद्ध दिशा में खिसकने लगता है। २२ जून के दरम्यान उत्तर ध्रुव पूरी तरह सूर्य की ओर होता है। इसके बाद वह भले ही सूर्य की ओर हो लेकिन उसका झुकाव कम होने लगता है। २३ सितम्बर तक यही स्थिति रहती है। २३ सितम्बर के बाद मात्र दक्षिण ध्रुव सूर्य की दिशा में तो उत्तर ध्रुव विरुद्ध दिशा में जाने लगता है। २२ दिसम्बर के दरम्यान दक्षिण ध्रुव पूरी तरह सूर्य की दिशा में होता है। बाद में पूरी तरह उलटी प्रक्रिया शुरू हो जाती है। जिस दरम्यान उत्तर ध्रुव सूर्य की दिशा में होता है उस दरम्यान (२१ मार्च से २३ सितम्बर) आर्टिक वलय में सूर्य कभी डूबता ही नहीं। इसी काल में अंटार्क्टिक वलय में छह महीने की प्रदीर्घ रात्रि होती है। २३ सितम्बर से २१ मार्च के बीच उलट स्थिति रहती है।

राहू-केतु

पृथ्वी और चंद्र इनकी कक्षाएं भिन्न प्रतलों में हैं। उनमें 90.2° का कोन है। इस कारण चंद्र की कक्षा, पृथ्वी कक्षा के अर्थात् आयनिक वृत्त के प्रतल में उसे दो बिंदुओं में छेद देती है। इन बिंदुओं को 'पात' कहते हैं। जिस पात बिंदु के पास चंद्र आयनिक वृत्त के दक्षिण से उत्तर की ओर जाता है उसे 'आरोही पात' या 'राहू' और जिस पात बिंदु के पास वह उत्तर से दक्षिण की ओर जाता है उसे 'अवरोही पात' या 'केतु' कहते हैं। अर्थात् ये दोनों बिंदु पृथ्वी के विरुद्ध अंगों में होते हैं।

पृथ्वी के साथ-साथ सूर्य तथा अन्य ग्रह, पिंडों के आकर्षण के कारण चंद्र की कक्षा धीरे-धीरे बदलती है और उस कारण राहू तथा केतु इन्हें उलटी (विलोम) गति प्राप्त होती है। राहू तथा केतु इन्हें जोड़ने वाली रेखा की एक परिक्रमा १८.६ वर्षों में पूरी होती है। इस कारण एक बार हुए चंद्र या सूर्य ग्रहण के समान ही अगला ग्रहण १८ साल और ११ दिनों के बाद (१८.६ चंद्र सालों के बाद) होता है। इसे ही 'सारोस' या 'ग्रहण चक्र' कहते हैं।

ग्रहण वर्ष का आधा अवधि अर्थात् लगभग १७३ दिनों (छह मासों से थोड़ा कम) के बाद सूर्य, राहू से हटकर केतु के पास पहुंचता है। इस कारण एक बार ग्रहण होने के बाद, छह महीनों उपरांत दोबारा ग्रहणों का काल आता है।

फल ज्योतिष में राहू को नव ग्रहों में से आठवां ग्रह माना गया है। वास्तव में वह अन्य ग्रहों जैसा ग्रह, है ही नहीं।

कोरिऑलिज

मानो, दिल्ली से मुंबई एक सीधी रेखा निकाली और उस रेखा के अनुसार किसी वैमानिक ने अपने हवाई जहाज को बढ़ाया तो वह मुंबई कभी नहीं पहुंचेगा। उसका विमान मुंबई से दूर अरबी समुद्र पर पाया जाएगा।

उत्तर गोलार्ध की गतिमान वस्तुएं दाहिनी ओर तो दक्षिण गोलार्ध की बायीं ओर विचलित होती हैं। पृथ्वी के स्वांगभ्रमण का यह परिणाम है। इसे ' कोरिऑलिज परिणाम ' ऐसा नाम है। कोरिऑली यह १९ वीं सदी का एक श्रेष्ठ गणितज्ञ था। उत्तर और दक्षिण ध्रुव प्रदेशों में, जहाँ पृथ्वी की परिवलन गति अधिक होती है वहाँ यह परिणाम खास तौर पर देखने में आता है। विषुववृत्त की दिशा में यह कम-कम होता जाता है और विषुववृत्त पर शून्य होता है।

इसकी कीमत पदार्थ की गति पर भी निर्भर होती है। इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण इतिहास में देखने मिलता है- प्रथम महायुद्ध में जर्मन सेना ने बिग बेर्था नामक भारी तोपों का उपयोग, पॅरिस पर बमबारी करने के लिए किया था । जहां से गोले दागे जाते थे वहां से गोलों को पॅरिस शहर तक आने तीन मिनट लगते थे। लेकिन कोरिऑलिज परिणाम के कारण वे अपने मार्ग से विचलित होकर लक्ष की उत्तर दिशा में लगभग एक मील दूर गिरते थे। इसलिए ऐसा कहा जाता है कि इस परिणाम के कारण पॅरिस विध्वंस से काफी कुछ बच गया।

लेकिन दूसरी ओर यह माना जाता है कि दुनिया में आने वाले कई चक्रीय तूफानों के लिए यह परिणाम ही कारण है । पृथ्वी के वातावरण में अचानक कहीं कम दबाव का क्षेत्र पैदा होता है। अधिक दबाव के प्रदेश से कम दबाव की ओर बहना यह हवा का गुणधर्म है। अर्थात् इस कम दबाव की ओर चारों दिशाओं से हवा आना शुरू होगी। मानों ऐसा प्रदेश उत्तर गोलार्ध में उत्पन्न हुआ। कोरिऑलिज बल इन हवाओं को सीधी रेखा में बहने नहीं देगा। किसी भी दिशा से आने वाली हवा का प्रवाह सीधे हाथ को विचलित होगा। जैसे पूर्व से आने वाली हवा दक्षिण की ओर, दक्षिण की पश्चिम की ओर और पश्चिम की उत्तर की ओर तो उत्तर की पूर्व की ओर खींची

जाएगी। इन सबका एकत्र परिणाम होगा उस कम दबाव के क्षेत्र के चारों ओर एक जबरदस्त भंवर। यह भंवर ही चक्रीय तूफान है जो विध्वंस का कारण बनता है।

मॅग्नेटोस्फियर

हमारी पृथ्वी एक चुंबकीय क्षेत्र द्वारा चारों ओर से घिरी हुई है। इस क्षेत्र को हम 'मॅग्नेटोस्फियर' कहते हैं। यह क्षेत्र पृथ्वी के अंतर्गत हिस्से में हो रही डायनामो स्वरूप प्रक्रिया द्वारा जनित होता है। पृथ्वी के अंदर, सुचालक द्रव धातुएं, संवहन (ताप एक्सचेंज) और गुरुत्व बल के कारण गतीज अवस्था में रहती हैं। जिस प्रकार एक डायनामो की चार्ज वाइंडिंग की क्वाइल, घूमने पर चुंबकीय क्षेत्र पैदा करती है, उसी प्रकार द्रव का यह द्रव्यमान, अपने आपमें उत्तेजक चुंबक क्षेत्र (Self Exciting) और आवर्ति विद्युत धाराओं के माध्यम से, परिवहनरत पृथ्वी की चुंबकीय शक्ति पैदा करता है। यह क्षेत्र हमें अंतरिक्ष से आने वाले घातक विकिरणों से बचाता है। इसके लिए यह सुदूर अंतरिक्ष से आने वाले उच्च ऊर्जाधारी कणों को परावर्तित कर देता है अथवा उन्हें 'वॉन एलेन रेडिएशन बेल्ट' द्वारा शोषित कर लिया जाता है। इस बेल्ट का पता अमेरिकी उपग्रह एक्सप्लोरर १ द्वारा १९५८ में लगाया गया था। यह बेल्ट भी पूरी पृथ्वी को घेरे हुए है। मॅग्नेटोस्फियर करीब ९,२५,००० कि.मी. उंचाई तक फैला है।

चुंबकीय तूफान : (Magnetic Storm)- सौर तेजाग्नि (Solar Flare) या सूर्य कलंक द्वारा पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र में उत्पन्न होने वाला विक्षोभ।

आयन मंडल : (Ionosphere) - ऊपरी वायु मंडल का वह क्षेत्र जहां काफी मात्रा में मुक्त आवेशी कण (Electrons + Ions) प्रकट होते हैं और जहां से रेडियो तरंगों का परावर्तन होता है।

लवरेज बिंदु : - वह बिंदु जहां पृथ्वी और सूर्य इनके गुरुत्वाकर्षण एकदूसरे को निरंक करते हैं। यह पृथ्वी से १५ लाख कि.मी. दूरी पर है।

भूचुंबक का उलटफेर

पृथ्वी एक बड़ा चुंबक है। पृथ्वी के चुंबकत्व का मूल, यह पृथ्वी के पौने छह हजार अंश सेल्सियस तापमान वाले द्रव रूप में विद्यमान गर्भ हिस्से में है। इस हिस्से के ऊपर के और

नीचे के हिस्सों के तापमानों और दबाओं में फर्क है। इस कारण इस द्रव में भिन्न-भिन्न प्रवाह पैदा होते हैं। इन प्रवाहों के कारण विद्युत प्रवाह भी पैदा होते हैं और पृथ्वी को चुंबकत्व प्राप्त होता है। पृथ्वी के दो चुंबकीय ध्रुव ये पृथ्वी के भौगोलिक ध्रुवों के पास ही हैं। लेकिन आश्चर्य यह है कि इन चुंबकीय ध्रुवों की पृथ्वी के इतिहास में, कई बार अदलाबदली हुई है।

सन् १८५० में अँचिल्स डेसिसे इस फ्रेंच वैज्ञानिक ने यह निरीक्षण दर्ज किया कि जिन खनिजों के चुंबकीय गुणधर्म होते हैं, ऐसे खनिजों की पत्थर में दिशा, प्राकृतिक भूचुंबकत्व की दिशा के अनुरूप होती है। इसके बाद १८९९ में कुछ प्राचीन बर्तनों के गठन का निरीक्षण करते समय इटालियन संशोधक गिउसेप्पे फोल्धेराइटर को दिखा कि बर्तन की मिट्टी में चुंबकीय खनिजों की दिशा बर्तनों के कालानुसार भिन्न-भिन्न है।

१९०६ में फान्सिसी भूवैज्ञानिक मासिफ, सेंट्रल पठार पर कुछ लाख वर्ष पुराने पत्थरों का निरीक्षण कर रहे थे। उन पत्थरों के चुंबकीय खनिजों की दिशा अब विद्यमान भूचुंबक के एकदम उलट होने की बात ध्यान में आयी। उससे ब्रुन्हेस इस नतीजे पर पहुँचे कि कुछ लाख साल पहले जब ये चट्टानें ठोस बनीं तब पृथ्वी के चुंबकीय ध्रुवों की दिशा, अभी की दिशा के विरुद्ध होनी चाहिए। उनके इस निष्कर्ष को पचास साल बाद स्वीकृति मिली।

जब पृथ्वी का शिलारस उसके अंतर्भाग से बाहर आता है तब उसकी द्रव अवस्था के कारण उसमें अंतर्भूत खनिज सहजता के साथ परिस्थितिनुकूल दिशा धारण कर सकते हैं। इस कारण यह रस गाढ़ा होते समय पत्थरों में विद्यमान चुंबकीय खनिजों की दिशा पृथ्वी के उस समय के उत्तर-दक्षिण चुंबकीय ध्रुवों के अनुकूल बची रह जाती है। लेकिन जब यह शिलारस एकबार गाढ़ा हो जाता है तो उन खनिजों की हलचल कायम रुक जाती है। उसके बाद भले ही भूचुंबक की दिशा में बदलाव आया तो भी इन खनिजों के लिए अपनी दिशा बदलना संभव नहीं होता। अतः प्राचीन समय के भूचुंबकत्व का अनुसंधान करने, ऐसी चट्टानें उपयोगी सिद्ध होती हैं। (लोकसत्ता, नागपुर, कुतुहल, २०-५-२०१९)

*इसी कड़ी में अब यह स्थापित हो चुका है कि पिछले दो हजार सालों में पृथ्वी का चुंबकीय बल कम होना शुरू हुआ है और पिछले १६० सालों से इसकी कम होने की गति बढ़ गयी है। १८३५ से लेकर आजतक वह १० % कम हो चुकी है। नासा तथा इसा के वैज्ञानिकों ने

चेतावनी दी है कि अगले कुछ वर्षों वह आधा कम हो जाएगा और रूपान्तर ध्रुवों की अदलाबदली में हो जाएगा। जब ऐसा होगा तब पृथ्वी, अंतरिक्ष से आते विकिरण से सुरक्षित नहीं रहेगी।

*यूरोपीय स्पेस एजेंसी के 'स्मार्म' योजना अंतर्गत कार्यरत तीन उपग्रहों से प्राप्त जानकारी के आधार पर यह पता लगा है कि उत्तर ध्रुव धीरे-धीरे औसतन १० कि.मी. प्रति वर्ष की गति से दक्षिण की ओर खिसक रहा है। १९०० की बाद की सदी में वह आज तक १००० कि.मी. खिसक गया है।

*पृथ्वी का आन्तरिक कोअर २५०० कि.मी. से अधिक आरपार है तो बाह्य कोअर २२५० कि.मी. मोटी है। इनके ऊपर अन्य परतें हैं। १९९६ में किये गये निरीक्षणों के आधार पर यह स्थापित हुआ है कि यह ठोस अवस्था वाला केंद्र पृथ्वी की ऊपरी परतों की तुलना में तेज घूमता है। लगभग ४०० वर्षों में एक चक्कर का फर्क होता है।

*अंतरिक्ष से निगरानी कर रहे नासा के 'इमेज फॉर मॉनेटोपॉज - टू अरोरा ग्लोबल एक्सप्लोरेशन सर्च लाइट' तथा यूरोपीयन स्पेस एजेंसी के 'सर्च लाइट क्लस्टर' इनसे मिली जानकारी के अनुसार पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र में छेद हो रहे हैं और क्षेत्र कमजोर होता जा रहा है। अर्थात् पृथ्वी के इनर कोअर की गति कम होती जा रही है। चुंबकीय क्षेत्र क्षीण होने से अंतरिक्ष से आता घातक विकिरण पृथ्वी तक पहुँचेगा। वैज्ञानिकों के अनुसार प्रत्येक तीन लाख साल बाद पृथ्वी के कोअर का घूर्णन बंद हो जाता है। कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी के भू-भौतिकी के वैज्ञानिक गैरी ग्लाइटजमेडर के मतानुसार मंगल ग्रह के निर्जीव होने का एक कारण यह भी है कि उसके कोअर का घूमना बंद हो गया है।

(जियो फिजिसिस्ट जे. माविन हर्नडोन के अनुसार पृथ्वी के ध्रुवों में अंतिम बार परिवर्तन ७,८०,००० वर्ष पहले हुआ था। लेकिन आन्तरिक कोअर स्थिर स्थिति में नहीं रह सकता। ऐसा हुआ भी तो घूर्णन फिर शुरू हो जाएगा और क्षेत्र भी लौट आएगा। भले ही पृथ्वी के ध्रुव वही रहें या उलट जाए)।

पृथ्वी के भौगोलिक और चुंबकीय ध्रुव -

पृथ्वी यह एक बड़ा चुंबक है। लेकिन उसके चुंबकीय ध्रुव उसके भौगोलिक ध्रुवों से नहीं मिलते। चुंबकीय दक्षिण ध्रुव कॅनडा में उत्तर ध्रुव अंटार्कटिका महाद्वीप में भौगोलिक दक्षिण

ध्रुव से लगभग ८०० कि.मी. दूरी पर है। पृथ्वी की चुंबकीय रेखाएं उत्तर ध्रुव पर अर्थात् दक्षिण गोलार्ध में शुरू होकर उत्तर गोलार्ध में विद्यमान चुंबकीय दक्षिण ध्रुव पर विलीन होती हैं।

ध्रुव तारा

पृथ्वी के विषुववृत्त के उभार पर चंद्र, सूर्य तथा अन्य ग्रहों के गुरुत्वाकर्षण बल का असर यह है कि हमारे ग्रह का घूर्णनाक्ष व्योम में धीरे-धीरे लट्टू जैसा झकोरे खाते हुए घूमता है। इस तरह घूमते हुए लगभग २५,८०० वर्षों में एक शंकु निरूपित करके एक चक्कर पूरा करता है। इस शंकु का शीर्ष कोन 46^0 है। अभी तो यह धुरी उत्तर दिशा में ध्रुव तारे की ओर है। ध्रुव तारा पृथ्वी की धुरी के सीध में स्थित है। इसलिए यह हमें हमेशा उत्तर दिशा में दिखता है। लेकिन जैसा कि ऊपर बताया गया है, घूर्णन के दरम्यान धुरी द्वारा शंकु निरूपित करने के कारण यह धुरी अंतरिक्ष में स्थिर नहीं है। अतः यह हमेशा आज के ध्रुव तारे की ओर स्थिर नहीं रहेगी। वर्तमान में पोलरिस तारा हमारा ध्रुव तारा है। लेकिन १२००० वर्षों पश्चात पोलरिस तारे के स्थान पर लिरा नक्षत्र में स्थित एक अन्य तारा ' वेगा ' आकाश में दिखेगा या वह उत्तर दिशा प्रदर्शित करेगा। ५००० साल पहले वहां ' थुबैन ' नामक तारा था।

भारतीय ज्योतिषी कमलाकर भट्ट ने सर्वप्रथम ध्रुव तारे को चल तारा कहा और बताया कि वह स्थिर नहीं है, जैसा कि माना जाता है।

मिलानकोव्हिच (१८७९-१९५८) के हीमयुग

कुछ हजार साल बाद पृथ्वी का पर्यावरण या हवामान बहुत ठंडा होता है , उत्तर गोलार्ध का बड़ा हिस्सा बर्फ के नीचे चला जाता है। निश्चित समय के बाद आने वाले इन हीमयुगों के पीछे जो कारण हैं उन्हें खोजने का श्रेय सर्बिया के खोजकर्ता मिलतिन मिलानकोव्हिच को जाता है। पृथ्वी का सूर्य के गिर्द भ्रमण और अपने अक्ष के गिर्द भी होने वाला घूर्णन इनके दरम्यान होने वाले विविध चक्रीय बदलों का यह एकत्रित परिणाम है। इन विविध बदलों के कारण, पृथ्वी पर पहुँचने वाली उष्मा का प्रमाण कुछ समय के लिए लक्षणीय मात्रा में कम होने से हिमयुग लौटते रहते हैं, यह बात गणितीय भाषा में मिलानकोव्हिच ने दिखा दी।

पृथ्वी की सूर्य प्रदक्षिणा के संदर्भ में एक चक्रीय बदल होता है। इससे पृथ्वी की विवृत्तता (लंबवर्तुलाकारिता) एक लाख वर्षों के चक्रानुसार कम-अधिक होती है। जब वह बढ़ते जाती है तब इस प्रदक्षिणा के दरम्यान पृथ्वी का सूर्य से कमाल अंतर बढ़ते रहता है। तब शीतऋतु तीव्र होने लगती है।

दूसरा चक्रीय बदल यानि पृथ्वी के अक्ष के कोन में होनेवाला बदल। यह कोन 23.5° है। लेकिन ४१,००० वर्षों के चक्र के अनुसार लगातार बदलता है। यह कोन जैसा बढ़ते जाता है, शीतऋतु तीव्र होती जाती है।

तिसरा बदल है, खुद इस अक्ष का लटटू जैसा घूमना। इसे परांचन गति कहते हैं। इस अक्ष की दिशा में लगातार बदल होते रहता है। इस बदल का चक्र ३६००० वर्षों का है। पृथ्वी का अक्ष किस दिशा में तना हुआ है, इससे यह निश्चित होता है कि किस गोलार्ध में शीतऋतु कब आएगी।

तीनों के चक्रीय काल अलग-अलग हैं। फिर भी ऐसी स्थिति आ सकती है कि तीनों के परिणामों का एकदूसरे पर व्यापन (Overlapping) हो। तब आप शीतऋतु के तीव्रता की कल्पना कर सकते हैं। हिमयुग के पीछे यही कारण है।

मिलानकोविच ने अपना यह सिद्धान्त छह सौ पच्चीस पृष्ठों के ग्रंथरूप में वर्ष १९४१ में सर्बियन रॉयल अकेडेमी को प्रस्तुत किया। इस सिद्धान्त पर शुरू में काफी टिका-टिप्पणी हुई। लेकिन मिलानकोविच की १९५८ में मृत्यु के बाद, १९७० के दशक में सागर तल पर किये गये उत्खनन में, हिमयुग होने के सबूत हाथ आए और इस सिद्धान्त को स्वीकार्यता प्राप्त हुई।

और पृथ्वी

वातावरण—

ट्रोपोस्फियर : सतह से १२ कि.मी. तक।

स्ट्रॅटोस्फिअर : उसके ऊपर लेकिन सतह से ३० कि.मी. तक। इसीमें ओझोन परत है।

मेसोस्फिअर : फिर, सतह से ८० कि.मी. ऊंचाई तक। यहाँ तापमान - ८५ डि. सें. होता है।

थर्मोस्फिअर : फिर, सतह से १०० कि.मी. ऊंचाई तक। इसके ऊपर अंतरिक्ष की शुरुआत मानी जाती है।

आयोनोस्फिअर : थर्मोस्फिअर के ऊपर।

एक्झोस्फिअर : लगभग १०,००० कि.मी. ऊंचाई तक मौजूद है। लेकिन इसमें वायुमंडल लगभग नहीं है।

गोकारोना : आधुनिक अनुसंधान के अनुसार हैड्रोजन परमाणु का बादल अंतरिक्ष में 6,30,000 कि.मी. तक फैला है। इसके अन्वेषक है, रूसी अनुसन्धान इन्स्टीट्यूट के इगार बालीऔकिन। चंद्रमा इस हैड्रोजन के बहुत ही महिन वातावरण में से गुजरता है।

समुद्र सतह से 100 कि.मी. ऊंचाई पर खींची गयी काल्पनिक रेखा को ' कारमेन रेखा ' कहते हैं। इसके ऊपर के अंतराल को अंतरिक्ष।

- पृथ्वी यह दूसरी पीढ़ी का ग्रह हो सकता है।
- पृथ्वी की परिधी की कीमत सर्वप्रथम निकालनेवाला इरेटोस्थिनस था।
- आर्यभटीय : पृथ्वी गोल है। पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है। पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है।
- पृथ्वी के लिए रोशे (Roche) मर्यादा १६००० कि.मी. है। अर्थात् कोई बड़ा पिंड जो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण उससे जुड़ा है, अगर इस दूरी के अंदर आ गया तो वह ज्वारीय (Tidal) बल के कारण छिन्न-भिन्न हो जाएगा। उपग्रह जैसी छोटी चीजें अन्य बलों द्वारा नियंत्रित होती हैं।
- पृथ्वी पर सबसे गहरा गढ़वा (१२.०७० कि.मी.) खोदा गया है (कोला सुपरडीप बोअर होल)। यह तत्कालीन सोवियत यूनियन में है। इतनी खुदाई के लिए २६ साल लगे। इस गहराई पर तापमान २२० डिग्री सेल्सियस था। इससे अधिक गहराई में जाने पर खुदाई के उपकरण पिघल जाते।
- वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी पर जीवनधारी प्रजातियां ८७ लाख होनी चाहिए।



Image credit: Google images

भाग ४

- क्वांटम जगत
- सापेक्षता

१. क्वांटम जगत

जगत की निर्धार्यता

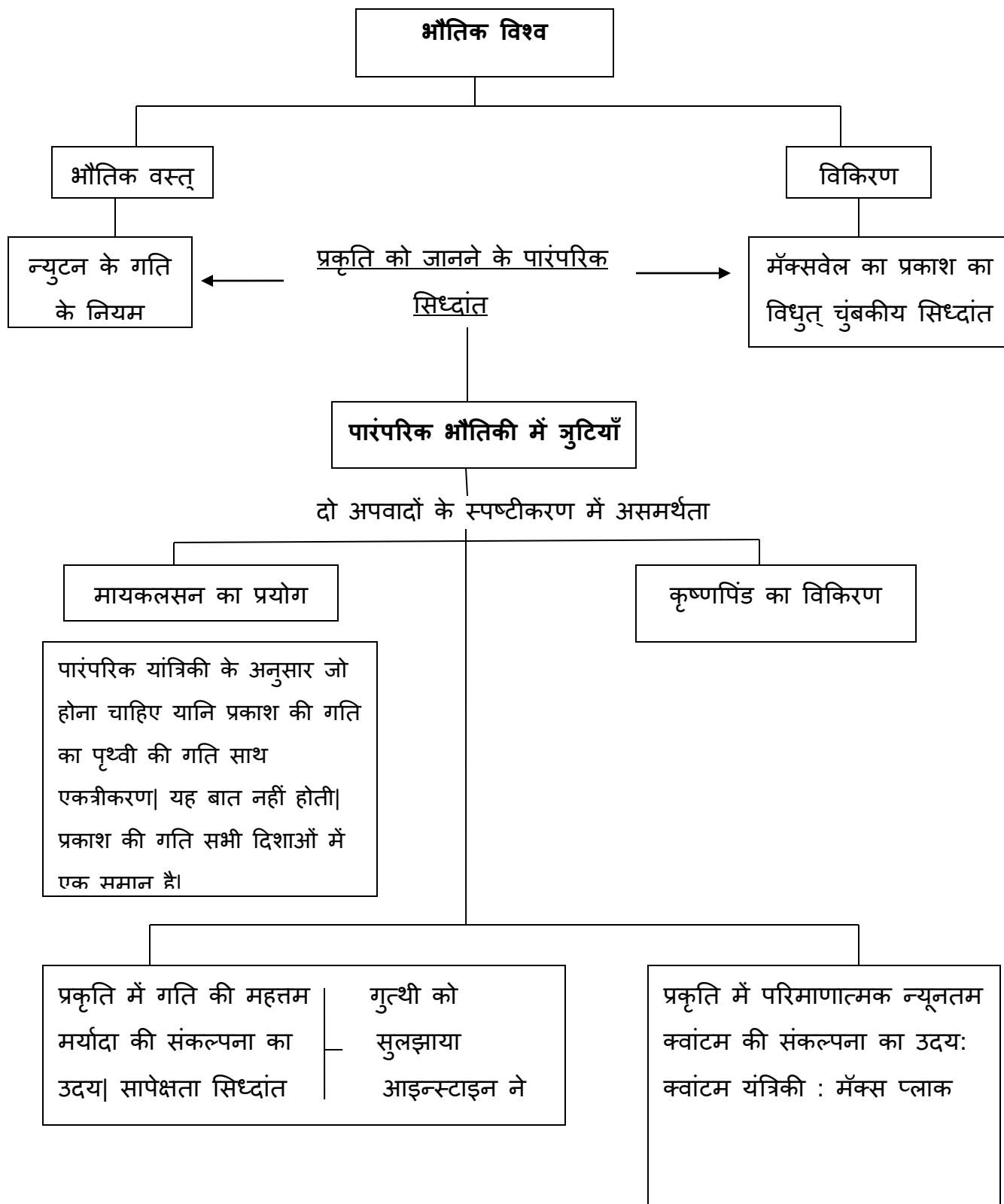
न्यूटन के सिद्धांत से प्रेरित होकर १९ वीं सदी के प्रारंभ में, एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक मार्किस द लाप्लास ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि ब्रह्माण्ड पूरी तरह निर्धार्य है। वैज्ञानिक नियमों का एक ऐसा समुच्चय होना चाहिए जो कि हमें ब्रह्माण्ड में घटित होने वाली किसी भी घटना का पूर्वानुमान लगाने में समर्थ कर दे, जब हम एक निश्चित समय पर ब्रह्माण्ड की पूर्ण स्थिति से परिचित हो। उदा. यदि हम किसी नियत समय पर सूर्य और ग्रहों के वेग जानते हैं, तो हम भविष्य के किसी अन्य समय पर सौर परिवार की सटीक स्थिति की भविष्यवाणी, न्यूटन के नियमों के आधार पर कर सकेंगे। यह तो हुआ न्यूटन के नियमों को यांत्रिक ढंग से लागू करने का प्रश्न। लेकिन लाप्लास, यह तर्क मानव व्यवहार सहित प्रत्येक वस्तु के नियमन को लागू करने के लिए उद्यत हुए।

एक ओर तो यह विश्व की प्रत्येक बात पूर्वनिर्धारित होने की ओर अंगुलीनिर्देश करता है। फिर मनुष्य की निर्णय स्वतंत्रता के लिए कहा स्थान बचता है? इसलिए इसका विरोध हुआ।

तो दूसरी ओर इसका विरोध उन लोगों ने भी किया जो इस तत्व को संसार की नियति में ईश्वरीय हस्तक्षेप करने की स्वतंत्रता के अर्थात् चमत्कार स्वीकार करने के भी आड़े आ रहा, मान रहे थे।

पूर्वतिहास

- उन्नीसवीं सदी का अंतिम भाग : लॉर्ड केल्विन, "अंततः विज्ञान ने सभी मूलभूत समस्याओं को सुलझा लिया है।"
- मैक्स प्लैंक के शिक्षक ने उनको सलाह दी थी कि, "वे भौतिकशास्त्र विषय न ले, चूंकि ये विषय लगभग पूर्णता को पहुँच चुका है। जो सुलझाना बाकी हैं, ऐसे केवल दो अपवाद बचे हैं—१) विकिरण सिद्धांत के कारण उत्पन्न कठिनायाँ। २) मायकलसन के प्रयोग के परिणाम।"



कृष्णिका विकिरण

परिपूर्ण कृष्ण पिंड

कृष्ण पिंड, वह पिंड होता है जो उसपर गिरने वाले संपूर्ण विद्युत चुंबकीय विकिरण को सोख लेता है। आदर्श अवस्था में वह किसी भी दिशा से आ रहा किसी भी आवृत्ति का प्रकाश पूरी तरह सोख लेता है और कुछ भी परावर्तित नहीं करता। चूंकि वह सामान्य तापमान पर भी पूरा दृश्य प्रकाश सोख लेता है और कोई किरण आपकी आंखों तक नहीं पहुँचती, वह पूरी तरह काला दिखता है। लेकिन वह तापीय विकिरण, उसके तापमान के अनुसार सलग रंगपट्ट उत्सर्जित भी करता है।

वास्तव में निरपेक्ष शून्य तापमान से अधिक तापमान वाले सभी पिंड किसी न किसी परिमाण में फोटॉन्स उत्सर्जित करते ही हैं।

जर्मन भौतिकविद् गुस्ताव रॉबर्ट किरचॉप ने वर्ष १८६० में 'कृष्णिका' की संकल्पना प्रस्तुत की, जिसके अनुसार यह एक ऐसी ठोस वस्तु होती है, जो अपनी सतह से प्रकाश के किसी भी विकिरण को परावर्तित नहीं करती। एक कृष्णिका सभी आवृत्तियों के विकिरण की वास्तविक उत्सर्जक और अवशोषक होती है। वास्तव में यह एक शुद्ध सैद्धान्तिक पिंड है। प्रत्यक्ष में ऐसा पिंड मिलना असंभव है। लेकिन कास्ट आयन जैसे कुछ पदार्थ उसके काफी करीब आते हैं।

एक पोला गोल जिसमें एक छोटा सा छेद है यह आदर्श कृष्ण पिंड के उदाहरण के रूप में लिया जाता है। इसमें उस सूक्ष्म छेद से एक बार अंदर भेजा विकिरण बाहर नहीं आ सकता। वह गोल की अंदरूनी दीवार से बारबार टकराते रहेगा और उसका तापमान समान कर देगा।

पिंडों को जब गर्म किया जाता है तो वे तापित वस्तुएं, किरणें, ऊर्जा उत्सर्जित करती हैं। इन विकिरणों की तरंग लम्बाई के अनुसार ये मुख्यतः रंगपट्ट के इन्फ्रारेड हिस्से में आते हैं। जब कोई वस्तु ३०० से ४०० डिग्री सेंटीग्रेड तापमान तक गर्म की जाती है तो उससे अधिकांशतः अवरक्त या उष्मीय तरंगें ही उत्सर्जित होती हैं। जैसे-जैसे वस्तु का तापमान बढ़ता है, उसका रंग पहले लाल फिर नारंगी क्रम से और अंत में सफेद या नीला दिखने लगता है। कृष्ण पिंड विकिरण यह औष्मीय विकिरण है जिसे पिंड, उसके तापमान के कारण उत्सर्जित करता है। उष्ण पिंड के पास आप अपना हाथ पकड़िए, आप उष्मा अनुभव करेंगे भले ही वहाँ कोई गर्म हवा नहीं

होती। कृष्ण पिंड विकिरण यह प्रकाश या विद्युत चुंबकीय तरंगों के अलग-अलग आवृत्तियों का (रेडिओ, अवरक्त, क्ष किरणें, दृश्य किरणें आदि) पुंज होता है। जिसके घटक पिंड के तापमान पर निर्भर होते हैं और केवल तापमान पर निर्भर होते हैं। अगर वह आवश्यक उतना गर्म नहीं है तो वह काला होगा।

१९०१ तक ऐसा माना जाता था कि ऊर्जा का उत्सर्जन यह सातत्यपूर्ण विद्युत चुंबकीय तरंगों के रूप में होता है। अतः पूर्ण कृष्ण पिंड से होने वाली ऊर्जा के उत्सर्जन का वर्णपट सातत्यपूर्ण ही होना चाहिए। लेकिन वर्णपट विवक्त पाया गया जिसका कारण आगे मॅक्स प्लैंक ने दिया।

लेकिन गर्म कृष्णिका अर्थात् आदर्श ठोस परमाणु, ऊर्जा का लगातार उत्सर्जन नहीं कर सकते। ये परमाणु अलग-अलग परिमाणों में ऊर्जा का उत्सर्जन करते हैं और टी.व्ही. अँटिना की तरह ही अपने ऊपर आयातित होने वाले विकिरणों का अवशोषण कर सकते हैं। लेकिन एक अँटिना की तुलना में, जो आनेवाली तरंगों की सभी आवृत्तियों का लगातार अवशोषण कर लेता है, वैसा नहीं तो ये विद्युत चुंबकीय विकिरण में समाहित ऊर्जा को अलग-अलग पैकेटों में या क्वांटों में, जैसा कि इनका नामकरण हुआ है, अवशोषित करते हैं। दूसरे शब्दों में, परमाणुओं द्वारा ऊर्जा का अवशोषण केवल एक निश्चित आवृत्ति पर किया जा सकता है, सभी आवृत्तियों पर नहीं। वर्ष १८९५ और १९०० के बीच वैज्ञानिक तप्त कृष्णिका द्वारा विकिरित ऊर्जा के स्पेक्ट्रम में ऊर्जा वितरण को समझने की कोशिश कर रहे थे। ब्रिटिश वैज्ञानिक लॉर्ड रॉले तथा सर जेम्स जिन्स की गणनाओं ने यह सुझाव दिया कि किसी भी तप्त वस्तु अथवा पिंड द्वारा हर स्थिति में समान रूप से सभी आवृत्तियों पर विद्युत चुंबकीय तरंगों का उत्सर्जन करना चाहिए।

अब ऐसी प्रति सेकंड तरंगों की संख्या असीमित है। तो समस्त उत्सर्जित ऊर्जा भी असीमित होगी। यह हास्यास्पद निष्कर्ष है। प्रत्यक्ष में ऐसा नहीं होता।

किसी ठोस वस्तु से निकलने वाले विकिरण की तीव्रता एक निश्चित तरंग दैर्घ्य तक बढ़ती रहती है लेकिन इसके बाद तरंग दैर्घ्य के बढ़ने पर वह कम होने लगती है। (१८९६ में जर्मन भौतिकविद् विल्हेम वीम ने एक विकिरण नियम प्रतिपादित किया लेकिन वह केवल लघु तरंग दैर्घ्य पर लागू होता था तो जेम्स जिन्स और लॉर्ड रॉले जो नियम बनाया था वह केवल

दीर्घ तरंग दृश्य पर लागू होता था।) १९ वीं सदी तक यह तो ज्ञात हो चुका था की किसी ठोस वस्तु में परमाणुओं के कंपन के कारण विकिरण उत्पन्न होता है।

प्रकाश विद्युत परिणाम -

किरण पड़ते ही कुछ पदार्थों से होने वाला इलेक्ट्रॉन्स का उत्सर्जन: वर्ष १९०२ में ही वैज्ञानिक लेनार्ड ने दिखा दिया था कि धातु में से इलेक्ट्रॉन्स उत्सर्जित होने के लिए कुछ आवश्यक न्यूनतम कंपन संख्या के प्रकाश किरणों की आवश्यकता होती है। अन्यथा कितनी भी प्रखर प्रकाश शलाका डालने पर भी उत्सर्जन नहीं होता। दूसरे निष्कर्ष के अनुसार प्रकाश किरणों की कंपन संख्या बढ़ाने पर उत्सर्जित होने वाले इलेक्ट्रॉन्स की गतिज ऊर्जा बढ़ती है। लेकिन अगर प्रकाश की केवल तीव्रता बढ़ाई तो उत्सर्जित इलेक्ट्रॉन्स की ऊर्जा न बढ़ते हुए, इलेक्ट्रॉनों की संख्या बढ़ती है और विद्युत प्रवाह तीव्र होता है। उत्सर्जित इलेक्ट्रॉन्स की गतिज ऊर्जा प्रकाश किरणों की बढ़ती तीव्रता के साथ बढ़नी चाहिए थी, लेकिन वह कंपन संख्या की वृद्धि के साथ बढ़ती है। ऐसा क्यों ? मैक्सवेल का विद्युत चुंबकीय सिद्धान्त ऐसे ही कई प्रश्नों का उत्तर देने में अपने आपको असमर्थ पा रहा था।

मैक्स प्लैंक

उन्नीसवीं सदी में विद्युत कंदील बाज़ार में आये। वैज्ञानिकों में उत्सुकता थी कि उष्ण पिंड किस तरह प्रकाश और उष्मा का उत्सर्जन करते हैं ताकि बाज़ार की दृष्टि से कोई मानकीकरण किया जा सके।

क्लासिकल यांत्रिकी के अनुसार जिस मात्रा में आप तापमान बढ़ाएंगे उसी के अनुसार उत्सर्जन बढ़ता है ।

लेकिन उस समझ में कही तो कमी थी। लोहे को लगातार गर्म करते रहने पर उसका रंग लगातार बदलता है। अर्थात् उसके द्वारा किया जा रहा उत्सर्जन रंगपट्ट के उस-उस विशिष्ट बैंड के अनुसार हो रहा है और वह लगातार बदल रहा है। बढ़ते तापमान के अनुसार उत्सर्जित होने वाली तरंगें दृश्य पट के नीले रंग की ओर जा रही हैं। एक बिंदु ऐसा आना चाहिए कि वह दृश्यपट्ट के बाहर की तरंगें उत्सर्जित करें। तब लोहे की वस्तु अदृश्य होनी चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं होता।

प्लैंक ने उत्सर्जन के अनुसंधान पर पांच वर्ष खर्च किये लेकिन क्लासिकल भौतिकी के आधार पर उन्हें कोई स्पष्टीकरण नहीं मिला। बाद में उन्होंने अपने विचारों की दिशा बदल दी

और कहा कि विद्युत चुंबकीय उत्सर्जन लगातार या सलग नहीं होता तो बंडलों के रूप में होता है जैसे कि वर्षा की बुंदें होती हैं।

मॅक्स प्लैंक-

ऐसे ही प्रश्नों का उत्तर देने के लिए मॅक्स प्लैंक ने १९ अक्टूबर १९०० के दिन जर्मन फिजिकल सोसायटी की मिटिंग में एक सूत्र पेश किया। यही आगे मॅक्स प्लैंक का कृष्ण पिंड विकिरण का सिद्धान्त इस नाम से प्रसिद्ध हुआ। लेकिन इस सिद्धांत का सूत्र पारंपरिक सिद्धान्तों के आधार पर निकालने के सारे प्रयत्न असफल हुए। इसपर १४ दिसम्बर १९०० को प्लैंक ने जर्मन भौतिकशास्त्र सोसायटी की बैठक में उसका औपचारिक अवकलन प्रस्तुत किया। इसे ही क्वांटम यांत्रिकी का जन्म कह सकते हैं।

प्लैंक की कल्पना -

- १) भौतिक वस्तु और विद्युत चुंबकीय विकिरण इनके बीच ऊर्जा का आदान-प्रदान केवल विवक्त बंडलों (Discrete Packages) के रूप में ही हो सकता है।
- २) हर बंडल में अंतर्भूत ऊर्जा प्रत्यक्षरूप से सम्बद्ध आवृत्ति के अनुपात में होती है। अधिक कंपन संख्या अर्थात् अधिक ऊर्जा।
- ३) अनुपातिक स्थिरांक (Proportionality Constant) ' प्लैंक स्थिरांक ' के नाम से विख्यात हुआ। इसे ' h ' से दर्शाया जाता है।
- ४) प्लैंक के सिद्धान्त के अनुसार ही
 - a) प्रकाश किरण तरंगों के स्वरूप में होता है।
 - b) साथ-साथ उसे ऊर्जा के पूंजों या प्रकाश के कणों के स्वरूप में भी दर्शाया जा सकता है। (प्लैंक का जन्म २३-४-१८५८ को जर्मनी के ' कील ' नामक बंदरगाह में हुआ था। मृत्यु ४-१०-१९४७ को हुई। नोबेल पुरस्कार १९१८ में मिला। उन्होंने ' ब्लैक बॉडी रेडिएशन ' अर्थात् ' कृष्णिका विकिरण ' पर अपना लक्ष केन्द्रित किया था ।)
- ५) ' h ' का महत्व आइन्स्टाइन ने पहचाना और १९०५ में इस संकल्पना का उपयोग करते हुए ' फोटो इलेक्ट्रिक प्रभाव ' के प्रयोगात्मक परिणाम को स्पष्ट किया -

प्रकाश विद्युत परिणाम दरम्यान, प्रकाश कण अणु के इलेक्ट्रॉन से सीधा टकराता है। अब अगर इलेक्ट्रॉन उत्सर्जित होना है, तो इस प्रकाश किरण की ऊर्जा, इलेक्ट्रॉन अणु में बंधे रहने के लिए लगने वाली ऊर्जा से अधिक होनी चाहिए। अन्यथा प्रकाश किरण इलेक्ट्रॉन को बाहर

ढकेल नहीं सकेगा। लेकिन जिस प्रकाश किरण की ऊर्जा इलेक्ट्रॉन की इस जरूरी ऊर्जा से अधिक होती है, वह प्रकाश किरण अपनी कुछ ऊर्जा का उपयोग कर इलेक्ट्रॉन को तुरंत बाहर ढकेल देता है। उसके बाद प्रकाश किरण की बची हुई ऊर्जा का, इलेक्ट्रॉन की गतिज ऊर्जा में रूपान्तर होता है। इस कारण ही अधिक कंपन संख्या वाले किरण उत्सर्जित इलेक्ट्रॉन को अधिक गतिज ऊर्जा प्रदान करते हैं। अधिक तीव्रता वाले प्रकाश किरण में सभी किरणों की ऊर्जा समान ही होती है। लेकिन उनकी संख्या अधिक होती है। इस कारण अधिक तीव्र प्रकाश किरण अधिक इलेक्ट्रॉन्स उत्सर्जित कर सकते हैं।

अभिक्रिया

प्रकृति में जो भी होता है वह ऊर्जा और समय के खर्च के बिना नहीं होता। खर्च हुई ऊर्जा और इसलिए बीता समय इनका गुणन महत्वपूर्ण है। यही अभिक्रिया है। विशिष्ट अभिक्रिया के लिए, अल्प ऊर्जा अधिक समय लेगी तो अधिक ऊर्जा कम समय।

क्वांटम -

क्षेत्र और पदार्थ लगातार एकदूसरे पर कार्य करते हैं अर्थात् उनमें ऊर्जा का आदान-प्रदान होता है। इस आदान-प्रदान की प्रक्रिया में जितना आदान-प्रदान हुआ है उससे किंचित अधिक या कम अंतरण होने में कोई दिक्कत नहीं आनी चाहिए। यह किंचित मात्रा चाहे जितनी कम हो सकती है। पदार्थ जब प्रकाश को अपने आजु-बाजु के क्षेत्र से सोखता है तो यह कितनी भी मात्रा में होना चाहिए। याने सातत्यधर्मी वस्तुओं का चाहे जितने हिस्सों में विभाजन होना चाहिए। ऊर्जा को तो सातत्यपूर्ण भौतिक तत्व माना जाता है। सभी भौतिक प्रक्रियाओं के लिए यही बात है। अगर ऐसा नहीं होता तो इसका अर्थ है क्षेत्र और पिंड में ऊर्जा आदान-प्रदान में सातत्य का अभाव।

पहले ऐसा माना जाता था कि प्रकृति छलांगों में आगे नहीं बढ़ती।

लेकिन प्लैंक ने एक क्रांतिकारी कल्पना रखी जिसके अनुसार उपरोक्त धारणाओं के विरुद्ध, ऊर्जा का आदान-प्रदान एक न्यूनतम मर्यादा तक ही संभव है। यह मर्यादा, ऊर्जा की इकाई है। आगे इसका विभाजन संभव नहीं। इसे क्वांटम कहा गया। लैटिन में क्वांटम का अर्थ होता है विवक्त।

हिस्सा या मात्रा (Discrete Quantity)

क्वांटम की भौतिक वास्तविकता का प्रतिपादन किया आइन्स्टाइन ने। उनके अनुसार विकिरण के कण होते हैं ; शब्दशः सूक्ष्म पिंड जो देश में स्थानिकृत स्थिति में होते हैं।

प्लैंक स्थिरांक -

- विद्युत चुंबकीय क्षेत्र के प्रति सेकंड जितने आंदोलन होते हैं (आवृत्ति) उनको इस स्थिरांक से गुना करने पर क्वांटम परिमाण (Magnitude) मिलता है।
- जितनी विकिरण की आवृत्ति अधिक उतना क्वांटम अधिक ऊर्जायुक्त। अतः हरे प्रकाश का क्वांटम लाल प्रकाश के क्वांटम से बड़ा होगा।
- अतः हम प्रकाश के न्यूनतम हिस्से को भौतिक कण के रूप में ले सकते हैं।
- वस्तुमान बिंदु से समानता। वस्तुमान बिंदु ऊर्जाधारी होता है। ऊर्जाधारि वस्तु का परिबल होता है। अतः इस सत्ता की ऊर्जा और परिबल होगा।
- प्लैंक स्थिरांक यह प्रकृति में न्यूनतम अभिक्रिया है। यह बहुत अल्प मात्रा हैं।
गैम-से.मी.-सेकंड मापन पद्धति में उसकी कीमत 6×10^{-27} (अर्ग) हैं । 6.62×10^{-34} ज्यूल सेकंड (तत्कालीन उपलब्ध दत्त सामग्री के आधार पर प्लैंक ने निकाली कीमत)।
- जब हम कणिका और तरंग स्वरूप एकत्र करने का प्रयत्न करते हैं तब तुरन्त प्लैंक स्थिरांक उपस्थित होता है।
- प्रकाश की गति - संभाव्यता का महत्तम सिरा - भौतिक गति की महत्तम मर्यादा।
- प्लैंक स्थिरांक - संभाव्यता का लघुतम सिरा - भौतिक अभिक्रिया की न्यूनतम मर्यादा।
यह ऊर्जा का एकक नहीं है तो अभिक्रिया का क्वांटम है।

दो निश्चित और मूलभूत मर्यादाएं। गतिमय वस्तु के पारंपरिक विश्लेषण में ऐसी किसी मर्यादा के लिए कोई स्थान नहीं।

क्वांटम ऊर्जा = $E = h \omega$; परिबल = $p = h k$ (सामान्य यांत्रिकी के अनुसार) ;

$$k = 2\pi / \lambda$$

$$(\lambda = \text{तरंग लम्बाई}) ; c = \lambda v \text{ (} v = \text{प्रकाश की आवृत्ति) } ; \omega = ck$$

मापनों का क्रम पर निर्भर होना : मापन प्रक्रिया

- प्लैंक स्थिरांक के प्रस्तुतीकरण के तुरंत बाद, भौतिकी में अनिश्चितता का तत्त्व अवतीर्ण हुआ।
- $a \times b = b \times a$ $2 \times 3 = 3 \times 2$ यह सामान्य ज्ञान है।
- लेकिन सूक्ष्म स्तर पर $a \times b \neq b \times a$ पाया गया है। दो मापनों का परिणाम उनके क्रम पर निर्भर होता है। हाइसेनबर्ग, डिरैक, और अन्य वैज्ञानिकों द्वारा इलेक्ट्रॉन्स के निर्देशांकों और उनकी गति की गणना करते समय, ये बातें स्पष्ट हुईं।

एककालिकता (Simultaneity) का मतलब है क्रम का अभाव। लेकिन दो क्रियाओं में अगर क्रम महत्वपूर्ण है तो स्पष्ट है, दोनों को एकसाथ सम्पन्न नहीं किया जा सकता। जैसे दो राशियों का मापन। परिणाम ऐसा मिला कि निरीक्षण करने योग्य, एक से अधिक राशियों का एकसाथ सटीक मापन संभव नहीं। १९२७ में जर्मन वैज्ञानिक वर्नर हाइसेनबर्ग ने उपरोक्त बात को स्पष्ट किया। उन्हें १९३२ का भौतिकी का नोबेल पुरस्कार दिया गया।
उदा.-

इलेक्ट्रॉन कण से संबंधित दो मात्राएँ हैं, एक है उसका परिबल और दूसरी है, देश में उसका स्थान।

इन दोनों की एकसाथ परिशुद्ध (Exact) कीमतें निश्चित करना असंभव है। अगर हमें उसके स्थान की कीमत अधिक परिशुद्ध रूप में आवश्यक है तो उसे प्राप्त तो किया जा सकता है लेकिन फिर, हमें उसके परिबल कीमत के, अंदाजन कीमत से ही संतोष करना होगा। या इससे उलट भी संभव है। परिबल की परिशुद्ध कीमत की प्राप्ति के लिए उसके दिशांकों की कीमतों की परिशुद्धता गंवानी होगी। अर्थात् निश्चित परिबल वाला इलेक्ट्रॉन अंतराल में निश्चित कहा होगा यह जानना मुश्किल है। आप दोनों के विषय में कुछ जान सकेंगे लेकिन यह जानकारी दोनों के लिए 'कुछ' होगी, परिशुद्ध कीमतें नहीं। जब आप एक की परिशुद्धता की ओर बढ़ेंगे, तो दूसरे की परिशुद्धता का स्तर कम होगा। यहां यह बात ध्यान रखने लायक है कि हम जो उपकरण उपयोग में ला रहे हैं, उसकी परिशुद्धता या फिर जो व्यक्ति निरीक्षण कर रहा है उसकी निपुणता, इनका उपरोक्त बात से कोई संबंध नहीं है। यह बात प्रकृति के स्वभाव में ही है। इस कारण इस स्तर पर, प्राप्त किए जाने वाले ज्ञान की परिशुद्धता पर मर्यादाएं आ जाती हैं।

हम यह यथोचित अपेक्षा रखना चाहेंगे कि परमाणु की पूरी जानकारी, हमें उसके घटक कणों का अवकाश में स्थान तथा उसकी गति और ऊर्जा द्वारा पूरी तरह ज्ञात हो। लेकिन हेइसेनबर्ग के उपरोक्त सिद्धांत के अनुसार इन मात्राओं का निर्धारण कुछ मर्यादा तक हमेशा अनिश्चित बना रहेगा। इसे ही स्थिति में उपस्थित तरलता कहा गया है। अगर स्थान और गति दोनों भी परिशुद्ध रूप में व्यक्त नहीं किए जा सकते तो त्वरण की अवधारणा अर्थहीन हो जाती है।

यही मर्यादा हेइसेनबर्ग का अनिश्चितता का सिद्धान्त है। (इसपर आइन्स्टाइन जैसे व्यक्ति को भी विश्वास रखना मुश्किल हुआ। उनके अनुसार एकीकृत क्षेत्र सिद्धान्त (Unified Field Theory) से यह संभव हो सकेगा कि सूक्ष्म जगत के क्वांटम सांख्यिकीय नियमों का अवकलन अधिक सामान्य असांख्यिकीय भौतिक नियमों से संभव होगा। लेकिन उनकी तीस वर्षों की मेहनत भी इस दिशा में कोई परिणाम न दे सकी। आइन्स्टाइन ने यह कभी स्वीकार नहीं किया कि ब्रह्माण्ड का नियंत्रण संयोग से होता है। यह भी वास्तविकता है कि केवल गुरुत्व और ब्रह्माण्ड की संरचना के व्यापक स्तर पर उनके साथ क्वांटम यांत्रिकी का पूरी तरह उचित एकीकरण नहीं हुआ अर्थात् सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त और क्वांटम यांत्रिकी का एकीकरण। लेकिन जब गुरुत्वीय क्षेत्र अत्यधिक प्रबल हो जाते हैं तो क्वांटम प्रभावों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।)

हमारे सामान्य संसार में भौतिक वस्तु और ऊर्जा न तो शून्य से उत्पन्न की जा सकती है और न ही उन्हें निरपेक्ष दृष्टि से नष्ट किया जा सकता है। उनका केवल रूपान्तर हो सकता है। यह भौतिक तत्व और ऊर्जा के अविनाशी होने का नियम है। लेकिन अनिश्चितता सिद्धान्त के अनुसार सूक्ष्म जगत में लघु स्तर की अनिश्चितता (Tiny Degree) सदैव बनी रहेगी। हेइसेनबर्ग ने अनिश्चितता संबंध दर्शाने वाला एक सूत्र प्रस्तुत किया -

$$\Delta a \cdot \Delta b \geq h \text{ और } \Delta x \cdot \Delta p \geq h \quad (h = \text{अभिक्रिया का क्वांटम})$$

इसका अर्थ है कि कण के दिशांकों (Coordinates) और परिबल (Momentum = वस्तुमान x गति)

इनमें जो अनिश्चितताएं हैं उनका गुणन या तो h के बराबर आना चाहिए या उससे अधिक, कभी उससे कम नहीं।

मापन प्रक्रिया

दोहरे छेद का प्रयोग (Double Slit Experiment) : इस प्रयोग में एक ही कण एकसाथ दोनों छेदों में से जाता है, ऐसा दिखाई देता है। दूसरे शब्दों में एक ही कण एक ही समय दो बिंदुओं पर होता है। लेकिन यह चमत्कार नहीं। सूक्ष्म जगत के वस्तुओं के, व्यवहार करने का यह नियम ही है और क्वांटम यांत्रिकी ने निर्विवाद रूप से उसे स्थापित किया है। फिर यह नियम स्थूल जगत को क्यों नहीं लागू होता।

क्या दो जगत के नियम भिन्न हैं? लेकिन ऐसी कोई बात नहीं। लेकिन उपरोक्त उल्लेखित फर्क वास्तविक है। इसे ' मापन समस्या '(Measurement Problem) इस नाम से भौतिकी में जाना जाता है।

अब मापन का मुद्दा। किसी कण के वेग और उसकी भावी स्थिति का पूर्वानुमान लगाने के लिए हमें उसकी वर्तमान स्थिति और वेग का एकदम शुद्ध परिमापन करना होगा। मापन करने का स्पष्ट और आसान तरीका है, उस कण पर प्रकाश छोड़ना। प्रकाश की कुछ तरंगें कण द्वारा परावर्तित कर दी जाएगी। उनसे उसकी स्थिति की जानकारी मिल जाएगी। परंतु प्रकाश के तरंगशीर्षों के मध्य की दूरी की अपेक्षा, कण की स्थिति का अधिक परिशुद्धता से निर्धारण नहीं हो सकेगा। अतः हमें कण की स्थिति का सूक्ष्मता से अनुमापन करने के लिए, लघु तरंगदैर्घ्य का प्रकाश उपयोग में लाने की जरूरत होगी। अब प्लैंक की क्वांटम संकल्पना के अनुसार, हम मनमाने ढंग से प्रकाश के न्यून परिमाण का उपयोग नहीं कर सकेंगे। हमें कम से कम एक क्वांटम का उपयोग करना ही पड़ेगा। अब हम जितनी कम तरंग लम्बाई वाली तरंग का उपयोग करेंगे उतनी वह तरंग अधिक ऊर्जाधारी होगी और वह जितनी अधिक ऊर्जाधारी होगी उतना अधिक विक्षोभ, वह कण में उत्पन्न करेगी तथा कण के वेग को इस प्रकार परिवर्तित कर देगी कि उसका पूर्वानुमान नहीं किया जा सकेगा। संक्षेप में जितनी अधिक परिशुद्धता से किसी कण की स्थिति का अनुमापन करना चाहेगा उसे उतनी ही लघु तरंगदैर्घ्य के प्रकाश को अपनाना होगा। उस अकेले क्वांटम में उतनी ही अधिक ऊर्जा होगी। इस कारण कण के वेग में अपेक्षाकृत अधिक परिमाण में विक्षोभ उत्पन्न होगा। अन्य शब्दों में किसी कण की स्थिति को आप जितनी अधिक परिशुद्धता से मापने का प्रयास करेंगे, उसके वेग को उतनी ही कम परिशुद्धता से आप माप सकेंगे। इसके विपरीत किसी कण के वेग को आप जितनी अधिक परिशुद्धता से मापने का प्रयास करेंगे, उसकी स्थिति को आप उतनी ही कम परिशुद्धता से माप सकेंगे।

अनुसंधान प्रक्रिया और मापन -प्रक्रिया

रेडिओ सक्रिय मूलद्रव्यों द्वारा उत्सर्जित गॅमा किरणों के उपयोग के आधार पर गॅमा सूक्ष्मदर्शी यंत्र (Gamma Microscope) बनाया गया है। अधिक से अधिक अल्प तरंग लम्बाई के गॅमा किरणों का उपयोग कर हम मापन में अधिक से अधिक परिशुद्धता प्राप्त कर सकते हैं। गॅमा किरणें बहुत उच्च आवृत्ति वाले विद्युत चुंबकीय क्षेत्र के फोटॉनों का प्रवाह हैं। परमाणु में इलेक्ट्रॉन के दिशाओं के परिशुद्ध मापन के लिए, इस परमाणु को बहुत ही अल्प तरंग लम्बाई वाले प्रकाश किरण से प्रकाशित करना आवश्यक होगा। इससे इलेक्ट्रॉन प्रतिमा, विवर्तन संवृत्ति से दूषित नहीं होगी। अब इलेक्ट्रॉन पर गिरने वाली किरण जितनी अधिक ऊर्जाधारी होगी उतनी ही इस बात की संभावना अधिक रहेगी कि वह निरीक्षणों को दर्ज करने की प्रक्रिया में इलेक्ट्रॉन को ही उसके स्थान से विचलित कर दे। यहां जिसका मापन करना है और मापन का माध्यम जहां तक ऊर्जा का सवाल है, एक ही स्तर के हैं। क्लासिकल यांत्रिकी जिस स्तर से वास्ता रखती है, वहां उपरोक्त दो बातों में इतना अंतर है कि उनकी ऊर्जाओं की तुलना करने का प्रश्न ही नहीं उठता। जैसे ग्रह, सूर्य से प्रकाशित होते हैं। अतः ऊर्जा के क्वांटम को मानने के बाद अपने आप ही यह गृहित हो जाता है कि अनुसन्धान प्रक्रिया पर मापन प्रक्रिया के असर को टाला नहीं जा सकता।

हाइज़ेनबर्ग का अनिश्चितता का तत्व

पदार्थ विज्ञान का आधार ही मापन की सटीकता है। विज्ञान के नियम या प्रकृति के नियम तभी सिद्ध हो सकते हैं अगर अंतर, वस्तुमान, काल, गति, संवेग, ऊर्जा जैसी बातों का अति सटीकता से मापन किया जाए। लेकिन हम जैसे-जैसे सूक्ष्म स्तर की ओर बढ़ते हैं मापन में सटीकता को कायम रखना कठिन होने लगता है। मापन में सूक्ष्म अंतर भी निष्कर्षों पर प्रभाव डालता है। जब हम मूलकणों की दुनिया में पहुँचते हैं तो उनके आयाम के स्तर पर क्या होता होगा इसकी कल्पना हम कर सकते हैं। ऐसे समय कणों की पहचान अथवा स्थिति और संवेग इनका एकसाथ मापन करना केवल असंभव हो जाता है। हाइज़ेनबर्ग अनिश्चितता का तत्व यही मापन की मर्यादा, स्पष्ट करता है। यह तत्व 'हाइज़ेनबर्ग अनसर्टेटी प्रिन्सिपल ' इस नाम से जाना जाता है। स्वाभाविक तौर पर मूलकणों के लिए मापन में सटीकता की मर्यादा बहुत ही अल्प होगी।

‘ शक्तिपुंज ’ (द्वयी स्वरूप वाले कण) सिद्धान्त के जो कई आधार हैं, उनमें यह

एक महत्वपूर्ण आधार है। इसे इस तरह व्यक्त किया जा सकेगा-

१) स्थिति में विद्यमान अनिश्चितता तथा संवेग की अनिश्चितता इनका गुना प्लैंक स्थिरांक से हमेशा बड़ा या अधिक होता है ।

मान लो पदार्थ का वस्तुमान २०० ग्रॅम है और हम उसकी स्थिति मायक्रो सें.मी.(10^{-6} से.मी.) तक गिन सके तो उसकी गति के मापन में आने वाली अनिश्चितता या फिर संवेग में अनिश्चितता = $6.6 \times 10^{-27} / 10^{-6} = 6.6 \times 10^{-21}$ (संवेग=वस्तुमान $\times$ गति)

लेकिन गति में अनिश्चितता = $6.6 \times 10^{-21} / 200 = 3.3 \times 10^{-23}$ से.मी./सेकंड

हमारी दैनन्दिनी के लिए यह अनिश्चितता (गति के मापन की) बिल्कुल दूरक्षणीय है।

लेकिन जब हम प्रोटॉन इस मूलभूत कण की गति का मापन करने लगते हैं तो आने वाली अनिश्चितता देखिए -

मान लो प्रोटॉन की स्थिति के मापन की अनिश्चितता 10^{-8} से.मी. है =तो उसकी गति में आने वाली अनिश्चितता होगी-

=प्लैंक स्थिरांक/वस्तुमान $\times$ स्थिति में अनिश्चितता= $6.6 \times 10^{-27} / 1.6 \times 10^{-24} \times 10^{-8} = 3.9 \times 10^{-5}$ से.मी./से.

(प्रोटॉन का वस्तुमान 1.6×10^{-24} ग्रॅ. लिया गया है। अर्थात् प्रोटॉन की गति में आने वाली

अनिश्चितता प्रचंड है। हो सकता है वह प्रत्यक्ष प्रोटॉन की गति के स्तर की हो। अर्थात् अति सूक्ष्म कणों के लिए हाइड्रोजनबर्ग की अनिश्चितता के तत्व का बड़ा महत्व है।)

2) यही तत्व इस प्रकार भी लिखा जा सकता है - ऊर्जा में अनिश्चितता $\times$ काल मापन में अनिश्चितता $\geq$ प्लैंक स्थिरांक।

आइन्स्टाइन के सूत्र के अनुसार मूलभूत कण की ऊर्जा, वस्तुमान रूप में होगी=वस्तुमान $\times$ (प्रकाश गति)²

अतः ऊर्जा मापन में अनिश्चितता = वस्तुमान में अनिश्चितता $\times c^2$ या

वस्तुमान में अनिश्चितता = प्लैंक स्थिरांक / काल मापन में अनिश्चितता $\times c^2$

काल मापन में अनिश्चितता बहुत कम होगी तो वस्तुमान के मापन में अनिश्चितता बहुत बड़ी होगी। इससे हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि काल की अनिश्चितता के दरम्यान कण एक है या अनेक यह हमारी समझ में नहीं आ सकता चूंकि प्रोटॉन जैसे एक कण का वस्तुमान तो

निश्चित है या स्थिर है। तो या तो कण एक होगा या दो। हो सकता है एक ही कण के क्षणिक दो कण होते हो। इस नये आगंतुक कण को ही ' भ्रामक कण (Virtual Particle)' कहने का रिवाज है।

आत्यंतिक अल्प समय के लिए अस्तित्व में आकर नष्ट होने वाले इन आभासी कणों की निर्मिति, यह भी क्वांटम यांत्रिकी में एक अद्भुत निष्कर्ष है। प्रोटॉन, इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन जैसे मूलकण अत्यल्प आयु मर्यादा वाले आभासी कणों को उत्पन्न करते हैं। इन आभासी कणों को या तो वे स्वयं स्वाहाकार करते हैं या फिर बाजु का कोई कण उनका शोषण कर लेता है।

वस्तुमान के मापन में अनिश्चितता $\times$ काल मापन में अनिश्चितता = स्थिरांक

आभासी कण -

काल मापन में अनिश्चितता अत्यंत कम होगी या काल मापन सटीक होगा तो वस्तुमान मापन में अनिश्चितता बहुत अधिक होगी। मूलभूत कणों के वस्तुमान निश्चित हैं। लेकिन अत्यल्प समय में अर्थात् अनिश्चितता के दरम्यान उनके वस्तुमान कितने होंगे यह बताना मुश्किल है। (मूलकणों में अधिकतर ऐसे हैं जिनका जीवन काल बहुत ही अल्प है) हो सकता है इस अत्यल्प काल दरम्यान किसी विशिष्ट स्थान पर एक की जगह दो प्रोटॉन या न्यूट्रॉन हो या एक मूल कण से दूसरा मूलभूत कण पैदा होता हो। उसके लिए आवश्यक ऊर्जा वह मूलकण आजुबाजु के निर्वात से उधार लेता हो। लेकिन अनिश्चितता का काल समाप्त होने के पूर्व यह उधारी चुकती करनी है। अतः यह आभासी कण तत्काल लुप्त हो जाता है। दरम्यान का समय बहुत ही अल्प होता है।

मानो एक प्रोटॉन अपने इतने ही वस्तुमान का आभासी कण उत्पन्न करता है। उस कारण वस्तुमान में अनिश्चितता प्रोटॉन के वस्तुमान इतनी अर्थात् 1.6×10^{-28} ग्रॅम होगी। अनिश्चितता के सूत्र में जो स्थिरांक है, उसकी कीमत है 0.633×10^{-47} । अतः काल अनिश्चितता होगी = स्थिरांक / वस्तुमान में अनिश्चितता। सूत्र में कीमते डालने पर काल में अनिश्चितता आएगी 8.3×10^{-24} सेकंड। इस अवधि में आभासी कण पैदा होते हैं और लुप्त भी होते हैं। किसी भी मूल कण में अस्थिरता पैदा हुई कि आभासी कण अवतरित होते हैं। लेकिन क्या आभासी कणों के भाग्य में पैदा होना और लुप्त होना ही लिखा है ?

क्या उन्हें स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त हो सकता है ? मान लो आभासी कणों का जन्मदाता मूल कण, अनिश्चितता के कालावधि में ही नष्ट हो गया तो आभासी कण वास्तव कण में रूपांतरित

हो सकता है। या फिर आभासी कण पैदा होते ही, उससे इलेक्ट्रॉन टकराया तो उस क्रिया में आभासी कण अपने पितृ कण से अलग होकर स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त कर सकता है।

समझो निर्वात क्षेत्र में धन और ऋण विद्युतअग्रों की सहायता से अत्यंत प्रभावी विद्युत क्षेत्र उत्पन्न किया तो उसमें अस्तित्व में आने वाले आभासी इलेक्ट्रॉन्स - पॉजिट्रॉन जोड़ी में से इलेक्ट्रॉन धन विद्युत अग्र की ओर तो पॉजिट्रॉन, ऋण विद्युत अग्र की ओर आकर्षित होंगे। उन्हें आवश्यक ऊर्जा प्राप्त होते ही वे वास्तव कणों में रूपान्तरित होंगे। लेकिन इस आवश्यक ऊर्जा का परिमाण होगा विद्युत क्षेत्र की शक्ति, प्रति से.मी. 10^{15} व्होल्ट से अधिक। इस तरह आभासी कणों को वास्तव में लाना संभव है अगर विद्युत क्षेत्र की यथोचित शक्ति उपलब्ध हो।

यही बात विद्युत क्षेत्र के स्थान पर प्रखर गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र पर भी लागू है। उत्पन्न होते ही इन कणों को त्वरण प्राप्त होगा ही। साथ में ज्वार-भाटे समान बल (Tidal Force), आभासी कणों को एक दूसरे से अलग करेगा। गुरुत्वाकर्षण जितना अधिक प्रभावी उतनी अधिक मात्रा में वास्तव कणों का उत्पाद होगा।

टनेल इफेक्ट-

अणुगर्भ में बद्ध हुआ अल्फा कण या फिर धातु से मुक्त होता इलेक्ट्रॉन, विद्युत दबाव की दीवार (तटबंदी) के अंदर अटका हुआ कण है। इसके चारों ओर यह दीवार खड़ी है। अंग्रेज़ी में इस दीवार को ' Potential Barrier ' कहते हैं। प्रत्येक धातु की सतह के पास और अणुगर्भ के चारों ओर यह विद्युत दबाव की दीवार विद्यमान होती ही है। इलेक्ट्रॉन के पास यथोचित ऊर्जा न हो तो उसके लिए इस दीवार को पार करते हुए मुक्त होकर अणुगर्भ के चंगुल से छुटना संभव नहीं होता। वह आमतौर पर इस दीवार से टकराकर परावर्तित होता है। लेकिन कभी-कभी अचानक निम्न घटना हो जाती है। इलेक्ट्रॉन के पास आवश्यक ऊर्जा न होते हुए भी विशिष्ट स्थिति में इस दीवार को मानो छेद कर उसके पार आ पहुंचता है। इस प्रकार को ' टनेल इफेक्ट ' कहते हैं। इसे विश्लेषित करने के लिए फिर हमें अनिश्चितता के तत्व की ओर मुड़ना होगा।

अनिश्चितता के सूत्र के अनुसार- ऊर्जा में अनिश्चितता $\times$ काल में अनिश्चितता = स्थिरांक काल में अनिश्चितता अत्यल्प तो ऊर्जा में अनिश्चितता काफी उच्च। अर्थात् अत्यल्प समय के लिए काफी अधिक ऊर्जा उपलब्ध हो सकती है। इस दरम्यान उसमें से कुछ ऊर्जा उधार ली जा सकेगी। ऐसी घटना में इलेक्ट्रॉन यही बात करता है और अपने आप को मुक्त कर लेता है।

उसी प्रकार कुछ किरणोत्सर्गी मूलद्रव्य, अल्फा कण उत्सर्जित करते हैं। इसमें दो प्रोटॉन और दो न्यूट्रॉन होते हैं। अर्थात् वह धन विद्युतधारी होता है। अणुगर्भ में रहते समय उनके पास यथोचित ऊर्जा नहीं होती। इस कारण अणुगर्भ के चारों ओर होने वाली विद्युत दबाव की दीवार के अंदर वह अटका रहता है। लेकिन केवल 10^{-24} सेकंड इतने अल्प समय के लिए अगर उन्हें ऊर्जा उधार मिली तो वह टनेल इफेक्ट का उपयोग कर अणुगर्भ की पकड़ से छूट सकता है। इसके लिए उसे केवल 10^{-13} से.मी. इतनी ही दूरी चलना है। एक बार वह अणुगर्भ से बाहर निकला तो उसपर अपकर्षण बल कार्य करता है चूंकि अणुगर्भ और अल्फा कण दोनों पर धन विद्युत है। कण फिर बड़ी तेजी से बाहर फेंक दिया जाता है।

टनेल इफेक्ट इस तत्व पर आधारित ' टनेल डायोड ' कई उपकरणों में उपयोग में लाया जाता है। खास तौर पर वहां, जहाँ अति जलद गति से ' स्विचिंग ' आवश्यक है।

शून्य

हम जिस जगत में रहते हैं वहां की प्रत्येक वस्तु अंतराल में स्थित है। वह अंतराल का कुछ हिस्सा व्याप्त करती है। अर्थात् हम देखते हैं कि अंतराल के कुछ भाग में कुछ भी नहीं है। वह रिक्त है। देश का वह हिस्सा जिसे भौतिक वस्तु ने व्याप्त किया है उसे कण या पिंड कहते हैं। फिर ऐसा भी हिस्सा होगा जिसे किसी भी भौतिक वस्तु ने व्याप्त नहीं किया। इसे ' शून्य ' (Void) या 'रिक्ति' (Vaccum) कहा जा सकता है। प्रायोगिक तौर पर, सन् १६४३ में टॉरिसेली द्वारा कृत्रिम ढंग से निर्मित निर्वात से लेकर तो आधुनिक उपकरणों द्वारा प्राप्त उच्च कोटि का निर्वात हमें ज्ञात है। यहाँ भौतिक वस्तु का अस्तित्व नगण्य होता है। पहले, अंतराल में उपस्थित पिंड और रिक्ति, दोनों एक दूसरे से संबंधित नहीं माने जाते थे। रिक्तता पिंडों पर क्रिया-प्रतिक्रिया नहीं कर सकती, न इससे उलट संभव है। पिंड रिक्तता से होते हुए भले ही एक दूसरे पर प्रभाव डालते हों। लेकिन इसे दो पिंडों का आपसी मामला समझा जाता था। रिक्ति का इससे कोई लेना-देना नहीं ऐसा ही माना जाता था।

ऑरिस्टॉटल के अनुसार शून्य की कल्पना तो की जा सकती है लेकिन उसे प्रकृति में पाया नहीं जा सकता। अगर रिक्ति का अस्तित्व है तो इसमें भारी तथा हल्की वस्तुएं जैसे पत्थर और पंख सभी, पृथ्वी पर एक ही गति से पहुँचेंगे। लेकिन ऑरिस्टॉटल के अनुसार यह असंभव है। आश्चर्य की बात है नं ? आधार वाक्य सत्य है। लेकिन उसे गलत समझा गया। यह हुआ है

उस व्यक्ति के संदर्भ में जिसे तर्क विज्ञान का अधिष्ठाता माना जाता है। लेकिन इसके लिए उसे दूषण नहीं दे सकते। समय के अनुसार उपलब्ध ज्ञान के आधार पर ऐसी वैचारिक खामियां निर्माण हो सकती हैं। प्रत्यक्ष और अनुमान इन्हें एक दूसरे के अनुकूल करने के लिए दो हजार वर्षों की प्रतीक्षा और गैलिलियो जैसे दिमाग की आवश्यकता थी।

लेकिन जब आधुनिक विज्ञान, शून्य के क्षेत्र में प्रवेश करता है तो वह प्रतिपादन करता है कि रिक्तता यह क्षेत्रों (Fields) की पूर्ण प्रणाली है। शून्य, भौतिक वस्तु को उत्पन्न करने में सक्षम है। आवश्यकता है यथोचित शक्ति का ऊर्जा क्षेत्र प्रदान करने की।

- क्वांटम यांत्रिकी सभी कणों को इस या उस क्षेत्र के क्वांटा मानती है।
- अंतरिक्ष का ऐसा कोई हिस्सा नहीं हो सकता जहाँ किसी भी क्षेत्र का अस्तित्व न हो। कोई निरपेक्ष शून्य नहीं है। परमाणु के अंदर नाभिक के गिर्द भी गोलाकार(Spheroidal) विद्युत क्षेत्र कंपनरत रहते हैं। इलेक्ट्रॉन यह कोई ठोस वस्तु नहीं है, जैसा कि समझा जाता है। इलेक्ट्रॉन यह माप (Measure) है ऊर्जा का जो कंपनरत विद्युत क्षेत्र के एक कंपन आवर्तन में अंतर्भूत होती है। सभी क्वांटा बल के माप हैं। वे ठोस वस्तुएं नहीं हैं। 'क्वांटम' का अर्थ है क्षेत्र की ऊर्जा की न्यूनतम राशि जिसका मापन किया जा सकता है या जिसे दिखाया जा सकता है। क्वांटम में 'क्वांटिटी' (राशि) है। वह कोई वस्तु नहीं है। क्षेत्र इतने तेजी से कंपनरत होता है जिसके कारण वह धुंध (fuzzy) जैसा दिखता है। गोल किनार धुंधली दिखती है, वह इस कारण नहीं कि Focus या Resolution की समस्या है।
- शून्य में, बलक्षेत्र का तो अस्तित्व होता है लेकिन उसकी ऊर्जा शून्य होती है। वहाँ किसी प्राथमिक कण की भी उपस्थिति नहीं होती। अधिक निश्चित ढंग से कहें तो शून्य यह क्षेत्रों की परिपूर्णप्रणाली है, (जैसे वस्तु स्थिर है का अर्थ यह भी हो सकता है कि या तो उसपर कोई बल कार्य ही नहीं कर रहा या फिर कार्यरत कई बल संतुलन में हैं।) लेकिन किसी भी क्षेत्र के वास्तविक कण या क्वांटा रहित। जैसे विद्युत चुंबकीय क्षेत्र तो होगा मगर उसके क्वांटा, फोटॉन रहित।
- किसी क्षेत्र की कीमत और उसमें समय के साथ होनेवाला फर्क बिल्कुल कण की स्थिति और आवेग(Momentum) के समतुल्य होगा।
- लेकिन अगर कोई क्षेत्र है तो उसमें कंपन तो होगा ही चूंकि क्वांटम यांत्रिकी के नियमानुसार किसी भी क्षेत्र की 'कंपन' यह विशेषता है। शून्य के ऐसे कंपनों को 'शून्य बिंदु कंपन' कहते हैं।

लेकिन क्षेत्र का कंपायमान होना, कण की हलचल या गति के बिना संभव नहीं। उपरोक्त मामले में कंपन है लेकिन कोई कण नहीं। भौतिकविद् कहते हैं कि क्षेत्र के कंपन के साथ उससे संबंधित कण उत्पन्न होते हैं और तुरंत लुप्त हो जाते हैं। यह सभी क्षेत्रों पर लागू है। इन शून्य बिंदु कंपनों से उत्पन्न कणिकाओं का जीवनकाल बहुत ही अल्प होता है। अल्प का अर्थ है सेकंड का दस लाखवां हिस्सा या उससे भी कम। और ये सूक्ष्म कण जैसा कि अभी तक मनुष्य ने जाना है, अपने अस्तित्व काल में एक जगह स्थिर नहीं रहते। उत्पन्न होते ही किसी दिशा में अपनी यात्रा शुरू करते हैं। जितना उनका वस्तुमान अधिक होगा उतनी ही, उनके जीवनकाल के बीच उन्होंने तय की हुई दूरी कम होगी।

अब तक किया हुआ वर्णन अपनी जगह तो ठीक है लेकिन उस पवित्र नियम का क्या ? वस्तु और ऊर्जा के अविनाशी होने का नियम - वस्तुमान और ऊर्जा न तो शून्य से उत्पन्न की जा सकती है और न वह निरपेक्ष दृष्टि से नष्ट की जा सकती है।

तो फिर यह सारा मामला क्या है ? सारा रहस्य है इन कणों को आबंटित “ जीवन काल “में। वह इतना अल्प है कि नियम के उल्लंघन को केवल गणितीय ढंग से या हिसाब के माध्यम से अनुमानित किया जा सकता है। उन्हें प्रयोगात्मक पद्धति से देखा नहीं जा सकता। यहाँ कण शून्य से उत्पन्न होता है और तुरन्त लुप्त हो जाता है। तुरन्त या तत्क्षण का अर्थ है न्यूट्रॉन जैसे कण के लिए 10^{-24} सेकंड। सामान्य स्थिति में मुक्त न्यूट्रॉन का जीवनकाल 1000 सेकंड होता है। नाभिक में तो काफी लम्बा होता है ।

लेकिन इतनी अल्प अवधि के लिए अविनाशत्व का नियम पूरी गंभीरता से लागू नहीं हो पाता। इतना निश्चित कि अविनाशित्व के नियम का उल्लंघन करने वालों को, प्रकृति लम्बा जीवन नसीब नहीं होने देती। वैसे भी हमने अन्यत्र देखा है कि इतने अत्यल्प समय में कण अपने वस्तुमान को या अस्तित्व को स्थिर नहीं कर पाता। हम उन्हें ‘ रेड्योनन्स ‘ के नाम से पुकारते हैं।

सुप्त कण - (Virtual Partical) : सामान्य कणों के पार्श्व में इन क्षणभंगुर कणों को ‘ सुप्त कण ‘ कहा जाता है। यहां Virtual State का अर्थ होगा अस्थायी। ऐसे कण जो प्रत्यक्ष में न होते हुए भी सार रूप में हैं। इस संदर्भ में वे संभावित कण हैं। इनमें ऊर्जा, वस्तुमान और परिबल में पाए जाने वाले सामान्य संबंधों का अभाव है। लेकिन प्रयोग में वास्तविक मूलभूत कणों पर उनके परिणामों को दर्ज किया जा सकता है। जैसा हमने पीछे देखा, अति शक्तिशाली विद्युत चुंबकीय या गुरुत्व क्षेत्र भौतिक कणों की उत्पत्ति कर सकते हैं। इस उत्पत्ति को हम ‘

शून्य विस्फोट ' कहेंगे। आज के तन्त्रज्ञान के स्तर की दृष्टि से इतनी ऊर्जा प्रदान करना संभव नहीं। $(m = E / c \times c)$ लेकिन वैज्ञानिकों का कहना है कि ऐसे बलशाली ऊर्जा क्षेत्र ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं। भूतपूर्व सोवियत युनियन के विज्ञान अकादमी के सदस्य याकोव्ह झेलडोव्हिच ने बलशाली गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र के कारण शून्य से कणों की उत्पत्ति की भविष्यवाणी की थी। १९३९ में महान वैज्ञानिक इर्विन स्क्रोडिंजर ने क्वांटम यांत्रिकी का सूत्र खोज निकाला था। उन्हें सैद्धांतिक दृष्टि से ऐसी स्थिति होने का ठोस विवरण प्राप्त हुआ, जिसमें शून्य से उत्पत्ति संभव है।

- प्राथमिक कण का आकार = 10^{-13} से.मी. ; व्याप = 10^{-39} घन से. मी. नाभिकेंद्र में ऊर्जा का घनत्व प्रति घ.से.मी. 10^{14} ग्रॅम।
- मॅक्स प्लैंक ने मूलभूत अंतर की कल्पना की थी। इससे कम लम्बाई प्रकृति में असंभव है। इसकी कीमत है 10^{-33} से.मी. है। इसे प्लैंक लम्बाई कहा जाता है। लेकिन आज तो यह सैद्धांतिक संकल्पना ही है।
- परम अवकाश -

व्हिलर के अनुसार अवकाश का वह हिस्सा जिसका विशिष्ट अंतर 10^{-33} से.मी. स्तर का हो ' परम अवकाश ' है। इस आकार के कोशों से ही अंतराल की अपने सूक्ष्मतम स्तर पर रचना हुई है। लेकिन परम अंतराल का स्वरूप कैसा होगा ? व्हिलर इसे ' न्यून झाग ' कहते हैं। फेन की तह से लगातार उठने वाले बुलबुलों की तरह। नए बुलबुलों का उदय और पुरानों का लुप्त होना। यह प्रतिकात्मक वर्णन है ' क्वांटम विचलनों ' (Quantum Fluctuations) का। जॉन आर्किवॉल्ड व्हिलर के अनुसार अगर वैज्ञानिक कभी अकल्पनीय सूक्ष्म लम्बाई स्तर 10^{-33} से.मी. पर प्रकृति की छानबीन करने में सक्षम हुए तो वे पाएंगे कि वहाँ, अंतराल (Space) अविराम विक्षोभक विचलनों में लिप्त है (Undergoes incessant and violent fluctuations)।

संक्षेप : क्वांटम यांत्रिकी

इस सिद्धान्त में यांत्रिक कुछ नहीं है। फिर भी यांत्रिक कहने का कारण यांत्रिकी को व्यापक अर्थ में लिया जाना है। अर्थात् ' चालन ' का तत्व।

- सूक्ष्म स्तर की अंतर्भूत रचना और उसके घटकों के चरित्र का अध्ययन होता है।

- इलेक्ट्रॉन का परमाणु नाभिक में विद्युत चुंबकीय पतन क्यों नहीं होता, क्वांटम यांत्रिकी यह बात स्पष्ट करती है।
- पारंपरिक यांत्रिकी में किसी कण की विशिष्ट क्षण की स्थिति का उसके वेग और स्थान के द्वारा परिशुद्ध विवरण दिया जाता है। किसी अन्य क्षण उसकी स्थिति का बारीकी से निश्चित अनुमान, यांत्रिकी के नियमों के आधार पर किया जा सकता है।
- क्वांटम यांत्रिकी के मूलभूत सूत्र, कण का प्रत्यक्ष भ्रमण व्यक्त नहीं करते जैसा कि न्यूटन के सूत्र करते हैं। समझो उत्तेजित अवस्थाओं में एक परमाणु है। वह प्रकाश उत्सर्जित करने जा रहा है। क्वांटम यांत्रिकी के आधार पर यह भविष्यवाणी करना संभव नहीं कि वह किस निश्चित क्षण प्रकाश उत्सर्जित करेगा। हम केवल उत्सर्जन के विशिष्ट क्षण की संभावना का अंदाजा लगा सकते हैं। प्रकृति इस स्तर पर किसी कड़े नियमबद्ध यंत्र के तौर पर आचरण नहीं करती।

खो-खो के खेल में जैसे विपक्षी खिलाड़ियों में कोई एक, एक समय आऊट होता है। लेकिन आऊट होने का निश्चित क्षण और आऊट होने वाला निश्चित खिलाड़ी, इनका अनुमान हम नहीं कर सकते। संभावनाओं में से किसी एक को पकड़ने का यह खेल है। सूक्ष्म कण का आचरण इसी ढंग का होता है।

लेकिन अगर सूक्ष्म बिंदु, कण और तरंग दोनों के गुणधर्म धारण करता है तो सूक्ष्म बिंदुओं की यांत्रिकी, क्वांटम यांत्रिकी के विद्युत गतिशास्त्र के समीकरण, जो तरंग का विवेचन करते हैं और न्यूटन यांत्रिकी के समीकरण जो कण के गुणधर्मों को विवेचित करते हैं, आपस में समाहित होते हुए, उन्होंने नये सूत्र प्रस्तुत करना चाहिए। लेकिन ऐसा कोई रास्ता नहीं है, जिसपर चलते हुए हम फोटॉन, इलेक्ट्रॉन आदि के क्वांटम और तरंग के गुणधर्मों का एकीकरण करें और उसी समय अनिश्चितता के तत्व से भी बच निकलें।

- प्लैंक की क्वांटम कल्पना, हमें यह बताती है कि कुछ परिस्थितियों में प्रकाश ऐसा व्यवहार करता है, मानों वह कणों से निर्मित है। वह केवल क्वांटा या पॅकेज के रूप में अवशोषित या उत्सर्जित किया जा सकता है।

तो हाइजेनबर्ग का अनिश्चितता सिद्धान्त कहता है कि कण कुछ संदर्भों में तरंग जैसा व्यवहार करते हैं। उनकी कोई सुनिश्चित स्थिति नहीं होती बल्कि एक प्रायिकता आबंटन के रूप में ही आकाश में उनकी स्थिति कुछ फैली हुई सी होती है। अंतिम निष्कर्ष यह निकला कि

क्वांटम, तरंग और कण दोनों रूपों में हो सकते हैं चूंकि सिद्धान्त, प्रयोगों के परिणामों के अनुकूल है।

- गति में होने वाले कण के गुणधर्म में अनिश्चितता अंतर्भूत होती है। अर्थात् गति में होने वाले कण के किसी गुणधर्म का सटीक मूल्य दर्शाया तो उसके किसी अन्य गुणधर्म के मूल्य में अनिश्चितता पैदा होती है। लेकिन इसके लिए वस्तु की तरंग लम्बाई यह उस वस्तु के आकार के साथ तौलनिक प्रमाण में होनी चाहिए। इस कारण यह तत्व केवल सूक्ष्म कण स्वरूप वस्तुओं के बाबत उपयुक्त है। बड़े वस्तुमान के वस्तुओं बाबत, उनकी तरंग लम्बाई उस वस्तु के आकार की तुलना में नगण्य होने से, यह अनिश्चितता भी नगण्य होती है।
- हाइज़ेनबर्ग ने बताया कि कण की स्थिति में अनिश्चितता, उसके वेग की अनिश्चितता तथा उसका द्रव्यमान इन तीनों का गुणनफल एक निश्चित मात्रा से कम नहीं हो सकता। इस मात्रा को ही ' प्लैंक स्थिरांक ' के रूप में जाना जाता है। इसके अतिरिक्त यह सीमा किसी कण का वेग और उसकी स्थिति को मापने के तरीके पर या कण की विशिष्टता पर निर्भर नहीं होती।

यदि कोई ब्रह्माण्ड की वर्तमान स्थिति का परिशुद्धता से मापन भी नहीं कर सकता तो वह निश्चित रूप से भावी घटनाओं का भी ठीक-ठीक पूर्वानुमान कैसे लगा सकता है।

हाइज़ेनबर्ग का अनिश्चितता का सिद्धान्त विश्व की आधारभूत बात है।

- इसी अनिश्चितता के सिद्धान्त पर आधारित है क्वांटम यांत्रिकी।
- सामान्यतः क्वांटम यांत्रिकी किसी भी प्रेक्षण के लिए किसी एक निश्चित निष्कर्ष की संभावना का पूर्वानुमान नहीं लगाती बल्कि यह कई सारे विभिन्न संभावित निष्कर्षों की भविष्यवाणी करती है और यह भी बताती है कि इनमें से हर एक कितना परिणामोन्मुख है। इसलिए क्वांटम यांत्रिकी विज्ञान में अनियमितता, यादृच्छिकता या पूर्वाकलन असंभाव्यता के अपरिहार्य तत्व को समाविष्ट करती है। यदि कोई उन बहुत सारे, एक जैसे निकायों का, जो एक ही तरीके से आरंभ हुए, एक सा अनुमापन करे तो यह पाएगा कि कुछ विशेष मामलों में अनुमापन का परिणाम ' अ ' होगा तो दूसरे विभिन्न मामलों में ' ब ' होगा और अनिश्चितता बनी रहेगी। (निल्स भोर तो १९१३ से ही यह मानते थे कि भौतिक तत्व के सूक्ष्म स्तर पर संभावनाओं का साम्राज्य है)।

क्वांटम यांत्रिकी, इस स्थिति का सामना क्वांटम सिद्धान्तों के एक वर्ग के माध्यम से करती है, जिसमें कणों की कोई सुनिश्चित स्थितियां या वेग नहीं होते। बल्कि वे एक तरंग द्वारा व्यक्त किए जाते हैं। ये क्वांटम सिद्धान्त इस अर्थ में निश्चायक (Deterministic) हैं कि वे समय के साथ तरंग के क्रमविकास के लिए नियम प्रदान करते हैं। अतः यदि कोई, किसी एक समय पर तरंग को जानता है, तो वह किसी दूसरे समय पर इसका आकलन कर सकता है। अननुमेय तथा यादृच्छिक तत्व बीच में केवल तभी आता है, जब हम तरंग की व्याख्या, कणों की स्थितियों तथा वेग के सम्बन्ध में करने का प्रयास करते हैं। परंतु हो सकता है कि यह हमारी गलती हो; हो सकता है कि कणों की कोई भी स्थितियां या वेग न हो, केवल तरंगें ही हों। यह तो ठीक ऐसा है कि हम तरंगों को स्थितियों तथा वेग के अपने पूर्व कल्पित विचारों में बिठाना चाहते हैं।

इतिहास में झाँके

क्वांटम यांत्रिकी के कई निष्कर्ष सामान्य आदमी को अतार्किक लगते हैं।

- मूलकणों का द्वैती स्वरूप यही मूलतः, अभिजात पदार्थ विज्ञान के गले न उतरने वाली बात थी। उसमें भी कुछ प्रयोगों में कणों जैसे व्यवहार करते हैं तो कुछ में तरंग जैसे, यह निष्कर्ष अजीब लगता था।
- वास्तव में भौतिकशास्त्र का आधार ही सटीकता है। तो जब मूलकणों के साथ संलग्न तरंग को जब सम्भाव्यता की लहर (Probability Wave) कहा गया तो और मुश्किल हुई। अब पदार्थ विज्ञान में सटीकता के साथ संभाव्यता का भी अंतर्भाव हुआ। मैक्स बोर्न ने इस संभाव्यता की लहर को Wave Function कहा। क्वांटम यांत्रिकी में इसे ψ संकेत से दिखाया जाता है। जिस स्थान पर वेव फंक्शन का आयाम (Magnitude) उच्चतम होता है, उस स्थान पर मूलकणों का अस्तित्व होने की संभावना भी उच्चतम होती है। अभिजात भौतिकशास्त्र की धारणा के अनुसार अस्तित्व का स्वरूप तथा उसके प्रति निकाला प्रायोगिक निष्कर्ष, निरीक्षक की उपस्थिति निरपेक्ष होता है।
लेकिन क्वांटम यांत्रिकी के अनुसार निरीक्षक और प्रयोग यह एक संयुक्त प्रणाली (Integrated System) है और निरीक्षण की क्रिया प्रयोग के निष्कर्ष को बदलती है।

ऐसी स्थिति में इस नये विज्ञान का स्वरूप सुस्पष्ट और प्रमाणभूत होने की आवश्यकता अनुभव होने लगी। १९२७ में निल्स बोहर इनके नेतृत्व में कोपेनहेगेन में क्वांटम मेकॅनिक्स का प्रमाणित स्पष्टीकरण निश्चित किया गया और विज्ञान जगत ने उसे मान्यता भी प्रदान की। इसके महत्वपूर्ण मुद्दे थे -

अ) इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन आदि मूलकणों की अवस्था 'वेव्ह फंक्शन' इस अमूर्त संकल्पना की सहायता से निश्चित की जा सकती है।

आ) जबतक मापन नहीं किया जाता तबतक सातत्य से तथा निश्चित नियमों के अनुसार वेव्ह फंक्शन उत्क्रांत होते रहता है।

इ) प्रत्यक्ष मापन के समय मूलकण की अवस्था और मापन करने वाला उपकरण एकदूसरे पर क्रिया करते हैं। प्रयोग का संभाव्य निष्कर्ष इससे प्रभावित होता है।

ई) वेव्ह फंक्शन के अनुसार मापन के पूर्व के प्रयोग के सारे निष्कर्ष संभावना की समानता दर्शाते हैं।

उ) लेकिन मापन करते ही वेव्ह फंक्शन तुरन्त ढह जाता (Collapse) है और मापन का निष्कर्ष निश्चित होता है।

ई) वेव्ह फंक्शन का ढह जाना यदृच्छया (Randomly) तथा अनिश्चितता से होता है।

उ) प्रयोग का निश्चित निष्कर्ष क्या आएगा यह बताया नहीं जा सकता। फिर भी प्रत्येक भिन्न-भिन्न निष्कर्षों की संभाव्यता देखी जा सकती है। प्रत्येक वेव्ह फंक्शन की तीव्रता (Intensity) पर संभाव्यताएं निर्भर होती हैं। उदाहरण-बीटा किरणें उत्सर्जित करके ह्रास होने वाले अणु की अवस्था, दो वेव्ह फंक्शन की सहायता से दिखाई जा सकती है। एक वेव्ह फंक्शन ह्रास न हुए अणुओं का तो दूसरा ह्रास हुए अणुओं को दिखाएगा। मापन के पूर्व ये दो वेव्ह फंक्शन्स (Superimposed) परस्परव्यापी होते हैं और सभी दिशाओं में फैले होते हैं। मापन करते ही मापन करनेवाले उपकरण के अतिरिक्त अन्य स्थानों वाले वेव्ह फंक्शन्स एकसाथ ढह जाते हैं और हमें निष्कर्ष मिलता है कि विशिष्ट अणु का ह्रास हुआ है या नहीं। अर्थात् क्वांटम मेकॅनिक्स का प्रयत्न यही है कि भौतिक वास्तवता (physical Reality) का निश्चित स्वरूप स्पष्ट करना।

एर्विन श्रोडिंजर-

क्वांटम यांत्रिकी के उद्गाताओं में श्रोडिंजर का नाम अग्रिम पंक्ति है लेकिन इस विषय पर कोपेनहेगेन स्पष्टीकरण मात्र, उन्हें बिलकुल मान्य नहीं था। इस स्पष्टीकरण के संदर्भ में उन्होंने कई मूलभूत प्रश्न उपस्थित किये और उनके समर्थन में वर्ष १९३५ में 'कॅट इन ए बॉक्स' इस नाम से एक वैचारिक प्रयोग भी प्रस्तुत किया था। 'श्रोडिंजर कॅट' नाम से यह प्रयोग प्रसिद्ध है। उन्होंने उपस्थित किये मूलभूत प्रश्न थे -

- मापन याने निश्चित क्या ?
- मापन करते ही वेव फंक्शन ढह जाता है और क्वांटम मेकॅनिक्स का जगत, अभिजात्य भौतिकशास्त्र में रूपांतरित हो जाता है, यह क्रिया ही तर्क विरोधी है।
- मापन करने वाले उपकरण के कारण वेव फंक्शन ढह जाता है या वह उपकरण और मूलकण देखने वाले सजीव निरीक्षक की उपस्थिति के कारण वह ढहता है ?
- वेव फंक्शन निश्चित रूप से कहा और कब ढह जाता है ?
- कोपेनहेगेन स्पष्टीकरण मूलकण की 'क्वांटम स्टेट' तथा मापन यंत्र क्या है इसका

विवरण नहीं देता। केवल उनके बीच के संबंधों का स्वरूप दिखाता है। लेकिन यह प्रकार उलझन बढ़ानेवाला है।

यह चर्चा हम यहीं समाप्त करेंगे ।

समांतर विश्व संकल्पना-

क्वांटम यांत्रिकी के कोपेनहेगेन स्पष्टीकरण के कारण जो प्रश्न सामने आयें उस कारण जो एक और पर्यायी संकल्पना आयी वह है 'समांतर विश्व संकल्पना'। इसे १९५८ में ह्यूज एवरिट इस वैज्ञानिक ने सामने रखा था। निरीक्षक ने मूलकण का निरीक्षण करते ही उससे संलग्न संभाव्यता की तरंग ढह जाती है और मूलकण का तरंग या कण इस द्रवती स्वरूपों में से एक निश्चित स्वरूप प्रकट होता है, इस स्पष्टीकरण का समर्थन, मुश्किल इस कारण है कि निरीक्षण के कारण संभाव्यता लहर ढह जाने का कारण क्या है, इसका उत्तर नहीं मिलता। एवरिट का प्रथम गृहितक यह है कि मापन करने का साधन तथा जिसका मापन करना है वह वस्तु दोनों क्वांटम स्तर के हैं। जिस समय मापन का साधन और कोई भौतिक प्रणाली इनका संपर्क होता है, उस समय मापन की जितनी संभावनाएं होंगी उतनी उस प्रणाली की प्रतियां होती हैं। उनमें से प्रत्येक प्रति का मानों अपना एक विश्व होता है। विश्व क्रमांक एक में मापन करने

वाला उपकरण, मापन की एक संभावना दर्शाता है तो विश्व क्रमांक दो दूसरी। इस तरह क्वांटम प्रणाली, संभावनाओं के विविध विश्वों में विभाजित हो जाती है। प्रत्येक विश्व में मापन की संभावना सत्य होती है। ये सारे विश्व एकदूसरे के समांतर होते हैं। उन्हें जोड़ने वाला कोई सेतु अस्तित्व में नहीं होता। हम एक ही विश्व में प्रवेश कर सकते हैं। इन अलग-अलग विश्वों में भौतिकी के नियम भी अलग-अलग हो सकते हैं। लेकिन इस संकल्पना की सत्यता या असत्यता प्रयोग द्वारा निश्चित नहीं की जा सकती। अतः वह हमेशा रहेगी एक कल्पना ही। व्यवहार में उसे मानना कठिन है।

लुइस डी ब्रोग्ली (Louise-d-Broglie) की वस्तु से जुड़ी तरंगें

- १) प्रकाश के कण और तरंग ऐसे दोहरे गुणधर्म होते हैं।
- २) १९२३-२४ के दरम्यान फ्रेंच खोजकर्ता ब्रोग्ली ने अपने पी.एच.डी. शोध दरम्यान, ऐसा सिद्धान्त रखा कि गति में होने वाली प्रत्येक वस्तु के साथ भी तरंग के गुणधर्म जुड़े रहते हैं।
 - अ) वस्तु की गति जितनी अधिक,
 - आ) वस्तु का वस्तुमान अधिक,

उतनी उस वस्तु की तरंग लम्बाई कम । प्रति सेकंड पांच सौ कि.मी. गति से जाने वाले इलेक्ट्रॉन के साथ एक नैनो मीटर (मिली मी. का दस लाखवां भाग) इतनी या क्ष किरण के तरंग लम्बाई इतनी तरंग संलग्न रहती है। प्रकाश गति के आधे गति से बढ़ने वाले इलेक्ट्रॉन की तरंग लम्बाई 0.००५ नैनो मीटर होगी। कार का वस्तुमान तौलनिक दृष्टि से बहुत ही अधिक होने से उसकी तरंग लम्बाई नगण्य होती है।

अगले दो सालों में अमेरिका के बेल लैब्स के शोधकर्ता क्लिंटन डेव्हिसन और लेस्टर जर्मर के प्रयोग दरम्यान इस गृहितक को सिद्धता प्राप्त हुई। आगे इलेक्ट्रॉन के साथ-साथ यही बात प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि कणों के लिए भी सिद्ध हुई। क्वांटम सिद्धान्त के लिए यह बहुत बड़ा योगदान था।

ब्रोग्ली को १९२९ में नोबेल पुरस्कार दिया गया। डेव्हिसन और स्वतंत्र ढंग से यही बात खोजने वाले इंग्लैंड के जॉर्ज थॉमसन को १९३७ साल का नोबेल पुरस्कार मिला। इस खोज के कारण क्वांटम यांत्रिकी का दायरा बढ़ा।

ब्रोग्ली के अनुसार, इलेक्ट्रॉन की तरंग लम्बाई

$$\lambda = h \text{ (प्लँक स्थिरांक) } / \text{ (इलेक्ट्रॉन का द्रव्यमान } \times \text{ इलेक्ट्रॉन की गति)}$$

यह सूत्र किसी भी पिंड के लिए उतना ही वास्तविक है।

कल्पना किजिए पृथ्वी और इलेक्ट्रॉन दोनों की गति एक ही है। तो फिर पृथ्वी की तरंग लम्बाई इलेक्ट्रॉन की तरंग लम्बाई से उतने गुना कम होगी जितने गुना उसका द्रव्यमान इलेक्ट्रॉन के द्रव्यमान से अधिक है। पृथ्वी का द्रव्यमान अनुमानतः 6.1×10^{27} ग्रॅम्स है तो इलेक्ट्रॉन का 10^{-27} ग्रॅम। अब इलेक्ट्रॉन तरंग की लम्बाई अँगस्ट्रॉम इकाई में गिनने के बाद ऐसा दिखेगा कि वह परमाणु के आकार से तुलना होने लायक है तो पृथ्वी की तरंग लम्बाई निकालने के लिए हमें परमाणु के आकारमान को ऐसी संख्या से छेद देना होगा जिसमें ५४ शून्य होंगे। इतना अल्प मापन हमारे लिए संभव नहीं, न ही हमारे लिए अनुभव की बात हो सकती है। दो कक्षाओं में अंतर भी इसी स्तर का होगा। एक ही गुणधर्म का अस्तित्व होने पर भी यहाँ क्वांटम छलांग की संकल्पना अर्थहीन हो जाती है। परमाणु के समान, ग्रह को दिया गया क्वांटम उपचार हमें पारंपरिक से अलग कोई नया परिणाम नहीं देता लेकिन उनके विश्लेषण के लिए हमें बृहत् और सूक्ष्म स्तर पर भिन्न-भिन्न यांत्रिकियों की रचना करनी पड़ी।

- ब्रोग्ली के अनुसार भौतिक कणों की हलचल से तरंग प्रक्रिया संलग्न रहती है। अर्थात् कण की हलचल तरंग संप्रेषण के नियमों से सम्बद्ध है। इस तरह ‘ तरंग यांत्रिकी ’ का उदय हुआ।

- ये तरंगें भी शून्य से संप्रेषित होती हैं। अतः ये यांत्रिक तरंगें नहीं हैं।

- ये उन वस्तुओं के लिए भी उत्पन्न होती हैं जो विद्युत आवेशित नहीं हैं। अतः ये विद्युत चुंबकीय तरंगें भी नहीं हैं।

- कणों के प्रवाह का, तरंग पहलू तब स्पष्ट होता है जब कण का वस्तुमान और गति अल्प होती हैं।

कण-तरंग-क्षेत्र

- प्रकृति में दिखने वाली सभी क्रिया-प्रक्रियाएं अंतिम विश्लेषण में मूलभूत कणिकाओं की एक दूसरे पर परस्पर प्रक्रियाओं के फलस्वरूप हैं।

- लेकिन कणिकाओं के मध्य, परस्पर क्रियाओं का वहन, क्षेत्र के माध्यम से होता है।

- विद्युत चुंबकीय क्षेत्र की इकाई फोटॉन है।

- अतः क्षेत्र भी सातत्यपूर्ण माध्यम नहीं। अर्थात् यह भी कण के रूप में ही होता है।

- गति की महत्तम मर्यादा प्रकाश की गति है। अर्थात् कोई प्रभाव, दूरी पर तत्क्षण नहीं पहुँचता। उसका तरंग के रूप में वहन होगा।
- तरंग के लिए क्षेत्र दोलित होना चाहिए।
- लेकिन फिर क्षेत्र के दोलन, कणों की हलचल के सिवाय असंभव हैं। दोलनों में क्वांटा उत्पन्न होते हैं और लुप्त होते हैं। जब विद्युत चुंबकीय क्षेत्र दोलित होता है तो फोटॉन उत्पन्न होते हैं और लुप्त होते हैं।
 - अर्थात् दो मूलभूत कणों के मध्य अन्योन्यक्रिया का माध्यम एक तीसरे कण का आदानप्रदान। यह कण उस बलक्षेत्र का क्वांटम होगा।
 - भौतिक क्षेत्र के कण 'क्षेत्र' के गुणधर्म लिए होते हैं और क्षेत्र की इकाई क्वांटा भौतिक तत्व या कण के गुणधर्म लिये होते हैं।
 - क्षेत्र के भौतिक गुणधर्म तब प्रभुत्व वाले होते हैं जब इनके क्वांटा अति ऊर्जाधारी होते हैं या तरंग लम्बाई बहुत अल्प होती है। जबकि भौतिक तत्व के क्षेत्रीय गुणधर्म तब प्रभावशाली होते हैं जब उनके कण अति ऊर्जाधारी होते हैं। परंतु अल्प ऊर्जा स्तर पर क्षेत्र, क्षेत्र है और भौतिक तत्व, भौतिक तत्व। या जब तरंग लम्बाई अल्प होती है तब 'फोटॉन' कण स्वरूप व्यक्त करते हैं, जैसे गॅमा किरणें।
 - सूक्ष्म विषयों की व्याघातपूर्ण 'कणिका-तरंग' प्रकृति के कारण सूक्ष्म विषयों के निर्देशांक तथा आवेग का एकसाथ सटीक निर्धारण करने की असंभाव्यता को व्यक्त करने वाला सिद्धान्त है अनिश्चितता सिद्धान्त।
 - क्वांटम यांत्रिकी में अनिश्चितता, यह परिणाम है अभिक्रिया के क्वांटम की कीमत शून्य न होना।

एर्विन श्रोडिंजर(आस्ट्रियन) का बिल्ली का वैचारिक प्रयोग

क्वांटम भौतिकी का यह सिद्धान्त याद किजिए -

“ कण का स्वरूप द्वयी है, कण भी, तरंग भी। वह तरंग रूपी है अर्थात् वह कई संभावित अवस्थाओं में हो सकता है, जब तक वह हमारे लिए ओझल है तबतक। इसे कण 'सुपरपोज़िशन अवस्था' में है ' ऐसा कहते हैं। लेकिन जैसा ही हम उसे देखते हैं या उसका मापन करते हैं तो उससे संबंधित 'वेव फंक्शन' ढह जाता है और वह संभावित अवस्थाओं में से एक अवस्था धारण कर लेता है, जो हमें दिखाई देती है।

यह तर्क या सिद्धांत श्रोडिंजर को मान्य नहीं था। इस संदर्भ में उन्होंने एक वैचारिक या सैद्धांतिक प्रयोग प्रस्तुत किया। यह 'श्रोडिंजर का बिल्ली का प्रयोग' (1926) के तौर पर क्वांटम भौतिकी में प्रसिद्ध है।

उसे निम्न रूप में

देखा जा सकता है -

वे एक बक्से में एक बिल्ली बंद कर देते हैं। बक्से में साथ-साथ एक रेडियो सक्रिय पदार्थ, रेडियो सक्रियता के लिए संवेदनशील सेन्सर, एक जहरीले वायु की शीशी, एक हतौड़ी हैं। ये चीजें विशिष्ट ढंग से रखी हैं। आप 'रेडियो सक्रिय' पदार्थ के 'अर्ध जीवन काल' से परिचित हैं ऐसा मानकर चलते हैं। या गंवारू भाषा में कहो तो, मानो रेडियो सक्रिय पदार्थ का क्षय होने की ५०% संभावना है। ऐसे क्षय के उपरांत विशिष्ट परिमाण में जब रेडियो सक्रिय विकिरण निकलेगा तो उसे सेन्सर ग्रहण करेगा और उसके कार्यरत होने से हतौड़ी शीशी पर गिरेगी, वह टूटेगी और जहरीली वायु बक्से में फैलेगी, जिससे बिल्ली की मृत्यु हो जाएगी।

जिसमें बक्सा है, हम उस कक्ष में जब पहुँचेंगे तो उस क्षण हमें पता नहीं कि बिल्ली जिन्दी है या मर गयी। बक्सा खोलने के बाद ही पता चलेगा। अगर बिल्ली को क्वांटम कण की तरह देखें और सुपरपोज़िशन तत्व उसपर लागू करें तो हमें कहना होगा कि जब बक्सा बंद था और उसे कोई नहीं देख रहा था तब वह अपनी दोनों संभावित अवस्थाओं में थी। यहाँ केवल दो ही अवस्थाएं संभव हैं। अर्थात् वह जीवित भी थी और मृत भी। जब हम बक्सा खोलते हैं तो उसका वेव फंक्शन ढंह जाता है और उसकी एक निश्चित अवस्था दिखाई देने लगती है। यही कारण है कि जब हम यह प्रयोग बारबार दोहराएंगे तो अलग-अलग उत्तर मिलेंगे।

हमारा सामान्य ज्ञान कहता है कि जब बक्सा बंद था तो उस समय या तो बिल्ली जीवित थी या मृत। एक साथ दोनों अवस्थाओं में होने का सवाल ही पैदा नहीं होता। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि हम उसे देख रहे हैं या नहीं। लेकिन क्वांटम स्तर पर वास्तविकता हमारे इस तर्क के आधार पर नहीं चलती। अमेरिका के कॉलराडो राज्य में u.s.National Institute of Standards and Technology में यह प्रयोग प्रत्यक्ष किया गया था। बिल्ली के स्थान पर बेरिलियम धातु के 'आयन्स' उपयोग में लाये गये थे।

वास्तव में श्रोडिंजर समीकरण का विकास, प्रकाश के गुणधर्म 'इंटरफिरन्स' को स्पष्ट करने के लिए किया गया था। लेकिन आगे चलकर इससे हमें पता चला कि क्वांटम स्तर पर स्थिति इतनी सरल नहीं है, काफी उलझनपूर्ण है।

बहु ब्रह्माण्डीय सिद्धांत-

इसके अनुसार अभी हमारे लिए जो संभावना है, उसका ब्रह्माण्ड में कहीं न कहीं, इसी क्षण प्रत्यक्ष अस्तित्व है। जब ब्रह्माण्ड के पास कई विकल्प होते हैं तो वह उसकी कई प्रतियाँ बनाता है। उनका प्रत्यक्ष अस्तित्व भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्डों में निश्चित होना चाहिए। इसकी सिद्धता असंभव है अतः हम इसकी अधिक चर्चा नहीं करेंगे।

क्वांटम कणों का उलझना : Quantum Entanglement and EPR paradox
(Spooky action at a distance)

वर्ष १९२० में आइन्स्टाइन और निल्स भोर में छोड़ी बहस-

आइन्स्टाइन के अनुसार वास्तवता हमेशा निश्चित होती है। अर्थात् हम वस्तुओं को देखें या न देखें, उनकी दखल लें या न लें, वे अपने स्थान पर वैसी ही बनी रहती हैं।

निल्स भोर का कहना था कि हमारे निरीक्षण या अनुमापन की अनुपस्थिति में जिसे हम वास्तवता समझते हैं, उसका अस्तित्व ही नहीं होता। वह अपनी सभी संभवनीय अवस्थाओं में होती है। तब भौतिक अस्तित्व (physical existence) का कोई मतलब ही नहीं बनता। इस स्थिति को वस्तु या कण के wave function द्वारा ही प्रदर्शित किया जा सकता है। हमारे निरीक्षण में आते ही यह वेव फंक्शन ढह जाता है (collapse)। संभावित अवस्थाओं में से एक का चुनाव होता है, जो हमें दिखता है। उसे हम वास्तवता मान लेते हैं। कोपेनहेगन प्रस्तुतीकरण इसी सिद्धांत पर आधारित है।

आइन्स्टाइन के अनुसार क्वांटम यांत्रिकी अभी अधूरी है। इसमें कुछ स्थानीय अज्ञात परिवर्ति कारक (hidden variables) होने चाहिए जिनका उपयोग कर हम वेव फंक्शन का उपयोग किये बिना ही सब कुछ का सटीकता से अनुमान कर पाए (predict)।

निल्स भोर को गलत साबित करने के लिए उन्होंने बी. पोडोल्स्की और एन. रोझेन के साथ मिलकर एक कल्पना रखी EPR Paradox। शुरू में इसे एक वैचारिक प्रयोग (थॉट एक्सपेरिमेंट) के तौर पर ही प्रस्तुत किया गया था च्यूँकि उस समय, उपकरण इतनी उन्नत अवस्था में नहीं थे और उसकी पड़ताल संभव नहीं थी।

इसमें निरीक्षक की जानकारी के बिना लाल और हरी गेंद दो बक्सों में छोड़ दी गयी थीं। निरीक्षक को पता नहीं था कि किस बक्से में कौन सी गेंद है। यहाँ केवल संभावनाओं का राज था। लेकिन जैसे ही एक बक्से को खोला गया और उसमें बंद गेंद दृष्टि में आयी तो दूसरे बक्से में बंद गेंद का रंग निश्चित हो गया। उसकी भविष्यवाणी करना संभव हुआ। लेकिन यहाँ यह

ध्यान में लेना जरूरी है कि दोनों बक्सों में बंद गेंदों के रंग पहले से ही निर्धारित थे। एक का रंग पता चलते ही दूसरे गेंद ने अपना रंग स्वयं ही नहीं बदला था।

अब क्वांटम एन्टंगलमेंट -

जब अति ऊर्जाधारी दो फोटॉन एकदूसरे के साथ टकराये जाते हैं तो $E = mc^2$ के अनुसार उनसे इलेक्ट्रॉन और पॉजिट्रॉन की जोड़ी पैदा हो सकती है। लेकिन चूंकि फोटॉनों का विद्युत आवेश और स्पिन शून्य हैं तो पैदा होने वाले इन नए कणों में इन परामितकों के अविनाशी होने के नियम का पालन होना आवश्यक है। यह संभव हो पाता है कण, जोड़ी के रूप में पैदा होने से, एक कण पैदा होने से नहीं। अर्थात् वे कण एक दूसरे के साथ जुड़े हैं। अब मानो किसी प्रक्रिया में पैदा हुए इलेक्ट्रॉन-पॉजिट्रॉन जोड़ी के स्पिन की बात लें। अगर इलेक्ट्रॉन का स्पिन ऊपर की दिशा में है तो पॉजिट्रॉन का निश्चित ही नीचे होगा। इस तरह वे जुड़ जाते हैं या एक दूसरे के साथ उलझे रहते हैं। उपरोक्त स्थिति के विपरीत स्थिति भी हो सकती है। लेकिन यहाँ EPR विरोधाभास के उदाहरण की तरह कण 'e' का स्पिन पूर्वनिर्धारित नहीं होता। वह कोई भी दिशा ले सकता है। ऐसा होते ही दूसरे कण का स्पिन विरुद्ध दिशा लेने को मजबूर है। मानो दोनों में सूचना का आदान-प्रदान हो गया और वह भी तत्काल अर्थात् अनंत गति से। लेकिन यह बात विशेष सापेक्षता के इस सिद्धांत के विरोध में जाती है कि महत्तम संभवनीय गति की मर्यादा, प्रकाश की रिकित में गति है। और यही एक बहुत बड़ी पहेली है।

यहाँ यह कहा गया है, जबतक जोड़ी के एक कण का निरीक्षण नहीं किया जाता वे कण किसी एक निश्चित स्थिति में नहीं होते। वे सभी संभवनीय अवस्थाओं में होते हैं या संयुक्त अवस्था में होते हैं। उन्हें संयुक्त अवस्था में ही माना जा सकता है। ऐसी स्थिति को superposition कहते हैं। यहाँ शुरू में कुछ भी निश्चित नहीं होता।

आइन्स्टाइन को क्वांटम यांत्रिकी का गर्भितार्थ कभी मान्य नहीं हुआ। इसीलिए EPR सिद्धांत प्रस्तुत किया गया था, उसका विरोध करने के लिए। लेकिन जब पर्याप्त सूक्ष्म उपकरण उपलब्ध हुए तब EPR सिद्धांत के जो परिणाम मिले वे बिल्कुल उलट थे। वे एन्टंगल सिद्धांत के अनुरूप थे, चाहे दो कणों में दूरी कितनी ही क्यों न हो।

ऐसे कणों की जोड़ी आज की प्रयोगशाला में उत्पन्न होती है, या की जा सकती है। जॉन स्टिर्वर्ट बेल ने (१९२८-१९९०) एन्टंगलमेंट की भविष्यवाणी को प्रयोग द्वारा सिद्ध किया।

क्वांटम कण को हम वेव फंक्शन द्वारा विवेचित करते हैं। जब दो कण एक दूसरे के संपर्क में आते हैं तो दोनों के वेव फंक्शन एक दूसरे पर हावी हो सकते हैं। लेकिन ये जुड़ाव क्षीण होता है। जैसे आपकी खिड़की से आपकी तरफ आ रही किरणें। इस कारण जब हम उनका मापन करते हैं तो उनके गुणधर्मों में कोई फर्क नहीं मिलता। लेकिन जब एक ही स्रोत से साथ-साथ दो कण पैदा किये जाते हैं तो उनके बीच का जुड़ाव सशक्त होता है। जैसे एकनॉनपोलराइज्ड फोटॉन को दो पोलराइज्ड फोटॉनों में बदल देते हैं।

लेकिन हमें यह नहीं मालूम कि एन्टैंगल्ड कण आपस में सूचना का आदान-प्रदान करने के लिए किस माध्यम का उपयोग करते हैं। हो सकता है वे वर्म होल जैसे माध्यम का उपयोग करते हों जिसके बारे में हम कल्पना करते हैं कि उसका उपयोग कर हम प्रकाश से कई गुना गति से यात्रा कर सकते हैं। लेकिन अतः यह सूचना संप्रेषण है क्या? वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस गुणधर्म का उपयोग कर हम प्रकाश से अधिक गति से सूचना संप्रेषण कर सकेंगे। दो जुड़ावग्रस्त कणों की जोड़ी का उपयोग कर और संकेतों के आधार पर।

लेकिन ऐसे कणों की जोड़ी तभी काम करती है जब हम उसका केवल मापन करते हैं या उसकी स्थिति जान जाते हैं। लेकिन जैसे ही हम उनमें से एक कण की स्थिति हमारे मन मुताबिक करने का प्रयत्न करते हैं तो उनके बीच का जुड़ाव टूट जाता है और उनकी अवस्थाएं एक दूसरे पर निर्भर नहीं रहतीं। अर्थात् हम हमारे उद्देश्य के लिए उनमें से किसी भी कण के साथ जबरदस्ती नहीं कर सकते।

इसका अर्थ यह नहीं कि जब एक कण के साथ कुछ हरकत होती है तो उसका एन्टैंगल्ड जोडीदार मूंह चिढ़ाते हुए तत्क्षण प्रतिक्रिया देता है। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि जब तुम प्रभावित कणों के एन्टैंगल्ड गुणधर्मों का मापन करते है तो वे एक दूसरे के साथ सांख्यिकीय संबंध स्थापित किये होते हैं। समझो इलेक्ट्रॉन्स की एन्टैंगल्ड जोड़ी के साथ आप हो तो एक का स्पिन अगर उर्ध्व है तो दूसरे का अधो होगा, लेकिन आपको पता नहीं कि कौन, कौनसा है।

- क्वांटम भौतिकी में बिलियर्ड के गेंदों जैसे सूक्ष्म कणों का अध्ययन नहीं है तो मूलभूत कण यानी क्षेत्र जो अंतराल में फैले हुए स्वरूप में उपस्थित होते हैं। उदा. क्वांटम विद्युत गतिशास्त्र इस सिद्धांत में केवल दो चीजें हैं। एक है विद्युत चुंबकीय क्षेत्र और दूसरी है इलेक्ट्रॉन क्षेत्र। अन्य कुछ भी नहीं। ये क्वांटम क्षेत्र होने के कारण उनके उत्तेजन विवक्त पूंज के रूप में होंगे। अतः जब इलेक्ट्रॉन क्षेत्र विद्युत चुंबकीय क्षेत्र के साथ अन्योन्य क्रिया करता है तब वह एक उत्तेजना पैदा कर सकता है। जिसे हम फोटॉन कहते

हैं। उसी तरह जब विद्युत चुंबकीय क्षेत्र, इलेक्ट्रॉन क्षेत्र के साथ अन्योन्य क्रिया करता है तो उससे दो विरोधी स्वभाववाले एकक उत्तेजन (इलेक्ट्रॉन- पॉजिट्रॉन)

पैदा हो सकते हैं। ये क्षेत्रों के उत्तेजन होते हैं फिर हम उन्हें कण क्यों कहते हैं ?

1) उनकी गणना की जा सकती है। हर बार एक, इस हिसाब से इलेक्ट्रॉन क्षेत्र के कितने उत्तेजन हैं। क्वांटाइज्ड का यही अर्थ है। 2) जब हम इन उत्तेजनाओं के साथ अन्योन्यक्रिया करते हैं तो उनकी प्रवृत्ति स्थानिकृत (Localised) होने की होती है। और हम उन्हें फोटॉन के रूप में पहचान सकते हैं भले ही इसके पहले वे उत्तेजन स्थानीकृत नहीं थे। ये उत्तेजन वास्तव में संभावनाओं की घनता निश्चित करते हैं जो फोटॉन के भिन्न-भिन्न संभावित स्थान हो सकते हैं। क्वांटम कण एकदूसरे के साथ सूचना का आदान-प्रदान नहीं करते जब आप इन क्षेत्रों के उत्तेजनों को दिखाते हैं, या उनके अन्तर्सम्बन्धों देखते हैं, भले ही वे कितने भी दूरी पर हो तो वे गुणधर्मों की अवश्यंभावी जोड़ी प्रदर्शित करते हैं। हमें ऐसा लगता है उनमें कोई जादुई संप्रेषण हुआ है। जैसे आभासी कण अवश्यंभावी इलेक्ट्रॉन- पॉजिट्रॉन जोड़ी में ही उत्पन्न होने हैं। अन्य भाषा में कहें तो जब दो कण एन्टंगल होते हैं तो उनके क्वांटम क्रमांक एक दूसरे के समान नहीं तो पूरक होते हैं। उदा. दो एन्टंगल्ड फोटॉनों में उनका पोलरायझेशन पूरक (Complementary) स्वरूप का होता है। अगर एक खड़ा पोलराइज्ड हो तो दूसरा क्षितीज समांतर होगा।

- एंटंगलमेंट को ऐसी प्रक्रिया का परिणाम मान सकते हैं जो अंतरिक्ष और समय से होते हुए, अर्थदायी गति के साथ संप्रेषित होती है। जब दो फोटॉन एन्टंगल्ड होते हैं तो कोई एक फोटॉन दूसरे को कोई संदेश नहीं भेजता। इसका अर्थ यही होता है कि, वही चल परामितकों का संच दोनों फोटॉनों के व्यवहार को नियंत्रित करता है। ये परामितके एक स्थान से दूसरे स्थान तक यात्रा नहीं करते। ये क्षेत्रों के क्वांटाइज्ड उत्तेजन होते हैं। क्षेत्र तो पूरे अंतराल और काल में उपस्थित होते ही हैं। तो एंटंगलमेंट भी वास्तव में क्षेत्रों के इन उत्तेजनाओं का होता है। और वैसे भी उत्तेजन ही अपने आपको कण के रूप में व्यक्त करते हैं, ऐसा माना जाता है।

- इलेक्ट्रॉन्स का टकराव-

अगर इलेक्ट्रॉन का निश्चित आकार नहीं है तो दो इलेक्ट्रॉन्स आपस में टकराते कैसे ? दो इलेक्ट्रॉन्स हमारी सामान्य समझ के अनुसार नहीं टकराते। अर्थात् एक इलेक्ट्रॉन सीधे तौर पर दूसरे इलेक्ट्रॉन के साथ अन्योन्यक्रिया नहीं करता। लेकिन इलेक्ट्रॉन, इलेक्ट्रो मैग्नेटिक क्षेत्र के साथ अन्योन्यक्रिया करते हैं। अर्थात् वे फोटॉन्स को अवशोषित और उत्सर्जित करते हैं। साथ ही

वे उनके विद्युत आवेश के कारण विद्युत चुंबकीय क्षेत्र के लिए स्रोत का काम करते हैं। जब दो इलेक्ट्रॉन्स एक दूसरे के करीब आते हैं तो प्रत्येक इलेक्ट्रॉन, अन्य इलेक्ट्रॉन के कारण विद्युत चुंबकीय क्षेत्र में हो रहे बदलाव के प्रति प्रतिक्रिया देता है। या कहिए वे आभासी फोटॉनों का बढ़ती मात्रा में आदान-प्रदान करते हैं।

वे जितना करीब आएंगे उतना यह आदान-प्रदान उग्र होता जाएगा और वह इलेक्ट्रॉनों के बीच, विकर्षण के रूप में अपने को प्रकट करेगा। इस तरह भले ही वे आपस में एक दूसरे को स्पर्श न करते हो लेकिन उनमें विकर्षण की प्रवृत्ति प्रकट होती हुई दिखाई देती है। इस प्रक्रिया को हम ' टकराव ' शब्द से व्यक्त करते हैं।

- वेह फंक्शन का ढह जाना -

वेह फंक्शन यह अस्तित्व के संसूचन (Detection) की संभावना को सूचित करता है। प्रत्यक्ष संसूचन की संभावना को निश्चितता के रूप में अद्यावत करता है। यह घटना यानि वे. फ. का ढह जाना (collapse) है। एक बार संसूचन होते ही आप निश्चित हो जाते हैं कि अस्तित्व के किसी और स्थान पर होने की संभावना शून्य है। इसी कारण कहा जाता है, निरीक्षण के साथ ही वेह फंक्शन ढह गया।

इसी कारण कुछ ऐसा भी कहा जाता है की निरीक्षण यह वास्तव में प्रणाली की जानकारी अद्यावत करना है, न कि किसी भौतिक वस्तु का ढह जाना।

- एक प्रश्न पूछा जाता है कि अगर इलेक्ट्रॉन की उपस्थिति एक से अधिक स्थानों में से किसी भी स्थान पर होने की संभावना हो सकती है तो क्या पूरे ब्रह्माण्ड में एक ही इलेक्ट्रॉन है जिसकी उपस्थिति यहाँ भी हो सकती है और ब्रह्माण्ड में और कहीं भी ?

इलेक्ट्रॉन की स्थिति तबतक अनिश्चित है जबतक वह किसी क्लासिकल भौतिक वस्तु के संपर्क में नहीं आता। लेकिन जैसे ही हम उससे संबंधित किसी परामितक की गणना की प्रक्रिया से जुड़ते हैं यह स्थिति नहीं रहती। उसकी स्थिति निश्चित हो जाती है। अर्थात् हम उसके संभावित दो स्थानों पर उसका एकसाथ मापन नहीं कर सकते।

भले ही इलेक्ट्रॉन की स्थिति अनिश्चित होती हो, उससे जुड़े परामितके जैसे ऊर्जा, विद्युत आवेश, ऐसे नहीं होते। अतः अगर आपने १०० एकक विद्युत आवेश का मापन किया तो निश्चित ही १०० इलेक्ट्रॉन्स की उपस्थिति होगी।

- अगर परमाणुओं के बीच भारी अंतराल होता है तो फिर वे घनावस्था में कैसे बने रहते हैं ? वास्तव में संतुलित क्षेत्रों के आपस में गुंथे (Interlocking) होने के कारण वस्तु घन रूप में बनी रहती है। प्रत्येक कण संभावना के अंतराल फैला रहता है अर्थात् कण के स्थान पर तरंग जैसा। घन रूप यह केवल ऐसे विश्रुंखलित होने को, इन क्षेत्रों का प्रतिरोध है ।

- क्षेत्र और तरंग -

विद्युत चुंबकीय तरंग यह निर्वात में प्रकाश गति से यात्रा करती है। उसी तरह गुरुत्वीय तरंग भी।

लेकिन दो स्थिर विद्युत आवेशित कणों के बीच आकर्षण या विकर्षण या दो द्रव्यमानधारी पिंडों के बीच आकर्षण के लिए उत्तरदायी कोई मध्यस्थ तरंग नहीं होती। वहां केवल स्थिर क्षेत्र होते हैं। उनके बीच किसी भी चीज की यात्रा नहीं होती। अर्थात् गति का प्रश्न नहीं उठेगा।

- स्पीन -

लट्टू के अपने अक्ष के गिर्द घूमने का चित्र हमारे दिमाग में बैठा हुआ है। लेकिन यहाँ लट्टू जैसा प्रत्यक्ष कोई परिवर्तन नहीं है। यह मूलभूत ढंग का एक और कोनीय आवेग है। अन्य है कक्षीय कोनीय आवेग। वास्तव में यही आवेग ही वस्तु के अपेक्षित गुणधर्म उद्भूत करता है। तो फिर इस एक अन्य आवेश की क्या आवश्यकता है ?

लेकिन स्पीन यह मूलभूत कण का आन्तरिक गुणधर्म है जैसे की विद्युत आवेश। यह उपरोक्त ढंग की किसी हलचल का परिणाम नहीं, न इसे कण के किसी अन्य गुणधर्म के आधार पर निकाला जा सकता है। जबकि कक्षीय कोनीय आवेग यह क्लासिकल भौतिकशास्त्र की बात है जो कण के अन्य गुणधर्मों के समान ही कण की गति से जुड़ा हुआ है।

उसी तरह इलेक्ट्रॉन को लें, तो वह न नाभिक के गिर्द पारंपरिक ढंग की परिक्रमा करता है जैसे ग्रह सूर्य की।

उसी तरह अणु के घटकों (इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन) के भी क्षेत्र के क्वांटा ही होते हैं जो एक दूसरे से बंधे रहते हैं। क्वांटा अंतराल में उसी तरह फैलते हैं जैसे क्षेत्र। वास्तव में क्वार्क, इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रिनो इनके कोई भौतिक आयाम (Physical Dimension) नहीं होते।

इसी कारण 'द्वय स्लीट' प्रयोग में वे दोनों दरारों से गुजर जाते हैं। लेकिन जब वे पडदे से टकराते हैं तो एक परमाणु के रूप में ढंढ जाते हैं। उनके ढंढने की संभावना यह क्षेत्र की

शक्ति पर निर्भर होती है। पडदे पर हमें व्यतिकरण (Interference) का क्लासिकल पैटर्न देखने मिलता है। अतः कोई कण-तरंग, द्वयी विरोधाभास नहीं है।

- कण -

किसी पानी की बुंद की तरह आमतौर पर कण की गोल आकार ग्रहण करने की प्रवृत्ति होती है। पानी में यह सर्फेस टेंशन बल के कारण होती है। तो परमाणु में नाभिक और न्यूक्लियॉन के साथ, सशक्त, क्षीण तथा विद्युत चुंबकीय बल इनकी अन्योन्यक्रिया के कारण होती है। जब बहुत सारे बेतरतीब ढंग से गतिमान कण एकत्र आते हैं तो गुरुत्व के कारण वे गोल आकार ग्रहण करते हैं जैसे ग्रह।

जहाँ तक 'मूलभूत कणों की बात होती है, हम उन्हें भले ही कण कहें लेकिन वे न कण होते हैं न तरंगें। वे क्षेत्रों की क्वांटम उत्तेजनाएं होती हैं। क्षेत्र, अन्योन्यक्रिया के वे प्रदेश होते हैं, जिन्हें प्रकृति के मूलभूत बल उत्पन्न करते हैं। ये बल गतिजन्य तरीके से अन्योन्यक्रिया करते हैं। यह गत्यात्मकता क्षेत्र को आंदोलित करती है। क्षेत्रों के आंदोलनों में ऊर्जा होती है जिसे अधिकतर अवस्थाओं में पकड़ा जा सकता है। क्षेत्र के आंदोलन की ऊर्जा को प्रदर्शित करने की कृति क्षेत्र उत्तेजित करती है और उसे प्रदर्शित करने वाले उपकरण पर मापन करने में, एक आंदोलन चक्र पूरा करवाती है। उपकरण स्वयं परमाणु से बना है जिनके अपने आंदोलित क्षेत्र और आंदोलन हैं। क्वांटम यह कोई पदार्थ नहीं है। वह एक घटना है। इस घटना का उल्लेख 'कण' के तौर पर अनुचित ढंग से करते हैं। लेकिन विवरण का यही रूप तब से प्रचलन में है जब से परमाणु का व्यक्तिगत अस्तित्व कण के रूप माना जाता था।

श्रोडिंजर समीकरण

मूलतः यह कहता है कि मापन या निरीक्षण के पूर्व क्वांटम प्रणालियाँ Superposed अवस्था में होती हैं। अर्थात् उनके गुणधर्म केवल wave function के रूप में ही व्यक्त किए जा सकते हैं। हम हैड्रोजन परमाणु का उदाहरण लेंगे। आम भाषा में, इस संकल्पना का एक संच हमें मिल सकता है। परमाणु में इलेक्ट्रॉन एक कण के तौर पर नहीं तो तरंग के तौर पर भ्रमण करता है।

मापन के पूर्व क्वांटम प्रणालियाँ, एक त्री आयामी बादल या संभावनाओं की तरंगों के रूप में होती हैं। इलेक्ट्रॉन एकसाथ सभी जगह हो सकता है। वह यहाँ या वहाँ नहीं है। वह यहाँ और वहाँ

हैं। यह हमारे मापक उपकरण की मर्यादा के कारण नहीं है। ये वास्तवता की मर्यादाएं हैं। और यही कारण है कि कई प्रयोगों में क्वांटम प्रणालियाँ रहस्यमय तरीके से व्यवहार करती हैं। लेकिन यहाँ कुछ चीजें ध्यान में लेनी होगी -

- १) जब हम क्वांटम स्तर पर मापन ही नहीं तो निरीक्षण करते हैं तो हमारे पास ऐसा कोई साधन नहीं कि उस कण या प्रणाली को बिल्कुल धक्का न लगाते हुए, उसे अंजाम दिया जाये। उसे कुछ न कुछ तो धक्का लगना ही है जिससे उसकी मूल अवस्थाओं में मामूली क्यों न हो अन्तर आता ही है। इस कारण उसका संबंध वस्तुनिष्ठता के स्थान पर आत्मनिष्ठता से भी जोड़ा जाता है।
- २) हम जब किसी तरंग के एक कण-बिंदु पर ध्यान केन्द्रित करते हैं तो पाते हैं कि तरंग तो बाएँ से दायी ओर बढ़ रही है। लेकिन वह बिंदु मात्र केवल ऊपर-नीचे आंदोलित हो रहा है। वह आगे नहीं बढ़ रहा है।
- ३) समझ लो हमने किसी क्षण तरंग की फोटो खींची तो किसी बिंदु की उस क्षण की अंतरिक्ष में स्थिति या कार्यकलाप से परिचित होंगे। लेकिन अगर हमें तरंग के हर बिंदु का एक्स अक्सिस की दिशा में और हर क्षण का चित्र चाहिए तो वह 'एक्स' और 'टी' का फंक्शन होगा और वह तरंग गति से जुड़ा होगा। ऐसे उलझनपूर्ण विवरण वाले समीकरण को 'वेव फंक्शन' कहा जाता है। जबकि पहले स्थिति का समीकरण क्लासिकल यांत्रिकी के आधार पर व्यक्त किया जा सकता है।
- ४) इसी wave function को ψ (psi) 'साय' इस ग्रीक अक्षर से व्यक्त किया जाता है।
- ५) श्रोडिंजर समीकरण, प्रणाली के ऐसे wave function का हल प्रस्तुत करता है। यह क्वांटम दुनिया का महत्वपूर्ण अंग है। कोई कण निश्चित क्षण में निश्चित स्थान पर होने की संभावना का पता करने का यह सूत्र है। यह कण एक ही समय भिन्न-भिन्न स्थानों पर अलग-अलग संभावनाओं के साथ क्यों न हो, अस्तित्व में हो सकता है। पुंजशक्तिवाद के अनुसार आम भाषा में कहना हो तो कोई कण एक ही क्षण अलग-अलग स्थितियों में हो सकता है।
 - लेकिन wave function यह कोई वास्तव भौतिक तरंग नहीं है जैसी ध्वनि की या पानी पर उठने वाली तरंग होती है। क्वांटम तरंग यह अमूर्त गणितीय प्रस्तुती है जिसे किसीने नहीं देखा। इलेक्ट्रॉन के साथ हमने जो भी आदान-प्रदान किया है वह एक कण

के रूप में ही। Wave function यह एक आदोलन रूपी संभावना है। लेकिन उसका आयाम (Magnitude) और संभावनाओं में से आने वाला परिणाम वस्तुनिष्ठ या वास्तव होता है।

- लेकिन wave function में मापन करने लायक पूरी जानकारी होती है।
- wave function सतत या लगातार (कंटीन्यूअस) होता है।
- वह त्रि आयामों में संभावनाओं का वितरण स्थापित करता है।
- यह चल परामितक के परिणामकारक औसत कीमत की गणनाओं को संभव बनाता है।
- wave function आपको, तरंग के आकार का गणितीय विवरण देता है।
- श्रोडिंजर ने इसे (उदा. के लिए इलेक्ट्रॉन लेने पर) इलेक्ट्रॉन के आवेश के अंतराल में वितरण के तौर पर प्रस्तुत किया। उन्होंने इसे आवेश घनता के रूप में लिया।
- लेकिन आज हम जिस विवेचन को स्वीकार करते हैं उसे प्रस्तुत करने का श्रेय मैक्स बॉर्न को जाता है। उन्होंने कहा कि इसे आवेश घनता के तौर पर लेने के स्थान पर इलेक्ट्रॉन, अंतराल में किसी बिंदु पर मिलने की संभावना के तौर पर लो। अर्थात् आवेश घनता के स्थान पर यह हमारे उपयोग की दृष्टि से संभावनाओं की घनता हो।

उनके अनुसार जिन बिंदुओं पर उसकी कीमत शून्य आती है वहाँ इलेक्ट्रॉन मिलने की संभावना शून्य होगी। जहाँ ψ की कीमत अधिकतम होगी वहाँ उसके मिलने की संभावना महत्तम होगी। अगर कीमत ऋणात्मक महत्तम आ रही होगी तो भी इसका अर्थ इलेक्ट्रॉन उस क्षेत्र में मिलने की संभावना अधिकतम होगी।

लेकिन एक कीमत से समाधानी होने से काम नहीं चलेगा। एक मापन में वह यहाँ मिलेगा तो अगले मापन में दूसरी जगह। आपको मापन कई बार करते रहना होगा। जहाँ महत्तम कीमत अधिक बार मिलेगी वहाँ आपको प्रवाह के, अधिकतम संख्या में, इलेक्ट्रॉन्स मिलेंगे।

Wave Function ढह जाने का अर्थ, अगर एक बार आपको एक स्थान पर इलेक्ट्रॉन मिल गया तो वह अन्य स्थान पर नहीं होगा।

अर्थात् यहाँ इस उलझनपूर्ण विषय को सामान्य जन के लिए बहुत गंवारु भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

क्वांटम यांत्रिकी और अध्यात्म की सिद्धता का दावा

क्वांटम भौतिकी_यह भौतिकशास्त्र के अंतर्गत आनेवाली एक शाखा है, यह सर्वमान्य है। उसके स्वरूप को भी हमने देखा। लेकिन उसका उपयोग आजकल बड़े जोर-शोर से बुद्धिवाद को निरर्थक सिद्ध करने के लिए किया जा रहा है।

उदाहरण:- के तौर पर एक किताब है ‘ चमत्कारों का विज्ञान ‘ इसकी कुछ बातें यहाँ उद्धृत करना अप्रस्तुत नहीं होगा -

भौतिक विज्ञान में ज्ञान मीमांसा -

“ अनुभूति का उगम स्थान, सत्य (रियलिटी) का अंतिम प्रमाण, दृश्य जगत में न होकर मनुष्य के अंदर बताने वाला ‘ क्वांटम भौतिकी ‘ है। (आइन्स्टाइन का सापेक्षता सिद्धान्त भी इसके लिए कुछ हद तक उत्तरदायी है)। इस क्वांटम भौतिकी के कारण अभिजात(Classical) भौतिक विज्ञान की वस्तुनिष्ठता और यंत्रवाद -अर्थात् कार्यकारणवाद -दोनों समाप्त हुए। वस्तुनिष्ठता जिस प्रत्यक्ष प्रमाण पर आधारित है, वह प्रत्यक्ष प्रमाण, अणु के सूक्ष्म जगत में (Microcosm) क्वांटम सिद्धान्त के कारण धाराशायी हुआ। चूंकि प्रत्यक्ष प्रमाण जिस स्थल-काल की संकल्पना पर आधारित है वह संकल्पना ही हाइजेनबर्ग के अनिश्चितता तत्व (UNCERTAINTY PRINCIPLE) के कारण सूक्ष्म जगत में गैरलागू होने की बात स्पष्ट दिखती है। इस कारण प्रत्यक्ष प्रमाण पर खड़े कार्यकारण भाव का तर्कशास्त्र भी यहाँ लागू नहीं होगा। अन्य शब्दों में व्यवहार का तथाकथित ‘ प्रामाण्यवाद ‘ अणु के स्तर पर कोई काम का नहीं, यह क्वांटम सिद्धान्त ने दिखा दिया। क्वांटम जगत यह रूढ़ तर्कशास्त्र में नहीं बैठता। इस कारण उसे व्यावहारिक तर्क की कसौटियां लगाकर नहीं समझा जा सकता। इसके लिए अलग ही कसौटियां ढूंढने की आवश्यकता है। बोहर ने अलग ही कसौटी (Complementarity) उसके लिए सुझायी है। इसका अर्थ है परस्पर विरोधी बातों का सहअस्तित्व।”

इसपर उपरोक्त पुस्तक के लेखक की और टिप्पणी है, “ निल्स बोहर इस क्वांटम सिद्धान्त के आद्य प्रणेता ने गुढानुभूतिवादी लेखन भले ही न किया हो, फिर भी अपने ‘ Atomic Physics and Human Knowledge ‘ (१९५८) इस ग्रंथ में भौतिक ज्ञान की मीमांसा करते समय, बुद्ध और लाओत्से इनके सामने जो ज्ञान विषयक समस्याएं थीं, उन्हींका सामना करना पड़ता है, ऐसा स्पष्ट कहा है। -----अर्थात् गुढानुभूतिवादी (अध्यात्मवादी) बने

बिगर विज्ञान में अंतर्भूत ज्ञानमीमांसा (प्रामाण्यचर्चा) करना असंभव है ऐसा निल्स बोहर का कहना है । “

अर्थात् लेखक का सारा जोर इसीपर है कि बाहर जो है (सृष्टि) सत्य नहीं है। सत्य केवल अंदर (अध्यात्म) में ही छुपा है।

लेकिन बोहर के कथन से और उनके किए अनुसंधान से क्या आप यह स्पष्ट निष्कर्ष निकाल सकते हैं ? बोहर ने सत्य स्विकारोक्ति के लिए कसौटियां बदलने कहा है। सृष्टि और विज्ञान को असत्य नहीं। बुद्ध और लाओत्से ने जिन ज्ञान विषयक समस्याओं का सामना किया, वह पूरे इतिहास में कई चिंतकों ने किया और उसीसे मनुष्य जाति की झोली में ज्ञान (फिर वह किसी भी रूप में हो, जिसमें विज्ञान भी शामिल है) डाला , जिसने मनुष्य जाति के जीवन को इस सहनीय रूप तक लाया है। सृष्टि के इस अपार भंडार का उपयोग करना बाहर को असत्य मानकर क्या संभव था ?

उपरोक्त लेखक ने केन बिल्वर नामक तत्ववेत्ता के ‘Quantum Questions’ (१९८४) ग्रंथ का उल्लेख किया है और दावा किया है कि उस ग्रंथ में हाइसेनबर्ग, श्रोडिंजर, आइन्स्टाइन, डी. ब्रोग्ली, जेम्स जीन्स, मैक्स प्लैंक, वुल्फगॉंग पावली, एडिंग्टन जैसे ख्यातनाम भौतिकशास्त्री किस तरह आध्यात्मवादी थे, यह सबूतों के साथ दिखाया है। अब यह बात अगर इतनी सत्य है तो यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि ये सारे लोग अपने जीवन के अंत तक भौतिकी के साथ ही क्यों उलझे रहे। अध्यात्म कैप के कोई सन्त क्यों नहीं बने? प्रकृति की शक्ति के सामने नतमस्तक होना यानि प्रकृति को असत्य मानते हुए उसके पार कुछ ढूँढना नहीं होता।

आगे लेखक का कथन है कि आध्यात्मवादी और गुढानुभववादी प्राचीन समय से बता रहे हैं कि जगत अविभाज्य और एकात्म है। यह वस्तुस्थिति दृश्य जगत के पार की ‘ व्यवस्था ’ सूचित करती है। उस व्यवस्था को डेव्हीड बोहम ने Implicate Order कहा है। विश्व को एकात्म बताना इसपर, आध्यात्मवादियों और गुढानुभूतिवादियों का एकाधिकार नहीं है। वैज्ञानिक जगत भी चार प्राथमिक बलों का एकीकरण स्थापित करने जी जान से जुटा हुआ है। आगे लेखक -

“ आधुनिक विज्ञान ने प्रत्यक्ष को सत्य लगने वाला (दृश्य) जगत झूठा, असत्य, केवल भासमान होने की बात, वैज्ञानिक कसौटी पर ही सिद्ध की है। “

चमत्कार : लेखक उद्धृत करते हैं -मैक्स प्लैंक द्वारा व्यक्त युक्तिवाद ,” ‘चमत्कार का अस्तित्व है। उसकी वैज्ञानिक मीमांसा न कर सकने का कारण ‘ अनुभव ‘ यह आत्मा या चैतन्य का गुणधर्म है “। लेखक के अनुसार -

“क्वांटम मेकॅनिक्स ने चमत्कारों को वैज्ञानिक नींव प्रदान की है। इस तरह सन्तों का अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष यह (आध्यात्मिक) प्रमाण वैज्ञानिक सिद्ध हुआ है।” उधर लेखक यह भी कहते हैं, “चमत्कार का व्यवहार में अधिक उपयोग नहीं होता। न हो यही प्रकृति की योजना है। (पृष्ठ १२४)” लेकिन पूरी किताब मानों, चमत्कारों की संहिता है। ‘काल्पनिक भूत देहधारी बना’ इस शीर्षक के अंतर्गत एक किस्सा दिया गया है -

“काल्पनिक पात्र, दृश्य भूत के रूप में प्रकट हो सकता है, इतना ही नहीं तो प्रत्यक्ष मनुष्य समान देहधारी भी बन सकता है ऐसा अलेक्झांड्रा डेव्हिड नील इस महिला ने स्वयं, तिब्बत में किए गये एक प्रयोग द्वारा दिखा दिया है तथा उसकी जानकारी उसके ‘Magic and Mistry in Tibet’ इस ग्रंथ में मिलती है।”

फिर योगसारोपनिषद् का छठा मंत्र उद्धृत किया गया है - ‘चित्तिमूर्तिमति । सा चाप्रतिहता शक्तिः। और अर्थ दिया गया है - मानवी मन के विचार में - चैतन्य में - चाहे जो रूप, वस्तुनिष्ठ स्वरूप में पैदा करने का सामर्थ्य है।

अब इस बात पर वाचक स्वयं अपनी बुद्धि का उपयोग करें तो ही अच्छा रहेगा।
मेरे अनुसार-

- १) आदमी की सत्य की खोज प्रथम, बाह्य दुनिया से ही शुरू होती है।
- २) विज्ञान का कार्य, इंद्रियों के मार्फत होने वाले ज्ञान की वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर जांच करना है। “लेकिन-आधुनिक विज्ञान तो, इंद्रियों द्वारा बाह्य दुनिया का सत्य ज्ञान होता ही नहीं, इस निष्कर्ष पर पहुँचा है”, ऐसा कहते हुए, अब विज्ञान पर अपने मन माफिक दूषित आरोप थोपकर उस आधार पर अपना चाहा, पूर्वनिर्धारित निष्कर्ष निकालने का यह अट्टहास है, यह यहाँ ध्यान में रखना होगा।

श्रद्धा-अश्रद्धा-

श्रद्धा और अंधश्रद्धा की परिभाषाएं तो सर्वश्रुत हैं -

जब कोई बात सत्य है या असत्य है इसके लिए कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं होता फिर भी उसे सत्य मान लिया जाता है, तब वह श्रद्धा का विषय होती है। ईश्वर है इसका कोई प्रत्यक्ष सबूत पेश नहीं किया जा सकता। वह नहीं है, यह भी प्रत्यक्ष सबूत के अभाव में सिद्ध नहीं हो

सकता। ऐसी स्थिति में अगर कोई उसका अस्तित्व मन ही मन में माने, तो यह उसकी व्यक्तिगत श्रद्धा है। भले ही कोई अन्य उसे भ्रम कहे।

लेकिन इसके उलट कोई बात असत्य है इसका प्रत्यक्ष सबूत होने पर भी उसे सत्य माना जाता है, तब वह अंधश्रद्धा है। एक ओर तो कहना कि चमत्कार का व्यवहार में अधिक उपयोग नहीं होता और न ही यह प्रकृति की योजना है। और फिर वही किताब चमत्कारों के महिमा मंडन से भर देना यह शुद्ध ढोंग नहीं तो और क्या है ? और फिर इस आड़ में विज्ञान को असत्य सिद्ध करना और अध्याय को केवल सत्य। यह क्या है, इसे पाठक पर छोड़ देना ही अच्छा ।

२. सापेक्षता

अभिजात्य गतिकी और सापेक्षता का विशेष सिद्धांत

सर्वमान्य सिद्धान्त,
कॉथॉलिक चर्च मान्यता:
प्रेरणा के अभाव में गति
रूकना अवश्यभावी

गॉलिलिओ

प्रेरणा के प्रभाव से मुक्त
वस्तु या तो विरामावस्था में
होगी या समवेग से सीधी
रेखा में मार्गक्रमण करती
गति की अवस्था में होगी ।

अनंत काल तक वैसी ही
बनी रहेगी ।
गति की सापेक्षता का तत्वः
जडता का सिद्धांत ।

न्यूटन गतिशास्त्र का प्रथम
नियम (अगर पदार्थ पर कोई
प्रेरणा कार्यरत नहीं होगी तो
.....उपरोक्त नियम)

दूसरा नियम
गति प्रेरणा की दिशा में
लगातार बदलती रहेगी। गति
के बदल का दर याने प्रवेग
(जब पदार्थ पर प्रेरणा
कार्यरत हो)

तीसरा नियम
क्रिया- प्रतिक्रिया समान और
एक दूसरे की विरुद्ध दिशाओं
में।

न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का
नियम

अभिजात्य गतिकी:

बल प्रभावांतर्गत पिंड के
दृश्य यांत्रिक हलचलों का
दर्शन। निरपेक्ष अंतराल की
तुलना में स्थिर मापतंत्र।
मापन की मूलभूत इकाइयां
निरपेक्ष।

१) समय: पिंड की हलचल से
पूरी तरह अप्रभावित।
२) लम्बाई: पिंड की हलचल
से आयाम पूरी तरह
अप्रभावित।
३) वस्तुमान पिंड की
हलचल उसका वस्तुमान
अप्रभावित

मायकल के
प्रयोग के
परिणाम: सापेक्षता
के विशेष
सिद्धांत का
अविष्कार।
प्रकाश से
तौलनिक गति
पर मापन की
मूलभूत इकाइयां
निरपेक्ष नहीं
रहती।

प्रथम अभिगृहीत: सभी प्राकृतिक
तथ्य सभी जडत्वीय संदर्भ
मापतंत्रों में एक जैसे ही घटित
होते हैं।

द्वितीय अवधारणा:

सभी जडत्वीय प्रणालियों
में अर्थात् जो कायम
गति से भ्रमणरत हैं,
उनमें प्रकाश की गति,
निर्वात में, एक स्थिरांक
है। भिन्न मापतंत्रों में-
१) लम्बाई और समय का
माप एक नहीं रह सकता।
२) कालप्रवाह, प्रणाली की
गति पर निर्भर होगा।
३) प्रकाश गति से तेज
और कोई गति नहीं हो
सकती। या-
प्रकाश गति से तौलनिक
गति पर -
a) वस्तु के अंदर समय
धीमा होगा
b) हलचल की दिशा में
वस्तु की लम्बाई कम
होती लगेगी
c) वस्तु का द्रव्यमान
तेजी से बढ़ेगा

सभी संदर्भीय चौखटों के लिए भौतिकी के नियम एक ही रहते हैं - यह हुई गॅलिलियन-न्यूटन द्वारा प्रतिपादित क्लासिकल सापेक्षता। इस दृष्टि से गति योग का नियम प्रकाश को सभी जडत्वीय और अजडत्वीय संदर्भ चौखटों के लिए लगना चाहिए। लेकिन सभी संदर्भ चौखटों के लिए अगर प्रकाश की गति स्थिर है तो यह उपरोक्त क्लासिकीय सापेक्षता का उल्लंघन है। यहाँ आइन्स्टाइन का सापेक्षता सिद्धान्त सामने आता है।

गॅलिलियो -

गॅलिलियो ने गति को गणितबद्ध किया।

गॅलिलियो ने अपनी खोज में, फेंकी गयी वस्तु को मिलने वाली गति पर विचार किया। फेंकी हुई वस्तु को मिलने वाली गति, यह दो गतियों का परिणाम होता है। इसमें से एक गति है, जिस दिशा में वस्तु को फेंका गया है उसी दिशा में होने वाली स्थिर और सीधी गति। दूसरी गति है पृथ्वी आकर्षण के कारण, जमीन की दिशा में बढ़ती जाने वाली गति। यहाँ हवा का प्रतिरोध या आसपास किसी पिंड की उपस्थिति शून्य मानी गयी है।

न्यूटन का गतिशास्त्र (यांत्रिकी)

न्यूटन ने दोनों गतियों का विस्तार के साथ विश्लेषण किया। न्यूटन के निष्कर्ष -

किसी वस्तु पर जबतक बल का प्रयोग नहीं होता, तबतक उसकी गति में कोई बदल नहीं होता। गति में बदल न होने देने वाले इस गुणधर्म को वस्तु का ' जडत्व ' कहा जाता है। वस्तु की गति में जितना अधिक बदल करना है, लगने वाला बल भी उतना ही अधिक होता है। उसी तरह अधिक वस्तुमान वाले पदार्थ की गति में बदल करने के लिए लगने वाला बल भी अधिक होगा। इसने अरिस्टॉटल की इस समझ को खारिज कर दिया कि वस्तु को गति में रखने के लिए बल की आवश्यकता होती है। अरिस्टॉटल का यह विश्वास था कि किसी भी पिंड की विरामावस्था यह उसकी प्राकृतिक अवस्था होती है और यह तभी गति करता है जब इसपर किसी बाह्य बल या आवेग (Impulse) का प्रयोग किया जाता है। तो न्यूटन का कहना है कि गति में बदल करना हो तो ही बल की आवश्यकता होती है। बल यह गति में हो रहे बदल का कारण होने से अगर बल जारी रहा तो गति बढ़ती ही रहेगी।

वस्तु नीचे गिरते समय उसकी गति बढ़ती रहती है अर्थात् कोई तो बल उसपर कार्यरत होना चाहिए। न्यूटन के अनुसार यह बल ही गुरुत्वाकर्षण है। कोई दो वस्तुएं इस गुरुत्वाकर्षण बल द्वारा एक दूसरे को खींचती हैं। एक दूसरे को खींचने वाली वस्तुओं का वस्तुमान जितना अधिक, उतना ही उन दोनों के बीच गुरुत्वाकर्षण का बल अधिक होता है। उसी तरह उनके बीच का अंतर कम हो तो भी गुरुत्वाकर्षण बल अधिक होता है। यह बल अंतर के वर्ग के व्युत्क्रमानुपाती होता है। जब गुरुत्वाकर्षण के कारण पृथ्वी, वस्तु को अपनी ओर खींचती है तो पदार्थ भी पृथ्वी को अपनी ओर खींचता है। लेकिन तुलनात्मक दृष्टि से पृथ्वी का वस्तुमान इतना अधिक है कि वस्तु के खींचने का असर ध्यान में नहीं आता।

न्यूटन का गतिशास्त्र

- काल और अवकाश निरपेक्ष है।
- वस्तु के अपने भौतिक गुण अपरिवर्तनीय होते हैं।
- प्रत्येक वस्तु के नियत भविष्य की भविष्यवाणी संभव है।
- गति का समय या काल पर कोई प्रभाव नहीं होता। काल निरपेक्ष है।
- पिंड के आयाम भी उसके स्थिर होने या गतिमान होने की स्थिति से पूरी तरह स्वतंत्र हैं या इस संदर्भ में निरपेक्ष हैं।

न्यूटन की अभिजात्य गतिकी (Classical Dynamics) यह—

अ) बल और उससे सम्बद्ध प्रवेग का विज्ञान है ।

आ) बल प्रभावांतर्गत पिंड का आचरण व्यक्त करती है ।

इ) इसमें मूलभूत इकाइयां, समय, लम्बाई, वस्तुमान, पिंड की हलचल से अप्रभावित रहते हैं।

न्यूटन गतिशास्त्र के तीन नियम -

- १) जड़ता का नियम : पदार्थ पर अगर कोई प्रेरणा कार्यरत नहीं होगी तो, वह या तो स्थिर होना चाहिए या निरंतर गति से सीधा भ्रमणरत होना चाहिए। गति अर्थात् बिंदु की स्थिति में परिवर्तन का दर या अंतर परिवर्तन का दर।
- २) गति का नियम : पदार्थ पर प्रेरणा कार्यरत होगी तो पदार्थ की गति, प्रेरणा की दिशा में लगातार बदलती रहेगी। गति के बदलते दर को ' प्रवेग ' कहा जाता है। प्रवेग याने गति में परिवर्तन का दर।

फ (कार्यरत बल) = क (स्थिरांक) x ब (वस्तुमान) x प्र (प्रवेग)।

3) क्रिया - प्रतिक्रिया का नियम : क्रिया-प्रतिक्रिया समान हैं और वे एकदूसरे की विरुद्ध दिशा में कार्य करती हैं।

न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का नियम -

कोई भी दो पदार्थ एक दूसरे को इस तरह आकर्षित करते हैं कि वह आकर्षण, उन दो पदार्थों के वस्तुमानों का गुना तथा इसे भाग देना होगा उन दो पदार्थों के बीच की दूरी के वर्ग से। गणित की भाषा में कहे तो -

ब(दो पदार्थों के बीच आकर्षण)= ग x म₁ (पदार्थ १ का वस्तुमान)x म₂(पदार्थ २ का वस्तुमान)÷ अ²

यहां ' अ ' है दोनों के बीच की दूरी और ' ग ' यह स्थिरांक है जिसे ' गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक ' कहते हैं।

कुछ महत्वपूर्ण बातें -

- न्यूटन ने गतिशास्त्र के नियम गैलिलियो के अनुसंधान के आधार पर ही ढूंढ निकाले।
- तो गुरुत्वाकर्षण के नियम का आधार केप्लर के नियम हैं।
- न्यूटन का ' प्रिन्सिपिया मैथेमेटिका ' निश्चित ही भौतिकी पर लिखी सर्वोत्तम किताब है।
- गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक ' G ' भौतिकशास्त्र में अवतरित सर्वप्रथम स्थिरांक है। इसे आधारभूत स्थिरांक माना जाता है। इसे न्यूटन द्वारा १६८७ में प्रस्तुत किया गया। इसकी सर्वप्रथम कीमत निकाली थी १७९३ में वैज्ञानिक कॅवेंडिश ने। इसकी कीमत का अति अर्वाचीन निर्धारण १९७४-७५ में भूतपूर्व सोवियत संघ के एक वैज्ञानिक सॅगितोव्ह द्वारा किया गया है - (६.६७४०८) X १०^{-११} Nm^२Kg^{-२} |(मिटर,किलोग्राम,सेकंड एकक)
- ग्रहों, उपग्रहों की परिक्रमाओं का कारण गुरुत्वाकर्षण ही है।
- जिसे द्रव्यमान है वह, गुरुत्वाकर्षण अन्योन्यक्रिया के लिए संवेदनशील है। इसी कारण न्यूटन ने इसे सार्वभौमिक बल कहा। गुरुत्वाकर्षण बल ' न्यूटन ' इस एकक में गिना जाता है।

पिंड और द्रव्यमान

द्रव्यमान : १) भौतिक वस्तु की मात्रा। २) पिंड की जड़ता का माप।

न्यूटन ने ' द्रव्यमान ' शब्द दो अर्थों में उपयोग में लाया था।

अ) जड़त्वीय द्रव्यमान (Inertial Mass) : यह, पिंड के, उसपर कार्यरत किसी बल के प्रति, प्रतिसाद का मापन करता है। पिंड अपने अवकाश में होने की स्थिति में, होने जा रहे परिवर्तन को जो प्रतिरोध करता है, उसका पैमाना है। - F (बल) = m (द्रव्यमान) $\times$ a (त्वरण या प्रवेग)।

आ) गुरुत्वाकर्षणीय द्रव्यमान : गुरुत्वाकर्षणीय आवेश : यह दो पिंडों के बीच केवल गुरुत्वाकर्षणीय आकर्षण बल का मापन है।

न्यूटन ने पाया कि दोनों वास्तव में समान हैं। इसे ही ' तुल्यता का तत्त्व ' कहा गया है। यह सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण के नियम और गतिशास्त्र का द्वितीय नियम इन्हें जोड़ता है।

सापेक्षता की संकल्पना का उदय होने के पहले, एक ही वस्तु के वस्तुमान की दो भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दी जाती थीं और इन वस्तुमानों को अलग-अलग माना जाता था।

a) न्यूटन के दूसरे नियम के अनुसार - बल = वस्तुमान $\times$ त्वरण। या जड़त्वीय वस्तुमान = बल / त्वरण

b) न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम के अनुसार गुरुत्वीय बल $F =$ (गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक $G \times$ वस्तुमान $m_1 \times$ वस्तुमान m_2) / अंतर का वर्ग (R^2) अगर $m_1 = m_2$ माना तो गुरुत्वीय द्रव्यमान $= \sqrt{FR^2 / G}$

आइन्स्टाइन ने अपने समतुल्यता सिद्धान्त (Principle of Equivalence) के द्वारा सिद्ध किया कि दोनों एक ही हैं ।

- जब किसी भी दो पदार्थों में एक दूसरे के प्रति गुरुत्वाकर्षण है तो फिर वे एकदूसरे की ओर खींचे जाकर एकदूसरे से टकराते क्यों नहीं ?

मान लो १००-१०० कि.ग्रॅम के दो गोल एकदूसरे से एक मीटर दूरी पर हैं। प्रत्येक गोल एकदूसरे को आकर्षित करेगा। उसी तरह प्रत्येक गोल पर पृथ्वी का भी आकर्षण होगा।

'G' की कीमत 6.6×10^{-11} लेने पर उनमें परस्पर आकर्षण बल होगा $= 6.6 \times 10^{-11} \times 100 \times 100 / 1^2$ न्यूटन।

अब पृथ्वी के, प्रत्येक गोल पर आकर्षण का हिसाब -

पृथ्वी का वस्तुमान 6×10^{24} कि.ग्रॅम ; पृथ्वी की त्रिज्या ६४०० कि.मी. या ६४,००,००० मीटर। पृथ्वी पर १०० कि.का गोल और पृथ्वी केंद्र इनके बीच का अंतर पृथ्वी त्रिज्या इतना ही मानने में कोई हरकत नहीं। तो गोल और पृथ्वी के बीच आकर्षण = $6.6 \times 6 \times 10^{24} \times 100 / (64,00,000)^2 = 0.96 \times 10^3$ न्यूटन।

दो गोलों के बीच आकर्षण की दिशा भूपृष्ठ को समांतर होगी जबकि पृथ्वी और गोल इनके बीच आकर्षण की दिशा भूपृष्ठ को लम्बरूप तथा पृथ्वी केंद्र की दिशा में होगी। दोनों आकर्षण बलों की तुलना करने पर ऐसा दिखेगा कि पृथ्वी का, प्रत्येक गोल पर आकर्षण उनके आपस के आकर्षण से करोड़ गुना है। पृथ्वी ने मानो दोनों गोलों को अपने साथ जकड़ लिया है। इसके सामने उनके बीच का आकर्षण नगण्य है। इस कारण वे आपस में एक दूसरे की ओर खींचे नहीं जाते और परिणामतः एक दूसरे से टकराते भी नहीं । प्रत्येक पदार्थ के लिए यही बात है।

गत्यात्मक संतुलन—

पूरी तरह अलग-थलग पिंड अर्थात् वह पिंड जो किसी अन्य के साथ किसी भी ढंग की परस्पर क्रिया से मुक्त है, अगर गति में है तो हमेशा स्थिर बने रहने वाले वेग से गति करेगा। इसे हम आमतौर पर कहते हैं कि पिंड अपनी जड़ता के कारण गति कर रहा है। केवल किसी अन्य वस्तु के कारण इस पिंड पर प्रभाव या क्रिया ही उसके वेग में परिवर्तन ला सकती है। इस अन्योन्यक्रिया या उसके परिमाणात्मक मापन को ' यांत्रिकी ' में बल कहते हैं। इस व्याख्या में महत्वपूर्ण है, बल का गति से सम्बद्ध होना।

लेकिन हमारे आजुबाजु, ऐसा पूरी तरह से अलग-थलग पिंड मिलना मुश्किल है, जो किसी भी बल से अप्रभावित हो। वस्तु अगर फिर भी स्थिर है तो उसका अर्थ है उसपर कार्यरत बल एक दूसरे को संतुलित कर रहे हैं। जब उनका संतुलन बिगड़ जाएगा तभी वस्तु की अवस्था में परिवर्तन होगा। स्थिरता का अर्थ यह नहीं है कि गति या हलचल का पूरी तरह अभाव है। महत्वपूर्ण बात यह है कि गतियों और बलों की विशेषता, मूल प्रणाली को बारबार पुनर्स्थापित कर लेती हैं। ऐसी अवस्था को ' गत्यात्मक संतुलन ' कहते हैं।

आइन्स्टाइन

प्रस्तुत किए गये शोध-

वर्ष १९०५-

- १) १७ मार्च १९०५ के दिन आइन्स्टाइन ने ' अँनालेन डेर फिजिक ' इस मासिक को एक शोध निबन्ध भेजा -

“ On a Huristic point of view concerning the production and transformation of Light “

इसमें ' फोटो इलेक्ट्रिक इफेक्ट ' या ' प्रकाश-विद्युत परिणाम ' यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया था। इसी खोज के लिए उन्हें १९२१ वर्ष का भौतिकी का नोबेल पुरस्कार दिया गया था।

' प्रकाश यह केवल तरंगों के स्वरूप में ' न होकर वह ' शक्तिपुंज ' अर्थात् ' क्वांटम ' इस स्वरूप में भी व्यक्त होता है। बाद में १९२६ में वैज्ञानिक गिल्बर्ट लुईस इन्होंने प्रकाश पुंज को ' फोटॉन ' नाम दिया।

- २) ३० एप्रिल १९०५ को आइन्स्टाइन ने डॉक्टरेट उपाधि के लिए अपना शोध प्रबंध झुरिच विद्यापीठ की ओर भेजा -

“ New determination of Molecular dimensions “

- ३) 11 मई १९०५ : प्रबंध : विषय - स्थिर स्थिति में होने वाले द्रव में कणों की हलचल। वास्तव में कणों की ऐसी हलचल १८२७ में रॉबर्ट ब्राउन इस वनस्पति वैज्ञानिक ने देखी थी। इसी हलचल को ' ब्राउनियन मोशन ' या ' ब्राउनियन हलचल ' नाम दिया गया। द्रव या वायु रूप पदार्थ में, सूक्ष्म कणों की यह दृष्टि से (Random) हलचल। इसका कारण उनपर सभी दिशाओं से द्रव के अणु लगातार आघात करते हैं, यह बात आइन्स्टाइन ने प्रस्तुत की।

- ४) ३० जून १९०५ : सापेक्षता सिद्धान्त - “ गतिमान पदार्थ के विद्युत यामिकी (Electro Dynamics) के विषय में।

- ५) २७ सप्टेंबर १९०५ : शोध प्रबंध -“ Does the Inertia of a body depend on its energy content |”

$E = mc^2$ इस विख्यात सूत्र की सिद्धता। (यह वास्तव में पूर्ण समीकरण नहीं है।
आइन्स्टाइन का पूर्ण समीकरण है -

$$E^2 = P^2C^2 + m^2c^4 \quad | \quad p=\text{momentum}, m=\text{द्रव्यमान}, c=\text{प्रकाश गति} \quad |$$

$E=mc^2$ | यह विशेष स्थिति है जब वस्तु / कण विरामावस्था में होती है या
momentum शून्य होता है।)

प्रकाश विद्युत परिणाम—

कुछ विशिष्ट धातुओं की सतह से प्रकाश किरण टकराने पर सतह से इलेक्ट्रॉन कण मुक्त होते हैं। यही प्रकाश विद्युत परिणाम है। हेनरिच हर्ट्ज़ इस वैज्ञानिक ने १८८७ में ही यह बात सर्वप्रथम देखी थी।

इस परिणाम पर विचार करते समय ध्यान देने लायक महत्वपूर्ण बातें -

अ) प्रकाश की प्रखरता (Intensity)

प्रकाश किरणों का आयाम (Amplitude) अधिक हो तो उसकी प्रखरता अधिक होती है। हम ऐसा सोच सकते हैं कि ऐसा प्रकाश अधिक ऊर्जायुक्त इलेक्ट्रॉन्स उत्सर्जित करेगा। लेकिन ऐसा नहीं होता। केवल मुक्त होने वाले इलेक्ट्रॉन्स की संख्या बढ़ती है लेकिन उनकी ऊर्जा नहीं।

आ) प्रकाश की कंपन संख्या (Frequency)

धातु की सतह पर गिरने वाले प्रकाश किरणों की कंपन संख्या अगर अधिक होगी तो अधिक ऊर्जा वाले इलेक्ट्रॉन्स मुक्त होते हैं। उदा. लाल रंग की तुलना में नीले रंग का प्रकाश अधिक ऊर्जाधारी इलेक्ट्रॉन्स मुक्त करेगा, चूंकि नीले रंग के प्रकाश की कंपन संख्या अधिक होती है। कुछ धातुओं की सतह से, नीला प्रकाश तो इलेक्ट्रॉन्स मुक्त करता है लेकिन लाल रंग का नहीं।

इ) धातु की सतह पर प्रकाश पड़ते ही तत्क्षण इलेक्ट्रॉन्स मुक्त होते हैं, बिना किसी विलंब के।

ई) मुक्त इलेक्ट्रॉन की उच्चतम ऊर्जा = प्लैंक स्थिरांक $\times$ प्रकाश की कंपन संख्या - स्थिरांक। दूसरा स्थिरांक ' वर्क फंक्शन ' नाम से जाना जाता है। प्रत्येक धातु के लिए यह स्थिरांक अलग-अलग होता है। यह स्थिरांक, इलेक्ट्रॉन्स मुक्त करने के लिए प्रकाश के पास जो न्यूनतम ऊर्जा होना आवश्यक है उसे दर्शाता है। मुक्त हुआ इलेक्ट्रॉन बाह्य भ्रमण कक्षा में होने वाला इलेक्ट्रॉन होता है।

$$(h = 6.626 \times 10^{-34} \text{ ज्यूल्स प्रति सेकंड })$$

प्रकाश केवल विद्युत चुंबकीय तरंगें हैं ऐसा मानने पर प्रकाश - विद्युत परिणाम का स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सकता। अतः प्रकाश का स्वरूप केवल तरंगों का नहीं तो वह अति सूक्ष्म कणों से बना हुआ है ऐसा मानकर आइन्स्टाइन ने इसकी उचित कारण मीमांसा दी।

लेसर किरणें

यह कल्पना आइन्स्टाइन ने १९१७ में अपने एक शोध निबन्ध में प्रस्तुत की थी। (on the quantum theory of Radiation) | लेसर किरणों में सभी प्रकाश तरंगों की कंपन संख्या, आयाम, तरंग लम्बाई समान होती है। इसी कारण इन एककेंद्रित किरणों में बहुत अधिक ऊर्जा होती है।

अणु में इलेक्ट्रॉन्स अपनी-अपनी नियोजित कक्षा में भ्रमण करते हैं। लेकिन इन कणों ने ऊर्जा का शोषण करने से वे उच्च ऊर्जा वाली कक्षा में पहुँचे कि अणु को उत्तेजित अवस्था प्राप्त होती है। लेकिन इस उत्तेजित अवस्था में पहुँचे इलेक्ट्रॉन्स अधिक समय तक उस अवस्था में बने नहीं रहते। उनकी प्रवृत्ति अपने मूल स्तर पर पहुँचने की होती है। ऐसे समय वे अपनी ऊर्जा प्रकाश किरणों के रूप में उत्सर्जित करते हैं। इसे Spontaneous Emmission कहते हैं। ऐसे उत्सर्जित होने वाले प्रकाश में सभी प्रकार की तरंगें होती है।

आइन्स्टाइन के अनुसार इलेक्ट्रॉन कण ने किये हुए ऊर्जा के शोषण तथा उत्सर्जन के अतिरिक्त एक क्रिया संभव है | इसे उन्होंने Stimulated Emmission या उत्तेजित उत्सर्जन नाम दिया।

शुद्ध मूलद्रव्य में क्रोमियम जैसा कोई द्रव्य अत्यल्प प्रमाण में मिलाया तो एक अस्थायी ऊर्जा का स्तर पैदा होता है | उसे Metastable State नाम दिया गया है। इलेक्ट्रॉन्स ने किए ऊर्जा शोषण और उच्च स्तर में पहुँचने के बाद वे पहले इस अस्थायी ऊर्जा स्तर में एकत्र आते हैं और यहाँ कुछ अवधि तक टिके रहते हैं। जल्दी ही इस अस्थायी स्तर में स्थायी स्तर से इलेक्ट्रॉन्स की संख्या अधिक हो जाती है। इसे Population Inverction नाम दिया गया है। ऐसे समय कोई एक सुयोग्य फोटॉन कण उन सभी इलेक्ट्रॉनों को इस अस्थायी अवस्था से मूल स्थायी अवस्था में पहुँचने के लिए प्रवृत्त कर सकता है। एक क्षण में यह क्रिया हो जाती है। उस समय उत्सर्जित होने वाले प्रकाश किरण यही लेसर किरण है। इन सभी प्रकाश किरणों की कंपन संख्या, तरंग लम्बाई और आयाम बिल्कुल समान होते हैं।

लेकिन लेसर उपकरण प्रत्यक्ष में तैयार होने १९६० तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। उस वर्ष थियोडोर मायमान ने रूबी स्फटिक का उपयोग करते हुए ऐसा प्रथम उपकरण तैयार किया। अब तो कई तरह के उपकरण बन गये हैं।

प्रकाश -

- फोटॉन कण की ऊर्जा $E = \text{प्लैंक स्थिरांक } h \times \text{बारंबारता } n$
- प्रकाश किरण विद्युत और चुंबकीय क्षेत्रों का बना होता है। ये दोनों क्षेत्र एकदूसरे के साथ ९० डिग्री का कोन बनाते हैं और उनके कंपन प्रकाश की आगे बढ़ने की दिशा के साथ 90 अंश का कोन बनाते हैं। ऐसी तरंग को Transverse Wave कहते हैं।
- प्रकाश में गति के कारण संवेग (Momentum) होता है। अतः वह वस्तु पर प्रहार कर सकता है।
- प्रकाश को कोणीय संवेग (Angular Momentum) भी होता है। इस कारण वह वस्तु में परिवर्तन पैदा कर सकता है।
- दो प्रकाश शलाका परस्पर को काटते समय, कोई बदल न होते हुए पार हो सकती हैं।
- अति प्रखर (High Intensity) प्रकाश मुख्यतः तरंग के गुणधर्म दिखाता है।

बोस-आइन्स्टाइन कंडेन्सेट--

सत्येंद्रनाथ बोस एक भारतीय वैज्ञानिक थे। इन्होंने अपना एक शोध-प्रबंध १९२४ में आइन्स्टाइन के पास भेजा। जैसा कि आमतौर पर होता है, नये व्यक्ति की कृति की तरफ, स्थापित विज्ञान पत्रिकाओं ने ध्यान नहीं दिया था। लेकिन आइन्स्टाइन ने उसकी कीमत पहचानी। उन्होंने उसमें कुछ सुधार किये तो एक नये विषय का जन्म हुआ। उसका नाम सामने आया ' बोस-आइन्स्टाइन स्टैटिस्टिक '। जो कण इस स्टैटिस्टिक या संख्याशास्त्र का पालन करते हैं उनके वर्ग को नाम दिया गया ' बोसॉन '। प्रकाश के फोटॉन कण ये बोसॉन कण हैं। फोटॉन्स सभी दृष्टि से समरूप (Identical) कण होते हैं।

बोस महोदय ने ऐसे फोटॉन कणों का समूह वायुरूप होने की कल्पना गृहित मान ली थी और इस आधार पर प्लैंक के कृष्णवर्णी पदार्थों के लिए प्रस्तुत नियम की सिद्धता सामने रखी थी। आइन्स्टाइन ने बोस सिद्धान्त की व्याप्ति बढ़ाई और उसे सभी समरूप अणु-परमाणुओं के लिए प्रायोजित किया। साथ में यह भी भविष्यवाणी की कि अति न्यूनतम तापमान पर ऐसे

समरूप कण एक दूसरे के साथ बद्ध होंगे। इन कणों की स्थिति को ही बाद में ' बोस - आइन्स्टाइन कंडेन्सेट ' नाम दिया गया।

प्रत्येक कण का स्वरूप द्वैती है। एक ही समय में वह कण और तरंग दोनों रूपों में होता है। यह क्वांटम यांत्रिकी का सिद्धान्त है। परिस्थितिनुरूप इन दोनों में से एक अपना रूप प्रगट करता है। उच्च तापमान पर सारे कण, लघु गैद के समान व्यवहार करते हैं। उनके बीच दूरी होती है। तापमान अति कम करने पर प्रत्येक कण से सम्बद्ध तरंग के गुणधर्म प्रगट होते हैं। तापमान निरपेक्ष शून्य (-273.15 डिग्री सेल्सियस) के निकट पहुँचने पर कणों से सम्बद्ध तरंगें एक दूसरे में मिल जाती हैं और सभी कणों का मिलकर एक महाकण बन जाता है जिसे ' सुपर अँटम ' कहा गया है।

निर्वात प्रदेश में प्रकाश की गति ३ लाख कि.मी. प्रति सेकंड है। लेकिन पारदर्शी माध्यम से गुजरते हुए वह कम होती है। उदा. कांच से गुजरते समय वह २ लाख कि.मी. प्रति सेकंड होती है। लेकिन सुपर अँटम में प्रकाश की गति शून्य होती है। अर्थात् सुपर अँटम में प्रवेश किये हुए फोटॉन नष्ट नहीं होते।

भले ही बोस-आइन्स्टाइन कंडेन्सेट की कल्पना बीसवीं सदी के शुरू में की गई हो लेकिन उसे प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा सिद्धि 1995 में एरिक कार्नेल और कार्ल बाइमान इस वैज्ञानिक जोड़ी द्वारा दी गयी। आज पदार्थ की चार अवस्थाओं (घन, द्रव, वायु और प्लाज्मा) के साथ-साथ इसे पाँचवीं अवस्था के तौर पर जाना जाता है (निरपेक्ष शून्य तापमान पर)। प्लाज्मा के लिए तो अति उच्च तापमान आवश्यक है।

लेसर किरणों में प्रत्येक फोटॉन एक ही दिशा, एक ही तरंग लम्बाई और समान प्रावस्था (Phase) में गतिमान होता है। इस कारण लेसर किरणों पर सटीक नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है और उनका उपयोग लेसर प्रिंटर आदि में किया जा रहा है। ऐसा ही अगर फोटॉन कणों के स्थान पर प्रत्यक्ष अणुओं के लिए किया जा सका तो इस अवस्था में विद्यमान वस्तु, तरंगों की परावर्तन, अपवर्तन, संस्करण (Modulation) जैसी प्रकाश तरंगें सदृश्य कई बातें साध्य की जा सकेगी। बोस-आइन्स्टाइन कंडेन्सेट स्थिति में अणुओं का सटीक नियंत्रण संभव है।

अणु से काफी बड़े आकार की सामान्य वस्तुओं में क्वांटम मेकैनिक्स के परिणाम देखने में नहीं आते। इसका कारण है ऐसे पदार्थों में होने वाली कणों की अनगिनत संख्या जिसका पदार्थों के गुणधर्म निश्चित करने में कई तरह का सहभाग होता है। इस कारण कणों का तरंग

स्वरूप ढंक जाता है। बोस-आइन्स्टाइन कंडेन्सेट में सभी कणों के तरंगों की प्रावस्था समान होती है।

वास्तव में १९२५ में ही आइन्स्टाइन और सत्येंद्रनाथ इन्होंने यह कल्पना रखी थी कि निम्नतम तापमान या निरपेक्ष शून्य तापमान पर सारे अणु एक न्यूनतम ऊर्जा स्तर पर पहुँचेंगे। सामान्य तापमान पर वायु के अणु भिन्न-भिन्न गति से बेतरतीब ढंग से भटकते रहते हैं। कुछ अणुओं की ऊर्जा अधिक होती है तो कुछ की कम। निरपेक्ष शून्य तापमान पर सारे अणुओं के वेव फंक्शन्स एक दूसरे में मिलकर सबका एक ही वेव फंक्शन तैयार होगा। अर्थात् अणुओं के गुण पूरी तरह समान हो जाएंगे। वे अपनी व्यक्तिगत पहचान खो देंगे। वह एक सुपर अँटम बन जाएगा। क्वांटम यांत्रिकी द्वारा उद्धृत तरंग, बोस-आइन्स्टाइन कंडेन्सेट के इस सुपर अणु के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैलेगी। लेकिन इस अवस्था को प्राप्त करने विज्ञान को ७३ वर्षों की प्रतीक्षा करनी पड़ी। १९९५ में अमेरिका के कोलोराडो संस्थान के बोलडर की एक प्रयोगशाला में रुबिडियम मूलद्रव्य के २००० अणुओं का तापमान घटाते-घटाते लगभग निरपेक्ष शून्य तक लाया गया। तब १० सेकंड तक रुबिडियम के सारे अणुओं का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हुआ। मानो सबका मिलकर एक महाअणु में रूपान्तर हुआ। यहाँ सब अणुओं के गुणधर्म समान हुए। यह महाअणु बोस-आइन्स्टाइन कंडेन्सेट था।

कुछ बातें जो हमारी सामान्य समझ के पार जाती हैं -

- हम मानते हैं कि फोटॉन का अस्तित्व प्रकाश की गति पर ही हो सकता है। लेकिन यहाँ ऐसा कहा जाता है कि सुपर अँटम में फोटॉन की गति शून्य हो जाएगी।
- परम शून्य तापमान पर अणुओं का हिलना या कंपन तक स्थगित हो जाएगा।
- परम शून्य तापमान के ठीक पहले अणु एक क्वांटम वस्तु की तरह व्यवहार करने लगता है।

आइन्स्टाइन की युनिफाइड फिल्ड थेअरी

एक विशिष्ट नियम के आधार पर प्रकृति की सभी घटनाओं का किसी भी क्षण और किसी भी स्थान पर अन्वयार्थ लगाया जा सके, ऐसा कोई नया सिद्धान्त ढूँढा जाए, यह आइन्स्टाइन का संकल्प था। यह नया सिद्धान्त केवल गुरुत्वीय क्षेत्र ही नहीं तो वास्तव पदार्थ और विद्युत चुंबकीय क्षेत्र इनका वर्णन कर सकेगा ऐसी आइन्स्टाइन की, ' युनिफाइड फिल्ड थेअरी ' के पीछे की संकल्पना थी। उस समय विद्युत चुंबकीय और गुरुत्वीय ये दो ही मूलभूत

बल ज्ञात थे। आइन्स्टाइन के अनुसार वास्तव पदार्थ ऊर्जा की अत्युच्च घन अवस्था है तो क्षेत्र, ऊर्जा की न्यूनतम घन अवस्थाएं दर्शाते हैं। आइन्स्टाइन ने इस सिद्धान्त को रूप देने, अपने जीवन के तीस वर्ष खर्चे किए लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली।

अंततः सशक्त, अशक्त और विद्युत चुंबकीय इन तीन क्षेत्रों की एकात्मता साधने में वैज्ञानिक सफल हुए हैं। यह 'ग्रैंड युनिफिकेशन थिअरी' नाम से जानी जाती है। अब प्रतीक्षा है इसमें गुरुत्व बल जुड़ने की।

दुनिया के सर्वाधिक बुद्धिमान वैज्ञानिक के रूप में १९५५ में आइन्स्टाइन की मृत्यु हुई। आइन्स्टाइन का दिमाग संभाल कर रखा गया। इसके लिए रोग निदान तज्ञ थॉमस हार्वी ने अगुवाई की थी। वह दिमाग फॉर्मैल्डिहाईड में संभलकर रखा गया है। उसपर डॉ. डिमेरियन डायमंड ने अनुसंधान भी किया और पाया कि आइन्स्टाइन के दिमाग में ग्लायल पेशियां अधिक हैं।

$$E = mc^2$$

यह सूत्र ऐसा नहीं कहता कि द्रव्यमान ऊर्जा में रूपान्तरित हो रहा है। वह केवल ऊर्जा और द्रव्यमान की समतुल्यता बताता है। द्रव्यमान यह ऊर्जा ही है। १९०५ में आइन्स्टाइन ने जिस प्रबंध में उपरोक्त सूत्र प्रस्तुत किया था उसका शीर्षक था, " Does the inertia of an object depends on its energy content " यह किसी एक के दूसरे में रूपान्तरण की बात नहीं करता।

मानो कुछ एक वस्तुमान के पेट्रोल को रासायनिक स्थितिजन्य ऊर्जा कणों के बेतरतीब हिलने की गतिजन्य ऊर्जा में या ऊष्मा में रूपांतरित किया। प्रयोग पूरी तरह बंद, ऊष्मारोधक डिब्बे में किया (जिससे कोई ऊष्मा बाहर नहीं जा सकता) तो उस डिब्बे के द्रव्यमान में कोई फर्क नहीं पड़ता। हां, अगर कुछ ऊर्जा, ऊष्मा के रूप में बाहर चली गयी तो द्रव्यमान में समतुल्य कमी होगी।

गुरुत्वाकर्षण और ग्रॅविटोन

न्यूटन के अनुसार गुरुत्वाकर्षण यह तत्काल क्रिया करने वाला (Instantenious) बल है। इसका अर्थ हुआ गुरुत्वाकर्षण की गति अनंत है। लेकिन सापेक्षतावाद के अनुसार ब्रह्माण्ड में महत्तम संभव गति, प्रकाश गति है। अतः गुरुत्वाकर्षण की गति भी ज्यादा से ज्यादा प्रकाश गति के बराबर ही होनी चाहिए। वर्ष २००२ के सितम्बर महीने में गुरुत्वाकर्षण की गति का मापन

करने का प्रयत्न किया गया। उस महीने में, गुरु के कारण एक तेजस्वी क्वासार को पिधान युति लगने वाली थी (एक ढंग का ग्रहण ही)। इस प्रयोग से यह स्थापित हुआ कि प्रकाश और गुरुत्वाकर्षण दोनों की गतियाँ एक ही हैं। लेकिन दोनों की गतियाँ समान हैं यह अंतिम निष्कर्ष नहीं है। वैज्ञानिकों में इसके प्रति एकमत नहीं है ।

ग्रॅविटोन

अब चार मूलभूत बल ज्ञात हैं। प्रत्येक बल का एक वाहक कण है। तीन बलों के वाहक कण तो ज्ञात हुए हैं और उनके आधार पर तीनों बलों का उचित विश्लेषण संभव है। अतः वैज्ञानिकों का मानना है कि गुरुत्वाकर्षण का भी एक वाहक कण होना चाहिए। उसे ग्रॅविटोन नाम दिया गया है। लेकिन प्रत्यक्ष में यह कण अभी तक नहीं मिला है। उसका अस्तित्व सैद्धांतिक स्तर पर ही है। लेकिन वैज्ञानिकों ने इस कण को कुछ और विशेष गुण प्रदान किए हैं

-

- १) ग्रॅविटोन कणों का स्थिर वस्तुमान फोटॉन के समान ही शून्य होना चाहिए।
- २) ग्रॅविटोन ने केवल आकर्षण ही पैदा करना चाहिए।
- ३) अनगिनत ग्रॅविटोन साथ-साथ सुदूर अंतर तक कार्य कर सकते हैं। वे वैश्विक होने के कारण उनके लिए अंतर की मर्यादा नहीं।
- ४) उनका परिवलन (स्पिन) पूर्णांक में होगा। अर्थात् ये बोसॉन तरह के कण होंगे।
- ५) अत्याधुनिक स्ट्रिंग सिद्धान्त भी इस कण के अस्तित्व की भविष्यवाणी करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार ग्रॅविटोन वलयाकार तंतु होंगे, अर्थात् उनके सिरे खुले नहीं होंगे। गुरुत्वाकर्षण बल बहुत क्षीण बल होने के कारण ग्रॅविटोन को ढूँढना बड़ा कठिन कर्म है। चार बलों की एकात्मता साधने के लिए ' क्वांटम ग्रॅविटी' इस सिद्धान्त पर काम किया जा रहा है।

गुरुत्वाकर्षण और त्वरण इनकी समतुल्यता

मर्यादित सापेक्षता सिद्धान्त में केवल समान गति से परस्पर सापेक्ष गतिमान संदर्भ चौखटों पर ही विचार किया गया था। व्यापक सापेक्ष सिद्धान्त में, परस्पर सापेक्ष त्वरणशील संदर्भ चौखटों को भी स्थान दिया गया है।

गुरुत्वाकर्षण और त्वरण ये दो बातें समतुल्य हैं, ये व्यापक सापेक्षता का एक मूलतत्त्व है। 'Principle of Equivalence' इस नाम से उसे जाना जाता है।

मान लो, सभी बाजुओं से बंद लिफ्ट में हम खड़े हैं। लिफ्ट त्वरणशील गति से उर्ध्व दिशा में जा रही है। ऐसी स्थिति में आप यह अनुभव करेंगे कि आप अधिक जोर से लिफ्ट के प्रतल पर दबे जा रहे हैं। अपने हाथ में पकड़ी वस्तु भी आपको भारी लगेगी। जितना लिफ्ट का त्वरण अधिक, उतना तुमपर दबाव अधिक। इससे उलट अगर त्वरण गति से लिफ्ट नीचे आ रही है तो आपको हल्का लगेगा ; वजन कम होने का आभास होगा। लिफ्ट का त्वरण पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के त्वरण इतना होने पर आप लिफ्ट में बिल्कुल तरंगने लगेंगे, तुम्हारा वजन शून्य हो जाएगा। अब मानों आपकी लिफ्ट पृथ्वी से अति दूर ले जाकर शून्य गुरुत्वाकर्षण वाले स्थान पर एक अवकाशयान के साथ बांध दी गयी है। अवकाशयान स्थिर गति से गतिमान है। तो आपपर कार्यरत गुरुत्वाकर्षण शून्य होगा और आप तरंगने लगेंगे। लेकिन अवकाशयान त्वरणशील गति से गतिमान होते ही तुम्हें वजन प्राप्त होगा और आप पृथ्वी जैसे ही लिफ्ट के प्रतल पर दबाएँ जाएंगे। वास्तव में आजुबाजु कोई गुरुत्वाकर्षण न होते हुए भी आपको गुरुत्वाकर्षण का अनुभव होगा। अवकाशयान का त्वरण आपको गुरुत्वाकर्षण का अनुभव देगा। अर्थात् गुरुत्वाकर्षण और त्वरण ये बातें समतुल्य हैं। सभी बाजुओं से बंद व्यक्ति पर कार्य करने वाला बल त्वरण के कारण है या गुरुत्वाकर्षण के कारण है, यह बात वह व्यक्ति पहचान नहीं पाएगा। इसी कारण आइन्स्टाइन को समतुल्यता की बात प्रस्तुत करनी पड़ी। उनके शब्दों में, “अवकाश के किसी भी एक बिंदु के पास गुरुत्वाकर्षण और त्वरण इनके परिणाम समतुल्य होते हैं।”

समतुल्यता तत्त्व के प्रकार -

आधुनिक संशोधन के साथ समतुल्यता के और तीन तत्त्व अब प्रचार में आए हैं -

- १) क्षीण समतुल्यता तत्त्व (Weakly Equivalence Principle) : मुक्त रूप से अधोगमन करने वाली वस्तु का मार्ग उसकी मूल गति और स्थिति पर ही केवल निर्भर है। वस्तु की अंतर्गत रचना पर वह निर्भर नहीं है। गैलिलियो का पिसा की झुकी मीनार से छोड़ी वस्तुओं का प्रयोग आपको याद होगा। वस्तुमान कितना भी हो, ऊँचाई के एक ही बिंदु से छोड़ी हुई सभी वस्तुएं एकसाथ भूपृष्ठ पर पहुंचती हैं। न्यूटन ने जडत्वीय और गुरुत्वीय वस्तुमानों में समानता दिखाई थी। ये दोनों निष्कर्ष क्षीण समतुल्यता तत्त्व का परिपाक हैं।

- २) आइन्स्टाइन समतुल्यता तत्व : जडत्वीय चौखट में किए गए स्थानीय और गुरुत्वाकर्षण से संबंधित न होने वाले प्रयोगों के निष्कर्ष, उस प्रयोग के विश्व में स्थान पर और उसकी गति पर निर्भर नहीं हैं। वास्तव में यह तत्व मूल समतुल्यता के तत्व का विस्तार है। विश्व में सभी सुयोग्य संदर्भ चौखटें समानता दर्शाती हैं। यही इस तत्व का अर्थ है। भौतिकी में एकक न होने वाले ऐसे कुछ स्थिरांक हैं | उदा. फाइन स्ट्रक्चर स्थिरांक ($1 / 137$) ; प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन इनके वस्तुमानों का गुणोत्तर (1836) आदि। ये सारे स्थिरांक पूरे ब्रह्माण्ड में स्थिर होने चाहिए, ऐसा निष्कर्ष निकलता है।
- ३) सशक्त समतुल्यता तत्व : जडत्वीय चौखट में किये गये स्थानीय प्रयोग के निष्कर्ष, फिर वे प्रयोग चाहे गुरुत्वाकर्षण से संबंधित हो या न हो, वह प्रयोग ब्रह्माण्ड में कहा और कब किया गया है इसपर निर्भर नहीं होते।

क्षीण समतुल्यता तत्व अगले दोनों तत्वों में अंतर्भूत है तो आइन्स्टाइन तत्व अंतिम में। सशक्त समतुल्यता तत्व यह सूचित करता है कि गुरुत्वाकर्षण का स्वरूप पूरी तरह भौमितिक (Geometrical) है।

गुरुत्वाकर्षण और ज्यामिती

व्यापक सापेक्षता के महत्वपूर्ण आधार हैं १) गुरुत्वाकर्षण और त्वरण इनके बीच समानता का तत्व। २) गुरुत्वाकर्षण और ज्यामिती इनके बीच साम्य। अर्थात् वक्र पृष्ठभाग गुरुत्वाकर्षण के गुणधर्म प्रदर्शित करता है।

व्यापक सापेक्षता के विवेचन में तने हुए रबरी शीट की चर्चा हो चुकी है। इस शीट के मध्य हिस्से पर एक वजनी गोला रखा तो उस गोले के चारों ओर का प्रतल वक्र होगा। लेकिन गोले से दूर का हिस्सा सपाट ही रहेगा। किसी तारे के गिर्द का अवकाश-काल इसी तरह वक्र होता है। तने हुए पृष्ठभाग पर डाली हुई गोल छोटी गोली वक्र पृष्ठभाग के पास पहुँचते ही उसमें त्वरण उत्पन्न होगा और वह बड़े गोले के गिर्द घूमने लगेगी। तारों के पास पहुँचने वाली वस्तुओं में इसी तरह से त्वरण उत्पन्न होता है। पृष्ठभाग पर गोली छोड़ते समय उसकी शुरु की गति में थोड़ा-थोड़ा बदल करने से उसकी वजनी गोले के गिर्द घूमने की भ्रमण कक्षा बदलती है। शुरु की गति के अनुसार गोली, वजनी गोले के गिर्द गोलाकार, अन्वस्तीय (पॅरबोलिक) या अपास्तीय (हायपरबोलिक) कक्षा में भ्रमण करेगी। वक्र पृष्ठ, गुरुत्वाकर्षण के गुणधर्म प्रदर्शित करता है यह

बात इस प्रयोग से सिद्ध होती है। सूर्य की दिशा में आने वाले पुच्छल तारे उनकी गति के अनुसार सूर्य के गिर्द उपरोक्त तीनों में से किसी एक मार्ग से भ्रमण करते हुए पाये जाते हैं।

व्यापक सापेक्षता सिद्धान्त में आइन्स्टाइन द्वारा यह गृहित लिया गया है कि वक्र पृष्ठभाग गुरुत्वाकर्षण गुणधर्म दिखाता है।

आइन्स्टाइन के अनुसार यह पूरा ब्रह्माण्ड रबर की एक शीट की तरह है। इस शीट पर चाँद-तारे अपने द्रव्यमान के कारण एक ढलान पैदा कर देते हैं। जिसका द्रव्यमान जितना अधिक वह उतनी ही अधिक ढलान पैदा करेगा। इस ढलान में दूसरे पिंड लुढ़कने लगेंगे। हमें लगेगा कि वे गुरुत्वाकर्षण के कारण परस्पर एकदूसरे को खींच रहे हैं और परिणामतः छोटा पिंड बड़े के गिर्द चक्कर लगा रहा है। पर वास्तव में वे केवल इस ढलान में लुढ़कते हैं। अगर गुरुत्वाकर्षण में सिर्फ अपनी ओर खींचने का गुण होता तो सूर्य के भारी गुरुत्वाकर्षण के कारण पृथ्वी और अन्य ग्रह जैसे छोटे पिंड उसकी ओर खींचे चले जाते और उससे टकराकर उसमें मिल जाते। यही कारण है कि ये पिंड ढलवां स्पेस-टाइम में पहुँचकर बड़े पिंड पर गिरते नहीं केवल लुढ़कते रहते हैं, अनंत काल तक।

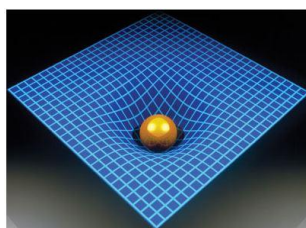


image credit: google images

जी-बल

जी-बल(g force) इसमें 'g' का अर्थ है गुरुत्वीय त्वरण (Gravitational Acceleration)। समुद्र सतह पर इस त्वरण की कीमत ९.८ मीटर प्रति सेकंड है। अर्थात् प्रति सेकंड, वस्तु की गति में ९.८ मीटर इतना बदल होगा। भूपृष्ठ से ऊपर जाते समय गुरुत्वीय त्वरण की कीमत कम-कम होती जाती है। ऊँचे पहाड़ पर भी इसकी कीमत समुद्री सतह की तुलना में कम होती है। उसी तरह भूपृष्ठ के नीचे जाते समय पृथ्वी के केंद्र की दिशा में कीमत कम-कम होती है। अर्थात् भूपृष्ठ पर ही इसकी सबसे अधिक कीमत होती है।

पदार्थ पर कार्य करने वाला बल = पदार्थ का वस्तुमान x उसमें पैदा होने वाला त्वरण ।

मान लो, वस्तुमान एक कि.ग्रॅम है, तो बल की कीमत, गुरुत्वीय त्वरण इतनी ही होगी। अर्थात् ' g ' बल का अर्थ है एक किलोग्राम की वस्तु पर कार्य करने वाला गुरुत्वीय बल। अब मान लो आपने ' g ' इतने स्थिर त्वरण से पृथ्वी से सीधी ऊपर की दिशा में उड़ान भरी। तो आपके शरीर के प्रत्येक किलो वस्तुमान पर ' २g ' इतना बल कार्य करेगा। एक g बल तो गुरुत्वाकर्षण आकर्षण को निरंक करने में खर्च होगा और दूसरा त्वरण कायम रखने में। उसी तरह जब तुम काफी ऊंचाई से नीचे गिर रहे हो तो शरीर के प्रत्येक किलो पर शून्य g बल कार्य करेगा। व्यवहार में हमें इस बल का अनुभव तब होता है जब लिफ्ट ऊर्ध्व दिशा में संचालित होती है। कुछ क्षण के लिए हमें हमारा शरीर भारी होने का अनुभव होगा।

विमानोड़ण के दरम्यान अपने शरीर के मेरुदंड की दिशा में जी बल कार्य करता है। इस कारण शरीर की लम्बाई की दिशा में, रक्तचाप में फर्क पड़ता है। इस कारण इसपर बंधन आता है कि मनुष्य कितना g बल सहन कर पाता है। इसकी कीमत पांच अधिक हुई तो मनुष्य बेहोश हो सकता है। लेकिन विशेष परिधान (सूट) और स्नायु की क्षमता (जिसे अभ्यास से बढ़ाया जा सकता है) इनके आधार पर मशिन की ओर रक्त भेजा जा सकता है। विशेष सूट पहनने वाले आधुनिक वैमानिक ९ g बल सहन कर सकते हैं। उर्ध्व दिशा की g बल की तुलना में मेरुदंड की लम्ब दिशा में काम करने वाले g बल को अधिक परिमाण में सहन किया जा सकता है। उदा. जब मोटर की गति बढ़ती है तो हमारा शरीर, सीट की पिछली बाजू पर दबाव अनुभव करता है।

- पृथ्वी पूरी तरह गोलाकृति में होती तो गुरुत्वाकर्षणीय त्वरण सर्वत्र समान होता। लेकिन परिपूर्ण गोल नहीं है, उसमें विषुववृतीय दिशा में थोड़ा उभार है। इस कारण गुरुत्वाकर्षणीय त्वरण भी समान नहीं है। अलग-अलग अक्षांशों पर यह इस तरह बदलता है -

अक्षांश	गुरुत्वीय त्वरण	अक्षांश	गु. त्वरण
0	978.1०	60	981.76
३०	979.32	90	983.28
45	980.54		

- गुरुत्वाकर्षण के कारण ताम्रसृति क्यों निर्माण होती है ?
इसका आइन्स्टाइन द्वारा दिया गया युक्तिवाद इस प्रकार है - तारा या ग्रह इनसे उत्सर्जित होने वाले प्रकाश किरण की ऊर्जा गुरुत्वाकर्षण के कारण कम होती है। लेकिन

प्रकाश किरण की ऊर्जा उसकी बारंबारिता के सम प्रमाण में बदलती है। अर्थात् ऊर्जा कम हुई तो बारंबारिता भी कम होगी या तरंग लम्बाई बढ़ेगी और ताम्रसृति पैदा होगी।

$$\text{गुरुत्वाकर्षणीय ताम्रसृति} = z = gh / c^2$$

(z = ताम्रसृति , g = गुरुत्वाकर्षणीय त्वरण , h = तारे के केंद्र से स्रोत का अंतर , c = प्रकाश की गति)

वर्ष १९६० में पोंड और रेबका इस वैज्ञानिक द्वय ने प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा गुरुत्वाकर्षण के कारण ताम्रसृति होती है यह सिद्ध किया। आगे स्नायडर महोदय ने प्रयोग में सटीकता लायी।

दोनों गतियाँ अगर तौलनिक होंगी तो सापेक्षता डॉप्लर ताम्रसृति =

$$\sqrt{(c + v) / (c - v)} \quad -- \quad (1) ; v = \text{प्रकाश स्रोत की गति}$$

प्रकाश स्रोत की गति अगर प्रकाश गति की तुलना में बहुत कम हो तो डॉप्लर ताम्रसृति = v / c |

गुरुत्व बल

हम जानते हैं अगर कोई वस्तु ऊपर से छोड़ी गयी तो वह नीचे गिरती है, वह गुरुत्वाकर्षण के कारण। न्यूटन के अनुसार ग्रह, सूर्य की परिक्रमा करते समय अपनी कक्षा में बने रहते हैं, वे भी गुरुत्वाकर्षण के कारण। हमें बताया गया था कि अणुओं के एक दूसरे से जुड़ने का कारण भी गुरुत्वाकर्षण है। न्यूटन के सिद्धान्त पर केंव्हेडिश द्वारा कई परीक्षण किए गये और हर बार उन्हें व्यवस्थित कार्य करते हुए पाया गया।

जब कोई वस्तु केवल गुरुत्व प्रभाव के अंतर्गत कार्य करती है तो उसे ' Free Fall ' कहते हैं। लेकिन जब तुम ऊपर से नीचे की ओर गिर रहे हो तो तुम अपने पर कोई बल अनुभव नहीं करते। तुम जब अंतरिक्ष में किसी भी भारी वस्तु के सान्निध्य में नहीं होते तो भी कोई बल अनुभव नहीं करते।

न्यूटन के अनुसार गुरुत्व यह सतत, तत्क्षण और दूर तक कार्य करने वाला बल है लेकिन वे यह नहीं बता पाए कि वह किस तरह कार्य करता है।

तो आइन्स्टाइन के अनुसार ग्रैविटी यह कोई रहस्यमय बल नहीं है जो अंतराल-काल की पार्श्वभूमि में कुछ अंतर पर कार्य करता है, बल्कि परिणाम है पार्श्वभूमी स्वयं वक्र होने का।

अंतराल-काल की वक्रता| गुरुत्व यह अंतराल-काल की वक्रता का परिणाम नहीं है बल्कि स्वयं अंतराल-काल की वक्रता है।

तो क्या यह हमारे पूर्व ज्ञान के अनुसार बल नहीं तो एक भ्रम है?

बुध ग्रह की पहेली

बुध की कक्षा निश्चित (Fixed) नहीं है, अधिक दीर्घ वृताकार elliptical है। पेरिहेलिअन बिंदु वह होता है जहाँ से कोई पिंड सूर्य के सबसे करीब होता है। बुध का पेरिहेलिअन बिंदु बदलता रहता है। न्यूटन गणित की गणना के अनुसार उस पेरिहेलिअन बिंदु की आगेकूच प्रति सौ सालों में 531 आर्कसेक होनी चाहिए (अन्य ग्रहों, पिंडों आदि के प्रभाव के कारण)। लेकिन वह 574 आर्कसेक आ रही थी। वैज्ञानिकों ने शुरू में सोचा कि इसका कारण बुध के अंदरूनी हिस्से में कोई ग्रह होना चाहिए। लेकिन काफी खोजबीन के बाद भी ऐसा कोई ग्रह नहीं मिला।

वास्तव में सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार भारी पिंड के आजुबाजु का, अंतराल-काल ही वक्र हो जाता है। जिस रास्ते से फोटॉन या किसी और बिंदु को गुजरना है वह रास्ता ही वक्र हो जाता है। अंतराल-काल अंदर धंस जाता है (warping)। सूर्य के करीब का या बुध का अंतराल अधिक वक्र है। बुध की पहेली का कारण यही है।

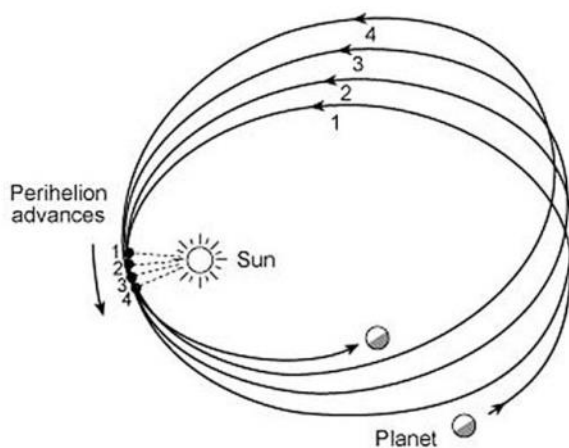


Image Credit: google images

गुरुत्व तरंगें

व्यापक सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक वस्तु का उसके चारों ओर के अंतरिक्ष पर परिणाम होकर इस अंतरिक्ष को वक्रता प्राप्त होती है। किसी खगोलीय वस्तु की हलचल के कारण अवकाश की इस वक्रता में बदल होता है। तालाब के शांत पानी में कंकड़ डालते ही जिस तरह तरंगें उठती हैं और दूर तक चारों दिशाओं में फैलती हैं उसी तरह अवकाश की वक्रता में होने वाला यह बदल ' गुरुत्वीय तरंगों या उर्मिकाओं (Ripples) के रूप में दूर तक फैलते जाता है। ऐसी उर्मिकाएं पैदा होने की संभावना आइन्स्टाइन ने १९१६ में ही व्यक्त की थी। लेकिन वे बहुत क्षीण होने के कारण क्या वे दर्ज हो पाएंगी, इस बाबत आइन्स्टाइन को ही शंका थी।

इन तरंगों के अस्तित्व का अप्रत्यक्ष सबूत १९७४ में मिल गया था। रसेल हल्स और जोसेफ टेलर इन अमेरिकी खोजियों को प्युर्टोरिको अरेसिबो रेडियो दूरबीन से निरीक्षण करते समय तारों का एक युग्म मिला। वे केवल ७.७ घंटे में एकदूसरे की परिक्रमा करते हुए दिखे। लेकिन इनका प्रदक्षिणा काल प्रति वर्ष दो सेकंड से घट रहा था। यह घट बता रही थी कि तारों की ऊर्जा में भी कमी हो रही है। व्यापक सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार यह कमी, गुरुत्वीय तरंगों के रूप में उत्सर्जित होनी चाहिए। लेकिन तरंगों से प्रत्यक्ष साक्षात्कार उस समय नहीं हुआ।

फिर उनसे सर्वप्रथम साक्षात्कार हुआ १४ सितंबर २०१५ को, लायगो प्रकल्प में। लायगो का पूरा रूप है ' दी लेसर इंटरफेरोमीटर ग्रैविटेशनल वेव्ह ऑब्ज़र्वेटरी '। ये विशाल तरंगें उत्पन्न हुई थीं १.३ अरब साल पहले हुई दो कृष्ण विवरों की टक्कर के दरम्यान। ये १४ सितम्बर २०१५ को उपरोक्त उपकरण तक पहुँचीं और उसकी पकड़ में आयीं। अपेक्षित सिग्नल बहुत सूक्ष्म थे। इंटरफेरोमीटर नामक मशीनों में एक अणु की चौड़ाई के एक हिस्से के बराबर हरकत भी दर्ज होती है। तरंगों की तीव्रता २० से ३० हर्ट्ज़ की थी। जिन कृष्ण विवरों की टक्कर हुई उनका वस्तुमान सूर्य से तीस से पैंतीस गुना होना चाहिए। गुरुत्वीय तरंगें पृथ्वी पर पहुँचने पर पृथ्वी के आसपास के अंतरिक्ष की वक्रता में कुछ ही समय के लिए तनाव पैदा होता है। इस तनाव के कारण प्रकाश किरण के मार्ग की लम्बाई में मामूली फर्क होता है। प्रकाश किरण का मूल मार्ग जितना लम्बा उतना यह अंतर भी अधिक। लायगो उपकरण में चार कि.मी. लम्बी सुरंग बनायी गयी है। गुरुत्वीय तरंगों का दर्ज होना, एक दूसरे से काफी दूर ऐसे कम से कम दो स्थानों पर होना आवश्यक है। अतः इन्हें अमेरिका के हॅम्पर्ड और लिक्विंगस्टन में खड़ा किया गया हैं। दोनों के बीच अंतर तीन हजार कि.मी. है।

१२ सितम्बर २०१५ और १९ जनवरी २०१६ के दरम्यान सर्वप्रथम लायगो प्रकल्प में निरीक्षण का काम शुरू हुआ था। दुनिया के इस अत्याधुनिक डिटेक्टर की मदद से एक सेकंड के बीस हजारवें हिस्से में तरंगों को दर्ज किया गया। इन तरंगों को फिर दोबारा अमेरिका के लायगो और यूरोप के व्हिर्गो गुरुत्वीय तरंग शोधक उपकरणों की मदद से १७ अगस्त २०१७ को दर्ज करने में सफलता मिली। अब एक नये विज्ञान ' गुरुत्वीय खगोलशास्त्र ' का जन्म हुआ है। इस अभियान में दुनिया की २० संस्थाओं का तथा हजारों वैज्ञानिकों का योगदान है। इनमें भारत के भी ३१ वैज्ञानिक हैं। यह प्रकल्प चार दशकों के कठिन परिश्रम का फल है।

इसी अभियान में सबसे ज्यादा जिनका योगदान रहा ऐसी तीन विभूतियों को २०१७ का भौतिकी का नोबेल पुरस्कार दिया गया -

- १) अमेरिकी खगोलशास्त्री रेनर वेस -मॅसॅच्युसेट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी
- २) २) बॅरी बॅरीश और
- ३) ३) किप थॉर्न। दोनों कैलिफोर्निया इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी से।

अब तक जिन घटनाओं के कारण गुरुत्व तरंगें निकलीं और जिन्हें दर्ज किया गया वे इस प्रकार हैं -

- २९-७-२०१७ : पिंड GW १७०७२९ इससे जुड़ी १० कृष्ण विवर और एक न्यूट्रॉन तारे के विलीनीकरण की घटना ५ अरब साल पुरानी है। इसमें पैदा हुई ऊर्जा ५ सौर वस्तुमान के बराबर थी जिसका रूपान्तर गुरुत्वीय तरंगों में हुआ। अन्य पिंड-GW१७०८०९, GW१७०८१८, GW १७०८२३।
- ३०-11-२०१६ : एक द्वैती न्यूट्रॉन तारों का विलीनीकरण।
- २५ - ८- २०१७ : सात कृष्ण विवरों का विलीनीकरण। आदि (लोकसत्ता ५-१२-२०१८)

A) गुरुत्व तरंगों से संबंधित जो कुछ जानकारी उपलब्ध है उसे इस तरह संकलित कर सकते हैं -

- १) गुरुत्व तरंगों की गति प्रकाश गति के बराबर अर्थात् ३ लाख कि.मी. / सेकंड होगी।
- २) गुरुत्वीय तरंगों के वाहक कणों को ग्रॅविटोन नाम दिया गया है। उसका स्थिर वस्तुमान शून्य है और स्पिन क्रमांक २ है।
- ३) इसकी ऊर्जा फोटॉन से कम है।

- ४) ये तरंगें अपने गंतव्य दिशा की लम्ब दिशा में विस्तार और संकोच उत्पन्न करती हैं जो आवर्ती होते हैं।
- ५) ये तरंगे किसी भी वस्तु से आरपार जा सकती हैं। अर्थात् सभी चीजें उनके लिए पारदर्शी हैं।
- ६) प्रचंड वस्तुमान वाली वस्तु त्वरणशील होगी तो वह गुरुत्वीय तरंगें उत्पन्न कर सकती है। अतिनव तारे, परस्पर का परिवलन कर रहे कृष्ण विवर आदि इनका स्रोत हो सकते हैं। गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में कुछ खलबली पैदा हुई तो गुरुत्व तरंगें उत्पन्न होती हैं, ऐसा व्यापक सापेक्षता सिद्धान्त कहता है। अत्यल्प समय में आत्यंतिक हडकंप होना चाहिए। उदा. किन्हीं महाराक्षसी तारों का गुरुत्व निःपात के कारण कृष्ण विवर में रूपान्तरित होना या कृष्ण विवर ने अति तेजी से आजुबाजु की वस्तु निगलते जाना। गुरुत्वीय तरंगें अंतरिक्ष में होने वाले खींचाव का माप है।
- ७) विश्व प्रसरण के कारण गुरुत्वीय तरंगों की तरंग लम्बाई बढ़ती जा रही है।
- ८) गुरुत्वीय तरंगों को दर्ज करने का प्रथम प्रयास जोसेफ वेबर ने किया था। लेकिन वे असफल रहे।

B) १) ऊर्जा मुक्त करने वाली कोई घटना, तरंग निर्मिति का कारण बनती है।

- २) सभी तरह की तरंगें स्रोत से शुरू होती हैं, स्थलांतर करती हैं और मूल स्थान से चारों दिशाओं में फैलती हैं।
- ३) मार्ग में किसी वस्तु से संपर्क होने पर, तरंगें अपनी ऊर्जा वस्तु में संक्रमित करती हैं।
- ४) जिस तरह विददुत चुंबकीय सिद्धान्त में त्वरणयुक्त विददुत भार विददुत चुंबकीय विकिरण या विददुत चुंबकीय तरंगें उत्पन्न करता है या फोटॉन की उत्पत्ति में पारंपरिक भौतिक वस्तु का रूपान्तर चुंबकीय क्षेत्र में होता है उसी तरह कंपायमान

वस्तुधारी पिंडों को, गुरुत्व तरंगें प्रसारित करनी चाहिए। विददुत चुंबकीय तरंगें ऊर्जा और परिबल धारण किए होती हैं।

- ५) चूंकि तरंगें उत्पन्न करने के लिए ऊर्जा आवश्यक होती है अतः जो पिंड इसे उत्पन्न करेगा उसकी ऊर्जा में कमी होगी।

६) चंद्र के कारण पैदा होने वाले ज्वारभाटे के दरम्यान चंद्र, सागर के पानी को क्रमशः अपनी दिशा में खींचता है तथा विरुद्ध दिशा ठेलता है और उसकी लम्ब दिशा में पानी में संकोच उत्पन्न करता है। भौतिकी की भाषा में इन दिशाओं को ' अनुदैर्घ्य ' (Longitudinal) और ' अनुप्रस्थ' (Transverse) ऐसे नाम दिये गये हैं।

गुरुत्वीय तरंगों मात्र, अपनी गंतव्य दिशा में ज्वारभाटे जैसा बल उत्पन्न नहीं करतीं। अर्थात् गुरुत्व उर्मिकाओं का अनुदैर्घ्य दिशा में वस्तुओं पर कुछ परिणाम नहीं होता। लेकिन उसकी लम्ब दिशा में मात्र वैसा बल पैदा करतीं हैं। अर्थात् अनुप्रस्थ दिशा में वे वस्तु में विस्तार और संकोच पैदा करती हैं। गुरुत्वीय तरंगों का उभार आया कि उस दिशा में वस्तु का विस्तार होता है तो इसकी लम्ब दिशा में संकोच। लहर का गर्त आते ही इससे उलट परिणाम मिलता है। ऐसा विस्तार और संकोच आवर्ती होता है।

चंद्र के कारण आने वाले ज्वारभाटे से सागर के पानी का स्तर दिन में दो बार, कम से कम दो मीटर से ऊपर-नीचे होता है । लेकिन दो कृष्ण विवरों के टकराव से बनी और पृथ्वी तक पहुँची लहर, यहाँ के सागरों में 10^{-14} मीटर से ज्यादा ज्वार नहीं ला सकेगी। अर्थात् इस नगण्य परिणाम का मापन संभव नहीं। ज्वारभाटे के बल का परिणाम वस्तु के आकार पर निर्भर होता है। पृथ्वी का व्यास 1.26×10^7 मीटर है। अर्थात् ज्वार पृथ्वी के आकार की तुलना में केवल 10^{-21} गुना ($10^{-14} / 10^7$) होगा। गुरुत्वीय तरंगों अपने आसपास की स्वतंत्र रूप से गतिशील पिंडों के बीच विचलन पैदा करती हैं। अतः उन्हें दर्ज करने के लिए उपरोक्त आयाम को दर्ज करने वाले उपकरणों की आवश्यकता होगी।

संदर्भ चौखटें

जडत्वीय व अजडत्वीय संदर्भ चौखटें

सापेक्षता इस विषय में बारबार आने वाला शब्द है ' Frame of Reference '। हम हमारी भाषा में उसे कहेंगे ' संदर्भ चौखट '।

आप किसी भौतिक घटना का निरीक्षण किस संदर्भ चौखट से कर रहे हैं, इसे सापेक्षता में बड़ा महत्व है।

आमतौर पर, एक दूसरे के लम्बरूप x, Y, Z इन तीन अक्षों को संदर्भ चौखट के रूप में लिया जाता है। ये अक्ष जहाँ मिलते हैं वह संदर्भ बिंदु है और उसीसे तीनों अक्षों की दिशाओं में

दूरियों का मापन किया जाता है। किसी वस्तु का स्थान बताने के लिए ये तीन कीमतें आवश्यक होंगी जिन्हें सहनिर्देशक (Coordinates) कहते हैं।

जडत्वीय संदर्भ चौखट : (Inertial Frame of Reference) : जिस संदर्भ चौखट में न्यूटन के गति विषयक नियम प्रायोजित किए जा सकते हैं, ऐसे चौखट को ' जडत्वीय ' कहा जाता है। स्थिर या कायम गति से गतिमान चौखट, ये इसके उदा. हैं।

अजडत्वीय संदर्भ चौखट : (Non-Inertial) : जिस संदर्भ चौखट में न्यूटन के गति विषयक नियम प्रायोजित नहीं किए जा सकते ऐसी चौखट को ' अजडत्वीय ' कहते हैं। त्वरणशील या वलयाकार मार्ग पर भ्रमण करने वाली चौखट ये इसके उदा. हैं।

- समझो एक गाड़ी स्टेशन या प्लेटफॉर्म की दृष्टि से सम गति से एक ही सीधी रेखा में जा रही होगी तो ऐसा मानने में कोई आपत्ति नहीं कि गाड़ी स्थिर है और स्टेशन दौड़ रहा है। उनके अंदर एक जैसे ही नियम कार्य कर रहे होंगे। किसी वस्तु को हम स्थिर तभी मान सकते हैं जब उसपर बाह्य प्रेरणा का परिणाम न होता हो। अब यह भी सत्य है कि विरामावस्थाएं कई हो सकती हैं, अर्थात् अनगिनत भी।
- दो चीजें अगर एक ही गति से और एक ही दिशा में जा रहीं होंगी तो भी हम उसे दो स्थिर वस्तुएं कह सकते हैं। ऐसी दो ट्रेनों में बैठे यात्रियों को एकदूसरे की तुलना में लगोगा, वे स्थिर ही हैं। ऐसी गतियाँ भी अनगिनत हो सकती हैं। अर्थात् स्थिर और त्वरण रहित चल पिंड समतुल्य माने जा सकते हैं।
- अब ऐसी कल्पना किजिये एक गाड़ी गोल मार्ग पर चल रही है। ऐसी गाड़ी के अंदर की वस्तुओं पर केंद्रांतरी बल का परिणाम होते रहता है। अतः इस स्थिति को विरामावस्था नहीं कह सकते। जडत्वीय कायम गति से सीधी रेखा में चल रही गाड़ी के अंदर ऐसा कोई बल नहीं होता।

संदर्भ चौखटें : सापेक्षता : गैलिलियो और न्यूटन

विश्व में प्रत्येक वस्तु गतिमान है। संदर्भ के रूप में उपयोग में लायी जा सकेगी ऐसी स्थिर वस्तु अस्तित्व में नहीं है।

गति यह हमेशा परस्पर सापेक्ष होती है। न्यूटन का भौतिकशास्त्र प्रमुखता से वस्तुओं की गति का शास्त्र है।

- दो भिन्न-भिन्न संदर्भ चौखटों से देखते समय किसी गतिमान वस्तु की गति अलग-अलग प्रतीत होगी। लेकिन न्यूटनप्रणित गतिशास्त्र में उनमें प्रतीत होने वाला फर्क चौखटों के बीच सापेक्ष गति इतना ही है। इस कारण जड़त्वीय चौखटों के लिए गति समान रहती है। मानो वस्तु की गति बदली तो वह बदल सबके लिए समान होगा। अर्थात् सभी जड़त्वीय संदर्भ चौखटों के लिए वस्तु का त्वरण भी समान है।
- न्यूटन के भौतिकी में वस्तु का वस्तुमान भी अविचल रहता है। अब बल = वस्तुमान $\times$ त्वरण। अतः परस्पर सापेक्ष गतिमान संदर्भ चौखटों के लिए वस्तुमान और बल समान रहते हैं। अर्थात् जड़त्वीय चौखटों के लिए गतिविषयक नियम और उनके समीकरण समान रहते हैं। परिणामतः ऊर्जा, संवेग इनके अक्षय्यता के नियम, न्यूटन के नियमों का ही परिपाक है। सभी जड़त्वीय संदर्भ चौखटों के लिए गतिशास्त्र के सभी नियम समान होते हैं। निष्कर्ष यह कि जड़त्वीय चौखट में गति संबंधी किया हुआ कोई भी प्रयोग उस चौखट की अन्य जड़त्वीय चौखट सापेक्ष गति का ज्ञान नहीं दे सकेगा।

उदा. शांत पानी में स्थिर गति से यात्रा करने वाले जहाज में गेंद फेंककर और उसकी दूरी और समय का मापन कर जहाज की, पानी सापेक्ष गति प्राप्त नहीं की जा सकती। किसी भी प्रयोग द्वारा जड़त्वीय चौखट की निरपेक्ष गति (Absolute Motion) जानी नहीं जा सकती। चूंकि सभी जड़त्वीय चौखटों के लिए भौतिक नियम समान हैं। इस कारण कोई भी चौखट निरपेक्ष गति के मापन के लिए संदर्भ के तौर पर चुनी नहीं जा सकती। गतिशास्त्र की दृष्टि से सभी जड़त्वीय चौखटें समतुल्य (Equivalent) हैं।

- गैलिलियन रूपान्तर के कारण कुछ भौतिक राशियों में (Physical Quantities) बदल होता है। लेकिन ऐसी भी कुछ भौतिक राशियाँ हैं जो स्थिर रहती हैं, अपरिवर्तनीय होती हैं। यह विधान ही सापेक्ष तत्व (Relativity Principle) है।
- हम केवल जड़त्वीय चौखट की सापेक्ष गति के विषय में बात कर सकते हैं, उसके निरपेक्ष गति के विषय में कोई भी विधान नहीं कर सकते। इस तत्व को ही ' न्यूटोनियन रिलेटिविटी ' या ' न्यूटनप्रणित सापेक्षता ' कहा जाता है। न्यूटन के ही शब्दों में न्यूटन का सापेक्ष तत्व इस प्रकार होगा - " किसी विशिष्ट अंतरिक्ष हिस्से में होने वाली वस्तुओं के

परस्पर सापेक्ष गति के नियम समान होते हैं, फिर वह हिस्सा स्थिर हो या स्थिर गति से एक रेखा में गतिमान हो। “

प्रकाश और उसकी गति

जेम्स क्लार्क मैक्सवेल (१८३१-१८७३)-

मैक्सवेल ने १८६१ में विद्युत चुंबकीय शास्त्र की नींव रखी। इस सिद्धान्त के अनुसार एक दूसरे के साथ 90° का कोन करने वाले विद्युत और चुंबकीय क्षेत्र मिलकर प्रकाश बनता है। न्यूटन के समय विद्युत चुंबकीय शास्त्र का उदय नहीं हुआ था। प्रकाश यह विद्युत चुंबकीय तरंगें ही हैं।

- सभी जड़त्वीय चौखटों में प्रकाश की या अधिक व्यापक रूप में कहें तो सभी विद्युत चुंबकीय तरंगों की गति स्थिर होती है। यह सापेक्षता का गृहितक है। वस्तु की गति प्रकाश गति के स्तर पर पहुँचने पर ही सापेक्षता के परिणाम दिखने लगते हैं। इन तरंगों की गति विद्युत गतिशास्त्र के दो स्थिरांकों के गुणा के रूप में दिखाई जा सकती है -

१) पर्मिटिविटी स्थिरांक : यह स्थिरांक दो विद्युत भारित कणों के बीच आकर्षक या अपकर्षण दर्शाने के लिए उपयोग में लाया जाता है। इसकी कीमत है ८.८५×10^{-12} फ़ैरड / मीटर।

२) पर्मिअबिलिटी स्थिरांक : यह स्थिरांक दो चुंबकीय ध्रुवों के बीच आकर्षण या अपकर्षण दिखाने के लिए उपयोग में लाया जाता है। इसकी कीमत है १.२६×10^{-6} हेनरी /मीटर। ये दोनों स्थिरांक वैश्विक हैं। उनमें बदल नहीं होता।

अब प्रकाश (विद्युत चुंबकीय तरंग) की गति $= 1 / \sqrt{ (\text{पर्मिटिविटी स्थिरांक} \times \text{पर्मिअबिलिटी स्थिरांक})}$ ।

उपरोक्त कीमतें यहां डालने के बाद प्रकाश की गति आती है-- २.९९४६२९४५×10^8 मी. / सेकंड। स्वाभाविक तौर पर यह गति स्वयं एक स्थिरांक होगी।

प्रकाश

माध्यम : ईथर

शुरू में ऐसा समझा जाता था कि ध्वनि की तरह ही प्रकाश भी तरंगों के रूप में किसी माध्यम से होते हुए आगे बढ़ता है। उस माध्यम को Luminiferous Ether नाम दिया गया। इसे ढूंढने के लिए प्रयोग भी किया गया। अगर यह अदृश्य माध्यम सर्वत्र भरा हुआ है तो पृथ्वी भी इसी माध्यम से होती हुई घूर्णन करेगी। क्लासिक भौतिकी के सामान्य तर्क के अनुसार प्रकाश किसी दिशा में तेज होना चाहिए बनिस्वत उसकी विरुद्ध दिशा के। इसके मापन के लिए संवेदनशील उपकरण बनाया गया। लेकिन हाथ कुछ नहीं लगा।

यह प्रयोग उस निष्कर्ष को गलत सिद्ध करने के लिए किया गया था जिसमें अल्बर्ट मायकेलसन और एडवर्ड मोरले सिद्ध किया था कि प्रकाश, संदर्भ चौखटों पर निर्भर न होते हुए, हमेशा एक ही गति से आगे बढ़ता है।

बाद में मायकेलसन-मोरले के प्रयोग में कमी को ढूंढने के चक्कर में हेड्रिक लॉरेन्ज़ ने 'लॉरेन्ज़ रूपान्तरण' प्रस्तुत किया। इसके आधार पर गणितीय पद्धति से यह बताने का प्रयास किया कि किस तरह मायकेलसन-मोरले के परीक्षण से दो विरुद्ध दिशाओं में प्रकाश की गति एक ही होने का भ्रम पैदा हो सकता है, ताकि ईथर की कल्पना को जीवनदान मिले।

लेकिन उसी लॉरेन्ज़ ट्रान्सफॉर्मेशन का उपयोग कर, आइन्स्टाइन ने सापेक्षता का विशेष सिद्धान्त बनाया और अंततः ईथर संकल्पना से छुटकारा दिलाया।

फोटॉन का अस्तित्व

एक तरफ फोटॉन्स के कारण उत्पन्न होने वाले परिणाम हम देखते हैं। अतः उनका अस्तित्व मानने के लिए विवश होते हैं। तो दूसरी ओर वस्तु के अस्तित्व को प्रदर्शित करने वाले जो कुछ मूलभूत गुणधर्म होते हैं वे फोटॉन के लिए सीधे तौर पर हमें नहीं मिलते। ये मुख्यतः निम्न दो गुणधर्म हैं-

- १) एक स्थिर संदर्भ चौखट : अंतरिक्ष की ऐसी कोई कोऑर्डिनेशन प्रणाली नहीं है जिसमें हम फोटॉन का उद्भव ढूंढें (किसी प्रणाली के उद्भव बिंदु का आधार लेकर हम वस्तु पर रूपांतरण की प्रक्रियाएं जैसे उसे घूमना आदि कर सकते हैं जिससे उसकी नयी अवस्थाओं का पता चल सके।)
- २) अंतरिक्ष-काल में अस्तित्व का प्रत्यक्ष करने लायक सान्त कालावधी।

जब आप स्थिर अवस्था में हो तो आपके पास की घड़ी और गतिमान अवस्था में रही दूसरी घड़ी में समय का अन्तर देखने मिलता है, जिसे काल मंदत्व कहते हैं। लेकिन आप स्थिर अवस्था में रहते हुए जो समय अनुभव करते हैं उसे ' उचित काल '(Proper Time) कह सकते हैं। लेकिन फोटॉन की विशेषता है कि उसके लिए यह काल शून्य है।

- ३) एक अन्य बात यह है कि प्रकाश की गति पर कोई वस्तु नहीं पहुँच सकती। अर्थात् प्रकाशगति पर किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं हो सकता। वही बात अगर फोटॉन को लागू की तो हमारे सामने एक विरोधाभास (Paradox) उपस्थित हो जाता है।

इसी कारण ऐसा कहा जाता है कि “ अस्तित्व ” को, कडे तार्किक चष्मे से मत देखो।

- एक प्रश्न पुछा जाता है -

प्रकाश या फोटॉन उत्पन्न होते ही मार्गक्रमण करने लगता है। तो क्या उसे तत्क्षण उसकी महत्तम गति प्राप्त होती है ? या शून्य से शुरू होकर त्वरण के साथ वह महत्तम गति तक पहुँचता है ?

जब कोई त्वरणयुक्त विद्युतभार, विद्युत चुंबकीय विकिरण पैदा करता है तो पैदा होने वाले फोटॉनों को सूक्ष्म बंदूक की गोलियों की तरह नहीं समझना चाहिए। बल्कि विद्युत चुंबकीय क्षेत्र में जबरन पैदा किये गये बदलाव के रूप में लेना चाहिए जो तरंगें पैदा करता है। वे अनंत अंतर तक जा सकती हैं। चूंकि यह क्षेत्र भी क्वांटाइज्ड क्षेत्र होता है तो तरंगें भी मूलभूत एकक तरंग रूप में आ जाती हैं, जिसे हम फोटॉन कहते हैं। यही तरंगें आगे बढ़ती हैं।

- क्या गुरुत्व, प्रकाश को आकर्षित करता है ?

+ आइन्स्टाइन के पहले ऐसा माना जाता था कि प्रकाश यह तरंग होने के कारण गुरुत्व उसे आकर्षित नहीं करता। लेकिन आइन्स्टाइन ने उसका कण स्वरूप भी स्पष्ट किया और माना कि वह गुरुत्व के कारण आकर्षित होता है। बाद में आइन्स्टाइन ने अपने सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त में सिद्ध किया कि गुरुत्व यही, मूलतः वस्तुमान के कारण अंतराल-काल में पैदा हुई वक्रता है। अतः प्रकाश इस वक्रमार्ग पर चलता है, जिसे हम आकर्षित होना मान लेते हैं। कुछ सालों बाद यानि १९१९ में एडिंग्टन ने पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय दिखा दिया कि प्रकाश का पथ सूर्य के पास से गुजरते समय वक्र हो जाता है। तो आइन्स्टाइन के सिद्धान्त को निर्विवाद मान्यता मिल गयी।

- ऊर्जा का संप्रेषण-

परिभाषा के अनुसार, तरंगें ऊर्जा का संप्रेषण करती हैं। लेकिन ऐसा करते समय वे जिस माध्यम से आगे बढ़ती हैं, उसका संप्रेषण की दिशा में ध्यान में लेने लायक या कायम विस्थापन नहीं करतीं। तरंगें स्वयं मार्गक्रमण नहीं करतीं, केवल ऊर्जा का तरंग स्वरूप में संप्रेषण करती हैं।

जहां तक प्रकाश का कण और तरंग ऐसा द्वयी स्वभाव है, फोटॉन तो कण जैसा व्यवहार करते हैं लेकिन क्षेत्र की कीमतें (Field Values) तरंग रूप में बदलती हैं। विद्युत चुंबकीय ऊर्जा / विकिरण इस क्षेत्र में आगे बढ़ता है लेकिन वह क्षेत्र कीमत के ऊपर-नीचे हो रहे आंदोलनों के तरंग रूप में। फोटॉन के रूप में सोचने पर ऐसा लगता है मानो एक फोटॉन संप्रेषण की दिशा में विद्युत चुंबकीय ऊर्जा दूसरे फोटॉन को अंतरित कर रहा हो।

प्रकाश, द्रव्यमान, ऊर्जा और आवेग

$$E^2 = P^2 c^2 + m_0^2 c^2, \text{ प्रकाश के लिए } m = 0, P = \text{Momentum}$$

$$\text{अतः } E^2 = P^2 c^2 \quad \text{या } c = E / P$$

c की अगर विशिष्ट कीमत है तो E और P में से कोई भी शून्य नहीं हो सकता। अर्थात् प्रकाश तरंग में ऊर्जा भी होगी और आवेग भी। (जिनका द्रव्यमान है उनके विषय में तो सवाल ही नहीं)

अतः ऐसा कोई कण नहीं हो सकता जिसका द्रव्यमान भी शून्य हो और ऊर्जा भी।

तरंग का कोई द्रव्यमान नहीं होता और तरंग को आवेश धारण करने के लिए द्रव्यमान की आवश्यकता नहीं होती।

फोटॉन स्थिरावस्था में हो ही नहीं सकता। फोटॉन का अस्तित्व अगर है और द्रव्यमान अगर शून्य है तो उसमें ऊर्जा होगी ही। वह आवेग के रूप में होगी। अगर वह स्थिर है तो उसका आवेग भी शून्य होगा और ऊर्जा भी, जो संभव नहीं। निरीक्षक चाहे स्थिर हो या गतिमान वह हमेशा शून्य द्रव्यमान वाले कण को गति में ही देखेगा, कभी स्थिरावस्था में नहीं।

अगर फोटॉन, प्रकाश से कम गति से चलने लगे तो कोई अन्य संदर्भ चौखट भी उस गति से चलने लग सकती है। (हां, वह महत्तम गति से कम होगी)। ऐसी स्थिति में फोटॉन उसे स्थिर दिखेगा। जो संभव नहीं। इस कारण फोटॉन उसी गति से चलता है जिस गति पर अन्य कोई चौखट नहीं पहुँच सकती।

अगर कण का आवेग बहुत अधिक हो अर्थात् आवृत्ति अधिक और तरंग लम्बाई कम तो वह कण जैसा व्यवहार करेगा। इसकी उलट स्थिति में तरंग जैसा। वह अंतराल में अधिक जगह व्याप्त करेगा।

तापमान और विद्युत चुंबकीय विकिरण

- पदार्थ का तापमान जब (absolute) परम शून्य से अधिक होता है तो वह किसी न किसी रूप में विद्युत चुंबकीय विकिरण उत्सर्जित करता ही है।
- मनुष्य के लिए सामान्य कामकाज करते समय 70^0 - 75^0 फॅरनहाइट तापमान सुविधाजनक है।
- पृथ्वी पर नोंद किया गया अधिकतम तापमान 54^0 c. है (डेथ वॅली)।
- नाभिक विस्फोट 3.5 करोड़ ^{0} C. तापमान पैदा करता है।
- सूर्य से आठ गुना बड़े तारे के, जब उसका कोर गुरुत्व निःपात के कारण ढह जाएगा तो, कोअर का तापमान 300 करोड़ डिग्री तक पहुँच जाएगा।
- एक लाख करोड़ तापमान पर केवल इलेक्ट्रॉन्स ही शेष रह जाते हैं। प्रोटॉन्स और न्यूट्रॉन्स, क्वार्कस् और ग्लुऑन में बदल जाते हैं।
- ७८०० प्रकाशवर्ष दूर एक तारा है WR 104 | वह सूर्य से 25 गुना द्रव्यमान वाला है। उसके अंतिम समय में जब उसका विस्फोट होगा तब इतनी ऊर्जा उत्पन्न होगी, जितनी सूर्य ने अपने 10 अरब सालों के जीवनकाल में उत्पन्न नहीं की होगी।
- उच्चतम संभवनीय तापमान : 1.41×10^{32} डिग्री से.। इस तापमान पर जो विकिरण उत्सर्जित होगा उसकी तरंग लम्बाई होगी प्लैंक लम्बाई इतनी अर्थात् न्यूनतम संभवनीय लम्बाई (1616×10^{-26} नॅनोमीटर)। इसे प्लैंक तापमान भी कहा जाता है। यह हमारे सिद्धान्तों का अंतिम छोर है। इसके पार वे काम नहीं करेंगे। तापमान अगर इसके ऊपर चला गया तो क्या होगा, हमें नहीं पता।

वर्णपट के अनुसार खगोलशास्त्र

- ऑप्टिकल खगोलशास्त्र : इसमें मुख्य रूप से जिस वर्णपट के हिस्से का अध्ययन किया जाता है उसकी तरंग लम्बाई 10 से 320 नॅनोमीटर या दृश्य तरंगलम्बाई होती है।

- रेडिओ खगोलशास्त्र : वास्तव में इसकी शुरुआत १९३७ में ही हो गयी थी। तब 9.4 मीटर व्यास का रेडियो अँटिना खड़ा किया गया था। १९४२ में 'Hey' ने सूर्य से आने वाले किरणों में रेडियो तरंगों की खोज की थी। १९४४ में 'Van Derhulst' ने भविष्यवाणी की थी कि अंतरिक्ष में फैला हैड्रोजन 21 से.मी. तरंग लम्बाई वाली रेडियो तरंगें उत्सर्जित करेगा। इन तरंगों को १९५१ में पकड़ा गया। इस अध्ययन में रेडियो तरंगों की तरंग लम्बाई 1 mm के आसपास होती है।

पुणे जिले में नारायणगांव के पास खोदड गांव में ' जायंट मीटरवेव्ह रेडिओ टेलिस्कोप ऑब्ज़र्वेटरी ' खड़ी की गयी है। इसमें 45 मीटर व्यास के 30 रेडिओ टेलिस्कोप हैं।

- इन्फ्रारेड खगोलशास्त्र |

अवरक्त विकिरण खगोलशास्त्र : यह अति ठंडे ग्रहों के अध्ययन के लिए उपयुक्त है। ग्रह या दूरस्थ दीर्घिका, इनका प्रकाश वातावरण की धूल के कारण अवरूद्ध होता है। लेकिन अवरक्त प्रारण धूल के बादलों में प्रवेश कर सकता है | यह अवकाश के रसायनशास्त्र के अध्ययन के लिए भी उपयोगी है।

- अति नील किरण खगोलशास्त्र।
- ' क्ष ' किरण खगोलशास्त्र : ये किरणें पृथ्वी के वातावरण में अवशोषित हो जाती हैं। अतः उनके लिए ऊंचाई पर बलून्स, रॉकेटों और क्षकिरण उपग्रहों का उपयोग किया जाता है। जैसे चंद्रा क्ष किरण दूरबीन। अंतरिक्ष में क्ष किरणों का स्रोत सर्वप्रथम १९६२ में खोजा गया।
- गॅमा किरण खगोलशास्त्र : क्रॉम्प्टन गॅमा रे वेधशाला।

सूक्ष्म वस्तु का अवलोकन और विकिरण

- परमाणु का आकार 10^{-10} मी.। इसके साथ क्ष किरणों की तुलना हो सकती है। इस स्तर पर प्रकाश का कण स्वरूप सामने आ सकता है। अतः इस स्तर के अवलोकन के लिए यह विकिरण उपयुक्त है।
- नाभिक का आकार 10^{-14} या फेम्टोमीटर। यहाँ गॅमा किरणों की आवश्यकता होगी।
- व्हायरस से बड़े आकार (100nm) के अनुसंधान में दृश्य प्रकाश पर्याप्त है। यही कारण है कि जिवंत पेशियाँ या ज़िवाणुओं को देखने के लिए मायक्रोस्कोप काफी हैं। इससे छोटे आकार को देखते समय दृश्य प्रकाश काम नहीं देता।

टेकिऑन्स

- ऐसे कणों की कल्पना १९६२ सर्वप्रथम करने का श्रेय ई.सी.जी. सुदर्शन, ओ.एम्.पी. बिलानौक, और व्ही.के. देशपांडे इन तीन भारतीय वैज्ञानिकों को जाता है। उन्होंने इसे 'मेटा कण' नाम दिया था।

देश और काल

अरिस्टॉटल को 'विधिवत तर्कशास्त्र' का संस्थापक माना जा है। इस शास्त्र को नियम और विचारों के स्वरूपों का विज्ञान माना जाता है। मध्ययुग में अरिस्टॉटल के विचारों को चर्च का भी समर्थन प्राप्त था। अरिस्टॉटल के अनुसार -

देश और काल अस्तित्व के रूप हैं। उनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। भौतिक वस्तुओं के विद्यमान संबंधों का वे केवल वर्णन करते हैं। इसे 'संबंधात्मक दृष्टिकोण' कहते हैं।

इसके विरोध में जो विचार थे उन्हें 'सत्तात्मक दृष्टिकोण' कहते हैं। इसके प्रस्तुतकर्ता थे डेमोक्रीटस, न्यूटन, गैलिलियो आदि। इसके अनुसार - दोनों, भौतिक अस्तित्व के रूप तो हैं लेकिन दोनों, वस्तुओं के पार्श्व हैं, सारी भौतिकता के धारक हैं। दोनों शाश्वत और चिरंतन हैं।

न्यूटन के गति के नियमों ने आकाश में निरपेक्ष स्थिति (Absolute Position) की अवधारणा को समाप्त कर दिया। सापेक्षता के सामान्य सिद्धान्त ने निरपेक्ष काल से मुक्ति पा ली। फिर भी १९१५ से पहले, दिक्-काल को स्थिर एवं नियत कार्यक्षेत्र (Arena) माना जाता था, जिसमें घटनाएँ घटित होती रहती थीं, परंतु जो, अपने अंदर घटित घटनाओं से बिल्कुल प्रभावित नहीं होता था। यह बात सापेक्षता के विशिष्ट सिद्धान्त के साथ भी सही थी। न्यूटन के निरपेक्ष अवकाश (Absolute Space) की कल्पना को सर्वप्रथम विरोध किया गॉटफ्रीड लाइब्निट्स ने। (कैलक्युलस, गणित की इस महत्वपूर्ण शाखा को न्यूटन और लाइब्निट्स इन्होंने स्वतंत्र ढंग से विकसित किया था।)

- पिछली बातें छोड़ भी दी तो कम से कम न्यूटन के गतिशास्त्र के पार्श्व में तो इन्हें ऐसा माना ही नहीं जा सकता। न्यूटन का गतिशास्त्र पूरी तरह बल और उससे सम्बद्ध प्रवेग, बल प्रभावांतर्गत पिंड के आचरण का विज्ञान है। भले ही उसमें केवल जड़त्वीय संदर्भ चौखटों का रूप है लेकिन ये चौखटें भी बदलती रहने के लिए गुंजाइश है। न्यूटन के नियमों से यह निष्कर्ष निकलता है कि विराम अवस्था का कोई विशिष्ट मानक निश्चित नहीं किया जा सकता। फिर भी निरपेक्ष देश की संकल्पना के इस अभाव को न्यूटन ने

स्वीकार नहीं किया। चूंकि यह निरपेक्ष ईश्वर या परमब्रह्म के विचार के अनुकूल नहीं था। अरिस्टॉटल और न्यूटन दोनों, काल को भी निरपेक्ष मानते थे। काल, दिक् से पूर्णतः मुक्त और पृथक् माना जाता था। यह स्थिति विशिष्ट सापेक्षता के सिद्धान्त तक बनी रही।

- सापेक्षता सिद्धान्त में कोई भी विशिष्ट निरपेक्ष काल नहीं होता। बल्कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना व्यक्तिगत समय का माप होता है जो इस बात पर निर्भर होगा कि वह व्यक्ति कहा है और किस प्रकार से कार्यरत हैं। अब यह भी माना जाता है कि काल, दिक् से पूर्णतः पृथक् एवं स्वतंत्र इकाई नहीं है, अपितु दोनों मिलकर संयुक्त रूप से दिक्-काल बनाते हैं। सापेक्षता के सामान्य सिद्धान्त ने स्थिति एकदम बदल दी। अब दिक् - काल तटस्थ न होकर गतिशील, सक्रिय राशियाँ हैं। जब कोई पिंड चलता है, या कोई बल कार्य करता है तो वह दिक्-काल की वक्रता को प्रभावित करता है और बदले में दिक्-काल की संरचना पिंडों के चलने तथा बलों के कार्य करने की प्रणाली को प्रभावित करती है।
- मिन्कोवस्की का चतुर्आयामी विश्व -

आइन्स्टाइन के एक गुरु थे हर्मन मिन्कोवस्की। वास्तव में शुरू में उनका आइन्स्टाइन के प्रति प्रतिकूल मत था। लेकिन आइन्स्टाइन के सापेक्षता सिद्धान्त का मर्म उनके ध्यान में आ गया था। अब उनके अनुसार -वास्तव प्रसंगों की श्रृंखला केवल अवकाश या फिर केवल काल द्वारा दर्शायी नहीं जा सकेगी। विशिष्ट घटना अवकाश में कहा और कब घटित हुई इसको महत्व है। इस पार्श्वभूमि पर मिन्कोवस्की ने X, Y, Z ये तीन अवकाश के सहनिर्देशांक और t यह काल सहनिर्देशक ऐसे चतुर्मिति विश्व की कल्पना प्रस्तुत की। X, Y, Z, t अवकाश को उन्होंने 'वर्ल्ड' या 'विश्व' यह संज्ञा दी। इस विश्व के चल बिंदु के मार्ग को 'वर्ल्ड लाईन' या 'विश्वरेखा' नाम दिया। एक दिशा में गतिमान बिंदु की विश्वरेखा एक सीधी रेखा होती है। त्वरणशील बिंदु की विश्वरेखा मात्र वक्र होती है। इस चतुर्मिति विश्व की संकल्पना के आधार पर सापेक्षता की कई कठिन संकल्पनाओं को स्पष्ट किया जा सकता है।

पदार्थ चाहे सजीव हो या निर्जीव वह या तो स्थिर होगा या गतिमान। कोई पत्थर एक ही स्थान पर वर्षों पड़ा रहता है। पशु, पक्षी, मानव कभी स्थिर तो कभी चल अवस्था में रहते हैं। लेकिन इन सभी के लिए काल चलते ही रहता है। अर्थात् अवकाश और काल इनमें घटनाओं की श्रृंखला पदार्थों की गतिविधियों का इतिहास प्रदर्शित करती है। पदार्थ का अवकाश-काल निर्देशित

इतिहास यही ' वर्ल्ड लाईन है। इस संकल्पना का सर्वप्रथम उपयोग आइन्स्टाइन ने सापेक्षता सिद्धान्त में किया। लेकिन बाद में यह संकल्पना केवल सापेक्षता से ही जुड़ी नहीं रही। मानव की वर्ल्ड लाईन शुरू होती है उसके जन्म स्थान और जन्म के समय से और समाप्त होती है उसकी मृत्यु पर। वर्ल्ड लाईन का प्रत्येक बिंदु एक घटना प्रदर्शित करता है। अर्थात् वह पदार्थ से संबंधित काल और अवकाश में उसका स्थान और समय इनका निर्देशक है।

हायपर स्पेस -

एक मितीय विश्व यानि रेखा सदृश्य विश्व। इसमें लम्बाई केवल यही एक मिती होती है। इस विश्व के निरीक्षक के लिए द्विमितीय अवकाश हायपर स्पेस होगा। उसे केवल एकमितीय विश्व का ही ज्ञान होगा। हायपर स्पेस उसके लिए अज्ञात ही रहेगा। दाएं-बाएं प्रतल की वस्तुएं उसके लिए अज्ञात ही होंगी। यही बात आगे बढ़ाने पर, एक प्रतल याने द्विमितीय विश्व। इसके लिए त्रिमितीय विश्व हायपर स्पेस होगा। लेकिन इस विश्व के निरीक्षक को एकमितीय विश्व की घटनाओं का अन्तर्बाह्य ज्ञान होगा। हम त्रिमितीय विश्व में रहते हैं। लम्बाई, चौड़ाई और उंचाई यह, वह त्रिमिति है। इससे अधिक मितियों वाला विश्व हमारे लिए हायपर स्पेस है। सापेक्षता में लम्बाई, चौड़ाई, उंचाई और समय ऐसी चार मितियों का एकसाथ विचार किया जाता है। यह हमारे लिए हायपर स्पेस ही है। अभी तो वैज्ञानिक दस मितियाँ, अधिक समय की एक मिती, इनकी खोज कर रहे हैं। लेकिन विश्व निश्चित कितनी मितियों का बना है इसका अभी तो हमें बिल्कुल ही अंदाजा नहीं है।

आइन्स्टाइन का दिक्-काल-

आइन्स्टाइनने यह क्रांतिकारी सुझाव दिया कि गुरुत्व, दूसरे बलों के समान कोई बल नहीं है। बल्कि यह इस तथ्य का परिणाम है कि दिक्-काल सपाट(Flat) नहीं है जैसा कि पहले मान लिया गया था। इस संकल्पना के अनुसार पदार्थ एवं उसमें निहित ऊर्जा की उपस्थिति में दिक्-काल की ज्यामिती वक्र या विकृत हो जाती है। पृथ्वी जैसे पिंड गुरुत्वाकर्षण शक्ति द्वारा वक्र कक्षाओं पर चलने के लिए नहीं बने हैं। इसके स्थान पर वे एक वक्र आकाश में जिसे ज्याॅडेसिक (Geodesic) कहा जाता है, एक सीधे मार्ग के किसी निकटतम पथ का अनुसरण करते हैं। ज्याॅडेसिक किसी वक्र सतह पर दो बिंदुओं को जोड़ने वाली सबसे छोटी (या सबसे बड़ी) रेखा होती है। उदा. के लिए पृथ्वी की सतह मान लो, एक दो विमाओं वाला वक्र अवकाश है। पृथ्वी

पर एक ज्याँडेसिक एक बड़ा वृत्त कहलाता है और यह दो बिंदुओं के मध्य सबसे छोटा मार्ग होता है। ज्याँडेसिक किन्हीं दो हवाई अड्डों के बीच सबसे छोटा मार्ग होता है। इसी मार्ग पर, कोई वायुसेवा का मार्ग निर्देशक, पायलट से उड़ने के लिए कहेगा। अब किसी पर्वतीय धरातल के ऊपर उड़ते हुए वायुयान को देखते समय ऐसा लगेगा उसकी छाया दो विमाओं वाले धरातल पर वक्र मार्ग पर चल रही है। यद्यपि वह तीन विमाओं वाले आकाश में एक सीधी रेखा पर चल रहा है। उसी तरह सामान्य सापेक्षता में, पिंड चार विमाओं वाले दिक्-काल में सदैव सीधी रेखाओं का अनुसरण करते हैं, परंतु फिर भी वे हमारे तीन विमाओं वाले आकाश में हमें वक्र मार्गों पर चलते हुए दिखाई देते हैं।

सूर्य का द्रव्यमान, दिक्-काल इस प्रकार से वक्र कर देता है कि, हालांकि पृथ्वी चार विमाओं वाले दिक्-काल में बिल्कुल सीधे मार्ग का अनुसरण करती है, तब तीन विमाओं वाले आकाश में यह हमको, एक वृत्तीय कक्षा में चलती हुई दिखाई पड़ती है। वास्तव में सामान्य सापेक्षता द्वारा बतायी गयी ग्रहों की कक्षाएं ठीक वही हैं जैसा कि न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त ने बताया था। फिर भी बुध ग्रह के मामले में, जो सूर्य का निकटतम ग्रह होने के कारण सबसे अधिक सशक्त गुरुत्व बल से प्रभावित होता है और जिसकी कक्षा दीर्घित (Elongated) या लम्बोत्तर आकार की होती है। सामान्य सापेक्षता यह पूर्वानुमान प्रस्तुत करती है कि दीर्घवृत्त का लम्बा अक्ष सूर्य के चारों ओर दस हजार वर्षों में एक अंश के हिसाब से घूमना चाहिए। यद्यपि यह प्रभाव बहुत छोटा है फिर भी १९१५ के पहले इसे देख लिया गया था। इसने आइन्स्टाइन के सिद्धान्त की सर्वप्रथम पुष्टि की। हाल ही के वर्षों में न्यूटन के पूर्वानुमानों से अधिक, दूसरे ग्रहों की कक्षाओं में भी छोटा विचलन माप लिया गया है और उसे सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त के पूर्वानुमान के अनुरूप पाया गया है।

प्रकाश किरणों को भी दिक्-काल में ज्याँडेसिक्स का पालन करना चाहिए। फिर आकाश की ज्यामिती के वक्र होने का यह अर्थ निकलता है कि प्रकाश भी आकाश में सीधी रेखा में नहीं चलेगा। अतः सामान्य सापेक्षता ने यह पूर्वानुमान प्रस्तुत किया कि गुरुत्व क्षेत्र में प्रकाश मुड़ जाना चाहिए।

आइन्स्टाइन ने यह भी कहा कि पृथ्वी जैसा विशाल पिंड अंतरिक्ष और समय को अपने साथ, अपने रोटेशन के साथ खींचेगा। यह उसी प्रकार होगा जिस प्रकार एक स्पिन किया हुआ बॉल एक गाढ़े द्रव को स्पिन करता है। इस प्रभाव के अंतर्गत पृथ्वी के नजदीक के कृत्रिम उपग्रह अपनी कक्षा से थोड़े विचलित हो जाते हैं।

सीधा पथ और वक्र पृष्ठभाग

दो व्यक्ति जिनमें काफी दूरी है, विषुववृत्त से अपनी यात्रा, विषुववृत्त की लम्ब दिशा में, सीधी रेखा में शुरू करते हैं। लेकिन उनकी यात्रा का अन्त पृथ्वी के ध्रुव पर होता है। दोनों वहाँ एकत्र मिलते हैं। उन्हें लगता है कोई तो बल होना चाहिए जिसने उन्हें एकत्र लाया। हमने तो हमारी यात्रा एक दूसरे से समांतर दिशाओं में शुरू की थीं। वास्तव में कोई बल नहीं था। यह अंतराल की या पृथ्वी की सतह की वक्रता थी जिसने यह परिणाम दिया। वक्र पृष्ठभाग पर चल रहीं ऐसी सीधी रेखाओं को जिओडेसिक (Geodesic) कहते हैं।

पदार्थ के प्रक्षेप (Projection) और आयाम (Dimensions)

यह एक कागज पर निकाला हुआ घन (Cube) का चित्र है। यह मुझे एक घन जैसा लग रहा है लेकिन यह प्रत्यक्ष घन नहीं है। घन की व्याख्या होगी त्रिआयामी अंतराल जिसे छह समान चौरसों द्वारा बंद किया गया है। यह केवल त्रिआयामी घन का दो आयामों में चित्र है। प्रत्यक्ष घन को उस Projection से एक अधिक आयाम की आवश्यकता है।



Image credit: google images

एक गुब्बारे पर अगर एक चींटी कितनी भी चलती रही तो भी उसे कभी कोई किनारा या अन्त नहीं मिलेगा। गुब्बारा भले ही त्रिआयामी हो लेकिन चींटी दो आयामी प्रतल पर ही घूम रही है। किनारा ढूंढने के लिए उसे उस दो आयामी प्रतल से बाहर आना होगा। यही बात उपरोक्त क्यूब के लिए भी सत्य है। अब अगर त्रिआयामी अंतराल और अधिक काल की बात करें तो वह आयाम XYZ में नहीं होगा तो इन सबको 90° कोण करते हुए होगा।

उसी तरह सापेक्षता के सामान्य सिद्धांत में पृथ्वी, परिक्रमा करते समय चार आयामी अंतराल-काल में सीधी रेखा का ही अनुसरण करती है। लेकिन तुम जब उसको त्रिआयामी अंतराल

में देखते हो तो वह वक्र पथ पर घूमती हुई दिखती है। वास्तव में यह अंतराल-काल की वक्रता होती है।

भारी गोल के करीब के अंतरिक्ष का आकार एक भूमितीय आकृति होती है। इसे आभासी वलय (Pseudo-Sphere) कहते हैं।

काल (समय-Time)

अवकाश (space) क्या है यह तो हम जानते हैं। लेकिन काल वस्तुतः एक अमूर्त (Abstract) कल्पना है। हम इतना ही जानते हैं कि कालप्रवाह भूतकाल से वर्तमान और आगे भविष्य की ओर निरंतर बहता है। लेकिन हम हमारी ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से उसे अनुभूत नहीं कर सकते।

वास्तव में हम जो कालमापन करते हैं वह कृत्रिम रूप से हमने बनाई हुई व्यवस्था है। पृथ्वी का सूर्य के चारों ओर भ्रमण और दूसरा उसका अपने अक्ष के गिर्द परिवलन इनको आधार बनाकर हमने वर्ष और दिन ऐसे समय के विभाग बनाए हैं। आगे और भी विभाजन किया है। यह विभाजन पृथ्वी के लिए भले ही ठीक हो लेकिन दूसरे आकाशीय पिंड जैसे ग्रह बृहस्पति, के लिए निरर्थक है। क्योंकि बृहस्पति का दिन तो १० घंटे का ही है, तो साल की लम्बाई हमारे १२ वर्ष इतनी है।

काल का सापेक्षत्व --

प्रथम बात तो, यहाँ हम प्रकाश की गति के स्तर पर सोच रहे हैं। हमें अंतर या दूरियाँ उसी अनुपात में लेनी हों। समझो इस विशाल ब्रह्माण्ड में एक लम्बी रेलगाड़ी स्थिर गति से दौड़ रही है, गति में बिना कोई परिवर्तन हुए। रेल की लम्बाई ४८ लाख कि.मी. तो गति १.८ लाख कि.मी. / सेकंड है। मैं गाड़ी के मध्य बिंदु पर बैठा हूँ और मेरे हाथ में एक बटन है जिससे मैं एक बल्ब जला-बुझा सकता हूँ। इस बल्ब के प्रकाश से रेल के सबसे अगले और पिछले डिब्बों के दरवाजे एक स्वयंचलित यंत्र द्वारा खुल जाते हैं। रेल एक स्टेशन के प्लेटफॉर्म के सामने से गुजर रही है। प्लेटफॉर्म पर मेरा सहायक खड़ा है। उसके सामने से गुजरते समय मैंने बल्ब जला दिया अब माइकलसन के प्रयोगानुसार प्रकाश की गति गाड़ी सापेक्ष सभी दिशाओं में समान

अर्थात् ३ लाख कि.मी. / सेकंड होगी। प्रकाश दोनों छोर के डिब्बों तक $24 / 3 = 8$ सेकंड में पहुँचेगा और 8 सेकंड बाद दोनों दरवाजे खुलेंगे। मेरा निरीक्षण यह होगा कि दोनों एकसाथ खुले।

अब मेरा जो सहायक प्लेटफॉर्म पर खड़ा है उसे क्या अनुभव होगा ? उसके लिए भी प्रकाश की गति ३ लाख कि.मी. / से. ही होगी। लेकिन- * >

१.८ लाख कि.मी. — ३ लाख कि.मी. <> — १.८ लाख कि.मी. > गतियाँ प्रति सेकंड

आखरी डिब्बा प्रकाश स्रोत की तरफ गति कर रहा है, १.८ लाख कि.मी. / से. वेग से और प्रकाश पहुँच रहा है उसकी तरफ ३ लाख कि.मी./ से. वेग से। प्रकाश का स्रोत और डिब्बा इनके बीच का अंतर प्रति सेकंड $3 + 1.8 = 4.8$ लाख कि.मी. / से. कम हो रहा है। अतः प्रकाश आखरी डिब्बे तक $24 / 4.8 = 5$ सेकंड में पहुँचेगा।

इससे उलट शुरू का डिब्बा और प्रकाश एक ही दिशा में चल रहे हैं। कमशः १.८ और ३ लाख कि.मी. प्रति सेकंड गतियों से। अर्थात् एक सेकंड में प्रकाश डिब्बे की ओर ३ लाख कि.मी. जाएगा लेकिन तबतक डिब्बा १.८ लाख कि.मी. आगे खिसक जाएगा। अर्थात् प्रकाश और डिब्बा इनके बीच की दूरी केवल $3 - 1.8 = 1.2$ लाख कि. मी. ही कम होगी। अर्थात् प्रकाश को प्रथम डिब्बे तक पहुँचने $24/1.2 = 20$ सेकंड लगेंगे। इस तरह प्लेटफॉर्म पर खड़े सहायक के अनुसार आखरी डिब्बे का दरवाजा ५ सेकंड बाद खुला तो पहले डिब्बे का २० सेकंड बाद। दोनों दरवाजे खुलने में १५ सेकंड का अंतर आ गया। दोनों दरवाजे खुलने की घटना मेरे लिए एक ही क्षण घटित हुई तो दूसरे प्रेक्षक के लिए १५ सेकंड के अंतर से। इसका अर्थ हुआ एक प्रेक्षक के लिए समय का अंतर शून्य है तो दूसरे के लिए १५ सेकंड।

हमारे व्यवहार-ज्ञान के लिए यह बात अनहोनी है लेकिन इसका कारण है इतनी भयंकर गतियों से हमारा सामना नहीं होता। आजतक हम समझते थे कि काल निरपेक्ष है। अर्थात् एक विशिष्ट क्षण से काल शुरू हुआ तो हर स्थिति में हर स्थान पर १५ सेकंड ही बिते होंगे। यहाँ हम देख रहे हैं कि हमारी निरीक्षण चौखट या मापतंत्र भिन्न होने पर व्यतीत काल की अवधि भिन्न हो सकती है। अतः काल का व्यतीत होना या क्रमण निरपेक्ष नहीं तो सापेक्ष है। अनुमान प्रयोगों के परिणामों से पूरी तरह मेल खाता है।

तो क्या हमारा पूर्व ज्ञान व्यर्थ सिद्ध हुआ ? बिल्कुल नहीं। हमारे ज्ञान की मर्यादाएं विस्तृत हुईं। लेकिन क्या दोनों घटनाएँ एक ही क्षण घटित हुईं ? लेकिन यह प्रश्न उतना ही निरर्थक है जैसा हाथी का स्वरूप चार अंधे अलग-अलग वर्णन करते हैं।

अतः काल यह निरपेक्ष कल्पना नहीं तो सापेक्ष है और उसके लिए निरीक्षण की चौखट या मापतंत्र का उल्लेख आवश्यक है। संक्षेप में एक व्यक्ति के लिए जो प्रसंगों का समकालित्व है या एक समयावच्छेद ढंग से घटित होने वाले प्रसंग हैं वे अन्य संदर्भ चौखट के निरीक्षक के लिए भी हो यह आवश्यक नहीं। प्रसंगों का समकालित्व सापेक्ष होता है।

कालमंदत्व (Time Dilation)

उसी तरह इसी उदाहरण में यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि गाड़ी के अंदर बैठे व्यक्ति के लिए बिता समय छोटा होता जाएगा। जबकि प्लैटफॉर्म पर खड़े व्यक्ति के लिए वह एक जैसा ही स्थिर रहेगा। जैसी-जैसी गाड़ी की गति बढ़ती जाएगी वैसे-वैसे गाड़ी के अंदर समय अधिकाधिक धीमा होता जाएगा। कल्पना किजिये कि अपनी गाड़ी गोल मार्ग से यात्रा कर रही है। सीधी रेखा में नहीं। अर्थात् कुछ समय बाद वह उस स्थान पर वापस लौटेगी जहां से सफर पर निकली थी। सफर के दरम्यान अंदर के व्यक्ति को लगेगा कि उसकी घड़ी पीछे जा रही है। गाड़ी की गति जैसी-जैसी बढ़ेगी उसकी घड़ी उसी अनुपात में धीमी गति चले से चलेगी। दरम्यान स्टेशन मास्टर की दृष्टि से कई साल बीते होंगे। वह बुढ़ा हो गया होगा। गाड़ी के अंदर के यात्री के लिए कम समय व्यतीत हुआ होगा। जब यह गाड़ी कुछ दिन बाद अपने मूल स्थानक पर लौटेगी तो गाड़ी का यात्री देखेगा कि वह स्टेशनमास्टर की तुलना में वह युवा बना हुआ है। यहाँ तुलना दो घड़ियों की हो रही है। एक गाड़ी के अंदर की तो दूसरी स्टेशन पर लगी स्थिर घड़ी। एक अजडत्वीय संदर्भ चौखट की है तो दूसरी जडत्वीय चौखट की।

- काल मंदत्व को हॅफेल और किटिंग इन्होंने १९७१ में प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा सिद्ध करने का प्रयत्न किया। आण्विक घड़ियाँ एकदम सटीक होती हैं। हजारों वर्षों में उनमें सेकंड का भी अंतर नहीं आता। वैज्ञानिक द्वय ने एक सिङ्गीयम ऑटोमॅटिक घड़ी वाशिंगटन में संदर्भ के रूप स्थापित की। उसी तरह एक घड़ी पूर्व से पश्चिम की ओर यात्रा करने वाले तथा दूसरी पश्चिम से पूर्व की ओर यात्रा करने वाले हवाई जहाजों में रखीं। पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर प्रति सेकंड ४६५ मीटर इस गति से परिवर्तन करती है। (वह २४ घंटे में ४०,००० कि.मी. अंतर तय करती है।) प्रकाश गति की तुलना में ४६५ मी. / से. बहुत कम होने पर भी वह लक्षणीय तो है ही। सापेक्षता का कालवृद्धिसूत्र - $T = T_0 / \sqrt{1 - v^2/c^2}$ प्रत्यक्ष प्रयोग में मिले निष्कर्ष - पश्चिम से पूर्व की ओर जाने वाली घड़ी ने 59 +/- 10 नॅनो सेकंड गंवाए तो पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाली घड़ी ने 273 +/- 7 नॅनो सेकंड

कमाएं। गणित के आधार पर निकाले निष्कर्ष और प्रत्यक्ष प्रयोग में प्राप्त आंकड़े लगभग समान हैं। इसका अर्थ साफ है, त्वरणशील घड़ी में काल वास्तव में मंद होता है। सापेक्षता सिद्धान्त के इस दावे पर सामान्य आदमी का विश्वास बैठना इतना आसान नहीं। फिर भी वह है तो सिद्ध हुई वास्तवता।

समय उस उपकरण, जो समय का मापन कर रहा है, की गति के अनुसार परिवर्तित होता है। इसके प्रति किया हुआ एक और प्रयोग -

एक अत्यंत परिशुद्ध परमाण्विक घड़ी अंतरिक्षयान उड़ान संख्या STS 61 A के साथ अंतरिक्ष में भेजी गयी थी। उसने प्रत्येक सेकंड की उड़ान में 0.000,000,000,295 सेकंड का धीमापन दर्ज किया और यह विचलन सापेक्षता सिद्धान्त के सूत्र के आधार पर की गयी गणना के साथ पूरी तरह मेल खाते हुए पाया गया। समझो स्पेस शटल का मिशन 10 दिन या 864,000 सेकंड का है तो समय 0.000,255 या 255 मिली सेकंड से धीमा हो जाएगा और इतने समय से अंतरिक्ष यात्री, पृथ्वी पर वापसी में, पृथ्वी के किसी व्यक्ति की तुलना में युवा रहेगा।

निष्कर्ष यह कि गतिमान संदर्भ चौखट में काल प्रवाह धीमी गति से चलता है। मान लो, संदर्भ चौखट प्रकाश इतनी गति से ही गतिमान है तो उसमें काल प्रवाह रुक जाएगा। यहाँ काल प्रवाह यह संकल्पना निरर्थक होगी।

परिवलनशील चौखट : कालगति -

मान लो, ' s ' इस जडत्वीय चौखट के संदर्भ में ' S1 ' चौखट परिवलन कर रही है। केंद्र के गिर्द अपने स्वयं के प्रतल में परिवलन करने वाली तश्तरी यह इस 'S1' चौखट का उदाहरण हो सकता है। इस तश्तरी के, बराबर केंद्र पर एक और परिधि पर एक, ऐसी दो घड़ियाँ रखी हैं। परिवलन करने वाली चौखट जडत्वीय नहीं होती। तश्तरी के केंद्र पर रखी घड़ी पर कार्य करने वाला कोई भी बल नहीं होगा। लेकिन त्रिज्या की दिशा में जैसा-जैसा केंद्र से दूर जाना होगा, वैसा केंद्र की दिशा में कार्यरत बल बढ़ते जाएगा। इस बल को केंद्रगामी (Centripetal Force) ऐसा नाम है। परिधि पर जो घड़ी है उसपर उच्चतम केंद्रगामी बल कार्य करेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि घड़ी पर उच्चतम त्वरण कार्य करेगा। व्यापक सापेक्षता की भाषा में त्वरण और गुरुत्वाकर्षण ये समानार्थी हैं। इस कारण परिधि पर रखी घड़ी में महत्तम काल मंदत्व होगा।

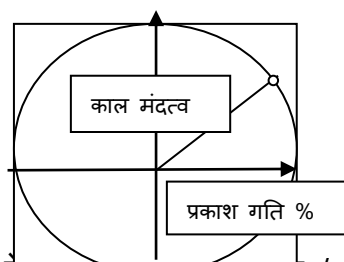
केंद्र पर रखी घड़ी में केंद्रगामी बल और उस कारण पैदा होने वाला त्वरण शून्य होगा। इस कारण शुरू में यह घड़ी 'S' चौखट की घड़ी के साथ समकालिक हो तो वे दो घड़ियाँ एक ही काल प्रदर्शित करेगी। परिधि की घड़ी शुरू में समकालिक की हो, तो भी अन्य दो घड़ियों की तुलना में मंद गति से चलेगी।

अब मान लो, तश्तरी के केंद्र के पास एक निरीक्षक है और तश्तरी का परिवलन शुरू होने के पूर्व केंद्र के पास की घड़ी और परिधि पर रखी घड़ी समकालिक की और परिवलन शुरू होने पर उस घड़ी में काल मंदत्व पैदा होने की बात, केंद्र के पास बैठे निरीक्षक के देखने में आएगी। इन दो घड़ियों के बीच में कोई घड़ी रखी तो उसमें पैदा होने वाला काल मंदत्व परिधि की घड़ी की तुलना में कम होगा चूंकि इस घड़ी पर कार्य करने वाला बल और त्वरण परिधि पर कार्यरत बल और त्वरण से कम होगा।

अर्थात् आमतौर पर यह कहा जा सकता है कि त्वरण रहित घड़ी के संदर्भ में त्वरणशील घड़ी का समय मंद गति से आगे बढ़ता है। जितना त्वरण अधिक उतना काल मंदत्व अधिक। लेकिन त्वरण और गुरुत्वाकर्षण ये समानार्थी होने से जितना गुरुत्वाकर्षण अधिक उतना काल मंदत्व अधिक ।

काल मंदत्व

वस्तु की गति (प्रकाश गति का प्रतिशत) और काल मंदत्व इनके बीच का संबंध सरल रेखा का नहीं तो वक्ररेखा, इतना ही नहीं तो वह एक वर्तुल है। महत्वपूर्ण है उस बिंदु का केंद्र से अंतर जो एक स्थिरांक है। यह ब्रह्माण्ड का मूलभूत स्थिरांक है। कालम मंदत्व त्वरण के दरम्यान ही होता है।



समय की गति भारी पिंड के त्वरण = गति / अंतर / समय ; या समय = अंतर / गति। यहाँ प्रकाशगति स्थिर है।

सीधे पथ की तुलना वक्रपथ लम्बा होता है। उसे पार करने अधिक समय लगेगा अर्थात् तुलनात्मक दृष्टि से समय मंद हो गया। उपरोक्त शर्तें कायम रखने, समय को धीमा चलना

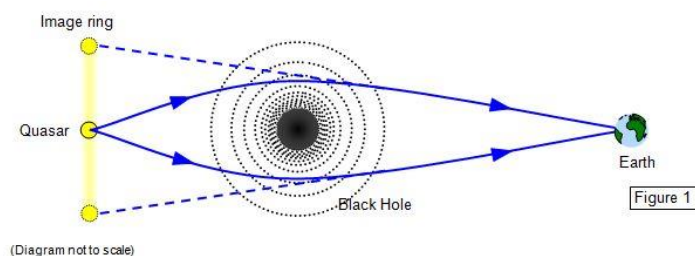
होगा। इसी कारण कहीं-कहीं यह कहा जाता है कि अंतरिक्ष के साथ-साथ समय भी विचलित (distort) हो जाता है।

सभी सापेक्षिकीय परिणाम ये संदर्भ चौखटों के तौलनिक होते हैं। इसमें समय का मंदीकरण भी शामिल है। समझो आप एक संदर्भ चौखट में खड़े हैं। वहाँ से एक वस्तु का प्रेषण कर रहे हैं। वस्तु, प्रकाश गति की तौलनिक गति से आगे बढ़ रही है। इसी संदर्भ चौखट से जब तुम देखेंगे तो वस्तु से जुड़ी घड़ी मंद होती हुई दिखेगी। प्रत्यक्ष में उस घड़ी की गति कम नहीं हुई है। केवल यह कहना कि कण, प्रकाश गति इतनी गति से भ्रमण कर रहा है, निरर्थक है। चूंकि उसकी गति का किसी विशिष्ट संदर्भ चौखट से निरीक्षण करने पर ही कुछ अर्थ है। अन्यथा उसकी अपनी संदर्भ चौखट से तो उसकी गति हमेशा शून्य है और निरीक्षक अपनी संदर्भ चौखट के साथ विरुद्ध दिशा में जा रहा है।

- काल एक प्रवाह है। घड़ी, संदर्भ चौखट में इस गति से चलती, अर्थात् एक सेकंड, प्रति सेकंड। गुरुत्व क्षेत्र में भी यही प्रतिमान होता है। लेकिन यहां सेकंड ही लंबा होता है। आप अगर उस गुरुत्व क्षेत्र में उपस्थित हैं, तो आप कुछ भी बदलाव अनुभव नहीं करेंगे चूंकि आपके लिए भी सेकंड उतना ही लम्बा होगा। आपके लिए फिर भी एक सेकंड प्रति सेकंड ही रहेगा।
- समझो आप और घड़ी, अंतरिक्ष में प्रकाश की तौलनिक गति से यात्रा कर रहे हैं। घड़ी की दृष्टि से आप मंद गति से जा रहे हैं तो आप की दृष्टि से घड़ी मंद चल रही है। लेकिन यान के बाहर अगर कोई व्यक्ति होगा तो उसे घड़ी सामान्य गति से ही चलती हुई दिखेगी।
- हमारा समय का गणित यह हमारा सृजन है। उसका समय के वास्तव अस्तित्व से कोई लेना-देना नहीं।

ग्रेविटेशनल लेन्सिंग

लेन्स प्रकाश की दिशा बदलता है। लेकिन हमारे दिमाग में प्रकाशकिरण सीधी रेखा में बढ़ती हुई दिखती है। इस कारण आभासी प्रतिमाएं बनती हैं। शक्तिशाली लेन्सिंग में कई प्रतिमाएं बनती हैं।



(गूगल सौजन्य से)

काल - यात्रा

वर्ष १८९५ में एक उपन्यास आया था 'द टाइम मशीन'। देखते-देखते यह विषय कहानी-उपन्यासों का चहेता विषय बन गया। काफी लम्बे समय तक यह विज्ञान-कथा लेखकों का ही क्षेत्र बना रहा। लेकिन धीरे-धीरे शुद्ध भौतिकी के अन्वेषकों ने भी इसमें दखल देना शुरू किया। परिणाम यह हुआ कि नये-नये लेकिन चित्र-विचित्र सिद्धान्त गणितीय भाषा में सामने आने लगे। इनके साथ कई विरोधाभास भी।

काल-यात्रा वर्तमान से भूतकाल में या फिर भविष्य में की जा सकती है ऐसी कल्पना है। लेकिन इस कल्पना से जुड़ा एक विरोधाभास काफी प्रसिद्ध हुआ 'ग्रैंड पॅरेड पॅरेडॉक्स'। मान लो, एक व्यक्ति वर्तमान से भूतकाल की यात्रा पर निकली। यात्रा करते-करते वह एक ऐसे समय बिंदु पर आ पहुँची, जब उसके दादा अपनी जवानी में थे। अब वह और उसके दादा आमने-सामने हैं। उनमें किसी बात पर हुए विवाद के परिणाम स्वरूप वह दादा की हत्या कर देता है। अभी उसके पिता का जन्म होने का ही है। बहुत बड़ी दुरावस्था पैदा होगी। विज्ञान के कार्य-कारण इस मूलभूत सिद्धान्त के सामने प्रश्नचिन्ह खड़ा होगा। लेकिन विज्ञान का यह भी एक तत्व है कि कोई भी भौतिक प्रणाली अपने आप के लिए सुसंगत (Self consistent) होनी चाहिए। अर्थात् काल-यात्रा के लिए निकली व्यक्ति भूतकाल में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकती। भूतकाल अपरिवर्तनीय है। फिर सवाल पैदा होता है कि क्या भूतकाल के समान भविष्यकाल भी अपरिवर्तनीय है ? ऐसा हुआ तो मानवी मुक्त इच्छा शक्ति का कोई अर्थ ही नहीं रहेगा। आध्यात्मिक भाषा जैसा हर एक का प्राक्तन पूर्व निर्धारित होगा।

कालयंत्र की कल्पना आइन्स्टाइन के सापेक्षता सिद्धान्त पर आधारित है। जिस यंत्र ने कालयात्रा की अवस्था प्राप्त कर ली है उसे कालयंत्र या 'टाईम मशीन' कहते हैं। सापेक्षता सिद्धान्त में कृमि विवर का उल्लेख आता है। एक कल्पना यह है कि इस कृमि विवर का उपयोग, टाईम मशीन जैसा हो सकता है। लेकिन ये सारी संकल्पनाएं तो अभी कल्पनाएँ ही हैं। उनका वास्तवता में उतरना संभव होगा या नहीं यह बताना मुश्किल है।

पिंड की गति और आयाम

हम फिर हमारी पीछे उल्लेखित रेल की सफर पर निकलेंगे। प्लॅटफॉर्म की लम्बाई १८ लाख कि.मी. है। उसके सामने से गाड़ी धड़धडाती गुजर रही है, १.८ लाख कि.मी./ सेकंड गति से। हम गाड़ी में बैठे हैं। स्टेशन की घड़ी के अनुसार गाड़ी को प्लॅटफॉर्म पार करने $18 / 1.8 = 10$ सेकंड लगेंगे। पीछे की गयी गणनाओं की तरह ही, की गयी गणनाओं के आधार पर गाड़ी में बैठे व्यक्ति के हिसाब से यह समय आठ सेकंड होगा। वह कहेगा प्लॅटफॉर्म की लम्बाई $1.8 \times 8 = 14.4$ लाख कि.मी. है। अर्थात् प्लॅटफॉर्म के, सापेक्ष विरामावस्था में होने वाली निरीक्षण चौखट की दृष्टि से प्लॅटफॉर्म की लम्बाई अधिक है। गतिमान चौखट के हिसाब से आने वाली लम्बाई की तुलना में अधिक है। अर्थात् सभी चल पदार्थ गति की दिशा में आकुंचित होते हुए से दिखते हैं।

उपरोक्त उदाहरण में यह आसानी से माना जा सकता है कि गाड़ी स्थिर है और प्लॅटफॉर्म उसी गति से भाग रहा है। तो फिर गाड़ी में बैठे व्यक्ति को प्लॅटफॉर्म कैसा दिखेगा और प्लॅटफॉर्म पर खड़े व्यक्ति को गाड़ी कैसी दिखेगी ? गाड़ी में बैठे व्यक्ति को प्लॅटफॉर्म छोटा दिखेगा तो प्लॅटफॉर्म पर खड़े व्यक्ति को गाड़ी छोटी दिखेगी। वास्तव में वस्तुस्थिति के, ये दो भिन्न-भिन्न जगहों से लिये फोटो हैं।

तात्त्विक दृष्टि से प्रकाश की गति की ५० %, गति पर होने वाला दृश्य आकुंचन १३.५ % होगा। हमारा संपर्क जिन गतियों से होता है उन गतियों पर यह परिणाम नगण्य है। लेकिन यह पारंपरिक अर्थ में दृष्टिभ्रम नहीं है। पदार्थ की वास्तविक लम्बाई, चौड़ाई उस पदार्थ की सापेक्ष विरामावस्थाओं की चौखट में जो दिखेगी वही होगी।

परिवलन चौखट -

पीछे हमने परिवलनरत तश्तरी में कालगति देखी। तश्तरी की स्थिर अवस्था में उसकी परिधि, व्यास का फूट पट्टी से मापन कर π की कीमत निकाली। अब तश्तरी परिवलन करने लगी। परिवलन करने वाली तश्तरी अजडत्वीय चौखट है। उसपर स्थित प्रत्येक वस्तु पर केंद्रगामी बल कार्य करता है। अर्थात् मर्यादित सापेक्षता के नियम यहाँ लागू नहीं किए जा सकते। मान लो, ऐसी तश्तरी पर उपस्थित निरीक्षक ने तश्तरी की परिधि और व्यास गिना तो व्यास की कीमत में तो कोई अंतर नहीं दिखेगा चूंकि तश्तरी का व्यास परिधि की लम्ब दिशा में परिवलन कर रहा है। लेकिन निरीक्षक ने परिधि का मापन करने फूट पट्टी परिधि पर रखी कि फूट पट्टी आकुंचित होगी। क्योंकि परिधि की स्पर्शरेखा में फूट पट्टी को भी गति प्राप्त होगी। इस आकुंचित फूट पट्टी द्वारा मापन की गयी तश्तरी की परिधि की कीमत स्थिर अवस्था की कीमत से अधिक आएगी। लेकिन व्यास की कीमत में कोई फर्क नहीं होगा। अर्थात् परिधि, π और व्यास इनके गुना से अधिक होगी। परिवलनशील तश्तरी पर मापन करने से π (पाय) इस गुणोत्तर की कीमत ३.१४१६५९ से अर्थात् पारंपरिक कीमत से अधिक होगी।

गोलाकृति और घड़े की जीन सदृश्य प्रतल, नॉन युक्लिडियन प्रतल हैं। उन्हें युक्लिडियन ज्यामिती के नियम नहीं लगाए जा सकते। जीन के संदर्भ में लंबगोलाकार वृत्त बनाकर उसकी परिधि और व्यास के मापन के उपरांत आनेवाली π की कीमत कम आएगी तो गोलाकृति प्रतल के लिए π की कीमत में वृद्धि होती है।

वस्तुमान

- न्यूटन की गतिकी के अनुसार पदार्थ स्थिर हो या गतिमान और वह भी चाहे कितनी भी गति से, उसका वस्तुमान स्थिर रहता है।
- लेकिन मेरी / पेरी क्यूरी ने रेडियम पर अनुसंधान के समय घोषित किया कि रेडिओ सक्रिय मूलद्रव्य से निकलने वाले इलेक्ट्रॉन्स १०००० मील प्रति सेकंड गति से यात्रा करते हैं। पहले इतनी अधिक गति से मनुष्य परिचित ही नहीं था।
- १९०१ में काफमन ने दिखा दिया कि इस तरह तेजी से बढ़ते इलेक्ट्रॉन्स के वस्तुमान में फर्क होता है और वह गति पर निर्भर है।
- अब हम एक स्थिर वस्तु लेंगे और उसपर बल का, लगातार और काफी समय तक, प्रयोग करते रहेंगे। शुरू में वस्तु हिलेगी और धीरे-धीरे उसकी गति बढ़ती जाएगी या प्रवेग उत्पन्न होगा और वस्तु लगातार प्रवेग के प्रभावांतर्गत रहेगी। तात्विक दृष्टि से यह किसी

भी मर्यादा तक हो सकता है। यहाँ हम यह मानकर चल रहे हैं कि घर्षण जैसी प्रतिरोधक प्रेरणा का अभाव है। काफी समय बाद ऐसा क्षण आ सकता है कि वस्तु की गति प्रकाश की गति को पार करे। लेकिन यह असंभव है। इसका अर्थ यह हुआ कि जैसी-जैसी गति बढ़ती जाएगी वैसी प्रवेग की मात्रा क्रमशः घटती जाएगी। यह घट इस ढंग से होनी चाहिए कि वस्तु की गति, प्रकाशगति की बराबरी पर पहुँचने से रहे। लेकिन बल प्रयोग तो बराबर हो रहा है।

निश्चित बल के प्रयोग से उत्पन्न होने वाला त्वरण वस्तु के द्रव्यमान के व्युत्क्रमानुपात (Inversely Proportional) में होता है। भारी वस्तु में उतने ही बल से कम त्वरण उत्पन्न होगा। यहाँ कार्यरत बल की मात्रा बनी हुई है। त्वरण की मात्रा घटती जा रही है। या कहिए, वस्तु को अधिक गति से भगाना क्रमशः कठिन होता जा रहा है। तो अर्थ साफ है, इस प्रक्रिया में वस्तु का द्रव्यमान बढ़ता जा रहा है। आइन्स्टाइन ने यह वृद्धि निम्न संबंधों के रूप में प्रस्तुत की $-M = m / \sqrt{(1-v^2)}$

m = वस्तु का स्थिरावस्था वस्तुमान, अर्थात् जब $v = 0$ | v की कीमत जब प्रकाशगति के अधिकाधिक पास पहुँचेगी उपरोक्त अपूर्णाक का छेदक छोटा होता जाएगा और M की कीमत में वृद्धि होती जाएगी।

आज प्रवेगकों (Accelerator) में प्रकाश गति से केवल ३० कि.मी. कम इतनी गति पर भ्रमणरत इलेक्ट्रॉन्स प्राप्त किये जा सकते हैं। साथ में इलेक्ट्रॉन के द्रव्यमान में होने वाला फर्क दर्ज करना भी संभव हुआ है। इस आधार पर उपरोक्त बात की पुष्टि संभव है।

गणनाओं के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि गतिमान वस्तु की लम्बाई जितनी कम होगी उसी अनुपात में उसका द्रव्यमान बढ़ेगा। प्रति सेकंड १.८ लाख कि.मी. गति से यात्रा कर रही गाड़ी का वस्तुमान, उसकी विरामावस्था द्रव्यमान की तुलना में १०/८ गुना होगा जबकि लम्बाई ८ / १० गुना होगी। प्रकाश गति पर उसका द्रव्यमान और ऊर्जा दोनों अनंत हो जाएंगे। जब गति बहुत कम होगी तो द्रव्यमान में होने वाला फर्क नगण्य होगा और न्यूटन के नियमों की वैधता बनी रहेगी। लेकिन आइन्स्टाइन के सिद्धान्त के अनुसार भौतिक वस्तु का द्रव्यमान यह सापेक्ष गुण है और वह उसकी गति पर निर्भर है। मोटे तौर पर वस्तु का द्रव्यमान एक ग्रॅम बढ़ाने के लिए कोई ढाई करोड़ कि. वॅट इतनी ऊर्जा प्रदान करनी होगी।

मान लो, कोई इलेक्ट्रॉन पृथ्वी और चंद्र के बीच यात्रा कर रहा है। उसका कोई निरपेक्ष द्रव्यमान नहीं होगा। उसके कई सापेक्ष द्रव्यमान होंगे। जैसे १) चंद्रमा के सापेक्ष २) पृथ्वी के सापेक्ष ३) किसी अन्य इलेक्ट्रॉन के सापेक्ष। आदि

अल्प गति पर वस्तुमान में वृद्धि देनेवाला सूत्र होगा - $M = m + \frac{1}{2} mv^2$ | मानो, $v = 0.0001$ (प्रकाशगति एक इकाई) चूंकि $1 / \sqrt{1-v^2}$ की कीमत होगी $1 + v^2 / 2$ | अर्थात् लगभग एक ही।

प्रकाश और वस्तुमान--

- प्रकाश को वस्तुमान नहीं है | लेकिन प्रकाश यह फोटॉन कणों का प्रवाह है। फोटॉन कणों में ऊर्जा है। तो फिर $E = mc^2$ इस सूत्र के अनुसार उन्हें वस्तुमान होना चाहिए।
- उसी तरह फोटॉन में संवेग है | संवेग का अर्थ है गति और वस्तुमान इनका गुण। उपरोक्त वस्तुमान का विचार सापेक्षता के संदर्भ में हो रहा है। इस कारण इसे सापेक्षिक वस्तुमान कहेंगे। अर्थात् गति के अनुसार बदलने वाली ऊर्जा। पारंपरिक अर्थ में या न्यूटोनियन अर्थवाला वस्तुमान यह नहीं है चूंकि इस अर्थ में वस्तुमान यह न बदलने वाला पदार्थ का गुण है। फोटॉन के लिए इसकी कीमत शून्य है। आइन्स्टाइन के सूत्र के कारण ही हम ऊर्जा और वस्तुमान इन्हें समानार्थी मानते हैं। अतः जब इस सूत्र का उपयोग करना है तभी हम इन्हें समानार्थी मानेंगे अन्यथा इन्हें अलग-अलग ही मानेंगे। तब वस्तुमान और गति इनका सीधा संबंध नहीं आएगा।

स्थिरावस्था वस्तुमान (Rest Mass)

प्रकाश यह फोटॉन कणों का बना हुआ है। लेकिन उनकी गति प्रकाश गति बराबर होने पर भी उनका ' रेस्ट मास ' शून्य है ऐसा कहा जाता है। आइन्स्टाइन के ही $E = mc^2$ सूत्र के अनुसार उसकी ऊर्जा भी शून्य होनी चाहिए लेकिन ऐसा नहीं है।

मर्यादित सापेक्षता के अनुसार मूलभूत कणों की ऊर्जा $= E^2 = c^2 p^2 + m_0^2 c^4$ ($E =$ कणों की ऊर्जा, $p =$ कणों का संवेग, $m_0 =$ कणों का रेस्ट मास, $c =$ प्रकाश गति)। इस सूत्र में फोटॉन कणों के लिए $m_0 = 0$ डालने पर $E^2 = c^2 p^2$ या $E = cp$ |

अर्थात् फोटॉन का रेस्ट मास शून्य होने पर भी उसमें ऊर्जा होती है चूंकि उसका संवेग शून्य नहीं होता। अर्थात् प्रकाश की गति से गतिमान तथा शून्य रेस्ट मास वाले कण में

मर्यादित ऊर्जा होती है। वस्तुतः ' रेस्ट मास ' यह शब्द प्रकाश के संदर्भ में गलत संदेश देने वाली संकल्पना है चूंकि ऐसी कोई भी संदर्भ चौखट नहीं है, जिसमें फोटॉन स्थिरावस्था में रह सकेगा। हम रेस्ट मास का अर्थ अंतर्गत ऊर्जा ऐसा करते हैं। इस कारण शून्य रेस्टमास वाले कणों की अंतर्गत ऊर्जा भी शून्य ही होगी। अर्थात् जो होगी वह बाह्य ऊर्जा होगी। यह ऊर्जा उसे प्रकाशगति से गतिमान होने के कारण प्राप्त होती है।

जहां तक अन्य मूलभूत कणों की बात है, रेस्ट मास यह उस विशिष्ट मूलभूत कण का अपना गुणधर्म है। इसमें बदलाव का अर्थ उस कण के स्थान पर नए कण का उद्भव।

रेस्ट - मास - एनर्जी

पदार्थ गतिमान होता है तब उसे गतिजन्य ऊर्जा प्राप्त होती है।

पदार्थ भ्रूषु से कुछ उंचाई पर हो तो उसमें स्थितिजन्य ऊर्जा होती है।

ये पदार्थ की बाह्य ऊर्जाएं हैं।

पदार्थ स्थिर होता है तब भी उसमें अंतर्गत ऊर्जा होती है। इसे रेस्ट मास एनर्जी कहते हैं। सापेक्षता के अनुसार पदार्थ का स्थिर अवस्था का वस्तुमान यही उसकी अंतर्गत ऊर्जा है। वह निम्न प्रकार की हो सकती है -

- १) पदार्थ द्वारा उष्मीय ऊर्जा सोख लेने पर या उत्सर्जित करने पर अंतर्भाग में होने वाली अणुओं की हलचल।
- २) रासायनिक प्रक्रिया के कारण अणु में बदलने वाली स्थितिजन्य ऊर्जा।
- ३) अणु ने प्रारण शोषित कर लेने के बाद वह उत्तेजित अवस्था में पहुंचता है और प्रारण उत्सर्जित करने के बाद मूल ऊर्जा अवस्था में लौट आता है। ऐसे समय आण्विक स्थितिजन्य ऊर्जा पैदा होती है।
- ४) आण्विक प्रक्रिया के कारण बदलने वाली अणुकेन्द्रीय स्थितिजन्य ऊर्जा।
- ५) पदार्थ के मूलभूत कण, सर्वाधिक अंतर्गत ऊर्जा पैदा करते हैं।

पदार्थ की अंतर्गत ऊर्जा लगातार बदलती रहती है। अतः पदार्थ का स्थिर वस्तुमान अचल नहीं रहता। पदार्थ में बाहर से अंदर ऊर्जा का शोषण न हुआ या पदार्थ से ऊर्जा उत्सर्जित न हुई, तो ही पदार्थ का स्थिर वस्तुमान अचल है, ऐसा कहा जा सकेगा। सामान्यतः पदार्थ कई परमाणु-अणुओं का बना होता है। सुविधा के लिए हम उस समूह को स्थिर वस्तुमान प्रदान करते हैं। सरल अणुओं में भी कई तरह की अंतर्गत ऊर्जा धारण करने वाले मूलभूत कण होते हैं। इलेक्ट्रॉन का ही विचार किया तो वे

अणुकेंद्र के गिर्द भ्रमण करते हैं। स्वयं अपने गिर्द परिवर्तन करते हैं। बाह्य ऊर्जा शोषित कर उत्तेजित अवस्था में पहुँचते हैं और ऊर्जा उत्सर्जित कर मूल अवस्था में लौट आते हैं। ये सब अंतर्गत ऊर्जा के बदलाव के ही प्रकार हैं।

- वस्तु का वस्तुमान और ऊर्जा गति के साथ बढ़ती जाती है -

$$m = m_0 / \sqrt{1 - (v/c)^2}$$

म = पदार्थ का वर्धित वस्तुमान, m_0 पदार्थ का स्थिर अवस्था वस्तुमान, v =पदार्थ की गति, c =प्रकाश गति।

अब मान लें, वस्तु का वेग प्रकाश गति इतना हुआ तो वर्गमूल की कीमत शून्य हो जाएगी। $m_0 / 0 =$ अनंत, अर्थात् वस्तु का वस्तुमान अनंत हो जाएगा। लेकिन वस्तु की गति बढ़ाने उसे अधिकाधिक ऊर्जा प्रदान करनी होती है। वस्तु की गति प्रकाश इतनी बढ़ाने, उसे अनंत ऊर्जा देनी होगी जो असंभव है। अगर वस्तु की गति प्रकाश की गति से अधिक हो गयी तो ऊर्जा काल्पनिक हो जाएगी। अतः प्रकाश की गति से अधिक गति असंभव है।

टेखियान कण-

यह अभी तक केवल सैद्धांतिक स्तर की एक संकल्पना ही है। आर्नोल्ड सॉमरफिल्ड इन्होंने इस कण का प्रस्ताव रखा और जेराल्ड फाइनबर्ग ने इसके लिए ' टेखियान ' नाम सुझाया। इस शब्द की व्युत्पत्ति ' टॅक्स् ' इस ग्रीक शब्द से हुई। उसका अर्थ है वेगवान। इसका अत्यंत महत्वपूर्ण संकल्पित गुणधर्म है, इनकी गति हमेशा प्रकाशगति से अधिक होगी। प्रकाशगति यह इसकी न्यूनतम गति मर्यादा है।

ऊपर प्रस्तुत सूत्र में v की कीमत c से अगर अधिक होगी तो अंततः हमें m की कीमत काल्पनिक मिलेगी। अर्थात् इसका वस्तुमान काल्पनिक होगा। सामान्य पदार्थ की गति प्रकाश के बराबर करने के लिए अनंत ऊर्जा लगती है। यहाँ टेखियान गति कम करते-करते प्रकाश के बराबर लाने के लिए अनंत ऊर्जा की आवश्यकता होगी। इस कण के अन्य संकल्पित गुणधर्म निम्न प्रकार के होंगे -

- १) इस कण की ऊर्जा और संवेग ये वास्तव होंगे तो वस्तुमान काल्पनिक होगा। उसके वस्तुमान को वास्तवता तभी प्राप्त हो सकेगी जब उसकी गति प्रकाशगति से अधिक होगी।
- २) इसकी ऊर्जा कम हुई तो इसकी गति बढ़ेगी। अर्थात् शून्य ऊर्जा की स्थिति में गति अनंत होगी। आदि-आदि --

मर्यादित या विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त

गृहितक एक -

सभी जड़त्वीय चौखटों में सभी प्राकृतिक तथ्य तथा नियम समान होते हैं। खास दर्जा रखने वाली किसी भी जड़त्वीय चौखट का अस्तित्व नहीं है। इस गृहितक को ' सापेक्षता का तत्व ' (Principle of Relativity) कहा जाता है।

स्थिर संदर्भ चौखट के तौर पर उपयोग में लायी जा सकेगी ऐसी किसी भी संदर्भ चौखट का विश्व में अस्तित्व नहीं है। क्योंकि ब्रह्माण्ड की कोई वस्तु स्थिर नहीं है। पृथ्वी अपने अक्ष के गिर्द परिवलन करती है, साथ में सूर्य के चारों ओर भी घूमती है। सूर्य अपनी सूर्यमाला के साथ आकाशगंगा के केंद्र के गिर्द भ्रमण करता है। और आकाशगंगा भी परिवलन रहित नहीं है। आदि। इतना होने पर भी विश्व में भौतिकी के नियम समान हैं।

सारी जड़त्वीय संदर्भ चौखटें परस्पर सापेक्ष गतिमान होने के कारण ' विशुद्ध गति ' यह संबोधन ही निरर्थक है। गति हमेशा ही सापेक्ष होती है। वस्तु की गति यह है, ऐसा कहना ही निरर्थक है। यह आवश्यक है कि यह बताया जाये कि वह किसके सापेक्ष गतिमान है। लेकिन चूंकि हम यह मान लेते हैं कि वस्तुओं की गतियाँ पृथ्वी सापेक्ष हैं। अतः हर बार उसका उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझते। अन्यथा संदर्भ चौखट का उल्लेख आवश्यक होता है। न्यूटन ने भी कहा था कि पानी में यात्रा कर रहे जहाज के अंदर प्रयोग करके हम जहाज की गति का मापन नहीं कर सकते।

गृहितक दो -

सभी जड़त्वीय चौखटों के लिए मुक्त अवकाश में (Free Space) में प्रकाश की गति समान होती है।

मान लो, हम ६० कि.मी.प्रति घंटे की गति से गाड़ी में यात्रा कर रहे हैं। दरम्यान हमने ३० कि.मी. / घंटा इस गति से यात्रा की दिशा में गेंद फेंकी। तो वह गेंद $60+30 = 90$ कि.मी./ घंटा की गति से यात्रा करेगी (बाहर खड़े स्थिर व्यक्ति की दृष्टि से)। यह व्यवहार ज्ञान है। लेकिन स्थिर प्रकाशस्त्रोत से उत्सर्जित होने वाले प्रकाश की गति ३ लाख कि.मी. प्रति सेकंड होती है । समझो प्रकाशस्त्रोत प्रति सेकंड एक लाख कि.मी. गति से यात्रा करने लगा तो उपरोक्त तर्क के अनुसार उत्सर्जित होने वाले प्रकाश की गति प्रति सेकंड ४ लाख कि. मी. नहीं होती। वह ३ लाख कि.मी. ही बनी रहती है। प्रकाश की गति, प्रकाशस्त्रोत की गति के साथ कभी एकत्र नहीं

होती। अर्थात् प्रकाश गति को कभी पार नहीं किया जा सकता। यह किसी भी वस्तु की अधिकतम गति हो सकती है। तो फिर बर्ची - देश की विमाएं और काल के अंतराल। वे स्वयं ही इस तरह से परिवर्तित हो जाते हैं कि सम्बद्ध प्रणाली में प्रकाश का वेग, प्रणाली की गति के अनुसार परिवर्तित न हो। अर्थात् प्रणालियों का, लम्बाई का माप और समय का माप स्थिरांक नहीं हो सकते। काल प्रवाह किसी प्रणाली की गति पर निर्भर करता है। काल की दौड़ भिन्न-भिन्न प्रणालियों में अलग-अलग होती है।

आजतक इन दोनों गृहितकों के विरोध में कोई सबूत नहीं मिला है।

आइन्स्टाइन

विशिष्ट सापेक्षता : काल की सापेक्षता का सिद्धान्त [(सपाट अंतराल-काल, न गुरुत्वाकर्षण, न विस्तार)

- मैक्सवेल ने प्रकाशगति का मूल्य खोज निकाला।
- प्रचलित सापेक्षतावाद के अनुसार प्रकाश गति यह मापन करने वाले की गति के अनुसार अलग-अलग आनी चाहिए।
- लेकिन मायकलसन के प्रयोग में ऐसा दिखा कि प्रकाशगति चाहे किसी भी ढंग से गिनी जाए उसकी कीमत निर्वात में स्थिर रहती है । अर्थात् यहां प्रचलित सापेक्षतावाद असफल हो रहा था।
- इसपर १९०५ में आइन्स्टाइन ने जो स्पष्टीकरण दिया वही ' विशिष्ट सापेक्षतावाद ' के तौर पर प्रसिद्ध हुआ।
- दूसरे गृहितक ने विशिष्ट सापेक्षता के स्वरूप को जन्म दिया। इस सापेक्षता के अनुसार अब (प्रकाश गति की तौलनिक गति पर)-

मानो हम प्लैटफॉर्म पर खड़े हैं -

- १) भाग रही गाड़ी का यात्रा की दिशा में आकुंचन होता हुआ दिखेगा।
 - २) उस गाड़ी का वस्तुमान बढ़ा हुआ मिलेगा।
 - ३) इस गाड़ी के अंदर घटित होने वाली क्रियाओं की गति धीमी होती हुई दिखेगी।
- लेकिन ये सारे परिणाम दिखने के लिए हमें गति को प्रकाश की गति के स्तर तक बढ़ाना होगा। मान लीजिये, गाड़ी की लम्बाई आधी होना है, उसका भार दुगुना होना है या उसके अंदर घटने वाली किसी क्रिया की गति आधी होना हो तो गाड़ी ने प्रकाश

की गति की ८७ % गति से यात्रा करनी होगी। अगर गाड़ी के अंदर बैठे व्यक्ति ने अपनेआप को स्थिर माना और प्लैटफॉर्म पर खड़ा व्यक्ति गति में है ऐसा माना तो हमारे प्रति उसको भी वही अनुभव होगा। यह है सापेक्षता में अंतर्भूत सममिति।

- विशिष्ट सापेक्षता का एक परिणाम है $E = mc^2$ यह सूत्र। आइन्स्टाइन ने इसे २७ सितम्बर १९०५ को घोषित किया था। यह पदार्थ और ऊर्जा इनके आपस में होने वाले रूपान्तरण को दर्शाता है। इसका उदाहरण है अणुऊर्जा । जब यूरेनियम के परमाणु का विखंडन होता है तो वस्तुमान के कुछ हिस्से का ऊर्जा में रूपान्तर होता है। अणु संगलन में भी यही होता है।

अब उभरने वाले कुछ प्रश्नों का स्पष्टीकरण -

काल मंदन अपना प्रभाव स्थायी रूप से छोड़ता है जबकि आयाम आकुंचन प्रभाव कोई स्थायी चिन्ह नहीं छोड़ता।

इसका कारण है अंतराल और काल के स्वरूप में भारी भिन्नता। आकाश की दोनों दिशाएँ हैं, आगे और पीछे। जबकि काल प्रवाह केवल एक ही दिशा में आगे बढ़ता है। दो भाइयों में से एक रॉकेट यात्रा पर जाता है तो दूसरा पृथ्वी पर ही है। कुछ समय बाद रॉकेट पृथ्वी पर लौटता है। तो तेज गति से यात्रा करने वाला भाई अपने आप को पृथ्वी पर छुटे भाई से युवा पाता है। इसका कारण तेज गति के कारण उत्पन्न काल मंदत्व है। दोनों भाई रॉकेट वापसी के बाद अंतराल के उसी बिंदु पर मिलते हैं जिससे वे जुदा हुए थे। लेकिन वे उसी क्षण पर नहीं मिल सकते। काल एकादिश है।

पृथ्वी पर स्थित भाई और रॉकेट यात्री के सापेक्ष गति की बात है, तो क्या ऐसा नहीं मान सकते कि रॉकेट यात्री स्थिर है और पृथ्वीवासी उसकी तुलना में प्रचंड गति से भ्रमणरत है । ऐसी स्थिति में पृथ्वीवासी की आयु अन्य की तुलना में कम होनी चाहिए। तो क्या घड़ी का विरोधाभास केवल दृष्टिभ्रम है ?

इसका उत्तर है कि पृथ्वी और रॉकेट समतुल्य नहीं माने जा सकते कि दोनों को आपस में बदल दे। हमारी धारणा यह है कि पृथ्वी की गति बनी हुई है। चूंकि समयावधि बड़ी लम्बी है, हम उसकी केवल सूर्य सापेक्ष हलचल ध्यान में लेते हैं और उसके घूर्णन को अनदेखा करते हैं। उस स्थिति में यह केवल जड़ता के कारण मानी जा सकती है। लेकिन रॉकेट का भ्रमण केवल

जड़ता के कारण नहीं। उसमें पृथ्वी से अलग होते समय और पृथ्वी पर उतरते समय, उसके गति का प्रवेगीकरण और धीमाकरण जुड़ा रहता है।

- अभितक हमने वस्तु के आयाम, वस्तुमान और काल की सापेक्षता बाबत चर्चा की। इसका कारण है, प्रकाश की गति अनंत न होते हुए सान्त है या उसकी निश्चित कीमत है। अगर वह अनंत होती तो हम उपरोक्त गुणों को निरपेक्ष मान सकते थे और हमारी पुरानी मान्यताएं अंतिम सत्य होतीं।
- जब रॉकेट की गति प्रकाश गति के बराबर होगी तो १) रॉकेट का वस्तुमान अनंत होगा २) लम्बाई हलचल की दिशा में शून्य हो जाएगी ३) उसके अंदर काल प्रवाह रुक जाएगा। ये बातें असंभव हैं अतः कोई वस्तु प्रकाश की गति प्राप्त नहीं कर सकती या कहों जिस वस्तु का स्थिरावस्था में वस्तुमान है वह प्रकाश गति को प्राप्त नहीं कर सकती।

व्यापक सापेक्षतावाद

- विशिष्ट सापेक्षतावाद के अनुसार स्थिर गति से आगे बढ़ने वाली संदर्भ चौखट में भौतिकी के नियम समान रूप से लागू होते हैं।
- लेकिन प्रत्यक्ष में स्थिर गति के स्थान पर अधिकतर बदलती गति या धन या ऋण त्वरण युक्त गति ही मिलती है।
- तो अब आइन्स्टाइन को अपना सापेक्षतावाद, बदलती गति या त्वरण के प्रभाव के अंतर्गत होने वाली संदर्भ चौखट लागू करना था ताकि वह सर्वत्र लागू होने वाला ' व्यापक सापेक्षवाद ' हो।

हम जमीन पर खड़े हैं तो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण नीचे की तरफ खिंचाव अनुभव करते हैं। अब समझो, हम त्वरण से बढ़ने वाले या बढ़ती गति वाले अंतरिक्ष यान में बैठे हैं। अब हमें जड़ता के कारण अनुभूति होगी कि हम एक दिशा में ढकेले जा रहे हैं । अर्थात् गुरुत्वाकर्षण और त्वरण दोनों का वस्तु पर होने वाला परिणाम समान है। इस निरीक्षण के बाद तो अब व्यापक सापेक्षता सिद्धान्त, गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त ही हो गया।

जड़त्वीय द्रव्यमान और गुरुत्वीय द्रव्यमान को न्यूटन ने एक पाया। आइन्स्टाइन ने इसी सिद्धान्त को अपने सापेक्ष सिद्धान्त का आधार बनाया। आइन्स्टाइन के लिए भी जड़ता और

गुरुत्वाकर्षण अवश्य एक ही अवधारणा है। आइन्स्टाइन ने पहले अपने विशेष सापेक्षता सिद्धान्त में अंतराल और काल को एकरूप किया। फिर समग्र सापेक्षतावाद में अंतराल, काल और गुरुत्वाकर्षण को एकरूप किया। अब गुरुत्वाकर्षण अन्य मूलभूत बलों की तरह बाह्य न रहकर, यह अंतराल-काल का एक अभिन्न अंग बन गया। अंतराल-काल की वक्रता गुरुत्वाकर्षण का माप है। पदार्थ, अंतराल-काल को वक्र बनाता है और अंतराल-काल, पदार्थ की गति निर्धारित करता है।

- व्यापक सापेक्षता के अनुसार किसी चीज के वस्तुमानानुसार उसके आजुबाजु का अंतराल स्वयं ही वक्राकार धारण कर लेता है। इस वक्र अंतराल में विविध वस्तुएं, ग्रह, तारे मुक्त रूप से भ्रमण करते हैं। न्यूटन के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक वस्तु का मार्गक्रमण यह गुरुत्वाकर्षण बल के कारण होता है। व्यापक सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार यह मार्गक्रमण अंतराल की वक्रता के कारण होता है। आइन्स्टाइन ने यह अंतरण दस सूत्र में व्यक्त किया है। इसके लिए उन्होंने 'टेन्सर कैल्क्युलस' इस गणितीय पद्धति का सहारा लिया। उन्होंने अपना यह सिद्धान्त १९१५ में बर्लिन की 'प्रशियन अँकेडेमी ऑफ सायंसेस' में प्रस्तुत किया था।
- व्यापक सापेक्षवाद यह भी प्रतिपादन करता है कि अंतराल की वक्रता का परिणाम प्रकाश के आगे बढ़ने पर भी होगा। जब किसी वस्तु से प्रकाश उत्सर्जित होता है तो उसे उस वस्तु के गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध यात्रा करनी होती है। इसमें उसकी कुछ ऊर्जा खर्च होती है। परिणाम यह होता है कि प्रकाश तरंग की तरंग लम्बाई बढ़ती जाती है।
- व्यापक सापेक्षवाद ने और एक सवाल का उत्तर दिया। बुध ग्रह की कक्षा धीरे-धीरे अपनी दिशा बदल रही है। यह बात उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ही ध्यान में आयी थी। लेकिन न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त के पास इसका कोई उत्तर नहीं था।

बुध के उपसूर्यबिंदु की अतिरिक्त आगेकुच -

सूर्यमाला के सभी ग्रह सूर्य के चारों ओर दीर्घवृत्ताकार मार्ग पर भ्रमण करते हैं। ग्रह उपसूर्यबिंदु पर होता है तब उसका सूर्य से अंतर न्यूनतम होता है। उसी समय ग्रह की गति महत्तम होती है। अन्य ग्रहों के प्रभाव के कारण ग्रह की दीर्घगोलाकार कक्षा स्थिर नहीं रहती। प्रत्येक प्रदक्षिणा के साथ उपसूर्यबिंदु थोड़ा-थोड़ा आगे खिसकता है। बुध ग्रह सूर्य से सबसे करीब होने के कारण उसके उपसूर्यबिंदु का आगे सरकना अधिक लक्षणीय है। (Advance of Perihilion of Mercury) इस नाम से यह आगे सरकना प्रसिद्ध है। अन्य ग्रहों के लिए यह

सरकाव नगण्य है। जिस ग्रह का भ्रमण काल कम और केंद्रच्युति (Eccentricity) अधिक उस ग्रह का उपसूर्यबिंदु ज्यादा कोन से आगे सरकता है। तारे से अंतरानुसार, ग्रह का भ्रमणकाल बढ़ते जाता है। लेकिन बुध सूर्य से बहुत करीब है। इस कारण वह सूर्य के वक्र अवकाश के गिरफ्त में हैं। बुध के भ्रमणकक्षा का उपसूर्यबिंदु प्रत्येक १०० सालों में ५७४ कोनीय सेकंड से आगे खिसकता है। उनमें से ५३१ कोनीय सेकंडों की आगे कुच अन्य ग्रहों के कारण है। सापेक्षता सिद्धान्त के उदय तक ४३ कोनीय सेकंड विचलन का कारण नहीं मिल रहा था। लेकिन अब यह निश्चित हो गया है सूर्य के चारों ओर होने वाले वक्र अवकाश में बुध का भ्रमण होने के कारण यह फर्क है।

प्रदिश (Tensor)–

- समझो हमें किसी वस्तु का वर्णन करना है। उसका वस्तुमान बताते समय दिशा का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं। यह हुआ 'अदिश' (Scalar) गुणधर्म।
- समझो इस वस्तु पर कोई बल कार्य कर रहा है। अब इस बल का उचित वर्णन करना हो तो उसकी दिशा भी दिखानी होगी। यह 'सदिश' (Vector) गुणधर्म हुआ।
- अब यह बल उस वस्तु पर कार्य करने से उस वस्तु में तनाव पैदा होगा। वह वस्तु की रचना अनुसार अलग-अलग दिशाओं में भिन्न-भिन्न होगा। यह तनाव 'प्रदिश' (Tensor) है।

गणित की दृष्टि से शून्य प्रतांक (Rank) का प्रदिश अर्थात् अदिश। प्रथम प्रतांक का प्रदिश होगा सदिश। ऊपर उल्लेखित तनाव यह द्वितीय रँक का प्रदिश है। इसके उदाहरण हैं विद्युत वाहकता, उष्णता के कारण होने वाला प्रसारण आदि। इसके आगे के रँक के प्रदिश भी अस्तित्व में हैं।

- आइन्स्टाइन का व्यापक सापेक्षवाद का सिद्धान्त पूरी तरह प्रदिश की भाषा में ही है।
- उन्नीसवीं सदी के अंत में टुलिओ-लेव्ही-सिव्हिता और ग्रेगोरियो रिसी- तथा कर्बासटो इन इटालियन गणितज्ञों ने इस शास्त्र का विकास किया। सन् १९०१ में उसे प्रकाशित किया था।

लूप क्वांटम ग्रॅविटी -

आइन्स्टाइन ने अपने जीवन के अंतिम लगभग ३० वर्ष, परमाणु के आकार से भी कम सूक्ष्मातिसूक्ष्म दूरी पर भौतिकीय प्रक्रियाओं का सही विवरण देने वाली 'क्वांटम मेकॅनिक्स' और अपने 'गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त' में मेल बिठाने में व्यतीत किये लेकिन असफल रहे।

प्रो. अभय अष्टेकर और उनके सहयोगियों के अनुसार अंतराल-काल की तह में, बहुत गहरे में, प्लैंक दूरी के क्षेत्र में, काल और अंतराल अपनी साधारण परिभाषा और अर्थ खो देते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे चुंबक को गर्म करने पर उसका चुंबकीय गुण नष्ट हो जाता है। लोहे का हर परमाणु अपने आपमें चुंबक होता है। इन परमाणुओं के एक विशिष्ट दिशा में बंधित होने पर चुंबकत्व पैदा होता है। गर्म करने पर दिशा बंधन टूट जाता है और चुंबकत्व नष्ट होता है। बहुत गहरे में सूक्ष्मातिसूक्ष्म दूरी पर 'काल' भी चुंबक के दिशा निर्बंधित परमाणुओं की भांति, ठीक अर्थ न रख पाए। जैसी दूरी बढ़ती है काल अपना साधारण अर्थ प्राप्त करता है।

डॉ. अष्टेकर 'पेन्सिल्वेनिया स्टेट यूनिवर्सिटी के इन्स्टीट्यूट ऑफ ग्रॅविटेशन अॅण्ड द कॉसमॉस' इस संस्था के संचालक हैं। उनका जन्म ५ जुलाई १९४९ को महाराष्ट्र में धुलिया जिले के शिरपूर नामक गांव में हुआ था। उनकी प्राथमिक शिक्षा मराठी माध्यम से हुई थी। उन्हें प्रतिष्ठापूर्ण आइन्स्टाइन पुरस्कार प्राप्त हुआ है। अमेरिकन फिजिकल सोसाइटी की ओर से दिये जाने वाला यह पुरस्कार है। यह संस्था भौतिकशास्त्र क्षेत्र में दुनिया में दूसरे क्रमांक की संस्था मानी जाती है। उन्होंने आइन्स्टाइन के गुरुत्वाकर्षण को समझ लेने की दृष्टि से १९८७ में गणितीय समीकरण प्रस्तुत किया। इसे ही 'लूप क्वांटम ग्रॅविटी सिद्धान्त' या 'अष्टेकर व्हेरियेबल्स' कहा जाता है। दुनिया के कई वैज्ञानिक इस सिद्धान्त पर आधारित अनुसंधान कर रहे हैं। अष्टेकर जी ने 'क्वांटम यांत्रिकी' और 'सामान्य सापेक्षता' इनको संयुक्त कर 'लूप क्वांटम ग्रॅविटी' यह सिद्धान्त रखा है। कृष्ण विवरों की टक्कर जैसी प्रचंड घटना का स्पष्टीकरण देने, इसका उपयोग किया जा रहा है। अंतराल-काल इनका स्वरूप एक सीधी रेखा का न होने की बात कहने वाले सामान्य सापेक्षता की, गुरुत्व तरंगें आदि के बारे में समझ बढ़ाने में अष्टेकर जी का बड़ा योगदान है।

गॅलिलियन रूपान्तर-

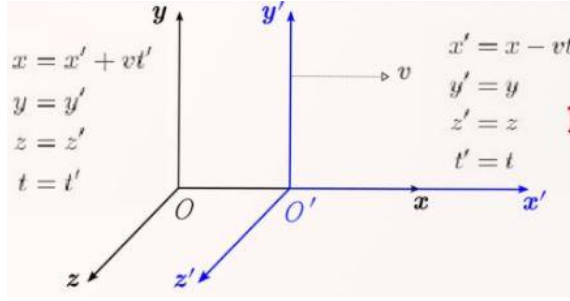


Image credit : Google images

विश्व में कोई भी घटना अवकाश के विशिष्ट स्थान पर और समय के विशिष्ट क्षण में घटित होती है। इस कारण उसे X, Y, Z इन तीन स्थानदर्शक संख्याएँ तथा ' t ' इस कालदर्शक संख्या ऐसे चार सहनिर्देशांकों द्वारा दिखाया जा सकता है। उदाहरण. दो कणों का टकराव। घटना, संदर्भ बिंदु से X = 3 मीटर, Y = 4 मी., Z = 5 मी. इस स्थान पर और ' t ' = v सेकंडों के बाद हुई। अब मान लो ' इसे आपने चलती बस से देखा। तो भी उसे ऐसी ही चार संख्याओं द्वारा दिखाया जा सकेगा। लेकिन ये संख्याएँ उपरोक्त आंकड़ों से अलग होंगीं। अर्थात् किसी भी भौतिक घटना का वर्णन करना हो तो प्रथम संदर्भ चौखट निश्चित करना आवश्यक है।

पृथ्वी के साथ संलग्न चौखट को हम जड़त्वीय मान सकते हैं। और पृथ्वी सापेक्ष स्थिर गति से गतिमान बस से संलग्न चौखट, जड़त्वीय चौखट होगी। अब मान लो -

S' यह चौखट, S संदर्भ चौखट सापेक्ष, X अक्ष की दिशा में v गति से गतिमान है। p' यह एक भौतिक घटना है। इसके दो अलग-अलग संदर्भ चौखटों से जुड़े सहनिर्देशक होंगे क्रमशः X,Y,Z, t और x',y',z', t'। गॅलिलियन रूपान्तर सूत्रों में (L) अंतर और t काल ये बातें निरपेक्ष (Absolute) अर्थात् सभी निरीक्षकों के लिए समान मानी गयी है। मानों, t == 0 इस क्षण S और s' इनके आरंभ बिंदु 0 और 0' एकसाथ होंगे तो हमें निम्न तरह से गॅलिलियन रूपान्तरित सूत्र मिलेंगे -

$$S' \text{ संदर्भ चौखट : } X' = X - vt, Y' = Y, Z' = Z \text{ और } t' = t$$

$$S \text{ संदर्भ चौखट : } X = X' + vt, Y = Y', Z = Z' \text{ और } t = t'$$

यह ध्यान में रखना चाहिए कि ये सूत्र इसी कारण मिल रहे हैं कि अवकाश और काल को निरपेक्ष माना गया है। पदार्थ के वस्तुमान को भी निरपेक्ष मानने से गॅलिलियन रूपान्तर सूत्रों के अनुसार अंतर (लम्बाई), वस्तुमान और काल ये बातें सापेक्ष गति पर निर्भर नहीं, वे स्वतंत्र हैं।

लॉरेंज़ रूपान्तर सूत्र -

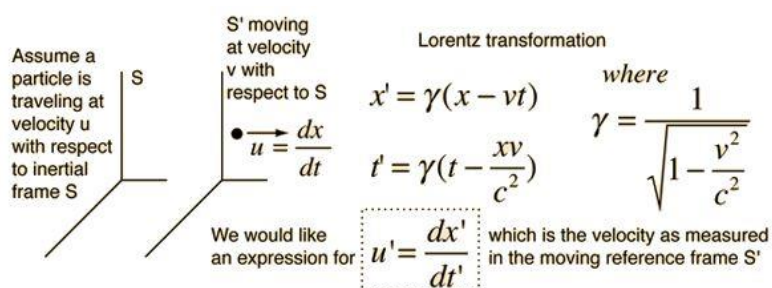


Image credit: Google image

मर्यादित सापेक्षता सिद्धान्त में एक संदर्भ चौखट के सहनिर्देशक दूसरी गतिमान चौखट में रूपान्तरित करने के लिए इन सूत्रों का उपयोग किया जाता है। मान लो, S' यह संदर्भ चौखट S इस संदर्भचौखट के संदर्भ में, v गति से X अक्ष की दिशा में गतिमान है तो सहनिर्देशकों का रूपान्तर उपरोक्त तरह से होगा -

सापेक्षता के अनुसार गतियों के योग का नियम -

मान लो, आप रेल्वे स्टेशन के प्लैटफॉर्म पर खड़े हो और एक रेलगाड़ी आपके सामने से गुजर रही है। गाड़ी की गति ' v ' कि.मी. प्रति घंटा है। ऐसी स्थिति में गाड़ी में खड़ी व्यक्ति ' v ' इस गति से आगे बढ़ती हुई आपको दिखेगी। लेकिन उस व्यक्ति ने गाड़ी में ही ' w ' गति से गाड़ी बढ़ने की दिशा में चलना शुरू किया तब आपको लगेगा कि वह व्यक्ति ' $v+w$ ' गति से आगे जा रही है। गति का यह नियम सामान्य व्यवहार के लिए ठीक है। लेकिन सापेक्षता सिद्धान्त में प्रकाश से तौलनिक गति का विचार किया जाता है। ऐसे समय गतियों के योग का उपरोक्त नियम काम नहीं देता।

अब मानो, v है संदर्भ चौखट की गति, w संदर्भ चौखट के अंदर की वस्तु की उसी दिशा में गति और c प्रकाश की गति।

अब गतियों का योग इस सूत्र से मिलेगा--- $W = (v + w) / (1 + v.w / c^2)$ |
समझो $v = 0.5c$ और $w = 0.5c$ तो

$$W = 0.5c + 0.5c / (1 + (0.5c \times 0.5c / c^2)) = c / (1 + 0.25) = (1 / 1.25) C = 0.8C$$

अर्थात् 0.5C इस गति से गतिमान संदर्भ चौखट में 0.5C गति से ही कोई वस्तु चौखट की दिशा में ही यात्रा कर रही हो तो बाहर के निरीक्षक को 0.8C गति से बढ़ती हुई दिखेगी। यदि संदर्भ चौखट और वस्तु, दोनों की गति प्रकाश की गति की तुलना में नगण्य हो तो सूत्र में vw/c^2 यह हिस्सा शून्यवत होगा और $W = v + w$ यह व्यवहारिक सूत्र हमें प्राप्त होगा।

प्रकाश की गति, यह गति की अंतिम मर्यादा है यह बात इस सूत्र के आधार पर भी सिद्ध की जा सकती है। इसके लिए वस्तु की गति के स्थान पर प्रकाश की गति और संदर्भ चौखट की गति दोनों प्रकाश गति इतनी ही ले। अब $v = w = c$ । गणना के बाद $W=c$ अर्थात् प्रकाश की गति से गतिमान संदर्भ चौखट में विद्यमान स्रोत ने उसी दिशा में उत्सर्जित किया हुआ प्रकाश $2c$ इस गति की जगह c इसी गति से ही आगे बढ़ेगा।

आइन्स्टाइन के फिल्ड इक्विएशन्स -

$R_{\mu\nu}$ = Ricci curvature tensor.	$T_{\mu\nu}$ = Stress-energy tensor.
R = Ricci scalar curvature.	G = Universal gravitational constant.
$g_{\mu\nu}$ = Metric tensor.	c = Speed of light in a vacuum.
	Λ = Cosmological constant.

$$R_{\mu\nu} - \frac{1}{2} R g_{\mu\nu} + \Lambda g_{\mu\nu} = \left(\frac{8\pi G}{c^4} \right) T_{\mu\nu}$$

Image credit: Google Images

व्यापक सापेक्षता सिद्धान्त से जो समीकरण सामने आएँ उन्हें फिल्ड इक्विएशन्स नाम दिया गया है।

विश्व की ज्यामिती + λ (स्थिरांक) निर्देशित बल = विश्व में ऊर्जा और वस्तु इनका वितरण। स्थिरांक को आइन्स्टाइन ने ' वैश्विक स्थिरांक (Cosmological Constant) नाम दिया।

समीकरणों से निर्देशित हो रहा था कि विश्व का विस्तार हो रहा है तो आइन्स्टाइन की कल्पना थी कि विश्व स्थिर है। वह पहले जैसा था वैसा ही आज है और भविष्य में भी रहेगा। इस द्वंद्व को हल करने के लिए उन्होंने अपने समीकरण में एक स्थिरांक का अंतर्भाव किया।

आइन्स्टाइन के फिल्ड इक्विएशन्स नॉन लिनिअर हैं। इस कारण उनका हल बड़ा कठिन है। आधुनिक समय में ऐसे समीकरणों को हल करने के लिए संगणक का सहारा लिया जाता है।

नॉन लिनिअर समीकरण में कई पद अज्ञात होते हैं और उनके उत्तर भी एकाधिक होते हैं। कुछ बातें गृहित मानकर प्राप्त किये हल व्यापक नहीं होते।

ये समीकरण वस्तु और ऊर्जा इनके चारों ओर विद्यमान अवकाश किस तरह वक्र होगा इसका अंदाजा देता है तो अवकाश की वक्रता, उसमें स्थित वस्तु किस तरह गतिमान होगी, यह बात निर्देशित करती है। इन समीकरणों का हल निकालने के लिए ऊर्जा और संवेग के अक्षय होने के, प्रकृति के नियम का आधार लिया जाता है।

या उपरोक्त समीकरण को इस तरह भी लिया जा सकता है-

अंतराल-काल की वक्रता + स्वयं रिक्त अंतराल का तनाव = अंतराल में पिंड के कारण उत्पन्न होने वाला तनाव(ऊर्जा आवेग)

कॉस्मोलॉजिकल स्थिरांक रिक्त अंतरिक्ष की आंतरिक ऊर्जा घनत्व को प्रदर्शित करता है। (जिसे हम आज 'डार्क एनर्जी' के रूप में लेते हैं। ऊर्जा आवेग यही वक्रता निर्मिति के पीछे का स्रोत है)।

इससे अधिक गहराई में जाना हमारे क्षमता के बाहर की बात है।

गुरुत्वाकर्षण सौम्य होगा तो अवकाश लगभग सपाट रहेगा जहां युक्लिड की ज्यामिती के नियम लागू होंगे। उसी तरह वस्तु की गति प्रकाश की तुलना में बहुत कम होगी तो आइन्स्टाइन के फिल्ड इक्विएशन्स से न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का नियम निष्पन्न होगा। ऐसा कहा जाता है कि वस्तुतः आइन्स्टाइन के फिल्ड इक्विएशन्स का प्रत्येक उत्तर पूरे विश्व के स्वरूप का वर्णन कर सकता है।

इन्व्हेरियन्स और कोव्हेरियन्स -

इन्व्हेरियन्स : अचल, स्थिर, कभी न बदलने वाली भौतिक राशि। उदाहरण- निर्वात प्रदेश में प्रकाश की गति जैसे वैश्विक स्थिरांक। सभी निरीक्षकों के लिए दो प्रसंगों के बीच का अवकाश-काल अंतर समान होता है। उनकी सापेक्ष गति पर वह निर्भर नहीं होता।

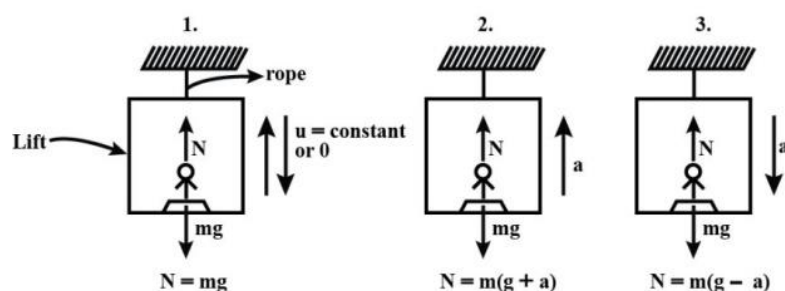
कोव्हेरियन्स : निरीक्षकों की गति पर निर्भर न होने वाले भौतिकशास्त्र के जो नियम सभी निरीक्षकों के लिए समान होते हैं, उन्हें कोव्हेरियन्स कहते हैं। उसे हम 'सहचल' कह सकते हैं। उदाहरण- मानो तुम एक गतिशील जहाज में यात्रा कर रहे हैं। आपने एक सिक्का ऊपर उछाला तो आप उसे झेल सकते हैं। उसके लिए आपको अपना स्थान छोड़ने की आवश्यकता नहीं। यही प्रयोग आप जमीन पर उसी रूप में दोहरा सकते हैं। अर्थात् सिक्का उछालने की गति के नियम दोनों स्थानों पर समान हैं या कोव्हेरियन्स हैं। उनका निरीक्षक की गति से कोई संबंध नहीं।

मर्यादित सापेक्षता अनुसार भौतिकशास्त्र के सारे नियम कोव्हेरियन्स होते हैं। स्थिर गति से गतिशील जडत्वीय संदर्भ चौखट के लिए ही मर्यादित सापेक्षता सिद्धान्त उपयोगी है। लेकिन संदर्भ चौखट अगर त्वरणशील हो तो उसमें का निरीक्षक जिस तरह के बल को अनुभव करेगा वैसा बल दूसरी चौखट वाला अनुभव नहीं करेगा। जैसे किसी परिवलनशील चौखट में स्थित निरीक्षक केन्द्रोत्सारी बल (Centrifugal Force) का अनुभव करेगा लेकिन उसके बाहर स्थित संदर्भ चौखट में खड़ा निरीक्षक उस बल का अनुभव नहीं कर पाएगा। अर्थात् मर्यादित सापेक्षता के लिए कोव्हेरियन्स होनेवाले भौतिकशास्त्र के नियम अजडत्वीय या त्वरणशील संदर्भ चौखट के लिए कोव्हेरियन्स नहीं होते।

आभासी बल (सुडो फोर्स)—

एक दृढ़ आधार को एक धागा बांधकर उसके दूसरे सिरे को m वस्तुमान वाली वस्तु टंगी है। $o'(3)$ यह निरीक्षक लिफ्ट में है और a त्वरण से नीचे आ रही है। अर्थात् o' निरीक्षक अजडत्वीय चौखट में है। $o(1)$ निरीक्षक जमीन पर स्थिर जडत्वीय चौखट में है। दोनों निरीक्षक mg इस वस्तु की ओर देख रहे हैं। उनके निरीक्षण क्या होंगे -

o' निरीक्षक a इस त्वरण गति से अधोदिशा में आ रहा है तो वह ऐसा अनुभव करेगा कि टंगी वस्तु $-a$ इस त्वरण गति से उर्ध्व दिशा में जा रही है। अर्थात् उसका कथन होगा कि वस्तु पर $-ma$ इतना बल कार्य कर रहा है (२)। जबकि स्थिर निरीक्षक को वस्तु भी स्थिर ही दिखेगी। उसकी दृष्टि से वस्तु पर उसका वजन mg तथा उर्ध्व दिशा में, धागे में तनाव (Tension) T कार्य कर रहे हैं। ये दोनों बल समान होंगे। उसके लिए o' द्वारा कल्पना किये गये बल का अस्तित्व ही नहीं होगा। वह उसे आभासी बल मानेगा। $-ma$ बल o' निरीक्षक के लिए सत्य होगा तो o के लिए आभासी।



(गूगल सौजन्य से)

कृमि विवर -

१९३५ में नाथान् रोझेन इनके साथ मिलकर आइन्स्टाइन ने एक शोध निबन्ध प्रकाशित किया था। इसमें विश्व के दो कल्पित हिस्सों अर्थात् कृष्ण और श्वेत विवरों को जोड़ने वाले एक पुल की संकल्पना थी। इस पुल को ' आइन्स्टाइन-रोझेन ब्रिज ' नाम दिया गया। बाद में उसे ही ' वर्महोल ' या 'कृमिविवर ' कहा जाने लगा। वास्तव में ऑस्ट्रियन भौतिकशास्त्री ल्युडविक फ्लेम इन्होंने आइन्स्टाइन के समीकरणों का अलग ढंग से हल निकालकर वर्महोल के अस्तित्व की संकल्पना सामने रखी थी। कृष्णविवर एक बार निगली वस्तु बाहर नहीं आने देता। इस दृष्टि से कृष्णविवर एक दिशा मार्ग है तो कृमि विवर दोहरी दिशा मार्ग है। उसे दोनों दिशाओं से पार किया जा सकता है। लेकिन आइन्स्टाइन, रोझेन, व्हिलर इन सभी द्वारा कल्पित किया गया कृमि विवर अस्थिर है। पैदा होते ही वह नष्ट हो जाता है। कृमि विवर से होते हुए, प्रकाश गति से अधिक तेजी से यात्रा की जा सकती है यह सैद्धांतिक ढंग से सिद्ध किया जा सकता है। ऐसा हो तो ब्रह्माण्ड की प्रचंड दूरियाँ कुछ क्षणों में ही पार की जा सकेगीं। लेकिन इसे बनाए रखने के लिए अकल्पनीय ऊर्जा की आवश्यकता होगी। तभी इसका टाईम मशीन जैसा उपयोग हो सकेगा।

लेकिन अभी तो यह केवल सैद्धांतिक कल्पना ही है।

गुरुत्वीय भिंग (Gravitational Lens) -

विश्व में कई तारे, कृष्ण विवर, दीर्घिकाएं इनका सूर्य से कई गुना वस्तुमान है। ऐसे पिंडों के गिर्द का आकाश अधिक वक्र होता है। इस अति वक्र अवकाश से होते हुए आने वाले प्रकाश किरणों का बहुत बड़े कोन से विचलन होता है। इन वक्रिभूत किरणों को पीछे बढ़ाने से ये किरण जिन पिंडों से उत्सर्जित हुए होंगे, उन पिंडों की कई प्रतिमाएं अंतरिक्ष में पैदा होती हैं। ये पिंड की आभासी प्रतिमाएं होती हैं। वक्र हुआ आकाश किसी कांच के भिंग जैसा प्रभाव पैदा करता है। यही गुरुत्व भिंग है। कभी-कभी तारा, अति प्रचंड वस्तुमान के कृष्ण विवर या दीर्घिका के एकदम पास होता है। ऐसे समय एक तो तारे की कई या विकृत प्रतिमाएं अंतरिक्ष में उत्पन्न होती हैं। क्वचित्, प्रतिमाओं का वलय ही आकाश में दिखाई देता है। इस वलय को ' आइन्स्टाइन रिंग ' नाम दिया गया है।

सापेक्षता सिद्धान्त और भिन्न-भिन्न विरोधाभास -

आम जीवन में हमें आने वाले अनुभव और सापेक्षता सिद्धान्तों के कारण उभरने वाली संकल्पनाएँ इनके आमने-सामने आने पर कई विरोधाभासों का जन्म हुआ है। उनमें से कुछ प्रसिद्ध विरोधाभास निम्न हैं -

१) जुड़वाँ भाइयों का विरोधाभास। २) बार्न अँड पोल का विरोधाभास। ३) कैंची के पांतों का विरोधाभास। आदि

लेकिन स्थान संकोच के कारण हम उनकी गहराई में जाना टाल रहे हैं।

क्वांटम क्षेत्र सिद्धान्त और सापेक्षता का सामान्य सिद्धान्त -

दोनों सिद्धान्तों का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ।

ब्रह्माण्ड में अब ऐसे खगोलीय, भौतिक पिंड ज्ञात हुए हैं जिनके आसपास बहुत ही अधिक वक्रता वाले अवकाश-काल का अस्तित्व है। उदा. पल्सर तारे। इनके आसपास उच्च ऊर्जाधारी मूलभूत कणों का अस्तित्व भी दर्ज हुआ है। अतः एक तरफ तो, सापेक्षता का सामान्य सिद्धान्त वहाँ लागू होता है तो दूसरी तरफ क्वांटम सिद्धान्त ने भी वहाँ के अस्तित्व को विवेचित करना चाहिए। गुरुत्वाकर्षण को एक भौतिक क्षेत्र इस दृष्टि से भी देखा जाता है। अन्य कई क्षेत्रों से उसकी कई गुणधर्मों के संदर्भ में समानता है। अगर अन्य अन्योन्यक्रियाओं पर क्वांटम पहलू लागू होता है तो उसे गुरुत्वाकर्षण पर भी लागू होना चाहिए। लेकिन अभी तक दोनों सिद्धान्तों का एकीकरण निःसंदिग्ध रूप से स्थापित नहीं हो सका है।

संक्षेप में कुछ महत्वपूर्ण बातें—

- गैलिलिओ ने यह सिद्ध किया था कि पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में नीचे आते प्रत्येक पिंड का प्रवेग समान होता है। वह इसपर बिल्कुल निर्भर नहीं कि पिंड के व्यक्तिगत गुणधर्म क्या हैं। जैसे वस्तुमान, आकार आदि। अतः यह कहा जाता है कि प्रवेग इस बात पर निर्भर है कि पिंड अवकाश में किस बिंदु पर स्थित है। तो गुरुत्वाकर्षणीय विशेषता अर्थात् प्रवेग का श्रेय अवकाश को प्रदान किया जाए बजाय पिंड के। अर्थात् अंतराल या सातत्यपूर्ण अनंत मर्यादा स्वयं भौतिक गुणधर्मों से युक्त है।
- अब न्यूनतम लम्बाई वाली रेखा वक्र भी हो सकती है।
- वक्रता यह क्षेत्र है चूंकि उसके घटक, दिशांक प्रणाली में एक बिंदु से दूसरे बिंदु पर बदलते रहते हैं। वक्रता यह ज्यामितीय सत्ता है, गणितीय अर्थ में। गुरुत्वाकर्षणीय या

विद्युत क्षेत्र में भी उसके घटक (जैसे बल की कीमत) बिंदु से बिंदु तक बदलती रहती है। और उसी समय वक्रता, भौतिक गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र की अभिव्यक्ति (Manifestation) है।

- आजतक जो समझा जाता था कि अवकाश-काल ये समतल है, उसके स्थान पर आइन्स्टाइन के अनुसार अवकाश-काल वक्र है। उसमें अंतर्भूत वस्तुमान और ऊर्जा के वितरण से संरचित है। गुरुत्वाकर्षण इसीका परिणाम है। (रिक्तावकाश की ज्यामिती याने हमारी सरल युक्लिडीयन ज्यामिती। लेकिन प्रत्यक्ष में पिंड रहित कोई समांग देश नहीं मिलता।) लेकिन आइन्स्टाइन के अनुसार केवल अवकाश वक्र है, समय नहीं।
- काल का चतुर्थ आयाम के तौरपर अंतर्भाव, कण को अवकाश में काल निरपेक्ष अस्तित्व के स्थान पर, ' घटना ' रूपी अर्थ प्रदान करता है। घटना यह भौतिक कण का विशिष्ट बिंदु और विशिष्ट क्षण पर स्थानीकरण (Localisation) है।
- अंतराल और काल को एकदूसरे से अलग करना संभव नहीं। इसे गणितीय रूप में उद्धृत करने के लिए चतुर्आयामी अवकाश की कल्पना धीरे-धीरे मजबूती के साथ जमती रही।
- वैज्ञानिकों के अनुसार दिशाओं की हर स्वतंत्र प्रणाली का अपना स्वतंत्र काल होता है।

विशेष सापेक्षता डॉप्लर परिणाम

- तरंग के संदर्भ में तरंग लम्बाई का मापन यह अंतराल मापन है तो आवृत्ति का मापन यह काल मापन है। अंतराल मापन और काल मापन अलग-अलग संदर्भ चौखटों में बदल जाते हैं, स्थिर नहीं रहते। चलायमान चौखट में संदर्भ लम्बाई, गति की दिशा में आकुंचित हो जाती है और समय की गति धीमी हो जाती है। आवृत्ति का मापन यह अंतराल की एक ही जगह, दो घटनाओं के बीच के अंतराल का मापन है। ये बातें ध्यान में लेने को 'Special Relativistic Doppelar Effect ' कहते हैं।

भाग ५

➤ सजीव

सजीव

जब हम प्रकृति में विद्यमान सजीव सृष्टि पर नजर डालते हैं, तो बाकी प्रकृति और सजीव इनमें कुछ तो अंतर दिखता है। यह ध्यान में रखना होगा कि प्रकृति का सार ही गति है। उसमें उत्पत्ति, स्थिति, लय अंतर्भूत हैं। सजीव वर्ग छोड़कर, बाकी काफी चर्चा हो चुकी है। यह भी विचार सामने आएगा ही कि सजीव पैदा कैसे हुए। इस विषय में दो दृष्टिकोण हैं--

उत्पत्ति-

- १) निर्जीव प्रकृति से केवल रूप परिवर्तन और क्रमविकास के आधार पर सजीव पैदा हो ही नहीं सकते। इसके लिए इस प्रकृति के पार के किसी अलौकिक तत्व का प्रकृति के साथ संगलन अनिवार्य है। इस तत्व को उन्होंने 'आत्मा' नाम दिया। लेकिन इस विषय में विस्तृत चर्चा मेरे 'अस्तित्व के पार ?' इस विभाग में हो चुकी है। मनुष्य विज्ञान के सहारे १३.७७ अरब वर्ष पूर्व के अंतरिक्ष पिंडों को देखने में सफल हुआ है और सेकंड के करोड़ों हिस्से का मापन करने में भी। लेकिन जिसके पीछे मनुष्य ५००० वर्षों से पड़ा हुआ है, उसके विषय में वह ठोस आधार पर कुछ भी बताने में असमर्थ है।
- २) अब दूसरा दृष्टिकोण है कि सजीवता यह प्रकृति से ही क्रमविकास के दौरान उत्पन्न उत्पाद है।
- ३) कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि जीवों का पृथ्वी पर आगमन, बाह्य अंतरिक्ष के पिंडों से होना चाहिए। लेकिन यहां भी वही प्रश्न सामने आता है कि पृथ्वी की बात छोड़ دیجिये, लेकिन जहां कहीं भी पहला जीव उत्पन्न हुआ होगा वह किस तरह ?

बायोजेनेसिस -

- इसके अनुसार केवल सजीव ही दूसरे सजीव को उत्पन्न कर सकता है -
- सत्रहवीं सदी में जर्मन वैज्ञानिक फ्रैन्सिस्को रेडी ने प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया कि निर्जीव वस्तु से आकस्मिक ढंग से सजीव उत्पन्न नहीं होते।
- फिर अठारहवीं सदी में लाझारो स्पैलानझानी इस इटालियन जैव वैज्ञानिक ने किए प्रयोग में यह बात सामने आई कि निर्वात बर्तन में रखे मांस में सूक्ष्म जीव पैदा नहीं होते।

- सन् १८५८ में जर्मन तज्ञ रुडोल्फ विशोव ने बायोजेनेसिस का सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि जीवत पेशियों से ही नई पेशियाँ पैदा हो सकती हैं।
- सन् १८६० में फ्रेंच वैद्यक तज्ञ लुई पाश्चर ने भी इसकी पुष्टि की।

सजीव-निर्जीव के बीच की कड़ी -

करोना महामारी के दौरान हर किसीका परिचय ' वायरस ' इस शब्द से हुआ। विषाणु-- वायरस, अति सूक्ष्म जीवाणु या बैक्टेरिया से भी सूक्ष्म होते हैं। इन्हें सामान्य ऑप्टिकल सूक्ष्मदर्शी से भी नहीं देखा जा सकता। वायरस किसी सजीव माध्यम के बिना अपना प्रतिरूप तैयार नहीं कर सकता। सजीव माध्यम के बाहर वे मृत समान होते हैं और इस तरह सैकड़ों वर्षों तक मृतप्राय या सुप्तावस्था में बने रह सकते हैं। इन्हें क्रिस्टलों के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है।

एक तरफ तो इन्हें जीवित माना जाता है चूंकि इनमें न्यूक्लिक अॅसिड होता है और सजीव माध्यम से पुनर्उत्पादन करने की क्षमता है, तो दूसरी ओर इन्हें निर्जीव भी माना जाता है क्योंकि इनके पास खुद को दोहराने के लिए अपना कोई जैविक साधन नहीं होता। सजीवों की कोशिकाएं अपना विभाजन करने में सक्षम हैं और वे विभाजित होकर अपनी संख्या बढ़ाती हैं। वायरसों में खुद का चयापचय भी नहीं होता। चूंकि वायरस जीवित नहीं हैं अतः उन्हें बैक्टेरिया जैसा मारा भी नहीं जा सकता। इस लिए ऐंटीवायरल दवाएं, वायरस के प्रजनन चक्र को ध्वस्त करने की कोशिश करती हैं ताकि उनके उत्पादन चक्र को ध्वस्त किया जा सके।

आम तौर पर इन्हें जीवित प्राणी और पदार्थों के बीच की कड़ी माना जाता है। यह है सजीव और निर्जीव के बीच का द्वंद्व ।

‘ अस्तित्व के पार? ’ में हमने देखा कि ऐसे करोड़ों जीवाणु / विषाणु हैं जो हजारों वर्षों तक निर्जीव अवस्था में पड़े रहते हैं, लेकिन विशेष परिस्थिति उत्पन्न होते ही उनमें सजीवता के लक्ष्मण प्रकट होने लगते हैं। सजीव और निर्जीव के बीच की कड़ी के जैसा वे व्यवहार करते हैं।

सजीवता के रूप -

हमारी दृष्टि में, कार्बन यह सजीव द्रव्य का रासायनिक आधार है। ब्रह्माण्ड में यह बड़े पैमाने पर पाया जाता है। फोटोसिंथेसिस, वह प्रक्रिया है जिसमें सूर्य प्रकाश का रूपान्तर ऊर्जा में होता है जो पृथ्वी पर विद्यमान अधिकतर जीवों के जीवन का आधार है। यह वनस्पति के लिए ऊर्जा स्रोत है और परिणामतः जानवरों के अन्न चैन का स्रोत भी वही है।

लेकिन ब्रह्माण्ड में कई तारे हैं, उनके ग्रह हैं। इन तारों से विभिन्न प्रकार के विकिरण इन ग्रहों पर पहुँचते होंगे। उनमें से कुछ ग्रहों पर अन्य उपयुक्त वातावरण हो तो, पहुँचने वाले विकिरणों में से कुछ किरणों का उपयोग कर जीव उत्पत्ति हो सकती है, ऐसा कहना है ओ' मॅले जेम्स का। और आगे जीवन बना भी रह सकता है। इस आग्रह का कोई अर्थ नहीं कि जो हमारे लिए जीवन का स्रोत है उसीके आधार पर अन्यत्र भी जीवन पनपे। जीवन का रूप एकदम अलग भी हो सकता है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

धरती का सबसे पुराना जीवाश्म-

ऐसा माना जाता है कि सजीव के पैदा होने और उसका अस्तित्व बने रहने के लिए विशिष्ट परिस्थिति आवश्यक है। लेकिन यूनिवर्सिटी ऑफ वेस्टर्न आस्ट्रेलिया के एक वैज्ञानिक दल ने डॉ. डेविड वेके के नेतृत्व में एक ऐसा जीवाश्म बरामद किया जिसके विषय में कहा जा रहा है कि यह पृथ्वी का अबतक मिला सबसे पुराना जीवाश्म है। इन जीवाश्मों ने प्रमाणित किया है कि लगभग ३.४ अरब साल पहले, जीवाणु बिना ऑक्सीजन के रहते थे। ये जीवाश्म पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के स्टरीले पूल क्षेत्र में मिले हैं। इस दल में ऑक्सफ़र्ड विश्वविद्यालय के प्रो. मार्टिन ब्रेसर भी शामिल थे। इस शोध के परिणाम 'जरनल नेचर जियोसायंस' में प्रकाशित हुए थे।

वैज्ञानिक अनुसन्धानों से पता चला है कि ' एंडोलिथ ' जैसे सूक्ष्म जीव भूमि के भीतर लगभग तीन कि.मी. गहराई पर भी हैं। इतनी गहराई पर न तो सूरज का प्रकाश पहुँचता है, न जल, न कोई भोज्य पदार्थ। ये जीव वहां पर उपलब्ध लौह पदार्थ, पोटॅशियम आदि पर जीवनयापन करते हैं। अर्थात् पृथ्वी पर भी इतनी विपरीत परिस्थितियों में जीव उत्पन्न होते हैं और जीवित भी रहते हैं।

अर्थात् हम निश्चित तौर पर यह नहीं जानते कि निर्जीव, सजीव में कैसे परिणत हो जाते हैं ? इस परिणति के लिए कौनसी परिस्थितियां अनिवार्य हैं और पर्याप्त भी।

जीव सृष्टि की उत्पत्ति -

शुरू में पृथ्वी के वातावरण में ऑक्सीजन बिल्कुल नहीं था। वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी पर पैदा होने वाला प्रथम सजीव बिना ऑक्सीजन के, केवल सेंद्रिय पदार्थों का लोढ़ा था। ये जीव चयापचय के लिए, केवल आजुबाजु फैले कण रूप सेंद्रिय पदार्थों को, अन्न भक्षण के रूप में ग्रहण करते थे। पश्चिम ऑस्ट्रेलिया में मिले ३.५ अरब साल पहले के जीवाणु के जीवाश्म यही सबूत देते हैं। उस समय विविध ढंग की रासायनिक प्रक्रियाओं के द्वारा, तथा बिजली की गड़गड़ाहट, ज्वालामुखियों से उत्पन्न होने वाली ऊष्मा तथा उनसे निकलने वाली गैसेस आदि के कारण उत्पन्न होने वाले अमिनो एसिड्स, शर्करा जैसे कई पदार्थ, उनकी आपसमें होने वाली क्रियाएं, ऐसी स्थितियाँ थीं। पानी, अमोनिया, मिथेन, हैड्रोजन तो थे ही।

उनसे बने कार्बोदके, प्रथिने, फॅट्स जैसे जैविक दृष्टि से महत्वपूर्ण अणु तैयार होते गये। अर्थात् असेंद्रिय अणुओं से सेंद्रिय अणु बने और वे समुद्र में तैरते रहे।

इससे पेशीपूर्व स्थिति पैदा हुई और बाद में पेशियां। भक्षण, पोषण, प्रजनन इन क्रियाओं के लिए आवश्यक घटक अभी बन ही रहे थे। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार इन पेशियों में ही आनुवंशिकता की क्षमता पैदा हुई। इस कारण प्रजनन होने लगा और पेशियों की संख्या बढ़ने लगी। तो कुछ अन्य वैज्ञानिकों के अनुसार इन पेशियों में शुरू में चयापचय क्रिया होने लगी और उसके बाद ही उनमें प्रजनन कराने वाले बदल होते गये।

इनमें से बहुत बातें रूसी वैज्ञानिक अलेक्झांडर ओपारिन और इंग्लैंड के जॉन हाल्डेन द्वारा १९२० के दशक में प्रस्तुत की गयी थीं। उनके सिद्धान्त को ' रासायनिक उत्क्रांति का सिद्धान्त ' कहा जाता है।

१९५२ में शिकॅगो विद्यापीठ में स्टॅन्ली मिलर तथा हॅरॉल्ड यूरी इन्होंने एक प्रयोग किया। इस प्रयोग में मिथेन, अमोनिया, हैड्रोजन और पानी की भाँप इनका मिश्रण लेकर, वह वातावरण पैदा किया गया जो पृथ्वी पर शुरू के दिनों में था। इलेक्ट्रोड के माध्यम से ६०,००० व्होल्ट की

बिजली इस मिश्रण में से प्रवाहित की गयी। बाद के निरीक्षणों के अनुसार ग्लायसिन, अलॅनिन जैसे अमिनो अम्लों की उत्पत्ति हुई थी।

सन् २००८ में परिष्कृत उपकरणों के आधार पर इसी प्रयोग को दोहराया गया तो पाया गया कि २२ अलग-अलग अमिनो अम्ल निर्मित हुए। साडे तीन अरब साल पहले की जीवसृष्टी की उत्पत्ति के समय ऐसे ही घटक एकत्र आकर प्रथम पेशी अस्तित्व में आनी चाहिए। उपरोक्त प्रयोग ऑर्पेरिन के सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। लेकिन यह अभी अस्पष्ट है कि इन प्राथमिक सेंद्रिय अणुओं का रूपान्तर डीएनए तथा प्रथिनों में कैसे हुआ। यह स्पष्ट होना भी आवश्यक है।

डार्विन का उत्क्रांतिवाद (Theory of Evolution)

चार्ल्स डार्विन ने वर्ष १८५९ में अपनी किताब ' On the origin of Species ' के माध्यम से अपना उत्क्रांति का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इसके लिए आधार था, डार्विन ने १८३० के दशक में बिगल जहाज में की समुद्री यात्रा का। इसमें उन्होंने किया दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया और प्रशांत महासागर के इक्वाडोर के पश्चिम में स्थित गॅलोपॅगोस द्वीप में प्राणियों, पक्षियों और वनस्पतियों का अध्ययन शामिल था। वास्तव में इस सिद्धान्त को डार्विन और आल्फ्रेड वॉलेस, दोनों ने स्वतंत्र रूप से विकसित किया था, लेकिन प्रकाशित संयुक्त रूप से किया।

उत्क्रांति का अर्थ है धीरे-धीरे होने वाला बदल, विकास। उत्क्रांति का सिद्धान्त कहता है कि पृथ्वी पर विद्यमान पूरी जीवसृष्टी, एक ही सजीव से, (जो शुरू के समय का एक पेशीय जीव भी हो सकता है) उत्क्रांत होते-होते उत्पन्न हुई है।

बंदर से मनुष्य पैदा हुआ, ऐसा इसका कुछ गलत, लेकिन समझने के लिए आसान सा प्रतिपादन सर्वत्र उपयोग में लाया जाता है। लेकिन वास्तव में प्रतिपादन यह होना चाहिए कि बंदर और मनुष्य के पुरखे एक ही होने चाहिए।

वास्तव में एक लगातार बदलते और जीवन के लिए लगातार संघर्ष कर रहे दुनिया का चित्र डार्विन ने सामने रखा।

लेकिन एक तरफ इसका विरोध करने वाले हैं जिनका कहना है कि सारे जीव, ईश्वर ने पैदा किये हैं। सभी धर्मों का विश्वास यही है। अतः पूरे आध्यात्मिक दुनिया का इस सिद्धान्त को विरोध है। लेकिन डार्विन के सामने न होने वाले कई सबूत आज हमारे पास हैं जो इस सिद्धान्त की पुष्टि ही करते हैं। कई जीवाश्म (प्राणी और वनस्पति दोनों के) जो उत्क्रांति के बीच की संक्रमणावस्था दिखाते हैं।

दूसरी ओर दुनिया की कुछ स्वार्थी शक्तियाँ, इस सिद्धान्त का उपयोग वंशवाद को वैज्ञानिक आधार देने और चुने हुए वंश की श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए करते हैं। इसका भीषण रूप हमने नाजियों द्वारा यहूदियों के कत्लेआम के रूप में देखा है।

प्राकृतिक चुनाव (Natural Selection)

यह चुनाव है सजीवों में हो रहे बदलावों का। कौनसे बदल स्वीकारे जाते हैं और कौनसे नकार दिये जाते हैं, ताकि प्रजाति का अस्तित्व बना रहे, यह बात इस संकल्पना के अनुसार घटित होती है। समझ लीजिये, एक ही पेड़ पर एक ही प्रजाति के लेकिन दो रंग के किटक रहते हैं। एक वर्ग का रंग हरा है तो दूसरे का लाल। ये किटक उसी क्षेत्र में रहने वाले पक्षियों का निवाला हैं। अब जिन किटकों का रंग हरा है वे वृक्ष के हरे रंग में छुपे रहेंगे या पक्षियों के एकदम भक्ष नहीं बनेंगे। लेकिन लाल किटकों के बारे में इससे उलट होगा। इस कारण हरे किटक बने रहेंगे, जबकि लाल किटकों की प्रजाति ही लुप्त हो जाएगी। यहाँ जीवन के लिए चुनाव हुआ हरे किटकों की प्रजाति का। क्यों, चूँकि अपने आजुबाजु की परिस्थिति से समायोजन करने का गुण केवल उन्हीं में था। इस प्रकार से नियमन होने को ही ' प्राकृतिक चुनाव ' कहते हैं। इसको प्रदर्शित करने वाला सुप्रसिद्ध वाक्य है -

“ Survival of the Fittest ” | यहाँ Fit होने का अर्थ है परिस्थिति के साथ समायोजन करने की तथा पुनरुत्पादन करते हुए अपनी प्रजाति को जिन्दा रखने की क्षमता।

सजीवों में पीढ़ी दर पीढ़ी छोटे-छोटे बदल होते रहते हैं। प्राकृतिक चुनाव के अनुसार कुछ कायम रहते हैं और अगली पीढ़ी में उनका अंतरण होता है। इस कारण आने वाली नई पीढ़ी, पूर्व पीढ़ी से कुछ तो अलग होती है। लेकिन उसमें पूर्व पीढ़ी के सकारात्मक या जीवनदायी गुण संभाले हुए रहते हैं। लेकिन इसी तरह का चक्र जब करोड़ों सालों तक चलता है तो पैदा होने वाले

जीव, मूल सजीव से पूरी तरह भिन्न हो सकते हैं। इसीमें से हमें आज दिखने वाली विविधता पैदा हुई है। मनुष्य को ज्ञात प्रजातियों की संख्या ही दस से पंधरा लाख हो सकती है। अज्ञातों के बारे में अंदाजा क्या लगाया जा सकता है।

१९७० के दशक के पहले ऐसा माना जाता था कि वानर सदृश्य प्रजाति से उत्क्रांत होते हुए मनुष्य अस्तित्व में आया है। लेकिन १९६८ वर्ष के दरम्यान अमेरिका के कैलिफोर्निया विद्यापीठ के व्हिन्सेंट सॅरीच और अॅलन विल्सन इन शोधकर्ताओं ने बंदर और नर इनके डिएनए का अध्ययन कर, ठोस आधार पर ऐसा घोषित किया कि बंदर और नर दोनों समांतर लेकिन भिन्न-भिन्न उत्क्रांत होते आये। लेकिन मानव, चिपॅन्झी और गोरिल्ला इनका अस्सी लाख सालों पहले का पूर्वज एक ही है। आधुनिक चिपॅन्झी और मानव इनके जिनोम में अर्थात् संपूर्ण जनुकीय प्रतिकृति रूप में, अभी भी ९८ % साम्य है। केवल २ % अलग जनुकों के कारण दो प्रजातियों में कितना अंतर है। इससे यह भी पता चलता है कि कम से कम चिपॅन्झी और हम एक ही पूर्वज के वंशज हैं।

दुनिया की मानव प्रजाति में ९९.९ % जनुके समान रचना और कार्य वाले हैं। बचे 0.१ % के कारण त्वचा का रंग, बालों की रचना, आंखों का रंग, नाक का आकार आदि सैकड़ों लक्षणों में देखी जाने वाली विविधता उत्पन्न हुई है। (अपने आदिम पूर्वजों का उदगम स्थान अफ्रीका था ऐसा माना जाता है।)

मनुष्य उत्क्रांती के चार टप्पे -

- १) दो पांवों पर चलने वाला -----ऑस्ट्रेलोपिथेकस -----४२ लाख साल पूर्व ।
- २) जमीन पर चलने के अनकूल शरीर वाला-----होमो इरेक्टस -----१५ लाख साल पूर्व ।
अफ्रीका से बाहर निकला ।
- ३) आज के मानव के साथ महत्तम साम्य रखने वाला हथियार, अग्नि, शरीर आवरण का उपयोग -----निअँडरथल मानव -----३.५ लाख साल पूर्व।
- ४) आज का आधुनिक मानव -----होमोसेपियंस-----३.0 लाख साल पूर्व ।

लेकिन होमोसेपियंस के उदय के समय भी ' होमिनीम ' गुट में तीस से अधिक मानव सदस्य भिन्न-भिन्न प्रजातियाँ अस्तित्व में थीं। लेकिन केवल होमोसेपियंस ही बचे रहे, बाकी लुप्त हो गयीं।

(ईसा पूर्व पांचवीं सदी में हुए ग्रीकवंशीय हेरोडोटस को ' मानववंश शास्त्र ' का जनक माना जाता है ।)

मानव उत्क्रांती की खोज -

ऑस्ट्रेलोपिथेकस : दक्षिण की ओर का बंदर - इस मानव की खोज १९२४ में दक्षिण अफ्रीका के ताउंग में 'रैमंड डार्ट' इस ऑस्ट्रेलियन शोधकर्ता ने की। इथियोपिया के हादार ग्राम के पास डोनाल्ड जोहान्सन और उनके सहयोगियों को मिली सुप्रसिद्ध ' लूसी ' और झेरेसेने अलेमसेगदे को मिली तीन साल की ' सेलाम ' ये इसी प्रजाति की थीं।

होमोइरेक्टस : १८९१ में इसकी खोज हुई। अर्थात् इसका पता ऑस्ट्रेलोपिथेकस के पहले ही लग चुका था। ये अवशेष डच शोधकर्ता युजिन डुबॉइस को अफ्रीका से दूर इंडोनेशिया के ट्रिनिल में मिले। १९२७ में कॅनॅडा के डेव्हिडसन ब्लॅक ने बिजिंग के पास चाऊ कुतियेन के पास खोजा ' पेकिंग मॅन ' इसी प्रजाति का था। होमोइरेक्टस यह मानव उत्क्रांति की चार महत्वपूर्ण प्रजातियों में सर्वाधिक समय तक अस्तित्व में रही प्रजाति है।

निअँडरथल : यह १८२९ की खोज है। जर्मनी की निअँडर घाटी में ये अवशेष मिलने के कारण इस प्रजाति को यह नाम मिला। आधुनिक मानव के सबसे करीबी ऐसा यह हट्टाकट्टा और होशियार मानव होना चाहिए। ऐसा अनुमान उसकी खोपड़ी और हड्डियों के आधार पर किया गया है।

होमोसेपियंस : आधुनिक मानव : इसके सबसे पुराने अवशेष १९६१ में मोरक्को के एक खदान में मिले। ये अवशेष तीन लाख साल पुराने होने की बात निश्चित हुई है। अर्थात् आधुनिक मानव पैदा होने को कम से कम तीन लाख साल तो हुए ही हैं।



ऑस्ट्रेलोपिथेकस



होमोइरेक्टस



निअँडरथल



होमोसेपियंस

उत्क्रांतिवाद के अन्य सिद्धान्त -

डार्विन के उत्क्रांतिवाद के अतिरिक्त भी उत्क्रांतिवाद के अन्य सिद्धान्त हैं -

जियाँ-बाप्टिस्ट-लामार्क(फ्रेंच वैज्ञानिक, उन्नीसवीं सदी का आरंभ) : डार्विन के पूर्व प्रस्तुत सिद्धान्त -

इसमें मध्यवर्ती कल्पना है - प्राप्त गुणों का अगली पुश्त में संक्रमण। इसमें लामार्क ने जिराफ का उदाहरण दिया है - ऊंची टहनियों के पत्ते खाने के लिए जिराफ लगातार अपनी गर्दन ऊंची करते थे। इस तरह गर्दन के लगातार उपयोग ने जिराफों की गर्दन लम्बी हुई। यह प्राप्त लम्बी गर्दन अगली पीढ़ी में संक्रमित हुई। इस तरह उत्क्रांति होती गयी।

इसपर डार्विन की टिप्पणी थी कि लम्बी गर्दन और सामान्य गर्दन वाले जिराफ दोनों का अस्तित्व था। इनमें से विद्यमान परिस्थिति में लम्बी गर्दन वाले जिन्दगी का संघर्ष जीत गये। सामान्य गर्दन वाले जिराफ खाद्यान्न तक अपनी पहुँच न बना पाने के कारण नष्ट हुए।

डार्विन के बाद -

डार्विन सिद्धान्त के विरोधी सिद्धान्त - डच वनस्पतिशास्त्रज्ञ व्हूगो दी व्हिज का १९०१ में प्रस्तुत सिद्धान्त -

व्हूगो का यह सिद्धान्त उन्होंने 'इव्हिनिंग प्रमरोज' इस फल पर किये प्रयोग और निरीक्षणों पर आधारित है। उनका निरीक्षण यह था कि फसल उगने के बाद निकल आयी कुछ वनस्पति, मूलतः बोयी गयी फसल से अलग थी। इस आधार पर उनके अनुसार उत्क्रांति के

निरीक्षण के लिए अस्तित्वमान वनस्पति की प्रजाति के विकास के लिए प्रतिक्षा करते रहने की आवश्यकता नहीं। वनस्पति को खास उगाकर भी उसके उत्क्रांति का अध्ययन किया जा सकता है। इस नयी पद्धति से किए गये अनुसंधान में वृहत् को ऐसे नमूने प्राप्त हुए जिसमें, क्रमशः नहीं तो अचानक परिवर्तन हुआ है। इस परिवर्तन को उन्होंने ' उत्परिवर्तन (Mutation) ' नाम दिया। आजकल कोरोना विषाणु के संदर्भ में ' म्यूटेशन ' यह शब्द लोगों को परिचित हो गया है। उन्होंने ऐसा निष्कर्ष निकाला था कि उत्क्रांति यह ऐसे उत्परिवर्तन के कारण होती है। नई प्रजाति का एकाएक उद्भव। आज के प्रचलित अनुवंशशास्त्र का आरंभ होने के लिए यह सिद्धान्त महत्वपूर्ण रहा।

(डार्विन के अनुसार उत्क्रांति धीमी गति से होनी चाहिए।)

- दूसरा:

उत्क्रांति का मूल, जीवन के प्रति हो रहे संघर्ष में है। लेकिन बीसवीं सदी के महान रूसी क्रांतिकारी प्रिन्स क्रोपाटकिन के अनुसार उत्क्रांति और जीवन का विकास यह प्रजातियों के बीच संघर्षों के कारण नहीं तो उनके बीच सहयोग के कारण होता है। उनका यह निष्कर्ष उनके द्वारा सायबेरिया में किये गये निरीक्षणों पर आधारित है। उनकी ' संघर्ष या सहयोग ' नाम की प्रसिद्ध किताब है।

सबसे बड़ा सजीव - डायनोसोर

यह सजीवों में, मनुष्य को ज्ञात सबसे बड़ा प्राणी है। उसकी कई उपप्रजातियाँ थीं। २५ करोड़ साल पहले लगभग १९ करोड़ वर्षों तक पृथ्वी पर पूरी तरह उन्हीं का राज था। साडे छह करोड़ वर्ष पूर्व ये प्राणी नष्ट हुए।

इंग्लैण्ड के वस्तुसंग्रहालय का प्रमुख रॉबर्ट प्लॉट को इंग्लैंड के कार्निवाल की एक चुने की खदान में वर्ष १६७६ में जांघ की एक बहुत बड़ी हड्डी मिली। आज यह हड्डी अस्तित्व में नहीं है। डायनोसोर से संबंधित यही प्रथम खोज थी। बाद में ऐसे बड़े प्राणियों की कई हड्डियाँ, इतना ही नहीं तो जीवाश्म बने अण्डे तक प्राप्त हुए। इन प्राणियों, प्रजातियों का उल्लेख उस समय ' मेगॅलोसॉरस ' और ' इग्वानोडॉन ' ऐसा किया गया है। इन प्राणियों को अलग पहचान दी अंग्रेज़ प्राणी वैज्ञानिक रिचर्ड ओवेन ने । १८४२ में उन्होंने यह मत प्रदर्शित किया कि ये प्राणी सरीसृप

वर्ग के होने चाहिए। उन्होंने उनके कुल को ' डायनासोर ' यह नाम दिया। १८६९ में भूवैज्ञानिक फिलिप मातेराँ द्वारा दक्षिणी फ्रांस में डायनासोर के अंडे की भी खोज की गयी।

१८७० के दरम्यान मिले ' बर्लिन स्पेसिमेन ' जैसे कुछ जीवाश्मों में डायनोसॉर और पक्षी दोनों की विशेषताएं दिखाई दीं। इससे इंग्लिश शोधकर्ता थॉमस हक्सली ने पक्षियों की उत्क्रांति डायनोसॉर से होने बाबत अपना मत व्यक्त किया। डेनमार्क के गरहार्ड हाइलमान इस प्राणीतज्ञ ने १९१० के दशक में प्रकाशित लेखन द्वारा, डायनोसॉर ये पक्षियों के पूर्वज होने की बात सचित्र उदाहरण के साथ स्पष्ट की।

आनुवंशिकता -

सजीवों के संदर्भ में आनुवंशिकता यह बहुत ही महत्वपूर्ण विशेषता है। अर्थात् गुणधर्मों का पुनर्उत्पादित जीव में अंतरण।

डी.एन.ए. -

सजीवों के गुणधर्मों के जो वाहक अणु होते हैं उन्हें 'डी ऑक्सिरिबोन्यूक्लिइक एसिड ' अर्थात् संक्षिप्त रूप में ' डीएनए ' नाम से जाना जाता है। वर्ष १८६८ में फ्रेडरिक मिशर इस स्विस् वैज्ञानिक को पेशी के केंद्रक में आम्लधर्मों रासायनिक अणु (Nucleic Acid) दिखे। यही आगे ' डीएनए ' और ' आरएनए ' के तौर पर पहचाने जाने लगे। प्रत्येक प्रजाति की वनस्पति या प्राणी के अंतर्बाह्य लक्षण कौनसे हो, यह जानकारी इन डीएनए के अणुओं में सांकेतिक रूप में दर्ज रहती है। ये जानकारी संभालने वाले डीएनए के घटक ' जिन्स ' या ' जनुके ' हैं।

क्रोमोसोम -

यह शब्द, दो शब्द मिलकर बना है। एक है ' क्रोमा '। इसका अर्थ है रंग। दूसरा है ' सोमा ' अर्थात् शरीर। यह इस कारण कि जब उनकी पहली बार खोज हुई तब, उन्हें ढूंढते समय, बहुत तेज रंगों का उपयोग किया गया था।

उनका आकार धागे जैसा होता है और वे पेशी (Cell) के केंद्र के अंदर होते हैं। यह बात वनस्पति और प्राणी दोनों के लिए समान है। इनका गठन प्रोटीन और डीएनए के अणु से मिलकर होता है। डीएनए का उत्तरदायित्व यह है कि जेनेटिक स्वरूप को अगली पीढ़ी तक ले

चले। यह व्यक्तिगत वनस्पति और प्राणी के विषय में भी और Species के विषय में भी है। मानव, प्राणी और पौधों में अधिकतर क्रोमोसोम जोड़ी के रूप में, पेशी के केंद्र में बने रहते हैं। मनुष्य में क्रोमोसोम की २२ जोड़ियाँ रहती हैं। उन्हें ऑटोसोम्स कहा जाता है। जब पेशी विभाजित होने को या अपने को दोहराने को होती है, ताकि नयी पेशी बन सके, तो जनुकीय जानकारी सटीक तौर पर अगली पीढ़ी के पेशी में पहुँचे, इसलिए क्रोमोसोम्स का बहुत महत्व है। उनका महत्व जनुकीय जानकारी जतन करने और प्रजाति को जिन्दा रखने, उनके पुनरुत्पादन के लिए है।

आजकल तो व्यक्तिगत पहचान स्थापित करने का, डीएनए यह सबसे विश्वासार्ह माध्यम है।

जैव विज्ञान में क्रांति -

प्रत्येक सजीव को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करने वाले अपने जनुकों में बदल करना अब संभव हुआ है। अब हम इस मुकाम पर पहुँच गए हैं कि मनुष्य ने अपनी उत्क्रांति को ही अपने नियंत्रण में कर लिया है, ऐसा कहा जा सकता है। यह उपलब्धि प्राप्त करने वाली दो महिला वैज्ञानिकों को २०२० का रसायनशास्त्र का नोबेल पुरस्कार दिया गया है। उनका नाम है डॉ. जेनिफर डूडना और डॉ. इमॅन्यूएल शारपॉतिए। अब तक १८५ वैज्ञानिकों को रसायनशास्त्र का नोबेल पुरस्कार मिला है, उनमें उपरोक्त महिलाओं को अंतर्भूत करके, महिला वैज्ञानिक केवल सात हैं।

प्राकृतिक उत्क्रांति प्रक्रिया में परिस्थिति के साथ समायोजन करने के उद्देश्य से सजीवों के जनुकों में पुश्त दर पुश्त बदल होते ही रहते हैं। लेकिन इन बदलों के परिणाम दिखने, सदियाँ लग सकती हैं। इस प्रक्रिया में हस्तक्षेप करते हुए, मनचाहा बदल करने का तंत्रज्ञान इन दो महिला वैज्ञानिकों ने विकसित किया है। इसके लिए उन्होंने जो उपकरण विकसित किया है उसे नाम दिया गया है CRISPR-Cas 9। इसे जनुकीय कैंची भी कहा जाता है। इसके सहारे डीएनडी का कोई भी अणु पूर्वनिर्धारित बिंदु के पास काटा जा सकता है। वहां से डीएनए अर्थात् सजीव के जीवन का सूत्र बदलना संभव है। यह मनुष्य के जीवन की अनिश्चितता कम करने का ही प्रयत्न होगा। इसके सहारे कर्करोग जैसी कई बिमारियों का इलाज आसान होगा।

(लेकिन डीएनए परीक्षण के पहले, व्यक्तिगत पहचान स्थापित करने का क्या तरीका था यह देखना भी मनोरंजक होगा। जबतक इन्सान की उंगलियों में त्वचा है, तबतक उंगलियों की छाप अमर है। माना जाता है कि उंगलियों की छाप अर्थात् फिंगरप्रिंट विज्ञान, भारतीय सामुद्रिक भविष्य गणना के लिए हजारों सालों से उपलब्ध था। लेकिन इतिहास से पता चलता है कि यह भारत नहीं, चीन था जहां २००० वर्ष पूर्व अंगुलीछापों का उपयोग किसी व्यक्ति की पहचान के लिए किया जाता था। लेकिन तब इसका कोई वैज्ञानिक स्वरूप नहीं था। यह किसी को पता नहीं था कि उंगलियों की छाप न कभी मिटती है, न बदलती है।

वर्ष १८२३ में तत्कालीन जर्मनी के ब्रेसलाऊ विश्वविद्यालय में अँनॉटॉमी-फिजियॉलॉजी के ऑस्ट्रियन 'प्रो. यानस यवनगारिस्ता पुरकिया' ने उंगलियों के रेखाओं के ९ प्रारूप चिन्हित किए, जिनमें उंगलियों के झुके हुए चाप भी शामिल थे।

१८५८ में इंडियन सिविल सर्विस के सर विलियम जेम्स हर्शेल, जो बंगाल के हुगली जिले के कलेक्टर थे, इन्होंने ही फिंगरप्रिंट विज्ञान का उपयोग किसी व्यक्ति की कानूनी पहचान स्थापित करने के लिए किया। बाद में हेनरी फाल्ड्स इस व्यक्ति ने यह प्रस्तुत किया कि किसी घटनास्थल के किसी भी चीज पर जैसे कुर्सी आदि पर, मौजूद मनुष्य की उंगलियों या हथेलियों के न दिखने वाले निशान होते हैं। इसे 'लेटेंट प्रिंट्स' नाम दिया गया और कहा कि इन्सान की स्थायी पहचान के लिए यह निर्णायक हो सकते हैं। इसे आगे और वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया अंग्रेज़ वैज्ञानिक सर फ्रांसीस गाल्टन ने। बाद में निचले बंगाल के पुलिस महानिरीक्षक सर एडवर्ड रिचर्ड हेनरी ने दो भारतीय अधिकारियों खान बहादुर अजीजुल हक और राय बहादुर हेमचन्द्र बोस की मदद से अंगुली चिन्हों के वर्गीकरण की व्यवस्थित प्रणाली स्थापित की। इसके बाद पहचान के लिए तबतक उपयोग में लाए जाने वाली एंथ्रोपोमेट्रिक प्रणाली जिसमें शारीरिक संरचना के आकलन के लिए, मांसपेशियों, हड्डियों, वसा और उतक की मात्रात्मक माप की श्रृंखला को त्याग दिया गया। दुनिया में पहला फिंगरप्रिंट ब्यूरो सन् १८९७ में कोलकाता की उसी रायटर्स बिल्डिंग में स्थापित हुआ, जिसमें आज बंगाल सरकार का सचिवालय है।)

सजीव की आयु -

- पैदा होनेवाला हर सजीव एक न एक दिन मृत्यु को प्राप्त होना ही है। लेकिन जन्म और मृत्यु इनके बीच जीने के लिए उसे जो समय मिलता है वह या उसकी आयु, प्रत्येक

सजीव प्रजाति के लिए अलग-अलग है। हमारी उत्सुकता मनुष्य की प्राकृतिक अधिकतम आयु में हो सकती है। एक फॉर्म्युले के अनुसार किसी भी जीव की प्राकृतिक आयु उसके कंकाल को परिपक्व होने के लिए लगने वाले समय के पांच गुना से अधिक नहीं हो सकती। मानव कंकाल को परिपक्व होने में २५ वर्ष लगते हैं। अतः कुछ अपवाद छोड़ दें तो मनुष्य की अधिकतम आयु १२५ वर्ष हो सकती है।

लेकिन आकड़े बताते हैं कि ईसा के समय कई कारणों से खास तौर पर बिमारियों के कारण, मनुष्य की औसत आयु २२ वर्ष थी। बहुत कम लोग ३५ की उम्र पार कर पाते थे। मध्य युग में औसत आयु बढ़कर ३५ हुई। इसके ५०० साल बाद ३८ हुई। लेकिन इसमें प्रत्यक्ष उछाल आया बीसवीं सदी में, स्वास्थ्य क्षेत्र में हुए अनुसन्धानों के कारण। अब विश्व स्तर पर औसत आयु ७५ से ऊपर हो गयी है। इस आयु वृद्धि करने में प्रथम महत्वपूर्ण सीढ़ी है, बिमारियों प्रति प्रतिरोधक क्षमता पैदा करने वाला टिकाकरण। आज दुनिया में सबसे अधिक टिकों का उत्पादन करने वाला देश भारत ही है। आज भारत में, टिकों का उत्पादन करनेवाली २२ कंपनियां हैं, जो रैबीज, पोलियो, इन्फ्लुएंजा, एच१एन१, टायफाइड, बीसीजी, हेपेटाइटिस बी, खसरा, डिप्थीरिया, टीटी, रूबेला, अँटी-वेनम, ओरल कॉलरा आदि टिकों का उत्पादन करती हैं।

लेकिन इसकी शुरुआत इस तरह हुई | एडवर्ड जेन्नर इस अंग्रेज़ वैद्यक तज्ञ ने टीका देने की पद्धति इजाद की। अठारहवीं सदी में, यूरोप में, प्रति वर्ष लगभग चार लाख लोगों की माता की बीमारी से मौत होती थी। इसपर प्रतिबंधक उपाय के तौर पर जेन्नर ने इस बीमारी पर प्रतिबंधक टीका ढूँढ निकाला। इसमें किसी बीमारी के, रोगकारकता कम किए हुए जंतु लसीकरण के माध्यम से किसी व्यक्ति के शरीर में जानबूझकर पहुंचाये जाते हैं। उस व्यक्ति के शरीर की उस बीमारी के प्रति रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाई जाती है। परिणामतः उस व्यक्ति को बीमारी नहीं होती।

- अमेरिका के शोधकर्ताओं ने अधिकतम मानव जीवन काल का अनुमान लगाने के लिए एक कॉम्प्युटर मॉडल का उपयोग किया। इसके अनुसार यह सीमा १५० वर्ष है। अध्ययन के अनुसार अधिकतम जीवनकाल के लिए तीन महत्वपूर्ण बातों की आवश्यकता है। १) अच्छा जीन, जो १०० वर्षों से अधिक जीने की आशा जगाता है।

- २) उत्कृष्ट आहार तथा व्यायाम योजना, जो जीवन प्रत्याशा में १५ साल की वृद्धि कर सकती है। तीसरा-समय पर उपचार और दवाइयों के ज्ञान में उत्तरोत्तर वृद्धि।
- *अधिकृत तौर पर इतिहास की सबसे उम्रदराज व्यक्ति रही है, “जीन कैलमेंट” जो १२२ वर्ष जिन्दा रही। वह १८७५ में पैदा हुई थी। उस समय औसत जीवन ४३ वर्ष था।
 - **बायो सिग्नेचर्स -**
ऑक्सीजन, मिथेन जैसे कुछ पदार्थों का निर्माण जीवनधारी ऑर्गेनिज़्म द्वारा होता है ऐसा माना जाता है। उन्हें ‘ बायो सिग्नेचर्स ‘ कहा जाता है। अंतरिक्ष के किसी पिंड पर इनकी उपस्थिति वहां किसी तो रूप में जैविकता होने की संभावना व्यक्त कर सकती है, ऐसा माना जाता है।
 - **जीवसृष्टि -**
पृथ्वी का निर्माण लगभग ४.५४ अरब वर्ष पूर्व हुआ था। इस घटना के एक अरब साल बाद ही यहाँ जीवन विकास आरंभ हो पाया। उपलब्ध सांख्यिकी के अनुसार अनुमान है कि -
 - स्तनधारी जीवों की जातियाँ ४६०० हैं।
 - पृथ्वी पर हर मनुष्य के पीछे २० करोड़ किड़े-मकौड़े हैं। ९५ % जीव कीड़े हैं।
 - दुनिया में पालतू जानवरों की संख्या एक अरब से अधिक है।
 - मकड़ियों की ७३००० उपप्रजातियाँ हैं तो सरीसृपों की ६०००, पक्षियों की ९००० हैं।
 - विश्व में प्रजातियों की ज्ञात संख्या- भारत
- | | | | |
|----------------------|----------|-------|--------|
| १) स्तनधारी----- | ४६२९ | ----- | ३५० |
| २) चिड़िया----- | ९७०२ | ----- | १२२४ |
| ३) सरीसृप----- | ६५५० | ----- | ४०८ |
| ४) उभयचर----- | ४५२२ | ----- | १९७ |
| ५) मछलियाँ----- | २१,७३० | ----- | २५४६ |
| ६) फुलवाले पौधे----- | २,५०,००० | ----- | १५,००० |

ભાગ ૬

- વૈજ્ઞાનિક વિષય
- શબ્દ સંગ્રહ

वैज्ञानिक विषय, परिभाषाएं तथा शब्दकोश

खगोलशास्त्र से संबंधित चौदह अलग-अलग शाखाएं हैं -

१) एयरोडायनामिक्स : (खगोल गतिकी) : वायुगति एवं गैसों के प्रवाह का अध्ययन करने वाला विज्ञान। अंतरिक्ष यान, खगोलीय पिंडों की गति का भी अध्ययन।

२) एस्ट्रोनॉटिक्स: यह अंतरिक्ष में यात्रा करने से संबंधित नियमों का अध्ययन करने वाला शास्त्र है।

३) एस्ट्रॉनॉमि : खगोलीय पिंडों का अध्ययन करने वाला शास्त्र है।

४) एरियोग्राफी : (Areography) : मंगल ग्रह का अध्ययन।

५) एस्ट्रोफिजिक्स : (खगोल भौतिकी) : खगोलीय पिंडों के भौतिक गुणों का अध्ययन।

६) एस्ट्रोबॉटनी : (खगोलीय वनस्पति विज्ञान) : अंतरिक्ष के पिंडों पर वनस्पति के अस्तित्व की खोजबीन का विज्ञान।

७) एस्ट्रोबायोलॉजी :: (कॉस्मोबायोलॉजी) बाह्य अंतरिक्ष में या खगोलीय पिंडों पर जीव जगत के अस्तित्व की खोजबीन करने वाला विज्ञान।

८) एस्ट्रोमेट्री: १) इसमें दो तारों के बीच की दूरी का मापन, अंतरिक्ष में उनका स्थान और उनमें होने वाले बदल जैसे उनका स्थानान्तरण आदि का अध्ययन होता है।

२) वह तकनीक जिसके द्वारा बाह्य ग्रह का पता लगाया जाता है, जिसमें चक्कर लगा रहे ग्रह के कारण तारे में हलके झटके (Wobbles) पैदा होते हैं।

९) एस्ट्रोकेमिस्ट्री : अंतरिक्ष में रसायनों का अध्ययन।

१०) कॉस्मोकेमिस्ट्री : सौर मंडल में विद्यमान रसायनों का अध्ययन। ब्रह्माण्ड में मौजूद तमाम वस्तुओं के रासायनिक गुण, रासायनिक समीकरण तथा उनमें मौजूद तत्वों के अनुपात का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन के लिए उल्कापात के जरिए गिरने वाले पिंड काफी महत्वपूर्ण होते हैं। महाराष्ट्र की लोणार झील तथा अमेरिका के एरिजोना में उल्कापात के कारण क्या स्थितियां उत्पन्न हुई थीं, इसका अध्ययन भी इसी शाखा के अंतर्गत किया गया था।

११) कॉस्मॉगोनी : ब्रह्माण्डोत्पत्ति सिद्धान्त अध्ययन करने वाला शास्त्र।

१२) कॉस्मॉलॉजी : इस विज्ञान शाखा में विश्व के मूल, इसकी उत्पत्ति, विकास, रचना, गतिशीलता और अन्त कैसे होगा इस बारे में अध्ययन किया जाता है। अर्थात् समस्त विश्व का सर्वसमावेशी (Totality) अध्ययन।

१३) गैलेस्टिक एस्ट्रॉनॉमी : हमारी आकाशगंगा में खगोल विज्ञान का अध्ययन।

१४) रेडियो एस्ट्रॉनॉमी : रेडियो तरंगों के माध्यम से अंतरिक्ष पिंडों का अध्ययन।

१५) हेलियो सिस्मॉलॉजी : इसमें सूरज का तापमान, घनत्व, संरचना, अंदरूनी और बाहरी आवरण आदि का ध्वनि तरंगों के माध्यम से अध्ययन किया जाता है।

अन्य विज्ञान-

ऑरनिथॉलॉजी : पक्षियों से संबंधित अध्ययन।

एयरोनॉटिक्स- वायुयान संबंधित सभी तथ्यों का अध्ययन करने वाला विज्ञान।

एकॉस्टिक्स : ध्वनि तरंगों का अध्ययन।

एन्टॉमॉलॉजी : किड़ों के अध्ययन का शास्त्र।

एम्ब्रियोलॉजी : भ्रूण से जीवोत्पत्ति के विकास का शास्त्र।

जीऑलॉजी : धरती का अध्ययन करने वाला शास्त्र।

झूऑलॉजी : जानवरों के अध्ययन का शास्त्र।

पॅथॉलॉजी : शारीरिक रोगों का, रक्त के माध्यम से अध्ययन का शास्त्र।

फिजिऑलॉजी : शारीरिक कार्यप्रणाली का अध्ययन।

बायोकेमिस्ट्री : जीवनधारक की रासायनिक और भौतिकी रासायनिक प्रणाली का अध्ययन करने वाला शास्त्र।

बायॉलॉजी : जीवनधारकों का अध्ययन करने वाला शास्त्र।

बैक्टेरियोलॉजी : सूक्ष्म जिवाणू का अध्ययन।

बॉटनी : वनस्पतिशास्त्र।

मेटलर्जी : धातुशास्त्र।

मेटेऑरॉलॉजी : वातावरण का अध्ययन।

सिरॉलॉजी : रक्त के शारीरिक प्रतिकार शक्ति संबंधित गुणों के अध्ययन का शास्त्र।

स्टैटिस्टिक्स : संख्या का शास्त्र।

परिभाषाएं

- अनिश्चितता का सिद्धान्त : (Uncertainty principle) : हाइजेनबर्ग द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त के अनुसार कोई भी, कण की स्थिति या वेग दोनों को एकसाथ पूर्ण परिशुद्धता से नहीं जान सकता। जितनी अधिक परिशुद्धता से आप एक राशि को जान पाते हैं, उतनी ही कम परिशुद्धता से आप दूसरी राशि को जान पाएंगे।
- अपवर्जन सिद्धान्त (Exclusion Principle) : यह अवधारणा कि $1/2$ प्रचक्रण या स्पिन वाले दो समान कणों की (अनिश्चितता के सिद्धान्त द्वारा निर्धारित सीमाओं के अंतर्गत) एक समान स्थिति तथा उनका एक समान वेग नहीं हो सकता।
- अभिकेन्द्री बल / केंद्रगामी बल (Centripital Force) : किसी पिंड पर प्रयुक्त होने वाला वह बल जो इसे एक वक्रिल पथ में गतिमान रखता है और जो उस वक्र पथ के केंद्र की दिशा में कार्य करता है। उदा. किसी डोरी के सिरे पर पत्थर बांधकर उसे घूमाने पर डोरी द्वारा उस पत्थर पर डाला जाने वाला बल।
- अभिरक्त विस्थापन (Red Shift) : जब कोई तारा या अन्य स्रोत प्रेक्षक से परे गतिशील होता है, तो उससे उत्सर्जित प्रकाश की तरंगें, डॉप्लर प्रभाव के कारण लाल रंग की ओर खिसक जाती हैं। अर्थात् तरंग दैर्घ्य बढ़ जाता है तथा आवृत्ति घट जाती है । इसे अभिरक्त विस्थापन कहते हैं।
- अवस्थितत्व (Inertia) : किसी पिंड द्वारा अपनी स्थिरता अथवा एकसमान गति को बनाए रखने की प्रवृत्ति।

- आगमनात्मक निष्कर्ष : कुछ इने-गिने प्रयोग हमें भविष्य विषयक निश्चित अनुमान के लिए विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध कराते हैं।
- आभासी कण : (Virtual Particles) : क्वांटम यांत्रिकी में, वे कण जिनका प्रत्यक्ष रूप से कभी भी पता नहीं लगाया जा सकता। किसी भी प्रेक्षण यंत्र की परिधी में आने से पूर्व ही वे कण-प्रतिकण टकराकर नष्ट हो जाते हैं तथा ऊर्जा में बदल जाते हैं। चाहे इनका अस्तित्व अल्पकालिक हो, परंतु इनके प्रभाव का अनुमापन किया जा सकता है। इस तरह इनके अस्तित्व की पुष्टि हो चुकी है।
- आयन मंडल (Ionosphere) : ऊपरी वायुमंडल का वह क्षेत्र जहाँ काफी मात्रा में मुक्त आवेशी कण (इलेक्ट्रॉन्स + आयॉन्स) प्रकट होते हैं और जहाँ से रेडियो तरंगों का परावर्तन होता है।
- आवृत्ति (Frequency) : किसी तरंग के लिए, प्रति सेकंड आवर्तों (साइकल्स) की संख्या।
- ऊर्जा संरक्षण (Conservation of Energy) : विज्ञान का वह नियम जो यह बताता है कि ऊर्जा (या उसके समतुल्य द्रव्यराशि) न उत्पन्न की जा सकती है और न नष्ट की जा सकती है।
- कला (Phase) : किसी तरंग के लिए, निर्दिष्ट समय पर इसके आवर्तन (Cycle) में, शीर्ष, गर्त या दोनों के मध्य की कोई स्थिति।
- कक्षा (Orbit) : खगोलीय पिंडों का परिक्रमा पथ।
- कक्षावधि (Orbital Period) : किसी पिंड द्वारा अपनी पूरी कक्षा का एक चक्कर पूर्ण करने में लगने वाला समय।
- कण त्वरित्र(Particle Accelerator) : विद्युत चुंबकों का प्रयोग करके गतिशील आवेशित कणों को अत्यधिक ऊर्जाओं तक त्वरित करने वाला यंत्र।
- केंद्रोत्सारी बल (Centrifugal Force) : जैसे ग्रह के गुरुत्वाकर्षण के कारण उपग्रह पर कार्य करने वाला खिंचाव, उपग्रह की ग्रह से छुट जाने की प्रवृत्ति को संतुलित करता है। केंद्र से बाह्य दिशा की ओर कार्य करने वाले इस बल को केंद्रोत्सारी बल कहते हैं।
- क्वांटम (Quantum) : वह अविभाज्य इकाई जिसमें तरंगें उत्सर्जित या अवशोषित की जा सकती हैं।

- क्वांटम यांत्रिकी (Quantum Mechanism) : प्लैंक क्वांटम सिद्धान्त तथा हाइजेनबर्ग के अनिश्चितता सिद्धान्त से विकसित एक विज्ञान शाखा।
- कृमी-छिद्र या सुरंग (Worm hole) : ब्रह्माण्ड के दूरस्थ क्षेत्रों को जोड़ने वाली दिक्-काल की एक पतली नलिका। कृमि-छिद्र सम्भवतः, समांतर अथवा नवोदित शिशु ब्रह्माण्डों को भी जोड़ सकते हैं और काल यात्रा की संभावना साकार कर सकते हैं।
- कृष्ण पदार्थ (Dark Matter) : मंदाकिनियों, उनके गुच्छों तथा संभवतः गुच्छों के मध्य का वह पदार्थ जिसका प्रत्यक्ष रूप से प्रेक्षण संभव नहीं है, परंतु इसके गुरुत्वीय प्रभाव द्वारा इसका पता लगाया जाता है।
- क्यूडपर बेल्ट : नेपच्यून ग्रह के बाद, एक, बड़ी संख्या में पाया जाने वाला आकाशीय पिंडों का जखीरा जो सूर्य की परिक्रमा करता है।
- क्रोड : पृथ्वी या अन्य किसी ग्रह या उपग्रह का केन्द्रीय भाग। पृथ्वी का केन्द्रीय भाग २९०० की गहराई पर आरंभ होता है। यह संभवतः लोहा-निकेल मिश्र धातु का बना है।
- गतिवर्धन (Accelaration), त्वरण : गति बदलने की प्रति सेकंड दर।
- घटना (Event) : दिक्-काल में एक बिंदु जिसकी स्थिति इसके समय और स्थान द्वारा स्पष्ट की जाती है।
- घूर्णन (Spin) : किसी पिंड का अपनी धुरी पर घूमना।
- चंद्रशेखर सीमा : किसी स्थायी अतप्त (कोल्ड) तारे की अधिकतम द्रव्यराशि। इस सीमा से अधिक द्रव्यराशि होने पर गुरुत्वीय निःपात द्वारा तारा एक कृष्ण विवर में परिवर्तित हो जाएगा।
- जियोडेसिक(Geodesic) : दो बिंदुओं के मध्य सबसे छोटा मार्ग (या सबसे बड़ा मार्ग)।
- ठोस प्रणोदक (Solid Propelant) : आम तौर पर इंधन और प्राणवायु के मिश्रण से तैयार होने वाला ठोस रूप रॉकेट प्रणोदक। भारत के एसएलव्ही ३ रॉकेट में यही प्रणोदक उपयोग में लाया जाता है।
- डाइन : वह बल जो एक ग्राम द्रव्यमात्रा में प्रति सेकंड, प्रति सेकंड एक से.मी. त्वरण पैदा करता है।
- डोर सिद्धान्त(String Theory) : भौतिकी का एक सिद्धान्त जिसमें कणों को डोरों पर तरंगों के रूप में वर्णित किया जाता है।

- तरंग-कण द्वैतता : क्वांटम यांत्रिकी में यह अवधारणा कि तरंगों तथा कणों के मध्य कोई अंतर नहीं है। कभी कण तरंगों की तरह तो कभी तरंग कणों की तरह व्यवहार करते हैं।
- तरंग दैर्घ्य (Wave Length) : किसी तरंग में दो क्रमिक शीर्षों या गर्तों (द्रोणिकाओं) के बीच की दूरी।
- दीर्घवृत्त (Ellips) : किसी भी उपग्रह की सामान्य कक्षा होती है । जिसमें इसके दो फोकस बिंदुओं से दूरियां स्थिरमान रहती हैं।
- दुर्बल या क्षीण नाभिकीय बल (Weak Force) : चारों मौलिक बलों में यह दूसरा सबसे दुर्बल बल है। इसका प्रभाव क्षेत्र बहुत सीमित होता है। यह बलवाहक कणों को छोड़कर सभी पदार्थ कणों को प्रभावित करता है।
- द्रव्यमान (Mass) : किसी पिंड में पदार्थ का परिमाण। इसका जड़त्वं या पदार्थ द्वारा अपनी विरामावस्था में या एक समान गति को प्रभावित करने वाले किसी भी बल का प्रतिरोध।
- द्वैतता (Duality) : स्पष्ट रूप से भिन्न उन सिद्धान्तों के मध्य समानता, जिनके भौतिक परिणाम एक समान होते हैं।
- ध्रुवीय कक्षा (Polar Orbit) : ध्रुवों के ऊपर से गुजरने वाली कक्षा।
- निर्देशांक (Coordinates) : दिक् और काल में किसी बिंदु की स्थिति को स्पष्ट करने वाली संख्याएं।
- नाभिकीय शीत : क्षुद्र ग्रह या पिंड की पृथ्वी से टक्कर के बाद इतना धूल/ धुवाँ उठना कि सूर्य ढंक जाएगा। पृथ्वी पर सूर्य रोशनी न आने से ठंड अति बढ जाएगी और लम्बे समय तक बनी रहेगी।
- निहारिका (Nebula) : सौर मंडल के बाहर के अंतरिक्ष में विद्यमान धुलीकण और गॅसों का विशाल बादल। आरंभ में इस शब्द का प्रयोग मंदाकिनी के लिए होता था।
- न्यूट्रॉन तारा : एक अतप्त (कोल्ड) तारा जिसमें अपवर्जन सिद्धान्त के अनुसार न्यूट्रॉनों के मध्य लगने वाले प्रतिकर्षण बलों के मान अधिक होते हैं।
- न्यूट्रिनो ; यह अत्यंत ही हलके (संभवतः द्रव्यमान रहित) कण हैं जो केवल दुर्बल नाभिकीय बल तथा गुरुत्व बल से प्रभावित होते हैं।

- परम शून्य (Absolute Zero) : संभावित निम्नतम तापमान जिसपर पदार्थ में कोई उष्मीय ऊर्जा नहीं बचती। -- 273.15°C से. |
- परिक्रमण काल : किसी पिंड द्वारा प्रधान पिंड की एक परिक्रमा पूर्ण करने में लगने वाला समय।
- पलायन वेग : वह वेग जिसे पाकर वस्तु किसी ग्रह या उपग्रह से सदैव के लिए पलायन कर जाती है। ((पृथ्वी के लिए पलायन वेग 11. 6 कि.मी. / सेकंड है।) इस वेग से ऊपर उठने से वस्तु ग्रह, उपग्रह के गुरुत्वाकर्षण से मुक्त हो जाती है।
- प्रकाश शंकु (Light Cone) : दिक्-काल में वह पृष्ठतल जो किसी प्रदत्त घटना से होकर गुजरने वाली प्रकाश किरणों के लिए संभावित दिशाएं सीमांकित करता है।
- प्रचक्रण(Spin) : मूल कणों का एक आंतरिक गुणधर्म जो प्रचक्रण की दिन-प्रतिदिन की सामान्य धारणा से संबंधित तो है, परंतु समरूप नहीं है।
- प्रक्षेप पथ (Trajectory) : प्रक्षेपणास्त्र, रॉकेट अथवा उपग्रह का उड़ान पथ।
- प्लैंक का क्वांटम सिद्धान्त : यह अवधारणा कि प्रकाश (या अन्य क्लासिकल तरंगें) केवल पृथक क्वांटा में ही उत्सर्जित या अवशोषित की जा सकती हैं। उनकी ऊर्जा उनके तरंग दैर्घ्य के समानुपाती होती हैं।
- फोटॉन : प्रकाश (विद्युत चुंबकीय विकिरण) का एक क्वांटम।
- ब्रह्माण्डिकी या ब्रह्माण्ड विज्ञान : Cosmology |
- भार (Weight) : गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र द्वारा किसी वस्तु पर लगने वाला बल। यह वस्तु की द्रव्यराशि के समानुपाती होता है (परंतु उसके समान नहीं होता)।
- महाएकीकरण ऊर्जा (Grand Unification Energy) : वह ऊर्जा जिसके ऊपर, यह विश्वास किया जाता है कि, विद्युत चुंबकीय बल, दृढ़ नाभिकीय बल और क्षीण नाभिकीय बल एकदूसरे से अविभेद्य हो जाते हैं।
- महाएकीकृत सिद्धान्त (Grand Unified Theory) : वह सिद्धान्त जो विद्युत चुंबकीय, दृढ़ नाभिकीय तथा क्षीण नाभिकीय बलों का एकीकरण करता है।
- महाविस्फोट (Big Bang) या महानाद : ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के समय सिंग्युलैरिटी या लगभग असीमित घनत्व और तापवाली विलक्षणता की स्थिति।
- महासम्पीडन या दबाव (Big Crunch) : ब्रह्माण्ड की समाप्ति के समय सिंग्युल्यारिटी या असीमित घनत्व व तापवाली विलक्षणता की स्थिति।

- मूल कण (Elementary Particles) : ऐसा कण जिसके बारे में यह विश्वास किया जाता है कि इसे आगे विभाजित नहीं किया जा सकता।
- रेडिओधर्मिता (Radioactivity) : नाभिक का स्वयं विघटन, जिसमें विकिरण निकलता है। इस प्रक्रम में एक प्रकार का परमाणु नाभिक, दूसरे प्रकार के परमाणु नाभिक में परिवर्तित हो जाता है।
- वर्णक्रम (Spectrum) : आवृत्तियों का विस्तृत परिसर जिसमें तरंगों का कोई विशिष्ट सर्वसामान्य अभिलक्षण पाया जाता है। सूर्य के वर्णक्रम का दृश्य भाग इंद्रधनुष में देखा जा सकता है।
- वलय : पिंड के चारों ओर, छोटे-छोटे पदार्थ कणों से बनी हुई कुंडलियाँ या छल्ले।
- विद्युत आवेश (Electric Charge) : किसी कण का वह गुणधर्म जिसके द्वारा वह उसी (या विपरीत) आवेश वाले दूसरे कणों को प्रतिकर्षित (या आकर्षित) कर सकता है।
- विद्युत चुंबकीय बल (Electromagnetic Force) : विद्युत आवेश वाले कणों के मध्य उत्पन्न होने वाला बल। चारों मूल बलों में दूसरा सबसे शक्तिशाली बल।
- विलक्षणता या सिंग्युल्यारिटी : दिक्-काल में एक ऐसा बिंदु जिसपर दिक्-काल की वक्रता असीमित हो जाती है।
- विशिष्ट आपेक्षिकता (Special Relativity Theory) : यह आइन्स्टाइन का सिद्धान्त इस धारणा पर आधारित है कि गुरुत्वीय प्रभावों की अनुपस्थिति में, विज्ञान के नियम सभी प्रेक्षकों के लिए समान होते हैं, चाहे वे कैसे भी गतिशील हो।
- श्वेत वामन (White Dwarf) : यह स्थायी ठंडा तारा होता है। यह अपवर्जन सिद्धान्त के अनुसार इलेक्ट्रॉन्स के मध्य प्रतिकर्षण पर अवलंबित होता है।
- सबल या दृढ़ बल (Strong Force) : चारों मूलभूत बलों में सबसे शक्तिशाली बल है लेकिन उसका प्रभाव क्षेत्र सबसे छोटा है, केवल नाभिकीय दूरी तक ही प्रभावशाली है। यह बल प्रोटॉनों-न्यूट्रॉनों में क्वार्कों को संगठित रखता है तथा परमाणु को एक आकार प्रदान करने के लिए प्रोटॉनों-न्यूट्रॉनों को एकत्र रखता है।
- समानुपातिक (Proportional) : x , y के समानुपातिक है, इसका तात्पर्य यह है कि y को किसी संख्या से गुणा किया जाता है तो X को भी उसी संख्या से गुणा किया जाता है।

व्युत्क्रमानुपातिक (Inversely Proportional) : X , y के व्युत्क्रमानुपातिक है इसका तात्पर्य यह है कि जब Y को किसी संख्या से गुणा किया जाता है तो X को उसी संख्या से भाग दिया जाता है।

- सांख्यिकीय निष्कर्ष : जहाँ भारी संख्या में निरीक्षण एकत्र करने के बाद ही जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं वे सांख्यिकीय निष्कर्ष कहलाते हैं। ये प्रत्यक्ष घटनाओं के स्थान पर घटनाओं की संभावना को व्यक्त करते हैं। ये व्यक्ति के स्थान पर समूहों को लागू होते हैं।
- सामान्य आपेक्षिकता (General Relativity Theory) : आइन्स्टाइन का यह सिद्धान्त इस अवधारणा पर आधारित है कि विज्ञान के नियम सभी प्रेक्षकों के लिए समान होने चाहिए चाहे वे कैसे भी गतिशील हों। चार विमाओं वाले दिक्-काल की वक्रता के रूप में यह सिद्धान्त गुरुत्व बल की व्याख्या करता है।
- सूक्ष्म तरंग पृष्ठभूमि विकिरण (Microwave Background Radiation) : अत्यंत तप्त प्रारंभिक ब्रह्माण्ड के उद्दीपन से उत्सर्जित विकिरण, अब इतना अधिक अभिरक्त विस्थापित है कि यह प्रकाश के रूप में नहीं, बल्कि सूक्ष्म तरंगों (कुछ सेंटी मीटर के तरंग दैर्घ्य की रेडियो तरंग) के रूप में दिखाई पड़ता है।
- स्पंदक (पल्सर) : एक घूर्णनशील न्यूट्रॉन तारा जो रेडियो तरंगों के नियमित स्पंदों का उत्सर्जन करता है।
- क्षीण-वैद्युत एकीकरण ऊर्जा (Electroweak Unification energy) : लगभग 100GeV की वह ऊर्जा जिसके ऊपर विद्युत चुंबकीय बल तथा क्षीण बल के मध्य अंतर समाप्त हो जाता है।

क्षेत्र (Field) : अवकाश का वह प्रदेश जिसमें विद्युत अथवा चुंबकीय बल रेखाएं या दोनों होती हैं। यह संपूर्ण आकाश और काल में अस्तित्ववान होता है। इसकी स्थिति किसी कण के विपरीत होती है, जिसका अस्तित्व एक समय पर केवल एक बिंदु पर ही होता है।

कुछ और परिभाषाएं

‘ घटना ’ - अंतरिक्ष और समय के किसी एक बिंदु पर होने वाली कोई भी बात हो सकती है।

‘ समकालिक “ (Simultaneity) -दो या अधिक घटनाओं को समकालीन कहा जाता है अगर वे समय के एक ही क्षण में घटती हुई दिखाई देती हैं।

‘ आवृत्ति ‘ - यह घटना घटित होने का दर है। उसे आम तौर पर प्रति सेकंड पुनरावृत्ति के रूप में लिया जाता है।

‘ आयनिक वृत्त ‘ - यह सूर्य का पृथ्वी से दिखने वाला भ्रमणमार्ग है।

‘ आंतरतारकीय अंतरिक्ष ‘ - इसका अर्थ है दो सौर मंडलों के बीच का हिस्सा जहाँ न तारे होते हैं, न ग्रह। हां, वहां लघुग्रह पहुँच सकते हैं।

कुछ सूत्र तथा कुछ पदों की कीमतें

सापेक्षता से संबंधित गणना करते समय कुछ पद बारबार आते हैं—

v = पदार्थ की गति

c = प्रकाश की गति

- $v/c = \beta$ बीटा
- $v^2 / c^2 = \beta^2$ अल्फा
- $1 / \sqrt{1 - v^2 / c^2} = \gamma$ गॅमा

अगर गतिमान स्रोत के संदर्भ में आवृत्ति f लें तो-

और स्रोत स्थिर निरीक्षक से दूर जा रहा हो तो उसे अनुभव होने वाली आवृत्ति होगी

$$= \sqrt{1 - \beta} / 1 + \beta \quad \text{जो } f \text{ से कम होगी।}$$

$$\text{अगर स्रोत निरीक्षक की ओर आ रहा है तो होगी} = \sqrt{1 + \beta} / 1 - \beta$$

जो f स्रोत से अधिक होगी।

(यहाँ क्लासिकल डॉप्लर परिणाम के साथ विशेष सापेक्षता डॉप्लर परिणाम ध्यान में लेना होगा।

- सापेक्षीय विशेष सिद्धांत के अनुसार—

m_0 = पिंड का स्थिरावस्था द्रव्यमान

l_0 = पिंड की स्थिरावस्था में लम्बाई

T_0 = स्थिर पिंड में समय

गतिमान पिंड का सापेक्षीय द्रव्यमान $m = m_0 / \sqrt{1 - v^2 / c^2}$

गतिमान पिंड की लम्बाई $= l = l_0 \sqrt{1 - v^2 / c^2}$

$$\text{गतिमान पिंड में समय} = T = T_0 / \sqrt{1 - v^2 / c^2}$$

- गोल वस्तु की घनता (Density) = $d = 3M / 4 \pi R^3$
 $M = \text{वस्तुमान}$ $R = \text{त्रिज्या (मीटर)}$ $\pi = 3.1415926$
- पृथ्वी के परिवलन के कारण विषुववृत्त पर स्थित किसी वस्तु की गति = $V = 2\pi R / T$
 $R = \text{पृथ्वी की त्रिज्या} = 6400000 \text{ मीटर}$ $T = \text{परिवलन काल} = 24 \times 3600 \text{ सेकंद}$

पृथ्वी पर अन्य स्थान की गति = $2 \pi R \cos (\text{Latitude})$
- गुरुत्वीय त्वरण (Gravitational Acceleration) = $g = GM / R^2$
 $G = \text{गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक} = 6.67 \times 10^{-11} (\text{MKS एकक में}), R = \text{त्रिज्या}, M = \text{वस्तुमान (KG)}$
- ग्रह की भ्रमणगति (Orbital Velocity) = $v = \sqrt{GM / R}$
- ग्रह का मुक्तिवेग (Escape Velocity) = $V_{\text{ESC}} = \sqrt{2GM / R}$
- तारे की दूरी = $r = 3.26 / p (\text{arc sec})$ प्रकाशवर्ष | $P = \text{पराशय}, \text{प्र.वर्ष} = 9.46 \times 10^{12} \text{ कि.मी.}$
- कृष्ण विवर की श्वार्ज़शचार्डल्ट्रिज्या (कि.मी.) = $3M / M_{\text{SUN}}$ ($M = \text{कृ.विवर का वस्तुमान}$
सूर्य वस्तुमान के गुना में)
- गुरुत्वीय ताम्रसृति (Gravitational Red Shift) = $Z = (L - L_0) / L_0$ | $L = \text{निरीक्षित तरंग}$
लम्बाई, $L_0 = \text{वास्तव तरंग लम्बाई (मिट्रों में)}$
- न्यूट्रॉन तारे का परिवलन काल = $T = (R_n / R)^2 T_0$ | $R_n = \text{न्यूट्रॉन तारे की त्रिज्या},$
 $R = \text{पितृतारे की त्रिज्या}, T_0 = \text{पितृतारे का परिवलन काल}$

शब्द संग्रह

अ

अंगभूत	Intrinsic	अन्योन्यक्रिया	Interaction	अंडाकार, दीर्घवृत्ताकार	Elliptical
अंतर्निहित	In built	अन्वेषण	Probe	अपकर्षण	Repulsion
अंतर संकोच	Length Contraction	अपकेंद्री बल	Centrifugal Force	अंतःस्फोट	Implosion
अपकृष्ट/अपभ्रष्ट दबाव,	Degeneracy Pressure	अपरिभाषित	Undefined	अग्र	Front
अचल	Invariance	अपसव्य	Anticlockwise	अपवर्जन सिद्धान्त	Exclusion Principle
अपास्तीय	Hyperbolic	अणुकेंद्र विभाजन	Nuclear Fission	अब्ज	Billion
अणुकेंद्र संगलन	Nuclear Fusion	अब्जांश	Nano	अतिउच्च	Hyper
अतिनील	Ultraviolet	अभिका, द्रव्य का कडा	Ring	अतिव्याप्त	Superposed
अतिवाहक	Super Fluid	अभिकेन्द्री बल	Centripetal Force	अतिव्यापन	Superpositi on
अतिसंवाहक	Super Conductor	अभिजीत तारा	Vega Star	अर्धआयुष्य/जीवनी	Half Life
अभिरक्त विस्थापन	Red Shift	अराजक	Chaotic	अरुण	Uranus
अर्ध बृहदअक्ष	Semi-major Axis	अवकाश	Space	अवयव, कारक, घटक	Factor

अनंत	Infinite	अनन्य,अनोखा	Unique	अवरक्त किरण	Infra-Red Ray
अन्वस्त	Parabola	अवष्टंभ	Winter Solistic	अवस्था	State
अविनाशी	Conservative	अनिर्बंध	Runaway	असफल तारा	Failed Star
अनियमित	Random	अनिश्चितता तत्व	Uncertainty Principle	अवभिसरण	Convection
असमकालिक	NonSynchro nised	अनुनाद	Resonance	अनुपात,	Proportion
अक्षय्यता	Conservation				

आ

आकारमान, रूपान्तरण	Scaling	आकाशगंगा	Milky Way	आकाशीय विमाणं	Spatial Dimension
आकडेवारी	Data	आत्मगत	Subjective	आन्तरिक	Eternal
आदि	Proto, Initial	आदितारा	Proto star	आद्य	Primordial
आभासी	Quasi, Apparent	आभासी कण	Virtual Particle	आयतन	Volume
आयन मंडल	Ionosphere	आयनिक वृत्त	Ecliptic	आयाम	Amplitude
आवर्तन	Cycle	आवर्तन काल	Periodic Time	आवर्ती सारणी	Periodical Table
आवेग	Impulse	आजावली	Programming		

ई

ईनान्तर	Elongation				

उ

उत्केन्द्रता	Eccentricity	उत्तेजित अवस्था	Excited State	उत्तेजित उत्सर्जन	Stipulated Emission
उत्प्रेरक	Catalyst	उत्सर्जन	Emission	उत्सर्जन अंग	Excretory Organ
उदासीन	Neutral	उदीयमान	Nascent	उन्मुक्त डोर	Open String
उपसूर्य बिंदु	Perihelion	उर्मिका	Ripple	उल्का	Meteor,
उल्कापिंड	Meteorite				

ऊ

ऊष्मा	Heat	ऊष्मा गतिकी	Thermo dynamics	ऊष्मा चालन	Heat Conduction
ऊष्मीय ऊर्जा	Thermal Energy	ऊष्मीय प्रारण	Thermal Radiation	ऊर्जा संरक्षण	Energy Conservatio n
ऊर्ध्व बिंदु	Zenith				

ए

एकक	Unit	एक दिशा मार्ग	Unidirectional Path	एकदैशिकता	Isotropy

एन्ट्रॉपी	Entropy	एकविधता	Homogeneous	एकात्म	Union
क					
कंपन संख्या	Frequency	कण	Particle	कण त्वरित्र	particle Accelerator
कला	Phase	कवच	Crest	कक्षा	Orbit
कार्यशक्ति	Power	काल यंत्र	Time Machine	काल सूत्र	Equation of Time
काल्पनिक, प्रकल्पनात्मक	Hpothetical	काल्पनिक संख्याएं	Imaginary Numbers	क्रियाविधि	Mechanism
केंद्रच्युति	Eccentricity	केंद्रीय प्रक्रियक	Central Processing	केंद्रोत्सारी बल	Centrifugal Force
कोणीय संवेग	Angular Momentum	क्रान्तिक घनता	Critical Density	क्रान्तिक दर	Critical Rate
क्रोड	Core	क्वांटम यांत्रिकी	Quantum Mechanism	कृमी विवर	Worm Hole
कृष्ण तारा	Black Star	कृष्ण पदार्थ	Black Body	कृष्ण (अदीप्त) पदार्थ	Dark Matter
कृष्ण बटु	Black Dwarf	कृष्ण विवर	Black Hole	कौंध	Flash
ग					
गणना, गणन, परिक- लन, हिसाब	Calculation	गति	Motion, Velocity	गतिक	dynamic

गतिजन्य ऊर्जा	Kinetic Energy	गाभा	Core	गिराव	Depression
गुणधर्म	Properties	गुरुत्व बल	Gravity	गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक	Gravity Constant
गुरुत्वीय अवपात, निःपात	Gravity Collapse	गुरुत्वीय ताम्रसृति	Gravity Red Shift	गुरुत्वीय भिंग	Gravity Lens
गुरुत्वीय लहर	Gravity Wave	गुरुत्वीय त्वरण	Gravity Acceleration	गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा	Gravity Potential Energy
गुरुमेघ	Great Megellanic Cloud	गोलीय तारका गुच्छ	Globular Cluster	गोलिका	Globule
गणक	Calculator				
घ					
घटना क्षितिज	Event Horizon	घूमने की प्रवृत्ति	Chirality, Helicity (दाहिनीओर)	घूर्णन	Spinning
घूर्णनशील	Rotating				
च					
चाप	ARC	चित्रालेख	Graphix	चुंबकीय बलरेखा	Magnetic Lines of Force

चेतनीकरण	Animation				
छ					
छद्म गोल	Pseudo Sphere	छद्म बल	Pseudo Force		
ज					
जंबुपार	Ultraviolet	जटिल	Complex	जडत्व	Inertia
जडत्वीय चौखट	Inertial Frame	जडत्वीय वस्तुमान	Mass	जीवनशक्ति	Vitality
जागतिक स्थान निश्चितीकरण प्रणाली	Global Positioning System	जालव्युह	Network	जीवाश्म	Fossil
जुडवाओं का विरोधाभास	Twin Paradox	ज्वारभाटा बल /ज्वारीय	Tidal Force		
ड					
डोर सिद्धान्त	String Theory				
ढ					
ढहा तारा	Collapsed Star				
त					

त्वरण	Acceleration	तत्काल	Instantaneous	तरंगाग्र	Wave Front
तन्त्र,निकाय,प्रणाली,पद्धति	System	तरंग द्रोणिका	Wave Trough	तरंग लम्बाई	Wave Length
तरंग शीर्ष	Wave Crest	तल	Plane	तश्तरी	Disk
तश्तरी नुमा विन्यास	Disk like Configuration	ताम्रसृति(डॉप्लर ,प्रसरण,गुरुत्वीय)	Red Shift(Doppler, Expansion, Gravitational	तारकीय	Stellar
तारामंडल	Constellation	तेजस्वी	Vivid	तेजोमेघ	Nebula
तेजोवलय	Halo	त्वरण	Accelaration		

द

दबाव	Pressure	दर्पण प्रतिबिंब	Mirror image	दक्षिणावर्त	Clockwise
दिक्-काल	Space-Time	दिशा निर्देशन	Orientation	दीर्घवृत्त/अंडाकार	Ellipse /Elliptical
दीर्घिका	Galaxy	दूरदर्शक, दूरबीन	Telescope	दूरमापन	Tele-metering
दोलायमान	Oscillating	द्वैतता	Duality	द्रव्यमान	Mass

न

निकाय	System	निगलना	Devious	निर्देशांक	Coordinates
निर्धार्यता	Determinism	निरंतर,लगातार ,सतत	Continuous	निरपेक्ष तापमान/परम	Absolute Temperatur

					e
निरपेक्ष प्रत	Absolute magnitude	निर्वात, रिक्ति	Vaccume	निविष्टि	Input
निष्पत्ति	Output	न्यूनतम ऊर्जा अवस्था	Ground State	निःपात	Collapse
निहारिका	Nebula	नीलसृति	Blue Shift	न्यूनतम ऊर्जा अवस्था	Ground state
प					
पट्टा,क्षेत्र,घेरा इलाका	Belt	पदार्थ	Matter	परम काल	Absolute Time
परमाणु	Atom	परवलयकार	Parabolic	परांचन गति	Precision Motion
पराध्वनिक	Supersonic	पराबैंगनी	Ultraviolet	परावर्तन	Reflexion
परावर्तन गुणोत्तर	Albido	पराशय	Parallax	परास	Range
परिकलन यंत्र	Calculation Machine	परिकल्पित	Hypothetical	परिघटना	Phenomena
परिधी	Periphery	परिप्रेक्ष्यी परिभ्रमण	Rotation	परिमाण	Magnitude
परिकलक	Calculator	परिमित	Finite	परिवलन	Spin, Rotation

काल	Calculation Period	परिहार प्रदेश	Empty Region	पलायन वेग	Escape velocity
पहचान	Signature, Finger Print	पहेली	Enigma	पिधान	Occultation
पुराचुंबकत्व	paleomagnetism	पुरासामान्यीकरण	Renormalization	प्रकाशमान	Luminoferous
प्रकाशवर्ष	Light Year	प्रकाश विद्युत	Photo Electric Effect	प्रकाश शंकु	Light Cone
प्रणाली , संहति	System	प्रतल	Plane, Surface	प्रतिवस्तु	Antimatter
प्रतिमान	Pattern	प्रतियुति	Apposition	प्रज्ञावान	Intellectual
प्राकृतिक चयन	Natural Selection	प्रारंभिक, अग्रगामी	Precursor	प्रायिकता	Priority
प्रारण	Radiation	प्रारण दबाव	Radiation Pressure	प्रावस्था संक्रमण	Phase Transition
प्रेक्षण	Observation	पृथक	Discrete	पृष्ठभूमिक विकिरण	Background Radiation
फ					
फनल	Funnel				

ब

बंद कुंडलाकार परिपथ	Closed Loop	बंद डोर	Closed String	बल	Force
बहुतारा	Multiple Star	बहुपद	Polinomial	बारंबारता	Frequency
बिंदुवत अवस्था	Singularity	बुध ग्रह	Mercury Planet	बौना, वामन	Dwarf
ब्रह्माण्ड	Cosmos, Universe	ब्रह्माण्डिकी	Cosmology	ब्रह्माण्डिकीय स्थिरांक	Cosmologic al Constant

भ

भार	Weight	भूस्थिर	Geocentric	भोग-शर	Longitude- Latitude
भौतिक घटना	Physical Event	भौतिक राशि	Physical Quantities	भ्रमजाल	Paradox
भ्रामक कण	Virtual Particle	भ्रुण	Embryos		

म

मंदन	Retardation	मलवा	Debris	महाअणु	Super atom
महाएकीकरण सिद्धान्त	Grand Unified Theory	महाकण	Super Particle	महाकाय कृष्ण विवर	Super Massive Black Hole
महावलय	Great Circle	महाविस्फोट	Big Bang	महासंपिडन	Big crunch

मर्यादित	Finite	माप	Measure	मापन	Measureme nt
मिति	Dimension	महासंपिडन	Big Crunch	मुक्त अधोगमन	Free Falling
मुक्त अवकाश	Free Space	मुक्तिवेग	Escape Velocity		

य

यदृच्छया	Random	यामोत्तर वृत्त	Meridian		

र

रिक्त	Empty	रूप विकारी तारा	Variable Star	रूपरेखा	Profile
रेखांश रेखीय	Longitude Linear	रेडिओ खगोलशास्त्र	Radio Astronomy	रेडिओ तरंगें	Radio Waves
रेडिओ धर्मिता	Radio Activity	रैखिक पथ	Linear Track		

ल

लघुग्रह	Asteroid				

व

वक्रता	Curvature	वर्णपट	Spectrum	वरुण	Naptune
वलय	Ring	वसंत संपात बिंदु	Vernal Equinox	वस्तुकेन्द्र	Centre of Mass

वस्तुगत	Objective	वामावर्त	Anti-clockwise	वास्तव	Real
वाहक	Carrier	विकिरण	Radiation Scattering	विकेंद्रता	Eccentricity
विचलन	Deviation,	विदा	Data	विन्यास	Configuration
विमा	Dimension	विरचना	Structure	विरल	Rare
विरोधाभास	Paradox	विलंब	Delay	विवृताकार	elliptical
विश्व किरण	Cosmic Rays	विश्वरेखा	World Line	विश्वशास्त्र	Cosmology
विशुद्ध	Absolute	विषुववृत्तीय धरातल	Equatorial Plane	विद्युत आवेश	Electric Charge
विष्टम्भ	Summer Solstice	विसरित	Diffused	विद्युत अग्र	Electric Pole
विद्युत दबाव की तटबंदी	Electric Pressure Barrier	विद्युत यामिकी	Electrodynamics	विद्युत विरोध	Electric Resistance
वैश्विक पार्श्वपारण	Cosmic Background Radiation	वैश्विक स्थिरांक	Universal constant	वैषुविक वृत्त	Celestial Equator

वृहद अक्ष (लघु अक्ष)	Major Axis (Minor A.)	व्यतिकरण	Interference	व्याध	Sirius
श					
शक्तिपुंज	Quantum	शलाका	Beam	शिष्टाचार प्रणाली	Protocol
शुक्र	Venus	श्वेतबटु	White Dwarf	श्वेत विवर	White Hole
शोषण	Absorption	शोषित होना	Funneled		
स					
संक्रमण,	Transition	संगलन	Fusion	संघनन	Condensation
संचय	Storage	संदर्भ चौखट	Frame of Reference	स्पंदक	Pulsar
संपर्ययी	Isotropic	संयोजन,बनावट, रचना	Composition	संरचना	Structure
संरूपण (समग्राकृति)	Configuration	संवहन	Convection	संवेग	Momentum
संहति, द्रव्यमान	Mass	सदिश	Vector	समकालिक	Synchronize
समकालिकता,सम कालीनता	Simultaneity	समग्र	Integral	समतुल्य	Equivalent
समदैशिकता	Isotropy	सममिति	Symmetry	सममिति अक्ष	Symmetry Axis
समरूप	Identical	समांगता	Homogeneity	समान	Uniform

समस्थानीय	Isotope				
समानुपाती(व्युत्क्रमानुपाती)	Proportional (Inversely P.)	सरूपीकरण	Simulation	सर्पिल	Spiral
सव्यदिशा	Anticlockwise	सशक्त बल	Strong Force	सहचल	Covariance
सहजक्रिया	Reflexes	सहनिर्देशांक	Co0rdinates	सांख्यिकीय	Statistical
सान्त	Finite	सांद्रता	Viscosity	सिकुडना,	Warping
सिद्धांत	Phenomena	सुरचना	Design	सुव्यवस्था	Order
सुयंत्रणा	System	सौर वात	Solar Wind	स्पर्शरेषा	Tangent
स्फटिकीकरण	Crystalization	स्फितिकारी, फुलाव, विस्तार	Inflationary	स्वरमान	Pitch
स्थानीय संघ	Local group	स्थायी दशा सिद्धांत	Steady state theory	स्थितिजन्य ऊर्जा	Potential Energy
स्थितिशील वस्तुमान	Rest Mass	स्थिर अवस्था	Steady State	स्थिरस्थिति प्रतल	Static Surface
स्थिर ब्रह्माण्ड	Static Universe				

ह

हेलकावे, चलबिचल, हिचकोले	Fluctuations				

क्ष

क्षितिज

Horizon

क्षीण नाभिकीय
बल

Weak
Nuclear
Force

क्षेत्र

Field